दुनिया में आज तक पीड़ित स्त्री के इतिहास की मार्मिक
स्थिति पहली बार प्रस्तुत करके मानव-समाज को एक
क्रांतिकारी दिशा देने वाली पुस्तक।

विश्वविख्यात फ्रैंच लेखिका की विश्वचर्चित कृति
The Second Sex का भारत में पहली बार हिन्दी रूपांतर।

हिन्द पॉकेट बुक्स

प्रस्तुतिः डॉ. प्रभा खेतान

सीमोन द बोउवार

दुनिया में आज तक पीड़ित स्त्री के इतिहास की मार्मिक स्थिति पहली बार प्रस्तुत करके मानव-समाज को एक क्रांतिकारी दिशा देने वाली पुस्तक।

विश्वविख्यात फ्रैंच लेखिका की विश्वचर्चित कृति The Second Sex का भारत में पहली बार हिन्दी रूपांतर।

हिन्द पॉकेट बुक्स

सिमोन द बोउवार

स्त्री : उपेक्षिता

The Second Sex का हिन्दी रूपांतर
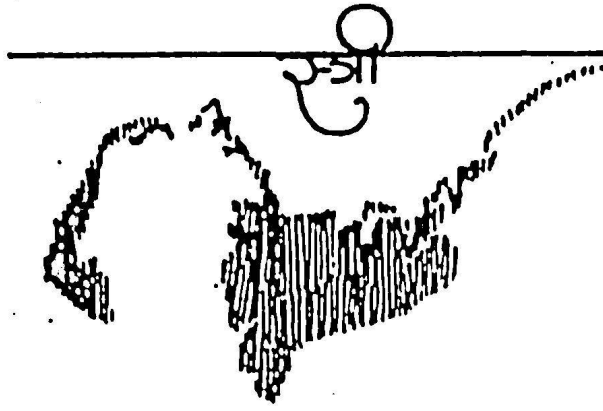
जीवनी, सन्दर्भ एवं प्रस्तुति
डॉ. प्रभा खेतान

हिंद पॉकेट बुक्स

हिन्द पॉकेट बुक्स
भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स
उत्कृष्ट साहित्य का प्रतीक
सुन्दर • सुरुचिपूर्ण • सरल

स्त्री : उपेक्षिता (एक अध्ययन)

नवीन संस्करण : 2002
पहला रिप्रिंट : मार्च, 2004
प्रकाशक : हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जे-40, जोरबाग लेन, नई दिल्ली-110003
लेज़र : विनायक कम्प्यूटर्स, दिल्ली-110032
मुद्रक : नाईस प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-110052

STREE : UPEKSHITA
By Simone de Beauvoir

ISBN: 81-216-0232-7

अनुक्रम

प्रथम खण्ड : तथ्य और मिथ

द्वितीय खण्ड : आज की स्त्री

स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि उसे बना दिया जाता है

-सीमोन द बोउवार

हमें बड़ी उदारता से सामान्य स्त्री और उसके परिवेश के बारे में सोचना होगा। सीमोन ने उन्हीं के लिए इस पुस्तक में लिखा है और उन्हीं से उनका संवाद है, विशिष्टों या अपवादों से नहीं।

-डॉ. प्रभा खेतान

स्त्री : उपेक्षिता
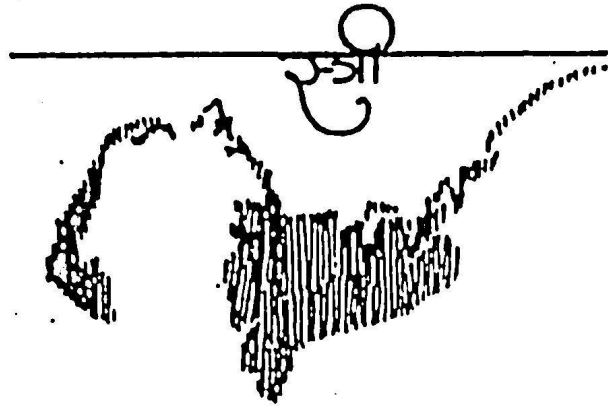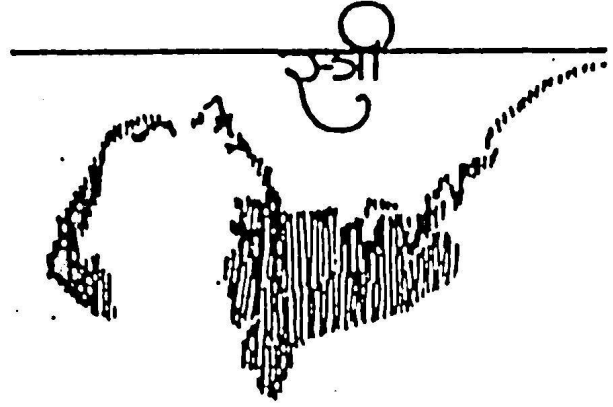
सीमोन द बोउवार
: एक परिचय

1908 की 9 जनवरी को सीमोन द बोउवार का जन्म पेरिस के एक मध्यमवर्गीय कैथोलिक परिवार में हुआ। पहली संतान होने के कारण उन्हें माता-पिता का भरपूर स्नेह मिला। दो साल बाद यानी 1910 में साथ खेलने के लिए बड़ी प्यारी, खूबसूरत नन्ही बहन मिली, जिसका नाम था पापीत। 1913 में सीमोन को लड़कियों के एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा गया। वहां मिली जाजा, जान से भी प्यारी सखी। हर गर्मी की छुट्टी सीमोन अपने नाना के घर, जो गांव में था, प्रकृति के बीच बिताती । दस वर्ष की आयु आते-आते सीमोन ने अपना सर्जक व्यक्तित्व पहचान लिया। घंटों कल्पना-लोक या किताबों में खोई रहने वाली इस लड़की ने निश्चय किया कि वह लेखक बनेगी, यही उसकी नियति है-किताबें और केवल किताबें । पिता को अपनी मेधावी बेटी पर गर्व था और मां उसकी किताबों के प्रति पागलपन से चिंतित। मां सबसे अधिक आहत हुईं, जब चौदह साल की किशोरी एक दिन ऐलान कर बैठी कि मैं प्रार्थना नहीं करूंगी, मुझे तुम्हारे यीशु पर विश्वास नहीं।

1925-26 के दौरान सीमोन ने दर्शन और गणित में स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की और बाक्कालोरिया की डिग्री हासिल कर आगे पढ़ने के लिए न्यूए की सैंत मारी और इंस्टीट्यूट कैथोलिक पेरिस में दाखिला लिया। 1926 में सौरबोन के विश्वविद्यालय में उन्होंने दर्शन और साहित्य का कोर्स शुरू किया। माता-पिता को गहरी निराशा हुई। मां को इस बात का असंतोष था कि सीमोन शादी नहीं कर रही, धार्मिक नहीं है, आवारा लड़कों के साथ घूमती-फिरती है। पिता को इस बात का अफसोस कि इतनी मेधावी बेटी ने सरकारी नौकरी

न कर केवल शिक्षिका का पेशा अपनाया। पिता दिवालिया हो चुके थे और बेटी की शादी में देने के लिए उनके पास दहेज नहीं था और न ही रूप देखकर बेटी को कोई ले जाता। सीमोन उन दिनों अपने कजिन जैक से, जो बड़े धनाढ्य परिवार का लड़का था, प्रेम करती थीं, पर जैक ने उन्हें ठुकराया। आहत सीमोन समाजसेवा में रुचि लेने लगीं, पर ज्यादा दिन नहीं। नियति कुछ और ही चाहती थी।

सन् 1927 में उन्होंने दर्शन की डिग्री ली। 1928 में एकौल नौर्माल सुपेरियर में दर्शन में स्नातकोत्तर के लिए दाखिला लिया। उन्हें पहली बार स्वतंत्रता मिली। घर के बंधनों से दूर उन्होंने आजादी की खुली सांस ली। शुरू के दिनों में आवारागर्दी करना, बहन या अन्य दोस्तों के साथ काफी हाउस और शराबखानों में घूमना, पीने-पिलाने का दौर चलता रहा, लेकिन फिर वे ऊब गई और पूरे जोश-खरोश के साथ पढ़ाई में जुट गईं। और फिर शिक्षिका बनीं। इस दौरान उनके दो मित्र थे, विश्वविख्यात नृतत्व शास्त्री क्लोट लवी स्त्रास और विख्यात घटनाविज्ञानवादी मोरिस मैर्लोपेंती। यह साल सीमोन के लिए बड़ा दुःखद रहा। उनकी प्रिय सहेली जाजा ने आत्महत्या कर ली और मैर्लोपेती भी अकाल मृत्यु के शिकार हुए। सीमोन मैर्लोपेती से शादी करना चाहती थीं। जाजा की कमी उनके जीवन में पूरी नहीं हो सकी, पर मैर्लोपेंती के बदले एकौल नौर्माल में उनका परिचय अस्तित्ववाद के मसीहा दार्शनिक ज्यां पॉल सार्त्र से हो गया। दोनों मेधावी छात्र थे और बड़े अच्छे नम्बरों से परीक्षा पास की । 21 वर्ष की उम्र में पहले ही प्रयास में दर्शन में पास होकर प्रथम आने वाली पहली छात्रा थी सीमोन, सार्त्र का यह दूसरा प्रयास था। अब वे प्रोफेसर होने के काबिल थे। आपस की दोस्ती प्रेम में परिणत होने लगी। सीमोन को सार्त्र किशोरवय में देखे हुए सपनों के साथी लगे।

विवाह और वंश परम्परा की अनिवार्यता के खिलाफ दोनों ने निश्चय किया। सीमोन विवाह को एक जर्जर ढहती हुई संस्था मानती थीं। सार्त्र को राष्ट्रीय सेवा की नौकरी, जो कि उन दिनों फ्रांस में अनिवार्य थी, स्वीकार करनी पड़ी। सीमोन ने घर छोड़ दिया और नानी के पास एक कमरा किराए पर लेकर रहने लगीं। पार्ट टाइम का अध्यापन आजीविका का माध्यम बना। उन्होंने लिखना शुरू किया। वे पहली बार सार्त्र के साथ विदेश यात्रा पर स्पेन पहुंची।

सन् 1931 में सार्त्र की नियुक्ति मार्सेय के एक स्कूल में हुई और सार्त्र पढ़ाने चले गए लीहाव्र में। यह जुदाई दोनों के लिए दर्द से भरी थी। सार्त्र ने सीमोन से पहली बार विवाह का प्रस्ताव रखा, ताकि एक ही जगह नियुक्ति हो सके। सीमोन अपनी आस्था पर अडिग थी और कुछ समय का यह बिछोह उनके आपसी सम्बंधों को और गहरा विश्वास दे गया। सीमोन को जीवन में पहली बार अकेलेपन का अहसास हुआ। सूने दिन तड़पाते हैं, पर मुक्ति की यह यात्रा उनकी अकेली होगी, यह भी वे समझ गईं। यह लड़ाई उनको अपने

आप से थी, शरीर की मांग का औदात्तीकरण कैसे हो? उन्हें लगा, फिर औरत और जानवर में फर्क क्या? अपनी-उर्जस्विता का निकास और नियमन वे पहाड़ों की लम्बी और थका देने वाली चढ़ाइयों में करने लगीं।

सन् 1932 में उनका तबादला रुऔं के एक स्कूल में हुआ। सार्त्र लीहाव्र में ही रह गए, पर अब मिलने-जुलने की सुविधा अधिक थी। सीमोन की छात्रा थी पोलिश लड़की ओल्गा। खूबसूरत, तेज-तर्रार, झरने-सी झरती हुई, वह सीमोन की दोस्त बनी और उनके ही साथ रहने लगी। सार्त्र का मन ओल्गा के रूप से, उसके जवान शरीर से पहचान चाहता था। यह त्रयी सीमोन के लिए असह्य पीड़ा थी, क्योंकि सार्त्र ने सीमोन के साथ सम्बंध की पहली शर्त यह रखी थी कि प्रेम दो प्रकार का होता है-अस्थायी और चिरस्थायी संगिनी का। यह छूट उन्होंने न केवल अपने लिए रखी, बल्कि सीमोन को भी इसकी अनुमति थी, किंतु दृढ़ विश्वासों की यह पुजारिन प्यार को मन का सम्बंध समझती थी, केवल शरीर का नहीं। कुछ समय की यह दाहक ज्वाला उनके प्रथम उपन्यास 'शी केम टू स्टे' का आधार बनी। ओल्गा सार्त्र के ही छात्र बोस्ट से उलझ गई। सार्त्र चले गए एक साल के लिए बर्लिन पढ़ाने।

सीमोन अपनी छात्राओं से कभी सख्ती से नहीं पेश आती थीं। नतीजा यह हुआ कि छात्राएं उनकी दोस्त अधिक होती गईं। दोस्ती में आपसी विचारों का विनिमय होता। जब वे छात्राओं की समस्याएं सुनती थीं, तब उन्हें अपनी प्यारी सखी जाजा याद आती थी, जो अपने मौसेरे भाई प्रादेल से प्यार करती थी, किंतु धर्मभीरु जाजा को मां-बाप के डर से आत्महत्या करनी पड़ी। सीमोन स्त्री की पारम्परिक भूमिकाओं की आलोचना करती हैं, साथ ही युद्ध-विरोधी चर्चा ज्यादा करती हैं। छात्राओं के अभिभावकों की शिकायत के कारण सीमोन को अधिकारियों से कड़ी डांट-फटकार पड़ी, पर वे कब चुप रहने वाली थीं? सन् 1936 में उनका तबादला लीसे मालियेर में हो गया। साल- भर बाद सार्त्र की नियुक्ति भी पेरिस के स्कूल लीसे पास्तर में हो गई। वे एक ही होटल में अलग-अलग मंजिलों पर रहने लगे। घर नहीं बसाया। होटल में रहना और बाहर खाना। गृहस्थी के झंझटों से बिल्कुल मुक्त। सारा समय लेखन, अध्ययन और अध्यापन। कहवा-घरों में घंटों दोस्तों के साथ दर्शन पर बहस । सारी रात पेरिस की सड़कों पर घूमना, कभी कहीं, तो कभी कहीं। बेफिक्री और मस्ती का आलम। वह 1938 का वर्ष था। हिटलर की सेना दिन- प्रतिदिन आगे बढ़ती जा रही थी और ये दो लाल कमल पोखर में मस्ती से तैर रहे थे।

सन् 1939 का वर्ष । द्वितीय महायुद्ध की घोषणा। 1940 का वर्ष । फ्रांस का पतन। नाजी सेना पेरिस की सड़कों को कुचल रही थी। जीवन को राजनीति ऐसी विस्फोटक चोट दे सकती है, यह सार्त्र ने पहली बार समझा। जिंदगी राजनीति से अलग नहीं । सार्त्र ने प्रतिबद्धता का सिद्धांत अपनाया। इस मत को सीमोन का पूर्ण समर्थन था। उन्हें पेरिस से भागना पड़ा। वे प्रतिरोध- आंदोलन के अग्रजों में से थे । सार्त्र को कैद कर लिया गया, किंतु

बाद में छोड़ दिया गया। इन दिनों सीमोन फ्लोरे कॉफी हाउस में बैठकर लिखा करती थीं। नाजियों ने उन्हें स्कूल की नौकरी से निकाल दिया। 1941 में उनका प्रथम उपन्यास 'शी केम टू स्टे' प्रकाशित हुआ और उनके लेखन को जन-सम्मान मिला। 1944 में पेरिस आजाद हुआ। चूंकि सीमोन और सार्त्र, दोनों ही वामपंथी थे, अतः 1945 में 'ल तौ मोदान' पत्रिका की स्थापना हुई। सीमोन का लिखा हुआ एक नाटक 'यूजलेस माउथ' मंच पर खेला गया, मगर असफल रहा। इसके बाद उन्होंने कभी नाटक नहीं लिखा। दूसरा उपन्यास 'द ब्लड ऑफ अदर्स' इसी साल प्रकाशित हुआ, जिसको प्रतिरोध-आंदोलन के दौरान लिखा हुआ अत्यंत प्रामाणिक उपन्यास माना गया। 1946 में 'ऑल मेन आर मोरटल' प्रकाशित हुआ। सार्त्र ने घोषणा की कि अब वे किसी 'एम' नाम की महिला के संग साल में तीन-चार महीने रहा करेंगे। सीमोन सोचती हैं, यह 'एम' कौन है। 1947 में उनकी दर्शन की एकमात्र पुस्तक 'इथिक्स ऑफ एम्बीगुइटी' का प्रकाशन हुआ, जो कि मानव-मूल्यों पर एक गुंथा हुआ दार्शनिक दस्तावेज है।

यह 1947 का वर्ष था, जब सीमोन ने अपने महान् ग्रंथ 'द सेकिंड सेक्स' पर काम शुरू किया। औरत की नियति क्या है ? वह गुलाम क्यों है ? किसने ये बेड़ियां कुलांचे मारती हिरणी के पैरों में पहनाईं? इसी बीच उन्होंने अमेरिका में भाषण-शृंखला के निमंत्रण को स्वीकार किया। नया देश देखने का उत्साह और पहली बार इतनी दूर जाना? शिकागो में वे मिली अमेरिकन उपन्यासकार नेल्सन एलग्रेन से। दोनों प्यार में आकंठ डूबे । चार साल तक यह प्रेम-प्रसंग चला। कभी छुट्टियों में सीमोन अमेरिका जातीं, कभी नेल्सन पेरिस में रहते। एलग्रेन ने विवाह का प्रस्ताव रखा, पर सीमोन सार्त्र के प्रति प्रतिबद्ध रहीं। पेरिस उन्हें बहुत प्यारा है और अपने लेखन से बेहद लगाव। प्यार कडुवाहट में बदल जाता है। आहत एलग्रेन वापस अमेरिका चले जाते हैं। बस, यदा- कदा पत्र-व्यवहार तक वह सम्बंध सिमट गया।

सन् 1948 में 'अमेरिका : डे बाई डे' का प्रकाशन होता है और 'ल तौ मोदार्न' में 'द सेकिंड सेक्स' के कुछ हिस्से प्रकाशित होते हैं । सीमोन अब नियमपूर्वक सुबह का समय अपने लेखन में और शाम का वक्त सार्त्र के साथ बिताने लगीं। अपने युग के बौद्धिक मसीहा ने स्त्री-स्वातंत्र्य पर लिखी जाने वाली पुस्तक में पूरी रुचि ली। कई स्थलों पर उन्होंने सीमोन से और भी गहरा विवेचन करने को कहा। कई स्थलों पर पुरुषों पर लगाए गए एकतरफा आरोपों को काटा।

सन् 1949 में 'द सेकिंड सेक्स' का प्रकाशन होता है। हजारों की संख्या में स्त्रियों ने उन्हें पत्र लिखे। जिस समय यह पुस्तक प्रकाशित हुई, सीमोन स्वयं को नारीवादी यानी पुरुषों के बीच स्त्री की स्वाभाविक स्थिति या यूं कहिए कि स्त्री के वास्तविक और बुनियादी अधिकारों की समर्थक नहीं मानती थीं, मगर वक्त के साथ उन्हें समझ में आने लगा कि यह आधी दुनिया की गुलामी का सवाल है, जिसमें अमीर-गरीब हर जाति और हर देश की

महिला जकड़ी हुई है। कोई स्त्री मुक्त नहीं। उन्होंने कभी कुछ विशिष्ट महिलाओं की उपलब्धियों पर ध्यान नहीं दिया और न ही अपने प्रति उनकी कोई गलतफहमी रही। स्त्री की समस्या साम्यवाद से भी नहीं सुलझ सकती। इसी समय सोवियत लेबर कैम्प में हुए अत्याचार दुनिया के अखबारों में छपे । सीमोन ने खुला विरोध किया। पार्टी के प्रति उनकी प्रतिबद्धता पर प्रश्न उठे। इसी मुद्दे पर उन्होंने व्यक्ति बड़ा या पार्टी समस्या पर 'द मेंडेरिस' उपन्यास लिखा। 1951 में एलग्रेन से सम्बंध हमेशा के लिए खत्म हो गए। सीमोन अफ्रीका घूमने गई । उन्होंने अपनी पहली गाड़ी खरीदी।

सन् 1952 में डॉक्टरों को उनके बाएं स्तन में कैंसर का शक हुआ। एक छोटा मांस का गोला काटकर निकाला गया। पहली बार उम्र और मौत उन्हें डराती हैं, जिससे वे पलायन करती हैं एक और प्रेम-प्रसंग में। क्लांद लेंजमैन उनसे उम्र में काफी छोटे जर्नलिस्ट थे। सीमोन ने निश्चय किया कि वे लेंजमैन के साथ रहेंगी और साथ ही सार्त्र के साथ मैत्री और स्थायी प्रेम- सम्बंध भी रहेगा। वे सार्त्र के साथ प्रत्येक गर्मी में रोम जाने लगीं। 1954 में 'द मेंडेरिस' उपन्यास का प्रकाशन हुआ और फ्रांस का सबसे सम्मानित पुरस्कार 'प्रिक्स गोंक्र' उन्हें मिला। 46 की उम्र में यह पुरस्कार शायद सबसे पहले उन्हें ही दिया गया था। फ्रांस की औपनिवेशिक नीति, अल्जीरिया का विद्रोह- सीमोन अब सीधे राजनैतिक अखाड़े में थीं। 'प्रीविलेज' नामक निबंध- संग्रह प्रकाशित हुआ, जिसमें खुलकर फ्रांस की औपनिवेशिक नीति के खिलाफ लिखा गया था। सार्त्र के साथ 1955 में हेलसिंकी में विश्व-शांति कांग्रेस में वे भाग लेती हैं। इसी साल सार्त्र के साथ चीन की यात्रा । मौंपार्नास में पुरस्कार से मिले हुए रुपयों से अपना निजी स्टूडियो यानी एक कमरे का छोटा-सा फ्लैट वे खरीदती हैं, जहां वे अंत तक रहीं।

सन् 1958 में उनकी डायरी के प्रथम खंड 'मेमोरीज ऑफ ड्यूटीफुल डॉटर का प्रकाशन होता है। इसी के साथ एक विराट् जनसभा में द गाल के वापस सत्ता में आने के खिलाफ बोलती हैं, लेकिन द गाल फिर भी सत्ता में आते ही हैं। द गाल की अल्जीरिया-नीति की सीमोन और सार्त्र कड़ी आलोचना करते हैं। इसी साल लेंजमैन से उनका सम्बंध खत्म हो जाता है। यह होना ही था। लेजमैन के सामने सारी जिंदगी पड़ी थी।

सन् 1959 में वे पुनः अल्जीरिया के मुक्ति-संग्राम में खुलकर भाग लेती हैं और एक सरकारी प्रतिबंध के बावजूद जुलूस में जाती हैं। कैनेडियन सरकार उनके एक टेलीविजन इंटरव्यू पर प्रतिबंध लगा देती है, क्योंकि वे विवाह की संस्था और नास्तिक तथा कैथोलिक धर्म का भी विरोध करती हैं।

इस समय फ्रांस में एक पुस्तक निकलती है स्त्री के जन्म-निरोधक अधिकार के समर्थन में। सीमोन इस पुस्तक की पूर्व पीठिका लिखती हैं। 1960 में सार्त्र के साथ वे क्यूबा जाती हैं। कैस्ट्रो ने बड़ी मुहब्बत और गर्मजोशी से इन दो महान् लेखकों का स्वागत किया।

फ्रांसीसी सरकार द्वारा उत्पीड़ित जामीला बूपाका के पक्ष में सीमोन आवाज उठाती हैं। इसी साल उनकी आत्मकथा का दूसरा खंड 'द प्राइम ऑफ लाइफ' प्रकाशित होता है। पुनः लेखकों की आलोचना का विषय, मगर सबसे अधिक बिकने वाली पुस्तक।

सन् 1961 में सार्त्र के फ्लैट पर बम फेंके गए, क्योंकि वे अल्जीरिया के स्वतंत्रता-आंदोलन के पक्ष में थे। वे गुपचुप छिपकर दूसरे फ्लैट में रहने लगते हैं। वहां भी बम मारा जाता है। वे फिर दूसरी जगह । जामीला बूपाका अपनी यंत्रणा की कहानी पुस्तक रूप में प्रकाशित करती हैं। सीमोन इसकी पूर्व पीठिका लिखती हैं। सीमोन को निरंतर टेलीफोन पर मौत की धमकियां मिलती हैं। अंत में अल्जीरिया के साथ फ्रांसीसी सरकार समझौता करती है। सोवियत लेखकों के आमंत्रण पर सीमोन सार्त्र के साथ रूस पहुंची।

सन् 1963 में सीमोन की मां की मृत्यु हो गई। वे चेकोस्लोवाकिया गईं। आत्म-कथा का तृतीय खंड 'द फोर्स ऑफ सरकमस्टांसेज' प्रकाशित हुआ। प्रेम की मिली-जुली प्रतिक्रिया। उन्होंने अपनी मां की मृत्यु पर 1964 में 'ए वेरी इजी डेथ' उपन्यास लिखा। 1966 में पुनः सार्त्र के साथ सोवियत यूनियन और जापान की यात्रा । इन दोनों. महान् लेखकों का पूरा साहित्य जापानी भाषा में अनूदित, जिसमें 'द सेकिंड सेक्स' सबसे अधिक बिकी। इसी साल और एक उपन्यास 'ब्यूटीफुल इमेजेज' प्रकाशित हुआ। 1967 में मध्यपूर्व की यात्रा एवं स्त्री के अधिकारों पर वक्तृता ।

सन् 1968 में बर्ट्रेड रसल ने सार्त्र के सहयोग से युद्ध अपराध-न्यायाधिकरण की स्थापना की, जिसमें सीमोन ने भी सहयोग दिया। मुख्य उद्देश्य था अमेरिका की वियतनाम-नीति के विरुद्ध विश्वमत तैयार करना। इसी साल उनका एक और उपन्यास 'द वूमेन डेस्ट्रॉयड' प्रकाशित हुआ।

इसके बाद 1968 की मई में छात्र-क्रांति, सत्ता की जड़ों को दहलाने वाली। सार्त्र अब कर्मयोगी थे, क्रांति के अगुआ थे। सीमोन का चुनाव होता है नेशनल लाइब्रेरी कॉन्सल्टेटिव कमेटी में 'मेन ऑफ लेटर्स' की सदस्या के रूप में।

1970 में 'ओल्ड एज' का प्रकाशन । खुलकर आलोचना हुई कि वे सठिया गई हैं, कुंठित हैं आदि-आदि, किंतु विश्व-साहित्य में वृद्धावस्था पर इतने मार्मिक विश्लेषण बहुत कम लिखे गए हैं।

अब सीमोन फ्रांस की स्त्री-मुक्ति आंदोलन की अगुआ थीं और नित नए मुद्दों पर बोल रही थीं। 1971 में 'मेनीफेस्टो ऑफ 343' प्रकाशित हुआ, जिसमें फ्रांस की अनेक महत्वपूर्ण महिलाओं ने अपने जीवन में किए गए गैरकानूनी गर्भपातों को स्वीकारा। इसमें सीमोन का भी हस्ताक्षर था। 1970 के पहले वे नारी- मुक्ति आंदोलन के प्रति एक समाज-सुधारक का दृष्टिकोण रखती थीं, किंतु अब वे स्त्री की स्थिति में आमूल परिवर्तन चाहती थीं। युगों से नारी दमन था, जिसका पूर्ण उन्मूलन जरूरी था। समाजवाद से स्त्री की

समस्या हल नहीं हो सकती। वे रूस की स्त्रियों का उदाहरण भी देख रही थीं। पुरुष बड़ा चालाक होता है और सत्ता के मद में स्त्री का दमन किए बिना रह नहीं सकता। अब इस आधी दुनिया को सारे वादों, जातियों और राष्ट्रों का अतिक्रमण कर एक अधीनस्थ जाति की तरह लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ेगी।

आत्मकथा का चौथा खंड 'ऑल सैड एंड इन' 1972 में प्रकाशित होता है। 1973 में सीमोन ने 'ल तौ मोदार्न' पत्रिका में नारी समर्थक कॉलम की शुरुआत की। वे 1974 में नारी-मुक्ति आंदोलन की प्रेसीडेंट चुनी गईं। 1978 में उनके जीवन पर दायां एंड रिबोवस्का ने एक फिल्म बनाई। सन् 1979 में आजीवन मानस-बंधु और संगी-साथी सार्त्र की मृत्यु। सार्त्र की मृत्यु तथा उनसे बातचीत के कुछ अंतरंग हिस्से 'ए फेयरवेल टू सार्त्र' 1981 में बड़े मार्मिक रूप से सीमोन ने प्रस्तुत किए। 1981 में उनके पुराने प्रेमी एलग्रेन की भी मृत्यु। सन् 1983 में सार्त्र द्वारा उनको लिखे गए अंतरंग पत्रों एवं कुछ अन्य साथियों के भी पत्रों का प्रकाशन, जिसका सम्पादन सीमोन ने स्वयं किया। सन् 1985 में ओल्गा और बोस्ट दो और अंतरंग साथियों की मृत्यु।

एक-एक कर संगी-साथी अब विदा हो रहे थे। सीमोन को भी अपनी मौत का आभास होने लगा था। सार्त्र की मृत्यु, जिगरी दोस्तों का जाना। अपने आखिरी दिनों में वे अकेली, मगर पूरी तरह एक-एक पल काम में जुटी रहीं। अपने एक इंटरव्यू में वे कहती हैं : "मैंने जिंदगी को प्यार किया, शिद्दत से चाहा, उसका दायित्व संभाला, उसको दिशा-निर्देश दिया। यह मेरी जिंदगी है, जो बस, एक बार के लिए मिली है। अब लगता है, मानो मैं अपनी मंजिल की दिशा में आगे बढ़ रही हूं। जो कुछ भी आज कर रही हूं, वह लेखकीय प्रगति नहीं, बल्कि मेरा जीवन खत्म करती है, मौत मेरे पीछे खड़ी है।"

और फिर 14 अप्रैल, 1986 को दुनिया से यह महान् लेखिका अलविदा कहती हैं।

बस इतना ही।

प्रस्तुति : संदर्भ

सीमोन ने चूंकि अपनी पाठिकाओं को हमेशा एक विशिष्ट प्रेरणा दी है, अत: उनके लेखन के बारे में हम तटस्थ विचार नहीं कर सकते। यों भी लेखक और पाठक के बीच में एक खास आत्मीय रिश्ता होता है। यह सम्बंध कुछ अंशों में तो ऐतिहासिक कारणों से निर्मित होता है, लेकिन यह अधिक निर्भर होता है पाठक की विशिष्टताओं पर, उसकी उम्र, उसकी जाति, उसके वर्गीय परिवेश और उसकी संस्कृति पर। कहां और किस जगह स्त्री या पुरुष जन्म लेंगे, कौन हमारे भाई-बहन होंगे, किस जाति के होंगे, ये सब हमारी स्थितिग्रस्तताएं हैं, किंतु कुछ अनुभव उम्र के साथ बदलते रहते हैं। सांस्कृतिक दृष्टिकोण अनुभव के संदर्भ में अधिक लचीला होता जाता है।

सीमोन की इस पुस्तक में सिद्धांत एवं तथ्य के अलावा और भी बहुत कुछ ऐसा आत्मीय है, जो हमें भावनात्मक रूप से झकझोरता है। लेखक और पाठक के बीच आत्मीयता बढ़ती चली जाती है। लगता है कि सीमोन हमारी मां, बहन या बड़ी गहरी दोस्त हैं, जिनकी गोद में कभी मुंह छिपाकर हम रोएं और जो हमारा दर्द और हमारी त्रासदी सब कुछ समझती हैं। उनसे हमें कुछ कहना नहीं पड़ता। हमसे बहुत दूर बैठकर भी वे जानती हैं कि औरत होना किसे कहते हैं? उनमें गहन आत्मविश्वास है। उनके सोचने में एक गहरा आक्रोश मिलता है औरत की नियति के प्रति । आज तो फिर भी स्त्री-स्वातंत्र्य की आवाजें उठती हैं, लेकिन आज से चालीस वर्ष पहले की कल्पना कीजिए। दुनिया के अलग-अलग कोनों में गूंगी रहकर घुटन का जीवन गुजारती तमाम औरतों की एक अकेली आवाज का नाम सीमोन है।

सीमोन की इस पुस्तक को सबसे पहले मैंने 1965 में अपने कॉलेज के दिनों में पढ़ा था। मैंने अपने दोस्तों को भी पढ़ने के लिए इसे दिया। मेरी एक दोस्त थी मीनाक्षी, उसकी मां स्वयं एक अच्छे कॉलेज में अंग्रेजी की लेक्चरर थीं। मीनाक्षी ने रोते-रोते सब बातें बताईं। खैर, वक्त बीता। मीनाक्षी एक लड़के से प्यार करती थी। वह ब्राह्मण था और मीनाक्षी कायस्थ। शादी नहीं हो सकती थी। पढ़े-लिखे मां-बाप और कठोर होते हैं । उनके सामने बहस कहां से चलती? मीनाक्षी ने जहर खा लिया। मर गई मीनाक्षी। अकेली संतान। मां पागलों जैसी हो गई। यदि इतना दुराग्रह न रखा होता, यदि मीनाक्षी इस किताब को पढ़

सकती, स्वयं उसकी मां भी पढ़ लेती, तो नियति कुछ और होती। यूं नहीं कोई जिंदगी से भागता।'

इस पुस्तक का अनुवाद करने के दौरान कभी-कभी मन में एक बात उठती रही है। क्या इसकी जरूरत है? शायद किसी की धरोहर मेरे पास है, जो मुझे लौटानी है। यह किताब जहां तक बन पड़ा मैंने सरल और सुबोध बनाने की कोशिश की। मेरी चाह बस इतनी है कि यह अधिक-से-अधिक हाथों में पहुंचे। इसकी हर पंक्ति में मुझे अपने आस-पास के न जाने कितने चेहरे झांकते नजर आए। मूक और आंसू-भरे । यदि कोई इससे कुछ भी प्रेरणा पा सके, औरत की नियति को गहराई से समझ सके, तो मैं अपनी मेहनत बेकार नहीं समझूगी। हालांकि जो इसे पढ़ेगा, वह अकेले पढ़ेगा, लेकिन वह सबकी कहानी होगी। हां, इसका भावनात्मक प्रभाव अलग-अलग होगा।

आज 1989 में यदि कोई सीमोन को पढ़े, तो कोई खास चौंकाने वाली बात नहीं भी लग सकती है। आज स्त्री के विभिन्न पक्षों पर बहुत कुछ लिखा जा रहा है, लेकिन मैं सोचती हूं कि यह पुस्तक हमारे देश में आज भी बहस का मुद्दा हो सकती है। हम भारतीय कई तहों में जीते हैं। यदि हम मन की सलवटों को समझते हैं, तो यह जरूर स्वीकारेंगे कि औरत का मानवीय रूप सहोदरा कहीं जाने के बावजूद स्वीकृत नहीं है। हमारे देश में औरत यदि पढ़ी- लिखी है और काम करती है, तो उससे समाज और परिवार की उम्मीदें अधिक होती हैं। लोग चाहते हैं कि वह सारी भूमिकाओं को बिना किसी शिकायत के निभाए। वह कमा कर भी लाए और घर में अकेले खाना भी बनाए. बूढ़े सास-ससुर की सेवा भी करे और अपने बच्चों का भरण-पोषण भी। पड़ोसन अगर फूहड़ है तो उससे फूहड़ विषयों पर ही बातें करे, वह पति के ड्राइंग रूम की शोभा भी बने और पलंग की मखमली बिछावन भी। चूंकि वह पढ़ी- लिखी है, इसलिए तेज-तर्रार समझी जाती है, सीधी तो मानी ही नहीं जा सकती। स्पष्टवादिता उसका गुनाह माना जाता है। वह घर निभाने की सोचे, घर बिगाड़ने की नहीं। सब कुछ तो उसी पर निर्भर करता है ? समाज ने इतनी स्वतंत्रता दी, परिवार उसको काम करने की इजाजत देता है, यही क्या कम रहमदिली है ! फिर शिकायत क्या? जो पढ़ी-लिखी नहीं, घर में बैठी फुर्सती बीवियां हैं, उनको भी उससे जलन होती है तथा ऑफिस में तरक्की होने पर किसी सहकर्मी को लंगड़ी मारकर, बॉस को शरीर बेचकर तरक्की पाने का इलजाम लगाया जाता है।

यह पुस्तक न मनु संहिता है और न गीता या रामायण। हिंदी में इस पुस्तक को प्रस्तुत करने का मेरा उद्देश्य सिर्फ यह है कि विभिन्न भूमिकाओं में जूझती हुई, नगरों एवं महानगरों की स्त्रियां इसे पढ़ें और अपनी प्रतिक्रिया मुझे लिखकर भेजें। यह सच है कि स्त्री के बारे में इतना प्रामाणिक विश्लेषण एक स्त्री ही दे सकती है। बहुधा कोई पाठिका जब अपने बारे में पुरुष के विचार और भावनाएं पढ़ती है, तब उसे लेखक की नीयत पर कहीं संदेह नहीं

होता। 'अन्ना कैरेनिना' पढ़ते हुए या शरत्चंद्र का 'शेष प्रश्न' पढ़ते हुए हम बिल्कुल भूल जाते हैं कि इस स्त्री-चरित्र को पुरुष गढ़ रहा है और यदि लेखक याद भी आता है, तो श्रद्धा से मस्तक नत हो जाता है, पर यह बात भी मन में आती है कि यदि 'अन्ना' का चरित्र किसी स्त्री ने लिखा होता, तो क्या वह 'अन्ना' को रेल के नीचे कटकर मरने देती? यदि 'देवदास' की 'पारो' को स्त्री ने गढ़ा होता, तो क्या वह यूं घुट-घुटकर मरती? इनमें से किसी भी महान् लेखक पर मेरा कोई आक्षेप नहीं, पर कवि होने के नाते कल्पना कभी- कभी दूसरी ओर भी मुड़ती है। इन लेखकों के चरित्रों को पढ़ते हुए हमें बहुधा अपने स्त्री होने का सच भूल जाना पड़ता है। लेखक की निर्मित दुनिया स्वयं उस लेखक को आत्मसात् कर सके, इसके लिए अपनी चेतना पर आरोपित सारी पर्तों को छीलते चलना पड़ता है, किंतु अत्यधिक आत्मसात् करने के बावजूद हमारा तादात्म्य और एकीकरण प्रामाणिक नहीं हो पाता। भेद बना रहता है। 'स्व' की सीमा का अतिक्रमण भी वही कर सकता है, जो अपने सीमित दायरे के भीतर की दुनिया को पहचाने। नहीं तो सारा पाठकीय अनुभव आरोपित, किसी और के मानस का छीना हुआ टुकड़ा लगता है।

आज जब लेखिकाएं स्त्रियों पर इतना कुछ लिख रही हैं, तब यह समझदारी भी व्यक्ति के अपने विस्तृत कैनवास के परिप्रेक्ष्य में ही सम्भव होगी। पाठक शून्य में नहीं तैरता। पाठक का परिचय उसकी जाति, संस्कृति, वर्ग एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से मिलता है। इस पुस्तक को भी कुछ विशिष्ट मध्यवर्गीय पाठक ही, जो इन अनुभवों से गुजरे हैं या अपनी अगली पीढ़ी की उलझनों के द्वंद्व को समझ रहे हैं, समझ सकते हैं। किसी अन्य वर्ग की नासमझ पर मेरा कतई आरोप नहीं। मैं बस, इतना कहना चाहती हूं कि सही लेखक निरंतर संघात के दौरान निखरता चला जाता है और उसकी अवधारणाएं यथार्थ से टकराती रहती हैं । संघर्ष की इस आग से जो तपिश पैदा होती है, वह न केवल लेखक को तपाती हैं, बल्कि पाठक की संवेदनशीलता और ग्रहण-शक्ति को भी गढ़ती है।

फ्रांस की जो स्थिति 1949 में थी; पश्चिमी समाज उन दिनों जिस आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था, वह शायद हमारा आज का भारतीय समाज है, उसका मध्यमवर्ग है, नगरों और महानगरों में बिखरी हुई स्त्रियां हैं, जो संक्रमण के दौर से गुजर रही हैं।

एक और बात मैं कहना चाहूंगी कि जितना कुछ सीमोन ने लिखना चाहा, वह एक साधारण स्त्री के संदर्भ में है। उसे अपवादों और विशिष्टों पर लागू करना बड़ी भारी गलती होगी। हमारे यहां पुराकाल की सती-सावित्री का आदर्श है। द्रौपदी का शौर्य है। स्वतंत्रता संग्राम में झांसी की रानी से लेकर इंदिरा गांधी तक हैं, पर ये अपवाद हैं। हमें बड़ी उदारता से सामान्य स्त्री और उसके परिवेश के बारे में सोचना होगा। सीमोन ने उन्हीं के लिए इस पुस्तक को लिखा है और उन्हीं से उनका संवाद है, विशिष्टों या अपवादों से नहीं।

आज हो सकता है कि सीमोन के विचारों से हम पूरी तरह सहमत न हों। हो सकता है कि हमारे पास अन्य बहुत-सी सूचनाएं ऐसी हों, जो इन विचारों की कमजोरियों को साबित करें, फिर भी बहुत-सी स्त्रियां उनके विचारों में अपना चेहरा पा सकती हैं। कुछ आधुनिकाएं यह कहकर मखौल उड़ा सकती हैं कि हम तो लड़के-लड़की के भेद में पले ही नहीं । सीमोन के इन विचारों के बारे में मैं देश तथा विदेश में अनेक महिलाओं से बातें करती रही हूं। हर औरत की अपनी कहानी होती है, अपना अनुभव होता है, पर अनुभवों का आधार सामाजिक संरचना तथा स्थिति होते हैं। परिस्थितियां व्यक्ति की नियंता होती हैं। अलगाव में जीती हुई स्त्रियों की भी एक सामूहिक आवाज़ तो होती ही है। आज से बीस साल पहले औसत मध्यवर्गीय घरों में स्वतंत्रता की बात करना मानो अपने ऊपर कलंक का टीका लगवाना था। मैं यहां पर उन स्त्रियों का जिक्र नहीं कर रही, जो भाग्य से सुविधासम्पन्न विशिष्ट वर्ग की हैं तथा जिन्हें कॉन्वेंट की शिक्षा मिली है। मैं उस औसत स्त्री की बात कर रही हूं, जो गाय की तरह किसी घर के दरवाजे पर रम्भाती है और बछड़े के बदले घास का पुतला थनों से सटाए कातर होकर दूध देती है।

हममें से बहुतों ने पश्चिमी शिक्षा पाई है, पश्चिमी पुस्तकों का गहरा अध्ययन किया है, पर सारी पढ़ाई के बाद मैंने यही अनुभव किया कि भारतीय औरत की परिस्थिति 1980 के आधुनिक पश्चिमी मूल्यों से नहीं आंकी जा सकती। कभी ठंडी सांसों के साथ मुंह से यही निकला, "काश! हम भी इस घर में बेटा होकर जन्म लेते?". लेकिन जब पारम्परिक समाज की घुटन में रहते हुए और यह सोचते. हुए कि पश्चिम की औरतें कितनी भाग्यशाली हैं, कितनी स्वतंत्र एवं सुविधासम्पन्न हैं और तब सीमोन का यह आलोचनात्मक साहित्य सामने आया, तो मैं चौंक उठी। सारे वायवीय सपने टूट गए। न पारम्परिक समाज में पीछे लौटा जा सकता था और न ही आधुनिक कहलाने वाले पश्चिमी समाज के मुखौटे के पीछे झांकता हुआ असली चेहरा स्वीकार करने योग्य था। सीमोन ने उन्हीं आदर्शों को चुनौती दी, जिनका प्रतिनिधित्व वे कर रही थीं। औरत होने की जिस नियति को उन्होंने महसूस किया उसे ही लिखा भी। उन्होंने पश्चिम के कृत्रिम मिथकों का पर्दाफाश किया। पश्चिम में भी औरत देवी है, शक्तिरूपा है, लेकिन व्यवहार में औरत की क्या हस्ती है? वह तो पैर की जूती है, जूती । क्या वह मानव औरत नहीं? शरीर के अलावा उसकी और कोई पूंजी नहीं? इन विकल्पों के बीच सही तस्वीर क्या है?

सीमोन को पढ़ते हुए औरत की एक सही और ईमानदार तस्वीर आंखों में तैरती है। यह समझ में आता है कि हम अकेले औरत होने के दर्द एवं त्रासदी को नहीं झेल रहीं। यह भी लगा कि हमारे देश की जमीन अलग है। वह कहीं- कहीं बहुत उपजाऊ है, तो कहीं-कहीं बिल्कुल बंजर। कहीं जलता हुआ रेगिस्तान है, तो कहीं फैली हुई हरियाली, जहां औरत के नाम से वंश चलता है। साथ ही यह भी लगा कि सीमोन स्वयं एक उदग्र प्रतिभा थीं और

उनकी चेतना को ताकत दी सात्र ने, जो इस सदी के महानतम दार्शनिकों में से एक हैं। क्या सार्च की सहायता बिना सीमोन इतना कुछ सोच पाती? हमारी संस्कृति का ढांचा अलग है, इसमें हमें अपनी जड़ों को समझना होगा। सीमोन औरत के जिन भ्रमों एवं व्यामोहों का जिक्र करती हैं, हो सकता है कि वे हमारे लिए आज भी जरूरी हों।

सीमोन पर हीगेल की मालिक और गुलाम की अवधारणा तथा सार्च की मानवीय सम्बंधों की अवधारणा का गहरा प्रभाव पड़ा। ऐसा लगता है कि इस पुस्तक की नींव में जिन अस्तित्ववादी अवधारणाओं की ईंटें रखी गईं, वे पूरी चमक के साथ शब्द-शब्द में गुंथी हुई हैं। सीमोन के अस्तित्ववाद का सैद्धांतिक आशय वस्तु-वर्णन में निहित है। सीमोन स्वयं कहीं यह नहीं कहती कि उनके सिद्धांत सार्च को महान् प्रतिभा से प्रभावित हैं। इसीलिए हजारों की संख्या में पाठक पुस्तक को पढ़ते हुए भटक जाते हैं। वास्तव में 'द सेकिंड सेक्स' की व्याख्या सार्च के प्रारम्भिक दर्शन और हीगेल के मालिक और गुलाम के सम्बंधों की व्याख्या के संदर्भ में ही की जानी चाहिए थी। स्त्री क्यों अन्या' है तथा मानवीय सम्बंधों में पारस्परिकता की आवश्यकता क्यों इतनी अधिक है, इन निहितार्थक अस्तित्ववादी अवधारणाओं को या तो सतही तौर पर समझा गया या फिर दार्शनिक सिद्धांत कहकर उपेक्षित कर दिया गया।

पुस्तक को लिखने की प्रारम्भिक प्रेरणा थी स्त्री के ऊपर परम्परा द्वारा उस मिथक का आरोप जिसको धर्म, समाज, साहित्य और सिद्धांत तथा रूढ़ियां सभ्यता के आदिकाल से स्त्री पर आरोपित करते आए हैं। सीमोन ने यह जरूरी समझा कि स्त्री को परिस्थिति की जैविक और ऐतिहासिक विवेचना होनी चाहिए। ऐसा न करने से पाठकों को मिथकों के निर्माण का सही सामाजिक उद्देश्य नहीं समझाया जा सकता। औरत की अधीनस्थ बने रहने की स्थिति की व्याख्या सीमोन करती हैं।

अस्तित्ववादी अवधारणाओं की अस्पष्टता का एक और कारण मुझे लगा। सन् 1953 में 'द सेकिंड सेक्स' का अंग्रेजी अनुवाद हेवार्ड पार्शले ने किया, जो स्वयं जीव-विज्ञान के अध्यापक थे एवं अस्तित्ववादी दार्शनिक अवधारणाओं से बिल्कुल अनभिज्ञ थे। अत: उनके द्वारा जगह-जगह शब्दों का गलत अनुवाद एवं अपेक्षाकृत अत्यधिक सरलीकरण हुआ है। संक्षिप्तीकरण का यह अर्थ नहीं होता कि लेखक का मूल स्वर हकलाने लगे। सीमोन की पुस्तक में जहां भी मार्क्सवाद की रहस्यमयता का जिक्र आया है, या उसे स्त्री स्वातंत्र्य के आंदोलन से पृथक वर्गीकृत करने की चेष्टा की है, वहां उनका उद्देश्य यह कदापि नहीं था कि वे मार्क्सवादी विचारों एवं शब्दों को धुंध-भरा आवरण ठहराएं या मखौल उड़ाएं। मार्क्स पर उनकी गहरी श्रद्धा थी। विचारों से वे एक सच्ची कामरेड थीं, किंतु पुस्तक लिखते हुए स्त्री की स्थिति का उन्होंने बिना किसी पूर्वग्रह के विश्लेषण किया। उन्होंने कहा :

"स्त्री कहीं झुंड बनाकर नहीं रहती। वह पूरी मानवता का आधा हिस्सा होते हुए भी पूरी एक जाति नहीं। गुलाम अपनी गुलामी से परिचित है और एक काला आदमी अपने रंग से, पर स्त्री घरों, अलग- अलग वर्गों एवं भिन्न-भिन्न जातियों में बिखरी हुई है। उसमें क्रांति की चेतना नहीं, क्योंकि अपनी स्थिति के लिए वह स्वयं जिम्मेदार है। वह पुरुष की सह अपराधिनी है। अतः समाजवाद की स्थापनामात्र से स्त्री मुक्त नहीं हो जाएगी। समाजवाद भी पुरुष की सर्वोपरिता की ही विजय बन जाएगा।"

स्त्री को, अमीर हो या गरीब, श्वेत हो या काली, अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी। यह दुनिया पुरुषों ने बनाई, पर स्त्री से पूछ कर नहीं । फ्रांस की राज्य-क्रांति हो या विश्वयुद्ध, स्त्री से पुरुष सहारा लेता है और पुनः उसे घर लौट जाने को कहता है । वह सदियों से ठगी गई है। यदि उसने कुछ स्वतंत्रता हासिल भी की है, तो उतनी ही, जितनी कि पुरुष ने अपनी सुविधा के लिए उसे देना चाहा। अत: सीमोन का मुक्ति-संदेश उस आधी दुनिया के लिए है, जो स्त्री कहलाती हैं।

जहां कहीं जरूरत पड़ी, मैंने स्वयं अपनी ओर से अनुवाद में कुछ वाक्यों को अर्थ की स्पष्टता के लिए जोड़ा। कुछ अंश जो बिल्कुल उलझे हुए थे. उनको फ्रेंच के भाषाविद् से समझा। थोड़ा-सा संक्षिप्त करना आवश्यक था, फिर भी जो अंश मुझे प्रत्येक स्त्री के लिए रुचिकर और उपयोगी लगे जैसे विवाह, प्रेम, मातृत्व और स्वतंत्र नारी आदि उन्हें मैंने विस्तृत रूप में ही रहने दिया है।

स्त्री की स्थिति अधीनस्थता की है। यह बात सीमोन बड़े स्पष्ट रूप में कहती हैं। स्त्री के अधीनस्थ बने रहने के कारणों की व्याख्या वे जीवविज्ञान, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र और जातीय इतिहास आदि सभी दृष्टिकोणों से व्यापक एवं गम्भीर रूप में करती हैं। विश्लेषण के दौरान वे उदाहरण देती हैं आदिकाल के कृषि समाज से आधुनिक युग तक, खासकर फ्रेंच स्त्री के सम्बंध में।

यह तथ्यगत गवेषणा सैद्धांतिक विश्लेषण के साथ जारी रहती है। नारीत्व का मिथक आखिर है क्या? क्यों स्त्री को धर्म, समाज, रूढ़ियां और साहित्य-शाश्वत नारीत्व के मिथक के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। सीमोन विश्व की प्रत्येक संस्कृति में पाती हैं कि या तो स्त्री को देवी के रूप में रखा गया या गुलाम की स्थिति में। अपनी इन स्थितियों को स्त्री ने सहर्ष स्वीकार किया, बल्कि बहुत-सी जगहों पर वह सह-अपराधिनी भी रही। आत्महत्या का यह भाव स्त्री में न केवल अपने लिए रहा, बल्कि वह अपनी बेटी, बहू या अन्य स्त्रियों के प्रति भी आत्मपीड़ाजनित द्वेष रखती आई । परिणामस्वरूप स्त्री की अधीनस्थता और बढ़ती गई।

पुस्तक के द्वितीय भाग में स्त्री के जीवन के वास्तविक तथ्यों का विशद वर्णन है। जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक सीमोन ने यह दिखाने की चेष्टा की है कि कैसे स्त्री अपनी विभिन्न भूमिकाओं में अन्या बना दी जाती है तथा इन भूमिकाओं की सर्वोपरिता की ओर बढ़ने की सम्भावनाएं सीमित हो जाती हैं। अंत में सीमोन स्वतंत्र स्त्री के विचारों की विवेचना करती हैं।

मुझे विश्वास है कि हिंदी की पाठिकाओं के लिए इस पुस्तक का प्रकाशन प्रेरणा और आत्मचिंतन के नए क्षितिज खोल सकेगा। जागरूक पाठकों को भी इस पुस्तक के जरिए बहुत कुछ ऐसा मिल सकेगा, जो अब तक या तो उनकी दृष्टि से ओझल रहा है या अमूर्त । मुझे अपने इस प्रयास के प्रति आप सभी की प्रतिक्रियाओं से बल मिलेगा।

डॉ. प्रभा खेतान

4, लिटिल रसेल स्ट्रीट
कलकत्ता-700071

भूमिका

एक अरसे से मैं औरत पर कुछ लिखना चाहती रही और झिझकती रही। विषय परेशान करने वाला है, खासतौर से औरतों को। यों भी यह विषय कोई नया नहीं। नारीत्व के ऊपर बहुत स्याही उंडेली जा चुकी है और शायद हमारे पास नया कहने को कुछ खास बचा भी नहीं है। सोचना यह है कि अब तक जो कुछ कहा गया, क्या वह वास्तव में समस्या की सही समझ के लिए पर्याप्त है? क्या औरत वास्तव में केवल औरत है? निश्चय ही शाश्वत नारी के सिद्धांत के पक्षधर अब भी धीरे से आपके कान में फुसफुसाकर कहेंगे, "समाजवादी रूस में भी तो औरत औरत ही है।" बहुश्रुत पंडितजन ठंडी सांस भरकर कहेंगे, "औरत भटक गई है। औरत औरत नहीं रही।" हम सोचने लगते हैं कि क्या यह सब सच है ? आधुनिक औरत यदि परम्परागत औरत नहीं, तो क्या हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि आज की दुनिया में औरत का सही स्थान और सही रूप वस्तुत: क्या है ? वस्तुतः उसका कौन-सा दर्जा होना चाहिए?

पहला प्रश्न यह उठता है कि औरत क्या है? कोई कहेगा, औरत महज एक गर्भ है या फिर औरतों के कुछ कद्रदान कहेंगे कि अपने पास गर्भाशय जैसा यंत्र रखने के बावजूद आज की किसी सीमित संदर्भ में सिमटी औरत नहीं रही। आज की औरत की वास्तविकता कोई नकार नहीं सकता। वस्तुत: मानव-जाति में औरत का पृथक अस्तित्व एक तथ्य है। औरत मानवता का आधा हिस्सा है। यह अलग बात है कि हमें समझाया जाए कि आज नारीत्व खतरे में है। औरत को औरत होना सिखाया जाता है। औरत बनी रहने के लिए उसे अनुकूल किया जाता है। तथ्यों के विश्लेषण से यह समझ में आएगा कि प्रत्येक मादा मानव-जीव अनिवार्यत: एक औरत नहीं। यदि वह औरत होना चाहती है, तो उसे और तपने की रहस्यमय वास्तविकता से परिचित होना पड़ेगा।

प्रश्न यह उठता है कि यह नारीत्व कौन-सी गुणवत्ता है? क्या नारीत्व का स्राव उसके अंडाशय से होता है ? या फिर यह एक प्लैटोनिक सारतत्त्व और दार्शनिक कल्पना का उत्पादनमात्र है? क्या वह रेशमी आंचल के फहराए जाने से ही पृथ्वी पर प्रकट हो जाती है ? बहुत-सी औरतें ऐसी हैं, जो जोर-शोर से इस औरतपन को मूर्तिमान करने में लगी रहती हैं। प्रायः औरत का वर्णन अस्पष्ट और लच्छेदार भाषा में किया जाता है। यह अवधारणा अब अपना स्थान वैचारिक जगत् में खो चुकी है। जीवविज्ञान और समाजविज्ञान उस

अस्तित्व को एक अपरिवर्तनीय स्थिर तत्त्व की तरह नहीं स्वीकारते, जो आरोपित विशेषताओं को आचार संहिता का रूप देता है। जैसे यहूदी या नीग्रो होना मानव-जाति की एक विशेषता तो हो सकती है, लेकिन वह सम्पूर्ण मनुष्य को अपने आपमें समाहित नहीं कर सकती, उसी प्रकार औरत होना मादा मानव के सम्पूर्ण अस्तित्व के लिए उत्तरदायी नहीं हो जाता। विज्ञान किसी भी विशेषता को परिस्थितिजन्य एक प्रतिक्रिया के रूप में स्वीकार करता है । यदि आज नारीत्व का अस्तित्व नहीं है तो हमें यह स्वीकार करना चाहिए । ऐसा कभी था भी नहीं, किंतु तब क्या औरत शब्द का कोई विशिष्ट अर्थ नहीं? यह दृढ़ रूप से स्वीकार किया गया है कि युक्तिवाद और नामवाद के दर्शन को स्वीकार करने वालों के लिए औरत महज एक मानव-जीव है, जिसे औरत शब्द से रेखांकित किया गया है।

अनेक अमरीकी स्त्रियां आज इस बात का दावा करती हैं कि अब औरत के सीमित संदर्भ में समझने वाली औरत को उसकी सहेलियां मनोविश्लेषक के पास जाने की सलाह देती हैं । डोरोथी पारकर लिखती हैं, "मैं उन किताबों को स्वीकार नहीं कर सकती, जो औरत को औरत की तरह पेश करती हैं। मेरा विचार यह है कि हम सब चाहे स्त्री हो या पुरुष, मानव-व्यक्ति रूप में ही स्वीकारे जाएं, किंतु नामवाद अपने आपमें एक अपर्याप्त सिद्धांत है। नारी-विरोधी लोगों को यह सिद्ध करने में अधिक असुविधा नहीं होती है कि स्त्री पुरुष नहीं हो सकती।"

यह सही है कि औरत 'पुरुष की भांति एक मानव-व्यक्ति है, किंतु यह कथन अमूर्त है। सत्य तो यह है कि प्रत्येक ठोस मानव हमेशा एकल और अभिन्न व्यक्ति होता है। शाश्वत नारीत्व जैसे गुण या फिर नीग्रो की काली आत्मा या यहूदी जैसी चारित्रिक विशेषताओं वाले विचारों को अस्वीकार करने का अर्थ यहूदी, नीग्रो या औरत के अस्तित्व को अस्वीकार करना नहीं है। कुछ ही वर्ष पहले एक लेखिका ने अपनी तस्वीर अन्य लेखिकाओं के साथ खिंचवाने से यह कहकर इंकार कर दिया कि वे अपनी गणना पुरुषों में करवाना चाहती हैं, किंतु इस विशिष्टता को हासिल करने के लिए उन्होंने अपने पति का सहारा लिया। अपने आपको पुरुष के रूप में स्वीकारना चाहने वाली और पौरुषीय उपलब्धियों तथा सम्मान का दावा करने वाली स्त्रियां दरअसल पुरुष जैसा होना चाहती हैं। वे पुरुष की नकल करती हैं।

मैं एक ऐसी युवा स्त्री को जानती हूं जो उस दिन रेलवे स्टेशन पर खड़ी होकर एक हंगामे भरी सभा का संचालन कर रही थी। वह हवा में अपने हाथ भांज रही थी। शारीरिक रूप से दुर्बल होने के बावजूद वह हाथापाई तक के लिए तैयार थी। वह वास्तव में अपनी नारी-सुलभ कमजोरी को नकार कर पुरुष जैसा होना चाह रही थी। यह चाह वास्तव में पुरुष के प्रति सम्मान-भाव के कारण ही स्त्री में पैदा होती है। अनेक अमरीकी स्त्रियों में मिलने वाला

चुनौती का रवैया इस बात का लक्षण है कि अमरीकी स्त्रियां अब भी अपनी स्त्री-सुलभ कमजोरियों से ग्रस्त हैं। आप जरा दो कदम चलकर देखें तो यही पाएंगे कि पूरी मनुष्य-जाति दो वर्गों में विभाजित है, जिनके कपड़े, चेहरे, शरीर, हंसना-बोलना, रुचि और कार्य स्पष्टतः भिन्न होते हैं। शायद ये सारी भिन्नताएं वास्तविक हैं। शायद समय के साथ ये खत्म भी हो जाएं, किंतु आज की दुनिया में औरत और मर्द का विभेदीकरण एक वस्तुतथ्य है।

यदि प्रजनन की प्रक्रिया से औरत को परिभाषित नहीं किया जा सकता और यदि हम शाश्वत नारी की अवधारणा के माध्यम से उसको व्याख्यायित नहीं करना चाहते, तब हमें इस प्रश्न का सामना तो करना ही पड़ेगा कि औरत क्या है? इस प्रश्न का एक प्रारम्भिक उत्तर तो हमारे सामने ही है। अपने आपमें यह प्रश्न एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। अपनी ओर से परिभाषा देने के लिए मुझे सबसे पहले यह कहना होगा कि एक औरत हूं। यह वह आधार वाक्य है, जिसके ऊपर सारे विचार-विमर्श निर्भर करते हैं । एक पुरुष अपने आपको अपने से कम के संदर्भ में परिभाषित नहीं करता। वह अपने आपको शुरू से ही सम्पूर्ण व्यक्ति-मानव स्वीकार करके चलता है। जब हम मानव शब्द का उच्चारण करते हैं, तो उसमें पुरुष और स्त्री, दोनों समाहित होते हैं। आदमी होना स्वयं एक विधेयक प्रक्रिया है। यह पारस्परिकता लिए हुए है, जबकि औरत होना केवल एक निषेध का प्रतिनिधित्व करता है। बिना किसी पारस्परिकता के यह एक सीमित संवर्ग द्वारा परिभाषित होता है।

सारे विचार-विमर्श के बीच यह सुनकर तो और भी ऊब होती है कि तुम ऐसा इसलिए सोचती हो कि तुम एक औरत हो और मैं अपने बचाव में केवल यही कह पाती हूं कि चूंकि यही सच है, इसलिए मैं यह सोचती हूं। यहां मैं अपने वैयक्तिक आत्म को तर्क से अलग बचा लेती हूं। यह असम्भव होगा कि मैं यह उत्तर दूं कि तुम सिर्फ पुरुष होने के कारण ऐसा सोचते हो। पुरुष होना कोई विलक्षणता नहीं। पुरुष सम्पूर्ण मानवीय प्रकार है, और उसी के संदर्भ में कुछ अन्य विलक्षणताओं को लिए हुए एक औरत अपने गर्भाशय के साथ है। एक औरत को उसकी विलक्षणताएं उसकी स्थिति में कैद कर देती हैं और उसकी अपनी प्रकृति की सीमा को अतिवादी ढंग से सीमाबद्ध कर देती हैं। प्रायः कहा जाता है कि औरत अपनी ग्रंथियों के सहयोग से सोचती है। पुरुष इस बात को बिल्कुल भूल जाता है कि उसकी शरीर-रचना में भी ग्रंथियां हैं। वह अपने शरीर को जगत् से सीधे सम्बंधित करता है और यह विश्वास करता है कि वह जगत् को वस्तुपरक रूप से समझता है, जबकि वह औरत के शरीर को अजीबोगरीब सीमाबद्धताओं के कारण बोझिल पाता है।

अरस्तु ने स्त्री की परिभाषा यह कहकर दी कि औरत कुछ गुणवत्ताओं की कमियों के कारण ही औरत बनती है।हमें स्त्री के स्वभाव से यह समझना चाहिए कि प्राकृतिक रूप में उसमें कुछ कमियां हैं। वह एक प्रासंगिक जीव है। वह आदम की एक अतिरिक्त हड्डी से निर्मित है। अत: मानवता का स्वरूप पुरुष है और पुरुष औरत को औरत के लिए

परिभाषित नहीं करता, बल्कि पुरुष से सम्बंधित ही परिभाषित करता है। वह औरत को स्वायत्त व्यक्ति नहीं मानता। यहां तक कहा जाता है कि औरत अपने बारे में नहीं सोच सकती और वही बन सकती है, जैसा पुरुष उसको आदेश देगा। इसका अर्थ यह है कि वह अनिवार्यतः पुरुष के लिए भोग की एक वस्तु है और इसके अलावा कुछ भी नहीं। वह पुरुष के संदर्भ में ही परिभाषित और विभेदित की जाती है। वह आनुषंगिक है, अनिवार्य के बदले नैमित्तिक हैं, गौण है। पुरुष आत्म है, विषयी है। वह पूर्ण है, जबकि औरत बस 'अन्या' है।

' अन्या' की यह कोटि चेतना की तरह ही एक आदिम कोटि है। प्राचीन समाजों के अनेक मिथकों में हम द्वैध अभिव्यक्ति पाते हैं- आत्म और अन्य। यह वैध मौलिक रूप से सेक्स के विभेद पर आधारित नहीं था और न ही यह अनुभवातीत तथ्यों पर निर्भर था। यह प्राचीन भारतीय, चीनी और रोमन दार्शनिक साहित्यों में पाया जाता है। मानव-विचार की एक मौलिक कोटि अन्यता है, जैसे सूरज-चांद, रात-दिन, भला-बुरा, दाहिने-बाएं और ईश्वर । इनमें पुरुष की प्रकृति एक-दूसरे के ऊपर या दूसरे के विरोध में ज्यादा प्रमुख कभी नहीं थी। लवीसत्रास अपने महत्त्वपूर्ण अध्ययन में प्राचीन समाजों के नाना प्रकारों का वर्णन करते हुए यह निष्कर्ष निकालते हैं कि प्राकृतिक अवस्था से संस्कृति की अवस्था तक जो राह जाती है, वह आदमी की उस क्षमता से अंकित है, जिसमें जैविक सम्बंध विपर्यय, द्वैध और प्रत्यावर्तित विकल्प तथा प्रत्यावर्तन की शृंखलाओं से निर्मित हैं। यदि मानव-समाज केवल दोस्ती और एकत्व पर आधारित रहता, तो ये घटनाएं कभी बोधगम्य नहीं होती लेकिन बात तब दूसरी हो जाती है, जब हम पाते हैं कि चेतना में अन्य चेतना के लिए एक मौलिक विरोध पर आधारित आक्रामकता रहती है। विषयी अपने आपको विषय के विरोध में ही स्थापित कर सकता है। यहां विषयी अनिवार्य है और वे सब विषय-वस्तुएं, जिनका वह विरोध करता है, गौण और अनावश्यक हैं।

अन्य की यह चेतना दूसरी अन्य चेतना से पारस्परिकता का दावा करती है। सत्य तो यह है कि कि युद्ध, उत्सव, व्यापार, समझौते और चुनौतियां जाति, राष्ट्र और वर्ग को सम्पूर्ण अर्थ में अन्य की अवधारणा से विमुक्त करना चाहते हैं । येन-केन प्रकारेण सापेक्षित रूप से व्यक्ति और उसका समूह अपने सम्बंधों की पारस्परिकता को महसूस करने और मानने के लिए बाध्य किया जाता है। तब यह कैसे हो गया कि स्त्री-पुरुष के सम्बंध में पारस्परिकता का कोई स्थान ही नहीं रहा । पुरुष अंतिम रूप से अनिवार्य साबित हुआ और स्त्री को अपने से सम्बंधित एक शुद्ध अन्यता में परिभाषित करता रहा। आखिर किसलिए औरत पुरुष की प्रभुता का विरोध भी नहीं करती? कोई भी स्वतंत्र चेतना अपनी इच्छा से सहर्ष वस्तु तो बनना स्वीकार नहीं करेगी। वह अनावश्यक तो नहीं हो जाना चाहेगी? अपनी स्वयं की परिभाषा तो एक पूर्ण एकल जीव ही अपने संदर्भ में दूसरे को दे सकता है और यह

दूसरा अन्य क्या इतना विनम्र और आज्ञाकारी हो गया कि अपने प्रति इस बाहरी दृष्टिकोण को स्वीकार कर ले? प्रश्न उठता है कि औरत में आज्ञाकारिता की यह चाह कहां से आई? अपने अस्तित्व की गरिमा का यह स्खलन उसने क्यों स्वीकार किया? बहुधा यह देखने में आता है कि कुछ संवर्ग और कोटियां अन्य दूसरे संवर्गों और कोटियों को कुछ समय के लिए अधीनस्थ कर लेती हैं। उन्हें यह सुविधा संख्या की बहुलता के कारण भी मिल जाती है। जैसे बहुसंख्यक अल्पसंख्यकों के ऊपर अपना अधिकार स्थापित करें या फिर उन्हें उत्पीड़ित करें, किंतु औरत तो अल्पसंख्यक नहीं? उसकी स्थिति एक अमरीकन नीग्रो की या यहूदी की तो नहीं? दुनिया में जितने पुरुष हैं उतनी ही औरतें भी हैं और उसके बाद भी यहूदी या नीग्रो आदि की गुलामी तो एक ऐतिहासिक घटना है।

मौलिक रूप से सभी समूह स्वतंत्र थे। यह तो इतिहास की एक घटना है कि शक्तिशाली समूह ने कमजोर समूह को अधीनस्थ कर लिया। ऐसे समूह का अपना एक सामान्य अतीत, एक परम्परा और कभी-कभी संस्कृति तथा धर्म रहता है। अत: औरत और सर्वहारा के बीच दो समानांतर रेखाएं खींची जा सकती हैं। यह विभाजन सही हो सकता था, लेकिन न औरत ने, न सर्वहारा ने मानवता से अलग अपनी सामूहिक इकाई समझी और न कभी अपने आपको अल्पसंख्यक के रूप में स्वयं बनाया। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सर्वहारा हमेशा से नहीं था, जबकि औरत हमेशा से रही है । औरत अपनी शरीर-संरचना और स्थितियों के कारण औरत है। इतिहास में हमेशा से औरत पुरुष के अधीनस्थ रही हैं। औरत के मामले में अन्यता का सवाल इतना निरपेक्ष और अपने आपमें पूर्ण इसलिए प्रतीत होता है कि यह ऐतिहासिक तथ्यों की न तो कोई आकस्मिक घटना है और न किसी खास सामाजिक बदलाव का परिणाम। यदि औरत की स्थिति प्राकृतिक मान ली जाए तो यह बदलाव की सम्भावना से परे हो जाती है। औरत अपने आपको एक ऐसी अनावश्यक वस्तु मानती है, जो कभी अनिवार्य नहीं हो सकती। इसीलिए औरत स्वयं इस परिवर्तन को लाने में असमर्थ रही है। सर्वहारा अपने वर्ग को 'हमलोग' कहकर सम्बोधित करता है। नीग्रो भी करते हैं। अपने आपको इस प्रकार 'हम' के रूप में सम्बोधित करते ही ये लोग विषयिता हो जाते हैं और इनके सामने इनके लिए गोरी चमड़ी वाले बुर्जुवाओं का रूपांतर अन्यता की स्थिति में हो जाता है, किंतु औरत अपने आपको हमलोग कहकर सम्बोधित नहीं करती । हां, यह अलग बात है कि कुछ नारीवादी स्त्रियां मंचीय प्रदर्शन के लिए अपने आपको स्त्री-वर्ग से जोड़ती हैं। औरत कभी प्रामाणिक रूप से अपने प्रति वैयक्तिक दृष्टिकोण नहीं स्वीकारती । सर्वहारा ने रूस में क्रांति हासिल की। अफ्रीका की काली जाति आज भी अपनी स्वतंत्रता के लिए युद्ध कर रही है, किंतु औरत का विद्रोह आज भी महज एक प्रतीकात्मक आंदोलन और उपद्रव बनकर ही रह गया। इन तमाम हलचलों और आलोड़नों से कुछ हासिल नहीं हुआ। स्त्रियों को तो वही मिला, जो पुरुष ने इच्छा से देना चाहा। इस स्थिति में भी पुरुष दाता के रूप में और औरत ग्रहीता के रूप में हमारे सामने आई। इसका

प्रमुख कारण औरतों के पास अपने आपको एक इकाई के रूप में संगठित करने के ठोस साधनों का अभाव है। उनका न कोई अतीत है और न इतिहास, न अपना कोई धर्म है और न ही सर्वहारा की तरह ठोस क्रिया-कलापों का एक संगठित जगत्। स्त्रियों के बीच सामूहिकता की भावना का अभाव है। ऐसी कोई जगह नहीं, जहां वे झुंड बनाकर रहती हों यानी एक बड़े दल में अवस्थित हों, जैसे हम अमरीकन नीग्रो को उनके 'घेटों' में पाते हैं या फिर सर्वहारा एकजुट होकर फैक्टरियों में काम करता है तथा उसी स्थान पर उसकी चेतना विस्फोटक रूप लेती है। समूह के बदले औरत अकेली और पुरुषों के बीच बिखरी हुई है। वह पुरुष के घर में, उसकी गृहस्थी में काम करती है। वह पुरुष की दी हुई आर्थिक सुविधाओं को भोगती हुई उसी के सामाजिक स्तर से अपना तादात्म्य स्थापित करती है। पुरुष उसके आसपास कभी पिता, कभी भाई तो कभी पुत्र के रूप में रहता है। बुर्जुवा वर्ग की औरत की समस्वरता अपने ही वर्ग के पुरुषों के साथ है। वह सर्वहारा स्त्रियों के साथ एक प्राण नहीं हो सकती। गोरी चमड़ी की औरतें कभी काली नीग्रो औरतों के साथ बहनापा स्थापित नहीं करतीं। सर्वहारा-वर्ग सत्ताधारी-वर्ग के पूरे खात्मे का निर्णय ले सकता है या अत्यंत पीड़ित नीग्रो अपनी दमित अवस्था में पूरी मानव-जाति को काले रंग में रंग देने के साधन की कल्पना कर सकता है, लेकिन औरत पुरुष को खत्म कर देने की कल्पना नहीं कर सकती। अतः अपने अत्याचारी और दमनकारी के साथ औरत के रिश्ते की तुलना किन्हीं अन्य सम्बंधों के साथ नहीं की जा सकती। स्त्री-पुरुष के सेक्स का विभेदीकरण वास्तव में एक जैविक तथ्य है, इतिहास को कोई घटना नहीं। मानव-दम्पति एक मौलिक इकाई है। अत: स्त्री-पुरुष में भेद की रेखा खींचकर समाज में दरार पैदा नहीं की जा सकती और यहीं पर हम औरत की मौलिक विशेषता पाते हैं । सिद्ध होता है कि वह अन्या है। औरत और पुरुष अनिवार्य घटकों के रूप में एक-दूसरे के लिए अनिवार्य हैं।

प्रश्न उठता है कि यदि यह सम्बंध इतना पारस्परिक है, तो स्त्री की स्वतंत्र इयत्ता में इस स्थिति से सुविधा मिलनी चाहिए। सत्य तो यह है कि पारस्परिकता का सम्बंध आवश्यक रूप में मालिक और गुलाम के बीच भी होता है और जब यह जरूरत आर्थिक हो, तब इस गुलामी से गुलाम की मुक्ति नहीं। मालिक और गुलाम के सम्बंध में मालिक के पास यह ताकत है कि वह अपने कार्य के माध्यम से अपनी जरूरत पूरी करने की क्षमता रखे, जबकि गुलाम मालिक की परिस्थिति पर निर्भर करता है, उसकी खुशी और आशा पर । मालिक के लिए अपने महत्त्व के प्रति वह काफी सचेत होता है। यदि दोनों की जरूरतें बराबर की भी हों, दोनों की आकांक्षाएं और चाहतें एक जैसी हों, तब भी यह उत्पीड़न मालिक के पक्ष में ही अधिक रहेगा। अब हम देखते हैं कि औरत हमेशा पुरुष पर निर्भर रही है। गुलाम होने के बावजूद उसे पुरुष के साथ समग्र रूप से जगत् का साझा नहीं मिला। आज की बदलती स्थिति में भी कहीं भी औरत को पुरुष के बराबर महत्त्व नहीं मिल पा रहा है। यदि कानून औरत को बराबरी का आधार दे भी दे तो सामाजिकता, नैतिकता

और लोक- व्यवहार उसके आड़े आ जाते हैं। दूसरी बातों के समान रहने पर भी आर्थिक क्षेत्र में औरत और मर्द बिल्कुल अलग-अलग जाति के रूप में प्रस्तुत होते हैं। पुरुष को अच्छी नौकरी, बेहतर तनख्वाह और सफलता की ज्यादा सुविधाएं मिलती हैं; उद्योग, व्यवस्था और राजनीति में पुरुषों को ज्यादा ओहदे मिलते हैं और महत्त्वपूर्ण पदों पर उनका एकाधिकार भी रहता है। इन सबके अलावा हम देखते हैं कि पुरुष को शिक्षा के क्षेत्र में भी एक पारम्परिक सम्मान मिला हुआ है, जो अतीत को ही प्रतिस्थापित करता है। अतीत में प्रत्येक इतिहास का निर्माता पुरुष ही रहा है। वर्तमान समय में, जब औरत जागतिक मामलों में रुचि लेना शुरू कर रही है, तब भी वह वही जगत् है, जो पुरुष का है। पुरुष के मन में इस जगत् के प्रति कोई संदेह नहीं। उसकी स्थिति असुरक्षित नहीं। यह औरत की ही स्थिति है, जो अपना विश्लेषण मांगती है। औरत यदि अन्या होना अस्वीकार करे, यदि वह समझौते से मुकरे तो इसका परिणाम होगा पुरुष-जाति से जुड़ने के फलस्वरूप परम्परागत रूप से प्राप्त तमाम सुविधाओं का परित्याग । पुरुष सर्वोच्च सत्ता की हैसियत से औरत की रक्षा करता है और उसे भौतिक सुविधाएं प्रदान करता है। वह नैतिकता के औचित्य का प्रतिपादन करता है। अतः औरत स्वातंत्र्य से जनित आर्थिक और तत्व मीमांसीय खतरों को टाल सकती है। ये ऐसे खतरे हैं जिनका निदान एक स्वतंत्र व्यक्ति को बिना किसी सहायता के स्वयं ढूंढना पड़ता है। अतः जिन नैतिक चेष्टाओं द्वारा प्रत्येक व्यक्ति वैयक्तिकता स्वीकार करता है, उनके कारण होने वाली संक्रांति में यह चाह भी हो सकती है कि स्वाधीनता की चेष्टा ही छूट जाए और औरत वस्तु रूप में परिणत हो जाए, लेकिन वस्तु रूप में परिणत होने की यह निष्क्रिय चाह बड़ी ही चिंतनीय हो जाती है। जो इस राह पर चलता है वह एक खोया हुआ और टूटा हुआ निष्क्रिय इंसान है, जो दूसरे के संकल्प से संचालित होता है और अपनी अतिक्रमण की क्षमता को नकारते हुए अपने आपको प्रत्येक मानवीय मूल्य से वंचित करता है। इस ढालू रास्ते पर चलना आसान है क्योंकि इस पर चलते हुए व्यक्ति को प्रामाणिकता हासिल करने की चेष्टा नहीं करनी पड़ती है। जब पुरुष ने औरत को अन्यता प्रदान की तो औरत भी सह-अपराधी हो गई । औरत आत्म नहीं होती, क्योंकि उसके पास साधन नहीं है और वह यह महसूस करती हैं कि उसके और पुरुष के बीच पारस्परिकता के अलावा अन्य कोई अनिवार्य बंधन नहीं है। बहुधा तो औरतें खुद ही अपनी इस नगण्यता में संतुष्ट रहती हैं।

एक बार फिर यह प्रश्न उठता है कि आखिर यह कैसे शुरू हुआ? यह समझना तो आसान है। दो सेक्स के बीच द्वंद्व का कारण द्वैत की स्थिति थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि जो विजेता है, वह पूर्णता की स्थिति पाएगा, लेकिन ऐसा क्या था जिसके कारण पुरुष ही प्रारम्भ से विजेता बना। यह भी तो सम्भव था कि औरत की जीत होती या फिर इस संघर्ष का इस प्रकार निदान नहीं होता। आखिर क्यों यह दुनिया अब तक पुरुष की ही रही? क्या

यह बदलाव अच्छा है ? औरत के हित में है ? क्या इसके कारण औरत और मर्द में जागतिक विषयों में बराबरी का साझा होना सम्भव हो सकेगा?

ये प्रश्न नए नहीं हैं और बहुतों के तो उत्तर युगों से दिए जा रहे हैं, किंतु चूंकि औरत 'अन्या' है, इसलिए पुरुष के द्वारा दिए गए तमाम उत्तरों और तर्कों पर संदेह होना स्वाभाविक है। ये सारे उत्तर पुरुष अपने स्वार्थों के लिए देता है। बहुत पहले ही एक नारीवादी ने कहा था, "अब तक औरत के बारे में पुरुष ने जो कुछ भी लिखा, उस पूरे पर शक किया जाना चाहिए, क्योंकि लिखने वाला न्यायाधीश और अपराधी, दोनों ही है।" हर जगह और हर समय में पुरुष ने अपनी संतुष्टि का यह कहकर प्रदर्शन किया कि वह जगत् का सर्जक है। अपनी सुबह की प्रार्थना में यहूदी कहते हैं, "प्रभु, तुम्हारी कृपा है कि तुमने मुझे अपनी इच्छा से गढ़ा है।" प्लेटो ने ईश्वर की सबसे बड़ी कृपा यह मानी थी कि उसने उसका स्वतंत्र निर्माण किया कि वह गुलाम नहीं था और दूसरी कृपा यह मानी कि वह पुरुष बना, औरत नहीं, किंतु पुरुष अपनी इन सुविधाओं का पूरा और अबाध भोग तब. तक नहीं कर सकता, जब तक कि अपनी श्रेष्ठता को वह अधिकार के रूप में न रखे। पुरुष होने का यह अर्थ था कि वह अपने वर्ग की सुविधा के लिए कानून बनाए, अपने वर्गहित का ध्यान रखे और साथ ही वह ऐसा जूरी बने, जो इन कानूनों को सिद्धांत में परिणत कर दे।"

विधायकों, पुरोहितों, दार्शनिकों, लेखकों और वैज्ञानिकों ने अब तक यह दिखाने की चेष्टा की कि औरत की अधीनस्थ स्थिति स्वर्ग में ही बनाई गई है और पृथ्वी पर उसको सुविधाएं मिलती हैं। जिस धर्म का अन्वेषण पुरुष ने किया, वह उसकी आधिपत्य की इच्छा का अनुचिंतन है। आदिकाल से व्यंग्यकार तथा नीतिवादी औरत की कमजोरियों को बताने में आनंद लेते रहे। साहित्य में औरत के विरुद्ध जो बर्बर दोषारोपण हुआ है, उससे हम सब परिचित हैं। यह विद्वेष बिल्कुल निराधार नहीं, लेकिन अधिकांशतः अकारण है। सच तो यह है कि औरत से बैर कहीं पुरुष की आत्मसंगति को इच्छा को जाहिर करता है। जैसा कि एक विद्वान् का कहना है कि पुरुष को माफ करने की अपेक्षा औरत को दोष देना ज्यादा आसान है। औरत को रोमन कानून में बेवकूफ और असंतुलित कहा गया है। संत अगस्ताइन कहते हैं कि औरत वह जीव है जो न स्थिर है और न कृतसंकल्प। यह तो 18वीं सदी में जॉन स्टुअर्ट मिल और दिदेरो जैसे गणतांत्रिक पुरुषों ने औरत जैसी गौणता प्राप्त वस्तु को वस्तुस्थिति के संदर्भ में देखना शुरू किया। दरअसल वे यह दिखाना चाहते थे कि औरत भी पुरुष की तरह ही मानव-प्राणी हैं। औरत के पक्ष में बड़े जोश से जॉन स्टुअर्ट मिल ने असाधारण निष्पक्षता का परिचय दिया। 19वीं सदी में इन नारीवादी झगड़ों ने अंध-पक्ष-समर्थन का रूप ले लिया। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप औरत को उत्पादक श्रम के क्षेत्र में प्रवेश मिला और यहीं से औरत की स्वाधीनता के दावे को आर्थिक आधार मिला, साथ ही विरोधी खेमे और अधिक आक्रामक हो गए। अचल सम्पत्ति का प्रभाव कुछ

हद तक घटने पर भी बुर्जुवा पारिवारिक एकता में निजीकृत सम्पत्ति को प्रश्रय देने वाली पुरानी नैतिकता से चिपका रहा। औरत की स्वतंत्र सत्ता और स्वाधीनता पुरुषों की आंखों की किरकिरी बन गई। उसको वापस घर के दायरे में लौटने के लिए कहा गया। यहां तक कि मजदूर-वर्ग के पुरुषों ने भी औरत की स्वाधीनता पर बंधन लगाने शुरू किए, क्योंकि वे औरत को अपना एक खतरनाक प्रतियोगी समझने लगे। प्रतियोगिता का एक कारण यह भी था कि औरत पुरुषों की अपेक्षा कम तनख्वाह में काम करने की अभ्यस्त थी। सारे नारी सुधारवादी और समतवादी आदर्श अंत में अतिवादी भेदभाव में परिणत होने लगे। औरत को हीनता की स्थिति में डाल दिया गया और उसको इस स्थिति में डालने के तरीकों को न्यायोचित ठहराया गया। शाश्वत नारीत्व नीग्रो की काली आत्मा और यहूदी स्वभाव तदनुरूप होने लगे। यह ठीक है कि यहूदियों की समस्या भिन्न थी, फिर भी हम नीग्रो और एक औरत की स्थिति में गहन समानता पाते हैं। दोनों ही जातियां आज पितृसत्ता से मुक्त हो रही हैं और इनमें भूतपूर्व स्वामी इन्हें इनकी पुरानी जगह ही रखना चाहते हैं। उन्हीं जगहों में, जिनका चुनाव मालिक-वर्ग ने किया था। दोनों ही क्षेत्रों में मालिक यथास्थिति का प्रशंसक है। वह एक अच्छे नीग्रो की अपेक्षा नादान, भले, खुशमिजाज और समर्पित नीग्रो को पसंद करता है। दूसरी ओर उसके लिए एक अच्छी नारी का सद्गुण यह है कि वह चपल, चंचल, मासूम, गैर-जिम्मेदार, किंतु साथ ही समर्पिता भी बनी रहे। इन दोनों ही जगहों पर सत्ता-वर्ग अपने तर्क का आधार उन स्थितियों से बनाते हैं, जिनका निर्माण स्वयं उन्होंने ही किया है। बर्नार्ड शॉ लिखते हैं, "गोरी चमड़ी वाले अमरीकन काले नीग्रो को जूता पालिश करने वाले लड़के के दर्जे में उतार लेते हैं और इसके बाद वे यह निर्णय देते हैं कि काला आदमी सिवाय जूता पालिश के और कुछ नहीं कर सकता।" यह दुश्चक्र लगातार जारी रखा जाता है । जब एक व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह हीनता की स्थिति में रखा जाता है तब वस्तुत: वह हीनता के गड्ढे में ढकेला जाता है। इस प्रक्रिया में निहित गत्यात्मकता समझी जानी चाहिए। वह जो है, उससे कुछ और अधिक होने की पूरी सम्भावना है। यदि यह मान भी लिया जाए कि आज भी औरत हर हाल में पुरुष से हीन है और उसमें विकास की सम्भावनाएं बहुत कम हैं, तब भी प्रश्न तो है कि क्या औरत को यथास्थिति में ही रहने दिया जाए? बहुत से पुरुष यह आशा करते हैं कि यह स्थिति ऐसी ही बनी रहेगी। पुरातनपंथी बुर्जुवा अब भी सोचता है कि औरत की स्वतंत्रता पुरुषों के स्वार्थों और नैतिक मूल्यों के लिए खतरनाक साबित होगी। कुछ पुरुष औरत की प्रतियोगिता से घबराते हैं। कुछ यह कहते हैं कि औरत के नौकरी करने से वे अपने नौकरी के आधार से वंचित होते हैं। ये पुरुष औरत के अधिकारों पर तो प्रश्न उठाते हैं, किंतु अपने अधिकारों के बारे में बिल्कुल आश्वस्त रहते हैं। औरत के दमन में दमनकर्ता का और भी बड़ा स्वार्थ छिपा हुआ है। दमन की इस प्रक्रिया में एक छिछला पुरुष भी औरत की तुलना में अपने आपको श्रेष्ठ समझने का हक पा जाता है। उसके अहं को तुष्टि मिलती है।

पुरुष के दृष्टिकोण के बचकानेपन को समझने के लिए पूरी स्थिति को समझना जरूरी है। पुरुष औरत की अन्यता की स्थिति से कई सूक्ष्म फायदे भी उठाता है। इस तरह लगता है कि औरत के प्रति जो पुरुष जितना आक्रामक और घृणापूर्ण होता है, वह उतना ही अपनी हीनग्रंथि का शिकार है। जो पुरुष औरत का अधिक अपमान करता है, वह मानसिक रूप से स्वयं अपमानित होने की आशंका से ग्रस्त रहता है। संस्कारवश पुरुष औरत से मिली हुई सुविधाओं को छोड़ना नहीं चाहता, इस आशंका से वह ग्रस्त रहता है। वह सोचता है कि अधिकारों को छोड़ते ही उसकी औरत भी छूट जाएगी। अपनी कल्पना में वह भविष्य की औरत को सम्मान देने में असमर्थ रहता है। आज गणतंत्र के युग में अधिकतर पुरुष खुले रूप से न तो औरतों का अपमान करते हैं और न ही उन्हें हीन रूप से अन्या के रूप में अवधारित करते हैं। उनकी नजर में औरत का अपना अस्तित्व अपने लिए नहीं होता। वह सिर्फ पुरुष के जगत् में विभिन्न भूमिकाओं को निभाती है। उसके अस्तित्व को पुरुष ही सार्थकता प्रदान करता है।

परिवार के केंद्र में जवान पुरुष औरत को प्रेम करता हुआ, उसे एक मां और पत्नी के रूप में सम्मान देता है। वैवाहिक जीवन की ठोस घटनाओं में वह उसके सामने एक स्वतंत्र व्यक्ति की तरह रहता है। अत: वह यह महसूस कर सकता है कि औरत को पुरुष से भिन्न होते हुए भी परिवार में बराबरी का ही हक मिलता है। वह हीनता के बिंदुओं का भी निरीक्षण करता है। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि वह अब भी सोचता है कि औरत किसी भी धंधे के लायक नहीं है। वह एक अमूर्त, समानता के सिद्धांत को तो मानता है, किंतु उसके साथ औरत का सामना होते ही परिस्थिति बिल्कुल बदल जाती है। वह तत्काल कहने लगता है कि औरत को समान अधिकार नहीं मिलना चाहिए।

अधिकतर पुरुष स्त्री की समानता के इस दावे को व्यर्थ समझते हैं। कई सहृदय पुरुष भी औरत की ठोस वस्तुस्थिति को शायद ही समझ पाते हैं। तत्त्वतः पुरुष द्वारा औरत पर आरोपित हिंसा और प्रशंसा, दोनों में पुरुष-जाति का स्वार्थ ही छिपा रहता है। इसके विपरीत हमें उन स्त्रियों की आत्मशुद्धता को भी शक की नजरों से देखना चाहिए, जो अपने ही दिए गए तर्कों के जाल में उलझ कर रह जाती हैं तथा उनसे कोई वास्तविक मूल्य उपलब्ध नहीं कर पातीं। यदि औरत के प्रश्न छिछले हैं, तो वह इसलिए कि पुरुष के अहंकार ने उन्हें विवाद का रूप दे दिया है। आपस में झगड़ते रहने की स्थिति में न्यायोचित तर्क कहां से आएंगे? हम अथक रूप से इस बात को स्थापित करने में लगे रहे हैं कि औरत श्रेष्ठ है या फिर हीन है या फिर पुरुष के बराबर है। कुछ का कहना है कि विधाता ने जब औरत का निर्माण किया तभी वे एक पूर्ण मानव का निर्माण करने में सफल हुए। प्रत्येक तर्क स्वयं में पक्ष और विपक्ष की सम्भावना से पूर्ण रहता है। बहुधा दोनों पक्ष भ्रमोत्पादक होते हैं। सही समझ के लिए हमें इस दलदल से निकलना होगा और श्रेष्ठता, हीनता या

समानता जैसे अस्पष्ट विचारों को अपने तर्कों को विवेकपूर्ण कसौटी पर कसना होगा। प्रश्न को सही ढंग से सही जगह पर उठाने की समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण है। अदालत में पुरुष तो खुद ही निर्णायक है और स्वयं ही अपराधी भी, किंतु समस्या औरत की है। तब हम किससे बात करें? क्या किसी देवदूत से जो न स्त्री है न पुरुष? लेकिन उसे पाएंगे कहां? और फिर समस्या के मौलिक तथ्यों के बारे में बिल्कुल अनजान देवदूत क्या बोलेंगे? तो क्या किसी उभयलिंगी को खोज कर लाया जाए? यहां पर स्थिति और विचित्र है। यह उभयलिंगी न पूरा पुरुष है और न पूरी औरत। मुझे ऐसा लगता है कि अंततोगत्वा कुछ औरतें ही औरत की स्थिति पर सही प्रकाश डाल सकती हैं। हम इस बात से दिग्भ्रमित न हों कि औरत में कोई रहस्यमय सारतत्त्व है और इसके कारण वह औरत बनती है। नहीं, ऐसा नहीं। यह तो औरत की परिस्थिति है, जो उसे सत्य की खोज के लिए बाध्य करती है। आज की अनेक औरतें मानवीय परिस्थितियों से प्राप्त सुविधाओं के कारण इतनी भाग्यशाली हैं कि वे कम-से-कम निष्पक्ष रूप से इस विषय का तो विवेचन कर ही सकती हैं। हम अपनी पूर्वजों की तरह केवल एक पक्ष की तरफदारी नहीं करेंगी, क्योंकि कुछ मामलों में तो औरत और पुरुष समान हैं ही। संयुक्त राष्ट्र संघ भी आज स्त्री-पुरुष के समान अधिकारों को मानता है। अनेक औरतें नारीत्व को अब कोई अवरोध नहीं मानतीं । नारीत्व के कारण किसी असुविधा का सामना भी वे नहीं करतीं। वस्तुतः स्त्रियां ही नारी- जगत् को पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा आंतरिकता से जानती हैं क्योंकि उनकी जड़ें इसमें निहित हैं। एक पुरुष की अपेक्षा हम स्त्रियां तात्कालिक रूप से यह समझ सकती हैं कि औरत होने का क्या अर्थ है और हमें किन सुविधाओं और असुविधाओं में जकड़ा गया है। हम स्त्रियां ही यह समझ सकती हैं कि हमारी छोटी बहनों के लिए समाज में कैसा भविष्य है। आज औरत की जिंदगी पर स्त्रियों या पुरुषों के सारे लेखन का पहला प्रयास तो यह है कि औरत की जिंदगी को ज्यादा स्पष्टता से समझा जाए व उनके बारे में एक मानवीय दृष्टिकोण स्पष्ट हो। मैंने अपनी पुस्तक के पहले भाग में औरत के अधिकारों का दावा न करके उसके समग्र अस्तित्व का अध्ययन करना चाहा है। यह भी असम्भव है कि किसी भी मानवीय समस्या का सामना हम सर्वदा निष्पक्ष रूप से करें। प्रायः प्रश्न करने वाले और दृष्टिकोण बनाने वाले लोग कुछ रुचियों की सापेक्षता को पूर्वकल्पित रूप से मान लेते हैं। प्रत्येक विश्लेषण और वर्णन में कुछ मूल्य निहित होते हैं । वस्तुपरक स्थितियों का हमेशा एक नैतिक परिप्रेक्ष्य भी होता है। सिद्धांतों को छिपाने के बदले अच्छा यह होगा कि हम पहले से ही उन्हें खोल कर रखें। इसलिए मैं श्रेष्ठता, हीनता, भला, बुरा, प्रगति और प्रतिक्रिया जैसे शब्दों के जंगल में उलझना व्यर्थ समझती हूं। औरत पर लिखी गई तमाम पुस्तकों में सार्वजनिक सुविधा का ध्यान रखने के लिए कहा जाता है। जहां तक मेरा सवाल है, मैं तो यही कहूंगी कि सार्वजनिक भलाई तभी हो सकती है जब समाज के नागरिकों की वैयक्तिक भलाई का ध्यान रखा जाए। हम संस्थाओं को उनकी प्रभाविता और उनके सदस्यों को प्राप्त ठोस

सुविधाओं के संदर्भ में ही समझ सकते हैं। हम इसी के आधार पर निर्णय देंगे, किंतु हमें व्यक्तिगत सुख और वैयक्तिक स्वार्थ को एक करके नहीं देखना चाहिए। लोग यह प्रश्न उठा सकते हैं कि क्या औरत सुखी नहीं या फिर एक कामकाजी महिला की अपेक्षा घर में रहने वाली महिला ज्यादा सुखी नहीं है? मेरे लिए अब तक 'सुखी' शब्द का पूरा अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाया, न ही दूसरों के सुख को मापने का मेरे पास कोई यंत्र है। यह तो व्यक्ति के ऊपर निर्भर करता है कि किस परिस्थिति को वह अपने लिए सुखी कहे । विशेषतया अनेक व्यक्ति अपनी गतिहीनता को ही सुख का नाम देते हैं। मैं इस खयाल को खारिज करूंगी, क्योंकि हमारा दृष्टिकोण अस्तित्ववादी नैतिकता का है। एक व्यक्ति के नाते हम अपनी परियोजनाओं के माध्यम से सम्भव अतिक्रमण के जरिए ही अपनी व्यक्तिगत भूमिका का निर्वाह कर सकेंगे। व्यक्ति तभी स्वतंत्रता प्राप्त करता है जब वह दूसरों की स्वतंत्रता को निरंतर पहचानने की चेष्टा करता है। हमारे वर्तमान अस्तित्व की कोई न्याय-संहिता नहीं है। यदि प्रत्येक अतिक्रमण अंतर्वर्तिता में लौट आता है, तो अस्तित्व का पतन जड़ वस्तु में हो जाता है और स्वतंत्रता को कृत्रिम नियंत्रण तथा नैमित्तिकता जकड़ लेती है। यह पतन नैतिक अपराध तब हो जाता है जब व्यक्ति इसको स्वीकार लेते हैं। इसकी परिणति होती है दमन और हिंसा में।

अपने अस्तित्व को स्थापित करना चाहने वाला व्यक्ति अपनी दी हुई परिस्थितियों से परे जाकर स्वतंत्र परियोजनाओं में प्रतिबद्ध होकर ही अपने आपको पुनः वापस पा सकता है। औरत भी अन्य मानव-प्राणियों की तरह एक स्वतंत्र और स्वायत्त जीव है, लेकिन यही जीव ऐसे जगत् में रहता है जो उसकी अतिक्रमण की क्षमता को कुंद करके उसको हमेशा के लिए अंतर्वर्ती अवस्था में रख देना चाहता है। औरत की जिंदगी का नाटक इसी संगति में निहित है। एक ओर वह प्रत्येक व्यक्ति की मौलिक चाह की तरह स्वयं के लिए तथा जगत् के लिए अनिवार्य होना चाहती है तथा सर्वोपरिता की ओर अग्रसर होना चाहती है, और दूसरी ओर उसको उस परिस्थिति का सामना करना पड़ता है, जो हमेशा उसे नगण्य बनाने पर तुली रहती है। प्रश्न उठता है कि कैसे एक व्यक्ति स्त्री की स्थिति में रहते हुए परितोष पा सकता है? कौन-से रास्ते उसके लिए खुले होते हैं और कौन से बंद? वह कैसे उस आत्मनिर्भरता को प्राप्त करे, जिससे स्त्री की स्वाधीनता को सीमित करने वाली परिस्थितियों का सामना किया जा सके। ये कुछ ऐसे मौलिक प्रश्न हैं, जिनका सम्बंध स्त्री के अस्तित्व और उसकी स्वतंत्रता से है। मैंने स्त्री को इस पुस्तक प्रथम भाग में मनोविज्ञान और ऐतिहासिक भौतिकवाद के दृष्टिकोण से विश्लेषित किया है। मैंने यह दिखाने की चेष्टा की है कि स्त्री की नियति किन-किन सामाजिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक कारणों से नियंत्रित होती है। इसके बाद यह दिखाने की चेष्टा की है कि कैसे सच्चे नारीत्व की अवधारणा को गढ़ा गया; क्यों, कैसे और कहां औरत को अन्या की तरह परिभाषित किया गया और इस संदर्भ में पुरुष का दृष्टिकोण क्या रहा है? इसके बाद मैं एक नारी के

दृष्टिकोण से उस जगत् का वर्णन करूंगी, जिसमें औरतों को रहना पड़ता है। मैं उन स्थितियों का भी वर्णन करूंगी, जिनका अतिक्रमण करके एक स्त्री मानव-जाति की पूर्ण सदस्यता का अधिकार पाने के लिए सर्वोपरिता की ओर अग्रसर होती है।

प्रथम खंड : तथ्य और मिथ
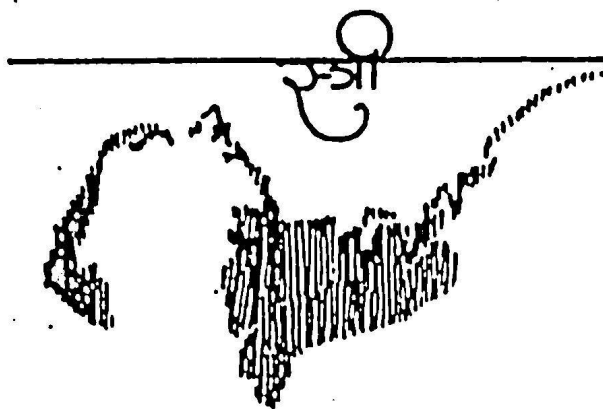
एक : नियति

1. स्त्री की जैविक स्थिति
2. स्त्री का मनोवैज्ञानिक पहलू
3. स्त्री के प्रति ऐतिहासिक भौतिकतावादी दृष्टिकोण

स्त्री की जैविक स्थिति

औरत? औरत के लिए कोई स्वप्न-द्रष्टा एक बड़ा ही सीधा फार्मूला उच्चारित करता है। औरत? औरत एक गर्भ है, अंडाशय है और एक औरत है, शब्द काफी हैं, उसको परिभाषित करने के लिए । पुरुष के मुंह से औरत शब्द एक अपमानजनक ध्वनि रखता है। पुरुष फिर भी अपनी पाशविक प्रकृति के लिए लज्जित नहीं होता, बल्कि उसको इस बात का अभिमान होता है कि वह एक पुरुष है। औरत शब्द इसलिए अपमानजनक नहीं कि औरत का होना पुरुष के लिए एक विद्वेषपूर्ण स्थिति है। अपनी इस भावना का औचित्य पुरुष जीव-विज्ञान में खोजना चाहता है। औरत सुस्त, चंचल, बेवकूफ, कठोर व वासनात्मक, क्रूर और अवमानित कुछ भी हो सकती है। पुरुष एक ही साथ इन सारे गुणों को उस पर आरोपित करता है। वस्तुत: इन सारे विरोधाभासों के बावजूद औरत सिर्फ एक औरत रहती है।

स्त्री और पुरुष दो प्रकार के प्राणी हैं, जो मानव-जाति में प्रजनन की प्रक्रिया के आधार पर विभाजित होते हैं । उन्हें एक-दूसरे के संदर्भ में ही परिभाषित किया जा सकता है, किंतु पहले समझना होगा कि जीव-विज्ञान में नर और मादा का वर्गीकरण इतना स्पष्ट नहीं मिलता। प्रकृति में यह घटना इतने सार्वभौम रूप से प्रकट नहीं होती। प्राणियों का प्रजनन और संवर्द्धन मौलिक रूप से यौनवृत्ति से भिन्न है। प्रत्येक 'सेल' अपने आपको विभाजित और अंतर्विभाजित करता रहता है। बहुत से प्राणियों में प्रजनन बिना किसी यौन सम्पर्क के होता है। यानी कुछ प्राणियों का अपना ही हिस्सा दो टुकड़ों में बंट जाता है और एक नए प्राणी का जन्म होता है। अनेक कीड़े-मकोड़े या पानी में होने वाले उद्भिज इसी प्रकार अस्तित्व पाते हैं। अनुसंधान ने यह सिद्ध कर दिया है कि इस प्रकार यौन- सम्पर्कहीन गुणन अपरिमित रूप से जारी रह सकता है, बिना किसी क्षय के और बहुत सारे प्राणियों के संसार में 'नर' का होना मौलिक रूप से अनावश्यक है।

उद्भिज और निम्नकोटि के प्राणियों और आत्म-उर्वरक प्राणियों के लिए हम यह नहीं कह सकते कि उनकी व्यवस्था हमारी व्यवस्था की तुलना में नगण्य या अर्धविकसित है। प्राणी वैज्ञानिकों के लिए यह विषय काफी विवादास्पद है। हम इतना ही कह सकते हैं कि प्रजनन के दोनों संवर्ग प्रकृति में एक साथ पाए जाते हैं। इन दोनों से जाति का नैरंतर्य जारी रहता है। युग्मक का यह विभेद एक प्रकार से आकस्मिक है। अतः हम यही कह सकते हैं कि किसी खास वर्ग का नर-मादा में वर्गीकरण वास्तव में एक अन्यूनीकृत तथ्य है।

हम कह सकते हैं कि दूसरे प्राणियों की तुलना में मनुष्य-जाति में स्त्री-पुरुष का विशिष्टीकरण वास्तव में सिर्फ प्रजनन से सम्बंधित नहीं होता। पुरुष यौन-स्थिति को एक विशिष्टता प्रदान करता है और अपनी यौन-क्रियाओं की मध्यस्थता द्वारा एक मूल्य प्रक्षेपित करता है। मैर्लोपेती कहते हैं कि मानवीय अस्तित्व में कोई कार्य-कारण सम्बंध नहीं होता और न ही कोई आकस्मिक गुणवत्ता होती है। व्यक्ति और जगत् के पारस्परिक सम्पर्कों के माध्यम से ही ये सारे तथ्य अस्तित्व ग्रहण करते हैं। ऐसी कुछ परिस्थितियां जरूर होती हैं, जिनके अभाव में अस्तित्व की अवस्थिति असम्भव है। जगत् में हमारी अवस्थिति का एकमात्र आधार हमारा शरीर है अर्थात् हम भौतिक रूप से जगत् से संलग्न होकर उसके प्रति अपना एक दृष्टिकोण रखते हैं। हां, हमारे अवस्थित होने की प्रक्रिया के दौरान कोई भी संरचना विकसित हो सकती है। सार्त्र के अनुसार आदमी का अंतिम प्रारूप तो मृत्यु के बाद ही बनता है। मृत्यु की स्वीकृति के अभाव में आदमी के अस्तित्व को सारी अवधारणाएं बिखर जाएंगी, यहां तक कि 'आदमी मरणशील है' जैसा वाक्य भी निरर्थक हो जाएगा। आशय यह है कि शारीरिक अमरता आदमी को आदमी के रूप में नहीं रहने देगी, भले ही वह कोई अतिमानव या यति बन जाए। काल आदमी के जन्म के पहले और मृत्यु के बाद एक अंतहीन अतीत और भविष्य का निर्माण करता है। एक जाति के रूप में मनुष्य के

अस्तित्व की निरंतरता विशिष्टीकरण एवं विभाजन को अनिवार्य नहीं बनाती। यह विभाजन और अस्तित्व की विशिष्टता उसी सीमा तक है जहां तक अस्तित्व की कोई वास्तविक परिभाषा की जाए अतः किसी प्रकार के शरीरहीन मन और अमरत्व प्राप्त मानव की अवधारणा असम्भव है।

स्त्री-पुरुष के रज और वीर्य के मिलने की प्रक्रियाओं के बारे में सभ्यता के आदिकाल से ही मनुष्य ने नाना प्रकार के खयालों और विश्वासों को सामने रखा है। प्रारम्भ में इन विचारों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था। ये केवल परावर्तित सामाजिक मिथक थे। आदिम मातृसत्तात्मक समाज में गर्भधारण में पिता की कोई विशिष्ट भूमिका नहीं मानी जाती थी, बल्कि यह सोचा जाता था कि पूर्वजों की आत्मा जीवित बीज के रूप में मातृगर्भ में प्रवेश कर जाती है। पितृसत्तात्मक संस्थाओं के विकास के साथ पुरुष अपनी संतति के लिए अपने अधिकार का दावा करने को आतुर हो उठा। यद्यपि मां की प्रजनन क्षमता को नकारा नहीं जा सकता था, किंतु तब भी यह माना गया कि मां अपने गर्भ में उस जीवित भ्रूण का केवल भरण-पोषण करती हैं, जो पिता के द्वारा ही आरोपित होता है।

अरस्तू ने स्त्री को एक निष्क्रिय पदार्थ माना और पुरुष को शक्ति, गति और जीवन । उसने यह कहा कि भ्रूण की उत्पत्ति मासिक-स्राव और शुक्राणु के संयोग से होती है और जीव की प्रत्येक प्रक्रिया अपने आपमें अनुभव से अनुभवातीत की ओर जाने तथा सर्वोपरिता के मूल्य-प्रक्षेपण की एक महती परियोजना है।

प्रजनन की प्रक्रिया के सम्बंध में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि निष्क्रियता की अवधारणा एक अवैज्ञानिक अवधारणा है । यह समझा जा चुका है कि युग्मक के योग से ही नए जीवन का निर्माण होता है। अतः प्रजनन-प्रक्रिया स्त्री और पुरुष के संयोग से ही सम्भव होती है। जीव- जगत् के विकास की दिशा में उत्तरोत्तर आगे बढ़ने पर हम पाते हैं कि जीव का अपना व्यक्तित्व क्रमशः अधिकाधिक विकसित होता जाता है। मादा को प्रजनन के अलावा संतति की रक्षा भी करनी पड़ती है। स्तनधारियों में जीवन का रूप और जटिल होता है। यहां पर हम देखते हैं कि मां अपनी संतान से अधिक निकट का सम्बंध बनाए रखती है।

संतान की रक्षा के लिए मां की भूमिका अपरिहार्य है, जबकि पुरुष को अपनी संतानों में कोई खास रुचि नहीं रहती। जहां मादा संतति के प्रति प्रजनन से लेकर भरण-पोषण तक की पूरी प्रक्रिया के प्रति समर्पित रहती है, वहां पुरुष अपने जीवंत अंश को अपने से सिर्फ परे करता है। अतिक्रमण की इस प्रक्रिया में पुरुष अपना एक नया व्यक्तित्व भी पुनः प्राप्त करता है। यह ठीक है कि मादा भी संतान-उत्पत्ति के बाद अपनी स्वायत्तता हासिल करती है साथ ही उसमें और उसकी संतति के बीच एक दूरी भी आ जाती है। यहां भी वह अपनी संतति के प्रति समर्पित होकर उसको बचाए रखने में संलग्न रहती है। दूसरे जीव-जंतुओं से

अपनी संतति की रक्षा के लिए वह काफी आक्रामक भी रहती है, किंतु उसकी यह आक्रामकता उसके व्यक्तित्व का निर्माण नहीं करती। मादा किसी विशिष्ट नर का चुनाव नहीं करती। मातृत्व की भूमिका से मुक्त होने के बाद वह भी नर के जैसी ही हो जाती है। यहां पर घोड़े, बंदर या अन्य जंतुओं का उदाहरण दिया जा सकता है जिनमें नर-मादा की कार्य- क्षमता और शक्ति में कोई फर्क नहीं होता।

जैविक रूप से नर के स्वभाव में अतिक्रमण की ऐसी क्षमता होती है, जिससे उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। उसकी यह विशिष्टता हम प्रत्येक श्रेणी के प्राणियों में पाते हैं। जहां मादा की सेक्सुअलिटी तात्कालिक और प्रत्यक्ष होती है, वहीं नर अपनी सेक्सुअलिटी का अनुभव परिस्थितियों की मध्यस्थता से करता है। वह अपनी चाह और संतुष्टि के बीच दूरी सक्रिय रूप से करने की चेष्टा करता है। वह बाधाओं को ढकेलता हुआ अपनी इच्छित वस्तु खोजता है विह अपनी औरत को छूता है। उससे प्यार करता है और इन सब आवेगमय रति-क्रियाओं के कारण नर में शुक्राणु अधिक उत्पन्न होते हैं। ये आवेग ही पुरुष के रूप को निखारते हैं। चमकती हुई रंग-बिरंगी पंखी, मृग के शृंग, शेर के अयाल, चीते की आवाज, नर-जंतु के पास इन सबका प्राचुर्य होता है। यह तो हम नहीं मानेंगे कि मदकाल में नर में कोई खास सौंदर्य उजागर होता है, बल्कि उसकी सारी तड़क-भड़क और सजावट खास जैविक शक्ति की परिचायक है, जो अपनी अद्भुत आभा और उत्तेजना लिए हुए उसके अंगों में फूटती रहती है। मदकाल की क्रिया में मादा को अधीनस्थ करके पुरुष अपने जीवन में परिस्थितियों के अतिक्रमण की क्षमता स्थापित करता है। पुरुष इन जैविक शक्तियों को अपने में आत्मसात् करने की कोशिश करता है, मादा अपनी जाति के प्रजनन और संरक्षण के अलावा और कुछ नहीं कर सकती।

जिस जाति का वैयक्तिक विकास अधिक उच्चतर होता है, उसमें पुरुष की इच्छा स्वायत्तता हासिल करने की अधिक होती है। वह औरत से ज्यादा चपल, मजबूत और साहसी होता है। वह ज्यादा दक्ष भी होता है और अधिक धृष्ट भी। स्तनपायी जानवरों में भी पुरुष ही आदेश देता है। विकास- क्रम में जहां जीव को वैयक्तिकता की जरूरत अधिक पड़ी, वहां इसे ज्यादा श्रेष्ठ स्थिति में रखा गया। पुरुष को ऐसे रास्ते मिलते चले गए, जिन पर चलकर उसे अपना आधिपत्य हासिल करना था। इसके विपरीत स्त्री गुलामी की अवस्था दिन-प्रतिदिन स्वीकार करती चली गई। उसकी अपनी संतति के स्वार्थ और जाति की निरंतरता का द्वंद्व अधिकाधिक उभरता चला गया। मादा जीवों में मनुष्य-जाति की मादा ही औरत होने की अपनी नियति सबसे अधिक नाटकीय तरीके से झेलती है। अत: औरत के ऊपर प्रजनन का अतिरिक्त दायित्व ही उसे पुरुष के विकास से अलग करता है। जन्म से किशोरावस्था तक पुरुष का शारीरिक विकास नियमित रहता है। पंद्रह-सोलह वर्ष की उम्र में पहुंचकर उसमें शुक्राणु बनने लगते हैं, जो उसकी वृद्धावस्था तक बनते रहते हैं।

इसलिए उसके शरीर में उत्पन्न हारमोन वास्तव में पौरुषीय गुणों को स्थापित करते हैं। इस दृष्टिकोण से पुरुष का जीवन उसके अपने व्यक्तिगत अस्तित्व के साथ समेकित है। सम्भोग के माध्यम से नारी की ओर अतिक्रमण की प्रक्रिया में पुरुष स्वयं से अलग नहीं हो जाता, बल्कि वह अपना ही शरीर होता है। औरत की स्थिति ज्यादा जटिल है। जन्म के समय औरत के गर्भ में अंडाशय की संख्या अधिक होती है। अचानक विकास के साथ गर्भाशय सिकुड़कर छोटा हो जाता है। इसके बाद औरत का शरीर तो बढ़ता है, किंतु उसकी योनि में कोई परिवर्तन नहीं होता। किशोरावस्था में मासिक-स्राव शुरू हो जाता है तथा शरीर सुडौल और कमनीय हो जाता है।

इन सारी जैविक घटनाओं के क्रम में औरत के जीवन में एक संक्रांति घटित होती रहती है। उसके शरीर में एक आंतरिक संघर्ष जारी रहता है। औरत का शरीर पहले विरोध करता है और यह संघर्ष उसको कमजोर बनाता है। चौदह से अठारह साल के बीच लड़कियों की मृत्यु-संख्या लड़कों से अधिक होती है। औरतों में अनेक प्रकार के मानसिक विकार इसी उम्र में उत्पन्न होते हैं। चूंकि औरत की सारी शक्ति उसके गर्भ में निहित है, अतः गर्भाशय की अस्वस्थ स्थिति में सारा संतुलन बिगड़ जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि औरत स्वयं को अपने शरीर की सीमा के अनुसार ही ढाल सकती है। किशोरावस्था से मेनोपॉस तक औरत के शरीर में घटनाएं घटती रहती हैं, एक नाटक जारी रहता है। कई औरतों को मासिक-स्राव एक तरह की बीमारी लगता है, एक प्रकार का बोझ ।

मासिक-स्राव के समय हारमोन की ग्रंथियों के अधिक सक्रिय होने के कारण अधिकतर स्त्रियों में इस पूरे दौरे में काफी परेशानी के लक्षण प्रकट होते हैं। समय से पहले और बाद में उनका रक्तचाप बढ़ जाता है।

किसी को बुखार आता है, किसी के पेट में दर्द होता है या कोष्ठबद्धता और लीवर में सूजन होती है। गले में खराश, जुकाम-सर्दी, शरीर में एक प्रकार की गंध को स्वाभाविक जैविक घटनाएं घटती रहती हैं। ग्रंथियों की उत्तेजना के कारण स्नायविक दुर्बलता तथा असंतुलन पाया जाता है। केंद्रीय स्नायु-व्यवस्था प्रभावित होती है, जिसके कारण सिर में दर्द तथा मूड के दौरे अधिक पड़ते हैं। औरत ज्यादा भावुक, ज्यादा नर्वस, ज्यादा चिड़चिड़ी हो जाती है। बहुधा गम्भीर मानसिक उथल-पुथल भी देखने में आती है। अपने इसी काल में औरत अपने शरीर की पीड़ा को ज्यादा महसूस करती है। शरीर उसके लिए एक पराई वस्तु और किन्हीं अन्य शक्तियों का शिकार लगने लगता है। ऐसा लगता है मानो हर महीने वह अपने बनाए हुए पालनों और खिलौनों को लाल रंग में बहा देती है।

औरत पुरुष की तरह एक शरीर जरूर है, किंतु उसका अपना शरीर कुछ ऐसा है जिस पर उसका नियंत्रण नहीं रहता। वह उसके स्व से अन्य रहता है। औरत अपने शरीर के अलगाव को गर्भधारण के समय और अधिक गहराई से महसूस करती है। यह ठीक है कि

गर्भधारण एक साधारण और स्वाभाविक प्रक्रिया है। हां, यदि स्वास्थ्य और पौष्टिकता की सामान्य परिस्थितियों में यह किया जाए तो मां के लिए नुकसानदेह नहीं होता। स्त्री और उसके भ्रूण की अन्योन्याश्रित क्रिया उसके लिए लाभदायक भी होती है। इस सारी आशावादिता के बावजूद गर्भधारण एक थकावट का काम है, जिसका औरत को विशेष लाभ नहीं मिलता, बल्कि उससे यह एक भारी कीमत चुका लेता है। गर्भावस्था के बाद एक पूरी तरह स्वस्थ औरत अपनी शारीरिक ताकत फिर वापस पा जाएगी, किंतु यदि वह ताकतवर नहीं, यदि स्वास्थ्य के नियमों का उसने ठीक से पालन नहीं किया, तो लगातार प्रसव उसको समय से पहले ही बूढ़ी बना देता है।

बच्चे का पालन-पोषण भी एक थकाने वाला काम है। बहुधा बच्चे को दूध पिलाने में मां की शक्ति का हरण होता है। भ्रूण के रूप में औरत का ही अंश उसकी शक्ति को निचोड़ लेता है। प्रसव के बाद थोड़ी-सी असावधानी भी औरत के जीवन को संकट में डाल देती है।

औरत को औरतपन की लौह-पकड़ से एक गम्भीर संक्रांति से गुजर कर ही छुटकारा मिलता है। यह है मेनोपॉस को घटना, जो पैंतालीस से अट्ठावन की उम्र के बीच घटती है। इसके बाद डिम्बग्रंथियों का स्राव या तो कम हो जाता है या बिल्कुल खत्म। नतीजा यह होता है कि व्यक्ति की जीवनी शक्तियों का ह्रास होता है। यह ठीक है कि डिम्बाशय की प्रक्रिया थायरायड या पिट्यूटरी ग्रंथियों से सम्पूरित होती है, किंतु इसके बावजूद औरत में उदासी, उच्च रक्तचाप, अचानक गर्मी या सर्दी लगना, स्नायु दौर्बल्य आदि शेष रहते हैं। कुछ स्त्रियां इस समय ज्यादा मोटी हो जाती हैं और कुछ ज्यादा ही सूख जाती हैं। स्त्री अपनी प्रकृति के कारण जो गुलामी अब तक भोगती थी, वह अब उसको नहीं भोगनी पड़ती। अब वह बाह्य ताकतों का शिकार नहीं रहती। अब 'वह' होती है और उसका अपना शरीर । बहुधा शरीर की सीमा से इस मुक्ति द्वारा औरत को एक अच्छे स्वास्थ्य- संतुलन की प्राप्ति होती है। इन मौलिक यौन-विशिष्टताओं के अलावा औरत की कुछ और भी अपनी विशेषताएं होती हैं जो हारमोंस क्रियाओं की मध्यस्थता से संचालित होती हैं। सामान्यतः एक औरत पुरुष की अपेक्षा कद में छोटी और उसकी हड्डियां ज्यादा नाजुक होती हैं। उसका शारीरिक ढांचा ज्यादा गोलाई लिए होता है। उसकी संरचना, त्वचा और बाल पुरुष से भिन्न होते हैं। एक पुरुष की अपेक्षा औरत की मांसपेशियों में ताकत कम होती है। औरत के खून में विशिष्ट घनत्व कम होता है और रक्त में हीमोग्लोबीन की कमी होती है। यही कारण है कि पुरुष की अपेक्षा वह हृष्ट-पुष्ट भी कम होती है। सामान्यतः औरत की शारीरिक व्यवस्था में असंतुलन अधिक होने के कारण उसका भावात्मक जीवन असंतुलित होता है । वह अपने पर नियंत्रण नहीं रख पाती और पुरुष की अपेक्षा ज्यादा चिड़चिड़ी और स्नायविक दुर्बलता से अधिक ग्रस्त होती है।

औरत अपने आपसे ही विच्छित्तिकृत है। उसकी तुलना में पुरुषों के साथ प्रकृति ने अधिक पक्षपात किया है। एक मानवीय व्यक्ति के हिसाब से पुरुष अस्तित्व उसके यौन-जीवन के विरोध में नहीं होता। साधारणतया औरत उतनी ही लम्बी उम्र पाती है जितनी पुरुष, किंतु ऐसे बहुत से मौके आते हैं जबकि औरत का नियंत्रण स्वयं पर नहीं रह जाता। उसको महसूस होता है कि वह टुकड़ों में बिखर रही है। ये जैविक सोच-विचार और प्रतिफल बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं । औरत के इतिहास में इन जैविक विशिष्टताओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है और उसकी परिस्थिति का अनिवार्य तत्त्व निर्मित किया है। चूंकि शरीर जगत् को समझने और उस पर नियंत्रण करने की समझ एक उपकरण है, चूंकि सार्त्र, मैर्लोपेंती और हेडेगर शरीर को मात्र वस्तु न मानकर जगत् को पकड़ने और समझने का अनिवार्य उपकरण मानते हैं, अतः तथ्यतः स्त्री के पुरुष की अपेक्षा शारीरिक रूप से कमजोर होने तथा स्वयं पर नियंत्रण के अभाव आदि को कमजोरियों के कारण उसका वैयक्तिक जीवन कम समृद्ध होता है। अत: जगत् का दृष्टिकोण इस उपकरण के प्रयोग के तरीकों पर बहुत अधिक निर्भर करता है।

मैं बस इतना ही कहना चाहूंगी कि शारीरिक भिन्नता के बावजूद ये सीमाएं औरत की अनिवार्य और स्थायी नियति के रूप में नहीं स्वीकारी जा सकतीं। शारीरिक भिन्नता यह नहीं स्थापित करती कि औरत अन्या, गौण या यौनजनित सोपानीकरण में नीचे की सीढ़ी पर बैठी हुई हैं। ये जैविक परिस्थितियां औरत को अधीनस्थ भूमिका स्वीकारने के लिए मेरी समझ में बाध्य नहीं कर सकीं।

जहां पशु-जाति में मादा की भूमिका स्थिर है और उसको सामूहिक रूप से अवलोकनार्थ रखा जा सकता है, वहीं मानव-जाति में कुछ-न-कुछ हमेशा वर्तमान से भविष्य की ओर अग्रसर होता हुआ संश्लेषित और निर्मित होता रहता है। हम यहां पर स्त्रीत्व का प्राकृतिक सोपानीकरण या मूल्यों के स्केल यानी विकासवादी सोपानीकरण के सिद्धांत को नहीं स्वीकार सकते।

मैं किसी स्पष्ट प्रकृतिवाद या दुराग्रही नैतिकता को शब्दाडम्बर ही मानूंगी। ये स्थितियां केवल मानवीय दृष्टिकोणों से पैदा होती हैं। मानव-जाति में स्त्री और पुरुष की तुलना सम्भव है। आदमी एक निरंतर विकासमान प्राणी है जो अपना निर्माण खुद करता है। अपना निर्माता आदमी स्वयं होता है। मैर्लोपेंती ने कहा है, "आदमी प्राकृतिक जाति नहीं, वह एक ऐतिहासिक विचारमात्र है।" औरत एक ऐसी शक्ति या ऐसी वास्तविकता नहीं है जो अपने में पूरी हो गई है, बल्कि वह अब भी कुछ बनने की प्रक्रिया में है और इसी प्रक्रिया के दौरान हमें उसकी तुलना पुरुष से करनी चाहिए। हमें उसकी सम्भावनाओं को इसी संदर्भ में परिभाषित करना चाहिए। वाद-विवाद का सबसे बड़ा कारण औरत को उसकी

परम्परागत परिस्थिति में ही न्यूनीकृत करने की प्रवृत्ति है। लोग उसको क्षमता का विश्लेषण करते हैं और कहना चाहते हैं कि वह जो बनी है, वही उसकी नियति और स्थितिग्रस्तता है।

इस संदर्भ में मैं यह कहना चाहती हूं कि प्रत्येक परिस्थिति में मानव-जीवन में विकास की अपरिमित क्षमता निहित रहती है। हम सम्भावनाओं पर किसी प्रकार की अंतिमता का आरोपण नहीं कर सकते।

स्त्री-पुरुष के जैविक विभेद के तथ्यों पर अतिरिक्त जोर देने से जोव-विज्ञान एक अमूर्त विज्ञान लगने लगता है। तमाम शारीरिक सच्चाइयां अपने आपमें एक अर्थ ग्रहण करती हैं, लेकिन अर्थवत्ता तो पूरे संदर्भ पर आधारित होती है। शारीरिक कमजोरियां उसी सीमा तक प्रकाशित होती हैं, जिस सीमा तक पुरुष उनको प्रकाश्य मानता है। वस्तुतः पुरुष के उपकरणों और उसी के निर्मित कानूनों की तुलना में स्त्रियों की प्रचारित कमजोरियों को रखकर विचार किया जाना चाहिए। यदि एक बार जगत् के विनियोजन का तरीका बदल जाए और मूल्यों की परियोजना भिन्न बन जाए, तब मूल्यांकन के लिए शारीरिक शक्ति की इतनी जरूरत नहीं रहेगी। पारम्परिक रूप से हिंसा को प्रश्रय देने वाली मांसपेशियों की ताकत के आधार पर किसी को प्रभुता नहीं मिलनी चाहिए।

संक्षेप में अस्तित्ववादियों के अनुसार हम स्त्री-जाति की प्रचारित कमजोरी की अवधारणा को आर्थिक और नैतिक कारणों से ही परिभाषित कर सकते हैं। प्रकृति की वास्तविकता मनुष्य के लिए वहीं तक है जहां तक अपने क्रिया-कलापों में वह उससे उलझता है। मनुष्य का स्वभाव ही इसी प्रकार निर्मित है । औरत को केवल उसकी उत्पादकता और जनन-क्षमता से ही तौलने पर केवल पुरुष मुख्य निर्णायक सिद्ध होगा। अतः स्त्रियों को कितने बंधनों में रहना पड़ेगा, कितने बच्चे पैदा करने पड़ेंगे या फिर उसे स्वास्थ्य की कौन-कौन-सी सुविधाएं प्रदान की जाएंगी- इन सब बातों में पुरुष-समाज एकमात्र नियामक तथ्य हो जाता है। मानव-जाति में व्यक्ति का अस्तित्व और उसकी सम्भावनाएं आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर होती हैं। ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि सामाजिक विकास की दृष्टि से कौन ज्यादा जरूरी है? स्त्री या पुरुष? युग्मकों और सम्भोग तथा गर्भाधान की जैविक प्रक्रियाओं के स्तर पर पुरुष अनुरक्षण के लिए एकाधिकार का सिद्धांत बनाता है, जबकि औरत सृजन के लिए सिद्धांत बनाती है। सामाजिक जीवन में इस श्रम के अतिरिक्त और भी प्रश्न उठते हैं। आदिकाल में पुरुष की भूमिका एक उर्वरीकरण तक ही सीमित थी। वह शिकार करके अपने बच्चों के लिए भोजन जुटाता था। मानव-जाति में जहां संतान बिल्कुल ही असहाय रहती है और एक लम्बे समय तक के लिए माता के दूध पर पलती है, वहां पुरुष की सहायता अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाती है। वहां संतति के बचाव के लिए पुरुष को बाहरी दुश्मनों से युद्ध करना पड़ता है। उसे अपनी जरूरतों के अनुकूल प्रकृति को विनियोजित करना पड़ता है। मानव-इतिहास में

उत्पादन तथा पुनः उत्पादन की ताकतों में संतुलन विभिन्न आर्थिक अवस्थाओं और विभिन्न साधनों के जरिए लाया गया है। इन्हीं परिस्थितियों ने औरत और पुरुष के सम्बंधों का नियमन किया है। हम केवल जैविक आधार पर एक सेक्स की प्रधानता दूसरे सेक्स के ऊपर नहीं आरोपित कर सकते।

सामाजिक और जातीय तौर-तरीके तथा परम्पराएं जीव-विज्ञान द्वारा निश्चित नहीं होते। व्यक्ति के मौलिक स्वभाव के ऊपर रीति-रिवाजों और परम्पराओं द्वारा थोपी गई प्रवृत्तियां मनुष्य की इच्छाओं और भय की भावनाओं के रूप में स्वाभाविक अभिव्यक्ति पाती रहती हैं। वस्तुत: अपने शरीर के लिए सचेत व्यक्ति दूसरे शरीरों के संदर्भ से ही सचेत होता है। वह अन्य मूल्यों के संदर्भो से ही स्वयं का भी मूल्यांकन करता है। अतः हम शरीर-विज्ञान द्वारा मूल्यों को निर्धारित नहीं कर सकते बल्कि जैविक तथ्य उस समय मूल्य ग्रहण करते हैं, जब हमारा अस्तित्व तथ्यों को नई अर्थवत्ता प्रदान करता है। नारी मातृत्व के जिस रूप और गरिमा की चर्चा सभ्य समाज में की जाती है वह भी उन समाजों में कम गरिमामय होता जा रहा है जिनमें संतान की जरूरत कम होती जा रही है तथा जनसंख्या पर नियंत्रण की आवश्यकता आ गई है।

मानव-जाति में स्त्री की गुलामी तथा उसकी विभिन्न शक्तियों की सीमाबद्धता एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथ्य है। उसका शरीर उसको जगत् में स्थितिग्रसित करता है किंतु केवल शरीर ही उसको परिभाषित करने के लिए पर्याप्त नहीं। ऐसा कोई जीवित प्राणी नहीं, जो अपने कार्यों के माध्यम से समाज की कोख से अपने को प्रकट न करे। जीव-विज्ञान औरत के सम्बंध में उठाए गए प्रश्नों का सम्पूर्ण उत्तर नहीं दे पाता । प्रश्न उठता है कि औरत अन्या क्यों है? इस समाज में उसकी स्थिति गौण क्यों है ? हमें इस बात का अन्वेषण करना होगा कि इतिहास के दौरान स्त्री की प्रकृति कैसे प्रभावित होती गई। हम इस बात से सरोकार रखना चाहते हैं कि क्यों मानवता ने 'इस' मानव-मादा का निर्माण किया?

स्त्री का मनोवैज्ञानिक पहलू

अध्ययन की दृष्टि से जीव-विज्ञान में वर्णित वस्तुरूपी शरीर की कोई खास उपयोगिता नहीं होती। हमारा सरोकार तो व्यक्ति के जिंदा शरीर के अध्ययन से है। इस अध्ययन का महत्त्व स्त्री की मानवीय सार्थकता को महसूस करने तक ही है। जीव-विज्ञान कुछ ऐसे लक्षणों पर भी बल देता है, जो आनुभविक परिस्थिति को दृष्टि से औरत-जाति के जीवन का हिस्सा नहीं बनते। औरत ही अपनी प्रकृति की परिभाषा अपने भावनात्मक जीवन की प्रवृत्तियों के माध्यम से करती है । वस्तुतः वह इस जगत् में अपने शरीर के साथ अवस्थित रहती है। मनोविज्ञान की सारी व्यवस्था इसी परिप्रेक्ष्य पर आधारित है।

मनोविश्लेषण की पद्धति का आलोचनात्मक अध्ययन तथा परीक्षण आसान नहीं है। मनोविश्लेषण आज ईसाइयत या मार्क्सिज्म की ही तरह एक धार्मिक कट्टरता का रूप ले चुका है। मनोविज्ञान में शब्दों का प्रयोग अपनी सुविधा के अनुसार किया जाने लगा है। यदि आप केवल शब्दों तक ही सीमित रहें, तो मनोवैज्ञानिक कहेंगे कि आप उनमें निहित व्यापक अर्थ समझ नहीं सके। यदि आप व्यापक अर्थ को ही समझने लगते हैं, तो उनकी शिकायत होती है कि आप शब्दों को समझने में चूक गए।

ईसाई और मार्क्सवादी कठमुल्लों की तरह मनोवैज्ञानिक भी अपना सबसे बड़ा दुश्मन एक दूसरे मनोवैज्ञानिक को ही मानते हैं। जैसा कि सार्त्र और मैर्लौपेंती ने कहा कि अस्तित्व के साथ सेक्स भी सर्वविस्तृत होता है। यानी सम्पूर्ण अस्तित्व में सेक्स की स्थिति व्याप्त है। इस बात को दो भिन्न तरीकों से समझा जा सकता है। एक अर्थ तो यह हुआ कि अस्तित्व के प्रत्येक अनुभव की सेक्सुअल अर्थवत्ता होती है। इसके अतिरिक्त यौन-भावना को जनन-सम्बंधी अंगों से अलग करके सोचने में सेक्सुअलिटी का विचार स्पष्ट नहीं होता। इस संदर्भ में सामंजस्य की सम्भावना के बावजूद हम देखते हैं कि एक का दूसरे में विलयन हो जाता है । यौन अंगों को अलग करके सोचने पर सेक्सुअलिटी का विचार स्पष्ट नहीं किया जा सकता। फ्रायड ने औरत की नियति में विशेष रुचि नहीं ली। उसने पुरुष को नियति को ही थोड़ा बहुत रूपांतरित करके औरत की नियति के रूप में रखा। वह यह तो स्वीकार करता है कि औरत की सेक्सुअलिटी पुरुष के बराबर ही विकसित है, लेकिन उसका अध्ययन किसी विशिष्टता पर आधारित नहीं। उसके अनुसार 'लीबिडो' यानी काम-शक्ति का साररूप पुरुष है। फ्रायड औरत की काम-प्रवृत्ति को उसका मौलिक स्वभाव नहीं मानता। वह सोचता है कि स्त्री और पुरुष दोनों में काम-प्रवृत्ति प्रारम्भ में समान रहती है। फ्रायड के अनुसार औरत अपने आपको एक पंगु पुरुष महसूस करती है, क्योंकि उसमें पुरुष जननेंद्रिय का अभाव है। पंगुता का यह विचार वास्तव में तुलनात्मक मूल्यांकन के दृष्टिकोण में निहित है। केवल साधारण शारीरिक तुलना के आधार पर यह कहना कठिन हैं कि काम-शक्ति की दृष्टि से पुरुष प्रबल होता है या औरत।

बचपन में छोटी लड़की की घनिष्ठता अपने पिता के साथ होती है। वह उसके साथ एकीकृत होती है, लेकिन साथ ही पुरुष के संदर्भ में उसके मन में एक हीन भावना भी पैदा हो जाती है। वह एक दुविधा में पड़ जाती है। या तो वह अपनी स्वाधीनता का समर्थन करे और लोगों की नजर में एक पौरुषीय मूल्य प्राप्त करे या फिर प्रेमपूर्ण समर्पण में ही सुख अनुभव करे। शुरू से वह अपने सत्ताधारी पिता से प्रेम करती आती है। वह अपने प्रेमी या पति में भी अपने पिता को ही खोजती है। अतः उसका सेक्सुअल प्यार वास्तव में पुरुष द्वारा शासित होने की इच्छा से घुला-मिला होता है। आगे चलकर पुरुष द्वारा दमित होने की

क्षति-पूर्ति वह मातृत्व की भावना में करती है। मातृत्व उसे एक नई प्रकार की स्वतंत्रता देता है।

एक समकालीन मनोवैज्ञानिक की मान्यता है, "यदि कहीं कोई ग्रंथि है, तो पारिभाषिक रूप से बहुत सारी घटनाएं भी उसकी पृष्ठभूमि में जुड़ी हुई हैं।" ग्रंथि का कारण व्यक्ति का विषयगत तथ्यों से जुड़ना होता है, लेकिन हमें तथ्यों के सम्बंधों की अवधारणा स्वीकार नहीं। अस्तित्व के मौलिक उद्देश्य के विषयगत तथ्यों के माध्यम से पुनः कुछ आविष्कार करके ही यह सम्पूर्णता समझी जा सकती है। हमें किसी भी ऐसे उद्गम स्रोत तक नहीं पहुंचना है, जहां आदमी केवल बाध्यता और वर्जनाओं का युद्ध-क्षेत्र लगे। इस प्रकार का जीवन घटना-प्रधान तो लग सकता है, किंतु कोई सार्थकता नहीं पा सकता।

पूर्व नियोजित ढंग से मानवीय चुनाव को क्षमता और उससे सम्बंधित मूल्यों की अवधारणा को खारिज करने में मनोवैज्ञानिक की निजी वैचारिकता में निहित आंतरिक कमजोरी प्रकट होती है। फ्रायड ने अस्तित्व के स्वतंत्र चुनाव पर बाध्यता और प्रतिनिषेध को आरोपित कर दिया। उसने कहा कि अपने जीवन की विवशता पर आदमी का कोई वश नहीं, वह इस स्थिति की उत्पत्ति का कोई कारण नहीं बता पाया। वह इन निषेधों को यथावत स्वीकार कर लेता है। मूल्यों के विचार को वह सत्ता के साथ जोड़ता तो है, किंतु स्वयं इस सत्ता के बारे में चुप रहता है। उदाहरण के लिए, प्रेम की अभिव्यक्ति वर्जित है, क्योंकि पिता ने मना किया है, लेकिन पिता ने क्यों मना किया? इस प्रश्न का उत्तर फ्रायड की व्याख्या में नहीं मिलता। सुपर ईगो आंत:कृत करता है, आज्ञा देता है और बहुत कुछ करने के लिए मना भी करता है। यह सब सुपर ईगो की बेतुकी तानाशाही है और फिर कुछ नैसर्गिक तथा सहज इच्छाएं भी तो हैं, जिनके बारे में हम नहीं जानते कि वे क्यों हैं। फ्रायड की वैचारिक दुनिया सुपर ईगो तथा अचेतन में बंध गई। एक शासनकर्ता है, दूसरा शासित होते हुए विद्रोह करने से बाज नहीं आता।

यह सही है कि मानव-जीवन में यौन-सम्बंधों की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह भी कहा जा सकता है कि ये सारे जीवन पर पूरी तरह छाए रहते हैं। अस्तित्व स्वयं यौनगत होता है। एक सेक्सुअल शरीर अपना सम्बंध दूसरे अस्तित्व एवं सेक्सुअल शरीर के साथ स्थापित करता है। परिणामस्वरूप सम्बंधों में सेक्सुअलिटी तो अंतर्निहित है ही। यदि शरीर और सेक्सुअलिटी अस्तित्व की एक ठोस अभिव्यक्ति है, तो इसी के संदर्भ में इनका महत्त्व खोजा जा सकता है। मनोविश्लेषक के पास यह परिप्रेक्ष्य न होने के कारण अनेक तथ्य अव्याख्यायित ही स्वीकार कर लिए जाते हैं। यदि एक छोटी लड़की सबके सामने बैठकर पेशाब नहीं करना चाहती, तो प्रश्न उठता है कि उसमें यह शर्म कहां से आई या पुरुष को अपनी जननेंद्रिय पर विशेष अभिमान क्यों होता है ? हमें समझना होगा कि यह अहंकार कैसा है और उससे व्यक्ति की कौन-सी आकांक्षा वस्तु-रूप में व्यक्त होती है ? अस्तित्व के

संदर्भ में हम अन्यूनीकृत आधारभूत तथ्य की तरह सेक्सुअलिटी को नहीं स्वीकार कर सकते. क्योंकि अस्तित्व अपने कुछ होने की इच्छा के साथ अधिक जटिल है। सेक्सुअलिटी तो केवल अस्तित्व का एक पहलू-भर हैं।

'सार्त्र ने इसी तथ्य को स्थापित किया है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार पहला सत्य होता है, आदमी का अपने शरीर के साथ अपना सम्बंध। समूह में रहने वाले अन्य व्यक्तियों के शरीर के साथ भी उसका एक सम्बंध होता है, किंतु आदमी में एक आदिम रुचि स्थित होती है। वह प्राकृतिक जगत से चतुर्दिक घिरा रहता है। आदमी प्रकृति के ही सारतत्त्व को अपनी तमाम गतिविधियों और गत्यात्मक कल्पनाओं के अनुभव में खोजने की चेष्टा करता है। हर सम्भावित तरीके से वह सम्पूर्ण जगत् के। साथ एकात्म हो जाने की चेष्टा करता है। जमीन खोदकर एक गड्ढा बनाने जैसी कुछ क्रियाएं अन्य सेक्सुअल क्रियाओं की ओर संकेत भले ही करें, किंतु आदमी की इसमें रुचि काम-वासना के कारण नहीं होती, बल्कि इन सारे कार्यों से व्यक्ति का वह मानस निर्मित होता है, जो उसकी अपनी काम- शक्ति को अतिरंजित करता है। पुरुष को यदि एकनिष्ठता लुभाती है, तो इसका प्रतीक नारी का कौमार्य नहीं, बल्कि उसकी एकनिष्ठता की वह चाह है, जिससे वह कौमार्य को इतना पवित्र बना देता है। काम, युद्ध, खेल और कला के द्वारा व्यक्ति के जीव-जगत् में होने की प्रक्रिया संकेतित होती है। ये सारे क्रिया-कलाप काम-वासना के दृष्टिकोण से व्यक्ति द्वारा अपने चुनाव की शक्ति के साथ नियोजित होने पर एक विशेष रूप ले लेते हैं। सत्तात्मक दृष्टिकोण से जीवन को समझने का अर्थ चुनाव की एकात्मकता को पुनः प्राप्त करना हुआ। चुनाव की इसी अवधारणा को मनोविश्लेषक तत्त्ववाद के नाम से खारिज करता है। इसके बदले में वह सामूहिक अचेतन मन की अवधारणा को प्रतिस्थापित करता है। यह वही अचेतन है, जो सार्वभौमिक संकेत और पहले से बुने गए काल्पनिक प्रतीक को खो देता है। इससे सपनों की एक बनी-बनाई व्याख्या और अर्थहीन कार्य-कलापों की मानवीय नियति में भ्रमों की अनुरूपता उपस्थित होती है। स्वतंत्रता इन सारी व्याख्याओं को नकारती है, किंतु इसका अर्थ यह भी नहीं हुआ कि हम इन सब परेशान करने वाले अनुमोदनों और सम्मुष्टियों की व्याख्याओं की सम्भावनाएं ही न रखें।

कुछ नियंताओं की उपस्थिति से स्वतंत्रता का सम्पूर्ण विचार हो असंगत नहीं ठहराया जा सकता। कुछ सैद्धांतिक त्रुटियों के बावजूद मनोविश्लेषण की पद्धति की सफलता का कारण प्रत्येक व्यक्ति में कुछ अकाव्य तत्त्वों और उपादानों की उपस्थिति ही है। पारिस्थितिक प्रयोगों और ढांचों में घटित घटनाओं के बीच समानता के बादलों में निर्णय की बिजली भी कौंध जाया करती है। शरीर- संरचना ही अस्तित्व की नियति है। फ्रायड ने कहा और मैर्लोपेती ने इसे ही दोहराते हुए शरीर को व्यापकता को स्वीकार किया। अस्तित्व एक है और वैयक्तिक अस्तित्व तथा जगत् के बीच की दूरी को पाटने के लिए वह अपने को

आवश्यक अवयवों में प्रकट करता है। अत: कुछ निश्चित उपादान सत्तामूलक और सेक्सुअल सम्बंधों के बीच हमेशा मिलेंगे। इतिहास के किसी विशेष काल की आर्थिक, तकनीकी और सामाजिक संरचना इस बात को प्रकट करती है कि इसके प्रत्येक सदस्य का एक ही जगत् होता है और एक ही कार्यक्षेत्र भी। स्त्री और पुरुष के जगत् अलग-अलग नहीं होंगे और दी हुई परिस्थितियों में ही हमें विशिष्टताओं का सादृश्य देखना होगा। यह अनुरूपता किसी कठोर सार्वभौमिकता को स्थापित न करके, यह स्थापित करती है कि व्यक्तिगत मामलों में कुछ सामान्य टाइप भी पहचाने जाने चाहिए।

मुझे ऐसी अनुरूपता रहस्यमय अचेतन द्वारा विकसित की गई कोई दृष्टांत-कथा नहीं लगती। यह तो किसी विशिष्ट वस्तु को समतुल्यता के माध्यम से ही कुछ विशिष्टताएं हासिल करती है। प्रतीकात्मक विशिष्टता इसी प्रकार बहुसंख्यक व्यक्तियों के सामने प्रकट होती है, क्योंकि एक का परिस्थितिगत अस्तित्व दूसरे वैयक्तिक अस्तित्व के साथ जुड़ा होता है। प्रतीक न तो स्वर्ग से उतरकर जमीन पर आता है, न समुद्र के गर्भ से निकलता है। लावे की तरह इसका विस्तारण उसी प्रकार मानवीय वास्तविकता के द्वारा किया जाता है, जो एक ही साथ स्व भी होती है और स्व से विच्छिन्न भी। इसी से व्यक्तिगत अन्वेषणों का निजी महत्त्व मालूम पड़ता है। सिद्धांत के खिलाफ जाकर भी मनोविश्लेषक को व्यवहार में इन व्यक्तिगत अन्वेषणों को स्थान देना पड़ता है।

यदि हम मनोविश्लेषण में जननेंद्रिय को दिए गए अत्यधिक महत्त्व का कारण समझना चाहें, तो मानना पड़ेगा कि यह एक अस्तित्वमूलक तथ्य है और व्यक्ति की प्रवृत्ति और झुकाव अलगाव की ओर होता है। अपनी स्वतंत्रता के कारण उत्पन्न चिंता के ही कारण वह अपने स्व को भौतिक वस्तुओं में विलीन कर देना चाहता है। यह अपने आपसे एक प्रकार का पलायन है। यह प्रवृत्ति इतनी अधिक मौलिक है कि मां के गर्भ से निकलते ही बच्चा अपने अलगावित अस्तित्व को महसूस करने के लिए बाध्य हो जाता है।

सभ्य समाज में व्यक्ति अपने ईगो, अपने नाम, अपनी सम्पत्ति और अपने काम से अलगावित होता है। अपने आपसे एकात्म होने में असफल होने के कारण वह आत्म-पलायन का सुविधावादी लोभ नहीं छोड़ पाता। एक छोटे लड़के के लिए जननेंद्रिय की भूमिका प्रबल होती है। बच्चे के लिए वह एक ही साथ एक बाहरी वस्तु भी है और उसकी आत्म भी। जननेंद्रिय को व्यक्ति ने एक ही साथ निजी और अपने से बाहर अन्यता की भी स्थिति प्रदान की है। व्यक्ति की विशिष्ट सर्वोपरिता जननेंद्रिय में ही एक छोटा आकार ग्रहण करती है और उसके अहं का विषय बनती है। चूंकि लिंग को पुरुष से बाहर रखा गया है, अत: अपने अंतर्वैयक्तिक जीवन में वह इससे प्राप्त जीवन-शक्ति को एकीकृत करना चाहता है। पुरुष का अपना सामर्थ्यपूर्ण महत्त्व उसके लिंग पर आधारित हो जाता है। बच्चा अपने लिंग के कारण ही अपने अनुभवों से अनुभवातीत की ओर निरंतर अतिक्रमण करता

रहता है। अतिक्रमण की यह घटना उसकी नियति है। यदि इसमें पिता के द्वारा कोई बाधा प्रकट की जाए, तो उसमें पंगुता को ग्रंथि आ जाती है।

चूंकि छोटी लड़की के पास ऐसा कोई भी अंग नहीं, जो उसका 'एल्टर ईगो' बन सके इसलिए वह भौतिक पदार्थों से न तो अलगावित होती है और न अपनी आत्मनिष्ठा पुनः प्राप्त करती है। इसीलिए उसका सम्पूर्ण अस्तित्व ही एक वस्तु का रूप ग्रहण कर लेता है। उसका काम अपने आपको चेतना से इतर एक वस्तु के रूप में प्रस्थापित करना है। वह अपने को लड़के की तुलना में गौण माने या न माने या अपनी इस हीनता से परिचित न भी हो, किंतु लिंग का अभाव उसको अपने आपको सचेत रूप से एक सेक्सुअल जीवन के रूप में विकसित नहीं होने देता। इसके कई परिणाम होते हैं। चूंकि पुरुष का लिंग अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है और यह महत्त्व समाज तथा व्यवस्था द्वारा अनुकूलित भी कर दिया जाता है, अत: लिंग एक प्रकार की सत्ता एवं ताकत का परिचायक हो जाता है। आदिम मातृ-प्रथा वाले समाज में पुरुष के लिंग को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता था। सत्य तो यह है कि प्रकृति से प्राप्त एक शारीरिक सुविधा पर आधारित मानवीय सुविधा पूरी परिस्थिति के संदर्भ में ही महत्त्व पा सकती है, न कि मानवीय इतिहास से परे। मनोविश्लेषण अपना सत्य केवल ऐतिहासिक संदर्भ में ही रख सकता है।

औरत की चेतना सामाजिक परिस्थितियों और समाज पर ही निर्भर करती है। उसके समस्त मनोवेगों, जीवन तथा अचेतन को अंत:कृत करते हुए मनोविश्लेषण की भाषा वास्तव में उसके वैयक्तिक जीवन की घटनाओं को भी अभिव्यक्त करती है। ग्रंथियां और प्रवृत्तियां आदि शब्द इन्हीं निहितार्थों को प्रकट करते हैं, जीवन का जगत् से एक सम्बंध है और व्यक्ति जगत् के माध्यम से ही अपने वरण के संदर्भ में अपने आपको परिभाषित करता है। अतः हमारे प्रश्नों का उत्तर केवल व्यक्ति में ही नहीं, बल्कि व्यक्ति से सम्बंधित जगत् में मिलेगा।

मनोविश्लेषण इस बात की व्याख्या करने में सर्वथा असमर्थ है कि औरत अन्या क्यों है? फ्रायड ने स्वयं ही इस बात को स्वीकार किया है कि लिंग की आराधना वास्तव में पितृसत्ता का प्रतीक है। फ्रायड पुरुष की श्रेष्ठता के उद्गम के बारे में अपना अज्ञान भी स्वीकार करते हैं।

अतः हम मनोविश्लेषण की पद्धति को खारिज करते हैं, किंतु मनोविज्ञान अंतर्दृष्टि के महत्त्व को नहीं नकारते । पहली बात तो यह है कि हम सेक्सुअलिटी को एक प्राकानुभविक विवरण को तरह नहीं स्वीकार सकते और न ही अपने सारे अनुभवों को इसमें निहित कर सकते हैं। औरत की काम-शक्ति का अध्ययन फ्रायड ने आनुषंगिक रूप में भी किया है। उन्होंने पुरुष के प्रति स्त्री के आकर्षण में निहित मौलिक द्वयर्थकता की उपेक्षा की है। फ्रायडियन और ऐडलेरियन मनोविश्लेषक पुरुष सेक्स का सामना होने से

औरत में उत्पन्न उद्विग्नता और चिंता को औरत की कुंठित इच्छा का विपरिवर्तन मानते हैं। स्टेकल ने यहीं पर मौलिक प्रतिक्रिया को भाषा की संज्ञा दी है। कौमार्य-भंग, गर्भाधान या प्रसव-पीड़ा का भय औरत की कामना का प्रतिरोध करता है, किंतु यह व्याख्या ज्यादा बौद्धिक है। इसके बजाय हम औरत की काम-शक्ति में इस मौलिक तथ्य को स्वीकारें कि उसमें तात्कालिकता के आकर्षण और विकर्षण, दोनों एक ही साथ संश्लेषित रूप से प्रकट होते हैं। हम जानते हैं कि अनेक मादा-जंतु नर-जंतु को लुभाते हुए भी संसर्ग से अपना बचाव करती हैं। इसे प्रायः ढोंग या नखरेवाजी कहा जाता है, किंतु एक आदिम व्यावहारिक तौर-तरीके को, जो कि पशु-स्तर पर है, आचरण के जटिल तौर-तरीके के रूप में व्याख्यायित करना मुझे बड़ा बेतुका लगता है। कहा, तो यह जाना चाहिए कि औरतों के नखरों और चोंचलों का उद्गम वास्तव में पशु-स्त्री में निहित है। अतः निष्क्रिय काम-शक्ति का खयाल उलझनपूर्ण है, क्योंकि कामना की परिभाषा पुरुष के दृष्टिकोण से यदि की जाए, तो यह ऊर्जस्विता है। वह कर्म-शक्ति है, प्रबल प्रेरणा है या फिर एक आंतरिक प्रवृत्ति है। इसमें निष्क्रियता कहां? रोशनी का रंग पीला या नीला हो सकता है या फिर इन दोनों के सहयोग से हरा भी हो सकता है। मेरे कहने का तात्पर्य है कि सक्रिय कामना-शक्ति के बदले औरत की ऊर्जस्विता बिल्कुल निष्क्रिय नहीं होती। यह सक्रिय और निष्क्रिय का एक अद्भुत सम्मिश्रण होती है, जिसको समझने के लिए हमें गहरी अंतर्दृष्टि चाहिए। अत: कामना-शक्ति को केवल ऊर्जा के संदर्भ में परिभाषित न करके यदि हम सेक्सुअलिटी की विशेषता अन्य मानव-दृष्टिकोणों से सम्बद्ध करके प्रस्तुत करें, तो पाएंगे कि लेना, हासिल करना, खोना, कुछ बनाना और कहीं समाप्त होना आदि पृथक-पृथक तरीके होते हैं। हमें कामनात्मक वस्तु की गुणवत्ता का भी अध्ययन करना चाहिए। केवल सेक्सुअल कर्म के जरिए नहीं, बल्कि एक सामान्य अवलोकन के भी माध्यम से। इस प्रकार का अनुसंधान मनोविश्लेषण की सीमा से परे जाकर यह स्वीकार करता है कि समग्रतः काम-जीवन अन्यूनीकृत होता है।

मैं स्त्री की नियति की समस्या को बिल्कुल दूसरे ढंग से प्रस्तुत करना चाहूंगी। मैं औरत के मूल्यांकन के क्रम में कहूंगी कि उसके आचरण को स्वतंत्रता का नया और सही आयाम दिया जाए। मैं यह विश्वास करती हूं कि औरत अपने में अनुभवातीत सर्वोपरिता की ओर संक्रमित हो जाने की क्षमता रखती है। यह उस पर निर्भर करता है कि वह अपनी क्षमता का उपयोग करे, स्वीकार करे या फिर वस्तु-रूप में अपने अलगाव में ही सीमित रह जाए। उसे इन विरोधी प्रेरणाओं का खिलौना नहीं बन कर इनका समाधान नैतिक स्तर पर करना चाहिए। मूल्य के बदले सत्ता और चुनाव के बदले काम-शक्ति संचालित एक निष्क्रिय वस्तु के रूप में औरत का मनोविश्लेषण एकांगी धारणा है। रोग के निदान के लिए सही अवधारणाओं की जरूरत होती है, किंतु मनोविश्लेषण के जगत् के साधारण और सामान्य

नारी के ऊपर प्रक्षेपित किए जाने पर ये अवधारणाएं वर्णनात्मक चौखटों की संहिता बन जाती हैं।

एक यांत्रिक मनोविज्ञान नैतिक अनुसंधान का हर समय ध्यान नहीं रख सकता। वह निषेध की भाषा तो बोल सकता है, नियंत्रण तो लागू कर सकता है, लेकिन सृजनात्मक जीवन की प्रेरणा नहीं दे सकता। मनोविज्ञान के सामान्य स्तर तक न पहुंच पाने वाले व्यक्ति का विकास कुंठित और अवरुद्ध माना जाएगा। इस अवरोध की व्याख्या एक काव्यात्मक विशेषता के रूप में की जाती है कि किसी महान् व्यक्ति के विश्लेषण से अनेक चौंकाने वाले तथ्य हमारे सामने आते हैं। मनोविज्ञान हमसे यह कहता है कि उदात्तीकरण ने औरत के जीवन में स्थान नहीं लिया।

मनोविज्ञान व्यक्ति का चुनाव नहीं करता। यह ठीक है कि परिस्थितियों का प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है और मनोविज्ञान को अतीत के विश्लेषण का अधिकार प्राप्त है। हम यह भी मानेंगे कि व्यक्ति स्थिति-विशेष में अपने सम्पर्कों से भी प्रभावित होता है, किंतु यह भी मानना होगा कि भविष्य के अपने अंगीकृत जीवन को बाह्य परियोजनाओं के संदर्भ में रखने का चुनाव व्यक्ति का निजी भी हो सकता है। यहां कार्य-कारण का नियतत्त्ववाद लागू नहीं हो सकता और न अप्रामाणिक निष्कर्षों के लिए कोई सामान्य मानदंड ही प्रस्तुत किया जा सकता है। मनोविश्लेषण जब यह कहता है कि व्यक्ति अपने से बाहर या तो अपनी मां की तस्वीर होता है या पिता का प्रारूप, तब 'वह' वह नहीं रहता। उसका सहज प्रकटीकरण सम्भव नहीं रहता। उसका सहज विकास किन्हीं अन्य शक्तियों से संचालित होने लगता है। औरत के जीवन में दो प्रकार के अलगाव दिखाए गए हैं। पुरुष के साथ एकात्म होना चाहने पर भी वह कुंठित होती है, क्योंकि वह औरत ही हो सकती है, पुरुष नहीं और यदि वह एक सच्ची औरत होना चाहती है, तब वस्तु-रूप में अन्या' होना उसकी नियति है, लेकिन अपनी वस्तुता की स्वीकृति में क्या वह फिर भी एक 'आत्म' रह जाती है?

अपने 'स्व' के अतिक्रमण में अपनी सही समस्या का निदान वास्तविकता से पलायन की जगह अनुभव से अनुभवातीत सर्वोपरिता की खोज में है। उसे अपने सामने खुली सम्भावनाओं पर दृष्टि रखनी है। इनमें से स्त्रियोचित दृष्टिकोण की उपयुक्त सम्भावना खोजना है। अभिभावकों के बताए हुए रास्ते पर बच्चे के चलने का अर्थ है कि उसने अपने अभिभावकों की परियोजनाओं को स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया है। यहां किसी भी स्त्रियोचित चुनाव के उद्देश्य को पुरुषोचित कहना अवांछनीय होगा। स्त्री के किसी भी अतिक्रमण को ऐडलर जैसे मनोवैज्ञानिक भी एक मर्दाना प्रतिरोध ही कहते है। ऐडलर के अनुसार पेड़ पर चढ़ने वाली लड़की लड़कों की तरह समानता ही दिखाना चाहती है। ऐडलर यह नहीं समझना चाहते कि वह लड़की किसी को कुछ दिखाना नहीं चाहती। चेतन या अचेतन रूप में उसकी कोई भी ऐसी ख्वाहिश नहीं, जिसमें वह दूसरों के सामने श्रेष्ठता

सिद्ध करना चाहती हो। उसे पेड़ पर चढ़ना अच्छा लगता है और वह चढ़ती है। तस्वीर बनाना, लिखना या राजनीति में भाग लेना, ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जिन्हें वह अपने लिए करती है। इस तथ्य को नकारना और यह कहना कि उसमें पुरुष के प्रति डाह है, मानव-इतिहास को गलत करना होगा।

वस्तुत: मनोविश्लेषण का पूरा विवेचन प्राय: पुरुष मनोविश्लेषकों द्वारा ही किया गया है। यह मनोविज्ञान ही है, जिसमें पुरुष की परिभाषा मानव-प्राणी के रूप में और स्त्री की परिभाषा नारी रूप में की गई है। जब स्त्री सर्वोपरिता की ओर बढ़ती है, तो कहा जाता है कि वह पुरुष को बराबरी करती है। लड़की माता-पिता के बीच निरंतर तादात्म्य-बोध के द्वंद्व में फंसी रहती है। प्रश्न है कि वह पौरुषीय हो या नारी-सुलभ प्रवृत्तियों को ही सुधारे? मेरे मत से इसके बदले स्त्री का सही द्वंद्व यह है कि या तो वह अपनी 'अन्यता' की नियति को स्वीकार कर ले या फिर अपनी आत्म-सत्त की वैयक्तिकता स्थापित करे । औरत वह मानव-प्राणी है, जो मूल्यों के जगत् में अपने होने का मूल उसी जगत् में खोज रही है, जो आर्थिक और सामाजिक संरचना को जानने के लिए अनिवार्य है। हमें औरत को पूरी परिस्थिति के अस्तित्वगत परिप्रेक्ष्य में ही समझना होगा।

स्त्री के प्रति ऐतिहासिक भौतिकतावादी दृष्टिकोण

स्त्री-जाति के सम्बंध में ऐतिहासिक भौतिकतावाद का सिद्धांत अनेक महत्त्वपूर्ण सच्चाइयां प्रकाश में लाया है। उसके अनुसार, मनुष्यता पशु-जगत् की उपजाति न होकर एक ऐतिहासिक विकास है। वस्तुतः मानव-समाज स्थूल नैतिकता के विरुद्ध है। मनुष्य निष्क्रिय रूप प्रकृति के सम्मुख आत्म-समर्पण न करके उसके ऊपर नियंत्रण करने की चेष्टा करता है। उसकी यह चुनौती और अहंकार किसी तरह की आंतरिक बाध्यता न होकर व्यावहारिक क्रियाओं में वस्तुपरक ढंग से जगत् में घटित सच्चाई है।

औरत को केवल सेक्सुअल अवयवी नहीं समझा जा सकता। जैविक विशेषताओं का भी वहीं तक महत्त्व है, जहां तक वे सक्रिय रूप से ठोस मूल्यों के निर्माण में सहायक होती हैं। औरत का आत्म- बोध केवल उसकी सेक्सुअलिटी से परिभाषित नहीं किया जा सकती। यह समाज की आर्थिक व्यवस्था द्वारा उत्पन्न परिस्थिति और मानव-समाज के तकनीकी विकास के स्तर को परखने पर निर्भर करता है। हम देख चुके हैं कि जैविक रूप से औरत की दो मुख्य विशेषताएं होती हैं। एक तो जगत् पर उसकी पकड़ पुरुष की अपेक्षा कम होती है, और दूसरे वह अपनी जाति से अधिक स्थितिग्रस्त होती है, किंतु ये तथ्य सामाजिक और आर्थिक संदर्भ में बिल्कुल ही दूसरे मूल्य बन जाते हैं। मानव-इतिहास में जगत् पर अधिकार प्राप्त करना मात्र शरीर द्वारा सम्भव नहीं होता। हाथ को सहायता देने

के लिए सभ्यता के विकास के साथ नए उपकरण प्रयुक्त होने लगे। यह ठीक है कि आदिम काल में मनुष्य को केवल वन्य-पशुओं का सामना करने और चट्टानों को तोड़कर रास्ता बनाने के लिए बाहुबल की जरूरत अधिक पड़ती थी। उस समय पुरुष की अदम्य शक्ति की तुलना में औरत कमजोर सिद्ध होती थी, लेकिन आज तकनीकी विकास ने औरत और पुरुष के इस भेद को मिटा दिया है। अब पुरुष को शारीरिक शक्ति की जरूरत पहले की तरह नहीं रही। आज के अनेक आधुनिक ऊर्जा- सम्पन्न यंत्र केवल बटन दबाकर नियंत्रित किए जा सकते हैं। अतः आधुनिक संसार में कार्य-व्यापारों के लिए शारीरिक शक्ति की जरूरत घटती जा रही है।

विभिन्न देशों में मातृत्व की गरिमा व्यवस्था के अंतर को देखते हुए आंकी जानी चाहिए। आधुनिक समाज में ऐच्छिक मातृत्व का प्रचलन बढ़ रहा है। गर्भवती स्त्री की सुरक्षा और संतान के कल्याण की व्यवस्था समाज और राजतंत्र पर निर्भर रहती है। आधुनिक समाज में कामकाजी स्त्रियों पर गर्भाधान से पड़ने वाले अतिरिक्त बोझ को कार्यगत परिस्थितियों में सुधार और वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग द्वारा हलका किया जा सकता है। अपनी पुस्तक परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' में एंगेल्स कहते हैं कि औरत का इतिहास वास्तव में तकनीक के इतिहास पर निर्भर करता है। पाषाण युग में खेती का अधिकारी पूरा कबीला होता था तथा हल और फावड़े अविकसित अवस्था में थे। पुरुष को खेती करनी पड़ती थी और औरत बागवानी संभालती थी। श्रम के इस आदिम विभाजन के काल में स्त्री और पुरुष पारस्परिक समानता के आधार पर समाज को संगठित करते थे। वस्तुतः अधिक शारीरिक शक्ति को अपेक्षा वाले काम पुरुष और कम शारीरिक शक्ति वाले काम स्त्रियां करती थीं। धातुओं के सम्बंध में जानकारी बढ़ने के साथ विकास की सम्भावनाएं अधिक व्यापक हुईं। जंगलों को काट-काटकर मैदानों में बदलने के लिए ज्यादा कठिन श्रम की आवश्यकता पड़ने पर आदमी ने दूसरों को अपनी ताकत से गुलाम बनाना शुरू किया। व्यक्तिगत सम्पत्ति के लोभ से पुरुष में स्वामित्व की भावना विकसित हुई। वह जमीन का मालिक था, वह गुलामों का मालिक था और अब बना स्त्री का भी मालिक। यहीं से औरत की गुलामी की कहानी शुरू होती है। जिस स्थिति ने घरेलू कामकाज संभालने के कारण औरत को परिवार में सर्वोच्च सत्ता के सिंहासन पर बैठाया था, वही अब औरत की गुलामी का आधार बन गई। पुरुष । उस पर स्वामित्व मिला। पुरुष के उत्पादक श्रम की तुलना में घरेलू कामों का विशेष महत्त्व नहीं रह गया। अब उत्पादक श्रम ही सब कुछ था, क्योंकि उसी के विनिमय से अर्थ की प्राप्ति होती थी। घर का काम अब आर्थिक समाज में केवल एक सहायक की नगण्य भूमिका समझा जाने लगा। यहीं हम देखते हैं कि व्यक्तिगत सम्पत्ति के साथ पितृसत्तात्मक परिवारों का उदय हुआ। इस प्रकार के परिवार में औरत की एक अधीनस्थ स्थिति ही सम्भव थी।

सत्ता के मद में पुरुष भोग-विलास में लीन रहने लगा। वह गुलामों पर अत्याचार और वेश्याओं से व्यभिचार करने लगा। इसी क्रम में बहुसंग और बहुविवाह के अधिकार भी पुरुष ने प्राप्त किए। आर्थिक दमन से उपजे सामाजिक दमन का शिकार औरत हुई।

औरत का भाग्य और समाजवाद की स्थापना अनिवार्यतः परस्पर सम्बद्ध हैं, जैसा कि 'बेबल' ने भी लिखा है, "औरत और सर्वहारा, दोनों ही दलित हैं और दोनों के सामाजिक जागरण की सम्भावना यांत्रिक सभ्यता में अधिक पाई जाती हैं।" औरत की समस्या उसकी श्रम की क्षमता को समस्या में न्यूनीकृत की जा सकती हैं, किंतु आधुनिक विकसित यांत्रिकी ने क्षमता के स्तर पर भी स्त्रियों को पुरुष के बराबर खड़ा कर दिया है। केवल पूंजीवादी पितृ-तंत्र ही अधिकांश देशों में औरत और पुरुष की एकता को हासिल करने में बाधा देता है। पूंजीवादी अवरोधों की समाप्ति के साथ ही स्त्री और पुरुष समानाधिकार प्राप्त कर लेंगे, जैसा कि हम सोवियत समाज में देख रहे हैं। दुनिया में समाजवादी समाज की स्थापना हो जाने पर स्त्री और पुरुष का वर्ग-भेद भी नहीं होगा, बल्कि समानता के स्तर पर उत्पादन करते स्त्री-पुरुषों का एक ही वर्ग होगा-श्रमिक-वर्ग।

उपरोक्त सारे विचारों की विडम्बना यह है कि वे स्त्री की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या को पीछे ढकेल देते हैं। हमारी मूल समस्या तो इतिहास-प्रवाह में सार्वजनिक स्वामित्व के स्थान पर व्यक्तिगत स्वामित्व के उद्गम को जानने की है। एंगेल्स ने स्वयं ही कहा है कि वर्तमान समय में हम इसके बारे में कुछ नहीं जानते । एंगेल्स इस सम्बंध में कोई व्याख्या भी नहीं प्रस्तुत करते। वे यह भी स्पष्ट नहीं करते कि व्यक्तिगत सम्पत्ति की संस्था क्यों अनिवार्यतः औरत की गुलामी का कारण बनती है। वस्तुतः ऐतिहासिक भौतिकतावाद की सीमाओं की उपेक्षा करके हम स्त्रियों की बुनियादी समस्याओं को नहीं समझ सकते। आखिर पुरुष की रुचि सम्पत्ति में क्यों और कहां से आई और क्या सामाजिक संस्थाओं का अपना कोई स्रोत होता है ? इस दृष्टि से एंगेल्स का विवरण बड़ा सतही लगता है। दरअसल वास्तविक घटनाओं पर आधारित समस्याएं तो आकस्मिक रूप से हमारे सामने आती है। समस्या की प्रामाणिक समझदारी के लिए समग्र मनुष्य की समझ होनी चाहिए। आर्थिक मनुष्य का विश्लेषण करना निश्चय ही एक अमूर्त चेष्टा है।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तिगत अधिकारों को अस्तित्व की मौलिक स्थिति के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। इससे प्रतीत होता है कि वैयक्तिक चेतना में पहले स्वयं को अलग व्यक्ति की दृष्टि से सोचने की प्रवृत्ति जरूर दिखाई दी होगी। यह स्वीकृति उस समय तक बिना किसी वैधता के आंतरिक और आत्म-केंद्रित बनी रहती है, जब तक व्यक्ति उसको वस्तु के रूप में परिणत करने का व्यावहारिक तरीका नहीं जानता। उपकरणों के अभाव में आदमी ने पहले जगत् के ऊपर अपना अधिकार नहीं समझा था। वह तो केवल अपने आपको अपने कबीले से, अपने टोटम से या फिर MANA से ही जोड़

पाता था। ताम्रयुग के साथ आदमी सर्जक बनता है। प्रकृति से भयभीत होने की अपेक्षा अब वह उस पर अधिकार प्राप्त करता है और अपने आपको एक स्वायत्त सक्रिय शक्ति की तरह स्वीकार भी करता है। अब उसे व्यक्ति के रूप में आत्म-संतुष्टि भी मिलती है। उसकी यह प्रवीणता स्वतः हासिल हो जाती है। आदमी स्वयं ही मौलिक रूप से इसके लिए संकल्प करता है। उसकी चेतना एक निष्क्रिय और सादा फलक नहीं होती, जिस पर उपलब्धि के ये सारे हाशिए किसी दूसरे ने टांग दिए हों। आदमी अपना जिंदगीनामा खुद लिखता है। वह जगत् को अपनी ताकत से अपने वश में करता है

विश्लेषण के क्रम में हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सम्पत्ति की अवधारणा औरत को दलित-अवस्था के व्यक्तिगत आधारों को स्पष्ट नहीं करती। एंगेल्स ने औरत की कमजोरी को केवल ताम्र और लौह-औजारों के विनियोजन के सम्बंध से उपजी माना। उन्होंने श्रम की क्षमता से अलग प्राकृतिक रूप से ही मां बनने को विवश औरत की एक मौलिक और ठोस असुविधा की समस्या का महत्त्व नहीं समझा। पुरुष ने सिर्फ अपने श्रम को समझ कर अतिक्रमण की अपनी क्षमता के द्वारा नए औजारों के माध्यम से नई-नई परियोजनाएं खड़ी की हैं। तांबा और कांसा जैसी धातुओं की खोज के बाद वह केवल घर के बगीचे तक सीमित नहीं रह गया। उसने बड़े-बड़े खेतों का निर्माण करना शुरू किया। कार्यक्षेत्र का विस्तार और समृद्धि की नई परियोजनाओं में औरत को एक नगण्य उपकरणमात्र समझे जाने के कारण उसकी स्थिति दासी की होती गई। पुरुष को सिर्फ इन परियोजनाओं के ही आधार पर औरत के दमन को व्याख्यायित करना अपर्याप्त होगा, क्योंकि श्रम के विभाजन से दो सेक्सों में एक मैत्रीपूर्ण सम्बंध भी तो सम्भव हो सकता था, तब फिर स्त्री और पुरुष के बीच ऐसा क्यों नहीं घटित हुआ? मैं सोचती हूं कि पौरुषीय चेतना की तानाशाही ने हमेशा वस्तुपरक ढंग से अपनी प्रभुता स्थापित की। मानवीय चेतना में मौलिक रूप से अन्यता को कोटि अंतर्निहित है। मनुष्य की मौलिक चाह दूसरों पर शासन करने की रहती है, अतः तांबे के औजारों की खोज के कारण औरत का दमन नहीं हुआ, बल्कि उसके दमन का मौलिक कारण मानवीय चेतना को अंतर्वर्ती संरचना हैं।

एंगेल्स के विचारों में एक और मौलिक कमी रह गई। उन्होंने स्त्री-पुरुष के बीच के विरोध को वर्ग-संघर्ष की संज्ञा देनी चाही। यह ठीक है कि काफी हद तक स्त्री-पुरुष का संघर्ष वर्ग-संघर्ष का ही प्रतिरूप लगता है, किंतु इन दोनों संघर्षों को एक ही रूप में रखना ठीक नहीं होगा। पहली बात तो यह है कि वर्ग-भेद का कोई जैविक आधार नहीं है। गुलाम अपनी गुलामी में भी अपने स्वामी के विरोध में अपने प्रति सचेत रहता है और सर्वहारा भी हमेशा विद्रोह की चेष्टा करता रहता है। वह हमेशा अपने शोषक के सामने एक धमकी भरी चुनौती की तरह उपस्थित होता है। सामूहिक जीवन में स्त्री और पुरुष का स्वार्थ प्रायः एक होता है। पुरुष औरत को अपना सह-अपराधी बनाता अतः औरत में न तो सर्वहारा की

तरह विद्रोह करने की इच्छा निहित है और न ही वह अपने सेक्स का विलयन पुरुष में चाहती है। वह केवल सेक्सुअल भिन्नता के कारण कुछ उत्तर-कथाओं को मिटा देना चाहती है।

इसके अलावा एक और बात भी महत्त्वपूर्ण है कि औरत को केवल हम श्रमिक की तरह नहीं स्वीकार सकते । उसकी उत्पादन क्षमता जितनी महत्त्वपूर्ण है उतनी ही उसकी प्रजनन-शक्ति भी। इन दोनों का सामाजिक अर्थव्यवस्था और वैयक्तिक जीवन में बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण काम था। एंगेल्स समस्या का एक अमूर्त निवारण खोजते हैं। वह कहते हैं कि समाजवादी समूह परिवार की व्यवस्था को मिटा देगा। हम जानते हैं कि सोवियत समाज को कितनी बार और कितने आमूल रूप से परिवार के बारे में अपनी नीतियों में परिवर्तन लाना पड़ा है। परिवार की व्यवस्था की समाप्ति के बाद भी औरत की मुक्ति सम्भव नहीं है । नाजियों की हुकूमत इस बात का ज्वलंत उदाहरण है कि औरत राज्य से सम्बंधित होते हुए भी पुरुषों द्वारा कम दमित नहीं हुई।

एक सही समाजवादी नैतिकता न्याय दिलाने के लिए स्वाधीनता का दमन नहीं करती और वह अपने सदस्यों की वैयक्तिकता खत्म किए बिना भी कर्तव्य की चेतना पैदा कर सकती है। गर्भधारण और फौज की नौकरी को एक ही जैसा काम नहीं माना जा सकता। औरत की जिंदगी बच्चों के दायित्वों के कारण ज्यादा गम्भीरता से और ज्यादा गहरे टूटती है। औरत को शक्ति की जरूरत न केवल सम्भोग और मातृत्व के दायित्वों के निर्वाह के लिए पड़ती है, बल्कि तमाम दूसरे कार्यों और दायित्वों के निर्वाह के लिए भी पड़ती है। बौद्धिक भौतिकतावाद व्यर्थ ही सेक्सुअलिटी के नाटकीय पक्ष को नकारना चाहता है। सेक्सुअल अंतःप्रवृत्तियों को किसी नियम के अधीन नहीं किया जा सकता। सच तो यह है कि ये प्रवृत्तियां सामाजिक जरूरतों के साथ एकात्म होना ही नहीं चाहतीं, क्योंकि आदमी की कामवासना में हमेशा शाश्वत के विरुद्ध क्षणों का विद्रोह रहता आया है। दूसरे व्यक्ति के संचालन और शोषण करने वाले व्यक्ति के भी व्यक्तित्व का हनन होता है। हम एक जीवित सहजता को जड़ पदार्थों की तरह अपने संकल्पों से संचालित नहीं कर सकते और न ही अपनी ताकत से उसको हासिल कर सकते हैं। ऐसा कोई भी रास्ता नहीं है जो औरत को इस बात के लिए बाध्य करे कि उसके जीवन का अंतिम उद्देश्य मातृत्व और विवाह से सम्बंधित कानून तथा नैतिकता का पालनमात्र है।

औरत को केवल एक उत्पादक-शक्ति मानना बिल्कुल असम्भव है। वह अन्या है, जिसके माध्यम से पुरुष अपने आपको खोजता है। व्यर्थ ही सत्तात्मक शासन मनोविश्लेषण के निषेधों के साथ समझौता करते हुए यह नियत करता है कि इन सब व्यक्तिगत चाहों और कामनाओं की, नागरिकों के जीवन में समूह से एकात्म होने के लिए, कोई आवश्यकता नहीं। मैं तो यह कहूंगी कि कामनात्मक अनुभव ही वह एकल अनुभव है, जिसको

सामान्यता से व्यक्ति अपनी वैयक्तिकता हासिल करता है। इसके लिए गणतांत्रिक समाजवाद में जहां वर्ग-भेद मिटा दिए गए हैं, वहां व्यक्ति नहीं मिटाया जा सका, वैयक्तिक नीति का प्रश्न हमेशा अपना महत्त्व रखेगा और इसलिए सेक्सुअल विभेदीकरण का महत्त्व बना रहेगा। सेक्सुअल सम्बंध जो पुरुष को स्त्री से जोड़ते हैं, ऐसे नहीं जिनमें पुरुष औरत को ढोता है। औरत का जन्म केवल तांबे के औजारों के जरिए नहीं हुआ और न ही आज की यांत्रिकता उसकी दासता का उन्मूलन कर सकेगी। औरत का अपने लिए प्रत्येक अधिकार का दावा या फिर अपने आपको एक मानवीय व्यक्ति की तरह प्रतिस्थापित करने की उसकी चाह का यह अर्थ नहीं कि वह अपनी स्थिति की कोमलता और विलक्षणता के प्रति अंधी हो जाए। अपनी परिस्थिति को समझने के लिए उसके लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह ऐतिहासिक भौतिकवाद की उन सीमाओं का अतिक्रमण करे, जो औरत या मर्द को केवल आर्थिक इकाई के रूप में देखती हैं।

प्रत्येक नाटकीय घटना की तरह मानवता के आर्थिक इतिहास की तह में भी एक अस्तित्ववादी आधारशिला रहती है, जो हमें उस विशिष्ट प्रकार को समझने में मदद करती है, जिसको हम मानव- जीवन कहते हैं। फ्रायड की देन यह है कि उन्होंने अस्तित्व को शरीर माना। एक ऐसा शरीर, जो दूसरे मानव-शरीरों का सामना करते हुए अपनी अस्तित्वजनक परिस्थिति के ठोस रूप में अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार मार्क्सवादी सिद्धांत में भी सत्तात्मक अभिप्रेरणाओं और कुछ होने की परियोजनाओं को हम पाते हैं, जो वास्तव में आर्थिक सम्भावनाओं के आधार और तकनीकी विकास के कारण होने वाली ठोस परिस्थितियों के संदर्भ में ही व्यक्ति के अस्तित्व को प्रतिपादित करती हैं। जब तक ये सारे आयाम और विशेषताएं सच्चाई की सम्पूर्णता में निहित नहीं किए जाते, तब तक केवल सेक्सुअलिटी और तकनीक कुछ भी अभिव्यक्त करने में असमर्थ रहेंगे। इसलिए फ्रायड के सुपर ईगो के निषेध और अहं की गत्यात्मकता हमें आकस्मिक लगती है और एंगेल्स का परिवार के इतिहास का विवरण तथा उससे सम्बंधित महत्त्वपूर्ण विकास-क्रम हमें रहस्यात्मक 'तकदीर' की अभिव्यक्ति-भर लगता है। औरत को खोजने के प्रयास में हम उन सब योगदानों की उपेक्षा नहीं करेंगे, जो हमें जीव-विज्ञान, मनोविश्लेषण और ऐतिहासिक भौतिकवाद से मिले हैं, किंतु हम इतना जरूर कहेंगे कि शरीर, सेक्सुअल जीवन और तकनीक के सारे साधन वास्तव में आदमी की जरूरत के लिए ही बने हैं और यह आदमी ही है, जो इनको अपने अस्तित्व के संदर्भ में विनियोजित करता है। 'अस्तित्व' अनुभव से अनुभवातीत की ओर जाने की चेष्टा मांसपेशियों, लिंग और जगत् में मूल्यों का निरूपण करने वाले तमाम उपकरणों की मांगलिक परियोजनाओं के माध्यम से करता है।

पुरुष की शारीरिक ताकत, अनुभवों द्वारा निरूपित मूल्य और नए-से-नए आविष्कृत उपकरणों को हम जागतिक मूल्यों के संदर्भ में तभी परिभाषित. कर सकते हैं, जब हम इस

बात की तथ्यगत सत्यता स्वीकारें कि व्यक्ति-मानव इन तमाम उपकरणों की मांगलिक परियोजना द्वारा स्वयं की स्थितिग्रस्तता का अतिक्रमण कर सर्वोपरिता की ओर अग्रसर होने की चेष्टा करता है। यह महती परियोजना ही, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, व्यक्तिमात्र के जीवन की सर्वोपरि अभीप्सा है एवं सभ्यता के तमाम विकास का आधारभूत कारण।

दो : इतिहास

यायावर स्त्री

यह दुनिया हमेशा पुरुष की रही, किंतु क्यों? स्त्री को अधीनस्थ रहना पड़ा। हमें प्रागैतिहासिक काल को अस्तित्ववादी दर्शन के दृष्टिकोण से देखना होगा। मैंने पहले भी लिखा है कि जब दो मानव-संवर्ग साथ रहते हैं, तो इनमें से प्रत्येक कोटि दूसरी कोटि पर अपनी सत्ता स्थापित करना चाहती है। यदि दोनों एक-दूसरे का निरोध कर सकें, तो एक पारस्परिक सम्बंध स्थापित होता है। यह सम्बंध कभी दुश्मनी का, कभी दोस्ती का और कभी तनाव का होता है। यदि इनमें से एक ज्यादा सुविधा सम्पन्न हुआ, तो वह दूसरे को अधीनस्थ कर लेता है। पुरुष स्त्री पर ज्यादा प्रभावी रहा, किंतु वे कौन-सी विशिष्ट सुविधाएं थीं, जिनके कारण पुरुष की प्रभुत्व की यह इच्छा पूरी हो सकी।

मानव-जातिशास्त्र आदिकालीन मानव-समाज के बारे में अत्यंत विरोधाभासी बातें हमारे सामने रखता है । प्राक्-कृषि-काल में स्त्री की स्थिति कैसी थी, इस सम्बंध में अनुमान करना कठिन है। हम इतना-भर जानते हैं कि उसको कठिन श्रम करना पड़ता था और घर-परिवार का ज्यादा बोझ उसी को ढोना पड़ता था। उसको यह भार इसलिए भी सौंपा गया कि पुरुष का हाथ खाली रहे, ताकि जानवरों या अन्य मनुष्यों के सम्भावित आक्रमणों से वह कबीले की रक्षा कर सके। उसको ज्यादा खतरे का सामना करना पड़ता था और इसीलिए उसको ज्यादा ताकत की भी जरूरत पड़ती थी।

औरत शक्ति-सम्पन्न होती हुई भी उर्वरा थी, उसमें प्रजनन की क्षमता थी। यह क्षमता पुरुष के पास नहीं थी। औरत की यही विशेषता उसकी दासता का मूल कारण भी बनी। मासिक-धर्म, गर्भाधान एवं प्रसव-ये सारी जैविक घटनाएं उसकी काम करने की क्षमता का

ह्रास करने वाली साबित हुईं। ऐसे समय में उसे पूरी तरह पुरुष पर ही निर्भर रहना पड़ता था। वह असमर्थ थी खतरों का सामना करने में। उसे भोजन और सुरक्षा की जरूरत थी। चूंकि उन दिनों गर्भ-निरोध का कोई साधन नहीं था और न ही प्रकृति ने अन्य जीवों की भांति उसे समय-समय पर बंध्या या अप्रजननशील बनाया, अतः निरंतर संतानोत्पत्ति से उसकी शक्ति का ह्रास जरूर हुआ होगा। जिस बच्चे को वह जन्म दे रही थी, उसका पूरा बोझ उठाने में वह असमर्थ थी। यह सबसे पहला कारण था, जो अपने आपमें अत्यधिक दुष्परिणामों से भरा था। मानव-जाति के इतिहास का प्रारम्भिक काल कठिनाइयों से भरा था। कंद- मूल बटोरना, मछली मारना और शिकार करना श्रमसाध्य काम थे। जमीन को वह पूरी तरह उपजाऊ बनाना नहीं जानता था। संतानें अधिक थीं और सामूहिक साधन बहुत कम । गर्भवती रहने की लाचारी के कारण औरत काम में हाथ नहीं बंटा पाती थी, जबकि बच्चे जरूर पैदा करती जाती थी। हालांकि जाति की निरंतरता के लिए यह जरूरी भी था, किंतु इस काम में उसने अधिक उदारता बरती। यह तो । पुरुष था, जिसने उत्पादन एवं प्रजनन में संतुलन लाना चाहा, किंतु जब मानवता को सबसे अधिक संख्या में जन्म चाहिए था, तब भी औरत प्रथम स्थान नहीं ले सकी।

आदिम झुंडों एवं कबीलों के पास न तो कोई स्थायी सम्पत्ति थी और न कोई प्रदेश। आने वाली संतति के लिए उनके पास कोई सुरक्षा भी नहीं थी। बच्चे बोझ थे। बच्चे कोई चाहत नहीं थे। खानाबदोशों में शिशुहत्या एक साधारण घटना थी और जो नवजात बच जाते, वे बाद में उपेक्षा तथा पालन-पोषण के अभाव में मर जाते थे।

औरत बच्चे को जन्म-भर देती थी, किंतु सृजन का अभिमान उसमें नहीं जगा था। वह अपने को अदृश्य शक्तियों के हाथ का खिलौना-भर समझती थी और बहुधा उसके लिए प्रसव एक बोझिल कष्ट-साध्य दुर्घटना थी। जन्म देना या स्तनपान कराना जीव की नैसर्गिक क्रिया है, कोई विशेष कार्य- कलाप एवं सक्रियता नहीं। बच्चे को जन्म देना कोई ऐच्छिक परियोजना तो नहीं कि इससे स्त्री अपने अस्तित्व को एक महान् औचित्य दे सके। उसने तो अपनी जैविक नियति के सामने स्वयं को निष्क्रिय रूप से समर्पित-भर किया। घर का काम-काज इसलिए उसके कंधे पर पड़ा कि बच्चे का लालन- पालन उसी से सम्भव था। दोनों ही काम अपने आपमें अंतस्थ एवं बार-बार दोहराए जाने वाले थे। दिन-रात वह बस एक-सा काम था, जो पुश्त-दर-पुश्त शताब्दियों से औरत करती चली आ रही है, इसमें कोई नवीनता कहां?

पुरुष का किस्सा इससे बिल्कुल अलग रहा। उसने कुल एवं कबीले को संभाला, सहारा दिया। उसने अपने कार्य-कलापों द्वारा अपने जैविक तथा पशु-स्वभाव का अतिक्रमण किया। दुनिया में उसने अपनी ताकत आजमाई। उसने अपना उद्देश्य निर्दिष्ट किया और वहां तक पहुंचने के लिए नए रास्तों का निर्माण भी। संक्षेप में अपने अस्तित्व से उसने

आत्मोपलब्धि प्राप्त की। अपनी जाति को बचाए रखने के लिए उसने सृजन किया। उसने वर्तमान को तोड़कर नए भविष्य का निर्माण किया। यही कारण है कि मछली मारना या शिकार करना इतना महत्त्वपूर्ण काम माना गया। अपनी सफलता पर वह जश्न मनाता था। आज भी जब पुरुप कोई नया बांध बनाता है, कोई नया निर्माण करता है, तो अपनी वजह से उपलब्धि से आत्म-संतोष पाता है। उसने मिली हुई दुनिया का न केवल आरक्षण किया, बल्कि सीमाओं को तोड़कर नए भविष्य की नींव भी रखी।

आदि-मानव के कार्य-कलापों का एक और भी आयाम था। खूखार जानवरों से लड़ने में वह अपनी जान भी खतरे में डालता था। योद्धा खुद मरकर अपने गिरोह की इज्जत बचाता था। बड़े नाटकीय रूप से यह सिद्ध होता चला गया कि जीवन तभी महत्त्वपूर्ण है, जब वह अपने से महत् किसी अन्य उद्देश्य को फलित करे। औरत का सबसे बड़ा अभिशाप तो यह हुआ कि युद्धस्तरीय इस सारी लूटमार से उसे बिल्कुल वंचित रखा गया। जीवन देने में नहीं, बल्कि जीवन को खतरे में डालने की । आदमी जानवर के स्तर से ऊपर उठता है। यही कारण है कि श्रेष्ठता मिली पुरुष को, जो मर सकता था एवं मार सकता था। औरत तो केवल बच्चे को जन्म दे सकती थी।

यहीं पर हम सारे रहस्यों की कुंजी पाते हैं। जैविक-स्तर पर एक जाति अपना नैरंतर्य बार- बार जीवन देने की प्रक्रिया के कारण बनाए रखती है, किंतु पुरुष जीवन की निरंतरता में रहते हुए भी अपने अस्तित्व द्वारा अपनी स्थितिग्रस्तता का अतिक्रमण करता है। अपने इस अतिक्रमण की प्रक्रिया के दौरान वह नए मूल्यों को गढ़ता है। पशु-जीवन में जैविक-क्रिया की यह पुनरावृत्ति किसी परियोजना की अपेक्षा नहीं रखती। केवल अपनी जाति को बचाए रखने के अलावा नर-पशु की और कोई महत् भूमिका नहीं रहती, जबकि पुरुष अपनी जाति को वचाए रखने के अलावा अपनी संतति के लिए दुनिया का नित्य नया निर्माण करता रहता है। वह ज्यों का त्यों इस दुनिया को नहीं स्वीकारता। वह नए अनुसंधान और अन्वेषण करता है। उसकी इस सर्वोच्च सत्ता को स्वयं औरत भी स्वीकारती है, क्योंकि वह भी एक अस्तित्व है। स्त्री की भी इच्छा होती है कि वह अपनी स्थितिग्रस्तता का अतिक्रमण करे। उसकी भी परियोजनाएं महज जैविक पुनरावृत्ति की ओर नहीं, बल्कि उन्मुख होती हैं एक अलग भविष्य की ओर। अपने दिल की गहराइयों में वह इन पौरुषीय महत्त्वाकांक्षाओं का महत्त्व समझती है। वह पुरुष को उसकी सफलता के आत्मोत्सव में सहयोग देती है, भाग लेती है। उसकी त्रासदी तो यह है कि जीवन की पुनरावृत्ति करते रहना उसकी एक जैविक नियति है। उसकी दृष्टि में भी उसका यह जीवन अपने आपमें अस्तित्व का कोई औचित्य नहीं खोज पाता । जीवन की औचित्य-सिद्धि एवं तर्क- सांगत्य स्वयं जीवन के अस्तित्व से अधिक महत्त्वपूर्ण होती है।

स्त्री एवं पुरुष के सम्बंधों को हम ज्यादा गहराई से समझ पाएंगे, यदि हम हीगेल के मालिक एवं गुलाम के द्वंद्वात्मक सम्बंध की अवधारणा को सही रूप से समझ सकें। हीगेल कहते हैं कि मालिक की सुविधा यह है कि वह जीवन के विकल्प में अपनी आत्मा का स्वीकार इसलिए अधिक पाता है कि वह अपने निजी जीवन को दांव पर लगा सकता है । यह भी सत्य है कि न केवल विजयी मालिक, बल्कि परास्त गुलाम ने भी इसी खतरे को भोगा है। अत: गुलाम अपनी गुलामी के बारे में सचेत है। वह जानता है कि वह गुलाम है, जबकि औरत वह अस्तित्व है, जो जन्म तो देती है, लेकिन इसके अलावा अपने जीवन में कोई खतरा मोल नहीं लेती । वह पुरुष से कहीं संघर्षरत नहीं, बल्कि अभिषंगी है। हीगेल कहते हैं, "यह अनन्य चेतना एक निर्भर एवं पराश्रित चेतना है, जिसकी सारभूत वास्तविकता एक पशुवत् जीवन है यानी एक ऐसी जीवन-पद्धति, जो किसी दूसरे द्वारा प्रदत्त हो।" किंतु पराश्रित चेतना का यह सम्बंध भी औरत की उस अधीनस्थ चेतना से इतनी भिन्नता जरूर रखता है कि औरत भी पुरुष को सुलभ वास्तविक मूल्यों को प्राप्त करने की चाहत रखती है। यह पुरुष है, जो उस भविष्य के द्वार खोलता है, जिसमें औरत भी प्रवेश पाना चाहती है। सच्चाई तो यह है कि पुरुष के मूल्यों की बराबरी में या उनके खिलाफ औरत ने कभी स्त्री के मूल्यों को स्थापित करने की चेष्टा ही न की। यह तो पुरुष है, जो सत्ता में रहने के कारण अपनी सुविधाओं को बनाए रखने के लिए मल की भिन्नता औरत पर थोपता है। पुरुष ने औरत के लिए एक दुनिया बनाने का अधिकार अपने रखा। उसने औरत की एक ऐसी अंतर्वर्ती दुनिया बनाई, जिसमें उसको हमेशा के लिए कैद कर दिया किंतु कोई भी अस्तित्व सदा सीमाबद्ध नहीं रह सकता। समर्पिता होने के बावजूद औरत आज चाहती है कि वह इस जैविक मादा-स्तर से ऊपर उठे, अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करे।

एक अस्तित्ववादी दृष्टिकोण हमें यह समझने में मदद करता है कि कैसे खानाबदोश मानव ने जैविक और आर्थिक स्थितियों को परिवर्तित कर पुरुष की श्रेष्ठता स्थापित की। पुरुष की अपेक्षा औरत ज्यादा घाटे में रही। वह अपनी जैविक नियति का शिकार हो गई। वह मादा-पशु की तरह अपनी शारीरिक सीमाओं में प्रजनन क्षमता के कारण सदा के लिए कैद कर दी गई। मनुष्य महज जीता नहीं बल्कि अपने जीवन की सर्वोपरिता का औचित्य भी सिद्ध करना चाहता है। पुरुष ने वह सर्वोपरिता हासिल की, क्योंकि बच्चे पैदा करने का काम पुरुष का नहीं था, वह नर था और क्षणों का नियंत्रण कर भविष्य की रूपरेखा तैयार कर सकता था। यह उसका पौरुषीय क्रिया-कलाप था जिसके जरिए उसने स्वयं के अस्तित्व को सर्वोपरि मूल्य में बदलकर रख दिया। उसने जीवन की जटिल ताकतों को सुलझाने का भार अपने हाथों में रखा और स्त्री तथा प्रकृति को अधिकृत किया। हमें तो अब यह देखना है कि कैसे यह परिस्थिति सदियों से जारी रही और विकसित होती रही।

मानवता का यह हिस्सा क्यों अन्या होकर रह गया और पुरुष ने इस अन्यता को कैसे परिभाषित किया?

प्रारम्भिक कृषि-युग में स्त्री

प्रागैतिहासिक यायावर मानव-समाज में शारीरिक कमजोरी के बावजूद औरत पुरुष की इतने अधीनस्थ नहीं थी कि वह एक गुलाम कहलाए। उन दिनों पुरुष के सम्मुख स्त्री को समर्पण के लिए विवश करने वाली न कोई संस्थागत, न व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा और न कोई न्याय- व्यवस्था ही थी। धर्म अकर्मक था, पूजा एक सेक्सुअल टोटम।

खानाबदोश मानव के कृषि-जीवन में प्रवेश के साथ संस्था और कानून बने । पुरुष केवल प्राकृतिक ताकतों से ही संघर्परत नहीं रहा, बल्कि प्रकृति के सहयोग से वह जगत् का निर्माण भी करने लगा। उसने सोचना शुरू किया अपने जीवन के बारे में। इस बिंदु पर यौन-भेद सामने उभरकर आने लगे। इन सबों ने एक विशेष आकार ग्रहण किया। कृषि-समुदाय में औरत को असाधारण मान्यता मिली। इसका कारण थी उसकी प्रजनन क्षमता। खेती के लिए मानव-श्रम की आवश्यकता थी। अतः संतान का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया। एक खास प्रदेश या भूखंड पर जब आदिमानव स्थायी रूप से रहने लगा, तब पुरुष में स्वामित्व की भावना उपजी, सम्पत्ति का एकत्रीकरण शुरू हुआ। सम्पति के रखवाले को जरूरत पड़ी वंशज की, जो विरासत में इसे पा सके, अत: मातृत्व एक पवित्र कार्य बना।

सामूहिक जीवन में व्यभिचार को मान्यता प्राप्त नहीं थीं। स्त्री एवं पुरुष सामूहिक रूप से धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक अस्तित्व के सहभागी थे। उनका व्यक्तित्व शुद्ध रूप से जैविक तथ्य था। विवाह किसी भी रूप में, किसी रहस्यमय बंधन की कुंजी नहीं था। औरत अपने कबीले से जुड़ी हुई थी, पति की दासी नहीं। पूरा कबीला एक प्रतीक की पूजा करता था। भौतिक रूप से जीवन सहयोगमय था, स्पृहा पर आधारित नहीं । सामुदायिक जीवन अपने अस्तित्व को कायम रखता था और भविष्य की पीढ़ी में, संतान में परितृप्ति तथा सर्वोपरिता हासिल करता था। बच्चे ईश्वरीय देन थे। अनेक आदिमानव तो यह भी नहीं समझते थे कि पुरुष शुक्राणु से गर्भाधान होता है। अतः कौमार्य का कोई विशेष पवित्र प्रतीक नहीं था, न ही कौमार्य-भंग पति का विशेषाधिकार । बच्चे के जीवन के लिए मां की जरूरत थी। बच्चा उसके शरीर का अंश या उसके द्वारा पोषित था, अतः स्त्री कबीले की जीवनदायिनी शक्ति बनी। परिवार में उसे प्राथमिकता प्राप्त थी। प्रायः वंश का नाम मां के नाम से चलता था। सामूहिक सम्पत्ति का स्वामित्व भी औरत के पास था। वह अपने बच्चों के माध्यम से इस सम्पत्ति की रक्षा करती थी। औरत की तुलना धरती से की गई। वह धरती

की तरह उर्वरा थी, जीवन-धात्री भी। खानाबदोशों में प्रजनन जहां आकस्मिक था तथा धरती में छिपी हुई समृद्धि से लोग अनजान थे, वहीं कृषि-युग में पुरुष को मां प्रकृति की तरह लगी। स्त्री धरती की तरह थी, उतनी ही रहस्यमय । इसीलिए स्त्री को काले जादू का माध्यम माना गया। वह फलवती थी। सृजन की सारी प्रक्रिया एक प्रकार का जादुई निवेदन था। ऐसे काल में पुरुष अपनी ताकत पहचान नहीं पाया था। वह असमंजस में धरती, जादुई उर्वरा-शक्ति और अन्वेपित नए औजारों के बीच कगार पर खड़ा स्वयं को बड़ा असहाय तथा निष्क्रिय पा रहां था। वह उस प्रकृति का दास था, जो मनमाने ढंग से जीवन-मृत्यु का खेल खेलती है। इतना स्पष्ट है कि मनुष्य यौन-जीवन का महत्त्व समझ रहा था। पुरुष के लिए बच्चे या खेती की पैदावार ईश्वर की देन थी। औरत का शरीर एक रहस्यमय जादुई जगत् में जीवन का स्रोत था।

ये विश्वास आज भी अनेक भारतीय, पोलिनेशियन तथा आस्ट्रेलियन जातियों में गहराई से पाए जाते हैं। कुंछ जातियां बंध्या स्त्री को बाग-बगीचों के लिए अशुभ मानती हैं। आज भी यह माना जाता है कि जमीन की बुआई तथा कटाई यदि गर्भवती स्त्रियों से कराई जाए, बंजर जमीन पर यदि चांदनी रात में नग्न स्त्री हल चलाए, तो जमीन जरूर उर्वर होगी। कई भारतीय अंचलों में ऐसे विश्वास आज भी प्रचलित हैं।

औरत घर में रहती थी। बाग-बगीचों की रखवाली, बर्तन बनाना, कपड़े बुनना और भोजन की व्यवस्था उसके नियमित काम थे। घरेलू उद्योगों का विकास हुआ। स्त्रियां बनीं अपने कबीले की आत्मा, पुरुष भय-मिश्रित श्रद्धा से उनकी आराधना करने लगा। औरत में उसने सारी प्रकृति की झांकी देखी। वह उसकी आराध्या बनी।

पुरुष की यह स्वभावगत विशेषता है कि वह हमेशा अनन्य के संदर्भ में स्वयं के बारे में सोचता है। जगत् के बारे में उसका दृष्टिकोण द्वंद्वात्मकता का होता है। वह हमेशा द्वैत में सोचता है, अत: उसने स्वयं के संदर्भ में औरत को अन्य की कोटि में रखा । उसके चिंतन में यह द्वैत-भाव पहले इतना स्पष्ट नहीं था। पहले तो वह एक ही तत्त्व में स्त्री और पुरुष, दोनों का अवतरण मान लेता था, किंतु जैसे-जैसे औरत की भूमिका विस्तृत होती गई, वह पुरुष के लिए सम्पूर्ण रूप से अन्या होती चली गई। उसके नाना रूप उभरे । कभी पुरुप ने उसे देवी माना, तो कभी दानवी। वह प्रकट हुई पहाड़ों में, वन- प्रदेशों में, बहती रहीं झरनों में–हर जगह उसने जन्म दिया, उसी ने विनाश भी किया। मनमानी, वैभवशालिनी प्रकृति की तरह क्रूर वह स्त्री एक ही साथ मांगलिक और अशुभ, दोनों थी। कभी वह दुर्गा बनी, कभी काली। पूरे पश्चिमी एशिया में वह भिन्न-भिन्न नामों से पूजी गई। बेबीलोन में इश्तर कहलाई, सामी लोगों में अस्ताते और गाइया, रिया और सिबिल कहलाई ग्रीक सभ्यता में। इजिए में उसको आइसिस कहकर सम्बोधित किया गया। पुरुष-देव उसके अधीनस्थ थे।

स्वर्ग हो या नर्क, हर जगह स्त्री एक शक्ति बनी। पवित्रता की प्रतीक, क्योंकि उसके पार प्रजनन की जादुई शक्ति थी। उस शक्ति की पूजा की गई। ये प्राचीन युग हमें कोई साहित्य नहीं देत किंतु महान् पितृसत्तात्मक समाज अपने शिलालेखों और कालातीत परम्पराओं में उन स्मृतियों को संजीव हुए है, जब स्त्री को समाज में सर्वोपरि स्थान मिला हुआ था। ऋग्वेद के ऋचा-गीतों में स्त्री की वंदना है, उसमें हास होता है ब्राह्मण युग के साथ । वेदकालीन औरत को जो सत्ता मिली थी, कुम में उसकी स्थिति हीन बना दी गई। गर्वीला मानव अपनी संतति के साथ धीरे-धीरे बाद की रोमा सभ्यता के आगमन के साथ झुकता चला गया।

इससे यह तो साबित होता है कि आदिकाल में वास्तव में मातृसत्तात्मक समाज था। एंगेल्स कहा भी कि मातृसत्ता से पितृसत्तात्मक समाज का अवतरण वास्तव में औरत-जाति की सबसे बड़ी ऐतिहासिक हार थी। सत्य तो यह है कि स्त्री के लिए ऐसा स्वर्णयुग वास्तव में एक मिथक के अलावा और कुछ नहीं। यह कहना कि औरत अन्या है, इस बात को सिद्ध करता है, स्त्री और पुरुष में कोई पारस्परिक सम्बंध नहीं था। वह चाहे धरती थी, चाहे माता, चाहे देवी, किंतु पुरुष को संगी-मित्र कभी नहीं थी। उनमें पारस्परिक साझेदारी का भाव नहीं था। यदि स्त्री-शक्ति की किसी तरह की आराधना हुई, तो वह अतिमानवीय शक्ति थी, अतः पूजिता होकर वह मानवीय जगत् से अलगाव की स्थिति में थी। समाज हमेशा पुरुष रहा है, राजनैतिक सत्ता हमेशा पुरुष के हाथ रही है। आदिम समाज के सम्पूर्ण अध्ययन के बाद लवीसत्रास ने कहा, "सत्ता चाहे सार्वजनिक हो या सामाजिक, वह हमेशा पुरुष के हाथ रही। स्त्री हमेशा अलगाव में रही। उसे यदि पुरुष ने देवी का रूप दिया, तो इतना ऊंचा उठा दिया, निरपेक्ष रूप से इतनी पूज्या बना दिया कि मानव-जीवन उसे प्राप्य ही नहीं हो सका।"

पुरुष का संगी, मित्र, सहकारी हमेशा पुरुष ही रहता है। वह दूसरे पुरुष के साथ ही पारस्परिक सम्बंध स्थापित कर सकता है। यदि समाज में कभी कोई विभाजन उभरता हैं, कभी दो दल टकराते। हैं, तो ये संघर्षरत समूह पुरुषों के होते हैं। जैसे जमीन एक सम्पत्ति है, स्वर्ण एक सम्पत्ति है तथा जिनका विनिमय दोनों दल आपस में करते हैं, उसी तरह औरत को एक ऐसी निरपेक्ष स्थिति में डाल दिया, गया, जहां पर स्वयं की वैयक्तिकता हासिल करना प्राय: कठिन है। औरत ने कभी पुरुष के विरोध में अपनी सामूहिक शक्ति को नहीं तौला। न कभी उसने पुरुष के साथ सहज सम्बंध स्थापित किया। विवाह का पारस्परिक बंधन भी दो पुरुष-प्रधान समूहों में होता है, जहां औरत एक माध्यम-भर होती है। कोई भी व्यवस्था क्यों न हो, लवीसत्रास का कहना है कि आदिम समाज से आज तक स्त्री को हमेशा पुरुप के संरक्षण में रहना पड़ा। प्रश्न तो केवल यह उठता था कि उसका अभिभावक कौन होगा? पिता, भाई, या पति? वह सत्ताधारी पुरुष की केवल मध्यस्थ थी,

जबकि दो पुरुषों के दो समूहों का सम्बंध संतानोत्पत्ति की एक व्यवस्था थी। यह स्त्री और पुरुष के बीच का वास्तविक सम्बंध नहीं था। मानव-जीवन में मौलिक रूप से स्त्री-पुरुष के बीच का सम्बंध एक विषय रहा है। इतना होते हुए भी कृपि-सभ्यता में स्त्री के लिए विवाह का बहुत महत्त्व था। यों तो विवाह की संस्था धर्मनिरपेक्ष थी, किंतु अपनी संतति के साथ स्त्री स्वयं एक स्वायत्त समूह नहीं बना सकती थी। पुरुष का संरक्षण उस समय भी जरूरी था। यूं विवाह के विभिन्न रूप प्रचलित थे और कबीले की पूरी व्यवस्था भी जटिल थी।

ज्यों-ज्यों समाज का विकास होता गया, पुरुष में सत्ता का लोभ बढ़ता गया। वह अपनी संतान का स्वामित्व और संतान के माध्यम से अपनी परम्परा का नैरंतर्य चाहने लगा। स्त्री में प्रजनन की क्षमता होते हुए भी पुरुष उसका स्वामी था, जैसे वह जमीन का स्वामी था। स्त्री की नियति थी पुरुष की अधीनता। प्रकृति की भांति उसका भी शोषण पुरुष ने किया। जिस सम्मान को वह भोगती थी, वह पुरुष का दिया हुआ था। पुरुष के हाथ प्रार्थना में देवी के सामने झुके, लेकिन उस देवी का निर्माता वह स्वयं था। वह यदि स्त्री को देवी के पद पर आसीन कर उसकी स्तुति कर सकता था, तो देवी को छिन्न-भिन्न करने की ताकत भी उसके पास थी। हालांकि प्राचीन समाज ने औरत की यह अधीनस्थता इतने खुले रूप में नहीं स्वीकारी थी, किंतु ज्यों-ज्यों पुरुष का आत्म-गौरवं बढ़ा, प्रकृति का शोषण चालाकी से करने के साथ ही वह युक्तिसंगत ढंग से औरत का भी शोषण करने लगा। ऐसा नहीं कि पुरुष धूप और पानी में, प्राकृतिक प्रकोपों के सामने असहाय नहीं था, किंतु उसने अपने से परे सर्वोपरिता में ही संतुष्टि खोजी, अपनी परियोजनाओं के माध्यम से। उसने जीवन में जितनी उलझनों का सामना किया, उतनी ही उसकी संकल्प-शक्ति बढ़ती गई। स्त्री की भूमिका हमेशा पोषक की रही, सर्जक की नहीं। उसका अस्तित्व हमेशा मांसल रहा। वह कैद रही अपनी अंतर्वर्तिता में। वह अवतरित हुई केवल समाज के स्थायी आयामों में। पुरुष नित्य नए दरवाजे अपने लिए खोलता गया। उन सारे क्रियाकलापों को वह अधिकृत करता गया, जो उसे और वृहत्तर प्रदेश दें। उसने लूट के धन से अपने कबीले को समृद्ध किया। यह उसके अस्तित्व का विकास था, जगत् का परियोजन था। इस तरह उसका सर्वोपरि रूप अवतरित हुआ। वह कभी अपने में सीमित नहीं हुआ, बल्कि सीमाओं का अतिक्रमण करता गया। कृषि-युग में भी वह पूरी तरह धरती मां को जीत नहीं पाया था और न ही प्रकृति की प्रचंड शक्ति के सामने चुनौती देकर खड़ा हुआ था। विवाह की संस्था औरत के लिए नहीं, बल्कि पुरुष के लिए ज्यादा महत्त्व रखती थी, क्योंकि उसके कारण वह अपने पौरुष का औचित्य स्थापित करता था तथा जमीन का अधिकार भी। अपनी मां के द्वारा वह अपने कबीले से इन सभी धर्मनिरपेक्ष कार्यकलापों, अपने कार्य-जगत् और वैवाहिक सम्बंध में वह हमेशा सीमित दायरों से बाहर जाने की आकांक्षा रखता था। वह अपने अंतर्वर्ती जगत् का अतिक्रमण कर अतीत से, जिसमें उसकी जड़ें थीं, खुले भविष्य की ओर बढ़कर सर्वोपरिता पाने की आकांक्षा रखता था, जो उसको प्राप्त नहीं थी। वह उससे

जुड़ना चाहता था, जो उससे अनन्य था। अतः कौटुम्बिक व्यभिचार के खिलाफ जो सभ्य नियम समाज ने बनाए, उनके मूल में पुरुष की एक इच्छा यह भी थी कि वह अपने कबीले से बाहर किसी और की सम्पत्ति हड़प कर लाए। वह दुनिया में अपने शौर्य से अपनी नियति को बदलना चाहता था। इसी प्रकार पत्नी को खरीदना भी उसकी आधिपत्य भावना का द्योतक है। इसका एक बहुत बड़ा सामाजिक पक्ष तो यह था कि इस विनिमय के सहारे दो कबीलों में सौहार्द स्थापित होता था। इस सारी सामाजिक संरचना के विकास के दौरान स्त्री की अनन्यता अधिक गहराई से स्थापित होती गई।

ज्यों-ज्यों पुरुष में आत्म-विश्वास बढ़ा, तर्क ने अनुभव एवं जीवन का स्थान लेना शुरू कर दिया। जादू के बदले तकनीक को बढ़ावा मिला तथा दृष्टि सीमा पार के प्रदेशों को भी खोजने लगी। स्त्री का अवमूल्यन इतिहास के क्रमिक विकास का एक बड़ा अनिवार्य निरूपक रहा है। अब तक वह प्रकृति का गुलाम था। अब सभ्यता के विकास के साथ वह चुनौतियों का सामना भी करने लगा। जुड़ा था। यह उसकी सर्वोच्च सत्ता का सवाल था। अपनी परियोजनाओं के लिए वह जिम्मेदार होने लगा। उसकी सफलता एक दैवी संयोग नहीं, मानवीय प्रयास थी। वह रीति-रिवाजों को प्रश्रय देता था, किंतु यह भी समझता था कि अंधविश्वासों के बदले तकनीक का महत्त्व अधिक है। व्यावहारिक जगत् पहले है एवं रहस्यमय मूल्य उसके बाद में। वह नास्तिक नहीं हो गया था, किंतु देवताओं को उसने अब स्वयं से अलग मंदिर में आसीन कर दिया था। देवताओं के लिए स्वर्ग था और पुरुष के लिए यह दुनिया।

पुरुष ने अपनी ताकत का स्वाद चखा। स्वनिर्मित अस्त्रों-शस्त्रों से उसने जब वस्तुओं का सृजन किया, तब पहले-पहल उसने कार्य-कारण का महत्त्व समझा। बोया हुआ बीज उगे या न उगे, यह ताकत उसके हाथ में नहीं थी, यह तो प्रकृति पर निर्भर था, लेकिन औजारों और उपकरणों की जो दुनिया बनी, उसकी बड़ी स्पष्ट धारणा उसके मन में उपजी। तर्क, बुद्धि और गणित की अवधारणा अब प्रकट होने लगी। औरत का धर्म कृषि-जीवन के आधिपत्य के साथ सम्बंधित था। जहां हर समय नश्वरता, आकस्मिकता और प्रकृति के रहस्यमय प्रस्फुटन का सवाल था, वहां पुरुष अपने को बड़ा असहाय पाता था, लेकिन उपकरण तो वह निर्मित कर रहा था, अपनी परियोजनाओं एवं कर्म तथा तर्कों के आवश्यक परिणामों । वह वाकिफ भी होने लगा था। उसने ज्यों-ज्यों विकास किया, त्यों-त्यों प्रकृति को जीतता गया। उसने खेती की, फसल उगाई, नहरें बनाईं, सड़कों का निर्माण किया और नए प्रदेशों को खोजा। उसके लिए यह एक नई दुनिया थी।

जो देवी की पूजा करते रहे, मातृसत्तात्मक घेरे में बंद रहे, वे नूतन विकासशील मानव के लिए पुरातन सभ्यता के बंदी थे। यदि अब पुरुष ने स्त्री के देवी-रूप की पूजा की, तो उसमें श्रद्धा के भाव कम थे, भय अधिक था। यहां हम यह नहीं कहते कि एक प्रथा दूसरी से श्रेष्ठ

या हीन थी, यह तो एक सहज विकास का क्रम था। पुरुष ने यह समझ लिया कि औरत को अपदस्थ करके ही वह अपनी नियति को प्राप्त कर सकता था। अब जन्मा पुरुष की सृजनात्मक ताकत का सिद्धांत, उसकी मेधा और बुद्धि, उसके बनाए हुए नियमों का सिलसिला। मातृ-देवी के साथ अब पितृ-देव को भी सम्मिलित किया गया। वह भी उर्वरक बना, नए प्रतीक जन्मे। देवी-देवताओं के नए जोड़े सबसे पहले क्रीट में, उसके बाद भूमध्य सागर किनारे इजिप्ट में आइसिस और होरेस तथा फिनीशिया में अस्ताते तथा एडोनिस, एशिया माइनर में साइबल और अत्तिस तथा ग्रीस में रिया और जीयस।

इसके बाद मातृत्व की महानता को पुरुष ने अपदस्थं करना शुरू किया। इजिप्ट में समस्त देवी- देवताओं से सर्वोपरि स्थान मिला सूर्य देवता को जो रोशनी तथा ओजस्विता का प्रतीक था, जिसके तेज के बिना दुनिया अंधेरी थी। ग्रीक देवता पुरुष-प्रधान थे, वैदिक देवताओं की पत्नियां देवी थीं, रोम में जुपिटर के बराबर कोई नहीं था।

अतः पितृसत्ता की विजय न तो आकस्मिक कोई घटना थी और न ही किसी हिंसक क्रांति का परिणाम । मानवता के प्रारम्भिक दिनों से ही पुरुष ने अपनी जैविक विशिष्टता की वजह से हमेशा स्वयं को सर्वोच्च सत्ता के रूप में रखा और आज तक रखता आया है। उसने अपने स्वतंत्र अस्तित्व का कुछ हिस्सा ही प्रकृति और स्त्री के लिए आदियुग में त्यागा था, किंतु कृषि-युग के बाद उसने वापस अपनी सम्पूर्णता हासिल कर ली। औरत बाध्य हुई अन्या की भूमिका निभाने के लिए। कभी वह गुलाम रही, कभी देवी बनी, किंतु अपने मानव-स्वरूप का चुनाव वह कभी नहीं कर सकी। फ्रेजर ने कहा था, "पुरुष देवता बनाता है, औरत उसकी पूजा करती है।" यह पुरुष ही था, जो निर्णय लेता था कि ईश्वर का चेहरा पुरुष का होगा या नारी का। यह सही नहीं कि ताम्र एवं लौह युग के आविर्भाव के समय से, चूंकि उत्पादन के साधन पुरुष के हाथों में केंद्रित थे, स्त्री की अवस्था हीन होने लगी। जिस दमन को औरत ने सहा है, उसके लिए यह कैफियत काफी नहीं। श्रम की संगिनी भी वह नहीं बन सकी। उसकी कमजोर उत्पादक-क्षमता मानव-जीवन से इतने भारी अलगाव को स्पष्ट नहीं करती। यह तो इसलिए हुआ कि पुरुष के सोच, चिंतन और उसके कर्म में स्त्री का कोई साझा नहीं था। वह तो जीवन की रहस्यमयता की बंदिनी बनी रही। पुरुष ने अपनी ही तरह का जी उसमें नहीं देखा। चूंकि वह पुरुष की तरह नहीं थी, इसलिए वह उससे भिन्न थी, अन्य थी और इसलिए उसका दमन आवश्यक था । पुरुष चाहता था विकास, उसे चाहिए थी ताकत, औरत की अक्षमता पुरुष की नजर में औरत के लिए अभिशाप थी।

नित्य नई तकनीकों से पुरुष नई एवं असीम सम्भावनाओं को खोल रहा था। उसने दास-प्रथा का अन्वेषण किया, जिससे श्रम को उत्पादन में लगाया जा सके। औरत से अधिक काम गुलाम कर सकते थे। अतः धीरे-धीरे उसकी आर्थिक भूमिका भी फीकी पड़ने लगी।

चूंकि औरत के ऊपर पुरुष को सीमित अधिकार था, अत: गुलाम से सम्बंधित होकर मालिक को अपनी सर्वोच्च सत्ता का ज्यादा दृढ़ीकरण महसूस हुआ। औरत पर कहीं उसकी निर्भरता थी, क्योंकि वह स्वयं संतानोत्पत्ति नहीं कर सकता था। स्त्री कुछ नहीं, बस सेवा के लिए बनी थी। पुरुष से भिन्न नहीं, बल्कि पुरुष की होकर भी उससे हीन थी। स्वामी के साथ दासों के जिस द्वंद्वात्मक सम्बंध का विकास हुआ, उसमें सदियां लगीं। वह एक दिन की घटना नहीं थी। पितृ-प्रधान-समाज में गुलाम एक बोझा ढोने वाला पशु था। मालिक के हाथों में जालिम सत्ता थी, जिसको प्रयुक्त कर वह उच्चता हासिल करता था। यही सत्ता उसने औरत के ऊपर भी हासिल की। पुरुष की ताकत और सत्ता बढ़ने के साथ-साथ औरत कमजोर होती गई। खासकर जब पुरुष को जमीन का स्वामित्व मिला, तब उसने स्त्री को भी अधीनस्थ करना चाहा, जिससे वह उसकी वंश-वृद्धि कर सके। पुरुष स्वयं एक उत्पादक शक्ति था। अत: उसने अपने बच्चों तथा संतति पर समान रूप से स्वामित्व का दावा किया। उसने यह स्थापित किया कि. पुरुष उत्पन्न करता है, औरत पोषण करती है।

अरस्तू कहते हैं कि "औरत केवल पदार्थ है, जबकि पुरुष गति है। अपनी भावी पीढ़ी को पूरी तरह अपने वश में करने के लिए पुरुष ने औरत को अधीनस्थ किया और जगत् पर प्रभुता चाही। हालांकि प्राचीन ग्रीक माइथोलॉजी में हम स्त्री-पुरुष में भयानक संघर्ष देखते हैं, लेकिन सच्चाई तो यह है कि पितृसत्ता का विकास एक क्रमिक प्रक्रिया में घटित परिवर्तन है। उसने कानूनी व्यवस्था के अनुरूप जगत् में परिवर्तन किया। वहां न कोई संघर्ष था, न हार, न जीत।

पुरानी कथाओं के गहरे अर्थ हैं। जब व्यक्ति स्वयं को स्वतंत्र व्यक्ति की हैसियत से स्थापित करता है, तब अन्य प्रत्येक दूसरे का भी खयाल उभरता है। अतः अनन्य के साथ उसका सम्बंध सदैव नाटकीय रहा है। दूसरे का अस्तित्व हमेशा एक खतरा है, एक धमकी है। प्राचीन ग्रीक दर्शन में अनन्यता को अभाव अर्थात् पाप के रूप में रखा गया। इसीलिए धर्म एवं संहिता में भी स्त्री से इतना विद्वेष रखा गया। चूंकि पुरुप ने कानून एवं संहिता की रचना की, अत: यह स्वाभाविक था कि वह औरत को अधीनस्थ स्थान देता। औरत के प्रति वह क्रूर नहीं था। जैसे गाय-बछड़ों एवं बच्चों की रक्षा की जाती थी, वैसे ही औरत का भी ध्यान रखा जाता था। इसके साथ पुरुष ने औरत के दमन का भी चक्र जारी रखा। हर दमन करने वाले की तरह पुरुष औरत से भयभीत भी रहता था। आदम की संगिनी हौवा के कारण सारी मानवता पर विपत्ति आई थी। यह अन्या, निष्क्रिया होती हुई सक्रिय का सामना कर रही थी, भिन्नता द्वारा एकता का विनाश हो रहा था, अतः स्त्री पाप थी। पाइथागोर कहते हैं, "अच्छे सिद्धांत हैं, जो पुरुष की व्यवस्था एवं उजाले को जन्म देते हैं तथा बुरे सिद्धांत जो अव्यवस्था, अंधेरा और औरत को जन्म देते हैं।" मनु संहिता के

अनुसार स्त्री एक ऐसी निवा वस्तु है, जिसे बंधनों में रखा जाना चाहिए। रोमन कानून औरत को संरक्षण में रखने के लिए कहा है, ताकि उसकी मूढ़ता पर लगाम लगाई जा सके। कैनन का कानून औरत को शैतान की राह कहा है, जबकि कुरान औरत के प्रति भयानक उपेक्षा रखता है।

बुराई के लिए भलाई की, भौतिक पदार्थ के लिए विचार की तथा अंधेरे के लिए रोशनी आवश्यकता होती है। पुरुष को अपनी इच्छा एवं हविस की संतुष्टि के लिए औरत की जरूरत है। जाति की नैरंतर्य के लिए औरत का होना आवश्यक है। यदि वह पुरुष की अभिभावकता स्वीकार है, तो वह कई दोषारोपणों से बच भी जाती है। मनु ने बड़े स्पष्ट रूप से यह विचार अभिव्यक्त किस कि वै । विवाह के द्वारा स्त्री अपने पति के गुणों को आत्मसात् करती है। जैसे नदी समुद्र में खो जाई है, वैसे ही मृत्यु के उपरांत वह भी अपने पति के साथ दिव्य जगत् में प्रवेश कर जाती है। बाइबित पवित्र स्थिति का वर्णन करते हुए नहीं थकती। पति के लिए पवित्र होती हुई भी सेक्स जैसे जघन कृत्य को स्त्री इसलिए करती है कि संतान की ज़रूरत है, ताकि जीवन का नैरंतर्य रहे, समाज को व्यवस्था बनी रहे।

अन्या की इस द्वयर्थकता में हम पाते हैं कि अब तक स्त्री पुरुष के अधीनस्थ रही है। या द्वयर्थकता और भी स्पष्ट होती है, जब हम देखते हैं कि यदि औरत को पुरुष पूर्णरूप से अधिकृत कर लेता है, तो वह महज एक वस्तु में परिणत हो जाती है। पुरुष सिर्फ इतना ही नहीं चाहता, वह हो चाहता है कि औरत में उसकी आदिम जादुई शक्ति भी बनी रहे, लेकिन पत्नी कैसे एक ही साय दासी एवं सहधर्मिणी हो जाए। पुरुष ने इस समस्या के सुलझाव की चेष्टा की और इस प्रक्रिया के दौरान कुछ नए दृष्टिकोणों का विकास हुआ, जो आगे चलकर औरत की नियति बनाने में सहायक होते हैं।

पितृसत्तात्मक अवस्था और पारम्परिक विरासत में स्त्री की स्थिति

निजी सम्पत्ति को अवधारणा ने ऐतिहासिक विकास-क्रम में सामाजिक स्तर पर स्त्री को निरंतर हीनतर स्थिति में पहुंचाया है। पितृसत्तात्मक समाज तथा संस्थाओं की मौलिक संरचना में निजी सम्पत्ति का मालिक अपनी भी वैयक्तिकता को हस्तांतरित और अलगावित करके मात्र अपनी सम्पत्ति को प्यार करता है। उसकी सम्पत्ति हस्तांतरित होकर संतति के हाथ सुरक्षित होती है। इस स्थिति को स्वामी अपनी आत्मा का भौतिक और दैहिक समावेशन समझता है। यह उत्तरजीविता सम्पत्ति के सही उत्तराधिकारी के हाथों में सुरक्षित रहने से ही प्रतिफलित होती है। स्वामी यह.चाहता है कि उसकी सम्पत्ति उसकी

मृत्यु के बाद उसकी ही आत्मा के अंश उसकी संतान के पास रहे। वह अपनी सत्ता और सम्पत्ति का संवर्धन और सुरक्षा के लिए पूर्वजों की पूजा करता है। वह यह प्रमाणित करना चाहता है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसकी वंशबेलि फलती-फूलती रहेगी। अतः पुरुष अपने ईश्वर और अपने बच्चों को पत्नी के अधिकार में कभी नहीं सौंपता। सच्चाई यह है कि पितृसत्तात्मक ताकत से पुरुष ने औरत का प्रत्येक अधिकार छीन लिया है। पुराकाल में इस स्थिति का ऐतिहासिक तर्क-सांगत्य भी था। कृपा पर

बच्चों के जन्म का श्रेय माता से अधिक पुरुष के शुक्राणुओं को दिए जाने के साथ ही परिवार और कबीले पर स्त्री का सहज अधिकार समाप्त हो गया। स्त्री को जीवन में उसकी साझेदारी के कारण मिलने वाली समानता पुरुष ने व्यवहारतः समाप्त कर दी और उसके साथ अब एक अधीनस्थ प्राणी जैसा व्यवहार करने लगा। स्त्री अब पुरुष की वस्तु हो गई। उसका महत्त्व जमीन के टुकड़े और गाय-बैल से अधिक नहीं रह गया। उसने उस पर अपनी सत्ता आरोपित कर दी। संतान को पिता का नाम मिलने लगा। यदि स्त्री को पिता से विरासत में कुछ मिलता भी था, तो वह पूरी सम्पत्ति भी संतान के माध्यम से पति के ही परिवार में शामिल होने लगी। बड़ी चालाकी से औरत को सम्पत्ति और सत्ता के उत्तराधिकार से वंचित कर दिया गया। चूंकि औरत का अपना निजी कुछ भी नहीं था, अत: व्यक्ति की गरिमा से भी वह वंचित हो गई। अब वह पुरुष की विरासत का एक हिस्सा-भर रह गई। पहले पिता के अधीन और बाद में पति की अधीनस्थ। रूढ़ियां इस कदर बढ़ी कि कन्या का जन्म बोझ लगने लगा। जन्म के साथ ही उसकी हत्या का प्रचलन शुरू हो गया। उससे जीने तक का अधिकार छीन लिया गया। अरब के लोगों में लड़की को जन्मते ही गड्ढे में फेंक दिया जाता था और यदि पिता कन्या को स्वीकारता था, तो यह उसकी महान् उदारता कही जाती थी। स्त्री को समाज में अधिकार के तौर पर सम्मान नहीं मिलता था। उसका अस्तित्व तक पुरुष की निर्भर हो गया।

पिता को पूरा अधिकार था कि वह चाहे जहां और जिससे भी बेटी का विवाह करें। चूंकि गाय-बछड़ों और गुलामों की तरह स्त्री भी पुरुष की सम्पत्ति थी अतः पुरुष के लिए बहुविवाह को छूट थी। विवाहों पर प्रतिबंध स्त्री की भावना के कारण नहीं, बल्कि आर्थिक कारणों से लगे। समाज ने स्त्री को कोई सुरक्षा नहीं दी। पुरुष उससे मनचाहा व्यवहार करने को स्वतंत्र था। दूसरी ओर औरत पर कड़े बंधन लागू किए गए। पतिव्रत उसका पहला धर्म था। मातृसत्तात्मक समाज में स्त्री को आचरण की सुविधा थी, तथा स्त्री से शुद्धता एवं शुचिता की अपेक्षा कम की जाती थी। व्यभिचार के विरुद्ध नियम इतने कड़े नहीं थे। अब पितृ-समाज में चूंकि औरत पुरुष की सम्पत्ति थी, इसलिए विवाह के पहले कौमार्य भंग न होना तथा आजीवन पतिव्रत निभाना उसका परम धर्म बन गया। व्यभिचारिणी के लिए मृत्युदंड निश्चित किया गया। जब तक समाज में निजी सम्पत्ति की अवधारणा प्रचलित

रहेगी और पुरुष स्त्री को अपनी सम्पत्ति मानेगा, तब तक स्त्री द्वारा किया गया व्यभिचार हीनतम अपराध माना जाएगा। ऐसा कोई दंड-विधान पुरुष पर नहीं लागू होता। परस्त्रीगमन तो पुरुष ही करता है, किंतु सजा औरत भोगती है।

मातृसत्तात्मक व्यवस्था से पितृसत्तात्मक समाज के संक्रमण काल में हम फिर भी स्त्री को कुछ सुविधापूर्ण स्थिति में पाते हैं। वह पति का चुनाव कर सकती थी। विवाह एक दुनियावी काम तो था, . लेकिन समाज की मौलिक संरचना को परिवर्तित करने में वह असमर्थ था। पितृ-प्रधान समाज के पूर्ण रूप से व्यवस्थित हो जाने पर पुरुष-अस्तित्व के साथ स्त्री-अस्तित्व का पूर्ण विलयन हो गया। उसके स्वतंत्र अस्तित्व का अब प्रश्न ही नहीं उठता था। इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण हम सामंती संरचना- ' प्रधान मुस्लिम समाज में पाते हैं, जहां कुरान शरीफ घोषणा करता है, "पुरुष औरत से उन गुणों के आत्महत्या कारण श्रेष्ठ है, जो अल्लाह ने उसे उत्कृष्ट रूप से दिए और अपनी इस श्रेष्ठता के कारण पुरुष औरत के लिए दहेज जुटा पाता है।" स्त्री के पास न कभी वास्तविक सत्ता थी और न उसकी रहस्यमयता की कोई इज्जत । खानाबदोश औरत कड़ी मेहनत करती है, हल चलाती हैं, बोझ उठाती है, अत: वह अपने पति के साथ बराबर का साझा रखती है, जबकि बुर्के में दबी-ढंकी मुस्लिम औरत आज भी अपने सामाजिक ढांचे में एक गुलाम है।

नियोग की प्रथा हम प्राचीन पूर्वी समाज में पाते हैं। वहां विधवा का पुनर्विवाह उसके देवर के साथ कर दिया जाता था, या औरत को उसके पति के साथ ही जला दिया जाता था। सती-प्रथा का अधिक प्रचलन नहीं था और न ही आदिम समाज में इस दाहक ज्वाला की इतनी जरूरत पड़ती थी ।। मनु संहिता पति के बाद भी पत्नी को जीवित रहने का अधिकार देती है। यह भव्य और शानदार और कुछ नहीं, बस एक सामंती फैशन था। प्राय: तो विधवा को जायज वारिसों के भरोसे सौंप दिया जाता था। नियोग प्रथा ने बहुधा बहुपतित्व का रूप ले लिया। कई भाइयों के बीच एक पत्नी होती थी।

स्त्री की दासता हमेशा सामंती समाज में ही अधिक रही। जहां निजी सम्पत्ति या जमीन नहीं थी वहां स्त्री को सम्मान और अधिकार पुरुष के बराबर मिला हुआ था। इसका सबसे सुंदर उदाहरण हम मिस्र के प्राचीन समाज में पाते हैं, जहां देवी मां पत्नी होकर भी अपनी पूर्ण गरिमा रख पाती थी क्योंकि जमीन का स्वामी केवल राजा हुआ करता था। ऐसी विशिष्ट स्थिति में भी औरत पुरुष के बराबर नहीं थी। फराह पुरुष होता था, धर्मगुरु तथा योद्धा भी पुरुष ही थे और व्यक्तिगत जीवन में स्त्री से यह अपेक्षा रखी जाती थी कि वह निष्ठावान बनी रहे। विधवा हो जाने तथा किसी पुरुष वारिस के न रहने पर बहुधा स्त्री का पुनर्विवाह कुल के वरिष्ठ पुरुष के साथ कर दिया जाता था, चाहे वह कितना ही बूढा क्यों न हो। इन सारी रूढ़ियों के मूल में हम पाते हैं सामंती व्यवस्था एवं जायदाद का आरक्षण तथा परिवार का नैरंतर्य। जिन प्राचीन समाजों में (ग्रीस के शहरों में, एथेंस तथा स्पार्टा के समाज

में)व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना नहीं थी, उनमें स्त्री को पुरुष के बराबर अधिकार मिले हुए थे। वहां बच्चे सामूहिक जिम्मेदारी होते थे। औरत किसी एक पुरुष से नहीं बंधी रहती थी। चूंकि न कोई निजी सम्पत्ति थी और न विशिष्ट वंश-परम्परा, इसलिए औरत की भूमिका बच्चे पैदा करने की थी और पुरुष की भूमिका युद्ध-स्थल में लड़ने की, वहां स्त्री की व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर कोई अंकुश नहीं था। हम प्राचीन ग्रीक समाज में ऐसी भी प्रबुद्ध स्त्रियों के उदाहरण पाते हैं जो बुद्धिमती, सुसंस्कृत एवं कलात्मक रुचि-सम्पन्न होती थीं। पुरुष उन्हें व्यक्ति-रूप में ही देखते थे और उनके सम्पर्क से आनंदित होते थे। ऐसी स्त्रियां पारिवारिक बंधन में नहीं बंधी रहती थीं। इनके पास अपनी सम्पत्ति होती थी, अतः पुरुष इन्हें साथी के रूप में देखते थे। कुछ अपवादों को छोड़कर ग्रीक सभ्यता में स्त्री की स्थिति प्रायः गुलामों जैसी ही थी, उसको शिकायत का भी हक नहीं था।

रोमन सभ्यता के उदय साथ परिवार और राज्य के बीच संघर्ष प्रारम्भ होने के साथ स्त्री की अवस्था खराब होनी शुरू हुई। स्त्री को अब अभिभावक के संरक्षण में रहना पड़ा। उसकी अपनी कोई निजी स्थिति नहीं रह गई। कहते हैं कि स्त्री के लिए संरक्षकता अभिभावकों के निजी स्वार्थ के लिए स्थापित की गई, ताकि स्त्रियां अपने अधिकार का दुरुपयोग करके सम्पत्ति को किसी और के हाथों न सौंप दें और न ही कर्ज या फिजूलखर्ची में उड़ा दें।

यहां हम एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत का विकास देखते हैं। स्त्री की वास्तविक स्थिति को परिभाषित करने के लिए ये अमूर्त अधिकार काफी नहीं थे। बड़ी मात्रा में अधिकार निर्भर रहते हैं स्त्री की आर्थिक भूमिका पर। प्रायः हम अमूर्त स्वाधीनता एवं वास्तविक सत्ता में विभेद पाते हैं। कानूनी रूप से ग्रीस को स्त्रियों से रोमन स्त्रियां ज्यादा बंदी की दशा में थीं, मगर वास्तविक स्थिति में वे समाज से ज्यादा गहरे जुड़ी थीं। वे अपने घर की स्वामिनी थीं, गुलामों से काम कराती थीं, अपनी संतान की देख- रेख और शिक्षा में रुचि के साथ उन पर काफी प्रभाव भी रखती थीं। वे सम्पत्ति की सहस्वामिनी होती थीं तथा पति के कामों में बराबर का हाथ बंटाती थीं। अतः वे पुरुष की सहधर्मिणी थीं, गुलाम नहीं। यह इतना गहरा बंधन था कि करीब पांच शताब्दियों तक रोमन इतिहास में तलाक का कोई उदाहरण नहीं मिलता। स्त्रियां केवल घर में बंदी नहीं थीं। वे सारे उत्सवों और त्योहारों में भाग लेती थीं तथा नाटक आदि देखने जाती थीं। इतिहास में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी। क्रेटो कहते हैं, "हर जगह पुरुष औरत पर शासन करता है और हम जो शासन करते हैं, अपनी स्त्रियों से शासित होते हैं।"

स्थिति धीरे-धीरे बदलती गई। परिवार की संस्था और पारिवारिक सम्पदा का परिवार में केंद्रीकरण राज्य के स्वार्थों के खिलाफ था। राज्य सारी ताकत अपने हाथों में केंद्रित रखना चाहता था। सम्राट के कानून के अनुसार अभिभावकत्व का अधिकार पूर्ण रूप से उठा

दिया गया, किंतु जहां राज्य ने परिवार में हस्तक्षेप किया तथा स्त्री को भी अपने संरक्षण में लिया, वहीं नाना तरीकों से उसने स्त्री को अक्षम भी बनाना शुरू कर दिया। राज्य यह समझ रहा था कि स्त्री यदि स्वाधीन और धनी रहेगी तो राज्य को उससे खतरा रहेगा। हनीबाल का आक्रमण रोम पर होने के समय जारी की गई आज्ञा के अनुसार स्त्री के लिए विलासिता और अय्याशी वर्जित थी। युद्ध का खतरा टल जाने पर रोमन स्त्रियों ने अपने अधिकार वापस मांगे। आंदोलन शुरू हुआ, किंतु राज्य ने स्त्रियों को और कमजोर बनाया। हर संविधान वास्तव में औरत के स्वार्थ के खिलाफ था। औरत के सारे कानूनी अधिकार छीन लिए गए। पुरुष अपने किए का औचित्य कैसे सिद्ध करता है, उसका यह एक ज्वलंत उदाहरण है। जब स्त्री को पुत्री, पत्नी या बहन का पूर्ण अधिकार मिला, तब पुरुष से उसकी बराबरी का हक छीन लिया गया। उस पर चरित्र की कमजोरी, चंचलता और छिछोरेपन के आरोप लगाए गए। उसमें संयम का अभाव बताया गया। उसकी आर्थिक स्वतंत्रता अमूर्त हो गई, क्योंकि उसको कोई राजनैतिक अधिकार नहीं मिले। स्त्रियों ने इन सबका प्रचंड विरोध किया। रोमन इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है, किंतु राज्य स्त्रियों के खिलाफ बना रहा, क्योंकि वह अपने से अधिक प्रभुत्व परिवार को नहीं देना चाह रहा था।

अब तक का साहित्य औरत के बारे में सम्मान से लिखता रहा था, किंतु अब रोमन साहित्य ने स्त्रियों पर खुले व्यंग्य-प्रहार शुरू किए। चूंकि स्त्रियां पुरुषों के साथ शिकार में जाती रथ दौड़ाती थीं, कानूनी मामलों में दखल देती थीं, कुश्ती लड़ती थीं, अतः वे पुरुषों की प्रतिद्वंद्वी और दुश्मन भी होती थीं, पुराने गणतंत्रीय रोम की स्त्रियां परिवार में एक विशिष्ट स्थान रखती थीं, किंतु उनके पास वैध अधिकार नहीं होते थे और न ही किसी प्रकार की आर्थिक स्वतंत्रता थी। परवर्ती काल की रोमन स्त्रियां झूठी स्वतंत्रता का जीता-जागता उदाहरण थीं। उनको दी गई तथाकथित स्वतंत्रता खोखली थी। वस्तुतः वे स्वतंत्र कहलाकर भी कुछ नहीं थीं।

मध्य-युग से अठारहवीं शताब्दी तक के फ्रांस की स्त्री

औरत के विकास की कोई निश्चित क्रमिक प्रक्रिया नहीं मिलती। महान् आक्रमणों ने पूरी सभ्यता में आमूल परिवर्तन किए। रोमन कानून स्वयं भी ईसाइयत से प्रभावित हुआ। आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों में भारी उलट-फेर के कारण स्त्रियों को भी विपरीत परिणाम भोगने पड़े।

ईसाइयत ने औरत के दमन की प्रक्रिया को कम बढ़ावा नहीं दिया। इसमें संदेह नहीं कि बाइबिल में कोढ़ियों तथा औरतों पर समान दया-भाव रखने को कहा गया है। यह भी सच है कि भोले और मासूम गुलामों तथा औरतों का वर्ग ही नए कानूनों से चिपका रहा।

प्रारम्भिक ईसाई सभ्यता के समय औरतों को चर्च से काफी इज्जत मिली और वे पुरुषों के समान ही ईसाइयत के प्रचार में शहीद भी हुईं, किंतु पूजा में उनका स्थान हमेशा पुरुष की तुलना में गौण रखा गया। वे केवल गरीबों और बीमारों की सेवा कर सकती थीं। विवाह-संस्था औरत से पति के प्रति सम्पूर्ण निष्ठा और कर्तव्यपरायणता की अपेक्षा करती थी। बर्बर और स्त्री-विरोधी यहूदी परम्परा संत पॉल के द्वारा स्त्रियों पर आरोपित की गई। संत पॉल ने औरत से आत्म-विलोपन और विवेक की अपेक्षा की। उन्होंने पुराने तथा नए टेस्टामेंट में औरत को पुरुष के अधीनस्थ रखा। "पुरुष औरत के लिए नहीं बना है, औरत बनी है पुरुष के लिए।" वे फिर एक स्थान पर लिखते हैं, "जैसे चर्च के स्वामी यीशू हैं, वैसे ही स्त्री का स्वामी पुरुष है।" यह धर्म स्थूल मांसलता को घिनौना मानता था, अतः उसके लिए औरत शैतान की खालां थी। यूलियन लिखते हैं, "औरत तुम शैतान का दरवाजा हो। जहां शैतान सीधा आक्रमण करने से हिचकता है, वहां वह औरत का सहारा लेकर पुरुष को मिट्टी में मिला देता है। यह तो औरत की गलती है, जिससे प्रभु के पुत्र को मरना पड़ा। तुम औरतों को हमेशा शोक-संतप्त रहना होगा।" संत एम्ब्रोस कहते हैं, "आदम को पाप के रास्ते हौवा ले जाती है, न कि हौवा को आदम।"

संत थॉमस अपनी परम्परा के प्रति ईमानदार थे जब उन्होंने कहा, "औरत एक प्रासंगिक और अधूरा अस्तित्व है, एक प्रकार से अपूर्ण पुरुष । जैसे ईसा पुरुष से सर्वोपरि हैं, वैसे औरत से सर्वोपरि पुरुष पुनः लिखते हैं, "यह औरत की नियति है कि वह पुरुष की अधीनता में रहे, इसे परिवर्तित नहीं किया जा सकता, उसको प्रभु से कोई सत्ता नहीं मिली।"

जस्टीनियन के संविधान ने पत्नी और मां को इज्जत तो दी, किंतु उनकी परिस्थिति ऐसी रखी कि उनको कानूनी अधिकार पूरे न मिल सकें। तलाक वर्जित था और विवाह एक सार्वजनिक काम। पिता की भांति मां को भी अपनी संतान पर समान अधिकार था और पति के मरने पर वह उनकी नैतिक अभिभावक होती थी, किंतु जैसे-जैसे राज्य प्रमुख भूमिका में पहुंचता गया, वैसे-वैसे अभिभावकत्व सार्वजनिक भूमिका बनता गया तथा औरत के अधिकार घटते गए। ये औरतों की गुलामी के दिन थे।

जिस सामंती प्रेम का वर्णन करते हुए साहित्य थकता नहीं, वह वास्तव में सामंती औरत की कुंठा की कहानी है। स्त्री के प्रेम में निहित रूमानियत और वायवीयता का लाभ उठाकर सामंती पति पत्नी को संतुष्ट करने में सर्वथा असमर्थ होने के बावजूद तानाशाह संरक्षक बन गया। अतः स्वाभाविक था कि स्त्री विवाहेत्तर प्रेम के जीवन में संतुष्टि खोजे, जैसा कि एंगेल्स लिखते हैं, "प्राचीन समय में प्रेम हमेशा औपचारिक समाज के घेरे से बाहर मिलता था। इसका दूसरा नाम था व्यभिचार । जब तक विवाह की संस्था रहेगी, तब तक प्रेम हमेशा व्यभिचार के रूप में ही पनपेगा।"

सामंती व्यवस्था समाप्त हो जाने के बाद बने कानूनों का मुख्य उद्देश्य था कि स्त्री पुरुष के समान अधिकार न पाए और वह सारे नागरिक अधिकारों से वंचित रहे । यदि औरत अविवाहित है, तो पिता के संरक्षण में रहे या फिर धार्मिक मठों में उसे भेज दिया जाए, और यदि वह विवाहित है, तो वह अपनी सम्पत्ति तथा संतान के साथ पूर्णतया पुरुष के अधीन रहे । पुरुष उसके नैतिक आचरण के लिए जिम्मेदार था। बाह्य जगत् से स्त्री का सम्पर्क नहीं के बराबर था। मातृत्व बोझ था। औरत अपनी संतान की नौकर थी। उसके तमाम उत्पादनों पर उसके पति का अधिकार होता था। अन्य दूसरे देशों में भी स्त्री की अवस्था कोई बेहतर नहीं थी। जितने भी यूरोपीय कानून और अध्यादेश बने, वे सब कैनन लॉ, रोमन लॉ तथा जर्मन लॉ पर आधारित थे, जो औरत के हितों के खिलाफ थे। प्रत्येक देश में निजी सम्पत्ति की अवधारणा प्रचलित थी तथा परिवार एक दृढ़ संस्था थी, जिसका हित सर्वोपरि होता था।

तमाम देशों में ईमानदार और पवित्र स्त्री को परिवार में कैद रखने के परिणामस्वरूप वेश्यावृत्ति को बढ़ावा मिला। समाज के हाशिए पर खड़ी ये स्त्रियां समाज को स्वस्थ रखने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं, ऐसा ईसाई धर्मगुरु सोचते थे। वे जघन्य थीं, पापी थीं, मगर विश्वास था कि यदि वेश्यावृत्ति को खत्म कर दिया जाए, तो समाज में, परिवारों में व्यभिचार बढ़ जाएगा, क्योंकि पुरुष स्वभाव से मनचला होता है। शहरों में वेश्याओं की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी गंदगी और कचरा बहाने के लिए नालों की। बुर्जुवा परिवारों में चूंकि बड़ी कड़ाई से एक विवाह का ही प्रचलन था, अतः आमोद-प्रमोद के लिए पुरुष को बाहर जाना ही पड़ता था। शापेनहावर ने इन वेश्याओं के लिए कहा कि वे सर्वश्रेष्ठ पाप हैं क्योंकि वे पुण्य की संरक्षक हैं।

फ्रांस में अकेली स्त्री की एक विशिष्ट स्थिति होती थी। वह स्वतंत्र होती थी, एक समृद्ध व्यक्तित्व से सम्पन्न, पत्नी के बंधनों से बिल्कुल मुक्त । उसको सारे नागरिक अधिकार प्राप्त थे, किंतु वास्तव में ये नागरिक अधिकार अमूर्त और खोखले थे। अकेली स्त्री के पास न आर्थिक स्वायत्तता थी और न ही सामाजिक सम्मान । ज्यादातर वे वयस्क कुमारियां अपने पिता की पारिवारिक छाया में जीवन गुजार देती थीं या फिर आजीवन धार्मिक मठों में रह जाती थीं। जिंदगी की वास्तविकता से दूर यदि वे कहीं स्वाधीनता महसूसती भी थीं तो वह थी अवज्ञा और पाप की। बिल्कुल इसी तरह जैसे अवनतिकाल की रोमन स्त्रियां केवल व्यभिचार में ही स्वतंत्रता की भावना पाती थीं, जैसे दमित स्त्रियां विनाश और ध्वंस में मुक्ति खोजती हैं।

ऐसी अवस्था में स्त्री के लिए अपने अस्तित्व को प्रस्थापित कर पाना असम्भव था। श्रमिक वर्ग में चूंकि आर्थिक शोषण था, इसलिए वहां स्त्री-पुरुष में इतना विभेद नहीं था क्योंकि दोनों ही वहां सुविधाहीन थे। बुर्जुवा आभिजात्य में स्त्री पुरुष की धौंस सहने को

बाध्य थी। वह केवल एक परजीवी पराश्रिता थी। अशिक्षित जीवन में बिना किसी उद्देश्य एवं परियोजना के महारानियों और सामंतों को पत्नियों को कम-से-कम यह सुख तो था कि वे धन के कारण उतनी स्थितिग्रसित नहीं रहती थीं। इसी प्रकार यदि स्त्री कॉन्वेंट या धार्मिक मठों में रहती थी, तब भी वह पुरुष से स्वतंत्र होती थी। । प्रभु के साथ अपने रहस्यात्मक सम्बंधों के कारण वह सारी प्रेरणा ग्रहण करके पुरुष की बराबरी का दावा कर सकती थी। उसकी ताकत थी उसकी तपस्या, जिसके लिए समाज भी उसे सम्मान देता था। साइना की संत कैथरिन की कहानी सर्वविदित है। उनकी शक्ति और साहस के सामने समान सिर झुकाता था। अतः महारानियां अपने दैवी-अधिकार के कारण तथा साध्वी स्त्रियां अपने तपोबल के कारण सामाजिक सम्मान प्राप्त करती थीं, जिससे वे पुरुषों के बराबर खड़ी हो सकती थीं। विपरीत अन्य सभी स्त्रियों की नियति एक होती थी। दमन उनका भाग्य था।

सारांशतः मध्ययुगीन पुरुष के मन में स्त्री के लिए नकारात्मक भाव अधिक होता था। दरबारी कवि प्रेम की महानता का वर्णन करते नहीं अघाते थे, लेकिन ठीक इसके विपरीत बुर्जुवा लेखन। हम औरत के प्रति विद्वेष अधिक पाते हैं। किस्से-कहानियां, व्यंग्य और प्रहसन औरत को आलसी छिछोरी तथा कामुक कहते नहीं थकते थे। औरत का सबसे बड़ा दुश्मन थां पुरोहित-वर्ग, जो विवाह को हेय दृष्टि से देखता था और शारीरिक सम्बंध को पाप की संज्ञा देता था।

15वीं से 19वीं शताब्दी तक औरत की संवैधानिक स्थिति बिल्कुल अपरिवर्तित रही, किं विशिष्ट वर्ग में उसकी वास्तविक स्थिति में परिवर्तन जरूर आया। इतालवी रेनासां एक व्यक्ति-प्रधान युग था, जिसके कारण स्त्री हो या पुरुष; अधिनायक, लेखक, कलाकार, संगीतकार, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महान प्रतिभाओं का प्रादुर्भाव हुआ। सत्रहवीं शताब्दी में शिक्षित स्त्रियों ने कला और साहिल में काफी योगदान किया। अपने इन्हीं गुणों के बल पर सम्मानित स्त्रियां पुरुषों के जगत् में धीरे- धीरे प्रवेश करने लगीं। इस शताब्दी ने स्त्री की एक और जाति को जन्म दिया, जिसके बारे में अब तक सोचा भी न जा सकता था। वह जाति थी अभिनेत्रियों की। 1545 में पहली स्त्री जो मंच पर आई, उसका नाम था निनोंद लिंकलोस, जिसने चरम स्वतंत्रता का जीवन जिया।

अठारहवीं शताब्दी में भी स्त्रियों का विकास होता रहा। लोकाचार अब भी रूढ़िगत थे। शिक्षा का महत्त्व स्त्री के जीवन में कम था। विवाह या साध्वीकरण बिना उससे पूछे किए जाते थे। विकसित होते हुए बुर्जुवा-वर्ग ने अपनी पत्नियों पर कड़े बंधन लगाए। इन सारे बंधनों के बावजूद, न घर की दीवारें और न ही मठ, औरत को वश में रख पाए । उच्च मध्यमवर्ग में व्यभिचार बुरी तरह फैला हुआ, था तथा स्त्रियां स्वेच्छाचारिणी होती थीं। अत: फिर एक बार स्वाधीनता का अर्थ ज्यादातर लोग नकारात्मक और अमूर्त समझने लगे।

स्वतंत्र होने का अर्थ था गैर-जिम्मेदार होना, स्वेच्छाचारी होना, किंतु बुद्धिमती तथा महत्त्वाकांक्षिणी स्त्रियों ने संयोग खोज निकाले। सांस्कृतिक गोष्ठियों में नई जान आई। स्त्रियों ने लेखकों और कलाकारों को संरक्षित किया, प्रेरित किया और सार्वजनिक मंच दिया। उन्होंने विज्ञान और दर्शन का अध्ययन किया तथा भौतिक एवं रसायन-शास्त्र की प्रयोगशालाएं खोली। राजनीतिक क्षेत्र में मदाम पम्पेयु तथा मदाम दुबेरी स्त्री-शक्ति के उदाहरण हैं। उन्होंने वास्तविक राज्यसत्ता का नियंत्रण किया। अभिनेत्रियों और नर्तकियों ने महान् यश अर्जित किया। इसके बावजूद एक स्त्री न शेक्सपीयर बनी, न दांते । यह तथ्य एक सामान्य सतहीपन का द्योतक है। संस्कृति भने कुछ विशिष्ट जनों के संरक्षण में ही पनपती थी, किंतु महान् प्रतिभाएं हमेशा सामान्य जनों से उपजती हैं । संत थेरेसा या संत कैथरिन को चाहे जो भी सुविधा मिली हो, मगर एक साधारण महिला लेखिका के विरुद्ध सारी परिस्थितियां थीं। 'ए रूम ऑववन्स ओन' में वर्जिनिया वुल्फ शेक्सपीयर की भरपूर जिंदगी से उसकी बहन की तुलना करती हैं, जो अत्यंत सीमित और संकुचित जीवन में वं थी। यह तो अठारहवीं शताब्दी में मिसेज एफरा वेन जैसी प्रथम लेखिका थी, जो कलम के ऊपर पूर्ण रूप से निर्भर रह सकी। ज्यादातर लेखिकाएं प्राय: अपना वास्तविक परिचय देने से सहमत थीं। उनके पास वह भौतिक स्वतंत्रता भी नहीं थी, जो आंतरिक स्वतंत्रता को विकसित करने में सहायक हो सके वर्जिनिया वुल्फ कहती हैं, "इंग्लैंड में प्राय: लेखिकाओं के प्रति विद्वेष भाव रखा जाता था।"

फ्रांस में लेखिकाओं के लिए स्थिति कुछ हद तक अनुकूल थी, क्योंकि वहां फिर भी सामाजिक और बौद्धिक जीवन में सामंजस्य था, किंतु सामान्य जनों की दृष्टि में इन बुद्धिजीवी महिलाओं के प्रति द्वेष एवं उपेक्षा ही थी।

अठारहवीं शताब्दी कुछ हद तक इस मामले में अलग थी। कुछ लेखकों ने यह साबित करने की चेष्टा की कि स्त्री की आत्मा अमर नहीं हो सकती। अंतः मध्यवर्गीय स्त्रियों के बारे में लिखते हुए रूसो कहते हैं, "स्त्री की पूरी शिक्षा पुरुष के संदर्भ में होनी चाहिए। स्त्रियों को पुरुष की आज्ञा माननी होगी और उसका अन्याय स्वीकारना होगा।" अठारहवीं शताब्दी के गणतंत्रीय एवं वैयक्तिक आदर्श स्त्री के अनुकूल थे, लेकिन अधिकतर दार्शनिक पुरुष को ही ज्यादा महत्त्वपूर्ण समझते थे। दिदेरो कहते हैं, "स्त्री की हीनता समाज के कारण है।" इसके विपरीत मांटेग्यू कहते हैं, "यह प्रकृति और तर्क के परे है कि स्त्रियों को घर से नियंत्रित किया जा सके। और न ही वे राज्य का संचालन करेंगी।" हेलवेटियस ने यह दिखाने की कोशिश की कि औरत की शिक्षा वास्तव में उसमें हीन- भाव जाग्रत करती है। यह अकेले मर्सिया थे, जिन्होंने काम-काजी श्रमिक महिलाओं के बारे में लिखा और समाज का ध्यान महिला-श्रम की मौलिक समस्याओं की ओर आकर्षित किया। ताब्लो द पारी' में

वे लिखते हैं, "संवैधानिक रूप से स्त्री जितनी गुलाम होगी, साम्राज्य को उतना ही खतरा होगा, क्योंकि इस दमन के खिलाफ वह क्रांति में सहयोग देगी।"

फ्रांसीसी राज्य-क्रांति के बाद स्त्री की नौकरी और मताधिकार की समस्या

फ्रांस की राज्य-क्रांति से स्त्री की स्थिति में बुनियादी परिवर्तनों की आशा की गई थी। क्रांति के मध्यवर्गीय चरित्र के कारण मध्यमवर्ग की संस्थाओं और मूल्यों में कोई परिवर्तन नहीं आया तथा यह एकांत रूप से पुरुषों की ही उपलब्धि मानी गई । पुराने तंत्र में श्रमिक-वर्ग की औरतों को काफी स्वतंत्रता प्राप्त थी। ये महिलाएं अपना व्यापार स्वयं चलाती थीं तथा इसके लिए इनके पास कानूनी अधिकार भी थे। ये दर्जी, धोबन, घर पोंछने वाली, झाड़ूदारन और दुकानदार थीं तथा उत्पादन में बराबर का साझा रखती थीं। अतः इन्हें आचरण की स्वतंत्रता थी। ये पुरुषों के साथ मौज-मस्ती के लिए बाहर जा सकती थीं। ये पति की सहधर्मिणी और सहयोगी होती थीं। आर्थिक शोषण के बावजूद सेक्सुअल स्तर पर ये पूर्ण स्वाधीन थीं।

देहातों में किसान महिलाएं खेतों में कड़ी मेहनत करती थीं। वहां उनकी स्थिति नौकरानी जैसी थी। वे पति के साथ एक ही टेबिल पर बैठकर भोजन नहीं कर सकती थीं। पति और लड़के की अपेक्षा ज्यादा कड़ी मेहनत के साथ ही, निरंतर बच्चे प्रजनन के कारण उनके स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ता था, फिर भी पुरुष के लिए अपनी अपरिहार्यता के कारण वे घर की रानी थीं। पति- पत्नी के जीवन में पारस्परिक साझा था। ये औरतें यदि चाहती, तो अपने कठोर जीवन के बावजूद अपने अधिकारों की मांग कर सकती थीं, किंतु भीरुता की परम्परा एवं स्वभावगत समर्पणशीलता के कारण उन्होंने यथास्थिति ही स्वीकार की।

कुछ मध्यमवर्गीय स्त्रियों ने बड़ी लगन से स्त्री की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया। इनमें मदाम रोलां तथा लुसिल देसमा के नाम प्रमुख हैं। कुछ नारी-मुक्ति आंदोलन भी हुए। कई अल्पकालीन पत्रिकाएं भी निकली। अंततः राजनीतिक अधिकारों की मांगें व्यर्थ हो गईं।

1790 ईस्वी में बड़े लड़के की विरासत के अधिकार का कानून पास हुआ, तब भी मध्यमवर्गीय स्त्रियां परिवार से काफी जुड़ी रहीं। अतः दूसरे वर्गों की स्त्रियों के साथ उनका बहनापा और सहयोग नहीं पनप सका। स्त्रियों का कोई अलग वर्ग नहीं स्थापित हो सका और आर्थिक रूप से उनका अस्तित्व परजीवी ही रहा।

क्रांति के वक्त स्त्रियों को मिली स्वतंत्रता एक प्रकार की अराजक स्वतंत्रता थी। समाज का पुनर्गठन शुरू होने पर परिवार की संरचना में औरत पुन: बंदी बना दी गई। नारी-स्वाधीनता की दृष्टि से फ्रांस दूसरे देशों से आगे था, किंतु दुर्भाग्यवश आधुनिक फ्रांसीसी

महिलाओं की स्थिति पर सबसे बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण असर पड़ा 'कोड-नेपोलियन' का, जिसने उनको सदियों दासता में जकड़े रखा। प्रत्येक तानाशाह शासक की भांति नेपोलियन ने भी औरत में केवल मां का रूप देखा और चूंकि वह एक बुर्जुवा क्रांति का वारिस था, अत: वह समाज की संरचना में कोई बुनियादी परिवर्तन करना नहीं चाहता था। उसने पितृ-समाज को सारे अधिकार दिए और क्वारी मां के लिए कड़ी-से-कड़ी सजा का ऐलान किया। यह सामंती विरोधाभास समाज को पोर-पोर में महसूसा जा सकता था, जहां मातृत्व की गरिमा के बावजूद स्त्री को सम्मान प्राप्त नहीं था। लड़की और पत्नी नागरिक अधिकारों से वंचित रहने के कारण किसी की अभिभावक नहीं बन सकती थीं। दूसरी ओर ब्रह्मचारिणी और अविवाहित स्त्री को पूर्ण नागरिक अधिकार प्राप्त थे। विवाहित स्त्री के लिए तो पति की आज्ञा ही सर्वोपरि थी। विवाहेत्तर सम्बंध कायम करने पर पति स्त्री को कमरे में बंदिनी बना सकता था, तलाक दे सकता था। यदि वह क्रोध में उसकी जान भी ले लेता तो कानून उसको माफ करता था। हां, यदि पति व्यभिचार करे, तो पत्नी केवल तलाक की अर्जी दे सकती थी।

उन्नीसवीं शताब्दी में न्यायशास्त्र ने नेपोलियन को और बढ़ावा दिया। 1826 ईस्वी में तलाक की प्रथा खत्म कर दी गई, जो बाद में 1884 में जाकर पुनः प्रचलित हुई, तब भी कानूनी तौर पर तलाक पाना बड़ा कठिन काम था। मध्यमवर्ग इतना शक्तिशाली कभी नहीं था, किंतु अपनी सत्ता में वह स्वयं सहमा हुआ था तथा औद्योगिक क्रांति के परिणाम जानता था। स्त्री का जीवन केवल परिवार के लिए है, राजनीति के लिए नहीं। उसका जीवन-क्षेत्र घर है, सार्वजनिक संस्थाएं नहीं। अगस्त कांट ने घोषणा की कि स्त्री और पुरुष में बुनियादी अंतर है, उनमें शारीरिक, नैतिक और मानसिक- किसी भी रूप में कोई समानता नहीं। स्त्रीत्व एक प्रकार का प्रदर्शित बचपना था, जो स्त्री को जाति के आदर्शों से दूर और मानसिक रूप से कमजोर रखता था। नैतिकता और प्रेम में सम्भव है कि वह पुरुष से आगे हो, किंतु पुरुष कर्ता है, जगत् में सक्रिय है जबकि स्त्री घर में पराश्रित।

बाल्जाक के शब्दों में, "औरत की नियति और सम्पूर्ण महत्ता इस बात में निहित है कि वह पुरुष के दिल की धड़कन बढ़ा सके। वह जंगम सम्पत्ति है, जिसको पुरुष जहां चाहे, हांककर ले जा सकता है।"

यह स्त्री-विरोधी घोषणा अठारहवीं शताब्दी की बढ़ती हुई प्रगतिवादी विचारधारा की प्रतिक्रिया में थी। बाल्जाक दिखाना चाहते थे कि बुर्जुवा विवाह-संस्था प्रेम पर आधारित नहीं, इसलिए व्यभिचार आवश्यक है। अत: पति को चाहिए कि पत्नी पर कड़ी लगाम रखे और पत्नी को अशिक्षित रखे तथा सांस्कृतिक विचारों से दूर एवं सम्भव हद तक कुरूप बनाकर रखे। स्वाभाविक है कि अन्य पुरुषों की नजर ऐसी स्त्री पर नहीं पड़ेगी, अतः परिवार सुरक्षित रहेगा। स्त्री पराधीन बनी रहे साथ ही घर तथा चौके की सम्राज्ञी भी! पत्नी

को पूरा सम्मान भी मिलना चाहिए, क्योंकि वह गृहस्वामिनी है। बाल्जाक कहते हैं, "विवाहित महिला वह गुलाम है, जिसे सिंहासन पर बैठाया जा सके। उससे ज्यादा मेहनत न करवाई जाए। उसकी पूरी देख-रेख की जाए तथा हर जिम्मेदारी से मुक्त रखा जाए।" अधिकतर बुर्जुवा महिलाओं ने इस चमकदार स्वर्णमंडित जिंदगी की बंदिशें स्वीकारों । जो थोड़ी-बहुत कुछ अलग थीं, वे यदि शिकवे-शिकायत भी करती रहीं, तो उनकी सुनी-अनसुनी कर दी गई। मध्यमवर्गीय स्त्रियों ने इन सांकलों को इसलिए स्वीकारा कि इनमें सुविधाएं थीं, सुरक्षा थी। वे जानती थीं कि यदि पुरुष का साथ न रहेगा, तो रोजी-रोटी की समस्या खड़ी हो जाएगी। कामगार महिलाओं से वे कोई लगाव और बहनापा नहीं महसूस करतीं। वे यह विश्वास करती हैं कि बुर्जुवा स्त्रियों की मुक्ति का अर्थ होगा-उनके वर्ग का विनाश।

वस्तुतः परिवर्तन के प्रति इस प्रकार की अंधी जिद कभी ठहर नहीं पाती। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप श्रमिक-वर्ग का विकास हुआ। कल-कारखानों में स्त्रियों की भी जरूरत पड़ी। अतः समाजवाद उनकी मुक्ति के लिए सहायक था। 1879 की 'समाजवादी कांग्रेस' ने घोषणा की कि स्त्री और पुरुष, दोनों समान हैं, फिर भी नारी-मुक्ति का आह्वान एक गौण मसला बनकर रह गया, क्योंकि पहला सवाल तो श्रमिक-संघर्ष और सर्वहारा की मुक्ति का था। इसके विपरीत बुर्जुवा स्त्रियां सामाजिक संस्थाओं के चौखटे में स्थित होकर भी नए अधिकारों की मांग कर रही थीं। दरअसल वे क्रांतिकारी नहीं थी, क्योंकि उनका दृष्टिकोण सुधारवादी था। मसलन वे नशाबंदी, वेश्यावृत्ति का विरोध और अश्लील साहित्य पर प्रतिबंध की मांग कर रही थीं। उदारचेता पुरुष यह चाह रहे थे कि स्त्री अपनी गरिमा न खोए। घर स्त्री का मंदिर है। यदि वह राजनीति में भाग लेती है, वोट का अधिकार मांगती है, तो अपना लालित्य खो देगी। घर में उसको पुरुषों पर पूरा अधिकार तो है ही, अतः घर में बाहर की राजनीति लाने से क्या फायदा? यह प्रश्न भी उठा कि क्या वेश्याओं को वोट का अधिकार दिया जाना चाहिए? पुरुष ज्यादा शिक्षित होते हैं, अत: वे स्त्रियों के मत को प्रभावित करेंगे ही। अतः स्त्री का अपना चुनाव क्या हुआ? और स्त्रियां यदि स्वाधीनता चाहती हैं, तो पहले अन्य क्षेत्रों में तो स्वाधीन हों, दूसरी जकड़नों को तो तोड़ें। चाहे जो हो, फ्रांसीसी महिलाओं को अंत में 1945 में मतदान का अधिकार मिल गया। अंग्रेज स्त्रियों को काफी संघर्ष के बाद यह अधिकार 1928 में मिला क्योंकि उन्होंने प्रथम महायुद्ध में काफी सहयोग दिया था। अमरीका में स्त्रियों को वोट का अधिकार 1933 में मिला, लेकिन इतालवी फासिस्ट सरकार ने चर्च की सहायता से औरत को हमेशा दमित रखा। औरत वहां दोहरे बंधनों में थी, सरकारी प्रतिबंध तथा पारिवारिक बंधन। जर्मनी में घटना बिल्कुल दूसरी तरह घटी। चूंकि हिटलर का नात्सीवाद बुर्जुवा संस्थाओं के खिलाफ था, अत: उसने अविवाहित मातृत्व और प्राकृत-संतान को सुरक्षा दी।

सोवियत रूस में नारी-मुक्ति आंदोलन काफी जोरों से बढ़ा। पहले यह शुरू हुआ बौद्धिक छात्राओं से, उसने उन्नीसवीं शताब्दी के अंतराल में और उसके बाद काफी क्रांतिकारी एवं हिंसक रूप पकड़ लिया। शुरू से उसकी निष्ठा मार्क्सवादी परम्परा के प्रति थी। महान् नेता लेनिन ने स्त्री और मजूदर-वर्ग, दोनों की मुक्ति का आह्वान किया, दोनों को एक बतलाया। 1936 के सोवियत संविधान की धारा 122 लिखती है, सोवियत रूस में स्त्री को आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और सार्वजनिक सारे अधिकार पुरुष के बराबर प्रदत्त किए जा रहे हैं। "कम्युनिस्ट इंटरनेशनल निम्नलिखित मांगें पेश की गईं। व्यावहारिक जीवन और कानून की नजर में स्त्री और पुरुष सामाजिक रूप से एक हों। पारिवारिक नियम और दाम्पत्य जीवन के अधिकारों में आमूल परिवर्तन किए जाएं। मातृत्व को एक सामाजिक कृत्य माना जाए तथा समाज बच्चों और किशोर वयस्कों की शिक्षा का दायित्व ग्रहण करे। जो परम्परा औरत को दास बनाकर रखना चाहती है, उसका खुलकर विरोध हो।" चूंकि स्त्री-श्रमिकों को पुरुष-श्रमिकों के बराबर मजदूरी मिलती थी, अत: उनको राजनीतिक अधिकार भी समान मिले। यह सर्वविदित है कि रूस की महिलाओं ने जीवन के हर क्षेत्र में आशातीत प्रगति की तथा युद्ध में भी भाग लिया। यहां तक कि पुरुष योद्धाओं के दायरों में भी उन्होंने आशातीत सफलता पाई।

सार्वजनिक जीवन की सफलता से एक नई समस्या पैदा हुई। पारिवारिक जीवन में स्त्री को कौन-सी भूमिका हो? उसको घर के बंधनों से भी तो मुक्त होना था? क्रांति नपुंसक हो जाती है, यदि परिवार की पारम्परिक प्रथाएं और रूढ़ियां चलती रहें । स्त्री-पुरुष का सहज सम्बंध, तलाक की सुविधा और गर्भपात का वैधकरण आदि समस्याएं सीधे पुरुषों से सम्बंधित थीं और उनमें आमूल परिवर्तन की जरूरत थी। मातृत्व की गरिमा के बावजूद बच्चा मां की ही पूरी जिम्मेदारी हो, उसके कर्म-जीवन को जकड़े रहे, यह स्त्रियों के लिए वांछनीय नहीं था। परिवार और समाज के स्तर पर रूस की महिलाओं में भी विरोधाभास मिलता है। सारे आंदोलनों के बावजूद सेक्सुअल नैतिकता पर पूरा जोर दिया गया। 1936 और 1941 के कानून गर्भपात को गैर-कानूनी ठहराते हैं तथा तलाक को दबाने की कोशिश करते हैं। सामाजिक प्रथाएं व्यभिचार को निंदनीय ठहराती हैं। अतः प्रगति की राह यहां भी धीरे-धीरे आगे बढ़ती है।

अंत में संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1945 तक आते-आते दुनिया की सारी स्त्रियों और पुरुषों के समान अधिकार का ऐलान किया और अधिकतर देशों ने स्त्रियों को वोट का अधिकार देकर राजनीतिक जीवन में उनको प्रवेशाधिकार दिया।

सरसरी तौर पर देखने से हमें यह जरूर समझ में आता है कि नारी-मुक्ति आंदोलन का इतिहास पुरुषों ने लिखा है। ठीक उसी प्रकार, जैसे अमरीका में समस्या नीग्रो की नहीं, बल्कि श्वेत-जाति को है। अत: समस्या औरत ने नहीं खड़ी की। यह पुरुष की समस्या है कि

वह स्त्री को समानाधिकार से वंचित रखना चाहता है। पुरुष ने सभ्यता के आदिकाल से अपनी शारीरिक शक्ति के कारण अपनी श्रेष्ठता स्थापित की। उसने जो धर्म बनाए, जिन मूल्यों को गढ़ा, जिन आचरणों को मान्यता दी. वे सब उसकी अपनी सुविधा के लिए थे। उसके इस एकछत्र राज्य को औरत ने पहले कभी चुनौती नहीं दी। कहीं-कहीं कुछ महिलाओं ने व्यक्ति के रूप में विरोध में आवाज उठाई, कुछ आंदोलन भी हुए, किंतु पुरुष ने उतनी ही मांग स्वीकारी, जितनी वह देना चाहता था। पुरुष ने औरत का सब कुछ अपने हाथों में रखा। उसने स्त्री के स्वार्थ में उसकी नियति नहीं गढ़ी, बल्कि अपनी परियोजनाओं और अपनी जरूरतों से वह नियोजित हुआ।

नारी-मुक्ति आंदोलन में कभी कोई स्वायत्तता थी ही नहीं, बल्कि यह आंदोलन तो राजनीतिज्ञों के हाथ का खिलौना था। यह कुछ हद तक एक गहरे सामाजिक नाटक की उप-घटनामात्र है। न औरत ने अब तक अपनी एक अलग जाति बनाई और न एक अलग वर्ग की तरह कोई ऐतिहासिक भूमिका निभाई। यह तो पुरुष का दृष्टिकोण था कि उसने स्त्री में शाश्वत नारीत्व, अंतर्वर्तिता और अन्या का सिद्धांत खोजा। अधिकतर स्त्रियों ने मूक पशुओं की भांति अपनी नियति को अपने भाग्य-विधाता के हाथों छोड़ दिया। कुछ जो इन सीमाओं से ऊपर उठी, उन्होंने अपना जीवन परिवर्तित किया मगर पुरुष के साथ समझौता करके, पुरुष का दृष्टिकोण अपनाकर।

जागतिक कारणों में औरत की मध्यस्थता हमेशा प्रासंगिक तथा नगण्य रही। यदि निम्नवर्ग में औरत को स्वतंत्रता मिली और उसकी कोई उत्पादक की भूमिका रही भी, तब भी वह आर्थिक शोषण का शिकार थी। यदि वह सत्ता-वर्ग की थी, तो भी परजीवी थी, पुरुष के शोषण का शिकार। दोनों ही दृष्टांतों में कानून और व्यावहारिकता का तालमेल कभी नहीं बैठता । यदि कभी कोई संतुलन उभरा तो भी औरत की स्थिति हमेशा गौण बनी रही। व्यस्तता में उसने गुलामी को भोगा और यदि स्वतंत्रता मिली, तो एक नकारात्मक खालीपन भोगा। विधायक वह कभी नहीं हो सकी। एक अनोखी बात तो यह है कि विवाहित स्त्री को समाज में स्थान तो मिला किंतु स्वतंत्र अधिकारों से वह वंचित थी। अविवाहित स्त्रियां, ईमानदार औरतें या वेश्याएं पुरुष के बराबर संवैधानिक अधिकारों के बावजूद सामाजिक जीवन से बहिष्कृत रहीं।

संवैधानिक अधिकार और सामाजिक रीतियों के बीच के विरोध के कारण हम एक अजीबोगरीब विरोधाभास पाते हैं। कानून स्वतंत्र प्यार की आज्ञा देता है, जबकि परगमन अपराध है। बहुधा जवान लड़की से यदि कोई गलती हो जाती है, तो वह अपमानित होती है, जबकि विवाहित स्त्री का दुराचरण प्रायः झेल लिया जाता है। इसी का परिणाम है कि आज भी बहुत-सी युवा लड़कियां इसलिए शादी कर लेती हैं कि वे अपना प्रेम-व्यापार खुले रूप से चला सकें । ऐसी विलक्षण व्यवस्था में इन दो अतियों बीच कुछ गिनी-चुनी स्त्रियां

ही हैं, जिन्होंने पुरुषों के बराबर उपलब्धि हासिल की है। महारानी इसाबेला, महारानी एलिजाबेथ और महान् कैथरिन जैसी हस्तियां न तो स्त्री थीं और न पुरुष, वस्तुतः वे राज्य-सत्ता थीं। उन्हें स्त्री के रूप में देखा ही नहीं गया। वे सामान्य से पृथक और महत् थीं। इसी प्रकार धर्म भी औरत के जीवन के महान् रूपांतरण में सक्षम होता है। साइना की कैथरिन और संत थेरेसा ऐसी अमर आत्माएं हैं, जिनकी ऊंचाई पर बिरले पुरुष ही पहुंचे हैं।

समझने योग्य बात यह है कि औरतें स्थितियों में जकड़ी रहने के कारण जगत् पर कोई गहरी छाप नहीं छोड़ पातीं। किसी भी घटना में उनका सहयोग नकारात्मक या परोक्ष ही सम्भव होता है। अधिकारहीन स्त्री को किसी विधायक सहभागिता का अधिकार नहीं मिला। पुरुष ने हमेशा उसे थोपी हुई नियति स्वीकारने को कहा और यह समझाने की कोशिश की कि जो कुछ वह कर रही है, वही ठीक है। सच्चाई तो यह है कि ठोस जगत् में औरत की आवाज हमेशा मूक बनी रही। औरतें युद्ध का कारण बनीं, मगर वे रणकौशल नहीं जानती थीं। उन्होंने राजनीति की धारा को कपट और साजिश की जरूरत पड़ने पर प्रभावित किया, मगर जगत् का वास्तविक नियंत्रण उनके हाथों में कभी नहीं रहा। न तो उन्होंने तकनीक या अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया, न साम्राज्य गढ़े और न कोई दुनिया खोजी । कुछेक घटनाओं की वे मध्यस्थ जरूर बनीं, किंतु वहां भी वे बहानामात्र थीं, सही कारण नहीं। हर दमित आदमी शहीद होना जानता है, औरत तो इस कला में माहिर है, लेकिन शहादत दुनिया का चेहरा नहीं बदल देती। यदि औरत ने आंदोलन शुरू भी किया, यदि विरोध में चुनौती बनकर खड़ी । हुई, तो उसका प्रभाव पुरुष-वर्ग पर तभी पड़ा, जब उन्होंने औरत की हक-अदाई के पक्ष में स्वयं कोई फैसला किया। पुरुष की इच्छा के खिलाफ औरत उससे कुछ हासिल नहीं कर सकी।

ज्यादातर अभिनेत्रियां विचित्र व्यक्तित्व की थीं। यदि मादाम रोलां, जोन ऑफ आर्क या फ्लोरा त्रिस्तान की रिचल् या लेनिन से तुलना करें, तो पाएंगे कि इन स्त्रियों की महानता वैयक्तिक वे आदर्श उदाहरण थीं, मगर ऐतिहासिक कर्ता नहीं। महान् व्यक्तित्व हमेशा जन से पैदा होता है और परिस्थितियों से आगे ढकेला जाता है, जबकि औरतें हमेशा समाज के हाशिए पर रहती हैं, केंद्र नहीं तथा परिस्थिति हमेशा उनके प्रतिकूल रही है। उन्हें कभी ऐसी परिस्थिति नहीं मिली, जिस पर खड़ी होकर वे ऊंचाइयों की ओर छलांग लगा सकें। दुनिया का चेहरा बदलने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वे दृढ़ रूप से दुनिया में अपना लंगर डाले रहें, किंतु वही औरत समाज में पूर्ण रूप से अवस्थित है, जो समाज की अधीनस्थ है या जिसने धर्म का सहारा लिया तथा साधारण से ऊपर उठी महत्त्वाकांक्षी स्त्रियां और अभिनेत्रियां एक अजूबा थीं। यह तो हाल ही की घटना है कि औरत दुनिया को अपना घर समझने लगी तथा रोजा लक्समबर्ग, मादाम क्यूरी का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने यह

प्रमाणित कर दिया कि स्थितियों की हीनता के कारण कोई भी औरत ऐतिहासिक रूप से उपेक्षिता नहीं, बल्कि यह ऐतिहासिक उपेक्षा है जो औरत को नगण्य बनाती है।

एक ही क्षेत्र है, जिसमें स्त्रियों ने आशातीत सफलता पाई है और वह है संस्कृति का। स्त्री हमेशा कला और साहित्य से जुड़ी रही। चूंकि औरत की जिंदगी हमेशा सीमांत पर रहती है, इसलिए पुरुष ने इस जगत् के किनारे पार जाने के लिए औरत का ही सहारा लिया। कुछ अलौकिक क्षमता- सम्पन्न स्त्रियों ने रहस्यवाद और भविष्यवाणियों के क्षेत्र में काम किया। इसी प्रकार स्त्री कविता का ध्रुवतारा और कला-मर्मज्ञ बनी। उसके पास कला-साधना के लिए प्रचुर वक्त भी था। वह लेखकों की प्रेरणा, मित्र और आलोचक हमेशा रही। इस महती भूमिका के बावजूद उसका व्यक्तिगत योगदान नगण्य ही रहा, क्योंकि उसने अमूर्तता और सिद्धांत-निर्माण में तो रुचि ली, मगर कला के कर्मक्षेत्र में नहीं उतरी। जो जिंदगी के हाशिए पर रहता आया हो, वह कभी नवीन और मौलिक सृजन नहीं कर सकता। जो है, उसके परे जाने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि दी हुई परिस्थिति में हमारी जड़ें गहरी हों। सामूहिक रूप से हीन स्थिति में रहने वाले के लिए कोई भी वैयक्तिक उपलब्धि नहीं होती। मैरी बाशकिर्सेव पूछती हैं, "तुम कहां जाओगी इस घघरिया को पहनकर?" और स्टेनडाल कहते हैं, "स्त्री विलक्षण बौद्धिकता को लेकर जन्मती है, वह समाज के स्वार्थ में खत्म हो जाती है। सच्चाई तो यह है कि कोई जीनियस होकर नहीं जन्मता, वह जीनियस हो जाता है, और स्त्री को परिस्थिति तो ऐसी है, जो उसे कुछ बनने नहीं देती।"

इतिहास के अध्येता और स्त्री-विरोधी कुछ लोग दो ठोस उदाहरण देते हैं : (1) स्त्री ने कोई महान् सृजन नहीं किया, (2) स्त्री की परिस्थिति कभी किसी महान् व्यक्तित्व के प्रस्फुटन में बाधक नहीं बनी। ये दोनों ही वक्तव्य गलतफहमी के शिकार हैं। कुछ विशिष्ट सुविधाप्राप्त महिलाओं की सफलता का यह अर्थ नहीं कि यह नियम सामान्य स्त्रियों पर भी लागू हो यानी ऐसी सामान्य स्त्री पर, जिसको बड़े व्यवस्थात्मक रूप से शोपित किया गया हो। महान् स्त्री-प्रतिभाओं की विरलता से यही सिद्ध होता है कि परिस्थितियां हमेशा स्त्री के खिलाफ रहीं।

जॉन स्टुअर्ट मिल और स्टेनडाल ने माना है कि किसी क्षेत्र में स्त्री को कभी कोई सुविधा मिली ही नहीं। इसीलिए आज स्त्रियां नई स्थिति की मांग कर रही हैं। इस मांग के पीछे यह उद्देश्य कदापि नहीं कि वे नारीत्व को महानता के सोपान पर रखना चाहती हैं बल्कि वे सामान्य मानव-प्राणियों की कोटि में गिनी जानामात्र चाहती हैं। वे अपनी अंतर्वर्ती स्थिति का अतिक्रमण करके सर्वोपरिता की ओर कदम बढ़ाने का अवसर चाहती हैं। वे समझौता चाहती हैं। अमूर्त अधिकारों और वास्तविक सम्भावनाओं या कार्यकलापों में वे लीन तो हैं, उनको सारे अधिकार तो मिले हुए हैं, फिर वे किन वास्तविक सम्भावनाओं की खोज कर

रही हैं ? यहां फिर स्वतंत्रता का अर्थ नकारात्मक रूप में यानी स्वेच्छाचारिता के अर्थ में लिया जा रहा है, जबकि विधायक स्वतंत्रता हमेशा सृजनात्मक होती है।

यह ठीक है कि आज हम एक संक्रमण के दौर से गुजर रहे हैं। इस दुनिया में आज भी सारी सत्ता, सारे मूल्य और संस्थाएं पुरुषों के हाथों में हैं। यदि स्त्रियों को कुछ अधिकार दिए भी गए हैं तो वे अमूर्त रह गए हैं। वे रूढ़ियों और पूर्वग्रहों के कारण व्यावहारिक जगत् में लागू नहीं किए जा सकते। इसलिए अब भी स्त्री की पूरी पकड़ दुनिया पर नहीं है। कहने को स्त्री और पुरुष समान हैं, किंतु वास्तव में इन दोनों में बहुत बड़ा भेद कायम है।

स्त्री के ऊपर सबसे बड़ा बोझ आज विवाह का है। गर्भ-निरोध के कारण आज मातृत्व का बोझ कुछ कम हुआ है, लेकिन घर-गृहस्थी और बच्चों की देखभाल का पूरा बोझ स्त्री के ही ऊपर बना हुआ है। खासकर फ्रांस में तो स्त्री-विरोधी प्रवृत्ति इतनी अधिक है कि एक पुरुष यदि औरत को घर के कामों में कुछ सहायता करता है, तो उसके अहं को ठेस लगती है। परिणामस्वरूप स्त्री आज दोहरी भूमिका में पिट रही है। स्त्री चाहे किसी भी स्थिति में हो, निम्नवर्ग की या उच्च कोटि की, बाहर के कामों के अलावा उसे घर का काम करना ही पड़ता है।

यह भी सच है कि पुरुष की तुलना में औरत को पगार कम मिलती है। अत: बराबर काम करते भी वह.आर्थिक शोषण की शिकार है। चूंकि पुरुष के कार्यक्षेत्र में वह नवागता है, इसलिए सफलता के संयोग उसके लिए कम हैं । पुरुष हो या स्त्री, कोई भी हुकूमत में रहना पसंद नहीं करता। उनको पुरुष पर ज्यादा विश्वास रहता है। ऐसी स्थिति में औरत होना गुनाह न भी हो, तो अजीबोगरीब जरूर है। चूंकि पुरुष को सुविधापूर्ण स्थिति मिली हुई है, अत: यह सिद्ध हो जाता है कि आर्थिक रूप से स्त्री और पुरुष दो भिन्न जाति हैं। औरत इस आधुनिक युग में भी एक बिल्कुल सड़ी-गली पुरानी परम्परा की शिकार है। सच्चाई तो यह है कि उसकी स्थिति असंतुलित है और इसीलिए वह परिस्थितियों से समझौता करने में अक्षम है। स्त्रियों के लिए उनका शरीर ही उनकी सबसे बड़ी पूंजी है। वेश्यावृत्ति समाज में बर्दाश्त की जाती है। लम्पटता को प्रश्रय मिलता है। विवाहिताओं को यह अधिकार है कि वे अपने पति का धन भोगें और सामाजिक मान-सम्मान में किसी अविवाहित स्त्री से ज्यादा गहने-कपड़े पहनें। अत: औरत क्यों नहीं सिंड्रेला जैसी परी-कथा के मिथक को सपने में बसाए रखेगी? अब भी तो युवा लड़की यही सपना देखती है कि राजकुमार आएगा और उसे जीवन की सारी सुख-सुविधाओं से भर देगा। विवाह के कारण ऊपरी सीढ़ी पर छलांग लगाने वाली स्त्री आजीवन मेहनत करके भी वांछित सुविधा नहीं पा सकती।

ऊपर की ओर छलांग लगाना एक दुराशा है, ऐसा सोच और चिंतन स्त्री-जीवन को परस्पर विरोधी खयालों में बांट देता है, जिसके कारण उसकी शक्ति का अपव्यय और रुचि का हनन होता है। अभिभावक अब भी केवल विवाह को ध्येय बनाकर ही लड़की का

लालन-पालन करते हैं, उसके व्यक्तित्व का विकास नहीं। लड़की स्वयं विवाहित जीवन में इतनी अधिक सुख-सुविधाएं देखती है कि वह भी इसी की इच्छा रखती है। नतीजा यह होता है कि जीवन में वास्तविक संघर्ष के लिए उसको प्रशिक्षण का वक्त कम मिलता है। अपने भाइयों की तुलना में अपनी स्थितियों का चुनाव एक निम्न स्तर पर वह स्वयं कर लेती है। हीनता का यह ऐसा दुष्चक्र है, जिससे निकलना प्रायः असम्भव हो जाता है और चूंकि अपने धंधे और पेशे में स्त्री हीन है, उसकी रुचि सतही है, इसलिए वह पति की चाह एक रक्षक रूप में और अधिक करने लगती है।

मिली हुई प्रत्येक सुविधा के साथ कुछ असुविधाएं जुड़ी होती हैं, किंतु असुविधाएं तथा बोझ यदि कम हों तो यह एक प्रकार की गुलामी हो जाती है। अधिकतर श्रमिकों के लिए श्रम एक प्रकार का उबाऊ काम होता है, किंतु औरत आज चूंकि बाहर काम कर सकती है, अतः वह गृहस्थी का बोझ खुशी-खुशी उठाने को राजी नहीं। घर और बाहर की जिंदगी के द्वंद्व में फंसकर वह और थकना नहीं चाहती। अत: आज भी स्वतंत्रता की राह कठिन और अकेली हैं। अधिकतर स्त्रियां यही चाहेंगी कि किसी अच्छे खाते-पीते व्यक्ति से शादी कर लें और कमाने की चिंता से मुक्त हो जाएं। अभी वे यह नहीं सोच पा रही हैं कि शादी का यह प्रलोभन ज्यादा खतरनाक है। विवाह एक लॉटरी है जिसमें कोई एक जीतेगा। टिकटें तो हजारों-लाखों बिकेंगी। आज का युग आमंत्रित करता है, यहां तक कि स्त्री को बाध्य करता है कि वह घर से बाहर काम करे। साथ ही परम्परा एक खुशनुमा जिंदगी की चमक दिखाती रहती है, जिनको ऐसी जिंदगी नसीब है, केवल उनका उदाहरण दिया जाता है और हम भूल जाते हैं कि जमीन पर कितने पर-कटे पंछी सड़प रहे हैं।

आर्थिक जीवन में पुरुष विशिष्ट स्थिति में हैं। उनकी सामाजिकता, विवाह से मिला हुआ सम्मान, पुरुषों का सहारा-ये सब बातें मिलकर स्त्री के मन में बस एक ही उद्देश्य को बढ़ावा देती हैं कि वह कैसे अपने पति को खुश रखे। स्त्री अब भी अधीनस्थ है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्त्री अपना चुनाव अपने स्वभाव के अनुकूल नहीं करती, बल्कि पुरुष द्वारा परिभाषित और प्रदत्त जीवन को स्वीकारती है। अतः अब हमें यह देखना चाहिए कि पुरुष स्त्री के प्रति कौन-सी कल्पना रखता है, उससे किन आदर्शों की अपेक्षा करता है?

तीन : मिथक

स्वप्न, भय और आदर्श

इतिहास इस बात का साक्षी है कि आदिकाल से ही परिवार का गृहस्वामित्व आयु की दृष्टि से श्रेष्ठ पुरुष सदस्य के हाथ में रहता आया है। उसने स्त्री को हमेशा परावलम्बी बनाए रखा। कानून ने भी स्त्री को पुरुष से नीचे के स्तर पर रखा। स्त्री को 'अन्या' कहा गया। वह पुरुष- वर्ग से भिन्न एवं निम्न प्राणी की कोटि में रखी गई। इस व्यवस्था से पुरुषों को न केवल आर्थिक विशेषाधिकार मिले, बल्कि उसके मिथ्या दार्शनिक और नैतिक विचारों की भी पुष्टि हुई। पुरुष अपने स्वत्व की स्थापना करना चाहता है। स्त्री उसे सीमित रखती है, अस्वीकार करती है, किंतु वह पुरुष की आवश्यकता है, उसके ही माध्यम से पुरुष पूर्णता प्राप्त करता है। यही कारण है कि पुरुष के जीवन में बाहुल्य एवं शांति नहीं है। उसमें कर्मठता है, किंतु उसका जीवन शून्यता और संघर्ष से पूर्ण है। आदिपुरुष ने प्रकृति से संघर्ष किया, उस पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहा और उसे अपनी इच्छा के अनुरूप सांचे में ढालना चाहा, किंतु प्रकृति उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति न कर सकी। वह पुरुष के सम्मुख चुनौतीपूर्ण अवरोध के रूप में आती है, वह बाधक और अपरिचित के रूप में उपस्थित होती है। संघर्ष के दौर से वह पुरुष की इच्छा के प्रति समर्पण करती है, उसे समांगीकरण करने की अनुमति देती है। पुरुष उसका विनाश कर उस पर आधिपत्य जमाता है। दोनों ही अवस्थाओं में वह एकाकी है। पाषाण-युग में भी वह एकाकी था और उस युग में भी, जब वह कंदराओं में वास करता था और कंद, मूल, फल के सहारे जीवन-यापन करता था। नारी-अस्तित्व पुरुष में और पुरुष के लिए है। उसके अस्तित्व का सच्चा अर्थ उस चेतना के रूप में है, जो पुरुष की चेतना से भिन्न होते हुए भी उसमें एकाकार है।

अन्य व्यक्तियों का अस्तित्व ही व्यक्ति-विशेष को उसकी अंतर्वर्तिता से ऊपर उठाता है। इसी क्रम में व्यक्ति अपना अस्तित्व अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है। यह पृथक्करण उसे सर्वोपरि उठने में सहायता देता है। वह साहस के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता है।

मनुष्य की यह स्वतंत्रता उसको व्यक्तिगत स्वतंत्रता होते हुए भी उससे भिन्न है, अंतर्द्वंद्व-ग्रस्त है। मानव की सबसे बड़ी दुःखद कथा यह है कि वह पूर्ण स्वतंत्र होने की आकांक्षा करता है। हर व्यक्ति अपने-अपने आधिपत्य के लिए दूसरे व्यक्ति को गुलामी में जकड़ता है। दास स्वामी से भयभीत रहता है, उसकी सेवा करता है, किंतु | वह अपने को स्वामी के अस्तित्व का अनिवार्य व मुख्य अंग समझता है। इस प्रकार हम तार्किक द्वंद्वात्मकता द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि स्वामी को स्वीकार कर लें और अपनी और अन्य की स्थिति को एक-सा मानें तो इस मतांतर और विरोध से उत्पन्न टकरावों का अंत हो सकता है। मित्रता । और हृदय की उदारता के ही जरिए मनुष्य एक-दूसरे को पारस्परिक रूप से स्वतंत्र देखने में समर्थ होता है। यह गुण सहज प्राप्य नहीं हैं। जिन व्यक्तियों में इन गुणों का समावेश है, उन्होंने एक महान उपलब्धि प्राप्त की है। इस सच्चे रूप को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। उसे अपने अहं-भाव को तिरोहित करना पड़ता है। इस नैतिक दृष्टिकोण को अपनाने के लिए उसे अपना अस्तित्व भुला देना पड़ता है, स्वामित्व की भावना त्याग देनी पड़ती है। मनुष्य में ऐसा परिवर्तन आना कठिन है। यही कारण है कि उसे सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। उसके मन में तनाव बना रहता है। एकांत में मनुष्य को पूर्णता प्राप्त नहीं होती, किंतु सहयोगियों के साथ भी उसके सम्बंध संकट से मुक्त नहीं होते। जीवन के संघर्ष में सफलता की आशा संदा धुंध-भरी होती है।

मनुष्य स्वभाव से कठिनाइयों से दूर भागता है। वह संकट से घबराता है। यह कैसा विरोधाभास है कि वह जीवन और विश्राम, दोनों की आकांक्षा एक साथ करता है। वह अपने अस्तित्व और उसको नगण्यता की इच्छा भी एक साथ करता है। उसे अच्छी तरह ज्ञात है, विकास के लिए उसे कष्ट झेलना पड़ेगा। वह लक्ष्य से जितना दूर होता है, स्वयं के उतना ही करीब। वह अशांति में शांति का स्वप्न देखता है और उस अपारदर्शक बाहुल्य की इच्छा व्यक्त करता है, जिसमें चेतना आवश्यक है। नारी इस चेतना का मूर्त रूप है। वह पुरुष और प्रकृति के बीच माध्यम है। पुरुष से पूरी परिचित न होते हुए भी नारी उसकी संगिनी है और बहुत-कुछ उस जैसी ही है। प्रकृति की तरह वह पुरुष का मौन, विरोध नहीं करती। परस्पर सम्बंध स्थापित करने के लिए नारी को प्राप्त करना पुरुष के लिए कठिन भी नहीं है। अपनी विशेषाधिकारपूर्ण स्थिति के कारण पुरुष स्त्री को 'शरीर'-रूप में आसानी से पा सकता है।

पहले हम देख चुके हैं कि जिन स्त्रियों को पुरुष ने गुलाम बनाया, वे स्वतंत्र नहीं थीं। उस समय 'सेक्स' पर आधारित जातियां भी नहीं थीं। नारी को दास की संज्ञा देना नितांत भूल है। दासों के मध्य भी नारियां रही हैं, पर वे स्वतंत्र नारियां थीं। उनकी अपनी सामाजिक और धार्मिक प्रतिष्ठा थी। उन्होंने पुरुष के प्रभुत्व को स्वीकार किया था। पुरुषों को उनके विरोध का भय नहीं था। इस प्रकार नारी की स्थिति गौण रही। उसने कभी मुख्य बनने की

चेष्टा नहीं की, जिससे पारस्परिकता स्थापित हो सके। पुरुष को नारी को यह स्थिति मान्य है।

सृष्टि की प्रत्येक काल्पनिक कथा में नारी की गौण स्थिति का जिक्र किया गया है। ईसाई धर्म ईश्वर ने पुरुष में भी सृष्टि के बारे में यही सिद्धांत है और पाश्चात्य सभ्यता भी इस सिद्धांत को मान्यता देती है। और इन दोनों की सृष्टि एक साथ नहीं की। आदम' के निर्माण में जिस मिट्टी का प्रयोग हुआ, उसका प्रयोग स्त्री के निर्माण में नहीं हुआ। प्रथम पुरुष के मांसल पार्श्व को ले 'ईव' को रचा गया। न तो 'ईव' का जन्म स्वतंत्र रूप में हुआ और न ईश्वर ने उसे उसी के लिए बनाया। प्रत्यक्ष रूप में वह पूज्य नहीं बनाई गई। उसकी सृष्टि पुरुष के लिए हुई। आदम' के एकाकीपन को (करने के लिए ईश्वर ने उसे ईव को दिया। ईव की उत्पत्ति उसके साथी से हुई और उस साथी के लिए ही उसे बनाया गया। 'ईव' गौण रूप में अपने साथी के पूरक के रूप में आई। वह पुरुष को इच्छा की शिकार थी, पर वह शिकार, जिसे विशेष सुविधाएं प्राप्त हों। उसमें प्रकृति को ऊंचा उठाकर चेतना की शक्ति दी गई। वह चेतन जीवन में है, पर उसमें स्वाभाविक विनम्रता है। पुरुष पूर्णता प्राप्त करने के लिए नारी को संगिनी के रूप में प्राप्त करना चाहता है, पर वह स्वयं को एक स्वतंत्र व्यक्ति मानता है। कोई भी पुरुष नारी बनना नहीं चाहता, किंतु नारी का अस्तित्व बना रहे, यह सभी पुरुष चाहते हैं। पुरुष के लिए वह ईश्वर धन्यवाद के योग्य है, जिसने नारी की सृष्टि की। प्रकृति भी कितनी सुंदर है कि उसने पुरुष को नारी सौंपी? ऐसे शब्दों द्वारा पुरुष दम्भपूर्वक संसार में अपनी स्थिति को मुख्य बताता है। नारी की उत्पत्ति संयोगवश है, पर यह संयोग एक सुखद संयोग है। पुरुष शून्यता का अनुभव करता है, पर नारी में बाहुल्य है। नारी में जीव का अस्तित्व वास्तविक रूप में है, पुरुष इससे वंचित है। नारी द्वारा ही पुरुष पूर्णता और आत्मज्ञान प्राप्त करने की आशा करता है।

इतिहास हमें बताता है कि नारी की स्थिति बराबर एक-सी नहीं रही। अनेक बार नारी की स्थिति अन्य श्रेष्ठ व्यक्ति व संस्था द्वारा कमजोर बना दी जाती रही है। जब नागरिक से अधिक उच्च स्थान राज्य को दिया गया, तब नागरिक राज्य के सम्मुख शिथिल पड़ गया। चूंकि स्पार्टा की नारियों ने अपने को राज्य को समर्पित कर दिया था, इसलिए उनकी स्थिति अन्य ग्रीक महिलाओं से अच्छी रही, फिर भी वे पुरुष के समान स्तर पर नहीं रहीं । नेपोलियन का युग हो या मुसोलिनी और हिटलर का, नेतृत्व पुरुष को ही मिला। जिन राज्यों में सैनिक अधिनायक रहे या एक ही नायक के हाथों सारी शक्ति थी, उनमें नारी को कभी भी विशेष सुविधाएं नहीं मिलीं। अमरीका जैसे समृद्ध एवं सम्पन्न देशों में नारी को देव-तुल्य माना गया, क्योंकि वहां के व्यक्ति जीवन का अर्थ सच्चे रूप में न समझ सके।

समाजवादी आदर्शों का पालन करने वाले भी मनुष्यमात्र में समानता चाहते हैं। समाज में किसी का पृथक एवं श्रेष्ठ स्थान नहीं है और न भविष्य में रहेगा। मार्क्सवादी सच्चे

प्रजातंत्र में भी नारी का स्तर, पुरुष के स्तर के समान है। कुछ व्यक्ति सैनिक अधिनायक को मान्यता देते हैं, पर नारी को वे विशेष महत्त्व देते हैं। जर्मन सैनिकों द्वारा फ्रेंच वेश्याओं को लिखे पत्रों में उनके कौमार्य का जिक्र है। फ्रांस के अरागो और इटली के विटोरिना और कम्युनिस्ट लेखकों ने नारी को पत्नी और मां के रूप में उच्चतम स्थान दिया है। ज्यों-ज्यों नारियां अपने स्व-अस्तित्व पर जोर देंगी, उनसे सम्बंधित काल्पनिक व अवास्तविक कथाएं लुप्त होती जाएंगी। फिलहाल नारी का काल्पनिक रूप ही हर मानव के हृदय में है।

प्रति-कथाओं में प्रायः पुरुष की सर्वोपरि उठने की आशा का वर्णन मिलता है और साथ ही उसके हृदय में इस ऊंचाई के लिए व्याप्त भय भी। नारियां कभी भी इतनी ऊंचाई पर पहुंचने की कल्पना नहीं करती। उनका न पृथक धर्म है और न काव्य । वे पुरुषों के देखे स्वप्न देखती हैं। पुरुषों ने जिन्हें देवत्व प्रदान किया, वे उनकी ही स्तुति एवं आराधना करती हैं। पुरुष ने अपनी प्रशंसा के लिए हरक्यूलिस, प्रोमिथियस, पार्सिफल जैसे वीरों की सृष्टि की। इन वीरों के भाग्य-निर्णय में नारियों का स्थान हमेशा गौण रहा। परम्परा से पुरुष नारी के साथ भिन्न-भिन्न रूपों में आता रहा। पिता के रूप में, पति एवं ईर्ष्यालु प्रेमी के रूप में। नारी को मोहित करने वाला रूप भी उसका है। वह सपूत और कपूत, दोनों ही रूपों में आता है, पर हर रूप में उसकी स्थिति पुरुष द्वारा निर्धारित होती है, उसका कोई भी रूप अवास्तविक नहीं है । नारी का वर्णन हमेशा पुरुष की छाया में हुआ है। स्त्री और पुरुष दो वर्ग बने। 'सेक्स' शब्द प्रायः नारी को संकेतित करता है। नारी 'शरीर' है, मांसल है। उससे प्राप्त आनंद में संकट अथवा भय है। पुरुष का वर्णन कभी सेक्स (यौन) या शरीर के रूप में नहीं हुआ। सर्वदा पुरुष ने ही विश्व व विश्व के प्रतिरूप का वर्णन किया। यह वर्णन पुरुष के दृष्टिकोण से है। पुरुष ने सत्य के रूप को भ्रमित कर दिया है।

हर कोशिश के बावजूद अवास्तविकता रहस्य के पर्दे से बाहर नहीं आ पाती। प्रत्येक अवास्तविकता स्वयं में अंतर्विरोध-ग्रस्त रहती है। उसके अलग-अलग आख्यान, अलग-अलग रूप व्यक्त करते हैं। उदाहरणार्थ 'डेलिला' और जूडिथ और एस्पासिया और लुक्रेशिया तथा पेंडोरा और एचेना की गाथाओं में नारी एक साथ दो रूपों में आती है। ईव और विर्जिन मेरी एक ही साथ देवी, सेविका, जीवन-स्रोत, अंधकार की शक्ति, सत्य का मौन और साथ-ही-साथ एक चाल, अफवाह, मिथ्या, आरामदेह उपस्थिति और जादूगरनी आदि के भिन्न रूपों में मिलती हैं। वह पुरुष के विषय-भोग और उसके पतन का कारण बनती है। नारी वह सब कुछ है, जो पुरुष नहीं है। पुरुष उसे प्राप्त करने की कामना करता है। वह पुरुष का 'नकार' रूप है।

कीर्केगार्द ने अपनी रचना में नारी को एक जटिल रहस्यमय सृष्टि कहा है। सही रूप में उसका वर्णन कोई भी न कर सका। तमाम वर्णनों में भिन्नता मिलती है। इस हालत को शायद नारी ही बर्दाश्त कर सकती है। उसकी वास्तविकता को कभी भी मान्यता नहीं दी

गई। पुरुष नारी को जिस रूप में देखता है, वही रूप सम्मुख आता है। यद्यपि नारी हमेशा पुरुष से 'अन्य' नहीं है, पर उसे 'अन्या' के रूप में ही देखा गया है। इसीलिए उसके वास्तविक स्वरूप का वर्णन नहीं मिलता। यदि वह बुराई है, तो अच्छाई के लिए आवश्यक है और अच्छाई में परिणत हो जाती है। उसके ही माध्यम से पूर्णता प्राप्त होती है और वही पुरुष को पूर्णता से पृथक करती है । यह वह द्वार है, जिसके द्वारा असीमित तक पहुंचा जा सकता है। नारी ही पुरुष के सीमित स्वभाव को प्रदर्शित करती है। नारी का एक निश्चित रूप मिलता है। वह आशा से निराशा की ओर ले जाती है, घृणा से प्रेम, अच्छाई से बुराई और बुराई से अच्छाई की ओर। उसे चाहे जिस रूप में भी देखा जाए, उसके ये विरोधी गुण ही निगाह में पड़ते हैं।

पुरुष नारी को प्रकृति के रूप में देखना चाहता है और साथ ही अपनी संगिनी के रूप में भी. परंतु प्रकृति पुरुष में विरोधी भाव उत्पन्न करती है। वह प्रकृति का उपयोग करना चाहता है, पर प्रकृति उसे कुचल देती है। उसकी उत्पत्ति प्रकृति से होती है और मृत्यु के बाद वह प्रकृति में ही विलीन हो जाता है। प्रकृति निम्न धातु से निर्मित वह पात्र है, जिसमें आत्मा बंदी है। वह महान् सत्य है। वह विचारस्वरूप और सापेक्ष है। वह पूर्ण और सीमित, दोनों ही है। वह आत्मा का विरोध करती है, पर वह स्वयं भी आत्मा है। कभी वह संगी है और कभी वह शत्रु । कभी वही उस तमपूर्ण कुहासे के रूप में दिखाई देती है, जिससे जीवन की उत्पत्ति होती है और जिस ओर जीवन अंत में प्रस्थान करता (76) स्त्री : उपेक्षिता है। प्रकृति में नारी मातृ, पत्नी और भाव रूप में निहित है। इसी से उसके भिन्न रूपों में कभी एकरसता है और कभी विरोध। नारी प्रत्येक रूप में दोमुखी है।

प्रकृति ही मानव-जीवन के उद्गम का स्रोत है। मनुष्य का गठन भी अन्य जीवों और पेड़-पौधों की तरह हुआ। उसे ज्ञात है कि उसके जीवन का अस्तित्व सिर्फ जीवित रहने तक है। आदिकाल के पुरुष प्रधान समाजों की अव्यवस्था से ही उसने जीवन के दो पहलू देखे हैं। एचिलस, अरस्तू और हिपोक्रेटिस आदि का कथन है कि पौरुषीय सिद्धांत सृष्टि का जनक है। इसी के माध्यम से आकार, संख्या और गति की प्राप्ति होती है। डिमिटर की देख-रेख में ही अनाज उगता और बढ़ता है, किंतु जियूस में उसकी उत्पत्ति और वास्तविकता प्रतिफलित होती है।

नारी में उर्वरा-शक्ति निहित है। उसका शांत-स्वभाव एकगुण है । वह पृथ्वी है और पुरुष बीज- रूप, नारी जल है और पुरुष अग्नि। अग्नि और जल के संयोग से ही सृष्टि का कार्य होता है। उष्णता और नमी ही जीव को जीवन प्रदान करते हैं । सूर्य समुद्र का स्वामी है। अग्नि और सूर्य पुरुष-देव हैं, जबकि समुद्र व्यापक रूप में मातृत्व का प्रतीक है। शांत समुद्र में उर्वरा-शक्ति तप्त और जलती हुई रश्मियां ही पैदा करती हैं। इसी प्रकार भूमि अपने गर्भ में बीज को धारण करती है। यह जीव को आश्रय देती है, रक्षा करती है और विकास के

लिए खाद्य देती है। यही कारण है कि पुरुष निरंतर उर्वरा-शक्ति से सम्पन्न देवी की आराधना करता है। उस समय भी वह पूज्य थी, जब उसे अपना उच्च-आसन त्यागना पड़ा। पुरुष अनाज, चौपायों और पूर्ण सम्पन्नता के लिए वह साइबिल के प्रति कृतज्ञ है। उसी ने उसे जीवन प्रदान किया। वह जितनी स्तुति अग्नि की करता है, उतनी ही जल को। फाउस्ट के द्वितीय खंड में गेटे ने अग्नि और जल को समान गौरव प्रदान किया है। मनुष्य पृथ्वी के प्रति श्रद्धालु होता है। किसी भारतीय संत ने अपने शिष्यों को परामर्श दिया है कि कृषि के लिए वे फावड़ा चला अपनी मां को घायल न करें। मैं अपनी माता के वक्ष-स्थल में चाकू नहीं मार सकता, तो भला पृथ्वी के हृदय को कैसे विदीर्ण करूं? मध्य भारत के वैद्य ने भी ऐसा ही कहा है। ठीक इसके विपरीत एचीलस ओडिपस से कहता है कि उसने पृथ्वी के पवित्र गर्भ में बीजारोपण किया है, उसी पृथ्वी के जो कि उसकी जननी है। सोफोक्लस ने इन गुणों का आरोपण पुरुष पर किया है।

खेत का स्वामी सिर्फ बीजारोपण के समय खेत जोतता है। मिस्र के एक गान में प्रेमिका अपने को पृथ्वी कहती है । इस्लाम में नारी को खेत और अंगूर का बगीचा आदि कहा गया है। एसीसी के संत फ्रांसिस ने अपने स्तुति गान में पृथ्वी को माता और भगिनी कहकर सम्बोधित किया है। वह सदा हमारी देखभाल करती है और हमारे लिए विभिन्न फूल-फल उत्पन्न करती है। एक्यू' नामक स्थान पर रेत में लोटते हुए माइकीलेट कहते हैं, "हम सबकी प्रिय जननी ! मैं तुझसे ही निर्मित हुआ और तुझमें ही मिल जाऊंगा।" ऐसी कल्पनाओं में आत्मा की देह पर विजय हुई है। नारी और भूमि की उर्वरा-शक्ति पुरुष के स्वतंत्र कार्यों से कहीं महान और आश्चर्यजनक है। पुरुष नारी की छाया में खो जाना चाहता है, जिससे उसे जीवन का सच्चा स्रोत प्राप्त हो जाए। मां उस जड़ के समान है, जो विश्व की गहराई से सभी रसों को खींच लेती है। वह झरना है, जिससे जीवन-शक्तिदायी नारी प्राप्त होती है। वह नीर पौष्टिक दुग्ध की तरह है।

पुरुष अपने शारीरिक रूप के प्रति विद्रोह करता है। वह अपने को एक पदच्युत देवता के रूप में देखता है। अभिशाप के कारण वह भव्य व सुव्यवस्थित स्वर्गलोक से गिरकर मां के गर्भ में अव्यवस्थित अवस्था में आ जाता है। पुरुष अपने को पवित्र अग्नि और महान् उत्कर्ष की अवस्था में देखना चाहता है, पर नारी उसे पृथ्वी की मिट्टी में कैद कर लेती है। पुरुष स्वयं को महान् आत्मा के रूप में देखना चाहता है, पर इच्छा के विरुद्ध वह अपने को सीमित शक्तियों वाली नश्वर देह में पाता है। देह रूप होने के कारण उसे व्यर्थ दुःख झेलना पड़ता है। नारी ही उसे मृत्यु की ओर ढकेलती है। मां के गर्भ में स्थित हिलता हुआ तरल पदार्थ धीरे-धीरे विकसित होकर चिपचिपे मांस के रूप में परिवर्तित हो जाता है। जीवन की सृष्टि के प्रति पुरुष के मन में घृणा है, क्योंकि जीवन को सृष्टि ही उसकी मृत्यु की । सूचना है। गर्भ में स्थित भ्रूण इस जीवन के उस चक्र को शुरू करता है, जिसका अंत मृत्यु है। मृत्यु

से भयभीत पुरुष को जीव-रूप में आना भी मान्य नहीं। वह अपने सांसारिक बंधनों को अस्वीकार करता है। इस प्रकार उसके जन्म के कारण प्रकृति उस पर आधिपत्य स्थापित करती

आदिम जातियों में शिशु-जन्म के समय बड़ी कड़ी व्यवस्था है। नवजात शिशु की 'नाल' को या तो जलाकर नष्ट कर दिया जाता है या फिर समुद्र आदि में फेंक दिया जाता है। ऐसा विश्वास है कि जिस व्यक्ति-विशेष के हाथ वह 'खेड़ी' पड़ेगी, उसका भाग्य भी नवजात शिशु के ही भाग्य की तरह होगा। झिल्लीदार पिंड, जिसके सहारे भ्रूण बढ़ता है, भ्रूण की परनिर्भरता का सूचक है। उसके नष्ट होते ही बालक मां से पृथक एक स्वतंत्र जीव हो जाता है। जन्म की सारी अपवित्रता मां पर केंद्रित है। लेविटिकस तथा सभी प्राचीन नियमों द्वारा शुद्धीकरण का संस्कार मां के लिए है। अनेक ग्रामीण स्थलों में शिशु-जन्म के पश्चात् आशीर्वाद-समारोह होता है। गर्भवती स्त्री के बढ़े हुए उदर व नवजात शिशु की मां के उभरे हुए उरोजों को देख बच्चे, युवतियां और पुरुष सभी परेशानी का अनुभव करते हैं । यह परेशानी उपहासपूर्ण हास्य में व्यक्त होती है। अजायबघरों में सुरक्षित मोम के छोटे और पूर्णकाय भ्रूण एक विकृत रुचि के परिचायक हैं।

गर्भवती के बढ़े हुए उदर को देख विकर्षण होता है। समाज गर्भधारण को चाहे सम्मान की दृष्टि से देखें, पर गर्भवती नारी के प्रति सभी में विकर्षण का भाव होता है। छोटा बालक बचपन में मां से चाहे कितना ही क्यों न चिपका रहता हो, अपने व्यक्तिगत अस्तित्व को जरूर प्रदर्शित करता है। नारी उसमें भय के भाव का संचार करती है। वह नारी को अवहेलना की दृष्टि से देखता है और अपनी मां को एक नैतिक व्यक्ति के रूप में। मां को देह-रूप में देखना वह अस्वीकार करता है, इसलिए वह उसे शुद्ध व पवित्र मानता है। किशोर बालक अपने साथियों के साथ अपनी मां, बहन अथवा किसी अन्य महिला रिश्तेदार के सम्मुख आते ही परेशान-सा हो जाता है। वह लज्जा का अनुभव करता है। उनकी उपस्थिति उसे उसके उस विश्वव्यापी अस्तित्व को स्मृति दिलाती है, जहां से वह आया है। छोटे लड़के भी मां के लाड़-दुलार करने पर चिड़चिड़ा जाते हैं। वे परिवार और मां, सभी से दूर भागते हैं। वे संसार में एथीना की तरह पूर्ण विकसित और सुसज्जित रूप में आना चाहते हैं। बच्चे के लिए अभिशाप था कि उसका जन्म शिशु-रूप में गर्भाधान के बाद हुआ। यह क्रिया मानो उसे अपवित्र कर देती है और साथ ही जन्म उसकी मृत्यु की घोषणा करता है । पृथ्वी मां अपनी संतानों के 'फूलों' को स्वयं ग्रहण कर लेती है। प्रकृति मनुष्य के भाग्य को बुनती है। वही इन सूतों को, जिनसे भाग्य बुना है, तोड़ भी देती है। प्रायः मृत्यु को नारी माना गया है। मृत्यु पर विलाप नारियां ही करती हैं, क्योंकि उनकी ही कृति मरती है।

नारी के रूप में मां का मुख-मंडल छायाओं से आच्छादित है। वह एक ऐसा अव्यवस्थित पिंड है, जहां से हम सब आए हैं और जहां एक दिन सबको वापस जाना हैं। वह

अस्तित्वहीन (nothingness) है। 'रात्रि' में संसार के विभिन्न रूप मिल जाते हैं। दिन का प्रकाश उनका उद्घाटन करता है। रात्रि को आत्मा और द्रव्य की अपारदर्शकता सामान्यतः निद्रा और नगण्यता में स्थित है। समुद्र के तल में रात्रि अर्थात् अंधकार है, जिससे प्राचीन काल के नाविक भयभीत होते थे। पृथ्वी के गहरे में भी रात्रि (अंधकार) है। पुरुष नारी के इस रात्रि-रूप से भयभीत है, क्योंकि यह उसके लिए विनाशकारी है और साथ ही उसकी उर्वरा-शक्ति के प्रतिकूल है। इसलिए वह प्रकाश और सूर्य से प्रकाशित ऊंचाइयों और पवित्र तथा शीतल पारदर्शी नीले आकाश की आकांक्षा करता है। उसके पैरों के तले नम, उष्ण व अंधेरी खाड़ी व खड्ड हैं, जो किसी भी क्षण उसे नीचे की ओर घसीट सकते हैं। उपाख्यानों में ऐसे अनेक नायकों का वर्णन है, जो गुफा और पाताल में गिरकर हमेशा विनष्ट हो जाते हैं।

जीवन और मृत्यु परस्पर संलग्न हैं। जिस मृत्यु से घृणा की जाती है, वह एक नए जीवन का रूप धारण करके धन्य होती है। ओसिरिस की तरह मृत नायक का पुनर्जन्म होता है। जुंग ने अपनी 'मेयमार्फासिस ऑफ लिबिडो' नामक पुस्तक में कहा है कि मनुष्य को सबसे बड़ी आशा यह है कि मृत्यु का काला जल पुनर्जीवन के स्वच्छ जल में बदल जाता है, मृत्यु के ठंडे आलिंगन के बाद पुनर्जीवन प्राप्त होता है। ठीक उसी तरह, जैसे समुद्र सूर्य को अपने में समाहित कर लेता है और अपनी गहराइयों से ही उसे पुनर्जन्म देता है। अनेक पौराणिक कथाओं में सूर्य देवता का समुद्र के जल में समा जाने और फिर से चकाचौंध से भरे प्रकाश के साथ दृष्टिगोचर होने का वर्णन है। मनुष्य जीना चाहता है, पर साथ ही विश्राम, निद्रा और शून्य में लीन होने की भी वह कामना करता है। मनुष्य अमर होना नहीं चाहता, इसलिए वह मृत्यु से प्रेम करना सीख सकता है।

मनुष्य अपने व्यक्तिगत अस्तित्व पर जोर देता है। वह अपनी स्थिति पर गर्व के बावजूद जीवन के बंधनों से मुक्ति चाहता है। वह जल, तम, शून्यता और पूर्णता के साथ एकाकार होना चाहता है। पुरुष को सीमित करने वाली नारी ही उसे सीमाओं के ऊपर उठने में भी समर्थ करती है। इसी प्रकार नारी एक अद्भुत जादूगरनी ठहरती है।

सभी सभ्यताओं और युगों के समान ही आज के युग में भी नारी पुरुष में भय की भावना उत्पन्न करती है, किंतु यह भय पुरुष को अपनी दैहिक आकस्मिकता से है। उसने नारी पर भय पैदा करने का आरोप किया है। एक बच्ची से किसी को भय नहीं होता। न उसके चरित्र की पवित्रता का प्रश्न उठता है और न उस पर बंधन है। उसे अबोध माना जाता है। लड़कों के साथ वह प्रेम- सम्बंधी खेल भी खेलती है, किंतु ज्योंही कन्या में उत्पन्न करने की क्षमता आ जाती है और रजोधर्म शुरू हो जाता है, उस पर कड़े निषेध लगा दिए जाते हैं। वह अपवित्र हो जाती है। लेविटिकस ने तथा अनेक प्राचीन समाजों ने नारी को अलग रखने और उसकी पवित्रता के बारे में अनेक नियम बनाए। मातृ-प्रधान समाजों ने 'रजोधर्म'

में अनेक शक्तियां बताई हैं । यह रज का प्रवाह सामाजिक कार्यकलापों में उथल-पुथल ला सकता है, अनाज को नष्ट कर सकता है और साथ ही इसका प्रयोग औषधियों में भी होता है। आज भी कुछ भारतीय अपनी नौका के अगले भाग में प्रयुक्त होने वाली लकड़ी का कुछ अंश नारी के मासिक धर्म के रज में डुबा लेते हैं, ताकि उनकी नाव में नदी के दैत्यों से संघर्ष करने की शक्ति आ जाए, किंतु पुरुष-प्रधान समाज ने नारी के इस रज में केवल बुराई पैदा करने वाली शक्तियां पाई हैं। प्लिनी का कथन है कि जिस नारी को रजोधर्म हुआ है, यदि वह अनाज स्पर्श कर दे, तो अनाज नष्ट हो जाता है, बगीचे उजड़ जाते हैं, मधुमक्खियां मर जाती हैं, शराब सिरके में बदल जाती है और दूध फट जाता है। एक प्राचीन अंग्रेजी कवि ने भी कुछ ऐसे ही भाव व्यक्त किए हैं।

कुछ दिन पूर्व तक ऐसे विचारों को मान्यता प्रदान थी। 1878 में ब्रिटेन के एक मेडिकल जर्नल. ने लिखा कि इसमें जरा भी शक की गुंजाइश नहीं है कि रजोधर्म के समय यदि नारी मांस का स्पर्श करे, तो वह नष्ट हो जाता है। वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में भी उत्तरी फ्रांस में रजोधर्म वाली स्त्रियों का परिष्करणशाला में प्रवेश वर्जित था। ऐसा विश्वास था कि उनके प्रवेश से चीनी काली पड़ जाएगी। ग्रामीण स्थानों पर आज भी यह विश्वास है। प्रत्येक रसोइया जानता है कि यदि रजोधर्म वाली स्त्री आस-पास रहेगी, तो सलाद वगैरह ठीक तरह से नहीं बन पाएगी, सेव का रस ठीक तरह से नहीं. उफनेगा और ऐसी परिस्थिति में सुअर का मांस ठीक से सुखाकर नमकीन नहीं किया जा सकेगा और वह नष्ट हो जाएगा। ऐसे विश्वासों की पुष्टि के लिए कुछ अस्पष्ट घटनाएं अवश्य मिलती हैं, पर इनको शुरुआत अंधविश्वासों और रहस्यात्मक घटनाओं द्वारा हुई। यह मानना पड़ेगा कि साधारण शुद्ध रक्त और रजोधर्म के रक्त में अंतर है। रजोधर्म का रक्त स्त्रीत्व के तत्त्व को प्रदर्शित करता है। यदि इसका दुरुपयोग किया जाए, तो हानि की सम्भावना है। सी. लेवी स्ट्रास ने कहा है कि चागों में लड़कियों को चेतावनी दे दी जाती है कि वे रजस्वला हों, तो उस रज का चिह्न भी किसी को न दीखे। रक्त लगे कपड़े जला दें, नहीं तो खतरा | सकता है। लेविटिकस ने गानोरिया जैसी खराब बीमारी की रूप रजोधर्म को बताया। विनी का कथन है कि इस अपवित्रता से बीमारी सम्बद्ध रहती है।

स्त्री के मासिक-धर्म के दिनों की गणना प्रायः चंद्रमा के उतार-चढ़ाव के अनुसार होती है। चंद्रमा पर विचित्र स्वभाव का आरोप है। वह विश्व की उन शक्तियों का शिकार है, जो ज्वार-भाय लाती हैं और तारों की स्थिति पर प्रभाव डालती हैं। मनुष्य के ऊपर भी कभी-कभी इन रश्मियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। रजोधर्म के रज का प्रभाव विशेषकर शरीर पर पड़ता है। चूंकि यह रज जननेंद्रियों से प्रवाहित होता है, इसलिए इसका प्रभाव भोजन आदि पदार्थों पर पड़ सकता है। रज के रहस्यों को समझे बिना ही लोगों ने इसमें जीवोत्पादन का गुण बताया। जिस इंद्रिय में यह स्थापित होता है, उसके महत्त्व को नहीं

समझा गया। कुछ प्राचीन लोगों ने इस रज में शुक्र का पूरक भी देखा। यह रज स्त्री को अपवित्र नहीं बनाता, बल्कि उसकी अपवित्रता का चिह्न है। इसका सम्बंध जनन-क्रिया से है। यह उन हिस्सों से आता है, जहां भ्रूण बढ़ता है। वास्तव में यह रज स्त्री की उर्वरा- शक्ति को प्रदर्शित करता है और इसीलिए पुरुष में भय का संचार होता है।

रजस्वला स्त्री के साथ यौन-सम्बंध वर्जित है। विभिन्न देशों में इस नियम का उल्लंघन करते वाले पुरुष को भी कुछ काल तक अपवित्र माना जाता है और प्रायश्चित्त-स्वरूप उसे कड़ी तपस्या करनी पड़ती है। इस समय सम्भोग करने वाले व्यक्ति की शक्ति और पौरुष का ह्रास होता है, क्योंकि इस समय नारी-शक्ति अपनी चरम सीमा पर रहती है। पुरुष नारी के दो रूपों (पत्नी और मां) को अलग-अलग देखता है। जिस समय 'पत्नी' में मातृत्व के गुण प्रकट होते हैं, उसके साथ यौन-सम्बंध करना उसे अरुचिकर प्रतीत होता है। व्यभिचार का तो निषेध हर देश और सभ्यता में है। रजस्वला, गर्भवती या बालक को स्तनपान कराती स्त्री से पुरुष प्रायः दूर रहना चाहता है। ओडिपस कम्पलेक्स सिद्धांत से भी पुरुष के इस रुख की पुष्टि होती है। नारी के विश्व-शक्तिदायिनी रूप एवं जीवनदायिनी रूप पुरुष हमेशा अपने को सुरक्षित रखना चाहता है।

इस रूप में नारी अपने को विश्व व देवताओं से पृथक रखती है, पर उनके साथ उसका आदान- प्रदान बना रहता है। आज भी विडोंइस और इरोक्योस के मध्य यह विश्वास है कि नारी खेत को उर्वरा- शक्ति प्रदान करती है। प्राचीन ग्रीकवासी यह भी विश्वास करते थे कि उसे भूतल की आवाजें भी सुनाई पड़ती थीं। वह वृक्षों और वायु की भाषा समझ सकती थी। उसमें भविष्य बताने की शक्ति थी। मृत व्यक्ति व देवता उसके द्वारा ही आलाप-भाषण करते थे। आज भी उसमें अलौकिक भविष्य-वक्ता के गुण हैं। वह हस्त-रेखाएं पढ़ सकती है, भविष्य व दूरी पर होने वाली घटनाओं को देख सकती है। उसे दैवी-प्रेरणा मिलती है। वह अदृश्य व्यक्तियों की आवाजें सुन सकती है और प्रेतात्माओं को देखती है। रोम और ग्रीक की सभ्यताओं में विवेक और तर्क के प्रवेश के बाद भी लोग पाताल- लोक पर विश्वास करते थे। अंत में विश्वासों का रूप रहस्यों में बदल गया।

इस समय पुरुष ने स्वतंत्रता और आध्यात्मिकता की इच्छा प्रकट की है। रहस्य की परम्परा 'पूरक' के रूप में रही। परमानंद प्राप्त करके मनुष्य अपने 'एकाकीपन' से मुक्ति चाहता है। धूमधाम सहित भोज व राग-रंग के साथ सुरापान के रहस्यपूर्ण रिवाजों का यही उद्देश्य था। उस विश्व का, जिसे पुरुष ने पुनर्विजित किया, देवता डायोनीसस हुआ। यह पुरुष-देवता था, इसने स्त्री-देवियों से उनकी जादुई शक्ति छीन ली। इस देवता की मूर्ति के चारों ओर उत्तेजित होकर राग-रंग मनाने वाली स्त्रियां ही थीं। स्त्रियां पुरुष को पवित्र सुरापान करने के लिए आमंत्रित करती थीं, जिसे पीकर पुरुष पवित्र उन्मत्त अवस्था में पहुंच जाता है। व्यभिचार को धार्मिक मान्यता प्रदान की गई, जिससे नारी की उर्वरा- शक्ति

वितरित हो सके। आज भी आम उत्सवों में राग-रंग और प्रेम-प्रदर्शन आदि आयोजन शामिल हैं। इन आयोजनों में वह एक ऐसी उन्मत्त अवस्था में सम्मुख रहती है, जिसे देखकर पुरुष सारी सीमाओं का उल्लंघन कर बैठता है।

प्रेमावेश में पुरुष प्रेमिका का आलिंगन करता है और अंत में देह-सम्बंध स्थापित कर अपने को भूल जाता । इस शरीर के असीमित रहस्यमय आनंद उसे विभोर कर देते हैं। इसके विपरीत साधारण अवस्था में यौन-सम्बंधों के बावजूद पुरुष मां और पत्नी' को अलग-अलग रूपों में देखता है। जीव-सृष्टि की रहस्यमय क्रियाएं उसे अरुचिकर लगती हैं, जबकि उसका अपना जीवन इस पृथ्वी पर उत्पन्न हुए स्वादिष्ट फलों से पुष्ट व आनंदित हुआ है। वह लहरों पर उठती हुई देवी वीनस को प्राप्त करना चाहता है। पुरुष-प्रधान समाज ने ही प्रथम नारी को पत्नी रूप में दिखाया है, क्योंकि उत्कृष्ट सृष्टिकर्ता पुरुष था। मनुष्य-जाति की माता के रूप में आने से पहले ईव आदम की संगिनी थी। पुरुष को नारी प्रदान की गई, जिसे वह अपनाए और उसकी जनन-शक्ति को क्रियाशील कर सके। पुरुष जिस प्रकार अपनी भूमि पर आधिपत्य जमाता है, उसे उपजाऊ बनाता है, ठीक उसी प्रकार उसका सम्बंध नारी से है। नारी के माध्यम से ही वह समस्त प्रकृति को अपने अधीन कर लेता है। पुरुष स्त्री के साथ सम्भोग क्षणिक आनंद व आत्म-तुष्टि के लिए नहीं करता, बल्कि इस सम्भोग द्वारा वह नारी पर विजय प्राप्त कर लेता है। उसे पूर्णरूपेण अपना बना लेता है। 'मनु' के नियम के अनुसार भी 'पुरुष' बीज रूप है और नारी 'खेत'। एंड्री मैसन ने भी इसी प्रकार का एक चित्र अंकित किया है।

कौमार्य-सम्बंधी कल्पना में पुरुष की स्थिति बड़ी विचित्र है। वह भय और इच्छा, दोनों के बीच पिसता है। उसे भय है कि वे शक्तियां, जिन्हें वह अपने वश में नहीं ला सकता, उसे अपने अधीन न कर लें, पर साथ ही वह उन शक्तियों पर विजय प्राप्त करने की इच्छा करता है। नारी रहस्य का पूर्ण विकसित रूप कुमारी कन्या में दिखाई देता है। पुरुष ऐसी कन्या से भयभीत होता है, उसको प्राप्त करने की इच्छा करता है और मांग भी करता है। यदि पुरुष कौमार्य-शक्ति को अपने वशीभूत करने की क्षमता नहीं रखता, तो वह कुमारी कन्या को पत्नी के रूप में प्राप्त करने की इच्छा नहीं करता। पुराने समाजों में जहां नारी में महान् शक्ति थी, विवाह-रात्रि से पूर्व कन्या का कौमार्य भंग कर दिया जाता था। मार्कोपोलो तिब्बतवासियों के बारे में लिखता है कि वहां कोई भी पुरुष कुमारी कन्या को पली रूप में ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत न था। इस अस्वीकृति को तर्कपूर्ण युक्ति द्वारा स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। जिस नारी ने पुरुष की इच्छाओं को जाग्रत नहीं किया, भला पुरुष उसे कैसे ग्रहण कर सकता है ? अरब देश के एक भौगोलिक एल वर्की ने भी एक ऐसी घटना का उल्लेख किया है। पुरुष अपनी पत्नी में कौमार्य पाने पर उससे कहता है, "तुममें कोई भी अच्छाई नहीं है। यदि अच्छाई होती तो अन्य पुरुषों ने तुमसे प्रेम किया होता और तुम्हारे

कौमार्य को भंग कर दिया होता।" ऐसा कह पुरुष उसे घर से बाहर कर देता। कुछ पुराने समाजों में पुरुष केवल उन नारियों से विवाह करते थे, जो मातृत्व का भार उठा चुकी हैं, जिन्होंने अपनी जनन-शक्ति का परिचय दे दिया है।

'कौमार्य' नष्ट करने की प्रथा बहुप्रचलित है, पर जिन उद्देश्यों के लिए उसे नष्ट किया जाता है, वे अभी तक रहस्यमय हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि योनि-द्वार पर स्थित झिल्ली के विदीर्ण होने के साथ ही योनि में स्थित सूर्य पति को डस लेता है। कुछ लोगों की धारणा है कि योनि-क्षत होने पर जो रक्त-प्रवाह होता है, उसमें रजोधर्म वाले 'रज' की तरह ही पुरुष की शक्ति को नष्ट कर देने की ताकत है। पुरुष के साथ सम्भोग के पहले 'स्त्रीत्व' में महान् शक्ति व भयंकरता है। यह आम लोगों की धारणा है।

हर अवस्था में और हर स्थान पर कौमार्य भंग करने का प्रश्न नहीं उठता। ट्रोब्रियांड द्वीप वाली के विषय में कहते हैं कि इनमें लड़कियों में कौमार्य पाया ही नहीं जाता, क्योंकि बाल्यकाल से ही इस द्वीप की बालिकाओं को यौन-सम्बंध स्थापित करने की अनुमति दे दी जाती है। कुछ स्थानों पर माता, बड़ी बहन व धाय छोटी बालिका का कौमार्य भंग कर देती हैं और बाल्यकाल से ही निरंतर योनि-द्वार बड़ा करती रहती हैं। कहीं-कहीं प्रथम रजोदर्शन के साथ ही यह क्रिया की जाती है। लकड़ी हड्डी व पत्थर के टुकड़े की सहायता यह क्रिया की जाती है। मानो यह एक साधारण शल्य- क्रिया हो। कुछ जातियों में 'कौमार्य भंग' बड़ी बर्बरता से किया जाता है। प्रथम रजोदर्शन के साथ लड़की को गांव से बाहर ले जाते हैं, जहां उसके साथ या तो बल के प्रयोग से या किसी वस्तु के | सहारे 'योनि-क्षत' करते हैं। एक बहुप्रचलित प्रथा यह भी है कि कुमारियों को अजनबी व्यक्तियों को सौंप देते हैं। उनके विचार में इन कुमारियों की शक्ति अपनी जाति के ही पुरुषों के लिए घातक है, अन्य जाति के पुरुषों के लिए नहीं। शायद वे इस बात की चिंता नहीं करते कि अजनबी व्यक्ति का अनिष्ट होगा। बहुधा गांव का पुजारी, वैद्य या जाति का मुखिया विवाह के पूर्व रात्रि में 'योनि-क्षत' करता है । मलाबार तट पर यह कार्य ब्राह्मणों द्वारा किया जाता है। इसे करने में वे किसी आनंद का अनुभव नहीं करते। वे एक अच्छी रकम मांगते हैं। (इसके लिए उन्हें कीमत दी जाती है) मुखिया या पुजारी जैसे व्यक्तियों को इस कार्य को करने में किसी संकट का सामना नहीं करना पड़ता, जबकि पति घातक शक्तियों से दूर सुरक्षित रहता है। रोम में एक प्रतीकात्मक उत्सव द्वारा इस रीति को निभाया भावी पत्नी पत्थर के ज्योतिर्लिंग पर बैठती है। इससे दो उद्देश्यों की पूर्ति होती है। नारी की जनन-शक्ति की वृद्धि होती है, साथ ही महान् शक्ति से सम्पन्न और अनिष्ट करने वाला स्रोत ज्योतिर्लिंग द्वारा सोख लिया जाता है। कुछ ऐसी रस्में हैं, जिनके द्वारा पति विजयी भी होता है, अपनी जाता रक्षा भी कर सकता है और स्वयं योनि-क्षत कर सकता है । सम्पूर्ण ग्रामवासियों के सम्मुख वह विधि- विधान के बीच 'झिल्ली' को किसी लकड़ी व पत्थर के सहारे हटा देता है। समो

में पति अपनी उंगली में एक सफेद कपड़ा बांध लेता है और उंगली से ही झिल्ली के छोटे-छोटे टुकड़े कर देता है और उन टुकड़ों को वहां पर उपस्थित व्यक्तियों के मध्य बांट देता है। पति स्वाभाविक रूप में भी यह कार्य कर सकता है, पर तीन दिन तक उसे योनि के भीतर वीर्य पतन नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से जीवोत्पादक शुक्र-कीट योनि-स्राव से दूषित हो जाते हैं।

कुछ ऐसे समाज हैं जिनमें यह योनि-स्राव अनुकूल प्रतीक माना जाता है। फ्रांस में अभी कुछ ग्राम ऐसे हैं, जहां पति विवाह के दूसरे दिन सुबह अपने मित्रों और संबंधियों को रक्त के धब्बे लगी चादर दिखाता है। पुरुष-प्रधान समाज में पुरुष नारी का स्वामी था। वह स्वामी, जो जंगली पशुओं की भयंकर शक्तियों को और अजेय भौतिक तत्त्वों को अपने वश में कर लेता था। वह विशेष महत्त्वपूर्ण गुणों से अलंकृत माना जाता था। जंगली घोड़ों, अग्नि और बिजली तथा जलप्रपात के बल से पुरुष ने सम्पन्नता के साधन प्राप्त किए। यही कारण है कि वह नारी को उसकी पूर्ण सम्पन्नता सहित प्राप्त करना चाहता है। यह मांग कि युवा कन्या में सद्गुण हों, पत्नी में पवित्रता और पति में अबोधता हों, क्योंकि ऐसी व्यवस्था रहने से पिता को भी कोई परेशानी नहीं होती। वह अपनी सम्पत्ति का वारिस अपनी संतान को ही बना रहा है। पुर पुरुष अपनी पत्नी को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति मानता है। इसलिए उसमें पवित्रता होनी आवश्यक है। किसी भी वस्तु पर अपना आधिपत्य जमाने का सबसे श्रेष्ठ उपाय यह है कि दूसरों को उसका उपयोग करने न दिया जाए। मनुष्य की यह तीव्र इच्छा होती है कि जो कुछ उसका अपना है, वह कभी भी किसी दूसरे का न बना हो, दूसरे के आधिपत्य में न रहा हो। ऐसी विजय को वह अद्वितीय व महत्त्वपूर्ण घटना मानता है। अन्वेषकों को वे प्रदेश आकर्षित करते हैं, जहां पहले कोई अन्य न गया हो । प्रतिवर्ष पर्वतारोहियों की मृत्यु होती है, क्योंकि वे उस चोटी पर पहुंचना चाहते हैं, जहां कोई अन्य पर्वतारोही न चढ़ा हो। वे एक नए मार्ग द्वारा ऊपर चढ़ना चाहते हैं। मनुष्य अपने जीवन को संकट में डालकर पाताल की ऐसी कंदरा में प्रवेश करना चाहता है, जिसमें पहले किसी अन्य ने प्रवेश न किया हो। जिस वस्तु का मनुष्यों ने उपयोग कर लिया है, वह एक साधन व यंत्रमात्र रह जाती है। आम जनता जिस झरने के जल का प्रयोग करती है, उसका भला क्या महत्त्व है? वह प्रबल जल-प्रवाह, जिसे कोई रोक नहीं सकता, जो स्वतंत्र रूप से बहता है, उसका सौंदर्य अपना सानी नहीं रखता।

पवित्र कुमारी कन्या के शरीर में गुप्त झरनों की ताजगी है, प्रात:काल के अविकसित पुष्प की चमक है और पूर्व देशों के उस मोती की आभा है, जिस पर कभी सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ा। बालक की तरह मनुष्य भी गुहा, मंदिर, देवालय व गुप्त बगीचों, चारों ओर से घिरे बंद व छायादार स्थानों से विशेष रूप में आकर्षित होता है, क्योंकि वहां पहले किसी ने प्रवेश नहीं किया। ये स्थल किसी की प्रतीक्षा करते हैं। जिस वस्तु को मनुष्य स्वयं बेध लेता

है और स्वयं ही ग्रहण करता है, उसे वह स्वरचित-सी प्रतीत होती है। यदि एक ही वस्तु अनेक द्वारा वांछित हो और अनेक ही उसका प्रयोग करते हों, तो मानो उस वस्तु का नाश हो गया। पुरुष योनि-द्वार पर स्थित झिल्ली को विदीर्ण कर जब नारी पर आधिपत्य जमाता है, तब उसका आधिपत्य विशेष महत्त्वपूर्ण होता है। यह भाव एक कहानी में बड़े स्पष्ट रूप से व्यक्त है । एक वीर योद्धा बड़ी कठिनाई से एक कंटीली झाड़ी में प्रवेश करता है और वहां से जड़ सहित एक ऐसे गुलाब के पुष्प को तोड़ता है, जिसे पहले किसी ने सूंघा नहीं। इस प्रकार वह गुलाब पूर्णरूपेण उसी का रहा।

कुमारी कन्या का प्रेमाकर्षण तभी रहता है, जब वह किसी युवक के साथ हो। नहीं तो यह एक रहस्य-सा बन जाता है और आगे चलकर परेशानी का विषय बन जाता है। कुछ व्यक्तियों का अल्पवय वाली स्त्री के साथ सम्भोग करना अरुचिकर है, पर उसके मनोवैज्ञानिक परिणाम अच्छे नहीं होते। अधिक वय वाली कन्याएं निम्न रुचि की और चिड़चिड़े स्वभाव की हो जाती हैं। यह दोष उनकी देह का ही है कि किसी ने उसे ग्रहण नहीं किया। किसी की इच्छा ने उसे ऐच्छिक वस्तु नहीं बनाया। यह देह खिलने के साथ मुरझा गई, क्योंकि पुरुष-जगत् में उसे स्थान न मिला। यह अपने स्वाभाविक निर्दिष्ट तक पहुंच न सकी। यह एक विचित्रता-सी है या मानसिक रोग से पीड़ित व्यक्ति के विचारों- सी है, जिसका वह विनिमय नहीं कर सकता। एक चालीस वर्षीया स्त्री के बारे में, जो सुंदर तो थी पर कुमारी थी, किसी ने विद्रूप के साथ कहा कि मेरे विचार में इसके शरीर के अंदर. मकड़ी के जाले बन गए होंगे। वास्तव में 'तहखाने' और 'छत' के वे कमरे, जिनमें किसी ने प्रवेश नहीं किया, व्यर्थ हो जाते हैं। उनके चारों ओर रहस्य छा जाता है। जिन मकानों में मनुष्य नहीं रहते, उनमें प्रेतात्मा घूमती है। वह 'भूतों' का वास बन जाता है। ऐसा कहा जाता है कि यदि स्त्री अपना स्त्रीत्व किसी देवता को समर्पित नहीं करती, तो किसी रूप में शैतान से विवाह-सम्बंध स्थापित कर लेती है। जो स्त्रियां पुरुषों द्वारा शासित नहीं होती और पुरुष सम्पर्क से दूर रहती हैं, वे जादूगरनी बन जाती हैं। मनुष्य के अधीन रहना स्त्री की नियति है। यदि वह पुरुष की अधीनता नहीं स्वीकार करती, तो शैतान व भय की अधीनता स्वीकार कर लेती है।

'योनि-क्षत' की क्रिया सम्पादित हो जाने पर नारी बुरी आत्माओं के बंधन से मुक्त हो जाती है। वह अपनी पवित्रता प्राप्त कर लेती है। नव-विवाहित पत्नी पति की सबसे अधिक वांछित वस्तु होती है। उसका आलिंगन करते समय उसे प्रतीत होता है, मानो उसे जीवन की सारी सम्पन्नता प्राप्त हो गई। वह मृग और मृगछौना, लिली और गुलाब का फूल, सुगंधित व रसदार नाशपाती व बेरी है। वह मोती, सीप, सुलेमानी नग जैसी कीमती है। वह रेशम की तरह कोमल है और आकाश की नीलिमा और झरनों के जल की शीतलता है। वायु, अग्नि, स्थल और जल है। पूर्वीय और पाश्चात्य, दोनों देशों के कवियों ने नारी के शरीर

को पुष्टि, फल और पक्षी का सुंदर स्थान दिया है। ऐसी उपमाओं से प्राचीन व आधुनिक युग का साहित्य भरा पड़ा है।

पुरुष नारी में तारों की चमक और स्निग्ध चंद्रमा देखता है। पुरुष सूर्य का प्रकाश और कंदराओं की छाया है। इसके विपरीत झाड़ियों का जंगली फूल और बगीचे का गर्वीला गुलाब है नारी। परियां और अप्सराएं जंगलों, खेतों, समुद्रों, झरनों और बंजर प्रदेशों में घूमती रहती हैं। पुरुष इन सब अचरों पर 'घर' के गुणों का आरोप करता है। उसे यह प्रिय है। नाविक के लिए समुद्र भयावह और चालबाज है। उसे परास्त करना कठिन है, फिर भी वह उसको चाहता है। उसे अपने प्रयत्नों के द्वारा वह अपने वश में लाना चाहता है। पर्वतारोही के लिए ऊंचा पर्वत एक विद्रोही, पवित्र व जटिल नारी है, जिसे बल द्वारा प्राप्त करने के लिए वह अपने प्राणों को भी संकट में डाल सकता है। ये तुलनाएं काम- भावनाओं का उत्कृष्ट और जटिल रूप प्रदर्शित करने के साथ ही नारी और उन मूल तत्त्वों में समानता दिखाती हैं, जो 'काम' की तरह मौलिक हैं। पुरुष केवल अपनी इच्छाओं को ही शांत करने के लिए नारी को प्राप्त करने की कामना नहीं करता, बल्कि नारी वह उच्च वस्तु है, जिसके माध्यम से पुरुष प्रकृति पर भी विजय की कामना करता है। अन्य उपकरण भी यह कार्य कर सकते हैं। पुरुष. किशोर बालकों के शरीर में रेतीले किनारे, मखमली रात और फूलों की गंध प्राप्त करना चाहते हैं। पुरुष केवल काम-वासना के ही वशीभूत होकर देह-रूप में धरती को प्राप्त करना नहीं चाहता। अपने उपन्यास 'टु ए गॉड अननोन' में स्टेनबेक ने एक ऐसे व्यक्ति का चित्र रखा है, जिसने अपने और प्रकृति के बीच का मध्यस्थ एक काई ढंकी चट्टान को बनाया है। कोलेट ने अपनी रचना 'क्लाटे' में एक नवयुवक पति का चित्र उपस्थित किया है, जिसने अपने सम्पूर्ण प्रेम और स्नेह को अपनी जंगली व आज्ञाकारी बिल्ली पर उंडेल दिया है। इस पशु द्वारा ही वह कामरूप विश्व पर विजय प्राप्त करना चाहता है। पत्नी के मानव-शरीर से उसकी इस कामना की पूर्ति नहीं होती। समुद्रों और पर्वतों को नारी का मूर्त रूप दिया जा सकता है। ये शांत-भाव से अदृश्य प्रतिरोध करते हैं और यह प्रतिरोध ही पुरुष की इच्छा-पूर्ति में उत्प्रेरक होता है। ये वे अनिच्छाएं हैं, जिन पर विजय प्राप्त करनी है। ये वे शिकार हैं, जिन्हें अपने वश में लाना है। यदि सागर और पर्वत नारी हैं, तो नारी भी अपने प्रेमी के लिए सागर और पर्वत है।

पुरुष नारी को केवल विश्व और मानव के बीच मध्यस्थ रूप में ही नहीं देखना चाहता । स्त्री की योनि पुरुष के लिंग से भिन्नता के बावजूद उसकी पूरक है, यह सत्य भी पुरुष को संतोष नहीं देता । नारी में आश्चर्यजनक रूप से जीवन विकसित करने की क्षमता है। वह उसके रहस्यों को गुप्त रखती है। नारी में सौंदर्य और स्वास्थ्य होना अनिवार्य है। पुरुष नारी को आलिंगन में जकड़कर तभी पूर्ण मोहित हो सकता है, जब वह यह भूल सके कि जीवन में मृत्यु भी है। नारी में सौंदर्य अनिवार्य

भिन्न लोगों की सौंदर्य-भावनाएं भिन्न हैं। चूंकि पुरुष नारी पर पूर्ण अधिकार चाहता है, इसलिए नारी में शांत समर्पण के गुण होने चाहिए। नारी का सौंदर्य उसके शरीर के गठन, क्रियाशीलता, शक्ति, स्फूर्ति व लोच में हैं। नारी सौंदर्य की दृष्टि से 'सर्वोपरि' का मूर्त रूप है। उसमें किसी प्रकार की कमी का होना अवांछनीय है। स्पार्टा, फासिस्ट इटली और नाजी जर्मनी आदि देशों में नारी राज्य की सम्पत्ति है, व्यक्ति की नहीं। अत: वे नारी में केवल माता का स्वरूप देखते हैं। काम व प्रेम-सम्बंध मानो उन्हें मान्य नहीं।

पुरुष जब नारी को अपनी सम्पत्ति के रूप में प्राप्त करता तो उसकी यही इच्छा रहती है कि नारी केवल देह ही रहे । पुरुष नारी के शरीर में नारी के व्यक्तित्व का विकास नहीं देखना चाहता। वह अपने में सीमित रहे, संसार में अन्य किसी से संलग्न न रहे। वह जिस कामना को जाग्रत करती है, उसे तृप्त करे। होटेनटोट आदर्श के अनुसार नारी के नितम्बों में बहुत कम शिराएं होनी चाहिए और मांस की भी कोई आवश्यकता नहीं है। पूर्व देशी लोग नारी के शरीर में चर्बी पसंद करते हैं। मोटी औरत उन्हें प्रिय है। उन देशों में भी, जहां लोगों के 'काम'-सम्बंधी विकार परिष्कृत व उच्च हैं और जहां सुंदर गठन और आकार पर जोर दिया जाता है, लोगों के मुख्य आकर्षण नारी के कुच और नितम्ब हैं, क्योंकि इन अंगों में चर्बी अधिक रहती है। नारी की सुगठित मांसलता पुरुष के आकर्षण का सहज केंद्र होती है।

स्त्रियों की पोशाक और सज्जा के उपकरण भी इस तरह बनाए जाते हैं, जिससे वे विशेष कार्य न कर सकें। चीन की स्त्रियों के प्रारम्भ से ही पांव बंधे रहते हैं, जिससे उन्हें चलने में भी कठिनाई होती है। हॉलीवुड की अभिनेत्रियों के नाखूनों पर इतनी गहरी पॉलिश रहती है कि वे हाथ से कार्य करना पसंद नहीं करतीं। उन्हें भय' रहता है, पॉलिश उतर जाने का। ऊंची एड़ी के जूते पहनने और करते हैं। कमर एवं उसके आस-पास के हिस्से को आवरणों से छिपाए रखने के कारण वे अंग विकसित नहीं हो पाते । उनमें घुमाव व वक्रता नहीं आती। वे निष्क्रिय पड़ जाते हैं। पुरुष उस स्त्री को अपनी सम्पत्ति बनाना चाहते हैं, जो मोटापे के भार से दबी हुई है या फिर इतनी दुर्बल है कि कार्य करने में असमर्थ है या उसके वस्त्र इतने अधिक असुविधाजनक हैं कि वह सक्रिय नहीं रह सकती। 'मेकअप' (शृंगार)और आभूषण भी स्त्री को जड़वत बना देते हैं। कुछ समाज ऐसे हैं, जहां स्त्री का आभूषण धारण करना धार्मिक महत्त्व रखता है। अधिकतर तो स्त्रियां आभूषण इसलिए पहनती हैं कि वे सजीव नारी से मूर्तिवत हो जाएं। पुरुष नारी के देह-रूप को पसंद करता है। वह उसमें फलों और फूलों का सौंदर्य देखना चाहता है, पर वही पुरुष उसे पत्थर के समान चिकनी, कठोर और अपरिवर्तनशील देखना चाहता है। आभूषण नारी को प्रकृति के करीब ले जाते हैं पर स्वाभाविकता से वे स्वाभाविक और गतिशील जीवन को कृत्रिमता की कठोरता प्रदान करते हैं।

नारी अपने शरीर पर पुष्प, फर, पंख, नग, सीप आदि धारण कर मानो पौधा, पशु, हीरा और सीप बन जाती है। वह सुगंधित पदार्थों का प्रयोग करती है, जिससे उसकी देह से लिली और गुलाब की सुगंध फैले। ये बनावटी उपकरण उसके शरीर के पशुत्व को ढंक देते हैं। सुगंधित वस्तुएं शरीर की स्वाभाविक गंध को दबा देती हैं। मुखौटे को ठोसता और स्थिरता प्राप्त हो, इसलिए आंखों में काजल और मसकारा लगाती हैं। आंखों को उनके बीच बंदी बना लेती हैं।

सुसज्जित एवं आभूषणों से अलंकृत नारी में प्रकृति की उपस्थिति सीमित रूप में परिलक्षित होती है। उसका साज-शृंगार पुरुष की इच्छा के अनुकूल होता है। वह नारी, जो प्राकृतिक रूप को कृत्रिम न बनाकर उसे ही अच्छी तरह संवारती है, पुरुष को अधिक प्रिय होती है। कृत्रिमता का आवरण धारण की हुई नारी वासना की वस्तु बन जाती है। रेमी द गोमेंट का कहना है कि नारी को अपने केशों को इस प्रकार संवारकर रखना चाहिए कि ऐसा प्रतीत हो कि वे बहते झरने की लहरें हों व समतल घास का मैदान । केशों को बिखेरकर रखने वाली नारी आकर्षण का केंद्र नहीं हो सकती। स्वस्थ व युवा नारियों को, जिनके शरीर से ताजगी और यौवन की आभा फूटती है, कृत्रिम और ढलते रूप के पुरुष की दृष्टि से छिपाकर रखना चाहिए। उसके रूप-परिवर्तन से पुरुष आतंकित रहता है वह हमेशा ही उसमें एक ही अपरिवर्तित रूप देखना चाहता है। वह हमेशा ही उसके आदर्श के अनुकूल होनी चाहिए।

आदिम जाति के पुरुष मोटे होंठों और चपटी नाक वाली नारी को ही सौंदर्य का प्रतिरूप मानते थे। उन लोगों ने वीनस की प्रतिमा भी उसी रूप में बनाई। समय के साथ लोगों के 'सौंदर्य'-सम्बंधी विचारों में भी परिवर्तन आता गया। पुरुष को वही नारी विशेष प्रिय है, जिसके 'नाक-नक्श' तीखे हों और शरीर सुगठित हो। उसे लगता है, मानो ऐसी नारी के भाग्य में प्राकृतिक वस्तुओं की तरह परिवर्तन नहीं घटित होता। पुरुष नारी के प्राकृतिक रूप पर मोहित होता है। अति बनाव से कृत्रिमता आ जाती है। आज के युग की नारी, जो तरह-तरह से रूप संवारती है, केशों को धुंघराला बनाती है, अनिच्छित बालों को दूर कर देती है और वह नारी भी जो अफ्रीका और चीन जैसे देशों में रहती है, एक ही कसौटी पर कसी जाती है। सौंदर्य-परख की कसौटी एक ही होती

स्विफ्ट ने अपनी एक कविता में नारी के रहस्यमय रूप की निंदा की है। छली प्रेमिका का रूप भी उसके लिए घृणास्पद हैं। नारी के शारीरिक सुख के प्रति भी उसने विरक्ति व्यक्त की है। उसकी दोनों ही आलोचनाएं गलत हैं। पुरुष नारी को स्वाभाविक रूप में जितना देखना चाहता है, उतना ही कृत्रिमता से आच्छादित भी। यदि वह उसे सागर की तरंगों से प्रकट होती हुई देखना चाहता है, तो वह उसे एक आधुनिक वस्त्र बनाने वाले की दुकान से निकलती मॉडल के रूप में भी। आवरण के भीतर नग्न। शहर में रहने वाला

व्यक्ति नारी में पशुत्व देखना चाहता है, जबकि सेना में काम करने वाले ग्रामीण किसान के लिए वेश्यालय में ही शहर का पूरा जादू उपस्थित है। यदि नारी खेत और चरागाह है, तो वह बेबीलोन का सुंदर शहर भी।

जीवन नारी के साथ कैसा छल करता है ? सुंदर वस्त्रों में लिपटी नारी भी मृत्यु और वृद्धावस्था की शिकार होती है। पुरुष उसकी बहुमूल्य शक्ति को क्षीण कर देता है। मातृत्व का भार वहन करती हुई वह आकर्षण खो बैठती है। गर्भधारण नहीं करने पर भी समय उसमें परिवर्तन ला देता है । विवश घरेलू व वृद्ध नारी को देखकर विकर्षण पैदा होता है। पौधे की तरह वह भी मुरझा और जाती है। पुरुष में भी जीर्णता भयंकर रूप में दिखाई पड़ती है, किंतु पुरुष को देखने का दृष्टिकोण भिन्न है। स्त्री के शरीर पर ही उम्र का प्रभाव देखा जाता है। उसकी ढलती उम्र और खोई जवानी उसे स्पष्ट दीखती है। वृद्ध स्त्री में उसे मोहित करने की शक्ति नहीं। वह तो भय का संचार करती है। घृणा का पात्र बनती हैं। पत्नी का सौंदर्य नष्ट हो जाता है।

नारी भी पुरुष का एक विचित्र शिकार है। लहरों से उठती हुई वीनस और सुनहली फसल का रूप डिमीटर को मोहित करता है। पुरुष नारी से आनंद प्राप्त करने के साथ ही उसकी जनन- शक्ति को पूर्णता प्रदान करता है। शिशु का जन्म उसी मार्ग से होता है, जिस मार्ग से पुरुष उसमें प्रवेश करता है। प्रायः सभी समाजों में नारी के साथ सम्बंध स्थापित करना पुरुष के लिए वर्जित है। यह सम्बंध संकटमय सिद्ध हो सकते हैं। पुरुष को नारी की तरह कोई भय नहीं।'नारी-सेक्स' सांसारिक और अपवित्र माना जाता है। पुरुष-लिंग को देवता की प्रतिष्ठा दी जा सकती है, पर उसकी पूजा में भय के भाव नहीं उत्पन्न होते। पुरुष हमेशा अनुकूल है। बहुत से समाजों में स्वतंत्र रूप से नारी के साथ यौन-सम्बंधों की अनुमति है, पर जिस काल तक उसमें प्रजनन-शक्ति नहीं आती। मेलिनोवस्की ने कुछ आश्चर्य के साथ कहा है कि किशोर लड़के और लड़कियां एक साथ सोते हैं। उनमें प्रेम-सम्बंध हैं। ऐसी धारणा है कि अविवाहित कन्या शिशु को जन्म नहीं देती। काम-सम्बंध एक सांसारिक आनंद माना जाता है। ठीक इसके विपरीत विवाह के पश्चात् पुरुष सबके सम्मुख पत्नी के प्रति अपने प्रेम का प्रदर्शन नहीं करता। उसका स्पर्श नहीं करता। उसके निकट सम्बंध का जिक्र भी निषिद्ध- सा है। विवाहित नारी में मातृत्व के गुण आ जाते हैं। यौन-सम्बंध पवित्र कार्य माना जाता है। इसे सावधानी से स्थापित करना चाहिए। भूमि पर खेती करने के पहले, बीज बोते समय, पौधे रोपते समय मैथुन-क्रिया का निषेध है। जिस शक्ति द्वारा 'भूमि' को उर्वरा बनाकर अनाज उत्पन्न किया जा सकता है, समाज का कल्याण किया जा सकता है, उसे नष्ट नहीं करना चाहिए। मछली पकड़ने, शिकार करने या युद्ध-क्षेत्र में जाते समय पुरुष को स्त्री से सम्बंध स्थापित कर अपनी शक्ति क्षीण नहीं करनी चाहिए।

यह विषय विवादपूर्ण है कि पुरुष में नारी के यौन के प्रति भय की भावना क्यों है ? लेविटिकस ने स्वप्न-दोष को दूषित माना है। यद्यपि इसमें स्त्री से कोई सरोकार नहीं है। आधुनिक समाज में भी 'हस्तमैथुन' को भयंकर और पापपूर्ण माना गया है। ऐसा करने वाले किशोर और युवकों में भय व ग्लानि के विचित्र भाव रहते हैं। समाज और गुरुजनों के भय से इस क्रिया को लोग एकांत में करके आनंद का अनुभव करना चाहते हैं। किशोर बालक अपने शरीर से यह वीर्य-पतन देखकर घबरा जाते हैं। स्त्री की अनुपस्थिति में भी पुरुष काम-सुख का अनुभव कर सकता है। प्लेटो ने एंड्रोजिंस में कुछ साथ ऐसे ही 'भाव व्यक्त' किए हैं। विश्व में व्याप्त और विश्व के परे' दो रूपों को अलग नहीं किया जा सकता। मनुष्य अपने अस्तित्व के मूर्त रूप की चाहना करता है और उसी से भयभीत होता है। स्वप्न-दोष की अवस्था में नारी अनुपस्थित रहती है। किसी जादुई शक्ति के वश में पुरुष अपने को पाता है। इसे प्रकृति और जीवन कहा जा सकता है।

जिस प्रकार स्त्री के यौन के प्रति पुरुष में मिश्रित भाव हैं, उसी प्रकार अपने लिंग के प्रति भी। उसे देख कभी वह गर्व का अनुभव करता है, कभी लज्जा का और कभी हंसी का। छोटे लड़के आपस में अपने लिंग की तुलना अपने मित्रों के लिंग के साथ करते हैं। पहली बार उसमें तनाव आने पर उसे भय और गर्व, दोनों का अनुभव होता है। वयस्क पुरुष भी अपने इस अंग को शक्ति का प्रतीक मानता है। यह एक आश्चर्यजनक वरदान है। यह उसके अहंभाव को तुष्ट करता है। पुरुष अपने इस 'अंग' पर मुग्ध भी होता है और साथ ही शंकित भी कि कहीं यह उसे धोखा न दे दे। यह हमेशा उसके अधीन नहीं रहता। इच्छाओं के अतृप्त रह जाने पर इसमें भारीपन आ जाता है। कभी हठात् । तनाव आ जाता है, तो कभी स्खलन हो जाता है। पुरुष चाहता है कि आत्मा की जीवन पर विजय हो। रति-क्रिया की निष्क्रियता पर उसकी चेतना प्रकृति को उससे दूर रखती है, पर उसकी इच्छा उसे आकार प्रदान करती है। अपने ही अंग में पुरुष अपने को जीवन, प्रकृति और निष्क्रियता के पाता है।

इसके ठीक विपरीत है मस्तिष्क । इच्छा से उसका तात्पर्य जीवन के प्रति आसक्ति से है। यह दुःख और मृत्यु है। मस्तिष्क जीवन से पृथक है और इसकी कल्पना करता है। काम-वासना पर मनुष्य लज्जा का अनुभव करता है, क्योंकि यह मूर्खतापूर्ण देह के प्रति आसक्ति है। उसके सिद्धांत की निराशावादिता को अपवाद कहा जा सकता है, पर उसने 'काम' और मस्तिष्क में जो विरोध देखा है, वस्तुतः वह मनुष्य की युग्मता है। कर्ता के रूप में वह विश्व-रूप है। देह-रूप में वह स्वतंत्र चेतना नहीं है। उसका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। वह सीमित एवं नाशवान है। सृष्टि का कार्य देह की सीमा से परे होने के बावजूद देह की सीमाओं को स्थापित करता है। पुरुष 'अंग' के समतुल्य है नारी का 'गर्भ'। पुरुष के शरीर का निर्माण नारी के शरीर में पहुंचे हुए शुक्र से होता है । वह स्वयं इन कीटाणुओं का वाहक है। यद्यपि

वही 'जीव' का बीजारोपण करता है, किंतु उसकी ही अवहेलना की जाती है। हीगल ने कहा है, "संतान उत्पत्ति का अर्थ माता-पिता को मृत्यु है।" जीव-सृष्टि जीव की मृत्यु का सूचक है।

व्यक्ति के स्थान पर एक वर्ग का अस्तित्व होता है। 'यौन' अंग और उनकी क्रिया के कर्ता को महत्त्वपूर्ण अवस्था को स्वीकार नहीं करते । पुरुष जिस अंग पर 'सर्वोपरि' का गर्व करता है, वह उसे ही जीवन-शक्तियों के हाथ खिलवाड़ रूप में देखकर लज्जित होता है। इस लज्जा में भी एक प्रकार से व्यंग्य निहित है। दूसरे के इसी अंग को देखकर हंसी आती है। तनाव हास्यास्पद लगता है, यद्यपि यह स्वतः होता हैं, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है, मानो इच्छा से किया गया हो। जननांग हमेशा ही हास्य का विषय रहा है। प्रसिद्ध लेखक मालिनोवस्की ने कहा है, "वह कुछ बर्बर व्यक्तियों के बीच रहा था। उनके सम्मुख गुप्त अंगों का वर्णन होते ही वे हंसी से लोट-पोट हो जाते थे। । कुछ आदिम जातियों की स्त्रियां जब बगीचे और खेत आदि की सफाई करती थीं, किसी अपरिचित के सामने आने पर उस पर टूट पड़ती थीं और अधमरा कर देती थीं। उस जाति के पुरुष यह देखकर खुश होते थे। पुरुष | निष्क्रिय और नारी पर आश्रित हो जाता था। जबकि वे ही नारियां साधारण रति-क्रिया में पुरुष के वश में रहती हैं।

मनुष्य की सांसारिक व दैहिक स्थिति कुछ विचित्र-सी है। पुरुष को अपने 'यौन' पर गर्व है। इसके द्वारा वह नारी पर विजय प्राप्त कर लेता है। उसे प्राप्त करता है, पर आधिपत्य का यह स्वप्न निराशा में खत्म होता है। पुरुष के पूर्ण आधिपत्य की स्थिति में तो स्त्री का अस्तित्व ही मिट जाता है। अरेबियन नाइट्स का सुल्तान सुबह होते ही, ज्यों ही उसकी नायिका को उससे दूर करने का समय आता था, उसकी गर्दन कटवा देता था। पुरुष के आलिंगन के शिथिल होते ही नारी उसके बाहुपाश से छिटक जाती है। उसके लिए फिर अपरिचित बन जाती है। नारी अब एक नए प्रेमी के प्रेम-पाश में बंधने के लिए प्रस्तुत रहती है। पुरुष यह मिथ्या स्वप्न देखता है कि नारी हमेशा उसको ही रहेगी। वह हट जाती है। केवल स्मृतियांमात्र रह जाती हैं। वे स्मृतियां भी असली अनुभूति के सम्मुख फीकी लगती हैं। साहित्य में उस निराशा का वर्णन बहुत विस्तार से है। नारी को छलना व चंचला कहा है, क्योंकि वह किसी एक पुरुष के प्रति समर्पित नहीं रहती, बल्कि सम्पूर्ण पुरुष-जाति के प्रति वह समर्पण करती है।

नारी की गति छल से भरी है। वह अपने प्रेमी को अपने वश में कर लेती है। शरीर ही शरीर का स्पर्श कर सकता है। वह पुरुष, जो नारी को प्राप्त करने की कामना करता है, उस पर अधिकार जमा लेता है। वह स्वयं देह-रूप हो जाता है। आदम को 'ईव' इसलिए सौंपी गई थी कि वह सर्वोत्तम हो सके, पूर्णता प्राप्त कर सके, पर ईव ने उसे विश्व-व्याप्त कर दिया। नारी पुरुष को आनंद देते हुए उसे पुनः उसी अपारदर्शक मिट्टी में बंदी बना देती है,

जिसे मां अपने पुत्र के शरीर की रचना करने के लिए अपने गर्भ में धारण करती है और जिससे पुरुष भागना चाहता है। वह नारी पर आधिपत्य चाहता है, पर वह स्वयं उसके अधीन हो जाता है। किस प्रकार 'चेतन' इस इच्छा का शिकार बनकर 'देह' रूप हो जाता है, इस पर अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं । प्रेमी को प्रेमिका की बांहों में चाहे कितनी ही देर क्यों न आश्रय मिले, उसे संतोष नहीं होता। इच्छा-तृप्ति के साथ-साथ पुनः इच्छा जाग्रत हो जाती है। यह इच्छा नारीमात्र के लिए नहीं, बल्कि एक नारी-विशेष के लिए होती है। नारी पुरुष को अशांत बनाए रखने का आकर्षण रखती है। भूख और प्यास के अनुभव की ही तरह पुरुष काम की इच्छा भी करता है। एक 'विशेष' के प्रति 'काम-इच्छा' तो नारी ही उस पर आरोपित करती है। यह बंधन भी इतना ही रहस्यमय है, जितना कि अपवित्र और उर्वरा गर्भ, जो इस इच्छा को जाग्रत करता है। यह एक निष्क्रिय शक्ति है, यह रहस्यमय है।

अनेक उपन्यासों में नारी को छलना, जादूगरनी और मनमुग्ध करने वाली कहा गया है। अलेन के अनुसार 'जादू' उस आत्मा के सदृश है, जो लोगों के मध्य बसा दी जाती है। जादू कोई कर्ता नहीं करता, बल्कि शांत वस्तुओं से ही यह उत्पन्न होता है। स्त्री को जो प्रदान किया जाता है, उसे वह प्रदर्शित कर देती है। वह संतान-उत्पत्ति सिर्फ अपने से नहीं कर सकती। उसे यह शक्ति पुरुष वीर्य के रूप में प्रदान करता है। जिन समाजों में इन रहस्यों को श्रद्धा से देखा जाता है, वहां नारी को धर्म का रूप माना जाता है और उस पर पुजारिन की तरह श्रद्धा की जाती है। जिस समाज में पुरुष यह चाहता है कि समाज की व्यक्ति पर विजय हो, विवेक की अविवेक पर, इच्छा की निष्क्रियता पर, उस समाज में नारी को जादूगरनी का रूप माना जाता है। पुजारी समाज और जन के कल्याण के लिए ईश्वरीय इच्छा और कानून द्वारा कुछ शक्तियों को अपने वश में कर लेता है। वह अपनी इच्छा के अनुकूल ही उनका प्रयोग करता है, पर एक जादूगर समाज से भिन्न है। वह देवता और कानून की परवाह नहीं करता। वह अपने ही स्वार्थ के अनुसार कर्म करता है। नारी पुरुष-जगत् में पूर्णरूपेण समाविष्ट नहीं होती, बल्कि उसका प्रतिरोध करती है। वह अपनी शक्ति को पुरुष-जगत् में प्रसारित नहीं करती, न वह उसे भविष्य में सर्वोत्तम बनने देना चाहती है। वह उसे विश्व-व्याप्त करना चाहती है। वह नारी ही अप्सरा है, जो मल्लाहों को चट्टान की ओर ले जाती है, अपने प्रेमियों को पशुओं में परिवर्तित कर देती है और जो मछुओं को जल की गहराइयों में ले जाती है। उसके चंगुल में फंसा पुरुष अपनी इच्छा-शक्ति और साहस खो बैठता है। उसका व्यक्तित्व विनष्ट हो जाता है। वह नारी की इच्छाओं का गुलाम हो जाता है और आनंद तथा कष्ट के बीच पिसता रहता है । जादूगरनी और छलना के रूप में नारी कर्त्तव्य पर काम की विजय करा देती है। वह वर्तमान को भविष्य से महत्त्वपूर्ण बना देती है। वह यात्री को घर से बहुत दूरी पर रोक लेती है और उसे ऐसी मदिरा पिला देती है, जो उसे आत्म-विस्मृत कर दे।

नारी को प्राप्त करने के लिए पुरुष को अपना अस्तित्व पृथक रखना चाहिए। असम्भव को प्राप्त न कर सकने के कारण उसमें निराशा आ जाती है और वह उसी में परिणत हो जाता है, जिसके साथ एकाकार होना चाहता है। वह भ्रमित होकर अपने से दूर हो जाता है। वह प्रेम की मदिरा का पान कर अपने को अपने से ही अपरिचित पाने लगता है और बहते हुए भयंकर जल की गहराई में गोता लगाता है। मां, जो संतान को जन्म देती है, वही उसे मृत्यु की ओर ढकेलती है। प्रेमिका अपने प्रेमी को संसार त्यागकर अंतिम निद्रा के लिए विवश करती है। ट्रिस्टान की कथा में उस सूत्र-बंधन का, जो जीवन और मृत्यु को बांधता है, बड़ा ही विषादपूर्ण वर्णन है। मनुष्य की उत्पत्ति शरीर से होती है। प्रेम में फंसा व्यक्ति प्रेम की भूख शरीर-रूप में मिटा सकता है और शरीर-रूप होने के नाते उसका विनाश अवश्यम्भावी है। मानो नारी और मृत्यु के बीच कोई समझौता |फसल उत्पन्न करने वाली ही मानो भूमि को बंजर बना देती है। वह उस भयावह वधू के सदृश है, जिसकी सुंदर देह में ही उसकी अस्थि देह है, और सुंदर रूप के अंदर कुरूप अस्थियों का ढांचा।

पुरुष नारी से ही प्रेम करता है और उसी से घृणा भी। नारी में वह स्त्री और मां का प्रतिरूप देखता है। नारी उसके अस्तित्व के लिए आवश्यक है, पर वही उसे सीमित बना देती है। वही उसे मरणशील बना देती है। जन्म के दिन से ही वह मृत्यु की ओर अग्रसर होने लगता है। मां में यह सत्य मूर्त रूप है। मां व्यक्ति के स्थान पर उसे 'जाति'-रूप देती है। पत्नी के आलिंगन, उत्तेजना और आनंद में ही उसे यह ज्ञात हो जाता है। वह अपना अद्वितीय अहं विस्मृत कर बैठता है। यद्यपि वह मां और पत्नी में भिन्नता देखना चाहता है, पर दोनों ही उसे उसका नश्वर रूप दिखाती हैं। वह माता को सम्मान देता है और पत्नी को प्यार, पर भयभीत और दु:खी होकर दोनों के प्रति विद्रोह करता है।

जीवन-सुख के प्रति मनुष्य के दृष्टिकोण विभिन्न हो सकते हैं। यदि मनुष्य अपने भाग्य की विशेष चिंता न करे, तो वह जीवन को अद्वितीय पाता है। यदि उसे मृत्यु का भय न हो, तो वह भीतर के पशुत्व को सहर्ष स्वीकार कर लेता है। मुसलमानों में स्त्री की अवस्था बड़ी हीन है, क्योंकि उनका समाज सामंतवादी है। किसी को भी राज्य में अपील करने का अधिकार नहीं है। उनके समाज में नारी में कोई भी मोहिनी शक्ति नहीं मानी जाती। उनका मजहब उनके सम्मुख योद्धा का आदर्श रखता है। वे मृत्यु को सहर्ष स्वीकार करते हैं। उन्हें पृथ्वी पर किसी भी बात का भय नहीं है। उन्हें जन्नत में सभी इंद्रिय-सुख प्राप्त होंगे। इस स्थिति में पुरुष नारी का सुख बिना किसी भय के भोग सकता है। अरेबियन नाइट्स में नारी को सभी शीतलता प्रदान करने वाली वस्तुओं का स्रोत माना गया है। भूमध्य सागरीय प्रदेशों के निवासियों में भी जीवन के प्रति ऐसा ही रुख है। वर्तमान सुख के सम्मुख वे अमरत्व की परवाह नहीं करते। प्रकृति उन्हें हमेशा अनुकूल दिखाई पड़ती है। वे आकाश में रोशनी और सागर में सौंदर्य देखते हैं। स्त्री का उपभोग वे जी भर करते हैं। वे शायद नारी

को मनुष्य नहीं समझते। नारी तो उनके लिए आनंद की वैसी ही सामग्री है, जैसी सागर की तरंगें। उन्हें नारी व अपने शरीर- रूप से भय नहीं। विटोरिनी लिखते हैं कि जब उनकी आयु सात वर्ष की थी, उन्होंने नग्न नारी को देखा, लेकिन उन्हें किसी प्रकार की उत्तेजना नहीं हुई। रोम और ग्रीक के रैशनलिस्ट भी ऐसा ही सोचते हैं। ग्रीस के आशावादी दर्शन में निम्न को उच्च के अधीन माना गया है। ऐसे आदर्शों में देह के प्रति कोई भी विरोध-भाव नहीं है। जो विचारों को महत्त्व देते हैं, वे व्यक्ति को 'आत्मा-रूप' देते हैं। उनके अनुसार व्यक्ति पशुत्व से उठा हुआ है। चाहे वह भोग का जीवन जीए या घोर संयम का। उनके समाज में नारी का महत्त्व गौण है, यद्यपि वह पुरुष-समाज से बिल्कुल जुड़ी हुई है।

ईसाई धर्म में नारी को ऐसी प्रतिष्ठा दी गई है, जिससे भय हो। नारी के प्रति पुरुष-मन में हमेशा भय और आशंका रहती है। ईसाई अपने को दो भागों में विभाजित देखता है-शरीर और आत्मा; जीवन और आत्मा। पाप कर्म द्वारा शरीर आत्मा का शत्रु बन जाता है। सभी शारीरिक बंधन बुराई से भरे हैं। क्राइस्ट के द्वारा उद्धार होने पर और उसके द्वारा ही स्वर्ग भेजने पर आत्मा की रक्षा होती है।

मनुष्य अपने प्रारम्भिक रूप में दूषित है। उसका जन्म उसको केवल मृत्यु की ओर ही नहीं, बल्कि विनाश की ओर भी ले जाता है। दैवी-कृपा से ही स्वर्गलोक के दरवाजे उसके लिए खुले रह सकते हैं। जीवन हर रूप में अभिशाप है। बुराई नितांत सत्य है। शरीर पाप है। स्त्री हमेशा अन्य रही है, इसलिए स्त्री और पुरुष-दोनों एक समान शरीर-रूप नहीं हैं। ईसाइयों ने भी स्त्री को देह-रूप माना है। संसार की सारी लालसाएं नारी में मूर्त रूप हैं। वह शरीर और शैतान एक साथ है। चर्च के सभी फादर कहते हैं कि नारी ने ही आदम को पाप की ओर अग्रसर किया। टर्टूलियन कहते हैं, "नारी, तुम शैतान के पास पहुंचने का मार्ग हो। जिस पर स्वयं शैतान प्रत्यक्ष रूप से आक्रमण न कर सके, उस पुरुष को तुमने प्रलोभित किया । तुम्हारे कारण ईश्वर के पुत्र को मरना पड़ा। तुम्हें तो हमेशा शोक, चिथड़े कपड़ों में रहना चाहिए।"

अंग्रेजी साहित्य ने नारी के प्रति अरुचि और घृणा के भावों को व्यक्त किया है, "तुम तो मानो नाली पर निर्मित मंदिर के समान हो।" यह टर्टूलियन का कथन है। संत आगस्टाइन ने भी यौन- अंगों का वर्णन घृणा के साथ किया है। पेशाब और स्राव के मिलन से ही हमारा जन्म हुआ है। नारी ने ईश्वर को एक लज्जाजनक मृत्यु मरने के लिए बाध्य किया। उसने उसे भी अपवित्र जीवन धारण करने के लिए बाध्य किया। पूर्वी चर्च और पश्चिम की लेटरन कौंसिल इस बात से सहमत नहीं हैं कि क्राइस्ट को एक कुमारी कन्या ने जन्म दिया। मध्ययुग से ही स्त्री की देह को घृणित माना गया। विज्ञान में भी यही दृष्टिकोण व्यक्त हुआ। नारी के यौन-अंगों का वर्णन घृणास्पद माना गया। एक फ्रांसीसी विचारक ने यह प्रश्न किया

है कि विवेकशील मनुष्य भला क्यों नारी के इन घृणित अंगों की ओर आकर्षित होता है? ये अंग धड़ से नीचे स्थित हैं और इनसे स्राव होता है।

विशुद्धतावादियों के मन में स्त्री के प्रति यह घृणा निरंतर बनी रही। फॉकन ने अपनी 'लाइट इन आगस्ट' नामक पुस्तक में कहा है कि नायक स्त्री के साथ जब सम्भोग करने जाता है, तब उसका हृदय विषाद से पूर्ण रहता है। साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण भरे हैं कि प्रथम मैथुन के पश्चात् नायक का जी मिचला जाता है। ऐंग्लो सेक्सन देशों में भी, जहां विशुद्धतावाद का प्रचार था, किशोर बालकों और वयस्क पुरुषों में नारी एक प्रकार से भय के भाव का संचार करती है। माइकेल लीविस ने भी अपनी रचना में ऐसे ही विचार व्यक्त किए हैं कि स्त्री के ये अंग गंदे घाव से प्रतीत होते हैं। ये बीमारियां फैला सकते हैं, इसलिए भयंकर रूप में दीखते हैं। स्त्री बीमारियों का कारण हो सकती है। चूंकि बीमारियां स्त्रियों से फैलती है, इसलिए वे और घृणित हैं। बार-बार मैथुन-क्रिया से गोनोरिया जैसा भयंकर रोग हो जाता है। मैथुन-क्रिया से पुरुष की शक्ति का ह्रास होता है। उसकी विवेकशीलता पर आघात पहुंचता है। हस्त-मैथुन से भी इसी प्रकार के खतरनाक परिणाम होते हैं। नैतिक दृष्टि से तो यह हानिकारक ही है। ऐसा करने से स्वाभाविक यौन-सम्बंधी शक्ति भी क्षीण होती है। वैध रूप से विवाह और संतान की इच्छा काम-वासना के दुष्परिणामों से मनुष्य की रक्षा करते हैं । काम-इच्छा के उदय का अर्थ है-किसी अन्य' की आवश्यकता, और वह अन्य (अपर) नारी है। नारी के सम्मुख पुरुष बड़ा ही विवश-सा हो जाता है। वह शरीर-रूप रह जाता है। नारी उस प्रेतात्मा के सदृश है, जो उसकी शक्ति को क्षीण करके आनंद का उपभोग करती है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के वैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार नारी सम्भोग से आनंद प्राप्त करके मानो पुरुष के अंग पर अपना अधिकार स्थापित कर लेती है और उसे दंडित करती है। इस मनोवैज्ञानिक सिद्धांत का भी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आवश्यक है। जिन चिकित्सकों ने इन सिद्धांतों को प्रतिपादित किया, शायद उन्होंने भी अपने पूर्वजों के भय को ही व्यक्त किया।

भय का कारण मानी जाने के कारण ही नारी हमेशा अन्य मानी गई है। आदिम समाज में नारी में जो भय उत्पन्न करने वाली शक्तियां मानी जाती थीं, वे पुरुष-प्रधान समाज की नारी में भी मानी गईं। इसलिए नारी को कभी भी प्राकृतिक रूप (दशा) में पुरुष ग्रहण नहीं करता। उसके लिए अनेक बंधन और निषेध बने। कुछ संस्कारों द्वारा पंडित उसका शुद्धीकरण करते हैं। कुछ धार्मिक उत्सव व शुद्धीकरण के कार्य नारी को पृथ्वी और 'देह' से हटाकर मनुष्य-रूप प्रदान करते हैं। वे उसे भिन्न जादू करने में समर्थ बनाते हैं जो बिजली की तरह फैल जाते हैं । नारी की शक्तियों का प्रयोग साधारण भलाई के लिए भी हो सकता है। नारी और पुरुष के सम्बंधों को अन्य शब्दों में भी व्यक्त किया जा सकता है। पुरुष नारी से इसीलिए करता है कि वह उसकी है और भयभीत इसलिए होता है कि वह 'अन्या' है।

चूंकि वह अन्या है इसलिए पुरुष उसे ग्रहण करना चाहता है। वह उसे जीवन की प्रतिष्ठा प्रदान करता है और आशा करता है कि वह उसे सह-जीवी के रूप में देख सके।

पुरुष-प्रधान समाज में भी यह माना जाता था कि नारी में जादू की शक्ति है। नारी ही समाज को वह अवसर देती है कि वह विश्व-शक्तियों को उसमें समाहित कर सके। डूमेजिल ने अपनी रचना 'मित्र वरुण' में बताया है कि पुरुष अपनी शक्ति को दो रूपों में प्रदर्शित कर सकता है। भारत और रोम, दोनों देशों में इस सम्बंध में एक ही विचार था। वरुण और रोमुलस, गंधर्व और लुपस में यह शक्ति बलात्कार करने, आक्रमण करने और बल-प्रयोग करने के रूप में प्रदर्शित की है। नारी मानो बल-प्रयोग करने और उपभोग की वस्तु हो। सेबिन स्त्रियां इस प्रकार उपभोग किए जाने पर बंध्या-सी प्रतीत होती थीं। उन पर चाबुकों का प्रहार होता था। बल-प्रयोग की कमी को पूरा करने के लिए चाबुक का प्रयोग अनिवार्य था। दूसरी ओर मिथुनुमा ब्राह्मण और पंडित अनेक संस्कारों के द्वारा नारी को पुरुष के साथ विवाह-बंधन में बांध देते थे। वह पुरुष के, जिसके हाथ में शहर के कानून और व्यवस्था की शक्ति थी, साथ रहती और आश्वासन देती थी कि प्रकृति की सारी नारी- शक्ति को वह शासित करेगी। कहा जाता है कि रोम में जूपिटर का पंडित व पादरी पत्नी की मृत्यु हो जाने पर अपना पद त्याग देता था। मिस्र देश में जब आइसिस अपनी अलौकिक शक्ति खो बैठती है, तब वह ओसिरिस की पत्नी बन जाती है। पत्नी-रूप में वह उदार, कृपालु, हंसमुख और भलाई करने वाली है। जब नारी पुरुष की अर्धांगिनी बन जाती है, तब उसकी पूरक होती है। उसमें चेतनशील व्यक्तित्व आ जाता है। वह आत्मा-रूप बन जाती है। जिस जीव में मानव-गुण न हों, भला उस पर पुरुष कैसे निर्भर रह सकता है ? मनु के आदेशों (कानूनों) द्वारा पत्नी भी उसी स्वर्ग की अधिकारिणी है, जिसका पति अधिकारी होता है। जितना ही पुरुष अपने व्यक्तित्व को महत्त्व देता था, उतना ही वह पत्नी के व्यक्तित्व को मान्यता देने के लिए प्रस्तुत रहता था। ग्रीक देश वाले नारी को, जो कि जननांगों में निहित है, अपने साथी रूप में प्राप्त करना नहीं चाहते। अत: वे अपना पूर्ण प्रेम पुरुष पर उंडेल देते हैं, जो उन्हीं की तरह चेतन है, स्वतंत्र है या फिर वे अपना स्नेह हितेराओं को देते हैं, जो बुद्धि, सभ्यता और संस्कृति में उनके समान हैं । अनुकूल परिस्थितियों में पत्नी ही पुरुष की चाहों को पूर्ण कर सकती है। रोम के व्यक्ति धात्री में व्यक्ति देखते थे। कार्नेलिया और आयना में उन्हें अपने साथी मिले।

ईसाई-धर्मावलम्बियों ने पुरुष और नारी को समान रूप में देखा। ईसाई धर्म देह से घृणा करता है। यदि नारी अपना देह-रूप त्याग दे, तो वह भी ईश्वर की सृष्टि है। पुरुष की तरह उसका भी ईश्वर की कृपा से उद्धार हो जाएगा। उसका स्थान पुरुष के समान हो जाएगा, जिसे स्वर्ग के सब सुख उपलब्ध हैं। नारी और पुरुष ईश्वर के दास हैं। दोनों स्वर्ग-दूतों के सदृश यौन-विहीन हैं। ईश्वर के अनुग्रह के कारण सांसारिक प्रलोभनों का वे प्रतिरोध कर

सकते हैं। नारी यदि अपने पशुत्व को स्वीकार करे या इस बात को भी कि वह पाप का मूर्त रूप है, तो वह भी पुरुष की तरह एक श्रेष्ठ जीव बन सकती है, जिसने पाप के ऊपर विजय प्राप्त कर ली है। वास्तव में वे अलौकिक रक्षक, जो जीवों का उद्धार करते हैं, पुरुष हैं। अपने उद्धार के लिए मनुष्य को भी चेष्टा करनी चाहिए और अपनी इस सदिच्छा को विनम्रता से व्यक्त करना चाहिए। जीसस क्राइस्ट देवता हैं, किंतु मानव पर शासन करने वाली विर्जिन मेरी है। नारी में देवत्व के गुण सीमित रूप में प्रकट हुए। चर्च ने भी पुरुष-प्रधान समाज की सभ्यता का समर्थन किया है जिसमें कि यह उचित है कि नारी पुरुष से संलग्न रहे । पुरुष की विनम्र सेविका के रूप में रहकर ही वह अलौकिक संत का वरदान प्राप्त कर सकती है। मध्य- युग में ही नारी का वह पूर्ण व महान् रूप माना जाता है जो पुरुष के अनुकूल है। जीसस की माता के मुख पर तेज है। वह ईव का विपरीत रूप है। ईव पापिन है, किंतु वह पापिन सर्पिणी को अपने पैरों तले कुचलती है। ईव नाश की ओर ले जाती है, पर मां मेरी उद्धार करने में सहायक होती है।

माता के रूप में नारी भयजनक थी। उसके मातृत्व रूप को ही परिवर्तित करने की आवश्यकता है। 'मेरी' का कौमार्य उतना महत्त्व नहीं रखता, जितना कि वह रूप जो जीव का उद्धारक है। इस रूप में पुरुष नारी का न तो स्पर्श कर सकता है और न उस पर आधिपत्य जमा सकता है। इसी प्रकार 'एशियाटिक ग्रेट मदर' के भी पति नहीं थे। उन्हें विश्वजननी के रूप में माना गया है और इस प्रकार अपने एकाकी रूप में ही वे विश्व पर शासन करती हैं। मान लिया जा सकता है कि उनमें कुछ सनक कभी-कभी असीमित रूप में दर्शित होती है पर मां के रूप में वे महान् हैं। पत्नी की दासता से वे परे हैं। इसी प्रकार 'मेरी' वासना से कलंकित न थी। मिनर्वा की तरह वह हाथी दांत की मीनार थी, किला थी, जिस पर कोई विजय प्राप्त नहीं कर सकता। पुराने रोम की पंडिताइनें भी ईसाई साधुनी की तरह क्वांरी थीं। स्त्री का वह रूप जो मानव के लिए कल्याणकारी है, अपनी संकुचित शक्ति मुक्त होने की अधीनता में श्रद्धेय है। अपने अविजित रूप में नारी को अपना नारीत्व सुरक्षित रखना चाहिए। 'मेरी' को गौरवान्वित करने के लिए ही उनका पत्नी-रूप नहीं है। जो कार्य उन्हें सौंपा गया है, उसे सम्पादित करने में ही उनका गौरव है। वे कहती हैं, "मैं लॉर्ड (भगवान) की दासी हूं।" मानव इतिहास में प्रथम बार इस प्रकार मां बेटे के सम्मुख घुटने टेकती है और अपनी स्थिति को उससे हीन स्वीकार करती है। यह पुरुष की सबसे बड़ी विजय है। विर्जिन कल्ट में इसका पूर्ण रूप दिखाई पड़ा। इस पराजय द्वारा ही नारी को उत्तम स्थिति प्राप्त होती है। इश्तर, इस्तार्त और सिबिल सभी शक्तिशालिनी थीं, पर ये सभी क्रूर थीं। पुरुष का जन्म और मृत्यु, दोनों उसके हाथ हैं। इस प्रकार वे पुरुष को अपने अधीन रखती हैं। ईसाई धर्म में जन्म और मृत्यु, दोनों ईश्वर पर निर्भर हैं। एक बार माता की देह से निकलने के बाद मनुष्य हमेशा के लिए उस शरीर से मुक्त हो जाता है, भूमि में उसकी केवल अस्थियां ही वापिस आती हैं। उसके भाग्य और उसकी आत्मा के बारे में निर्णय उन

क्षेत्रों (स्थानों) में होता है, जहां मां की शक्ति मिट चुकी है। जिन संस्कारों और उत्सवों के मध्य खेड़ी' को जलाया या फेंका जाता है, बपतिस्मा जैसे पवित्र संस्कार के सम्मुख वे हास्यास्पद प्रतीत होते हैं। पृथ्वी पर जादू का कोई भी स्थान नहीं है। ईश्वर ही राजा है। प्रकृति प्रारम्भ में प्रतिकूल अवश्य रहती है, पर ईश्वर की अनुकम्पा से उसकी अनिष्टकारी शक्ति नष्ट हो जाती है। 'मातृत्व' को धारण करने की शक्ति कोई दूसरा प्रदान नहीं करता, यह एक प्राकृ एवं स्वाभाविक घटना है। मौलिक दोष से के लिए नारी को ईश्वरीय इच्छा के सम्मुख झुकना ही पड़ेगा। यह विनम्रता ही उसे पुरुष में रखती है। इस समर्पण के पश्चात् नारी को एक नवीन कार्य-भार वहन करना पड़ता है, जिसका पुरुष-कक्षाओं में अलग महत्त्व है। इस प्रकार पराजित होकर कुचल जाने पर उसकी अवस्था अनुचर जैसी हो जाती है। यद्यपि वह अपने मौलिक गुणों से वंचित नहीं होती, पर उन गुणों का महत्त्व बदल जाता है। बुराई अच्छाई में परिणत हो जाती है और जादू दैवी चमत्कार में। वह अनुचर न होकर दैवी गुणों से अलंकृत हो जाती है।

चूंकि नारी माता का रूप है, इसलिए वह वांछित और आदरणीय है। नारी के आदि दो रूपों में आज का पुरुष उसका आकर्षक और मुस्कुराता हुआ मुखमंडल ही पसंद करता है। मनुष्य समय और स्थान में सीमित है, उसकी देह सीमित है और जीवन भी सीमित है। अतः 'प्रकृति और इतिहास' के बीच वह अपने को अकेला पाता है। ये दोनों ही उसके लिए अपरिचित हैं। नारी भी पुरुष को तरह सीमित है। पुरुष की तरह उसे भी बुद्धि और आत्मा प्राप्त हैं, किंतु वह प्रकृति के अधीन है। जीवन की असीमित और अविरत धारा उसके माध्यम से बहती है। इस प्रकार वह मानव व विश्व के बीच मध्यस्थ के रूप में प्रकट होती है। मां आश्वासन और पवित्रता की मूर्ति है, अतः पुरुष प्रेम के वशीभूत होकर उसकी ओर खिंचता है। इस प्रकार नियमों और परम्पराओं में बद्ध माता का स्थान समाज और परिवार में आस्था और श्रद्धा का है। वह अच्छाई में परिणत हो जाता है। वह आत्मा के प्रतिकूल नहीं है। इस रूप में यदि वह रहस्यमय है, तो वह रहस्य भी आनंददायक है। बिल्कुल लिओनार्दो, डोविना द्वारा चित्रित 'मेरी' की तरह । पुरुष नारी होने की कामना नहीं करता पर संसार में 'जितनी' वस्तुओं का अस्तित्व है, जिनमें नारी भी सम्मिलित है, उन्हें पुरुष अपने में समेट लेना चाहता है। वह नारी की माता के रूप में पूजा करता है। उस पर निजी सम्पत्ति के रूप में आधिपत्य जमाना नहीं चाहता। माता की संतान होने के नाते वह अपने में माता को देखता है। जिस रूप में पृथ्वी जीवन और भूत से सम्बंधित है, नारी के उसी रूप के साथ एकाकार होता है।

विटोरिनी की 'इन सिसली' नामक रचना में नायक अपनी मां के पास जाने की इच्छा व्यक्त करता है। यह इच्छा केवल मां से मिलने की ही इच्छा नहीं, बल्कि मातृ-भूमि के दर्शन, वहां फलों और फूलों की प्राप्ति, अपने बचपन की स्मृति और पूर्वजों की स्मृति के

वशीभूत होने और अपनी बिछुड़ी हुई परम्पराओं के बीच पहुंचने की है। इस पृथकता में पुरुष गौरव का अनुभव करता है। वह सर्वोपरि हो उठता है। वह गर्व करता है। उसे यह देख हर्ष होता है कि वह किस प्रकार अपनी मां की बांहों से छूटकर, साहसपूर्ण कार्य और युद्ध करने जाता है। अपने कार्य को स्वयं प्रशंसनीय मानता है। यदि कोई रोकने वाला नहीं होता, तो शायद यह विलग होना इतना हृदयस्पर्शी नहीं होता। यह संघर्ष द्वारा प्राप्त विजय न होकर एक साधारण-सी घटना बन जाती। उसे यह सोचकर खुशी होती है कि वे बांहें उसे फिर समेटने के लिए तैयार हैं। युद्ध की थकान के पश्चात् वह पुनः मां के पास आकर विश्राम करना चाहता है। वह ऊंचाई से समतल पर आ जाता है। मां उसका आश्रय है, निद्रा है। उसके प्रेमपूर्ण स्पर्श से वह प्रकृति के वक्षस्थल पर विश्राम करता है। वह जीवन-प्रवाह में उसी तरह शांत रूप से बहने लगता है, जिस प्रकार वह माता के 'गर्भ' और कब्र में शांत भाव से प्रवेश करता है। जीवन और मृत्यु में अविच्छिन्न सम्बंध है।

जिस प्रकार पारसी की कथा में वर्णित है, मां हमेशा मृत्यु के साथ संलग्न है। वह मृतकों को ग्रहण करती है। वह उनकी मृत्यु पर शोक प्रदर्शित करती है। उसका मुख्य कार्य मृत्यु को जीवन, समाज और जन-कल्याण के साथ सम्बंधित करना है। इसलिए वीर माताओं की परम्परा को प्रोत्साहित किया गया है। मां का पुत्र पर प्रभाव रहता है, इसलिए समाज माता को अपने अधिकार में रखना चाहता है। इसलिए माता को सम्मान प्रदान किया जाता है। उसमें सद्गुणों का आरोप किया गया है। उसके लिए एक विशेष धर्म की प्रतिष्ठा की गई है। इस धर्म का उल्लंघन करना मानो माता को अपवित्र एवं कलंकित करना है। वह नैतिकता की संरक्षिका है। वह पुरुष की सेविका और भावी शक्तियों के अधीन है। वह अपनी संतान का पथ-प्रदर्शन उचित रूप से करेंगी। जो समाज जितना ही आशावादी होगा, वह माता को उतना ही गौरवान्वित करेगा। माता को गौरवान्वित करना मानो जीवन और मरण को पाशविक, मानवीय और सामाजिक रूपों में स्वीकार करना है। यह समाज और प्रकृति में सामंजस्य स्थापित करना है। आगस्टे कोम्टे ने ऐसे सामंजस्य का स्वप्न देखा था, इसीलिए उसने नारी को भविष्य की मानवता की देवी माना, किंतु ये विचार विद्रोहियों में अन्य प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं। वे मां का तिरस्कार करते हैं। कानून और परम्परा ने मां को जो प्रतिष्ठा प्रदान की है, उसकी वे अवज्ञा करते हैं।

माता के प्रति सम्मान उसे ऊंचा उठाता है, उसे जाज्वल्यमान करता है और उसके प्रति निषेध, प्रतिकूल रुख और शारीरिक मोह को नष्ट कर देता है। मातृत्व के प्रति कुछ अंश में भय रह जाता है। मध्य युग से प्रचलित एक कथा में माता के प्रति घृणा व्यक्त की गई है। यह मां सास है। पुरुष अपनी पत्नी की मां का तिरस्कार करता है। उसके विरोध में कोई भी निषेधात्मक नियम नहीं है। उसे । इस विचारमात्र से घृणा है कि जिस नारी को वह प्यार करता है, उसे जन्म दिया गया है। वह भी जीर्णता की ओर अग्रसर होगी। इस जीर्णता का

प्रत्यक्ष रूप उसे अपनी सास में दिखाई देता है। सास के चेहरे की झुर्रियों और शरीर के मोटापे से यह स्पष्ट होता है कि उसकी नववधू जो पूर्ण युवती है, एक दिन ऐसी कुरूप हो जाएगी। इस प्रकार मां को दृष्टि में रखते हुए विचार करने से यह ज्ञात होता है कि उसका पृथक अस्तित्व नहीं है। वह एक जाति का अंग है। उसका पृथक अस्तित्व और व्यक्तित्व विश्व-जीवन में मिल जाता है। इस रूप में वह चाहना की वस्तु नहीं। संगिनी बनाने की आशा पर भी तुपार-पात हो जाता है। उसके व्यक्तित्व व साधारण व्यक्तित्व में प्रतिद्वंद्विता है। अतीत में जीवन का स्रोत होने के कारण उसकी आत्मा की स्वतंत्रता का नाश हो जाता है। पुरुषों के मन की यह घृणा उसकी दृष्टि में नारी को कुरूप व घृणित करार देती है। काश! वह समझ पाता कि यह उसकी पत्नी का ही नहीं, सभी का भाग्य है। उसका भी भाग्य यही हैं। इस प्रकार हर देश की कहानियों में सौतेली मां में भी नारीत्व की क्रूरता का वर्णन है। यह विमाता ही है, जो स्नो व्हाइट का अनिष्ट चाहती है। काली के गले की मुंड-माला इस क्रूरता की परिचायक है।

साधु मां के साथ चमत्कार दिखाने वाली अन्य नारियों का समूह रहता है। ये पुरुषों को जड़ियों और कंद-मूल का रस, सितारों की चमक प्रदान करती हैं। ये हैं मातामही दादी और नानी आदि वृद्ध नारियां। इनकी आंखों में दयालुता है। इनके हृदय में कोमलता है। ये दया की देवियां हैं। ये आश्चर्यजनक ढंग से अपने स्नेहासिक्त हाथों से सेवा करती हैं। वर्ले ने ऐसी नारी का वर्णन किया है। इन नारियों का रहस्य शुद्ध जल और लिपटी हुई अंगूर की लता का रहस्य है। ये घावों को मरहमपट्टी करती हैं। उन्हें ठीक करती हैं। इनका ज्ञान जीवन के रहस्यों का ज्ञान है। बिना बताए ही ये समझने की क्षमता रखती हैं। इनकी उपस्थिति में पुरुष अपने अहं को भूल जाता है। वह फिर बालक बनने की इच्छा करता है। इन नारियों के साथ उसे अपनी प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ता। प्रकृति की शक्तियों के विरुद्ध वह शिकायत नहीं करता। इन पर श्रद्धा करने वाला पुरुष बुद्धिमान है। वह जानता है कि ये पुरुष की सेविकाएं हैं। वह व्यक्ति उनकी शक्ति को मान्यता देता है, क्योंकि वह जानता है कि वह उनका स्वामी है। बहनें, बाल्यकाल की साथिनें, पवित्र कन्याएं और भावी माताएं, ये सभी इस परोपकारी वर्ग में सम्मिलित हैं। बहुत से पुरुष पत्नी को भी काम-वासना की सुषुप्ति के बाद अपनी प्रेमिका नहीं, बल्कि अपनी संतान की माता के रूप में देखते हैं। एक बार जब माता आधिपत्य मान लेती है, तब उसे साथी-रूप में पाने पर उससे भयभीत होने की आवश्कता नहीं रहती, क्योंकि वह पवित्र हो चुकी हैं। उसने समर्पण कर दिया है। मां का उद्धार करना मानो शरीर का उद्धार करना है। इसीलिए पत्नी के साथ शारीरिक सम्बंध स्थापित किया जाता है।

चमत्कारिक शक्तियों से वंचित होकर विवाह-संस्कार द्वारा आर्थिक और सामाजिक कारणों से नारी पति का आधिपत्य स्वीकार कर लेती है। एक सुपत्नी पति की सबसे

मूल्यवान निधि है। वह पूर्णतः पुरुष की बन जाती है। वह उसका ही नाम धारण करती है। उसके देवताओं को पूजती है और पुरुष उसका उत्तरदायित्व ग्रहण करता है। वह उसे अपनी अर्धांगिनी कहकर सम्बोधित करता है। उसे अपनी पत्नी पर उतना ही गर्व है, जितना कि उसे अपनी गृह-भूमि, चौपायों और सम्पत्ति पर है। कभी-कभी तो इससे भी अधिक पत्नी द्वारा ही वह विश्व के सम्मुख अपनी शक्ति और वैभव का प्रदर्शन करता है। इस वैभव का परिमाण भी स्त्री प्रदर्शित करती है। पूर्व की सभ्यता के अनुसार नारी को भारी-भरकम स्वस्थ होना चाहिए, जिससे यह जाना जाए कि उसका भरण-पोषण अच्छी तरह हुआ है और वह अपने स्वामी का सम्मान करती है। मुसलमानों में पत्नियों की संख्या पुरुष को सम्पन्नता का चिह्न है। जितना ही नारी का रूप खिला हो, उतना ही पति का वैभव दिखता है। सम्पन्न-वर्ग में तो यही प्रचलन है कि नारी अच्छी तरह दिखावा करे। वह अपने रूप, आकर्षण, बुद्धि और शालीनता का प्रदर्शन करे। यही उसके पति की सम्पन्नता के बाह्य प्रतीक हैं। यदि वह सम्पन्न है, तो पत्नी को सुंदर वस्त्र और आभूषण पहनाएगा। यदि वह सम्पन्न नहीं है, तो वह पत्नी की नैतिकता और सुगृहिणी होने का गर्व करेगा। यदि अति दरिद्र पुरुष भी पत्नी प्राप्त कर लेता है, तो वह सोचता है कि संसार में कुछ तो अपना है।

नारी केवल पुरुष को सामाजिक स्थिति को ही पुष्ट नहीं बनाती, बल्कि उसके गर्व की प्रतीक है। नारी पर अधिकार जमाकर पुरुष प्रसन्नता का अनुभव करता है। नारी के व्यक्ति-रूप के साथ पुरुष केवल काम-क्रीड़ा ही नहीं करता, बल्कि उसे नैतिक और बौद्धिक रूप से संवारता भी है। वह उसे रति-रूप में संवारता है। वह नारी को शिक्षा देता है कि अपनी छाप उस पर स्पष्ट अंकित करता है। पुरुष का सबसे बड़ा स्वप्न यह है कि वह चीजों को अपनी इच्छा के अनुकूल ढाल ले। नारी पुरुष के हाथ में सर्वोत्तम वस्तु है, जिसे वह अपनी इच्छा के अनुकूल बना सकता है। वह प्रतिरोध करती हुई भी समर्पण करती जाती है। इस प्रकार वह पुरुष को अपना कार्य निरंतर करते रहने की. मानो अनुमति देती है। नारी की सबसे बड़ी महिमा यह है कि हर आलिंगन से निकलकर वह अपने पास कुछ विशेष रख लेती है, जिस पर पुरुष की विजय नहीं होती। पुरुष एक ऐसी वास्तविकता पर आधिपत्य जमाता है, जो आधिपत्य जमाने योग्य है। हर समर्पण में नारी की कोई-न-कोई विशेषता असमर्पित रह जाती है।

नारी पुरुष में एक ऐसे अपरिचित व्यक्ति को जगाती है, जिसमें गर्व के साथ पुरुष अपना ही रूप देखता है। विवाह-उत्सव की उन्मत्तता के बीच वह अपनी पशु-प्रकृति का उत्कृष्ट रूप देखता है। वह अनुभव करता है कि वह 'पुरुष योनि' है, नारी 'स्त्री योनि'। पशु-मादा अपने बच्चों की देखभाल करती है, स्तनपान कराती है, चूमती है, उनकी रक्षा करती है और प्राणों को संकट में डालकर भी उनको सुरक्षित रखती है। पशु-जगत् की मादा मानव-जाति

के लिए एक उदाहरण के रूप में है। पुरुष भावावेश में आकर नारी से धैर्य की कामना करता है, श्रद्धा और लगाव की आकांक्षा करता है। इस प्रकार प्रकृति (नारी) अपने सद्गुणों से अलंकृत होकर समाज और परिवार के मुखिया के लिए उपकारी है। परिवार का मुखिया अच्छी तरह जानता है कि वह नारी को किस प्रकार घर में सुरक्षित रख सकता है। पुरुष और बालक के अंदर छिपे रहस्य का उद्घाटन करना चाहते हैं। द्रव्य छली प्रतीत होता है। एक बार गुड़िया को खोल देने से उसका पेट बाहर आ जाता है। भीतर कुछ नहीं रहता। जीवधारियों का आंतरिक स्वभाव इतनी सहजता से नहीं जाना जा सकता। नारी का उदर उसकी विश्व-व्यापकता और उसकी गहराई का प्रतीक है। वह अपने रहस्य को अंशतः ही प्रदर्शित करती है। नारी के मुख के भाव भी उसके सम्पूर्ण आनंद को नहीं दिखा पाते। पुरुष ऐसे रहस्यमय स्पंदित जीव को, उसका रहस्य विनष्ट किए बिना घर में रखता है, उस पर अपना स्वत्व जमाता है। मानव-जगत् में नारी के कार्य-कलाप पशु-जगत् की मादा के सदृश हैं। वह जीवन की सुरक्षा करती है। वह विश्व-व्यापित क्षेत्रों पर शासन करती है। गृह में उसकी उपस्थिति मानो जान ला देती है। वह अतीत को सुरक्षित रखती है और भविष्य का निर्माण करती है। वह आने वाली पीढ़ी को जन्म देती है और जिन जीवों का जन्म हो चुका है. उनका पालन करती है। वह मानो गर्भ को 'उष्णता और घनिष्ठता' का घर में प्रसार करती हो। यह नारी का अहोभाग्य है कि जिस अस्तित्व को । पुरुष अपने कार्यों और क्रियाओं द्वारा बाह्य जगत् में फैलाता है, वह नारी में ही निहित है।

शाम को कार्य के पश्चात् जब पुरुप घर आता है, तो मानो उसे घर में आश्रय मिलता है। नारी के कारण ही वह आश्वस्त होकर अपनी दैनिक क्रियाएं कर सकता है। घर से बाहर वह संकटों का सामना करता है, पर घर में नारी उसे दोनों समय भोजन देती है, निद्रा की सुविधा देती है, थकान से उसकी क्षीण हुई शक्ति की पूर्ति भोजन द्वारा करती है। जब वह अस्वस्थ रहता है, तब नारी ही उसकी सेवा करती है। वह उसके वस्त्रों की मरम्मत करती है और धोती है। प्रणय-जगत् द्वारा, जिसकी वह नियति है, जिसे वह ही बनाए रख सकती है, पूर्ण विश्व-पुरुष के सम्मुख रख देती है। वह अग्नि जलाती है। वह घर के चारों ओर फूल लगाती है। इस प्रकार सूर्य, पृथ्वी और जल के उपकरणों को वह अपने अधीन करती है। वेबल ने एक सम्पन्न-वर्ग के लेखक की पंक्तियों को इस प्रकार उद्धृत किया है, "पुरुष नारी की चाह केवल इसलिए नहीं करता कि उसके दिल की हर धड़कन उसके लिए है, बल्कि इसलिए भी कि वह उसके ललाट को पोंछती है। उसकी उपस्थिति पुरुष को विश्राम और शांति प्रदान करती है। बड़े शांत भाव से वह पुरुष को अपने वश में करती है। पुरुष जब घर आता है, तब हर चीज को सुव्यवस्थित पाता है। वह घर की हर वस्तु को नारी के सौरभ से सुरभित पाता है। वह घर में लहलहाते जीवन का अनुभव करता है।"

ईसाई धर्म के प्रारम्भ के साथ-साथ नारी को आध्यात्मिक रूप मिला। पुरुष नारी द्वारा जिस सौंदर्य, उद्यमता और सान्निध्य को प्राप्त करना चाहता है, वे नारी के अस्थायी गुण नहीं हैं। नारी इनकी आत्मा का रूप है। नारी के आध्यात्मिक रूप का रहस्य शारीरिक रूप के रहस्य से गहरा है। उसके हृदय में स्थित एक गुप्त और पवित्र उपस्थिति मानो सम्पूर्ण विश्व के सत्य को प्रतिविम्बित करती हो। वह मकान, घर और परिवार की आत्मा है। वह तो शहर, राज्य और राष्ट्र की भी आत्मा है। जुंग ने कहा है कि शहरों की तुलना नारी से की जाती है क्योंकि वे अपने वक्षस्थल पर नागरिकों को आवास देते हैं। सिबेल को मीनारों का मुकुट पहने प्रस्तुत किया गया है। लोग देश को मातृ-भूमि कहते हैं, केवल इसलिए नहीं कि उसकी भूमि उपजाऊ है, बल्कि यह एक ऐसी सूक्ष्म वास्तविकता है जिसका प्रतीक नारी में प्राप्त होता है। 'ओल्ड टेस्टामेंट' और 'एपोकेलिप्स' में येरूसलम और बेबीलोन को केवल माता नहीं, बल्कि पत्नी भी कहा गया है। फ्रांस को चर्च की सबसे बड़ी पुत्री कहा गया है। इटली और फ्रांस 'लैटिन' बहनें हैं । जो मूर्तियां फ्रांस, रोम और जर्मनी का प्रतिनिधित्व करती हैं, वे नारी के कार्यों को नहीं, बल्कि उसके स्त्रीत्व को दर्शाती हैं। वे उसी प्रकार स्ट्रासबर्ग और लियन को चित्रित करती हैं।

इस प्रकार नारी और स्थानों को समानता केवल प्रतीकात्मक नहीं है। लोग भावना में भी इस समता का अनुभव करते हैं। बहुधा भ्रमण करने वाले यात्री जिन देशों में भ्रमण करते हैं, उनकी चाबी वे नारी में प्राप्त करते हैं। मानो नारी के माध्यम ही शहर में वे प्रवेश करते हैं । इटली और स्पेन में भ्रमण करने वाला यात्री जिस समय इटली और स्पेन की नारी को आलिंगन में बांधता है, उस समय उसे ऐसा अनुभव होता है, मानो उसने स्पेन और इटली के सम्पूर्ण सौरभ को प्राप्त कर लिया। किसी पत्रकार ने लिखा है कि मैं किसी भी देश में जब जाता हूं, तो वहां के वेश्यालय में अवश्य जाता हूं, क्योंकि नारी-चुम्बन में ही प्रेमी को देश के वनों, पौधों, फूलों, परम्पराओं और सभ्यता का पूरा ज्ञान हो जाता है। नारी किसी भी देश की केवल राजनीतिक संस्थाओं और आर्थिक साधनों से ही परिचित नहीं कराती, बल्कि वहां की भौतिक सम्पन्नता और रहस्य को भी दिखाती है । लामातीन के 'ग्राजिएला' और पियेर लोती के उपन्यासों और मोरां की कहानियों में हम यही देखते हैं कि एक अजनबी यात्री किसी भी देश की आत्मा को वहां की नारी के ही माध्यम से समझना चाहता है।

यह सत्य द्रव्यों व वस्तुओं की लालिमा से घिरा हुआ मानो आकाश में प्रकाशित होता है, जो विश्वव्यापी है। आत्मा, विचार व भाव के रूप में सर्वोपरि भी है। शहरों और राष्ट्रों में ही केवल नारी- सुलभ गुणों को आरोपित नहीं किया गया है, बल्कि गुणों और संस्थाओं, गिरजाघर , चर्च, गणतंत्र, मानवता, शांति, युद्ध, स्वतंत्रता, विद्रोह आदि को भी 'स्त्री' कहा गया है। पुरुष अपने आदर्श को भी स्त्री-लिंग में रखता है। साहित्य और चित्रों में रूपक भी

'नारी' के रूप हैं। नारी आत्मा व भाव (विचार), दोनों है और दोनों की मध्यस्थ भी। वह अलौकिक अनुग्रह है, जो ईसाइयों को ईश्वर के समीप ले जाता है। वह बीट्रिस है, जिसने दांते को स्वर्ग-मार्ग दिखाया है। वह लौरा है जिसने पेटार्क को कविता की उच्च चोटियों पर बुलाया। सभी सिद्धांतों में, जो प्रकृति और आत्मा में सामंजस्य स्थापित करते हैं, वह समन्वय, विवेक और सत्य है। वात्ले बुद्धि को स्त्री मानते हैं। यह सोफिया है, जो संसार से मनुष्यों का उद्धार करती है और साथ ही संसार के सृजन में भी सहायक है। नारी को केवल शरीर- रूप में ही नहीं, गौरवान्वित रूप में भी देखा गया है। उसमें आधिपत्य, अपार्थिव, श्वास और ज्योति का रूप माना है। इसीलिए रात्रि की अपारदर्शक कालिमा को पारदर्शिता में और दुष्टता को पवित्रता में परिवर्तित कर दिया गया है।

नारी पुरुष को पतन की ओर नहीं ले जाती, वह उत्थान की ओर प्रेरणा देती है। गेटे अपनी पुस्तक 'फाउस्ट' के अंत में उसे इसी रूप में दिखाते हैं। वह 'फाउस्ट' को उत्थान की ओर जाने की प्रेरणा देती है।

विर्जिन मेरी में स्त्रीत्व के जो गुण हैं, वे जीवन के स्रोत हैं, ओस हैं, उर्वरा हैं । अनेक मूर्तियों में उन्हें झरने, कुएं और चश्मों के समीप दिखाया गया है। जीवन का स्रोत' कहकर उन्हें अनेक बार सम्बोधित किया गया है। उनमें केवल सृजन की ही नहीं, बल्कि समृद्ध करने और विकसित करने की भी शक्ति है। अपनी शक्ति द्वारा पृथ्वी को अदृश्य वस्तुओं के बाह्य रूप के बीच वे जीवन के गहरे सत्य हैं। उनके द्वारा मनुष्य की इच्छा तृप्त होती हैं । वे मनुष्य को संतोष प्रदान करते हैं। वे जीवन और पुरुष (जीव) के बीच मध्यस्थ हैं। जीवन को प्रदान करने वाला ईश्वर है, अत: वे मानव और ईश्वर के बीच भी मध्यस्थ हैं। टंटुलियन ने उन्हें शैतान का द्वार कहा है, पर वे स्वर्ग का द्वार हैं 'डोरवे टु हैविन' के चित्रों में उन्हें स्वर्ग की खिड़की और दरवाजा खोलते हुए दिखाया गया है। उन्हें आकाश से पृथ्वी के बीच सीढ़ियां रखते भी दिखाया गया है। निर्णय के दिन विर्जिन मेरी अपने पुत्र से मनुष्यों के लिए पैरवी करती हैं। वे वकील का कार्य करती हैं। उनका वक्षस्थल खुला रहता है और माता के नाते क्राइस्ट से वे निवेदन करती हैं। वे बच्चों की रक्षा करती हैं। वे समुद्र में जाने वाले यात्रियों के प्रति दया और स्नेह प्रदर्शित करती हैं। वे युद्ध-क्षेत्र में जाने वालों को प्रोत्साहित करती हैं। प्रत्येक संकट में रक्षक रूप में आती हैं । वे दैवी-न्याय करती हैं और उस न्याय में दया का पलड़ा हमेशा भारी रहता है।

नारी को सौंपे गए कार्यों में उसका विशेष महत्त्व दया और कोमलता से किए गए कार्यों के कारण है। समाज में पूर्ण रूप से संगठित होने पर भी नारी का विशेष कार्य जीवन की उदारता के कारण बढ़ जाता है। कभी-कभी पुरुप के पूर्ण संयोजित कार्यों और प्रकृति के आकस्मिक कार्यों के मध्य भेद की एक गहरी खाई प्रतीत होती है। यह भेद अशांति उत्पन्न करता है, पर नारी, जो विनम्रता की प्रतिमूर्ति है, जो पुरुष के कार्यों को बिगाड़ना नहीं

चाहती, इस अंतर को दूर करके इन कार्यों को सरल और सम्पन्न कर देती है। इस प्रकार वह समाज की उपकारी सिद्ध होती है। पुरुष देव भाग्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, पर स्त्री देवी स्वेच्छाचारी ढंग से उपकारी और हितकारी सिद्ध होती है। वह मनमाना पक्षपात करती है। ईसाईयों के ईश्वर न्याय के प्रति बंड़े कठोर हैं पर 'मेरी' बड़ी ही उदार हैं। पृथ्वी पर पुरुष कानून, विवेक और आवश्यकता के रक्षक हैं। स्त्री पुरुप के इस स्वभाव से परिचित है, उसकी आवश्यकता से परिचित है, अत: वह उदारता और कुशलता से काम लेती है। वह पुरुष के घावों पर मरहम-पट्टी करती है। वह नवजात शिशु को पालती-पोषती है। वह मृतकों को भूमि पर सुला देती है। जो 'कुछ' भी पुरुष के अभिमान को ठेस पहुंचाता है और उसको इच्छा के विरुद्ध है, उससे नारी पूर्ण परिचित है। वह पुरुष के सम्मुख विनम्र रहती है और उसकी इच्छा के सम्मुख अपनी देह को समर्पित कर देती है। वह हमेशा पुरुष की देह में स्थापित आत्मा की रक्षा करती है। वह उसकी कठिनाइयों को दूर करती है और बरबस ही अनुग्रह और अति सुख की प्राप्ति कराती है। नारी पुरुष पर अपना प्रभाव इसलिए प्रदर्शित करती है कि वह उसे उसकी वास्तविक अवस्था की स्मृति दिला देती है। नारी में अज्ञानता, बचपना और सनक आदि जैसे अवगुण भी गुण बन जाते हैं। पुरुष इस लोक और उस लोक, दोनों में ही रहना चाहता है, पर एकाकीपन महसूस करना नहीं चाहता, जिन वस्तुओं का निर्माण लाभप्रद कार्यों के लिए हुआ है, नारी उनके अर्थ और विश्लेषण से सरोकार नहीं रखती। वह चीजों के पूर्ण रूप को उनके रहस्यमय रूप में सामने लाती है। वह तो मानो शहरों की सड़कों और खेतों पर काव्य की आत्मा उंडेल देती है। दिन-प्रतिदिन के गद्य के पीछे जिसका अस्तित्व है वह उस काव्य की आत्मा को पहचान लेती है। स्त्री काव्यमय सत्य है। पुरुष उसमें वह सभी कुछ प्रतिबिम्बित देखना चाहता है, जिसका उद्घाटन वह स्वयं नहीं कर सकता। नारी मानो स्वप्न है। वह पुरुष के समीप है फिर अजनबी है। पुरुष जो चाहता नहीं, करता नहीं, उसी की ओर वह अग्रसर होता है, पर प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि वह रहस्यमय है, विश्व में व्याप्त है पर सर्वोपरि उस स्वप्न को वह अपनी विशिष्टता प्रदान करता है। औरेलिया स्वप्न में ही मेरवाल के पास जाती है और स्वप्न में उसे पूर्ण विश्व प्रदान कर देती है। किरण की एक रोशनी में वह बढ़ने लगती है। धीरे-धीरे बगीचे ने उसका रूप धारण कर लिया। बगीचे के फूल और पेड़ उसके वस्त्रों के गुलाब और पंखुड़ियां बन गए। आकाश में आच्छादित बादलों ने उसकी बांहों का आकार धारण कर लिया। वह अदृश्य हो गई। उसका रूप बदल गया। वह गौरवमय व जाज्वल्यमय हो गई। मैं चिल्ला उठा, 'तुम भागो नहीं, तुम्हारे साथ पूरी प्रकृति नष्ट हो जाती है।'

मनुष्य के लिए काव्य-रचना की विषय-वस्तु हमेशा नारी रही है। वस्तुत: नारी ही पुरुष की प्रेरणा है। काव्य-देवियां नारियां हैं । कवियित्री की देवी कलाकार और विषय-वस्तु के स्रोत के बीच मध्यस्थ का कार्य करती है। नारी की आत्मा प्रकृति में विलीन है। पुरुष नीरवता की गहराई तथा रात्रि की गहनता नारी के माध्यम से ही व्यक्त कर सकता है।

काव्य-देवी स्वयं सृजन नहीं करती। वह तो शांत एवं बुद्धिमती परी है, जो अपने स्वामी की सेवा में विनम्रतापूर्वक लीन हो जाती है। व्यावहारिक क्षेत्रों में भी इनका परामर्श लाभदायक है। मनुष्य दूसरों की सहायता के बिना अपने उद्देश्य की पूर्ति चाहता है, पर उसे ऐसा आभास होता है, मानो नारी वास्तविकता से पूर्ण सहमति रखते हुए बुद्धिमत्तापूर्वक विभिन्न मूल्यों को दृष्टि में रखकर उससे सम्भाषण करती है। पुरुष उससे अंतर्ज्ञान की अपेक्षा करता है। नारी का यह अंतर्ज्ञान वाणिज्य और. राजनीति में भी परिलक्षित होता है।

नारी एक सफल निर्णायक है। पुरुष वस्तुओं के मूल्यांकन का भार उसे सौंपता है। पुरुष केवल नारी को ही नहीं प्राप्त करना चाहता, बल्कि उसका समर्थन चाहता है। उसकी बराबरी वाले उसका समर्थन नहीं कर सकते । उनमें हमेशा प्रतिस्पर्धी बनी रहती है, इसलिए वह चाहता है कि उससे भिन्न कोई अन्य व्यक्ति उसके जीवन और उसके साहसपूर्ण कार्यों का सहानुभूतिपूर्वक विवेचन करे। ईश्वर उसके का न्याय अदृश्य है। उससे वह अपरिचित है, कुछ रहस्यवादियों को छोड़कर अन्य व्यक्ति दैवी-न्याय की इच्छा नहीं करते। यह अलौकिक कार्य नारी को ही सौंपा गया है। अपर' होने के नाते वह पुरुष-संसार से बाहर है और वह पुरुषों के कार्यों को अपनी विशिष्ट दृष्टि से देख सकती है, किंतु पुरुष द्वारा शासित होने के नाते और उसके अत्यधिक समीप होने के नाते नारी का निर्णय-मूल्यांकन अनुकूल होता है। नारी हर व्यक्ति में निहित शक्ति, साहस और सौंदर्य को बता सकती है। पुरुष नारी का सहयोग भी चाहता है और उसके साथ प्रतियोगिता भी करता है, चूंकि नारी पुरुष के संघर्ष-क्षेत्र से बाहर है, अतः उसका स्थान एक रुचि लेने वाले दर्शक का है। अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने के लिए योद्धा अखाड़े में लड़ता है। कवि नारी की स्वीकृति चाहता है। जिस समय Rastignal पेरिस पर विजय प्राप्त करने जाता है, उसकी प्रथम योजना नारी को प्राप्त करने को रहती है, क्योंकि नारी ही पुरुष को सच्ची ख्याति दे सकती है। बाल्जाक ने अपनी रचना के नवयुवक नायकों के माध्यम से अपने ही युवाकाल का वर्णन किया है। वह अपने से बड़ी स्त्रियों के मध्य ही अपनी शिक्षा और चरित्र का निर्माण चाहता है।

पुरुष चाहे अपने को दाता, उद्धारक व बंधन से मुक्त करने वाला—किसी भी रूप में देखे, नारी को हमेशा अपने से नीचे स्तर पर रखता है। यदि सुप्त सौंदर्य को जाग्रत करना है, तो सौंदर्य को सुलाना ही पड़ेगा। यदि बंदी राजकुमारियों को मुक्त करना है, तो नर-भक्षी दैत्यों और ज्वालामुखी नागों की आवश्यकता होगी ही। पुरुष को उपहार देने और मुक्त करने से अधिक प्रिय है, विजित करना।

पाश्चात्य देश के पुरुष का आदर्श वह नारी है जो मुक्त हृदय से उसकी अधीनता स्वीकार कर ले, जो उसके साथ विवाह करे पर उसके तर्कों को स्वीकार कर ले, जो बुद्धिमत्ता से उसका प्रतिरोध करे पर अंत में आश्वस्त होकर उसके विचारों को मान्यता दे। जितना ही

पुरुष में गौरव होगा, उतना ही वह साहसिक कार्य करना चाहेगा। सिंड्रेला से विवाह करने से अधिक वह पेंथेसीलिया को जीतना चाहता है। नीत्शे ने कहा है कि योद्धा हमेशा खेल और संकट को पसंद करता है, इसीलिए वह नारी को पसंद करता है। नारी सबसे खतरनाक खेल है। जिस पुरुष को खेल और संकट प्रिय हैं, उसे वह स्त्री-योद्धा पसंद आएगी जिसे जीतने की उसे आशा रहती है। वह हृदय से यह चाहता है कि उसका संघर्ष उसके लिए तो खिलवाड़ रहे, पर नारी के लिए भाग्य-परीक्षा रहे। पुरुष चाहे उद्धारक के रूप में हो या विजेता के, वह अपनी सच्ची विजय तभी समझता है, जब स्त्री उसे अपना सौभाग्य मानकर स्वीकार करे।

'नारी को प्राप्त करना' इस वाक्यांश का दोहरा महत्त्व है। 'अन्य' और निर्णायक रूप में नारी के कार्यों को अलग-अलग नहीं किया गया है। नारी को जब एक स्वतंत्र व्यक्ति माना जाता है, तो उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध वश में नहीं किया जा सकता। मोहक राजकुमार के प्रयत्न तभी सफल होते हैं, जब वह सुप्त सौंदर्य के होंठों पर मुस्कान देखता है। योद्धा अपनी शक्ति को तभी सार्थक समझता है, जब वह बंदी राजकुमारी की आंखों से हर्ष और कृतज्ञता के आंसू गिरते देखता है। नारी जब मूल्यांकन की दृष्टि से देखती है, तो उसकी दृष्टि में पुरुष की दृष्टि की कठोरता नहीं रहती, बल्कि मोहिनी-शक्ति रहती है। कविता और वीरता के द्वारा ही नारी को मोहित किया जाता है। इस काव्य और वीरता को गौरवान्वित नारी ही करती है। जो वर्ग व्यक्ति के मस्तिष्क पर जोर देता है, उसके अनुसार नारी को विशेष अधिकार है। वह केवल मूल्यांकन ही नहीं करती, बल्कि पुरुष के विशेष पुरुष के गुणों और अस्तित्व का उद्घाटन भी करती है। एक पुरुष के कार्यों का निर्णय अन्य पुरुष भी कर सकते हैं। वे निर्णय दो प्रकार से करते हैं-(1) जिस रूप में व्यक्ति-विशेष ने वस्तुओं को देखा है और (2) मान्य मूल्यों के अनुसार।

कुछ विशेष गुण नारी को ही प्रभावित करते हैं। जैसे शौर्य, सौंदर्य, मोहिनी-शक्ति और एक क्रूरता, जिसमें नृशंसता हो। यदि पुरुष इन गुणों को विशेष महत्त्व देता है, तो उसे नारी की विशेष आवश्यकता है, क्योंकि नारी द्वारा वह अपने दूसरे साधारण रूप को देख सकता है। मालरो ने निम्नलिखित रूप में उस पुरुष के, जो व्यक्तिगत गुणों का प्रशंसक है, विचारों को व्यक्त किया है। ऐसा व्यक्ति नारी के मुख से अपनी प्रशंसा सुनना चाहता है। उनका नायक क्यो कहता है कि मैं दूसरों की आवाजों को अपने कानों से सुनता हूं। अपनी आवाज अपने जीवन के बारे में मनुष्य अपने ही गले से सुनता है। दूसरों की दृष्टि में मैं वह जो मैंने किया, किंतु मे की दृष्टि में वह केवल वह नहीं था, जो उसने किया और उसकी दृष्टि में भी में केवल उसकी जीवन-गाथा लिखने वाली नहीं थी। वह प्रेमालिंगन, जो दो व्यक्तियों को मिलाता है, साधारण व्यक्ति को शांति प्रदान नहीं कर सकता। वह तो पागल व अतुलनीय दैत्य को सर्वप्रिय हो सकता है। हर व्यक्ति अपने को विशेष रूप में देखता है और

देखने की इच्छा करता है। मे की माता की मृत्यु हो जाने पर वह मे के लिए केवल क्यो गिसोर्स नहीं था, बल्कि बड़ा ही निकटतम साथी था। पुरुष मेरे साथी नहीं हैं। वे मुझे देखते हैं और मुझ पर टीका करते हैं। वे मेरे सच्चे संगी नहीं हैं। सच्चे संगी वे हैं जो मुझसे प्रेम करते हैं, मेरी टीका नहीं करते। उनका प्रेम सच्चा है। वे मेरे पतन, अधमता और दगाबाजी की ओर दृष्टि नहीं डालते। वे मुझसे प्यार करते हैं।

क्यो का दृष्टिकोण मानवीय है। वह हृदयस्पर्शी है। यह प्रेम परस्पर एक-सा है। वह जैसा है, उसी रूप में उससे प्रेम की याचना करता है। कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं, जिनकी अभिलाषा ऐसी पवित्र नहीं रहती। वे चाहते हैं कि नारी उन्हें प्रशंसा और गौरव की दृष्टि से देखे। उन्हें ऊंचा उठा दे। नारी की तुलना शुद्ध जल से की गई है। वह प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण है, जिसमें नारसीसस जैसा व्यक्ति अपने को देखे । वह उस पर झुककर अपना रूप देखना चाहता है। पुरुष नारी को हर स्थिति में अपने से अलग देखना चाहता है । वह उसे अपने अंदर ही नहीं खोजना और पकड़ना चाहता, क्योंकि अस्तित्व का आंतरिक रूप शून्य है। वह अपना हाथ दूसरे पर फेंक, अपनी पूर्णता चाहता है। नारी उससे भिन्न है। उसका रूप पुरुष के रूप से भिन्न है। उसे पुरुष देह-रूप में पा सकता है, पर साथ ही वह पुरुष का ही मानो दैवी व अलौकिक स्वरूप है। पुरुष इस अतुलनीय नारी को अपने बाहुपाश में बांधता है। वह विश्व प्रतिरूप है। उस पर ही पुरुष ने अपने मूल्य व कानून थोप दिए हैं। नारी से मिलने के द्वारा ही पुरुष अपना पूर्ण रूप प्राप्त करना चाहता है। नारी अपने भिन्न रूपों में, चाहे उसे कोई भी संज्ञा दें, निधि, शिकार, खिलवाड़, संकट, सेविका, पथ-प्रदर्शक, निर्णायक, मध्यस्थ और दर्पण उसमें सीमित नहीं होता। वह ऊपर उठता है। नारी विरोध करती है, पर अस्वीकार नहीं करती। वह अन्य रहते हुए भी पुरुष के सम्मुख । समर्पण करती है। उसकी बन जाती है। इसलिए पुरुष के सुख के लिए वह अत्यधिक आवश्यक है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि पुरुष नारी का आविष्कार कर लेता, यदि परमात्मा ने नारी की सृष्टि न की होती।

वास्तव में पुरुष ने नारी का निर्माण किया, पर वह उसकी कल्पना से दूर रहती है। यदि वह पुरुष के स्वप्न का मूर्त रूप है, तो उसके पूर्ण न होने से उत्पन्न निराशा भी है। नारी को किसी भी । पुरुष अलंकारिक रूप में देखें, उसका विरोधी रूप साथ-साथ सम्मुख आता है। वह जीवन और मृत्यु है। वह प्राकृतिक और अप्राकृतिक, दिवा और रात्रि है। प्रत्येक अवस्था में यह द्वयरूपा है, क्योंकि गौण हमेशा मुख्य की ओर अग्रसर होता है। यह विरोधी भाव विर्जिन मेरी, बीट्रिस, ईव और सर्स-सभी में विद्यमान है।

कीर्केगार्द ने लिखा है कि नारी के माध्यम से ही जीवन में आदर्श का प्रवेश होता है। नारी के बिना पुरुष का अस्तित्व ही भला क्या? नव-युवतियां पुरुष को सच्चे दिल से धन्यवाद

ज्ञापन करती हैं, किंतु जो पुरुष नव-युवतियों से विवाह कर लेता, उसे वैसा हार्दिक धन्यवाद प्राप्त नहीं होता।

नारी पुरुष को आदर्श का सृजनकर्ता तभी बना सकती है, जब उसके सम्बंध पुरुष के साथ नकारात्मक हों। नकारात्मक सम्बंध पुरुष को असीमित बना देता है, जबकि सकारात्मक सम्बंध उसे सीमित कर देता है। नारी तब तक ही आवश्यक है, जब तक वह विचार के रूप में रहती है। पुरुष अपने.सर्वोपरि रूप को उसमें देखता है, किंतु वस्तुनिष्ठ वास्तविकता के रूप में वह अशुभ है। वह केवल अपने ही लिए अस्तित्व रखती है। कीर्केगार्द का कथन है कि उसने अपनी प्रेमिका से विवाह- सम्बंध अस्वीकार करके ही उसके साथ ठीक सम्बंध स्थापित किया और किसी रूप में वह ठीक है, क्योंकि पुरा-कथा में नारी को असीमित 'अन्य' की संज्ञा दी गई है।

एक मिथ्या, असीमित और सत्यविहीन आदर्श होने के कारण नारी सीमित, साधारण और मिथ्या की कोटि में आती है। लाफोर्ग नामक रचना में वह इसी रूप में आती है। उसके. रहस्यात्मक रूप के प्रति नारी और पुरुष, दोनों के हृदय में तीव्र कटुता है। ओफेलिया और सलोमे साधारण नारियां हैं। हैमलेट का कथन है कि ओफेलिया उससे केवल इसलिए प्यार करती हैं, क्योंकि वह उसके लिए वरदानस्वरूप है और उसकी सखियों से सामाजिक और नैतिक रूप में उत्कृष्ट है।

नारी पुरुष को | स्वप्न दिखाती है, पर वह आराम, सुस्वादु भोजन आदि के बारे में ही सोचती है। पुरुष उससे उसकी आत्मा के बारे में बात करता है, पर वह तो शरीर हैं। नारी में आदर्श की तलाश करने वाला प्रेमी वास्तव में प्रकृति के हाथ का खिलौना है, जो कि रहस्यमय रूप द्वारा जन्म प्रदान करने का स्वार्थ सिद्ध करती है।

नारी को गुलाम बनाने में सफल होकर पुरुष ने नारी को उन गुणों से चित कर दिया, जो उसे अधिक वांछित बना सकते हैं। समाज और परिवार के बंधनों के बीच नारी को मोहिनी-शक्ति नष्ट हो गई, वह बढ़ी नहीं। वह दासस्वरूप बन गई। वह एक अजेय शक्ति नहीं रही, जिसमें प्रकृति की सभी निधियां निहित हों। उसके प्रति पुरुष का प्रेम वीर-शालीन प्रेम न रहा या साधारण प्रेम बन गया। विवाह प्रेम को नष्ट कर देता है । प्रायः घृणा, सम्मान और स्नेह की अति पत्नी के काम-सौंदर्य को नष्ट कर देती है। पुरुष की नारी से रक्षा करने के लिए ही विवाह-संस्कार सम्पादित होते थे। नारी पुरुष की सम्पत्ति बन जाती थी। पुरुष जिस नारी पर आधिपत्य जमाता है, वह पुरुष पर आधिपत्य जमाती है, विवाह पुरुष के लिए भी दासता है। वह प्रकृति के फैलाए जाल में फंस जाता है। उसने एक युवती की चाहना की थी, पर उसे सारा जीवन एक भारी-भरकम मालकिन और कुरूप वृद्धा को अवलम्ब देना पड़ता है। जिन रत्नों से उसने जीवन को आभूषित किया, वे घृणित भार बन गए। जानटिप नारी का वह रूप है, जो पुरुष को हमेशा भयंकर प्रतीत हुआ। प्राचीन और

मध्य-युग में वह अनेक विलापों का विषय रही है। जब नारी युवती रहती है, तब भी विवाह धोखा ही है। यह काम- वासना को सामाजिक मान्यता नहीं देता, बल्कि इसको नष्ट कर देता है।

है, सत्य तो यह है कि काम-वासना, जो क्षणिक है, असीमित समय पर अधिकार करना चाहती है। वह व्यक्ति और समाज पर आधिपत्य चाहती है। वह आदान-प्रदान के स्थान पर पृथकता चाहती है। यह नियम के प्रति विद्रोह है। इसके सिद्धांत समाज के विरोधी हैं। रीति-रिवाज को संस्थाओं के कानूनों के अधीन नहीं किया जा सकता। प्रेम ने हमेशा इन सबकी अवज्ञा की है। प्राचीन ग्रीक और रोम में कामुकतापूर्ण प्रेम नवयुवकों और वेश्याओं के प्रति प्रदर्शित किया जाता था। वीरतापूर्ण प्रेम, जो दैहिक और प्लेटोनिक (दार्शनिक), दोनों ही था, परस्त्री पर प्रदर्शित किया जाता था। 'ट्रिस्टान' महाकाव्य में व्यभिचार का वर्णन है। करीब सन् 1900 से ही साहित्य में व्यभिचार के वर्णनों की प्रचुरता है। नारी-सम्बंधी यह नवीन कल्पना है। हेनरी बर्नस्टाइन ने सम्पन्न संस्थाओं की रक्षा के लिए प्रेम और वासना को विवाह में सीमित करने का प्रयत्न किया है, किंतु पोर्टोरीश ने अपनी पुस्तक 'आमूरिडस' में इन दोनों मान्यताओं, प्रेम और विवाह, में असमानता दिखाई है। व्यभिचार का अंत विवाह द्वारा ही हो सकता था। विवाह का उद्देश्य यह रहा है कि पुरुष अपनी पत्नी की ओर से सुरक्षित पर अन्य नारियां उसके प्रति आकर्षण प्रदर्शित कर सकती हैं और वह उनकी ओर आकृष्ट भी होता है। इस योजना में स्त्रियां स्वयं सम्मिलित हैं। नारी उस व्यवस्था के प्रति विरोध करती है, जो उसे सब शस्त्रों से वंचित कर देती है। नारी को प्रकृति से भिन्न करने के लिए, उसे पुरुष की अधीनता स्वीकार करने के लिए कुछ उत्सवों व संस्कारों द्वारा मनुष्य कोटि की प्रतिष्ठा प्रदान की जाती है। उसे स्वतंत्रता दी जाती हैं। स्वतंत्रता का अर्थ हर बंधन से मुक्ति है। जिसके पास कुशक्तियां हैं, यदि उसे स्वतंत्रता दी जाए, तो वह घातक सिद्ध हो सकती है।'

नारी की स्थिति विचित्र है। पुरुष उसे उसकी स्वतंत्रता देता है। पुरुष अपनी दुनिया में नारी को सेविका के रूप में प्रवेश देता है। इस प्रकार उसके सर्वोपरि रूप को निराशा मिलती है। यह स्वतंत्रता मानो अभिशाप हो। नारी यह स्वतंत्रता नहीं चाहती। बंदी बनने में ही मानो नारी की स्वतंत्रता निहित है। वह मानवीय सुविधाओं को त्यागकर प्राकृतिक रूप में लौट जाना चाहती है। दिन में तो वह एक सहचरी की तरह अपना कार्य सम्पादित करती हैं, पर रात्रि में वह बिल्ली और हिरनी में बदल जाती है। वह देवी व अप्सरा का रूप धारण कर लेती है। वह अब शैतान के हाथों नाचती है। कभी-कभी वह अपना रात्रिकालीन जादू पति पर भी चलाती है। अपने ही पति पर ऐसा जादू करना उचित नहीं, इसलिए वह अजनबी व्यक्तियों को ही अपना शिकार बनाती है, क्योंकि उनका उस पर कोई अधिकार नहीं है। उनके लिए तो वह वनस्पति, जल-स्रोत, तारा व ठगिनी है। उसका छली होना

स्वाभाविक है। उसकी स्वतंत्रता इसी रूप को अपना सकती है। उसका विश्वासघातिनी होना स्वयं उसकी इच्छा के विरुद्ध है। वह तो अन्य है। उसे कोई ग्रहण कर लेता है। चूंघट के पीछे या जनानखाने में जहां भी वह हो, व्यभिचार में सम्मिलित होती है। शायद वह यह दिखाना चाहती है कि वह किसी एक को सम्पत्ति नहीं है और पुरुष के विश्वास को असत्य सिद्ध करती है। इसलिए ही पति में ईष्या-भाव शीघ्रता से उत्पन्न होता है। कहानियों में देखा जाता है कि बिना किसी कारण ही पति शक करने लगता है और शक के आधार पर ही स्त्री को बहिष्कृत कर देता है, जिस प्रकार जेनेवीव और डेस्डेमोना के साथ हुआ। ग्रिसेल्टा को कड़े कठिन प्रमाण देने पड़ते हैं अपनी अबोधता को सिद्ध करने के लिए यदि स्त्रियों पर शक बिना किसी आधार के न किया गया होता, तो ऐसी कहानियां प्राप्त नहीं होती। उसके दुर्व्यवहार को प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं । स्त्री को अपने को अबोध सिद्ध करना पड़ेगा।

यही कारण है कि कभी भी ईर्ष्या का अंत नहीं होता। यह देखा जाता है कि आधिपत्य कभी भी प्रत्यक्ष रूप में और पूर्ण रूप में सम्भव नहीं है। जो ईर्ष्या करता है, वह अच्छी तरह जानता है किनारी हमेशा अस्थिर है। वह जल की तरह तरल है। इस स्वाभाविक सत्य को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। 'अरेबियन नाइट्स' से लेकर 'डीकेमरान' तक के साहित्य में हम यह देखते हैं। किसी परपुरुष की बुद्धि को नारियां अपनी चाल से परास्त कर देती हैं। केवल पति ही स्त्री को बंद और कैद नहीं रखना चाहता। इसके लिए पिता, भाई और पति-सभी जिम्मेदार हैं। आचरण-विकास में इन लोगों का योगदान रहता है। समाज ने पति में ईर्ष्या-'भाव' पैदा किए हैं। नारी में पवित्रता आर्थिक और धार्मिक कारणों से भी वांछित मानी गई है। हर नागरिक के सच्चे पिता का होना आवश्यक है।

यह अनिवार्य है कि नारी समाज द्वारा दिए हुए कार्यों के अनुकूल अपने को बनाए । समाज में उसे अपनी भूमिका पूरी करनी है। पुरुष नारी से दो वस्तुएं एक साथ चाहता है। यही कारण है कि नारी को दोहरी भूमिका निभानी पड़ती है। वह चाहता है कि नारी उसकी पत्नी भी रहे और उससे अपरिचित भी। वह उसे सेविका और मंत्रमुग्धा प्रेमिका, दोनों रूपों में देखना चाहता है। समाज के सम्मुख तो वह पहली ही इच्छा प्रदर्शित करता है। दूसरी इच्छा तो उसके हृदय की गहराई में छिपी रहती है। यह नैतिकता और समाज के विरुद्ध है। यह तो 'अन्य' की तरह दुष्टता है। यह विद्रोही प्रकृति और कुलटा का-सा लक्षण है। पुरुष हमेशा 'अच्छे' से ही संलग्न नहीं है। वह 'बुरे' की ओर भी आकृष्ट होता है। जब भी 'बुरा' विवेकहीनता से अपने को प्रदर्शित करता है, पुरुष उससे संघर्ष करता है। रात्रि के अंधकार में पुरुष ही नारी को पाप की ओर ले जाता है, किंतु दिन की रोशनी में वह पाप और पापी दोनों को त्याग देता है। नारियां, जो गुप्त रूप से अधम कार्य करती हैं, जन-साधारण के सम्मुख पुण्य की महिमा-विशेष गाती हैं। आदिम समाजों में पुरुष के 'यौन' को सांसारिक,

पर स्त्री के 'यौन' को धार्मिक माना जाता था। स्त्री में चमत्कारी शक्ति थी। आधुनिक समाज में पुरुष का दुर्व्यवहार एक साधारण-सी मूर्खता माना जाता है। समाज के नियमों का उल्लंघन करने पर भी समाज पुरुष को बहिष्कृत नहीं करता। पुरुष सामाजिक व्यवस्था के लिए घातक नहीं होता।

इससे ठीक विपरीत यदि नारी समाज के नियमों का उल्लंघन करती है, प्रकृति व दानवीय प्रवृत्तियों की ओर जाती है, तो उसके ऊपर भयंकर विपत्ति आती है। नारी का आचरण यदि स्वेच्छाचारी होता है, तो उसे हमेशा बदनामी का भय रहता है। यदि पति अपनी पत्नी को सद्पथ पर न ला सके, तो वह भी समाज की दृष्टि में दोष का भागी बनता है। उसके सम्मान पर धब्बा लग जाता है। कितने ही देशों में यह भी नियम है कि अपने को पत्नी के दोष से मुक्त करने के लिए पति कुलटा पत्नी की हत्या भी कर सकता है। कई देशों में यदि पति विनम्र व शिष्ट हो, तो उसे नग्न कर गधे पर बैठाकर लज्जित किया जाता है। यही उसकी शिष्टता की सजा थी या फिर समाज ऐसी कुलटा नारी को सजा स्वयं देता था, क्योंकि उसने समाज के विरुद्ध आचरण किया है। स्पेन जैसे अंधविश्वासी और रहस्यात्मक देशों में यह सजा बड़े कटोर रूप में दी जाती थी। यहां के लोग स्वभाव से ही कामुक थे। काल्डेरान, लोकां, वाल्ले, इनक्लान आदि ने अपने नाटकों में इस विषय का वर्णन किया है। लोर्का ने अपनी पुस्तक 'हाउस ऑव बर्नाडा' में लिखा है कि इस प्रकार आसक्त लड़की, जो पाप करती है, को उसी स्थान पर जहां उसने पाप-कर्म किया, गांव वाले जलते अंगारों में जला देते हैं। वाल्ले इनक्लान ने अपनी डिवाइन वर्ड्स' नामक रचना में कहा कि व्यभिचारिणी स्त्री दैत्यों के साथ नृत्य करती हुई पाई गई। जब गांव वालों को उसके भ्रष्टाचार का पता चला, तो उन लोगों ने फाड़कर उसके वस्त्र उतार दिए और उसे जल में डुबो दिया। बाइबिल में कुछ ऐसी परम्पराओं का वर्णन है. जिनके अनुसार दुराचारी स्त्री को नग्न कर दिया जाता था। उस पर पत्थर फेंके जाते थे या उसे जीवित जला दिया जाता था; डुबा. या गाड़ दिया जाता था। इन यातनाओं का यह अर्थ था कि उसे उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा से वंचित कर, पुनः प्रकृति के हवाले कर दिया गया। पाप-कर्म' सम्पादित करने के कारण उसे बुरा फल भोगना पड़ा। एक उन्माद भरे वातावरण में उसे सजा दी जाती थी। स्त्रियां उसे मारती थीं। कत्ल करती थीं और उस स्राव को बहाने के लिए बाध्य करती थीं, जो प्राकृतिक. है, रहस्यमय है। बदला लेने वाली ये नारियां सामाजिक नियमों के अनुसार ही यह सजा देती थीं।

ज्यों-ज्यों अंधविश्वास कम होता गया, इस प्रकार की कठोर और बर्बरतापूर्ण सजाएं भी कम होने लगी और भय भी हटता गया। अब भी ग्रामीण क्षेत्रों में नास्तिक बंजारन स्त्रियों को संदेह को दृष्टि से देखा जाता है। उन्हें गृहविहीन आवारा की संज्ञा दी जाती है। वह स्त्री, जो अपने सौंदर्य का स्वतंत्र रूप से प्रयोग करती है या यूं कहा जाए दुरुपयोग करती है,

हमेशा बुरी मानी जाती है। हॉलीवुड के चलचित्रों में आज जब कुलटा नारी दिखाई जाती है, वह सर्स की प्रतिमूर्ति ही होती है। बहुत- सी नारियों को चुडैल कहकर जला दिया जाता है, क्योंकि वे सुंदरी हैं।

दुस्साहसी व्यक्ति वास्तव में नारी को बड़ा ही रोचक खेल बना देते हैं। उनकी ओर से यह खतरा हमेशा रहता है। ऐसे व्यक्ति विवाह-सम्बंधी और सामाजिक कानूनों को भंग कर एक ही संघर्ष में नारी को जीत लेना चाहते हैं। प्रतिरोध करने पर भी वे नारी पर आधिपत्य जमाना चाहते हैं। जिस स्वतंत्रता के कारण वह पुरुष से बचना चाहती है, उसी स्वतंत्रता के नाम पर वह उसे फुसलाता है, पर व्यर्थ । स्वतंत्र रहकर कोई भी कोई भूमिका नहीं निभाता। स्वतंत्र नारी तो पुरुष के विपरीत जाएगी। सुप्त सौंदर्य जाग सकता है, पर अप्रसन्नता के साथ । जगाने वाला उसे मोहक राजकुमार नहीं भी लग सकता है, अत: वह होंठों पर मुस्कान नहीं ला सकती। वीर नायक की पत्नी पति के इन साहसिक कार्यों को अनमनेपन से सुनती है। जिस काव्य-देवी का कवि स्वप्न देखता है, वह उसकी कविता सुनकर उबासी ले सकती है। योद्धा नारी शायद युद्ध करने से इनकार कर सकती है और दूसरी सम्भावना यह भी है कि वह विजयी हो सकती है। पतनकाल के रोम की स्त्रियां और आज भी अनेक स्त्रियां अपनी झक और नियमों को पुरुषों पर थोपती हैं। अब सिंड्रेला कहां है?

पुरुष देना चाहता है और स्त्री ग्रहण करती हैं। अब आत्म-रक्षा का प्रश्न है, यह कोई खेल. नहीं है। जब से नारी स्वतंत्र है, उसका भाग्य वही है, जिसे वह स्वतंत्रतापूर्वक अपने लिए बनाती है। अब पुरुष और नारी का सम्बंध संघर्षमय है। सहचरी के रूप में भी नारी उतनी भयंकर है, जितनी कि वह अज्ञात प्रकृति के अंश के रूप में थी। अब श्रम करने वाली मधुमक्खी और मुर्गी के स्थान पर भक्षण करने वाली मादा कीड़ों की कहानियां प्रचलित हैं। जैसे कि मकड़ी : वह मादा अपनी संतानों की सेवा नहीं करती, वह तो नर को खा जाती है। अब अंडे को बाहुल्य का भंडार नहीं माना जाता, वह तो एक निष्क्रिय पदार्थ का फंदा व जाल है, जहां शुक्राणुओं को नष्ट कर डुबो दिया जाता है। गर्भ अब उष्ण शांतिमय और सुरक्षित स्थान नहीं है। वह तो मानो एक नरभक्षी पौधे और एक अंधेरी खाड़ी की तरह है, जहां उस सर्प का निवास है, जो पुरुष की शक्ति को नष्ट कर देता है। इस पर प्रेम की [वस्तु मानो चमत्कारी जादू करने वाली हो जाती है और सेविका छली बन जाती है। नारी एक दानवी दिखाई देती है। नारियां शत्रु बन जाती हैं।

विरोधी रूप में निश्चित रूप से नारी का मुख आता है। मानो नारीमात्र के हृदय में 'मनीशवाद' का प्रवेश हो। पैथागोरस ने पुरुष की तुलना अच्छाई से और स्त्रियों की बुराई से की है। पुरुष ने उस बुराई को दूर करने के लिए नारी पर आधिपत्य जमाना चाहा, पर इस दिशा में उसे केवल अंशतः सफलता मिली। ईसाई-धर्मावलम्बियों ने उद्धार और मोक्ष शब्दों

का प्रयोग कर सर्वनाश जैसे शब्द का पूर्ण अर्थ स्पष्ट कर दिया है। इस प्रकार अच्छी नारी बुरी नारी से बिल्कुल पृथक कर दी गई। मध्य-युग से आज तक जबकि स्त्री के लिए संघर्ष जारी है, कुछ व्यक्तियों ने केवल अनुग्रह प्राप्त अपने स्वप्न में सद्नारियों को ही अपनाया है, जबकि कुछ व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्होंने उन बुरी स्त्रियों को ग्रहण किया है, जिन्होंने उनका स्वप्न भग्न कर दिया है। पुरुष को नारी में सभी चीजें दिखाई पड़ती हैं, क्योंकि प्रत्येक नारी के दो रूप हैं। वह अपने स्वरूप द्वारा जीवन के अस्वीकार्य और मान्य, दोनों मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती है। अच्छा और बुरा' एक-दूसरे से पृथक रूप हैं। श्रद्धेय माता मानो अच्छाई का पुंजीभूत है, जबकि छली नारी बुराई का प्रतीक है। लार्ड रैंडल, माई सन' शीर्षकं कथा में योद्धा की पत्नी उसे जहर दे देती है और वह मां के वक्षस्थल पर सिर टिकाकर प्राण देता है। रिचीपेन के लाग्ल' में भी कुछ ऐसा ही चित्र वर्णित है। माता, सच्ची प्रेमिका और शांत पत्नी हमेशा उन घावों पर मरहम करने के लिए प्रस्तुत रहती हैं, जिन्हें आवारा नारियां और चुडैलें पहुंचाती हैं। इन दो प्रकार की स्त्रियों के मध्य अनेक प्रकार की नारियां हैं दयनीय, घृणित, पापिनी, छलिया, दुर्बल, देवदूत और यमदूत की भांति । इस प्रकार नारी में अनेक प्रकार के व्यवहार और विचार दिखाई देते हैं। नारियां पुरुषों के जीवन को सम्पन्न करती हैं और उनकी भावना को उद्वेलित करती हैं।

नारी की यह जटिलता पुरुष को प्रसन्न करती है। वह सेविका होने के साथ ही उसे चकाचौंध में भी ला देती है। उसको रखना बहुत महंगा भी नहीं है। वे देवदूत हैं या दैत्य? इस संशय में उसे स्फिंक्स का रूप दिया है। स्फिंक्स जो स्त्री और पशु, दोनों का रूप है। पेरिस के एक प्रसिद्ध वेश्यालय के बाहर प्रतीकस्वरूप स्फिंक्स का चित्र था। पाल बूर्जे, हेनरी बाताइ आदि ने अपनी नाटिकाओं में स्फिंक्स का वर्णन किया है। यह काव्य और संगीत की भी विषय-वस्तु रही। नारी के रहस्य के बारे में सोच और विचार का अंत नहीं। नारी का रहस्य रहस्य बना रहा, इसलिए पुरुष ने बहुत दिनों तक चाहा कि नारी स्कर्ट और पेटीकोट पहनना न त्यागे। वह दस्ताना पहने रहे। चूंघट रखे, ऊंची एड़ी के जूते पहने। ऐसी पोशाक उसे अलग रूप में दिखाती है और वह और वांछित हो जाती है। आले फनिए ने अंग्रेज महिलाओं को झिड़का है कि वे पुरुषों की तरह हाथ न मिलाएं। फ्रांस की स्त्रियों की विनम्रता व शिष्टता से वे प्रभावित थीं। नारी को हमेशा रहस्यमय और अजनबी रहना चाहिए, जैसे दूर देशों की राजकुमारियां। फूर्निस ने हमेशा नारी को आदर की दृष्टि से देखा है। उसने स्वरचित नारी में बचपन और युवाकाल के सभी आश्चर्यों को चित्रित किया है। खोए हुए स्वर्ग की सारी विभूति भी नारी में ही प्राप्त है। नारी की प्रथम विशेषता यह होनी चाहिए कि वह सहज प्राप्य न हो। उसने वान द गालाइ के चित्र को सफेद और सुनहले रंगों से भरा है।

यदि नारी के दोष भी रहस्यमय होते हैं तो भी पुरुष उनकी इच्छा करता है। किसी पुरुष ने बड़ा जोर देकर एक बुद्धिमती नारी से कहा कि नारी में अपनी एक सनक, एक धुन होनी ही चाहिए। उसकी सनक क्या होगी, यह कहना असम्भव है, पर यह सनक जल की तरंग को भविष्य प्रदान करती है। यदि वह मिथ्यावादिनी है तो और भी आकर्षक लगती है। यदि वह छलनी है और यौन-सम्बंधी अस्वाभाविक आचरण वाली है, तो मानो और भी महक उठती है। यदि वह दोहरी भूमिका निभाती है, धोखा देती है, दूर भागती है, समझ से परे है, तो पुरुष की विरोधी इच्छाओं को जाग्रत करती है। वह अनगिनत रूपों में 'माया' है। स्फिंक्स को एक युवा नारी की तरह प्रदर्शित किया जाता है। कौमार्य एक ऐसा रहस्य है, जिसे पुरुष सबसे अधिक उत्तेजनामय पाता है। इस प्रकार की लड़कियां अधिक बदचलन होती हैं। वे हर प्रकार से स्वेच्छाचारी होती हैं। कोई नहीं जानता कि उनके भोलेपन के आवरण के पीछे कौन-सा दुर्गुण छिपा है । वे पशुओं और पौधों के जगत् के करीब हैं, सामाजिक रूप में ढलने के लिए विशेष अनुकूल हैं। 'स्त्रीत्व' भयजनक नहीं होता, पर हां, वह अशांत कर देता है, उथल-पुथल मचा देता है। वह मानो 'नारी'-रहस्यों का सबसे श्रेष्ठ प्रतिपादक है। चूंकि पवित्र किशोर बालिकाएं नहीं मिलती, इसलिए उनकी परम्परा का अंत हो गया, किंतु वेश्या ने, जिसे गांतिलों ने फ्रांस के रंगमंच पर माया रूप में प्रदर्शित किया, काफी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। वेश्या को जिस तरह चाहो उस तरह नचाया जा सकता है। वह अच्छे-बुरे, दोनों प्रकार के कार्यों के लिए सबसे अधिक सुयोग देती है। डरपोक और कठोर पवित्रता को निभाने वाले वेश्या को बुराई, लज्जा, रोग और सत्यानाश के रूप में देखते हैं। वह भय और घृणा की भावना उत्पन्न करती है। वह किसी एक पुरुष की नहीं होती। वह तो सभी के सम्मुख समर्पण कर देती है और इस व्यापार से अपनी जीविका चलाती हैं। इस प्रकार वह पुराने काल की भयंकर देवी माताओं का स्थान ग्रहण करती है। उसकी विलासी स्वतंत्रता मनमानी है। वह जिस स्त्रीत्व का प्रतिनिधित्व करती है, समाज ने उसे मान्यता प्रदान नहीं की है। ऐसा सोचा गया है कि उसमें बुरी शक्तियां हैं। काम-सम्बंध स्थापित कर पुरुष यह नहीं सोच सकता कि उसने ऐसी नारी को प्राप्त कर लिया है। उसने तो. दैत्य जीव के हाथों अपने को कुछ देर के लिए मानो सौंप दिया था। एंग्लो-सैक्सेनस ने यह कार्य लज्जाजनक एवं कलुषित रूप में देखा और उसे बुरा बताया। वह व्यक्ति, जिसे देह और देह-जनित किसी प्रकार का भय नहीं है, आनंद उठाएगा, वह तो उसमें स्त्रीत्व का श्रेष्ठ रूप पाएगा, जिसे किसी प्रकार की नैतिक मान्यता की आवश्यकता नहीं। उसे तो उसके शरीर में वे जादूमय गुण मिलेंगे, जिन्होंने नारी को सागर और सितारों के करीब ला दिया था। एक पुरुष जब किसी वेश्या के साथ बिस्तर पर सोने जाता है, तो उसे ऐसा अनुभव होता है कि वह जीवन, मृत्यु और विश्व की गहराई का अनुभव कर रहा है। वह उसकी गहरी, नम योनि में मानो ईश्वर के करीब जा रहा है। वेश्या समाज से बहिष्कृत एक ऐसे जगत् में रहती है, जहां सभी सद्गुणों का स्वरूप बिगड़ चुका है। पतितों का उद्धार होगा, यह विश्वास उसे

परोक्ष रूप में संतों के निकट ले जाता है। मेरी मादालीन क्राइस्ट को विशेष प्रिय थी। पाप स्वर्ग का द्वार शीघ्र खुलवा देता है। एक बनावटी सहकार्य ऐसा नहीं कर सकता। दोस्तोएवस्की का रास्कोल्निकोव (एक चरित्र) सोनिया के सम्मुख उस गर्व को त्याग देता है, जो उसे अपराध करने के लिए बाध्य करता है । वह समाज से बहिष्कृत है, पर वेश्या, जिसे समाज त्याग देता है, ऐसे व्यक्ति को भी ग्रहण कर लेती है। अपवित्र चरित्र एक अशांत स्थिति की सृष्टि कर देते हैं। लोग अपनी नैतिकता खो बैठना चाहते हैं, पर बुराई का प्रत्यक्ष रूप में आलिंगन कठिन है। दानवी प्रकृति वाले भी भयंकर अपराधी से भयभीत रहते हैं । स्त्री पुरुष को वह कलुपित उत्सव मनाने में सहायता प्रदान करती है, जिसमें बिना किसी निमंत्रण के शैतान की आत्मा को जगाया जाता है। उसे भय नहीं। वह पुरुष के संसार में उस स्थान पर रहती है, जहां वह जो भी कार्य करती है, उसके परिणामों की चिंता नहीं होती और न उसके विशेष परिणाम होते ही हैं। चूंकि वह भी मानव-जीव है, इसलिए वह मनुष्य के कानून के विरोध में तीव्र संघर्ष कर सकती है। मूसे से लेकर जार्ज बाताइ तक की रचना में पतित, अधम व्यक्ति वही है जो वेश्याओं की संगति में रहता है। वह उनके सहयोग से ही कुकर्म करता है । माविस द सादे

कुछ और साचे मासो ने अपनी इच्छाओं की पूर्ति वेश्याओं के साथ ही को। उनके शिष्यों ने वेश्याओं की संगति में ही अपनी कुत्सित वासनाओं को तृप्त किया। ये स्त्रियां बहुत जल्दी समर्पण कर देती हैं। वे जब चाहती हैं, पुरुषों से कतराती हैं, इसलिए वे भिन्न-भिन्न मुद्राएं धारण करने की शक्ति रखती हैं। नारी का हर रूप-कुमारी, कन्या, माता, पत्नी, बहन, सेविका और प्रेमिका, अति पवित्र नारी और मुस्कुराती हुई रखैल– पुरुष की भिन्न-भिन्न वासनाओं और इच्छाओं को तृप्त करता है।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने वाले व्यक्ति को देखना है कि क्यों एक व्यक्ति-विशेष नारी के अनेक रूपों में से एक रूप की ओर आकर्षित होता है और उस रूप को वह किसी एक नारी-विशेष में क्यों देखता है? मानसिक विकार के हर रोगी की नारी-सम्बंधी कुछ-न-कुछ समस्या रहती है। व्यक्तियों के पागलपन का एकमात्र कारण यह है कि उनका आकर्षण उस वस्तु-विशेष की ओर है, जिसे वर्जित बताया गया है। केवल सामाजिक दबाव ही ऐसी मनःस्थिति की विवेचना नहीं कर सकता। सामाजिक निषेध केवल परम्परागत नहीं है, बल्कि ज्यों-ज्यों मनुष्य विकास की ओर अग्रसर होता है, वह स्वयं अनुभव करता है कि कुछ क्रियाएं क्यों अनुचित हैं।

यदि हम ओडीपस कम्प्लेक्स की विवेचना करें, तो देखते हैं कि इसका उदय तो व्यक्ति में निहित अंतर्द्वंद्व के कारण होता है, जबकि बहुधा कहा जाता है कि इस ग्रंथि का कारण जन्मगत संस्कारों और सामाजिक नियमों के बीच संघर्ष है। बालक मां की छाती से चिपका रहता है क्योंकि उसे जीवन से लगाव है। बालक का स्तन के प्रति मोह मानो जीवन के प्रति

मोह है। यह मोह साधारण व विश्वव्यापी है। जैसे ही बच्चा मां का स्तनपान छोड़ता है, स्तन के प्रति उसका लगाव कम हो जाता है। वह अपना व्यक्तित्व धीरे-धीरे प्राप्त करता है और जन्मदात्री से दूर होता जाता है। इस दृष्टिकोण से जैसे-जैसे बालक का व्यक्तित्व विकसित होता जाता है, वह मां के सान्निध्य से दूर और अलग होता जाता है, पर मां के शरीर के प्रति उसमें मोह शेष रहता है, जिसे यौनगत आकर्षण कहा जा सकता है। इसके बाद यह मोह किसी अन्य की ओर होता है, जिससे वह अपरिचित है। वह सीमित घेरे से ऊंचा उठने लगता है। जितनी ही जल्दी बच्चे में अलगाव की यह भावना आती है, उतनी ही जल्दी यह आकर्षण मानो उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता में वाधक-सा लगने लगता और उसे परेशान-सा करता है। वह मां का प्यार-दुलार पसंद नहीं करता, उसकी सत्ता नहीं मानता। वह उसके मातृ- अधिकारों की अवज्ञा करता है। कभी-कभी तो उसकी उपस्थिति से ही उसे लज्जा का अनुभव होता है। विशेषकर मां के शरीर के बारे में सोचना उसे बड़ा परेशान-सा करता है। यह विषय मानो उसे अश्लील लगता है। जब शरीर के प्रति ये विचार पिता, सौतेले पिता व किसी प्रेमी द्वारा उसमें आते हैं, तो वह दुःखी हो जाता है। यहां दुःख ईर्ष्याजनित है, पर उसे बदनामी का भय होता है। माता के शरीर के बारे में उसे याद दिलाना मानो उसे उसके जन्म की याद दिलाना है। वह पूरी ताकत से मानो उसे अस्वीकार करना चाहता है और जन्म को मानो विश्व की एक महत्त्वपूर्ण घटना की मर्यादा देना चाहता है, वह मां में उस प्रकृति को देखना चाहता है, जो किसी एक व्यक्ति-विशेष की न होकर सबकी होती है। वह यह नहीं चाहता कि उसकी मां किसी एक की सम्पत्ति हो। यह भावना उसमें इसलिए नहीं है कि वह स्वयं मां को अपनी सम्पत्ति के रूप में चाहता है, बल्कि इसलिए कि वह नहीं चाहता कि उसकी मां किसी की सत्ता के अधीन हो। मां का पत्नी व मालकिन जैसा तुच्छ स्वरूप उसे स्वीकार नहीं है। कभी-कभी किशोर अवस्था में मां का शरीर विशेषकर जंघा और वक्षस्थल देखकर वासना जाग्रत होती है, पर यह वासना मां के प्रति नहीं, बल्कि साधारण नारी के प्रति होती है। कभी-कभी तो यह विचार आते ही. कि उसने अपनी मां का शरीर देखा है, काम-इच्छा लुप्त हो जाती है। कभी-कभी किशोर में अनुचित इच्छा होती है। पवित्र वस्तु को अपवित्र करने की इच्छा निषेध के प्रति लालसा । इसका अर्थ यह नहीं कि वह प्रथम सम्भोग अपनी मां के साथ ही करना चाहता है, पर बंधनों के कारण ऐसा नहीं करता, बल्कि निषेध की भावना व्यक्ति में स्वयं उत्पन्न होती है। उसका विवेक इसके लिए गवाही नहीं देता। संस्कार उत्कृष्ट रूप में बदल जाते हैं। वह अपनी मां को शरीर रूप में नहीं देखता। मां महान् है, मां पवित्र नारीत्व की मूर्ति है, जिसकी समाज प्रशंसा करता है। मां वह आदर्श रूप है, जो अगली पीढ़ी के कल्याण के बारे में सोचती है। यह भावना स्वयं अपने आप मन में उठती है, इसलिए ही विशेष मान्य है। प्रत्येक नारी में नारीत्व का गुण हैं, अतः 'मातृत्व' का गुण है, इसलिए पुरुष का जो रुख अपनी माता के प्रति है, वह अपनी पत्नी के प्रति नहीं होता। सम्बंधों के प्रति दृष्टिकोण में अंतर रहता है। किशोर में जब काम-

वासना माता को देखकर जाग्रत होती है, तब इसका यह अर्थ नहीं होता कि वह मां पर आसक्त है। वह नारी पर आसक्त है, अतः नारी उसकी इच्छा को तृप्त करती है। जिस नवयुवक के हृदय में माता के प्रति श्रद्धा होती है, जो मां को पवित्र मानता वह मातृत्व की पवित्रता हर नारी में देखता है।

'नारी' और 'वासना' के स्वाभाविक और अस्वाभाविक रूप सर्वविदित हैं। चूंकि नारी पुरुष का आविष्कार है, इसलिए पुरुष नारी की सृष्टि पुरुष की देह में भी कर सकता है। जब पुरुष किसी लड़के के साथ 'यौन-सम्बंध' स्थापित करता है, तब उस सम्बंध में कुछ ही अंतर रह जाता है। स्त्री-वस्तुओं में ही नारी को स्वभावतः देखा जाता है। नारी द्वारा और नारी में जो श्रेष्ठ व 'दलित', है, उसके द्वारा एक नवयुवक सुख-दुःख, पाप-पुण्य, वासना-ब्रह्मचर्य, श्रद्धा-क्रूरता आदि के बारे में ज्ञान प्राप्त करता है या यों कहें कि वह अपने को पहचानना सीखता है। नारी पुरुष के लिए खेल है, साहसिक कार्य है, पर वह एक परीक्षा भी है। वह विजय का उल्लास है साथ ही निराशा की कड़वाहट भी। वह नाश का ढेर है, तो सत्यनाश और मृत्यु के प्रति आकर्षण का रूप भी है। सम्पूर्ण महत्त्वपूर्ण जगत् मानो नारी में निहित है। वह पुरुष की भावना और कार्यों का स्रोत है। वह उन सभी मान्यताओं का मूर्त रूप है, जो पुरुष को स्वतंत्र रूप से कार्य की ओर प्रेरित करती हैं। बहुत निराश होने पर भी पुरुष नारी के उस स्वप्न को संजोए रखता है, जो कि उसके सब स्वप्नों का स्वप्न है।

यही कारण है कि नारी के दोहरे और छली चेहरे हैं। नारी वह है, जो पुरुष चाहता है और वह भी है, जो पुरुष प्राप्त नहीं कर सकता। वह अनुकूल प्रकृति और मानव के बीच की कुशल मध्यस्थ है। साथ ही वह अच्छाई के प्रतिकूल है, अविजित प्रकृति की लालसा है । वह सभी नैतिक मान्यताओं का मूर्त रूप है। अच्छाई और बुराई, दोनों उसमें विद्यमान हैं। वह कार्य की प्रेरणा भी है और बाधक भी। वह पुरुष की निराशा भी है और साथ ही पुरुष को जगत् प्राप्त कराने में सहायिका भी। वह पुरुष को उसके अपने अस्तित्व के बारे में सोचने की शक्ति देने वाली है। वह पुरुष को अपने मार्ग से हटा देती है, मृत्यु की गोद में पहुंचा देती है। वह साथी और सेविका है। पुरुष चाहता है कि नारी श्रोता भी हो और आलोचक भी। वह पुरुष के अस्तित्व को स्वीकृति दे, पर नारी अपनी उपेक्षा द्वारा उसका विरोध करती है। कभी-कभी वह परिहास और उपहास द्वारा इस विरोध को व्यक्त करती है। पुरुष अपनी कामनाओं को नारी में देखना चाहता है। वह अपने प्रेम और घृणा को उसमें प्रतिबिम्बित करना चाहता है। नारी के विषय में कुछ विशेष कहना बड़ा कठिन है, क्योंकि पुरुष नारी से ही सब कुछ प्राप्त करना चाहता है, क्योंकि वह 'सर्वस्व' है। वह 'सर्वस्व' अन्य व अपर के रूप में है। अन्य के रूप में वह अपने से 'अन्य' है। नारी वह नहीं है, जिसकी उसमें आशा की जाती है। सब कुछ होते हुए भी वह 'वह' नहीं जो कि उसे होना चाहिए। वह चिर छल' है । वह उस अस्तित्व का छल- रूप है, जिसे मनुष्य कभी भी

सफलतापूर्वक समझ नहीं सकता और जिसके साथ कभी भी पूर्ण सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकता।

पांच लेखकों की दृष्टि में स्त्री

स्त्री से सम्बंधित मिथक को बनाए रखने का प्रयास पश्चिमी साहित्य ने भी निरंतर किया। मैं सोचती हूं कि आज तक किसी भी लेखक ने स्त्री को व्यक्ति के रूप में न देखकर महज एक गौण, नगण्य प्राणी के रूप में ही प्रस्तुत किया। मांसल थी, सेक्स का प्रतिरूप, पुरुष को कामना-संतुष्टि का माध्यम मैं जिन पांच महान् लेखकों का उदाहरण दे रही हूं, उनमें से एक मांदेलान हैं, जो नीत्शे से प्रभावित हैं। वे स्त्री के बारे में लिखते हैं, " 'औरत' रात्रि है, अव्यवस्था और उपद्रव है। वह अंतर्वर्ती है। स्त्री न कुछ देख और सोच सकती है, न उसमें मनीषा है। न वह वस्तु को समझती है, न व्यक्ति को प्यार करती है। उसकी रहस्यमयता एक जाल है, एक भ्रम उसमें एक अगम्य गहराई प्रतीत होती है, जबकि वास्तव में वहां कुछ नहीं है, बस, एक निःशेष खालीपन है। उसके पास कुछ नहीं है। वह पुरुष को कुछ नहीं दे सकती, वह पुरुष को केवल पीड़ा में झुलसा सकती है।" वे माता के लिए भी लिखते हैं कि मां पुरुष की सबसे बड़ी दुश्मन होती है। उन्होंने अपनी हर पुस्तक में स्त्री के मातृत्व रूप का ओछापन दिखाया है। मां का दोष है कि वह अपनी संतान को अपने गर्भ के अंधेरे में कैद रखना चाहती है। यह तो संतान है, जो व्याकुल होकर जन्म के लिए छटपटाने लगती है। मां तो हमेशा यही चाहती है कि वह उड़ते पंछी के पंख बांध दे। वह मांस-पिंड बस उसका होकर रहे और उसके जीवन के खालीपन को भरे।

इन सारे आरोपों में निहित क्रोध और घृणा से एक ही बात स्थापित होती है कि मांदेलान को अपने जन्म से घृणा थी। वे ईश्वर में विश्वास करते थे, क्योंकि ईश्वर पुरुष है, अतः श्रेष्ठ है और इसी श्रेष्ठता का एक अंश वे स्वयं हैं। वे स्वयं को ईश्वर बनाना चाहते थे। जन्म की सीमाबद्धता से ऊपर उठने के लिए वे जन्मदात्री की भर्त्सना करते हैं।

यही चाबुक वे अपनी प्रिया पर भी बरसाते हैं, जो सांप का प्रतीक है और पुरुष सदा के लिए वासना में लपेटे रखती है। स्त्री के कारण पुरुष ईश्वर को साकार अनुभव नहीं कर पाता। प्रेमिका नहीं जानती कि सर्वोपरिता क्या है? वह तो पुरुष को अपनी अंतापिता में कैद रखना चाहती है। वह पुरुष की कमजोरी से प्यार करती है । वह पौरुषविहीन दुःखी व्यक्ति को चाहती है, ताकि पुरुष के जीवन में उसकी जरूरत बनी रहे। चूंकि स्त्री परजीवी है, अत: आश्रय के लिए. सम्पुष्टि और संवर्द्धन के लिए वह पुरुष की सारी ताकत सोख लेना चाहती है। न वह मेहनत कर सकती है, न दुनिया में किसी चीज पर उसकी पकड़ है। वह अपूर्ण है, अत: गुलामी के योग्य है। औरत प्रेम में देने का दिखावा करती है, जबकि

वास्तव में वह पुरुष का सब कुछ छीन लेती है। मदाम टालस्टाय को उद्धृत करते हुए वे लिखते हैं, "मैं उसमें जीती हूं, उसके लिए जीती हूं और यह, चाहती हूं कि वह मेरे लिए जीए । बस केवल मेरे लिए।" लेखक पूछता है, "यह कैसा प्यार? आजीवन कैद करने को सदा- स्त्री वाला?" वे फिर कहते हैं कि श्रेष्ठ पुरुष को विवाह से दूर रहना चाहिए, क्योंकि विवाह एक पूर्ण : पुरुष को नपुंसक बना देता है। पुरुष जहां अपने विचारों में तल्लीन और सशक्त होकर जगत् को कुछ देना चाहता है, वहीं औरत उसको संकीर्ण बनाने के लिए तत्पर हो जाती है। वह इतनी बोझिल है कि उड़ते पंछी के डैनों को पकड़कर लटक जाती है। यह एक कटु सत्य है कि पुरुप की बांहों में झूलती हुई औरत कभी उसे सीधा सिर उठाकर चलने नहीं देती। पुरुष एक आग है, और वह उसे बुझा देती है। पुरुष पानी पर तैरता है, औरत उसकी बांह पकड़कर अतल गहराइयों में डुबो देती है।

इन तर्कों का कारण स्पष्ट है। अकेला व्यक्ति स्वयं को सर्वसत्ता समझ सकता है। औरत के प्रति पुरुष की उपेक्षा उसकी अपनी कमजोरियों को जाहिर करती है। पानी पर चलने की कल्पना बड़ी मादक लग सकती है, पर वास्तव में जमीन पर चलना बहुत कठिन है। लेखक अपनी इन वायवीय । बातों में अच्छी-से-अच्छी उड़ान भले ही लगा ले, मगर वास्तव में वह यथार्थ का मुकाबला नहीं कर सकता। वह स्त्री की सत्ता नकारता नहीं। यदि नकारता, तो शायद स्त्री के हक में अच्छा होता। औरत को कम-से-कम मानवीय स्थिति तो मिलती। वे तो औरत को राक्षसी बनाकर रख देते हैं। अरस्तू और संत थॉमस की तरह वे भी नारीत्व के सार तत्त्व पर तो विश्वास करते हैं, लेकिन एक हाड़-मांस की वास्तविक नारी को सहन नहीं कर सकते। वे कहते हैं कि औरत मानवता की सबसे निचली सीढ़ी पर बैठी है। जो स्त्री अपनी इस नियति के प्रति विद्रोह करती है, वह स्त्री नहीं रह जाती, वह केवल एक हास्यास्पद विद्रूप बन जाती है। यदि कोई भी औरत सोचना-समझना चाहती है, अपने व्यक्तित्व के प्रति चिंतन करती है, तो वह स्वयं को एक उपहासास्पद कठपुतली में परिवर्तित कर लेती है। मांदेलान के उपन्यासों की सभी नायिकाएं इन्हीं रूपों में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की जाती हैं। कुरूप, भद्दी और फूहड़। यदि कुछ नायिकाएं सुसंस्कृत भी हैं, तो अपने नारीत्व की कीमत पर। वे स्त्री-जाति में एक ऐसी मौलिक कमजोरी को स्थापित करना चाहते हैं, जिसके कारण वह कभी सत्ता और ताकत पा ही नहीं सकती। हां, वह कसरत कर सकती है, अपने शरीर को भांजकर सुडौल बना सकती है, पर उसको रहना होगा मांसलता के स्तर पर ही।

मांदेलान के बिल्कुल विपरीत लिखते हैं महान् उपन्यासकार डी. एच. लॉरेंस। उनके अनुसार, औरत न मनोरंजन का साधन है और न पुरुष की वासना का शिकार। वह व्यक्ति की चाह की वस्तु नहीं, बल्कि वह तो पुरुष का दूसरा ध्रुव है। उसका अस्तित्व पुरुष का अनिवार्य पूरक है। सम्भोग की क्रिया बिना किसी अनुबंध और संयोजन के, बिना किसी

आत्म-समर्पण के, एक-दूसरे की चरम परितृप्ति का अपूर्ण अनुभव होती है । उर्मुला और वर्किन जैब एक-दूसरे के साथ सम्भोग के चरम क्षणों में अपनी-अपनी पूर्णता पाते हैं, तब वे एक-दूसरे को जो संतुलन प्रदान करते हैं, उसी को हम व्यक्ति की स्वतंत्रता कहेंगे। यहां एक का विलयन दूसरे में नहीं होता। दोनों का सम्बंध संतुलित पारस्परिकता पर आधारित होता है। लेडी चैटी और मेलोर भी एक-दूसरे के अस्तित्व के अणु-अणु में सारे ब्रह्मांड की झांकी महसूस करते हैं। उनका अस्तित्व पिघलने लगता है। सारी प्रकृति के साथ आस-पास के पेड़-पौधों में, सूर्य-रश्मियों में, बारिश की फुहार में। लॉरेंस अपने सिद्धांत की व्याख्या करते हुए कहते हैं, विवाह यदि मूलभूत रूप से यौन-तृप्ति पर आधारित नहीं, तो वह भ्रमोत्पादक है। यदि वह सूरज और चांद की रोशनी से आलोकित नहीं, यदि उसमें बदलते हुए मौसमों की गतिशीलता नहीं, युगों की गाथा नहीं, प्रेम की आभा और कांति नहीं, तो वह व्यर्थ है, धोखा है। विवाह-सम्बंध में खून से खून मिलता है। यह मानव-रक्त की आत्मा का आधार है, किंतु स्त्री का रक्त पुरुष के रक्त से बिल्कुल भिन्न धारा है। ये दो भिन्न धाराएं जीवन के समूचेपन को टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर बहा देती हैं। सर चैटी नपुंसक थे। विवाह-सम्बंध को निभाए जाने की समाज द्वारा आरोपित बाध्यता एक ढोंग थी। लेडी चैटी को पूर्ण तृप्ति मेलोर की बांहों में ही मिल सकी? एक के शरीर को उत्तेजना दूसरे की गहराइयों में समाहित हो जाती है। यही सर्वोत्तम घनिष्ठता है, जो व्यक्तित्व का संवर्धन करती है, किंतु यह अहं का त्याग मांगती है। आधुनिक समाज की विडम्बना यह है कि व्यक्ति स्वयं को प्रेम के चरम क्षणों में भी भूल नहीं पाता, अपने अहं के विसर्जन के लिए तैयार नहीं होता। इसी का परिणाम है, नाना प्रकार की कुंठाओं का जन्म। ऐसे कुंठाजनित यौन-सम्बंध आत्मकेंद्रित, खोखले, ठंडे और स्नायविक दुर्बलता लिए हुए होते हैं, जो व्यक्ति की ओजस्विता और स्वत्व को विघटित करके रख देते हैं। प्रेमी एक-दूसरे को अपनी वासना की खुराक बना लेते हैं, शारीरिक तुष्टि का एक उपकरणमात्र। लेडी चैटी का सम्बंध अपने पति से इसी प्रकार का था। अपनी-अपनी अंत:स्थितियों में कैद, वे एक- दूसरे को समझने, एक-दूसरे से संवाद स्थापित करने में सर्वथा असमर्थ थे। सेक्स एक बुखार की गर्मी और बारिश जैसा तो उन्हें लग सकता था, अफीमची का नशा तो दे सकता था, मगर व्यक्तित्व की संवर्द्धना नहीं।

उपरोक्त विचार लॉरेंस के उपन्यासों में जगह-जगह बिखरे हुए हैं। पारस्परिक अवदान और स्त्री-पुरुष की पारस्परिक बंधुता । क्या सच में हमने कम-से-कम एक लेखक की रचनाओं में स्त्री- पुरुष के बीच पारस्परिकता की सही अवधारणा खोज ली? बिल्कुल नहीं। लॉरेंस पुरुष की चरम श्रेष्ठता का पुरजोर दावा करते हैं। यौन-संतुष्टि पर आधारित विवाद' में उनके द्वारा जननेंद्रिय को यौन-जीवन का पर्यायवाची मानना पुरुष की श्रेष्ठता के प्रति उनकी पक्षधरता का सबसे सबल प्रमाण है। सम्भोग के क्षणों में खून की दो विपरीत धाराओं के मिलने की रहस्यमयता में लॉरेंस पुरुष को दाता के रूप में रखते हैं। स्त्री उनकी

नजर में ग्रहीता होती है। दो व्यक्तियों के मिलन में पुरुष की जननेंद्रिय हो सक्रिय रहती है। आवेगमय पूर्ण मिलन के मध्यस्थ के रूप में पुरुष ही स्त्री को अपने में समाहित करता है और व्यक्तित्व की सीमाओं का अतिक्रमण करता है। उर्वरा प्रकृति देवी की उपासना के बदले लॉरेंस यहां पुरुष के लिंग की उपासना करते हैं। वे जब विराट प्रकृति का वर्णन करते हैं, तो पुरुष की ही क्षमता की घोषणा करते हैं, स्त्री तो उनकी नजर में निष्क्रिय समर्पण के लिए, पुरुष में लीन हो जाने के लिए तत्पर है। उनकी नायिकाएं खूबसूरत और जवान हैं, पर बौद्धिक नहीं। कहीं भी उन्होंने प्रेमी पुरुष को अशांत या उत्तेजित नहीं दिखाया, वह तो अपनी पूर्ण गरिमा में बांहें फैलाता है और स्त्री अभिभूत और प्रवल कामना के वशीभूत होकर दौड़ी चली आती है। इस प्राकृतिक श्रेष्ठता के उपरांत लॉरेंस पुरुष को सामाजिक सुविधा देने से भी नहीं चूकते। चूंकि सम्भोग के क्षणों में वह सक्रिय है, आक्रामक है, अतः भविष्य के जीवन का नियंता भी वही है। उसके सामने एक निश्चित उद्देश्य है, उसकी मंजिल निर्दिष्ट है, वह सर्वोपरिता का अवतरण है, जबकि औरत अपनी रूमानियत में अभिभूत, अपनी आंतरिकता में भटकती हुई, अपनी अंतर्व्यापिता के प्रति पूर्णरूपेण समर्पिता । स्त्री के ध्रुवीकरण का बहाव नीचे की ओर है, जबकि पुरुप ऊर्ध्वस्थ रहता है। स्त्री चंद्रमा की रजत रश्मियों की तरह बहती है, जबकि पुरुष सूर्य की ओजस्विता का प्रतीक होता है। स्त्री की चेतना उसकी कटि के निम्न स्तर में समाहित हैं, यदि उसकी चेतना की गति ऊर्ध्वस्थ होती है, तब लॉरेंस के शब्दों में वह चालाक, बुद्धिमती, उदार एवं कार्यकुशल होती है। वह पुरुषों से होड़ करती है। वह पुरुषों की दुनिया में अत्यंत दक्ष साबित होती है, लेकिन बहुत जल्द ही सब कुछ ध्वस्त हो जाता है। वह ऊब जाती है और वापस पुरुष की बांहों में लौटती है। संतुष्टि के लिए उसे पुरुप की सक्रियता चाहिए।

लॉरेंस बोनाल्ड, अगस्त काम्टे और क्लेमें वॉल जैसे लेखकों की बुर्जुवा अवधारणाओं को ही दोहराते हुए लगते हैं। स्त्री को चाहिए कि वह पुरुष के अधीनस्थ रहे। वे कहते हैं, "स्त्री को विश्वास करना चाहिए कि किस महान् उद्देश्य के लिए पुरुष जिंदगी में संघर्ष कर रहा है और जब वह इस बात को समझती है, तब एक अतीव कोमलता में पुरुष का अवदान नारी के प्रति होता है। कितना सुखद लगता है शाम को घर लौटना, उस समर्पिता पत्नी के पास, जो तुम्हारे जीवन के उद्देश्य से परिचित है।" पुरुष के प्रति स्त्री की इस श्रद्धा-भक्ति की लॉरेंस प्रशंसा करते हुए नहीं अघाते। हां, पति का जीवन किसी महान् उद्देश्य की परियोजना में लगा हुआ होना चाहिए। यदि वह कपटी है, छली है, तो पूरा वैवाहिक जीवन भ्रामक हो उठता है। इससे तो अच्छा है कि यह सम्बंध टूट जाए। लॉरेंस विवाहित प्रेम का औचित्य सिद्ध करने लगते हैं। वे कहते हैं, "अन्ना कैरेनिना की कहानी वार- बार दोहराई जाएगी।"

लॉरेंस की श्रद्धा पारम्परिक नारी के प्रति है। वे आधुनिकाओं से नफरत करते हैं। ये आधुनिकाएं प्लास्टिक की गुड़िया हैं, जो आत्म-चेतना की बातें करती हैं। वे किसी भी नारी को स्वयं- सिद्धा होने की मनाही करते हैं। स्त्री स्वयं अपनी अनुभूति और संवेदना की खोज न करे, बस वह स्वयं को पुरुष की बांहों में समर्पित कर दे।

लॉरेंस के उपन्यास मानो स्त्रियों के लिए मार्ग-निरीक्षक हैं। पुरुष की अपेक्षा सीधे जगत् को स्वीकार कर लेना स्त्री के लिए अधिक कठिन है। प्रकृति के नियमों के प्रति समर्पण के लिए उसे पुरुष की मध्यस्थता स्वीकारनी ही पड़ेगी। इसी बिंदु पर औरत अपने समर्पण से विलग हो जाती है। वह वह नहीं रहती, जबकि पुरुष स्वेच्छा से अपनी पूरी स्वतंत्रता के साथ स्त्री का वरण करता है। उसे किसी मध्यस्थ की जरूरत नहीं। पुरुष जो इस विश्व और ब्रह्मांड के प्रति समर्पित है, प्रारम्भ से ही एक सार्वभौम उद्देश्य से परिचित होता है । स्वयं लॉरेंस भी इससे परिचित थे। जहां तक औरत का सवाल है, इस देवत्व के सामने उसे झुकना ही चाहिए। वह पाप नहीं, अपनी पूरी भलमनसाहत के बावजूद पुरुष के अविजित पौरुष के अधीनस्थ है, फिर एक बार लॉरेंस जैसा महान् उपन्यासकार एक आदर्श स्त्री की तस्वीर बनाता है, उसमें 'अन्या' का काला रंग भरते हुए।

क्लांदे की कैथोलिक आशावादिता यह उद्घोषित करती है कि औरत पाप होते हुए भी अंत में भलाई की ओर अग्रसर हो जाती है। वे ईश्वर की प्रत्येक कृति को प्रशंसा करते हैं, क्योंकि ईश्वर इस दुनिया का सृजक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और सर्वोपकारी है। नर्क और पाप के बिना न तो व्यक्ति में स्वतंत्र । संकल्प होता है और न वह मुक्त होने की चेष्टा करता है। ईश्वर ने अपने दिव्य चक्षुओं से मानव का पतन और उसका प्रायश्चित्त देख लिया था। यहूदियों और ईसाइयों की नजरों में हौवा की गलती का फल उसकी बेटियों को भोगना पड़ा। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि चर्च के धर्मपिता कितनी कड़ाई से स्त्री को अवमानना करते हैं, किंतु ईश्वर की बनाई हुई इस दुनिया में जब कुछ भी व्यर्थ नहीं, तो औरत ही कैसे व्यर्थ हो सकती है? जगत् की संगतता में औरत का भी स्थान है किंतु सहज स्थान नहीं। लुसिफर की नजरों में औरत में ऐसा विचित्र आवेग है जो क्षणों की व्यर्थता को शाश्वतता में बांध देता है। औरत शायद वह खतरनाक तत्त्व है जिसको प्रभु ने जानबूझकर इस महान सर्जना की लड़ियों में पिरो दिया। अच्छा है कि आदमी इस मांसल शरीर के लाभ को समझे। क्लादे कहते हैं, "यह हमारे भीतर का दुश्मन है जो हमारी जिंदगी को नाटकीयता का तत्त्व दे देता है। यह तीखा नमक है। आत्मा पर यदि यह क्रूर आघात न किया गया होता तो पुरुष सोता रहता। उठो, जागो और संघर्ष में कूद पड़ो, तुम्हें विजय हासिल करनी है।" न केवल आत्मा की मुक्ति के जरिए, किंतु शारीरिक मांसलता में भी पुरुष को अपना अवबोध जगाए रखना चाहिए। "औरत की यह मांसलता महान्-से- महान् व्यक्तियों को भी जाल में उलझाए बिना नहीं मानती।" स्त्री का प्रेम हमारे छोटे से जीवन में अकारण उथल-पुथल मचा देता है।

बहुधा औरत छलनामयी सिद्ध होती है। "ये प्रतिज्ञाएं हैं, जो कभी निभाई नहीं जा सकती, इसी में मेरी मोहकता निहित भी है।" "मैं वह खुशबू हूं, जिसे तुम पाना भी चाहोगे और पाकर पछताते भी रहोगे।"

स्त्री और पुरुष की भूमिका सामाजिक स्तर पर समान नहीं होती। पुरुष प्रधान होता है। क्लांदे सोपानीकरण पर विश्वास करते हैं। उनके अनुसार, परिवार का कर्ता भी पुरुष ही होता है। इनकी एक मायिका कहती है, "मैं कौन हूं? एक दीन-हीन लड़की। पुरुष के साथ अपनी तुलना करने का साहस कैसे करूं?" यह पुरुष है, जो खेत जोतता है, मकान बनाता है, युद्ध करता है। जगत् में सारी खोजें और अन्वेषण पुरुष की देन हैं। औरत तो मात्र अनुषंगी है। पुरुष के माध्यम से ईश्वर अपनी परियोजना पूरी करता । औरत की इसमें कोई सक्रिय भूमिका नहीं होती। वह बस प्रतीक्षा करती रहती है। साईने कहती है, "मैं वह हूं जो हमेशा स्थिर एक ही जगह प्रतीक्षा करती रहूंगी।" स्वामिभक्ति और कर्तव्यपरायणता स्त्री के सबसे बड़े गुण हैं। अपनी निष्ठा और त्याग से वह एक ऐसी शक्ति अर्जित करती है जिसका सीधा संलाप ईश्वर से होता है। वह इस दुनिया का सबसे महत्त्वपूर्ण उपकरण है। क्लादे की अवधारणा सारांश में यह है कि प्रभु ने स्त्री को चाहत की वस्तु बनाया। उसने एक ही साथ उसको पाप का कारण भी बनाया और मुक्ति का माध्यम भी। वह मानव-नियति का स्तम्भ है वह ईश्वर-प्रदत्त उपहार है। यह स्त्री ही है, जो प्रभु का महत्त्व समझाती है और उदात्तीकरण की ओर ले जा सकती है। वह आत्मा है, जो देखती है और कार्य करती है। कुछ हद तक वह प्रभु के सृजन में सहायक भी होती है।

पढ़कर ऐसा लगता है मानो स्त्री को क्लांदे जैसा महान् किसी और ने नहीं माना, किंतु तह में वे अपनी सारी काव्यमयता से कैथोलिक परम्परा को थोड़े आधुनिक तरीके से पेश करते हैं। यदि स्त्री दुनियावी कामों में उलझती है तो इससे किसी भी हद में उसकी अति मानवीय सहजता और सौंदर्य का विनाश नहीं हो सकता। इसके विपरीत कैथोलिक पुरुष इसको अपना हक मानता है कि वह इस दुनिया में अपने अधिकारों को प्रधानता दे। औरत को प्रधान जब ईश्वर ने बनाया ही है, जब वह देवी ही है, तो वह स्वर्ग में सारे सुख भोगे। इस दुनिया में तो वह पुरुष की सेविका ही रहेगी। अतः वह पुरुष के प्रति पूर्ण समर्पिता है। समर्पण की राह पर चल कर ही तो वह मुक्ति पाएगी, फिर क्यों नहीं वह प्रारम्भ से ही इस राह को अपनाती? यह उसका भाग्य है। उसकी तकदीर कि वह पिता, चर्च और राज्य-सबकी सेवा करे, देखभाल करे और पूर्ण समर्पिता हो। यह बुर्जुवा नियुक्ति एक बार फिर औरत को दे दी गई। पुरुष ईश्वर को अपना कर्म अर्पित करता है, औरत स्वयं को। इस पर धर्म की मुहर लगाकर ईसाइयत ने औरत की दासता को शाश्वत सिद्ध कर दिया। पति, पुत्र,

क्लादे की काव्यमय दुनिया से ब्रेतों का जगत् बिल्कुल अलग पड़ता है। इन दो महान् कवियों ने स्त्री की भूमिका जिस रूप में प्रस्तुत की है, उसमें सादृश्य भी है। स्त्री पुरुष के

जीवन में मुक्ति में सहायक तत्त्व है, वह पुरुष को संसार में फंसे हुए जीव की गहरी तंद्रा से भी जगाती है । वह दांते की वित्रिच है जो उसे जगत् से परे अनुभवातीत की ओर ले जाती है। एक स्त्री का प्यार पुरुष को दुनिया के मायावी बंधनों में बांधता है, उसकी वासना की आग भड़काता है तो उसी स्त्री का दूसरा रूप उसका हाथ पकड़कर मुक्ति के द्वार पर भी ले जाता है। प्रेम के उस चरम बिंदु पर समग्र मानवता के प्रति प्रेम उमड़ पड़ता है, किंतु ब्रेतों का अनुभवातीतता का जगत् ऐहिक है। वह स्वर्ग में नहीं, इसी जगत् में उपलब्ध है जो रोजमर्रा की जिंदगी की रहस्यमयता को उद्घाटित करता है। स्त्री एक रहस्यपूर्ण पहेली है,जो नित्य नई पहेलियां पैदा करती रहती है। वह अनुपम और अद्वितीय है। वह स्वयं कविता है। ब्रेतों की कविता का ठोस प्रतीक स्त्री है, उसकी देह है। वे उसका कोई भी वर्णन करें, कहीं भी रखें, पर हर जगह वह अपनी किसी-न-किसी बेजोड़ विशिष्टता के साथ उपस्थित है। किंतु स्त्री की मुक्ति प्रेम में निहित है। उसके अस्तित्व का औचित्य और उसकी चाहत की सार्थकता प्रेम में परिपूर्ण होती है अन्यथा वह एक भटकती हुई आत्मा है। ब्रेतों अपनी कविताओं में जगह-जगह स्त्री के लिए शाश्वत प्रेम की अनिवार्यता का वर्णन करते हैं। ऐसी सामाजिक स्थितियां हैं जिनमें व्यक्ति गलत चुनाव कर बैठता है पर उस एकमेव सत्यरूपा, उस अद्वितीय प्रेम के प्रतीक, उस एक नारी की खोज और कामना पुरुष के मन में सदा बनी रहती है। वह नारी सौंदर्य का प्रतीक है। स्त्री का वह सौंदर्य ही प्रेम के चरम आवेगमय क्षणों की चरम स्थिति में प्रकट होता है। यह केवल प्रेम है जहां अस्तित्व और उसका सारतत्त्व एकमेव रूप से अनुभूत होते हैं। "यह अनुभव पुनः सारे जगत् में व्याप्त होता है। स्त्री के सौंदर्य का यह आयाम वास्तव में प्रकृति का अनिवार्य सारतत्त्व है। स्त्री पुरुष में जिस प्रेम को जगाती है, उसी के माध्यम से पुरुष मुक्ति प्राप्त करता है। व्रतों लिखते हैं, "अब वह समय आ गया है कि स्त्री अपने आदर्शों को पुरुष पर आरोपित करे क्योंकि आज पुरुष अपना सर्वस्व खो चुका है। स्त्री ही पुरुष को उसका वास्तविक स्वरूप पुनः प्रदान कर सकती है। उसे अपनी सही भूमिका समझनी होगी। उसे अपने को नर्क से निष्कासित करना होगा जिसमें पुरुष ने उसको कैद कर रखा है।" यह संही भूमिका कौन-सी है? ब्रेतों कहते हैं, "शमन की, शांति की भूमिका।" यदि आज स्त्री असंतुलित एवं असंगत दिखती है तो इसका कारण है पुरुष का अत्याचार, जो वह सदियों से उस पर ढहाता आया है। स्त्री इससे उबर सकती है। उसमें आंतरिक ताकत है क्योंकि उसकी जड़ें गहरी हैं, जीवन- स्रोत में आत्मा तक धंसी हुई । जीवन-शक्ति को वापस कैसे पाया जाए, इसका रहस्य पुरुष खो चुका है। उसने अधैर्य डाह से स्त्री को उसकी गरिमा से पदच्युत किया। समय आ गया है कि स्त्री विद्रोह करे। समाज और संस्कृति बड़े व्यवस्थित रूप से इस शिशु बालिका को धीरे-धीरे विकसित करें, परिपक्व करें। किंतु यहां ब्रेतों ने बालिका शब्द का व्यवहार क्यों किया? ब्रेतों व्याख्या करते हैं, "मैंने बालिका शब्द इसलिए प्रयुक्त

किया कि केवल बालिका में ही हम उस पारदर्शी पवित्रता को पा सकते हैं जिसकी तलाश हम युगों से करते रहे हैं।"

ब्रेतों का दृष्टिकोण काव्यात्मक है। वे स्त्री को कविता का पर्यायवाची मानते हैं। यदि स्त्री की वैयक्तिक नियति की बात उठाई जाए तो ब्रेतों का आदर्श होगा पारस्परिक प्रेम । स्त्री को और कुछ नहीं करना, बस केवल प्रेमरत रहना है। प्रेमवती स्त्री हीन नहीं हो जाती क्योंकि पुरुष का भी आदर्श यही है कि वह स्वयं प्रेममय हो। किंतु यहां एक प्रश्न उठता है: यदि प्रेम ही जगत् की कुंजी एवं सौंदर्य को प्रकट करने वाला है तब स्त्री को यह सौंदर्य प्रेमी में मिलेगा या स्वयं अपनी ही तस्वीर में? वह पुरुष के लिए कविता है, लेकिन क्या वह स्वयं के लिए भी कविता है? या फिर जीवन की यह काव्यमयता वह पुरुष में खोजती है ? ब्रेतों स्त्री को वैयक्तिकता नहीं प्रदान करते। स्त्री उनको इसलिए भाती है कि स्त्री के पास अब भी एक अछूती आवाज है जो पुरुप में सही मानवीय आवाज को जगा सकती है। स्त्री प्रकृति में गहरे निहित है। वह धरती के करीब है और अनुभवातीत की ओर ले जाने की जादुई चाबी उसके पास है। जैसे वित्रिच दांते का हाथ पकड़कर उसे स्वर्ग की ओर ले जाती है और पे क लॉरा के प्यार से आलोकित हो उठता है, वैसी ही सत्यता, सौंदर्य एवं काव्यमयता वे स्त्री में खोजते हैं ताकि सोते हुए पुरुष को वह जगाए, मुक्ति की राह दिखाए। एक बार फिर स्त्री ठगी गई। पुरुष के लिए वह एक माध्यम है सर्वोपरिता की ओर जाने का; स्वयं अपने लिए, अपने प्रति, उसकी कोई जिम्मेदारी नहीं, अपनी मुक्ति के लिए वह कहीं सक्रिय नहीं।

मैं एक बार फिर इस आनंद-लोक से, जहां स्त्री परी है, स्वर्ग का तारा है, मोहिनी है, वापस उस लेखक के पास लौटना चाहूंगी जो हाड़-मांस से बनी हुई मानव-स्त्री का सृजक है।

महान् उपन्यासकार स्तांदाल बचपन से स्त्री को कामना की वस्तु मानते हैं, उससे रागात्मक सम्बंध रखते हैं। वे कल्पना करते हैं दु:ख-पीड़ा से झुलसती स्त्री को जीवनदान देने की और बदले में उसकी कृतज्ञता और उसका प्यार पाने की। स्त्री-चरित्रों का रचयिता यह पुरुष स्त्रियों के प्रति बड़ा कोमल भाव रखता है। स्त्री जैसी है, वह उससे उसी रूप में प्यार करता है। शाश्वत नारीत्व जैसी पारम्परिक अवधारणा को वे पुरजोर शब्दों में नकारते हैं। स्त्री को सदा के लिए परिभाषित करने के लेखकीय प्रयासों को वे बकवास कहते हैं।

स्त्री और पुरुष का यह भेद परिस्थितिजन्य है। क्यों नहीं स्त्री अपने प्रेमी की अपेक्षा अधिक रोमांटिक होती? ऐसा क्यों कहा जाता है कि औरत में निर्णय की क्षमता का अभाव है और वह केवल भावनात्मक स्तर पर जीती है? यदि इतिहास में बहुत कम स्त्रियां जीनियस हुई हैं तो इसका कारण उनका स्त्री होना नहीं बल्कि यह समाज है जो स्त्री की सारी अभिव्यक्ति को नियंत्रित करता रहता है, उसको प्रत्येक सुविधा से वंचित रखता है।

बुद्धिमान-से-बुद्धिमान स्त्री की भी सार्वजनिक हितों के लिए आहुति दे दी जाती है। यदि उन्हें विकास का पूरा अवसर मिले तो ऐसा कोई भी काम नहीं जो वे न कर सकें। दमनकर्ता हमेशा दमित की जड़ों को काटता रहता है ताकि वह बौना ही रह जाए। पुरुष जान-बूझकर स्त्री को बौना रखता है। स्त्री न देवी है न राक्षसी। वह मानवी है, जिसे समाज की फूहड़ प्रथाओं ने दासता में जकड़ कर रख दिया है। यह सर्वविदित है कि स्तांदाल ओढ़ी हुई बुर्जुवा-गम्भीरता से घृणा करते थे। पैसा, यश, ताकत और स्तर को वे विशेष आदर्श मानते थे। बुर्जुवा पुरुष जो पति भी होता है, पैसा, लाभ और समाज की मंचीय व्यवस्था के लिए स्वयं को बेच दिया करता है और अपने भीतर की पूरी जीवंतता को चालू मुहावरों और खोखली भावनाओं तथा सामाजिक रूढ़ियों में खत्म कर देता है, कुछ नहीं लगता उसके हाथ। केवल बोरियत और खोखलापन। पुरुष के इन खोखले मूल्यों की नकल वे हजारों स्त्रियां करती हैं जो इसी पथ को अनुगामिनी हैं। ये पेरिस की संकीर्ण विचारों वाली सजी-धजी गुड़ियां या बहुधा ढोंगी और प्रपंची भक्तिनें। स्तांदाल को ऐसे समाज और ऐसे स्त्री-पुरुषों से आंतरिक घृणा थी। वे जगह-जगह सामाजिक मानवीयता और अनिवार्य ढोंग की खिल्ली उड़ाते हैं । ये बुर्जुवा स्त्रियां अपने सतही धंधों को भी गंभीरता का जामा पहना कर पुरुषों की तरह कृत्रिम रहती हैं। गलत शिक्षा के कारण ये बेवकूफ हैं, खोखली हैं, स्वभाव से ईर्ष्यालु और गप्पी हैं। बेकार बैठी हुई ये औरतें फालतू और ठंडी हैं। इनमें भावनात्मक गर्मी कहां? ये दिखावटी और विद्वेषपूर्ण स्त्रियां पेरिस के सामाजिक जीवन में भीड़ बढ़ाती हुई, किन्हीं दो-एक महान् स्त्रियों के पीछे चलती हुई दिखाई देंगी। वे वर्णन करते हैं एक मदाम रोलां का : "खूबसूरत किंतु अभिव्यक्तिहीन, अवज्ञापूर्ण, बिना किसी मोहकता के वह अपनी पवित्रता का प्रदर्शन करती फिरती है। आत्मा की सही विनयशीलता वह नहीं समझती । वह आत्ममुग्धा है, अपने ही घमंड में फूली हुई। वह केवल महानता के बाहरी लक्षणों की नकल करती है जबकि मूलत: वह नीच और कमीनी है। उसका कोई चरित्र नहीं वह बोर करती है।" यह अंश स्तांदाल का एक नायक मोशियो ल्युवे सोचता है। मदाम रोलां बिल्कुल तर्कसंगत है, अपनी परियोजना के प्रति सतर्क । उसकी महत्त्वाकांक्षा है कि उसका पति राज्य-मंत्री बने। मदाम रोलां की आत्मा शुष्क है। वह यथास्थिति की पोषक है। हमेशा मानवीय प्यार से दूर। वह प्यार कर ही नहीं सकती। वह उदारता का कोई काम कर ही नहीं सकती। यदि ऐसी सूखी औरत में कोई आवेग फूटता भी है तो वह जलाता है। वह उसके अस्तित्व को प्रकाशित नहीं करता।

उपरोक्त तस्वीर से हमें यह समझ लेना चाहिए कि स्तांदाल की स्त्री से कैसी अपेक्षा हो सकती है। सर्वप्रथम तो स्त्री को गम्भीरता के जाल में नहीं उलझना चाहिए और चूंकि महत्त्वपूर्ण बातों से उसे शुरू से ही दूर रखा जाता है, अत: उलझने का खतरा भी कम रहता है। स्त्री अब भी अपनी उस सहजता, मासूमियत और औदार्य को बनाए रख सकती है जिसका जिक्र स्तांदाल बार-बार करते

तात्पर्य यह है कि हम प्रामाणिकता से जो समझते हैं, स्तांदाल की स्त्री से वही अपेक्षा है। वह स्वतंत्र हो, ईमानदार हो और अपनी भावनाओं के प्रति सच्ची हो।

उनकी नायिकाएं जीवंत हैं । वे जानती हैं कि सच्चे मानवीय मूल्य बाहर से आरोपित नहीं किए जा सकते। उनका सीधा सम्बंध हृदय से होता है। उनके सपने हैं। उनमें हास्य की मोहकता है, भावनाओं की जिंदादिली है। वे मौत से भी ज्यादा बोरियत से डरती हैं। बोरियत में सड़ने के बजाय अच्छा हो कि वे मर जाएं। शांत निष्क्रिय पड़े रहने के बदले प्रसन्नचित्त ये स्त्रियां जिंदादिलो का सबूत हैं। ये विचार नहीं करतीं। बचपना हो या गम्भीरता, ये औरतें सबसे अधिक अपनी स्वाधीनता के प्रति समर्पित हैं।

किंतु केवल स्वाधीनता उन्हें ये सारे गुण नहीं दे सकती जिसकी अपेक्षा लेखक करता है। शुद्ध स्वाधीनता आदर एवं श्रद्धा तो दे सकती है पर संवेदना नहीं। वस्तुत: स्वाधीनता पाने के लिए व्यक्ति जब संघर्ष करता है, तब भावनाएं उमड़ती हैं। केवल बाह्य प्रतिबंध पर विजय पा लेने से आंतरिक संस्कारों की सांकल नहीं खुल जाएगी। स्तांदाल अपनी नायिकाओं को महलों में कैद कर देते हैं। वे उनके प्रति ईर्ष्यालु हैं, उन्हें संतुष्ट करने में असमर्थ । अत: वे इन नायिकाओं को कैद से भगाने के नित्य नए नुस्खे ईजाद करते हैं। वे अपने प्रेमी से मिलने के लिए कभी चोर दरवाजे से निकलती हैं तो कभी रस्सियों के सहारे दीवारें फांदती हैं। अपहरण, अलगाव या फिर आवेग का विस्फोट और अवज्ञा- इन सबको लेखक बड़ा मौलिक मानता है। यह बुद्धिमती स्त्री का कौशल है कि वह कैसे धोखा देती है। स्तांदाल इस प्रत्यक्ष रूमानियत से सरोबार हैं, किंतु ये तो बाह्य संघर्ष हैं, विद्रोह के बाहरी आचरण पर क्या ये विद्रोही नायिकाएं अपने भीतर कभी झांकती हैं? जब उनका अपने आपसे सामना होता है, तब क्या वे अपनी आत्मा का सही रूप पहचानती हैं ? स्वाधीनता का जोखम उठाकर वे जो कुछ भी करती हैं, वह वास्तव में बड़ा संदेहास्पद और मार्मिक होता है तथा बड़ा कड़वा भी। वे उनको सीमित वातावरण में, पगले बाप या कठोर पति के शासन में रखकर पुरुष को गंवार एवं झूठे खयालों वाला कहकर ही खुश हो जाते हैं। अतः ये स्त्रियां कहीं अपने किए के लिए जिम्मेवार नहीं। ये तो बेचारी परिस्थितियों की शिकार हैं। अत: यदि ये दिलेरी और साहस से इस जिंदगी का सामना करती हैं तो सहानुभूति की पात्र हैं। चूंकि समाज इनका दमन करता है, इसीलिए इनमें छल- कपट और धोखे का दुर्गुण आ जाता है।

स्त्री को छोटी-छोटी बातों में खुश होने के लिए कहा जाता है। क्षणों की भावुकता में जीना मानो स्त्रियों को सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है, क्योंकि सारी महत्त्वपूर्ण बातें तो उनकी पहुंच के बाहर हैं । वे पराश्रित हैं इसलिए विनम्र हैं। चूंकि क्रियाकलापों में रूप की अभिव्यक्ति की उन्हें मनाही है, अतः वे स्वयं अपने अस्तित्व के बारे में प्रश्न पूछती नहीं अघातीं। वे समझती हैं कि दूसरों के दोषों और गुणों को ध्यान से देखकर, खास करके अपने प्रेमी के

दोषों और गुणों का अवलोकन करके वे खुद को भी समझ लेंगी। वे अपने आपसे घबराती हैं। वे अपनी वास्तविकता से भयभीत होकर पलायन करती हैं विद्रोह में, झूठ में, छलावे में। भ्रमों में व्यामोह की शिकार होकर वे स्वयं को प्रहसन का पात्र बना बैठती हैं।

स्तांदाल की नायिकाएं पाठक के मन में सहानुभूति जगाती हैं, जब वे अकेली, विषम परिस्थितियों से जूझती हैं। वे बिल्कुल असुरक्षित होती हैं । वे न कानून जानती हैं, न पुरुषोचित तर्क और न ही अपनी अग्रजाओं की सफलता के उदाहरण । उन्हें बिल्कुल अकेले निर्णय लेना पड़ता है, क्या करें और क्या न करें। यह निरवलम्बता ही स्वतंत्रता का चरम बिंदु है। उनकी नायिकाएं भोली हैं, मासूम हैं, अतः अपने लिए किसी नए मूल्य को गढ़ने में सर्वथा असमर्थ । यदि वे छल-कपट करती हैं, प्रेमी के जाल में उलझी हुई किन्हीं भ्रमों का सहारा लेती हैं तो लेखक की नजर में उनकी कोई गलती नहीं। लेखक तो गम्भीरता का मुखौटा ओढ़े बुर्जुवाओं को व्यर्थ बताता है क्योंकि वे चालू मुहावरों में अपने अस्तित्व का औचित्य ढूंढ़ते हैं, जबकि एक आवेगमयी प्रेम से आप्लावित स्त्री हर क्षण इन स्थापित मूल्यों को चुनौती देती है। वह निरंतर उस तरल स्वातंत्र्य का तनाव फैलाते हैं जिसको पुरुषों ने बने-बनाए सांचे में ढालकर ठोस करना चाहा है। उनकी नायिका तो स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वस्व दांव पर लगा देती है।

प्रेम हर रूटीन को तोड़कर आदमी को तंद्रा से जगाता है। इस तंद्रा को लेखक सबसे खतरनाक मानता है क्योंकि यह आदमी को ऐसी बेहोशी में जकड़े रखती है कि वह अपने जीवन का अर्थ खो बैठता है। प्रेमी के सामने अपने को प्राप्त करने का कम-से-कम एक उद्देश्य तो है। अत: उसका हर दिन जोखिम भरा होता है, कुछ भी घट सकता है। उनकी नायिका प्रेम को अपनी नियति मानती है, अपने अस्तित्व के औचित्य का एकमात्र कारण । उसको प्रेम में सौंदर्य, सुख और ताजगी, सब कुछ मिलता है, वह एक नया जगत् देखती है। चिपके हुए मुखौटों को यह लेखक खींचकर फाड़ देता है और आदमी को उसके हृदय की सच्चाई से परिचित करा देता है। प्रेमी भी उसी तनाव को झेलता है, उन्हीं खतरों से गुजरता है जिन्हें उसकी प्रेमिका झेलती है, अतः जहां अपने पेशे में वह स्थापित मूल्यों से समझौता करता है, वहीं प्रेमिका की बांहों में कम-से-कम अपनी प्रामाणिकता तो खोज पाता है। युगल प्रेमी उन चरम क्षणों में अपने स्थान और काल से परे होते हैं। स्तांदाल शायद दुनिया के प्रथम लेखक हैं जो स्त्री के चरित्र में अपने को प्रक्षेपित करते हैं, लेकिन एक जगह वे हार जाते हैं। उनके गरिमा-मंडित पात्रों के लिए यह दुनिया और यह समाज रहने लायक नहीं । अपनी इस नई स्वतंत्रता को लेकर वे कहां जाएं? अतः वे परित्राण पाते हैं अपराध में या मृत्यु की गोद में। लेखक की यह गहरी रूमानियत और साथ ही स्त्री-स्वतंत्रता का समर्थन बड़ा विरोधाभासी लगता है। वे मुक्ति के बाद की स्थिति को ऐहिक सिद्ध नहीं कर पाते । स्थापित मूल्यों के प्रति विद्रोह यहां स्वयं के जीवन के लिए बड़ा निषेधक सिद्ध होता

है। वे कहते हैं, "प्रेम में औरत कुछ नहीं खोती, बल्कि पुरुष को और गहराई से समझती है।" प्रेमी और प्रेमिका एक-दूसरे में अपना औचित्य ढूंढ़ते हैं, एक-दूसरे को मुक्ति का साधन मानते हैं। वे स्त्री को मानवीय रूप देते हैं, पुरुष की बराबरी का हक।

उपर्युक्त उदाहरणों से सिद्ध होता है कि प्रत्येक लेखक अपनी-अपनी कलम से स्त्री के बारे में एक महान् सामूहिक मिथक की ही रचना कर रहा है। हमने या तो स्त्री का शुद्ध मांसल रूप देखा या फिर उसे स्वयं प्रकृति माना। वह खिला हुआ गुलाब या जलपरी या भोर का तारा है या फिर पुरुष के सम्मुख वह उर्वरा धरती है, भौतिक सौंदर्य और जगत् की आत्मा है। वह कविता है। वह इस लोक से परलोक तक ले जाने वाली एक मध्यस्था है। प्रसाद या वेद वाक्य, ध्रुवतारा या जादूगरनी। वह अतींद्रिय का दरवाजा खोलती है। वह वायवीय है किंतु स्वयं अपने लिए अपनी अंतर्व्यापिता में खत्म होने के लिए बाध्य। यदि अपनी निष्क्रियता से वह शांति और संगतता पुरुष के जीवन में लाती है तो वह देवयाणी है किंतु यदि वह इस आरोपित भूमिका के खिलाफ जाती है तो बद्धहस्त कीट है या राक्षसी। कुछ भी हो मगर पुरुष की दृष्टि में वह विशिष्ट अन्या जिसके माध्यम से वह स्वयं परितृप्त होता है, मुक्ति-लाभ करता है । वह पुरुष की असंतुलित जिंदगी का प्रतिसंतुलन है, उसकी मुक्तिदाता है, उसकी जिंदगी का सबसे कीमती दांव, उसका सुख ।

ये मिथक अलग-अलग तरह से इन महान् लेखकों ने गाए हैं। अन्या को उसी के कर्मों से और उसी के चुनाव के रूप में परिभाषित किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता का दावा करता है और सीमाओं का अतिक्रमण करके सर्वोपरिता की ओर बढ़ने का आग्रह रखता है। विडम्बना यह है कि इन शब्दों को प्रत्येक व्यक्ति एक ही अर्थ में नहीं ग्रहण करता । मांदेलान के लिए सर्वोपरिता का अर्थ स्थिति है, पुरुष आकाश में उड़ता है, स्त्री जमीन पर रेंगती है, पुरुष के पैरों तले । स्त्री- पुरुष के बीच की इस स्थितिगत दूरी से वे बड़े प्रमुदित होते हैं। बार-बार वे अपनी नायिका को ऊंचाइयों की झलक दिखाते हैं और वापस जमीन पर ला पटकते हैं किंतु कभी भी पुरुष उसकी इस छाया के साथ एकात्म नहीं होता।

लॉरेंस सर्वोपरिता का अर्थ पुरुष की जननेंद्रिय शक्ति से समझते हैं । वही जीवन की शक्ति है। स्त्री पर बस उसकी कृपा होनी चाहिए। अत: अंतापिता अनिवार्य है, क्योंकि पुरुष ही स्त्री को संतुष्ट कर सकता है। स्त्री में जो गहरी संवेदना है, प्रेम का जो स्रोत है, उसका वह पूर्ण समर्पण केवल पुरुष के प्रति करे, वह अपनी मुक्ति की बातें न करे। पुरुष उसको संतुष्ट करके दाता की ऊंचाई और अहं पाता है।

क्लांदे स्त्री से सम्पूर्ण निष्ठा और भक्ति तथा पवित्रता की मांग करते हैं। वह निष्पाप जीवनयापन करे। कैथोलिक ईसाइयत की दृष्टि में इन सारे ऐहिक कार्यकलापों में पुरुष स्वयं को विस्तृत करे। कैथोलिक ईसाइयत की दृष्टि में ये सारे ऐहिक कार्यजगत् जीव की अंतर्व्यापिता के द्योतक हैं। व्रतों के लिए पुरुष जिस सक्रियता का जिक्र करता है, जिस

वैचारिक जगत् की रचना करता है वह कोरी बकवास है। सर्वोपरिता के नाम पर वह एक कोरे मिथक की सृष्टि करता है जो युद्ध, मूर्खता और अमानवीयता को प्रश्रय देता है। यह तो अगम अंतर्व्यापिता है। वास्तव की उपस्थिति, जो सत्य है, अतः सही सर्वोपरिता तो इस अंतर्व्यापिता में वापस लौटाने से ही उपलब्ध होगी। व्रतों पुरुष को सर्वोपरि स्थिति में वापस लौटने को कहते हैं, पर स्त्री को तो यथास्थिति में ही रखते हैं। उसे उन ऊंचाइयों और व्यापकता में जाने की क्या जरूरत?

मांदेलान मानस और वैयक्तिकता को उलझा देते हैं। वे एक स्थापित जगत् की वास्तविकता को नकारना चाहते हैं जबकि ब्रेतों सोचते हैं कि वैयक्तिकता तो जगत् के बीच अंतर्व्यापिता के हृदय में ही खोजी जा सकती है।

जहां तक स्तांदाल का सवाल है, उनकी दृष्टि में स्त्री में न कोई रहस्यमयता है और न ही रहस्यमय मूल्य। वह मानवी है, सर्वोपरिता की ओर अग्रसर होने की क्षमता से सम्पन्न। इस मानववादी लेखक के अनुसार स्त्री-पुरुष, दोनों समान हैं, जो पारस्परिक सम्बंध में पूर्ण होते हैं। किंतु स्त्री को वे अन्या की यथास्थिति में ही रखते हैं। उसको वे जिंदगी का 'चटपटा संवाद' कहते हैं। सबसे मुख्य बात तो यह है कि प्रत्येक दूसरा, जो सीमाओं के अतिक्रमण के लिए प्रयत्नशील है, सर्वोपरिता की चाह रखता मगर अपने हृदय की गहराइयों में बसे हुए अंधेरे को कैद में रहता है। ऐसी गहन अंधेरी रात को वे स्त्री के ऊपर प्रक्षेपित करते हैं। मांदेलान स्वयं अपने आपसे ही घृणा करते हैं। वे स्वयं से भयभीत हैं। भय और क्षुद्रता को वे स्त्री पर प्रक्षेपित करते हैं। अपनी हीनता को छुपाने के लिए वे स्त्री को पैरों तले कुचल कर रख देते हैं। अपने हीन-भावजनित सारे कचरे को वे औरत पर उछाल देते हैं। लॉरेंस सेक्सुअल ग्रंथि से पीड़ित हैं। उन्हें सेक्स के अलावा और कुछ दिखाई ही नहीं देता। स्त्री वह माध्यम है जिसके द्वारा पुरुष अपने पौरुष के प्रति आश्वस्त हो सकता है। वह अपने को पुनर्स्थापित कर सकता है। क्लादे में आत्म-विश्वास की कमी नहीं पर ईश्वर के सम्मुख वे कायर सिद्ध होते हैं। जगत् में पुरुष बड़े साहस के साथ औरत का बोझ उठाने को तैयार हैं। स्त्री उनके लिए पाप-पंक हो या भक्त । वह दोनों सम्भावनाएं रखती है। ब्रेतों औरत को अतींद्रिय स्तर पर रखकर सपने देखना पसंद करते हैं। उनके लिए अपने चेतनशील व्यक्तित्व की अपेक्षा झीने आवरण में लिपटे इस सौंदर्य का ज्यादा महत्त्व है। स्तांदाल स्वयं के प्रति पूर्णरूपेण आश्वस्त हैं। उन्हें स्त्री की उतनी हो जरूरत है, जितनी स्त्री को उनकी। उनकी नजर में नियति एकल है। इस नियति को हासिल करने के लिए उन्हें स्त्री का सहारा चाहिए। पुरुष उनकी इस मानवीय आस्था के प्रति उदासीन है। यह औरत ही है जो अपना हृदय-द्वार खोलती है और अपने प्रेमी को आश्रय देती है।

इन सारे लेखकों की दृष्टि से स्त्री की आदर्श भूमिका तो यह हुई कि अन्या होकर वह पुरुष पर आश्रित रहकर पुरुष के वास्तविक स्वरूप से परिचित कराए। मांदेलान स्त्री में

शुद्ध वहशीपना देखते हैं। लॉरेंस उसे केवल सेक्स का प्रतीक मानते हैं । क्लांदे उसे प्रभु के पास पहुंचाने वाली आत्मजा मानते हैं।ब्रेतों उसे प्रकृति कहते हैं। वे उसकी मासूमियत का परिचय बालिका कहकर देते हैं। स्तांदाल राजनीतिज्ञ थे, अपनी चातुरी के लिए प्रसिद्ध।वे अपनी प्रेमिका को सुसंस्कृत, बुद्धिमान, सहज और स्वच्छंद चाहते हैं। लेकिन उस दुनिया को, जिसको पुरुषों ने बनाया, ये पांचों लेखक केवल पुरुष के लिए ही आरक्षित रखना चाहते हैं। स्त्री की उपयोगिता पुरुषों के लिए है, चाहे वे किसी भी रूप में उसे रखें। पुरुष अपनी मुक्ति तभी पा सकता है, जब स्त्री उनके लिए बलि का बकरा बनने को तैयार हो। स्त्री यह भूल जाए कि वह एक चेतन-प्राणी है, या उसे भी अपनी शक्ति की जरूरत है। मांदेलान को स्त्री पर दया आती है जब वह पुरुष की भोग्या बनती है, किंतु बस दया ही आती है। नायक से नायिका इसलिए महत्त्वपूर्ण लगती है कि प्रेम की बाजी में वह अपना सर्वस्व बड़ी सहजता से दांव पर लगा देती है। वह पुरुष की नियति में सहायक भूमिका है। वह उसको मुक्ति देती है। पुरुप जानते हैं कि इस श्रद्धा-भक्ति और इस अनुराग के वे लायक नहीं, फिर भी सहज भाव से मिली हुई भक्ति वे छोड़ें भी क्यों ? काम्टे ने स्त्री से यही अपेक्षा तो की थी कि वह अहं को भूले और परोपकार तथा परहित में लगे। स्त्री की जो नगण्य भूमिका स्वयं के प्रति रखी गई, या उससे ऐसी आशा की गई, उसको बड़ी चतुराई से छिपा दिया जाता है। अंततोगत्वा अन्या के सारे तत्त्व स्त्री में ही समाहित होते हैं। स्तांदाल की नायिकाएं यदि अपने को खोजती भी हैं तो आज के युग में इस आत्म-केंद्रित खोज का कोई महत्त्व नहीं । स्त्री के उस सौंदर्य एवं प्रेम का महत्त्व नहीं जिसमें वह तो विलीन हो जाए और प्रेमी स्पष्टतः सर्वोपरिता की ओर अग्रसर हो जाए।

मिथ और वास्तविकता

स्त्री-सम्बंधी कहानियों का साहित्य में बहुत महत्त्व है, पर साधारण जीवन में इनका महत्त्व क्या है ? किस सीमा तक ये मनुष्य के आचरण और रीति-रिवाजों को प्रभावित और प्रमाणित करती हैं? इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले इन कहानियों और वास्तविकता के सम्बंधों पर विचार कर लेना उचित होगा।

प्राय: कहानियां अनेक प्रकार की कल्पनाओं से भी मिलती हैं। स्त्रियों से सम्बंधित कहानियों में प्रायः जीवन का एक अपरिवर्तनीय रूप सजाकर रखा जाता है। इस प्रकार मानवता दो वर्गों में विभाजित की गई है। इस तरह की कहानियां मानवीय आदर्शों के जगत् में एक ऐसी वास्तविकता प्रस्तुत :- करती हैं, जिसका अनुभव प्रत्यक्ष रूप से किया जा सकता है और अनुभव के आधार पर जिसके विषय में सोचा जा सकता है। ये कहानियां सत्य, मूल्य, विशेषता, ज्ञान और अनुभव पर आधारित कानून के स्थान पर एक सर्वोपरि विचार, जो समय से परे और अपरिवर्तनीय है, प्रस्तुत करती हैं। प्रत्यक्ष से परे होने के

बावजूद इनमें असीमित सत्य निहित रहता है। इस प्रकार सम्भावित, विविध पहलुओं वाला स्त्रियों का वास्तविक अस्तित्व, एक मिथ अर्थात् कल्पना बन जाता है जो अलग-अलग है और अपरिवर्तनीय है। यदि वास्तविक स्त्री का व्यवहार इस विचार पर आधारित परिभाषा का खंडन करता है तो इसमें दोष स्त्री को दिया जाता है। यह कहा गया है कि स्त्रीत्व एक मिथ्या अस्तित्व है, किंतु उन स्त्रियों में स्त्रीत्व नहीं है जो विरुद्ध आचरण करती हैं। अनुभव के विरुद्ध ये बातें इस प्रकार की कहानी के सम्मुख जम नहीं पातीं । वास्तव में इनकी उत्पत्ति अनुभव से होती है। यह सत्य है कि स्त्री पुरुष से भिन्न होती है। उसकी यह भिन्नता उसके प्रति उत्पन्न इच्छा से ही प्रतीत होती है। इसका आभास आलिंगन-प्रेम आदि में भी होता है, किंतु वास्तविक सम्बंध परस्परता का है जो एक सच्चे नाटक को जन्म देता है । वासना, प्रेम, मित्रता और उनके विपरीत रूप, छल, घृणा और प्रतिस्पर्धा आदि के आधार पर स्थापित दो चेतन व्यक्तियों के बीच का सम्बंध संघर्षपूर्ण होता है। दोनों ही अपने को मुख्य मानते हैं। यदि वे एक-दूसरे को स्वतंत्र व्यक्ति मानें तो एक-दूसरे की स्वतंत्रता स्वीकार कर सकते हैं । इस प्रकार वे घृणा से दूर हटकर एक साथ काम करने की प्रवृत्ति की ओर बढ़ते हैं। स्त्री स्पष्ट रूप से अन्या है, इसमें परस्परता नहीं होती, ऐसा कहना मानो उन अनुभवों को अस्वीकार करना है जिनके अनुसार स्त्री की अपनी सत्ता होती है, क्योंकि वह भी चेतन होती है।

वास्तव में स्त्री भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती है। स्त्री-सम्बंधी प्रत्येक काल्पनिक कहानी उसे अद्वितीय रूप में प्रदर्शित करती है। परिणामस्वरूप इन कहानियों में समता नहीं मिलती और पुरुष को विवेक से विचार करना पड़ता है कि वास्तव में स्त्रीत्व' से कौन-सा भाव व्यक्त होता है ? प्रत्येक स्त्री में इन आदर्श रूपों का कुछ अंश व्याप्त रहता है, इसलिए हर स्त्री यह दावा करती है कि उसमें स्त्रीत्व निहित है। आज का पुरुष भी अपनी महिला संगी का यह भिन्न रूप देखकर आश्चर्य में पड़ जाता है, जिस प्रकार प्राचीन काल के मिथ्या तर्कवादी यह नहीं समझ सकते थे कि एक ही व्यक्ति गोरा और काला कैसे हो सकता है। स्त्री सम्पूर्ण है, यह विचार बहुत पहले सामाजिक परिस्थिति से व्यक्त होता था। स्त्री-पुरुषों के सम्बंध वर्गों में विभिन्न कार्यों में उसी प्रकार स्थित हो जाते हैं जिस प्रकार बच्चों की मानसिक अवस्था का सम्बंध वस्तुओं में स्थित हो जाता है। पुरुष-प्रधान समाज में पैतृक सम्पत्ति को संचित करने की प्रथा थी। उस समाज में सम्पत्ति का स्वामी सम्पत्ति को उत्तराधिकार के रूप में देता था। पुरुष और स्त्री जो सम्पत्तिशालियों से सम्पत्ति प्राप्त करते थे उसे प्रयोग में लाकर अन्यों के मध्य भी पहुंचाते थे। यह वर्ग दुस्साहसियों, दंगेबाजों, चोरों या अनुमान लगाकर कार्य करने वालों को स्वीकार नहीं करता है, पर स्त्रियां अपने काम-सौंदर्य से केवल नवयुवकों को ही नहीं, परिवार के वयस्क पुरुषों को भी संचित सम्पत्ति नष्ट करने के लिए उकसा सकती हैं। उनका यह कार्य कानून के भीतर माना जाता है। कुछ स्त्रियां अपने प्रेमियों को प्रभावित करके धन प्राप्त कर लेती हैं और कुछ उत्तराधिकार द्वारा

सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त करती हैं। यह एक निंदनीय कार्य माना जाता है और ऐसा करने वाली स्त्री बुरी स्त्री कहलाती है। ऐसी स्त्रियां दूसरे रूपों में भी प्रकट होती हैं। ये घर में पिता, भ्राता, पति और प्रेमी के साथ संरक्षिका के रूप में आती हैं। इनका रूप वेश्या का रूप भी हो सकता है, जो धनी आसामी का धन लेती हैं। ये कलाकारों और लेखकों की महान् प्रशंसक भी होती हैं। अस्पेसिया ना मदाम द पम्पाद का यह रहस्यमय रूप समझना वास्तव में कठिन नहीं है, किंतु जब नारी को राक्षसी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तब यह समझना कठिन हो जाता है कि वही नारी काव्य-देवी (ईश्वर-रूप) और भलाई करने वाली का रूप कैसे बन जाती है।

वर्ग-प्रतीक और समूह-प्रतीक को प्रायः विरोधी शब्दों के द्वारा व्यक्त किया जाता है। इस दृष्टि से शाश्वत स्त्री में विरोधी गुणों का होना मानो उसको स्वाभाविक स्थिति है। वह जहां आदर्श माता है, वहां विमाता भी है। इसीलिए कहा जाता है कि माता जीवन-रूप है, माता मृत्यु-रूप है। हर कुमारी कन्या आत्मा-रूप हो या देह-रूप, शैतान के चंगुल में रहती है।

यह स्पष्ट है कि वास्तविकता समाज और व्यक्तियों को दो विरोधी वर्गों से अपनी पसंद छांटने का निर्देश नहीं देती, बल्कि समाज और व्यक्ति अपनी आवश्यकता के अनुसार अपनी पसंद छांट लेते हैं । बहुधा पुरुप जिन संस्थाओं और मान्यताओं को सम्मान देते हैं, स्त्री से भी वे उन्हें सम्मानित करने की आशा रखते हैं। जिन परिवारों में पिता प्रधान है और स्त्री का क्षेत्र घर तक ही सीमित है, उनमें स्त्री को भावना, अंतःरूप और विश्व-व्यापक आदि विशेषणों द्वारा वर्णित किया जाता है। प्रत्येक अस्तित्व के दो रूप होते हैं-विश्व-व्याप्त और विश्वातीत । जब मनुष्य का जीवन में कोई लक्ष्य नहीं रहता या वह अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं करता तब उसका सर्वोपरि रूप नष्ट हो जाता है। वह साधारण धरातल पर आ गिरता है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री का योग कुछ ऐसा ही था, पर यह स्त्री का कार्य-क्षेत्र उसी प्रकार नहीं था जिस प्रकार गुलामी, गुलाम का पेशा नहीं होती। आगस्ट काम्टे ने स्त्री के इस रूप का पूर्ण विकास दिखाया है। यदि यह कहा जाए कि स्त्री निःस्वार्थ होती है तो मानो पुरुष को उससे श्रद्धा प्राप्त करने का पूरा अधिकार मिल जाता है। ऐसा कहना स्त्री को स्पष्ट आदेश देना है या फिर उस पर आदेश लादना है।

स्त्री-सम्बंधी इस मत को उस मत से नहीं मिलाना चाहिए जो कि स्त्री की विशेषता को स्वीकार करता है। विशेषता हमेशा वस्तुनिष्ठ होती है, और व्यक्ति अपने अनुभव द्वारा उसे समझता है। यह मिथ एक सर्वोत्तम विचार है जो कि व्यक्ति की मानसिक शक्ति से परे है। माइकेल लीविस ने अपनी 'ल' एज द' होम' में स्त्री के अंगों को स्वप्न में देखा। वह उन अंगों की विशेषताएं बतलाता है, उन पर कहानी नहीं गढ़ता। स्त्री के शरीर को देखकर उसे आश्चर्य हुआ किंतु जब उसने मासिक-धर्म रक्त-प्रवाह देखा तो उसे घृणा हुई। इस अनुभव में कल्पना का स्थान नहीं है और न यह स्त्री को कामुकता ही बताता है। यदि कोई इसका

वर्णन पत्थरों और फूलों से तुलना करके करे तो यह कहानी गढ़ना नहीं कहलाएगा। यह कहना कि स्त्री-देह रात्रि है और मृत्यु है और या यह कहना कि स्त्री विश्व की जगमगाहट है, आकाश में शून्य में उड़ान भरने के समान है। यह कथन पार्थिव सत्य से बहुत दूर है। इस प्रकार तो पुरुष भी स्त्री के लिए देह है। स्त्री केवल देहमात्र नहीं है। प्रत्येक शरीर का एक विशेष व्यक्ति के लिए विशेष महत्त्व होता है। प्रत्येक अनुभव का भी एक पृथक महत्त्व होता है। इस तरह यह भी सत्य है कि स्त्री और पुरुष, दोनों का ही जन्म प्रकृति द्वारा होता है। स्त्री में अपनी विशिष्ट जाति के गुण पुरुष से अधिक पाए जाते हैं। स्त्री की पाशविकता पुरुष की पाशविकता से अधिक प्रदर्शित होती है यद्यपि जीवन धारण करने के कारण यह गुण दोनों में ही होता है। स्त्री भी मानव-जगत् की प्राणी है। उसको प्रकृति के साथ जोड़ना, कुछ पक्षपात करना होगा।

स्त्री के अलावा भी कुछ ऐसे सत्य हैं जो पुरुष को विशेष सुविधा प्रदान करते हैं। वे पुरुष की सभी सुविधाओं को उचित बताते हैं और उसके अवगुणों को ढंक लेते हैं। प्रकृति ने स्त्री के शरीर को इस प्रकार गठित किया है कि सभी दर्द और दुःख उसके ही भाग्य में हैं। पुरुष को उन दुःखों और दर्दो की तीव्रता नहीं महसूस होती। न. । पुरुष को स्त्री से पशु की तरह काम लेना चाहिए और न उसमें जाग्रत रति-आनंद की इच्छा को नष्ट करना चाहिए।

स्त्री का रहस्यमय रूप ही पुरुष को सबसे अधिक मान्य है। उससे उसे अनेक लाभ होते हैं। जिसका हम वर्णन नहीं कर सकते, उसे 'रहस्यात्मक' बता देते हैं। वास्तव में पुरुष स्त्री को समझ नहीं सकता, इसलिए उसके प्रतिरोध को वह एक व्यक्तिगत मानसिक शिथिलता का रूप देता है। वह अपनी अज्ञानता को स्वीकार नहीं करता। वह स्त्री में अपने से अलग एक रहस्य की उपस्थिति देखता है। इस प्रकार मानो एक अपराधी अपने अहं और आलस्य की भावनाओं को तुष्ट करता है। एक प्रेम की चोट खाया हदय बहुत-सी निराशाओं को भूल जाता है। यदि उसकी प्रेमिका का व्यवहार सनकी का-सा है, उसकी बातें मूर्खतापूर्ण हैं तो वह उसे रहस्यमय कहकर क्षमा कर देता है। स्त्री को रहस्यमय मानने से उसके साथ के नकारात्मक सम्बंधों की भावना को ज्यादा पुष्टि मिलती है जो कीर्केगार्द के मतानुसार आधिपत्य स्थापित करने की भावना से श्रेयस्कर है। ऐसा गूढ अर्थ रखने वाली स्त्री के साथ भी पुरुष अपने को एकाकी महसूस करता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो अपने स्वप्न, प्रेम, आशा, भय और दम्भ के साथ वह अकेला है। बहुत से पुरुषों को स्त्री के साथ वास्तविक सम्बंध में उतना आनंद नहीं मिलता जितना उन्हें उसके बारे में तरह-तरह की कल्पना करने से मिलता है। कभी वे स्त्री को 'पाप' के रूप में देखते हैं, कभी रहस्यमय आनंद के रूप में। वास्तव में इस प्रकार के भ्रम उत्पन्न करने वाले प्राणी के अस्तित्व का आधार क्या है ?

किसी अर्थ में स्त्री रहस्यमय अवश्य है, जिस प्रकार माटरलिंक के मतानुसार सारा संसार ही रहस्यमय है । वह व्यक्ति अपने ही अस्तित्व को जानता है। इस संसार में वह अपने को ही समझ सकता है, दूसरा हमेशा ही उसके लिए रहस्य होता है। पुरुष की दृष्टि में स्त्री इतनी अपारदर्शक है कि वह उसके अनुभवों को समझ नहीं सकता। सहानुभूति भी पुरुष को स्त्री के समीप नहीं ले जाती। स्त्री को रति-सुख का आनंद कैसे मिलता है, रजस्वला होने पर उसे क्या असुविधा होती है, और प्रसव- पीड़ा कितनी तीव्र होती है, वह यह सब नहीं जानता। वास्तव में दोनों ही एक-दूसरे के लिए रहस्य होते हैं। प्रत्येक पुरुष का अपना एक भीतरी स्वरूप होता है, जो स्त्री के लिए बोधगम्य नहीं होता। स्त्री भी पुरुष को काम-इच्छा से अपरिचित रहती है। पुरुष अपने दृष्टिकोण से सम्पूर्ण है। वह हर जगह अपने को 'पूर्ण' देखता है। परस्परता उसे मान्य नहीं । यद्यपि स्त्री पुरुष के लिए रहस्य है, पर वह सोचता है कि स्त्री का वास्तविक रूप ही रहस्यपूर्ण है।

वास्तव में पुरुष की इस धारणा के लिए स्त्री ही जिम्मेदार है। उसका शारीरिक गठन बड़ा ही जटिल है । वह स्वयं अनुभव करती है कि उसका शरीर उसके स्वरूप को व्यक्त नहीं करता। वह अपने अंदर ही किसी विचित्र स्थिति का अनुभव करती है। जीवमात्र में आत्मा और शरीर किस बंधन- सूत्र में बंधा है, यह समझना कठिन है। स्त्री के सम्बंध में तो यह सचमुच जटिल से जटिलतम हो जाता है।

स्त्री को रहस्य इसलिए नहीं कहा गया है कि वह एक भिन्न चेतन जीव है और उसका शरीर भी भिन्न है; स्त्री का अस्तित्व ऐसा नहीं है, जिसे हम पूर्ण मौन, पूर्णतम अंधेरा या फिर पूर्ण रिक्तता कहें बल्कि वह तो एक ऐसी हकलाती हुई उपस्थिति है जो कि अपने रूप को न तो व्यक्त कर सकती है और न स्पष्ट । स्त्री को रहस्य कहते हैं, इसलिए नहीं कि वह शांत और मौन है, बल्कि इसलिए कि उसकी भाषा समझ में नहीं आती। वह उपस्थित है, पर बूंघट के भीतर छिपी है। वह हर निश्चित रूप से परे है। वास्तव में वह क्या है? दैवी अप्सरा, दानवी प्रेरणा या अभिनेत्री? या तो यह सोचा जा सकता है कि इन प्रश्नों का उत्तर पाना कठिन है या कोई भी उत्तर ठीक नहीं होगा क्योंकि स्त्री में ऐसा ही अस्पष्ट गुण है। वह स्वयं मानो अपनी व्याख्या नहीं कर सकती। वह पशु और मनुष्य, दोनों का मिश्रण है।

स्त्री की अस्तित्वगत वास्तविकता का निश्चय कर पाना बहुत परेशानी और असमंजस भरा कार्य है। इसका कारण यह नहीं है कि छिपा सत्य बड़ा ही अस्पष्ट है और उससे पता लगाना कठिन है बल्कि यह कि जिस क्षेत्र में स्त्री विचरण करती है, वहां सत्य नहीं है। हर अस्तित्व जो कुछ करता है, उससे अधिक वह और कुछ नहीं। वह सम्भव सत्य व वास्तविक से परे नहीं है। अस्तित्व के पहले अस्तित्व के मूल तत्त्व परिलक्षित नहीं होते। नितांत व्यक्तित्व के रूप में मनुष्य कुछ भी नहीं है। उसे तो उसके कार्यकलापों द्वारा ही मापा जाता है। किसान-वर्ग की किसी भी स्त्री के लिए हम यह कह सकते हैं कि वह अच्छा

व बुरा काम करने वाली है। किसी भी अभिनेत्री के लिए यह कह सकते हैं कि उसमें बुद्धि-कौशल नहीं है। बाहरी रूप के आधार पर यदि हम स्त्री का अंतर्मन देखना चाहें तो उसके बारे में कुछ भी कहने में असमर्थ रहेंगे क्योंकि इस रूप में उसमें कोई भी ऐसी विशेषता नहीं होती जिसके द्वारा उसका वर्णन किया जाए । स्त्री प्रेम और प्रणय-सम्बंधों में पुरुष की पूर्ण दासी होती है। उसके साथ वैसा ही बर्ताव होता है जैसी वह विश्व में दिखाई पड़ती है। यह विचारणीय विषय है कि स्त्री साथी सहकर्मियों और संग रहने वालों के लिए रहस्य नहीं होती। यदि सेवक और दास पुरुष हो तो वह अपने अधिक उम्र वाले पुरुष और स्त्री की दृष्टि में, और अपने से अधिक सम्पन्न- वर्ग की दृष्टि में एक गौण व्यक्ति ही रहेगा। उसका व्यक्तित्व एक रहस्य में छुपा रहेगा। इसी रूप में स्त्री भी एक रहस्य बनी हुई है।

भाव और भावना को व्यक्त नहीं किया जा सकता। जीद ने कहा है कि भावना के जगत् में यह कहना मुश्किल है कि कौन-सी 'भावना' सच्ची है और कौन-सी काल्पनिक। अमुक प्रेम करता है और अमुक प्रेम में है, इन कथनों में प्रायः अंतर नहीं है। यदि कोई वास्तव में प्रेम में है तब यह कहना कि वह कल्पना करता है कि वह प्रेम करता है मानो उसके प्रेम को कम कर देना है। सत्य और काल्पनिक के बीच का अंतर व्यवहार द्वारा प्रदर्शित होता है। इस संसार में कुछ लोगों की परिस्थिति अच्छी है। उन्हें विशेष सुविधाएं प्राप्त हैं । वे अपने प्रेम को प्रदर्शित कर सकते हैं। वे स्त्री से विवाह करके उसे आर्थिक और अन्य सहारा देते हैं। विवाह द्वारा वें उसे समाज में सम्मान देते हैं। वे उसे उपहार देते हैं। उनकी सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता ही उन्हें ऐसा करने में सहायक होती है। मदाम द विलपारिसी से जब एम. द नोरपोआ बिछुड़ जाता है जो उससे मिलने के लिए 24 घंटों की यात्रा करती है। प्रायः पुरुष व्यस्त रहता है और स्त्री के पास अवकाश रहता है। जो समय वह स्त्री के साथ व्यतीत करता है मानो वह समय उसे देता है और स्त्री वह समय स्वीकार करती है। क्या वह उसे अपना समय आनंद, वासना या मनोरंजन के लिए देता है ? स्त्री पुरुष द्वारा प्रदान किए गए लाभ प्रेम के वशीभूत होकर स्वीकार करती है या स्वार्थ भावना से प्रेरित होकर । क्या उसे अपने विवाह और पंति से प्रेम है? इस सम्बंध में पुरुष द्वारा दिए गए प्रमाण भी बड़े अस्पष्ट हैं। पुरुष प्रेम से वशीभूत होकर विशेष उपहार देता है या दया से वशीभूत होकर? स्वभावतः स्त्री को पुरुष के साथ सम्बंध स्थापित करने में अनेक लाभ होते हैं, पर पुरुष जब स्त्री के साथ सम्बंध स्थापित करता है, तब उसे एक ही लाभ है कि वह उसे प्यार करता है। वह किस सीमा तक प्यार करता है, यह उसके रुख से व्यक्त होता है।

अपने हृदय की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए स्त्री के पास मुश्किल से ही कोई साधन होता है। अपनी मानसिक अवस्था के अनुसार ही वह अपनी भावनाओं को भिन्न-भिन्न रूपों में देखती है। चूंकि स्त्री मौन समर्पण करती है, इसलिए उसका एक निष्कर्ष उतना ही सच्चा होता है जितना कि दूसरा । उन विशेष परिस्थितियों में जिनमें स्त्री को

विशेष सामाजिक और आर्थिक सुविधाएं प्राप्त होती हैं, उनमें 'रहस्य' का रूप भी दूसरा होता है। स्त्री ही केवल रहस्य नहीं होती, पुरुष भी रहस्यमय हो सकता है। वास्तव में रहस्य विशेषण परिस्थिति सापेक्ष होता है। स्त्रियों के लिए ऊंचे उठने के रास्ते बंद हैं, क्योंकि वे कुछ नहीं करतीं, वे अपने को कुछ बना पाने में असमर्थ हैं। वे निरंतर सोचती रहती हैं कि वे क्या हो सकती थीं- और यह विचार उनके हृदय में यह प्रश्न उत्पन्न करता है कि वे क्या हैं? यह एक व्यर्थ प्रश्न है। यदि पुरुष स्त्री के रहस्यमय तत्त्व का पता नहीं लगा सकता तो इसका एकमात्र यही कारण है कि ऐसा कोई रहस्यमय तत्त्व है ही नहीं। संसार में रहने वाली स्त्री का हम संसार से पृथक किसी रूप में वर्णन नहीं कर सकते। उसके रहस्य के पीछे उसकी शून्यता के सिवाय और कुछ भी नहीं छिपा है। हर दलित के सदृश स्त्री भी अपनी वास्तविकता छिपाती है। गुलाम, सेविका और दरिद्र स्त्री ने, जो कि अपने स्वामी पर आश्रित है, पुरुष को देखकर एक अपरिवर्तित मुस्कान देना और एक गूढार्थक मौन रहना सीखा है। वह अपनी वास्तविक भावनाएं और व्यवहार बड़ी सावधानी से छिपाए रखती है। किशोर अवस्था से ही स्त्री को सिखाया जाता है कि वह पुरुष के सम्मुख झूठ बोले, अपनी योजना गुप्त रखे और चालाकी का बर्ताव करे। वह पुरुष के साथ सम्भाषण के समय अपने मुख- मंडल पर एक कृत्रिम भाव रखती है। वह बड़ी ही सतर्क और बनावटी बनी रहती है मानो कोई नाटक कर रही हो।

स्त्री-रहस्य, जिसका वर्णन अनेक काल्पनिक कहानियों में मिलता है, बड़ा गम्भीर विषय है। यह सम्पूर्णतः पुरुषों को कल्पनाओं में निहित है। यह मानना ही पड़ेगा कि गौण चेतनशील जीव का भी अपना अस्तित्व होता है, उसमें भी चिंतन की क्षमता होती है। अब यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि यह चेतर प्राणी भी पूर्ण स्वतंत्र होता है और उसे मुख्य के प्रति खींचता है, जिससे परस्परता नितांत असम्भव मालूम पड़ती है। अपर के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने से भी अन्य रहे क्योंकि इस प्रकार उसका अपना व्यक्तित्व उसकी 'अन्यता' से प्रभावित होगा। यह 'चेतना' विश्व-व्याप्त चेतना से पृथक एक वास्तविक रहस्य है। यह स्वयं में रहस्य है, क्योंकि यह स्वयं के लिए रहस्य है। यह पूर्ण 'रहस्य' है।

यद्यपि यह सत्य है कि स्त्रियां अपने वास्तविक रूप को अप्रकट रखकर रहस्यात्मक बन जाती हैं। चाहे स्त्री 'काली' जाति की हो या पीली जाति की, वह एक रहस्य है, क्योंकि वह गौण है, 'अन्या' है। प्रायः अमरीकन स्त्रियां 'रहस्यमय' नहीं समझी जातीं, बल्कि बड़ी विनम्रता से लोग कह देते हैं कि वे उन्हें समझ नहीं सके । इसी प्रकार स्त्रियां भी कभी-कभी पुरुष को नहीं समझ सकतीं, पर कभी भी पुरुष को 'रहस्य' नहीं कहा जाता। बात यह है कि सम्पन्न अमरीका और पुरुष, दोनों ही स्वामी रूप हैं और 'रहस्य' तो दासों और गुलामों का होता है।

इस 'रहस्य' के वास्तविक रूप के सम्बंध में हमारे विचार बहुत धुंधले हैं। स्त्री की अवस्था वैसी ही है जैसी कि किसी भ्रमोत्पादक वस्तु की। हम ज्यों ही उसे ठीक से देखने की चेष्टा करते हैं, वह अदृश्य हो जाती है। साहित्य कभी भी रहस्यमय स्त्रियों का वर्णन नहीं कर सकता। वे उपन्यास के प्रारम्भ में ही विचित्र, अजनबी और गूढ़-अर्थी प्रकट होती हैं, पर कहानी समाप्त होने के पहले ही वे अपना रहस्य त्याग देती हैं और अंत में बड़ी निर्मल और अनुकूल रूप हो जाती हैं। मीटर चेने की पुस्तकों के नायक स्त्रियों की विचित्र सनक पर आश्चर्य प्रकट करते हैं। कोई भी नायक यह अनुमान नहीं लगा सकता कि नायिका इस प्रकार के कार्यकलाप करेगी। वे सब कुछ सोचा-विचारा पलट देती हैं। एक बार उनके कार्य का प्रारम्भिक रूप सामने आ जाने पर पाठक सहज ही उन्हें समझ लेते हैं। वे समझ जाते हैं कि कौन-सी स्त्री जासूस थी और कौन चोर थी। चाहे लेखक द्वारा कथावस्तु कितने ही कौशल से क्यों न उपस्थित की गई हो, पाठक उसको समझने की क्षमता रखता है। यदि लेखक के पास कला का पूर्ण कौशल और कल्पना हो तो यह स्त्री-रहस्य रहस्य नहीं दिखता, यह तो मृगतृष्णा है, इसके जितने करीब जाओ, यह उतनी पीछे हटती जाती है।

इस प्रकार यह मिथ पुरुष के लिए उपयोगिता की ही दृष्टि से वर्णित किया जाता है। स्त्री-सम्बंधी कल्पना मानो विलासिता है। यह तो तभी प्रकट होती है जब पुरुष अपनी आवश्यकताओं की मांगों से भागता है । सम्बंध जितने अधिक वास्तविक होते हैं, उतनी कम कल्पना और आदर्श रूप की आवश्यकता होती है। मिस्र देश का किसान, मध्य युग का कारीगर, और आज का श्रमिक भी अपने पुरुष- कार्य की आवश्यकतानुसार और दरिद्रता को दृष्टि में रखते हुए, स्त्री से सम्बंध स्थापित करता है। वे सम्बंध इतने स्पष्ट और निश्चित होते हैं कि उन्हें किसी प्रकार सजाने की आवश्यकता नहीं है और न उन्हें शुभ या अशुभ वातावरण देने की आवश्यकता है। उन युगों में और उन सामाजिक वर्गों में, जब मनुष्य के पास काफी अवकाश था, स्त्री के रूप के बारे में अच्छी और बुरी धारणा बनाई। ऐसी कल्पना के लाभ भी थे। लोगों की कल्पनाएं उनकी रुचि प्रदर्शित करती हैं। मनुष्य का जैसा रुख स्वयं अपने अस्तित्व और विश्व के प्रति रहा, उसी के अनुसार उसने स्त्री के रूप की कल्पना की। प्रधान समाज ने अपने कार्य को युक्ति-संगत सिद्ध करने के लिए ही अनुभव-क्षेत्र से बाहर के सर्वोपरि का समर्थन किया है। इस प्रकार इस समाज ने कथाओं और कल्पनाओं के माध्यम से अपने कानूनों और रीति-रिवाजों को बड़े ही सुंदर व प्रभावोत्पादक ढंग में लोगों पर लागू किया। इस प्रकार एक काल्पनिक कथा के माध्यम से एक वर्ग का आदेश सिद्धांत का रूप लेता है जो कि प्रत्येक के लिए मान्य बनता है। इस प्रकार धर्म, परम्परा, भाषा, कहानियां, संगीत और चलचित्रों के द्वारा ये.मिथ उन लोगों तक पहुंचा दिए गए जो पूर्ण रूप से भौतिकवादी हैं। इसमें प्रत्येक अपने नीरस अनुभव को एक उत्कृष्ट रूप दे सकता है। यदि पुरुष उस स्त्री द्वारा छला जाता है जिसे वह प्यार करता है तो वह उसे सनकी और गर्म कहता है, नपुंसक पुरुष उसे दुष्टा का रूप कहता है। ऐसे भी पुरुष

होते हैं जिन्हें अपनी पत्नी का साथ अति आनंददायक लगता है। वे उसे शांति, विश्राम और अच्छी धरती जैसे नाम देते हैं। शाश्वतता, जिसे मानो सौदे पर रखा हो, के प्रति कुछ सम्पूर्ण कहे जाने वाले व्यक्तियों की रुचि को ये कल्पनाएं संतुष्ट करती हैं। अधिकांश व्यक्तियों को ये मान्य भी होती हैं । थोड़ी-सी भावुकता और जरा-सी घबड़ाहट को अनंत सत्य का प्रतिबिम्ब माना जाता है। एक भ्रम बड़े ही सुंदर ढंग से पुरुष के दम्भ को संतुष्ट करता है।

मिथ मानो उस मिथ्या-वस्तुओं का जाल होता है, जिसमें स्थापित मूल्यों' पर आस्था रखने वाले व्यक्ति सहज ही फंस जाते हैं। यहां भी हम देखते हैं कि एक वास्तविक अनुभव के स्थान पर एक मूर्ति स्थापित कर दी गई है, पर यहां निष्पक्ष न्याय की आवश्यकता है। स्त्री का मिथ मानो एक स्वतंत्र व्यक्ति के वास्तविक सम्बंधों को मृगतृष्णा पर आधारित विचार में परिणत कर देता है। लाफोरग्यू स्त्री को देख 'मृगतृष्णा, मृगतृष्णा' चिल्ला उठता है। वह कहता है, "हम तुम्हें समझ नहीं सकते इसलिए हम तुम्हें मार डालेंगे, शांत कर देंगे, आदेश देंगे, तुम्हारी आभूषणों के प्रति जो रुचि है उसे नष्ट कर देंगे, तुम्हें अपना सच्चा साथी बनाएंगे, घनिष्ठ मित्र बनाएंगे, सहयोगी बनाएंगे, तुम्हें दूसरे ढंग से पोशाक पहननी पड़ेगी, केश छोटे कराने पड़ेंगे, और तब हम तुमसे सब कुछ कह देंगे। यदि पुरुष भेष बदलने वाली स्त्री को, जिसे वह प्रतीक मानता है, त्याग दे तो उसका कुछ नुकसान नहीं होगा। अधिकारी वर्ग के स्वप्नों और कल्पनाओं की तुलना में वास्तविकता अधिक सरस लगती है। सच्चे स्वप्न देखने वाले कवि की आंखों को कौतूहल की अपेक्षा स्त्री अधिक आकर्षक लगेगी। वह उसकी कल्पना के लिए एक उदार स्रोत होती है। सामंती वीरता का समय या 19वीं सदी वह समय नहीं है जब स्त्री को बड़ी मूल्यवान सम्पत्ति माना जाता था। यह तो 18वीं शताब्दी का समय है, जब पुरुषों ने स्त्रियों को अपने साथी के रूप में देखा । वास्तव में उस समय स्त्री का रूप बड़ा आकर्षक माना गया। यदि स्त्री को एक मानव माना जाए तो इससे पुरुष के अनुभव तुच्छ नहीं हो जाएंगे और न उनकी विविधता कम होगी। कल्पनाओं को त्याग देना दो सेक्सों के बीच के नाटकीय सम्बंधों को तोड़ देना नहीं होता। इससे स्त्री के अस्तित्व का महत्त्व नष्ट नहीं होता। इस प्रकार यह कविता, प्रेम, साहस, सुखीपन, और स्वप्नों को त्याग देना नहीं होगा। इसका अभिप्राय सिर्फ यह है कि स्त्री का आचरण वास्तविक भावनाओं पर आधारित होना चाहिए।

स्त्री खो गई है। स्त्रियां कहां हैं? आज की स्त्री, स्त्री नहीं है। इन रहस्यमय वाक्यांशों का अर्थ हम समझते हैं। स्त्री का शरीर प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त नहीं और न केवल स्त्री का कार्य पत्नी और माता के रूप में करना ही स्त्री होने का सही परिचय है। काम-क्रिया और मातृत्व धारण करने के नाते स्त्री अपने को एक स्वतंत्र व्यक्ति कह सकती है परंतु सच्चे रूप में स्त्री होने के लिए उसे अपने को अन्या रूप में मानना ही पड़ेगा। आज के पुरुष स्त्री के प्रति दोहरा दृष्टिकोण रखते हैं। वे स्त्री को अपने बराबर का साथी के रूप में देखना चाहते

हैं और साथ ही उसे गौण भी मानते हैं। यह रुख स्त्री को अच्छा नहीं लगता। इन दोनों विचारों में एकरसता नहीं है। स्त्री इन दोनों दृष्टिकोणों के बीच पिसती है। वह अपने को किस विशेष दृष्टिकोण के अनुकूल बनाए, यह समझ नहीं पाती, इसलिए वह संतुलन खो बैठती है। मनुष्य के व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में कोई अंतर नहीं है। पुरुष अपने क्रियाकलापों द्वारा संसार पर जितना ही अधिकार जताता है, उतना ही वह वीर प्रतीत होता है, उसमें मानवीय और मुख्य मान्यताओं का सुंदर समन्वय मिलता है किंतु स्त्री की सफलता मानो उसके स्त्रीत्व के विरुद्ध होती है क्योंकि सच्ची स्त्री हमेशा अन्या और वस्तुनिष्ठ होती है।

सम्भव है कि इस विषय में पुरुष की भावना और काम-वासना को कुछ सुधारा गया हो। एक नए सौंदर्य-शास्त्र का सृजन हुआ है। यदि कुछ दिन लोगों ने स्त्री के हलके नितम्बों और उभारहीन स्तनों को पसंद किया, तो कुछ दिन ऐसे भी रहे जबकि भारी-भरकम शरीर वाली स्त्री पसंद की जाती थी। यद्यपि स्त्री की देह में मांस होना चाहिए, लेकिन यह विवेकपूर्ण ढंग से वितरित होना चाहिए। स्त्री का शरीर हल्का होना चाहिए। चर्बी से भरा होना चाहिए। उसमें लचक होनी चाहिए। उसे मांसल होना चाहिए। ऐसा ही शारीरिक रूप सर्वोपरि के भाव को पुष्ट करता है। स्त्री का शरीर उष्ण कमरे में बढ़े पौधे की तरह पाला हुआ और सूखा-सा नहीं होना चाहिए, बल्कि कारीगर को उस कृति की तरह होना चाहिए, जो जीवन के उतार-चढ़ाव को बर्दाश्त कर सके। स्त्री की पोशाक उसकी व्यावहारिक आवश्यकता है । वह ऐसी नहीं होनी चाहिए जिसे पहनकर स्त्री ही न लगे। इसके ठीक विपरीत देखा जाता है कि ऊंचे और छोटे स्कर्ट पहनने से स्त्री की टांगें और जां दिखाई देती हैं, जैसा कि पहले नहीं होता था। यदि स्त्रियां कार्य-क्षेत्र में उतरें तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उनका स्त्री-सुलभ आकर्षण ही नष्ट हो जाए । स्त्री को एक साथ दो रूपों में, सामाजिक व्यक्ति और काम- वासना शांत करने का साधन, देखना जरा उलझन पैदा कर देता है । स्त्री 'पुरुष' की स्थिति भी ग्रहण करे और पुरुष की चाहत भी बनी रहे- इस सम्बंध में काफी दिनों से अश्लील मजाक किए जाते रहे हैं, लेकिन धीरे-धीरे यह व्यंग्य और अनौचित्य कम होता जा रहा है और एक नए प्रकार का प्रेम- सम्बंध स्थापित हो रहा । शायद यह नया रूप किसी नई कहानी व कल्पना को जन्म देगा।

आज की स्त्री की सबसे बड़ी परेशानी यह है कि वह अपने को 'अभिशप्त' स्त्री और साथ ही समाज में विशेष स्थान प्राप्त स्वतंत्र व्यक्ति के दो रूपों में स्वीकार नहीं कर सकती। यह उसके लिए परेशानी और अशांति का विषय है। इसीलिए तो कभी-कभी स्त्री को खोया हुआ सेक्स कह उसकी जटिल स्थिति की ओर संकेत किया जाता है। उद्धार के लिए प्रयत्नशील रहने की अपेक्षा चुपचाप गुलामी की स्थिति को स्वीकार कर लेना अधिक आसान होता है । जीवित से अधिक मृतक अपने को पृथ्वी के अनुकूल बना लेते हैं। किसी

भी रूप में अतीत की स्थिति को स्वीकार करना न तो वांछित है और न सम्भव। आज जो परिस्थिति आ रही है, यदि पुरुप उसे नि:संकोच स्वीकार कर ले, तो स्त्री भी बिना किसी कष्ट का अनुभव किए उस स्थिति में रहना स्वीकार कर लेगी। तभी मानो लाफोरग्यू की प्रार्थना सार्थक होगी-"ओ युवा नारी ! तुम कब हम लोगों का भाई बनोगी? कय हममें घनिष्ठ भाई-चारे का सम्बंध होगा और शोषण हमारा उद्देश्य नहीं रहेगा। कब हम सच्चे रूप में एक-दूसरे का हाथ पकड़ेंगे?" उस समय ब्रेतों की मेलुसिन पर पुरुष अत्याचार नहीं करेगा। मेलुसिन स्वतंत्र हो जाएगी। वह मानव-जगत् में अपने को पुनः प्राप्त कर लेगी। तब वह पूर्ण रूप से मानव कही जाएगी-जैसा कि रिम्बा ने लिखा है-"स्त्री पर लगे बंधन टूट जाएंगे। स्त्री अपने लिए ही जिएगी। पुरुष उसे स्वतंत्र रूप से रहने देगा।"

द्वितीय खंड : आज की स्त्री
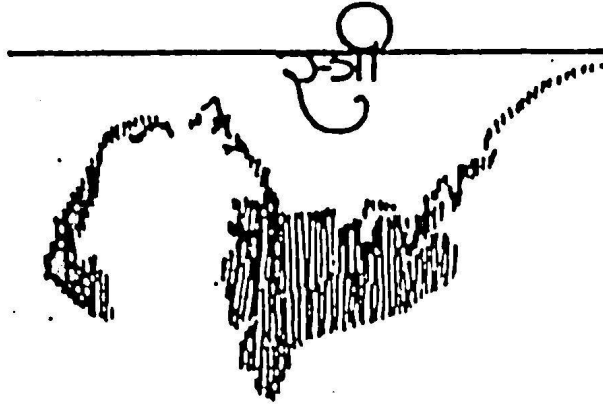
एक : निर्माणकाल

1. बचपन
2. युवती
3. यौन प्रशिक्षण
4. समलिंगी स्त्री

बचपन

औरत जन्म से ही औरत नहीं होती बल्कि बढ़कर औरत बनती है। कोई भी जैविक, मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियंता नहीं होती। पूरी सभ्यता ही इस अजीबोगरीब जीव का निर्माण करती है। पुरुष और हिजड़े के बीच अवस्थित यह जीव स्त्री के रूप में वर्णित होता है। दूसरे की मध्यस्थता ही एक जीव को अन्या ठहराती है। एक बच्चा, जो अपने लिए अवस्थिति है, शायद ही अपने आपको सेक्सुअली समझता है। लड़की हो या लड़का; आंख, हाथ, कान और दूसरे अंगों से संसार को समझता है, अपने सेक्स के माध्यम से नहीं। जन्म का नाटक और मां की कोख से निकलने की पीड़ा, दोनों में समान होती हैं। उसके बाद की शारीरिक विकास तथा विकासजनित अनुभूति और उत्तेजना दोनों में समान होती हैं। दोनों की संवेदना को वस्तु-जगत् की जरूरत होती है। वे अपनी मां की कोमल मांसलता में समान रूप से सेक्सुअल

संतुष्टिः खोजते हैं। लड़की भी लड़के की तरह आक्रामक रूप से मां के साथ खेलती है। दोनों घर में जन्मे नए बच्चे के समान ईर्ष्या करते हैं। बड़ों का प्यार पाने के लिए दोनों लुभाने और अपनी ओर आकर्षित करने के उपाय अपनाते हैं। बारह वर्ष की उम्र तक लड़की अपने भाई की ही तरह मजबूत होती है। उसमें भाई के समान ही मानसिक शक्ति होती है। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसमें वह उससे प्रतियोगिता में पिछड़े। किशोरावस्था के पहले और कई बार बचपन से हम लोगों को एक लड़की, जो अपने सेक्स में ही निर्धारित लगती है, उसका कारण ऐसी कोई रहस्यमय अंत:प्रवृत्ति नहीं होती, जो उसको निष्क्रिय होने को बाध्य करे। यहां हमें यह समझना होगा कि एक लड़की के जन्म के साथ ही दूसरों का उस पर प्रभाव पड़ना शुरू हो जाता है । वस्तुतः दूसरे लोग ही लड़की को शुरू से औरतपन से परिचित कराने लगते हैं।

शिशु के लिए जगत् केवल अंतर्वर्ती संवेदना और अनुभव होता है। वह अब भी पूर्ण की गोद में स्थित रहता है और उसके लिए अब भी दूध की बोतल के साथ मां की गोद में गर्माहट मिलती, है। धीरे-धीरे वह वस्तुओं को अलग-अलग देखना सीखता है। वह उनसे अपनी भिन्नता स्थापित करना चाहता है। उसे इस भिन्नता की पहली पीड़ा मां का दूध छुड़ाए जाने के समय होती है। बच्चे के लिए यह एक संक्रांति है जिसमें अलग-अलग तरह की प्रतिक्रियाएं होती हैं। एक बार मां से अलगाव स्थापित हो जाने पर साधारणतया छह महीने की उम्र में बच्चा दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करने की इच्छा तरह-तरह के हावभाव से प्रकट करता है। दूधमुंहे शिशु की अवस्था से अलग बच्चे के अस्तित्व का सारा नाटक अब शुरू हो जाता है। उम्र बढ़ने के साथ आदमी हमेशा इसी अलगाव से उत्पन्न बिखरेपन की पीड़ा भोगता है। आदमी स्वतंत्र नहीं होना चाहता, क्योंकि स्वतंत्रता उसको तरह- तरह की ऐसी सम्भावनाओं से परिचित कराती है जिनमें से किसी एक को कार्य-रूप में परिणत करने की जिम्मेदारी व्यक्ति पर ही रहती है। आदमी इस जिम्मेदारी से उत्पन्न संत्रास से भागता है। वह अस्तित्व की त्रासदी में स्वतंत्र होने की पीड़ा से मुक्ति चाहता है। वह सम्पूर्ण के हृदय में लौट जाना चाहता है। उसके सारे वैश्विक और सर्वेश्वरवादी सपनों का आधार ही यही है। वह खो जाना चाहता है नींद में, समाधि में या मृत्यु में। अपने इस अलगावित रूप की समाप्ति में वह कभी सफल नहीं होता, किंतु कम-से-कम वह अपने आपको एक ठोस वस्तु के रूप में तो परिवर्तित कर ही लेता है। जैसा कि सार्त्र ने लिखा था कि प्रत्येक दूसरे की नजर हमें एक स्थिर वस्तु में परिवर्तित कर देती है। उस व्यक्ति के सम्मुख हम अन्य हो जाते हैं।

बच्चे के व्यवहार की व्याख्या इसी संदर्भ में की जानी चाहिए। अपने शारीरिक रूप में ही वह दुनिया में अंतिमता, अकेलापन या असहायता का बोध पाता है। इन भावनाओं की क्षतिपूर्ति और इस असहनीयता को जीने के लिए व्यक्ति अपने को अस्तित्व को उन

योजनाओं में परियोजित करता है, जो वास्तविक मूल्यवत्ता के साथ उसे दूसरों के साथ एकात्म करें। आदमी हमेशा अन्य को खोजता है। बच्चा अपनी मां की नजर में अपने आपको एक वस्तु की तरह पेश करता है। बड़ा होने पर वह अपने इस मौलिक त्याग का निवारण दो प्रकार से करता है । वह अलगाव को ही नकारने लगता है या वापस मां की बांहों और गोद में जाने को छटपटाता है। वयस्क लोग उसके सामने ईश्वर की तरह होते हैं। उनकी प्रशंसा बच्चे में जादुई परिवर्तन करती है। कभी वह परी, तो कभी शैतान बन जाता है।

दूसरों को लुभाने और अपना प्रदर्शन करने का बच्चे का तरीका अधिक जटिल होता है। वयस्कों की आंखों का जादू उनकी सनक पर निर्भर करता है। बच्चा अदृश्य हो जाने और बड़ों के साथ आंख-मिचौनी खेलने की चेष्टा करता है। कहते हैं कि हम प्रत्येक कदम पर डगमगाते हैं। कोई बड़ा होना नहीं चाहता। बड़ों के द्वारा गोद में नहीं लिए जाने या पलंग पर नहीं ले जाए जाने पर बच्चे दुखी होते हैं। शारीरिक निराशा और पराजय के कारण वे अकेलापन महसूस करने लगते हैं।

विकास के इस दौर में शिशु लड़की लड़के की अपेक्षा अधिक सुविधा प्राप्त जीव होती है। उन के कुछ ही बढ़ने पर लड़के की अपेक्षा लड़की अधिक प्यार से फुसलाई जाती है। वह मां के आंचल से चिपकी रहती है और पिता उसे गोद में लेकर प्यार से उसके बाल सहलाते हैं । सुंदर कपड़े पहनने वाली और बात-बात में रोने वाली यह नन्हीं गुड़िया बड़ों के द्वारा अधिक सहारा और सुरक्षा पाती है। छोटे लड़के को किसी प्रकार की नाटकीयता या लुभाने की चेष्टा करने पर कहा जाता है कि पुरुष इतना लाड़-दुलार नहीं चाहते, वे बार-बार शीशा नहीं देखते, वे हरदम रोते नहीं रहते। लड़के से आदमी बनने को कहा जाता है। उसे समझाया जाता है कि पुरुष बनने पर ही उसको वयस्क लोगों की प्रशंसा और अनुमोदन मिल सकते हैं। कई लड़के इस प्रतिबंधित स्वतंत्रता की मांग से भयभीत हो जाते हैं। वे सोचते हैं कि यदि वे लड़की होते तो अच्छा था। पहली बार बाल काटे जाने या झबले के बदले पैंट पहनाए जाने पर लड़के बहुत रोते हैं। शुरू में अपनी बहन की तुलना में लड़के को कम सुविधा मिलने के वास्तविक कारण होते हैं। उनकी सुविधाओं को दबाकर रखा जाता है। उनसे जो मांग की जाती है, उसका कारण यह है कि उन्हें भविष्य में महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठा और कार्य संभालने होंगे। पिता अपने छोटे लड़के का हाथ पकड़कर कमरे से बाहर ले जाते हुए कहता है, "अरे, इन औरतों को रहने दो, हम लोग आखिर मर्द हैं।" बच्चे को शुरू से समझाया जाता है कि चूंकि वह लड़का है, इसलिए श्रेष्ठ है। पौरुषीय अहंकार उसमें भर दिया जाता है। हालांकि लड़का शुरू से अपने सेक्स में सहज अभिमान नहीं खोजता किंतु उसमें यह अभिमान उसके आसपास के लोगों द्वारा जमा दिया जाता है। मां और धाय, लिंग-पूजन की परम्परा में अखंड विश्वास रखती हैं। इस प्रकार बच्चे के लिंग को अलग

व्यक्तित्व प्रदान कर दिया जाता है। उसका यह अंग वैकल्पिक अहं बन जाता है। लड़का अपने व्यक्तित्व में जिस वरीयता और उत्कृष्टता को पाता है, वे वास्तव में आस-पास के माहौल द्वारा उसमें भरी जाती हैं। इसके विपरीत छोटी लड़की का भाग्य बिल्कुल अलग होता है। मां और धाय के मन में अपने सेक्स के प्रति कोई कोमलता या पूजाभाव नहीं रहता। एक प्रकार से छोटी लड़की के पास कोई सेक्स अवयव होता ही नहीं। जहां तक लड़की का सवाल है, वह अपने शरीर में कोई कमी नहीं पाती, बल्कि वह स्वयं पूर्ण होते हुए भी अपने आपको जगत् से कुछ भिन्न पाती है। बाह्य परिस्थितिगत कारण उसको अपनी ही नजर में हीन बना देते हैं। जहां तक मनोविश्लेषण का सवाल है, कुछ प्रश्न काफी व्यापक रूप से चर्चित किए गए हैं (सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा है औरत में कैसट्रेशन कम्प्लेक्स' का होना । फ्रायड और ऐडलर के अनुसार चूंकि स्त्री के पास लिंग नहीं है, अत: इसकी कमी के अहसास से वह पुरुप से ईर्ष्या करती है। उसकी यह ईर्ष्या कई रूपों में प्रकट होती है। इसके विपरीत मेरा विचार हैं कि अनेक लड़कियां वर्षों तक पुरुष को शारीरिक संरचना से अपरिचित रहती हैं। उनकी नजर में स्त्री और पुरुष का होना चांद और सूरज के अस्तित्व की ही तरह स्वाभाविक है। शुरू में उनकी उत्सुकता व्याख्यापरक नहीं होती। वे स्त्री-पुरुष की भिन्नताएं कपड़ों और केश- सज्जा की विभिन्न शैलियों को मान बैठती हैं। यहां तक कि हेलेन दोएश कहती हैं कि जब लड़की बहुत छोटी रहती है, तब अपने भाई के सेक्स-अंग से प्रभावित नहीं होती । उसके लिए पुरुष का यह अंग एक अनियमितता या अव्यवस्था हो सकता है। उसमें यह जुगुप्सा पैदा कर सकता है और इसका कोई कारण नहीं कि पुरुष के इस अंग के प्रति छोटी लड़की में ईर्ष्या-भाव रहे तथा अपने शरीर में वह इसकी तीव्र कमी महसूस करे। यदि वह यह अंग चाहती है, तो उसकी यह इच्छा काफी सतही होती है। यह अन्य वस्तुओं की इच्छा की तरह महज एक इच्छा-भर होती है।

इसमें कोई शक नहीं कि मल-त्याग की प्रक्रिया में, खासकर पेशाब करने की प्रक्रिया में, बच्चों साधारण में तीव्र रुचि देखी जाती है। बिस्तर प्रायः गीला करना एक प्रकार का विद्रोह होता है जो बच्चा व्यक्त करता है। पेशाब करने का तरीका प्रत्येक देश में भिन्न-भिन्न होता है। अत: इससे लड़के और लड़की को स्वभावगत भिन्नता का निर्धारण नहीं हो सकता, किंतु समकालीन पश्चिमी समाज में परम्परा यह रही है कि औरत बैठकर और पुरुष खड़े होकर पेशाब करते हैं। मेरा विचार है कि परम्परा और लोगों के व्यवहार द्वारा स्थापित यह भिन्नता ही छोटी लड़की में उसकी सेक्सुअल भिन्नता को संगठित करती है (पेशाब करने में छोटी लड़की को जिस प्रकार फ्रॉक उठानी पड़ती है, झुकना पड़ता है, वह एक लज्जाजनक और असुविधाजनक तरीका होता है। यह लज्जा उस समय और भी गहरी हो जाती है जब उसे अपने आप पर नियंत्रण नहीं रह जाता। लड़के के लिए पेशाब करने की प्रक्रिया एक खेल है, उसके स्वाधीन कारनामों में से एक कारनामा है मानो उसको अपने खेल दिखाने के लिए विशेष सुविधा मिली है। इस स्थिति से लड़के को एक सर्वशक्तिमत्ता

की भावना प्राप्त होती है। फ्रायड इसे प्रारम्भिक महत्त्वाकांक्षा कहते हैं। स्टेकल ने इसकी फिर भी सही रूप से चर्चा की है किंतु डा. कैरेन हार्नी कहती हैं कि सर्वशक्तिमत्ता की यह कल्पना, जो खासकर परपीड़क विशिष्टता लिए हुए होती है, प्रायः पुरुष की मूत्र-धारा से जुड़ी हुई है। यह फैंटेसी पुरुषों में अंत तक बनी रहती है। बचपन में तो यह बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। छोटे लड़के के लिए यह प्रकृति के ऊपर उसकी एक विजय और ऐसा मनोरंजन है, जो उसकी बहन को नहीं मिला।

उपर्युक्त सारे कारणों से पुरुष-सेक्स को प्राप्त महत्ता छोटी लड़की के मन में उसे पाने की इच्छा जगाती है। मनोविज्ञान में ऐसे अनेक उदाहरण दिए गए हैं, जहां स्त्री के जीवन में इस इच्छा के कारण अनिवार्यतः किसी विशिष्टता का जन्म नहीं होता। जहां फ्रायड कहते हैं कि छोटी लड़की को पुरुष-अंग को देखनेमात्र से ही एक प्रकार का आघात लगता है, वहां ऐसा लगता है मानो बच्चे के मानस को जितना युक्तिसंगत समझते हैं, उतना वह होता नहीं। लड़की के जीवन में हीनता-बोध. का कारण केवल पुरुष-अंग का अभाव ही नहीं, बल्कि और भी प्रारम्भिक अनुभवों का वह सिलसिला है, जो बड़े लम्बे समय तक उसके जीवन को प्रभावित किए बिना नहीं रहता। यदि छोटी लड़की शुरू से आत्मरति या प्रदर्शन या अभिभावकों के दमन के कारण यह महसूस करे कि उसके भाई की तुलना में उसको कम प्यार मिला है तो यह अधिक युक्तिसंगत होगा। जीवन में वह जो महसूस करती थी, कौतूहल को शांत करने के लिए जो भाव बार-बार उसे समझाए जाते थे, उनका प्रभाव उसके ऊपर पड़ता है। लड़के का सेक्स लड़की की आंख में सफलता का प्रतीक बन जाता है, क्योंकि लोग उसी के आधार पर लड़के को श्रेष्ठ समझते हैं। लड़का स्वयं भी अपने पौरुष के दर्प से फूला रहता है। लड़की की ईर्ष्या और कुंठा का यही कारण कई बार लड़की कभी अपनी मां को दोषी ठहराती है, कभी पिता को। वह अपने आपको भी अपनी पंगुता के लिए दोष देने लगती है। छोटी लड़की में पुरुष के लिंग का अभाव उसकी नियति का महत्त्वपूर्ण निर्णायक तत्त्व हो जाता है। सबसे बड़ी सुविधा लड़के को जो मिलती है, वह है शरीर में एक ऐसे अंग का होना जिसको वह देख और समझ सकता है तथा कम-से-कम आंशिक रूप से ही सही, जिससे तादात्म्य अनुभव कर सकता है। यह ठीक है कि अंग-विच्छेद का भय लड़के को भी रहता है, किंतु यह ऐसा भय है, जिसको वह दूर कर पाता है, जबकि छोटी लड़की में अपने भीतर- एक अनावश्यक आशंका बनी रहती है। यह आशंका उसमें जीवन-भर बनी रहती है। चूंकि वह अपने भीतर के गुप्त अंग के बारे में बहुत कम जानती है, अत: उसका शरीर अपनी नजर में अभेदक और अपारदर्शी बना रहता है। यौन-जीवन की इस धुंधली रहस्यमयता के प्रति लड़का बड़ी बहादुरी से अपने को परियोजित करता है । यह अंग उसकी शरीर-रचना का प्रतीक बन जाता है । यह अंग उसके अनुभवातीत की ओर जाने की क्षमता की उसकी शक्ति का प्रतीक बन जाता है। यह वह आधार बनता है जिसके द्वारा वह दूसरों को चुनौती दे सकता है या फिर दूसरे से संतुष्टि पा

सकता है; किंतु छोटी लड़की के पास ऐसा कोई अंग नहीं होता, जिसके प्रति वह लड़के की तरह आश्वस्त हो सके। उसको इस लिंगजनित कमी की सम्पूर्ति उसके बहलाने के लिए एक गुड़िया देकर की जाती है और यह आशा की जाती है कि यह गुड़िया उसका वैकल्पिक अहं बन सकेगी। यह एक विचित्र बात है। गुड़िया, जो पूरे शरीर का प्रतिनिधित्व करती है, निष्क्रिय वस्तु है और यही कारण है कि छोटी लड़की अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को इस निष्क्रियता के साथ एकात्म कर लेती है। वह खुद ही जड़ वस्तु का स्थान ग्रहण कर लेती है। लड़का जहां अपने लिंग में स्वायत्त वैयक्तिकता खोजता है, वहीं लड़की अपनी गुड़िया और कपड़ों से लिपट जाती हैं। वह खुद भी अपने आपको एक सुंदर गुड़िया समझने लगती है।

डांट-फटकार और प्रशंसा की सहायता से, शब्द और परिकल्पना की सहायता से, लड़की खूबसूरत और बदसूरत जैसे शब्दों का अर्थ सीखती है। बहुत जल्दी वह सीख जाती है कि खुश करने का अर्थ यह हुआ कि वह तस्वीर की तरह सदा सजी-संवरी रहे, हर समय मनोहारी बनी रहे। वह अपने को तस्वीर की तरह बनाने के लिए खूबसूरत कंपड़े पहनती है, आईने के सामने खड़ी होती है और अपनी तुलना एक खूबसूरत परी से करती है। वह दूसरों को लुभाना और दूसरों से प्रशंसित होना चाहती है। उसकी इस असामयिक आत्मरति का कारण हम रहस्यमय स्त्री-स्वभाव को मान बैठते हैं, किंतु यह केवल शारीरिक संरचना ही नहीं, जो उसके दृष्टिकोण को नियामक है, बल्कि और भी बहुत-सी भिन्नताएं हैं जो उसे लड़के से अलग करती हैं। जहां तक लिंग का सवाल है, इसका महत्त्व लड़की के विकास के साथ कम होता जाता है, इस प्रसंग में बच्चों की प्रारम्भिक पूंजी केवल मल- त्याग की प्रक्रिया तक ही थी। यदि इसका मूल्य बच्चे की दृष्टि में आठ या नौ वर्ष के बाद भी बना रहता है, तो इसका कारण बच्चे के लिंग का उसके पौरुष का प्रतीक हो जाना होता है। तथ्य यह है कि इस बात में शिक्षा और वातावरण का प्रभाव अपरिमित होता है।

नारीत्व की निष्क्रियताजन्य मौलिक विशेषताएं उसके बचपन में ही विकसित हो जाती हैं। यह कहना गलत होगा कि उनकी निष्क्रियता केवल जैविक तथ्य होती है। सच तो यह है कि यह नियति उसके ऊपर उसके अभिभावक, शिक्षक और समाज द्वारा आरोपित होती है। लड़के को सबसे बड़ी सुविधा दूसरों के संदर्भ में अपनी वैयक्तिक स्वतंत्रता को स्थापित कर पाना है। उसका जीवन उसकी स्वतंत्र गतिशीलता में निहित है। पेड़ पर चढ़ने, साथियों से झगड़ने और कठिन खेलों के क्रम में वह शरीर को शक्ति से परिचित होकर प्रकृति पर आधिपत्य हासिल करने के लिए तथा दूसरों से युद्ध करने के लिए शक्ति का प्रयोग एक उपकरण की तरह करना सीखता है. अपने सेक्स की तरह अपनी मांसपेशियों पर भी उसको अभिमान होता है। बचपन से ही वह ठोकरें खाना, दर्द झेलना और आंसुओं को पीना जानता है। वह अपने हाथों में परियोजनाएं लेता है। वह आविष्कार करता है और

साहसपूर्वक अपने पौरुष को भी चुनौती देता है, किंतु मौलिक रूप से उसकी वैयक्तिकता और ठोस वस्तुपरकता में कोई आधारभूत विरोध नहीं होता। कुछ करने के माध्यम से वह अपने अस्तित्व का सृजन करता है।

(इसके विपरीत औरत में शुरू से ही उसकी स्वायत्तता और वस्तुपरकता में एक अंतर्संघर्ष तथा अंतर्विरोध बना रहता है। उसने बचपन से दूसरे को खुश करने के लिए अपने आपको वस्तु रूप में प्रतिपादित करना सीखा है। इसके लिए उसे अपनी स्वायत्तता का त्याग करना पड़ता है। बचपन से ही वह स्वतंत्रता से वंचित रहती है और गुड़िया की तरह व्यवहत । अतः उसकी जिंदगी में एक दुष्चक्र जारी रहता है। स्थितियों और वस्तुओं पर अपनी कमजोर पकड़ और उपकरणों की कमी के कारण वह अपनी वैयक्तिकता को स्थापित करने से घबराती है। यदि एक बार उसको सही ढंग से प्रोत्साहित किया जाए, तो वह भी लड़कों की तरह उत्सुकता, संघर्ष, प्राचुर्य और बाहुल्य प्राप्त कर सकेगी। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि ऐसी शिक्षा एक पिता ही अपनी पुत्री को दे सकता है और जो औरतें पुरुष की देख-रेख में बड़ी होती हैं, उनमें स्त्री के दोष कम पाए जाते हैं, किंतु परम्परा लड़की द्वारा लड़के की तरह बर्ताव करने का विरोध करती है। उसका लड़कों की तरह उठना-बैठना, उसके दोस्तों और शिक्षकों को चौंकाएगा। मां यदि स्वीकार भी कर ले तो भी नानी, दादी, बुआ और मौसियां उस पर पिता के प्रभाव को कम करने में जी-जान से जुट जाती हैं। औरत का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि वह बचपन से केवल दूसरी औरतों के हाथ में प्रशिक्षण के लिए छोड़ दी जाती है। लड़के का भी लालन-पालन मां द्वारा होता है, लेकिन मां के मन में उसके पौरुष के प्रति सम्मान रहता है। लड़का बहुत जल्दी स्त्री-जगत् से भाग खड़ा होता है, जबकि लड़की को उसी जगत् में रहना पड़ता है। मां एक ही साथ अपनी लड़की के प्रति स्नेहशील और विरोधी, दोनों ही होती है। वह अपनी बेटी को अपनी नियति के साथ बांध लेती है। उसमें वह अपना नारीत्व फिर स्थापित करना चाहती है। यह एक प्रकार का स्वयं से प्रतिशोध है।

मां लड़की को अपने संरक्षण में अपनी ही तरह बनाने में पूरी तरह से जुटी रहती है। बहुत उदार मां भी, जो सच में अपने बच्चे के कल्याण के लिए सोचती हैं, यही सोचेगी कि लड़की को सही औरत की तरह बड़ा किया जाए, ताकि समाज में वह पूरी तरह स्वीकृत हो सके । इसलिए उसको लड़कियों के साथ ही खेलने को कहा जाता है। उसे स्त्री-शिक्षक को ही सौंपा जाता है। जब वह बूढ़ी औरतों के बीच रहती है, तब वे उसको उसकी नियति से परिचित कराना नहीं भूलतीं। औरतों गुण लड़की के कानों में उठते-बैठते डाले जाते हैं। लड़की को खाना बनाना, सिलाई, कढ़ाई आदि गृहस्थी के कामों के अलावा विनयशीलता बनाए रखना सिखाया जाता है। उसको फैंसी कपड़े पहनाए जाते हैं। स्टाइल से उसके बाल बनाए जाते हैं, चाहे उसे कितनी ही असुविधा क्यों न हो? कमनीयता और गरिमा के लिए

उसकी सहज गतिशीलता पर अंकुश लगाया जाता है। संक्षेप में उसको अपने से बड़ी औरतों की तरह एक दासी और एक मूर्ति ही बनना है। यह ठीक है कि आजकल युवा लड़की को सामान्य शिक्षा के लिए प्रेरित किया जाता है तथा लड़कों के साथ खेलकूद में भाग लेने को कहा जाता है, किंतु इन सब क्षेत्रों में उससे विशेष सफलता की आशा नहीं की जाती और उसका पहला उद्देश्य सब कुछ आत्मसात करके एक सही स्त्री बनना ही रहता है।

बचपन से मां के सम्पर्क में ही ज्यादा रहने के कारण लड़की मां की सत्ता को ही श्रेष्ठ समझती है। वह मां की नकल करती है। गुड़िया न केवल उसका प्रतिरूप होती है, बल्कि उसकी संतान भी। गुड़िया को डांटने, सजा देने या प्यार करने में वह एक ही साथ स्वयं भी होती है और अपनी मां भी। वह अपने आपको सजा भी देती है और अपने में मां की गरिमा भी स्थापित करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि वह गुड़िया के माध्यम से वैयक्तिक एकात्मकता और अभिपुष्टि का अनुभव करती है। प्रायः उसके इस काल्पनिक जीवन के साथ मां भी जुड़ी रहती है। लड़की गुड़िया के साथ पिता का-सा व्यवहार करती है यानी अपने को पिता मानती है और गुड़िया को बच्चा, किंतु उसकी मातृत्व को यह वृत्ति आंतरिक और रहस्यात्मक नहीं होती। छोटी लड़की यही देखती हैं। वह कहानियों में पढ़ती है और उसको सिखाया जाता है कि बच्चे के लालन-पालन का भार मां के ऊपर ही रहता है। भविष्य में उसको भी यही करना है। बचपन से उसमें मातृत्व की भावना प्रेरित की जाती है। वह यह महसूस करती रहती है कि भविष्य में बच्चे ही उसकी तकदीर बनेंगे, इसलिए वह लड़कों की अपेक्षा अपनी अंदरूनी जिंदगी में ज्यादा रुचि रखती है। खासकर प्रजनन की रहस्यात्मकता के प्रति वह ज्यादा उत्सुक रहती है। बहुत जल्दी वह समझ जाती है कि बच्चे न तो डॉक्टर के बैग से निकलते हैं और न ही चिड़िया के द्वारा लाए जाते हैं, बल्कि वे मां के शरीर से ही उत्पन्न होते हैं। शुरू में बच्चा पैदा करने में वह पिता की भूमिका से अनभिज्ञ रहती है, किंतु उसमें असामयिक परिपक्वता ज्यादा होती है। वह गर्भवती होने की मां की भूमिका को पहचान जाती है और खुद भी बचपन में खेल- खेल में अपना पेट निकालकर चलती है।

लड़के भी मातृत्व की रहस्यमयता के प्रति आश्चर्यचकित और जिज्ञासु रहते हैं। वे भी कल्पना में चीजों की आंतरिकता को गहराई से समझना और महसूस करना चाहते हैं। वे सारे आवरणों के चमत्कार से स्तम्भित रहते हैं। गुड़िया के भीतर गुड़िया, डिब्बे के अंदर डिब्बा, इसी प्रकार की अन्य चीजें, जो अचानक छोटी से बड़ी होती हैं, जैसे कि जापानी फूल जो पानी में तैरते ही फूल जाता है, बच्चों का कौतूहल बढ़ाते हैं। बच्चे खुशी से कह उठते हैं, "अरे, यह तो मां की तरह है।" उनकी दृष्टि में शरीर से बच्चे को निकालना हस्तकला का सबसे बड़ा नमूना है। वे सोचते हैं कि कोई जादुई छड़ी हैं। अनेक लड़के भी

अपने पास जादुई छड़ी की कमी महसूस करते हैं । वे अपने आपको इस कौशल से वंचित समझने के कारण प्रायः चिड़िया के अंडे तोड़ने या तितली के पंख नोचने में आनंद पाते हैं। गुड़िया के खेल के अलावा पारिवारिक जीवन भी लड़की से इसी भूमिका की आशा करता है घर का कामकाज नहीं करने की जहां लड़के को छूट रहती है, वहीं लड़को से छोटे भाई-बहनों की देखभाल और मां का हाथ बंटाने की आशा की जाती है। घर में कैद बच्ची को सुखद स्वतंत्रता से वंचित किया जाता है और बचपन की निश्चितता के बदले उसको समय से पहले बड़ा बना दिया जाता है। इसीलिए वह किशोरावस्था की सीढ़ी पर वयस्क की तरह पांव रखती है। समय से पहले काम के बोझ से दबा एक लड़का अपने को गुलाम महसूस करने लगता है, किंतु लड़की ऐसा नहीं महसूस करती। अपने असामयिक परिपक्वताजन्य बड़प्पन पर उसको अभिमान होता है और वह अपनी जिम्मेदारी बड़ों के साथ बांट लेती है। यह साझेदारी इसलिए सम्भव है कि घर का काम-काज करने में लड़की की दक्षता काफी रहती है, जबकि बाह्य जगत् में काम करने के लिए लड़के को प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ती है। लड़की को छोटी मालकिन की संज्ञा दी जाती है। वह वयस्क स्तर के ज्यादा करीब इसलिए होती है कि अधिकतर स्त्रियां पारम्परिक रूप में कमोबेश बच्ची ही बनी रहती हैं। तथ्य यह है कि लड़की भी अपनी असामयिक परिपक्वता के प्रति सचेत रहती है। वह समझदारी से बात करना पसंद करती है, आज्ञा देती है और मां की बराबरी का स्थान पाने की चेष्टा करती है।

इस सबके बावजूद इस आरोपित नियति को लड़की मुक्तभाव से स्वीकार नहीं कर पाती। जैसे- जैसे वह बड़ी होती हैं, उसको लड़कों की ताकत और जीवंतता से ईर्ष्या होने लगती है। अभिभावक या दादा और नाना इस बात को प्रकट किए बिना नहीं रहते कि लड़की के बदले यदि लड़का होता, तो अच्छा होता। अधिकतर आधुनिक माता-पिता भी लड़की की अपेक्षा लड़का पाना ज्यादा पसंद करते हैं। लड़के के बारे में गम्भीरता और आदर से बात की जाती है। उसको अधिकार दिए जाते हैं। लड़के खेल में लड़की को शामिल नहीं करते। उसको अवमानना करते हैं। उसका मजाक उड़ाते हैं। लड़के को बराबरी का दावा करने वाली लड़की डांट दी जाती है। अतः लड़के के प्रति उसके मन में दोहरी ईर्ष्या होती है। एक तो यह कि लड़के के मन में जगत् के ऊपर विजय पाने की सहज इच्छा रहती है और दूसरे उसकी तुलना में लड़की को हीन अवस्था में रहने के लिए वाध्य किया जाता है। यह सच है कि पेड़ पर चढ़ पाने या सीढ़ियों या मुंडेर पर जाने की मनाही लड़की को दुखी करती है (ऐडलर के अनुसार, ऊंचाई का खयाल ही अपने आपमें बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। किसी भी स्थान में स्थापन या उन्नयन का विचार आत्मिक वरीयता लिए हुए होता है। चोटियों पर जाने का मतलब हुआ साधारण जगत् और साधारण आदमियों से अलगाव और भिन्नता । प्रायः लड़कों के लिए चढ़ाई एक प्रकार की चुनौती होती है। पेड़ की टहनियों तक झुकी छोटी लड़की जब शिखर पर बैठते हुए लड़ने को देखती है, तो वह

अपने आपको लड़के से हीन मान लेती है। अन्य खेलों में भी यही होता है। शारीरिक कमजोरी के कारण लड़की को रुकना पड़ता है। जैसे-जैसे वह बड़ी होती है, घटनाओं को ज्यादा स्पष्ट देख पाती है। मां के साथ उसका तादात्म्य खत्म होने लगता है। पढ़ाई, खेल और संगी-साथियों का साहचर्य उसको मां से दूर ले जाते हैं। इस स्थल पर बाहरी दुनिया में उद्घाटित सत्य उसे अपने प्रति विचार बदलने को बाध्य करता है। व्यावहारिक जीवन में वह पिता की श्रेष्ठ स्थिति देखती है। यदि घर में मां की चलती भी है तो वह जानती है कि मां पिता के नाम पर शासन कर रही है। पिता के नाम के साथ पवित्रता जुड़ी हुई है और उसके माध्यम से ही परिवार बाह्य दुनिया में सम्बंध स्थापित करता है। पिता इस जगत् में ईश्वर की प्रतिमूर्ति है।

इसी बिंदु पर लड़की की स्थिति बिल्कुल बदल जाती है। उससे एक दिन अपनी मां की तरह बनने की आशा की जाती है। पिता की तरह नहीं। लड़का जहां पिता की श्रेष्ठता को एक चुनौती की तरह लेता है, वहीं लड़की एक लाचारी भरी प्रशंसा पिता के प्रति समर्पित करती है। अपनी वैयक्तिकता को बिल्कुल त्यागकर वह समर्पण की वस्तु बन जाती है। पिता के द्वारा प्यार पाने पर लड़की अपने अस्तित्व को चमत्कारिक रूप से न्यायसंगत मानती है। पिता का प्यार पाने पर लड़की अपने को अपराधी व दंडित महसूस करती है और अनेक बार पिता से अलग कहीं और प्रशंसा खोजती है। यह केवल पिता ही नहीं जिसके हाथ में दुनिया की पूंजी रहती है, बल्कि उसकी नजर में पुरुषमात्र की एक गौरवशाली तस्वीर होती है। पुरुय, जो कि उसके पितामह, बड़े भाई, चाचा-मामा, दोस्त, डॉक्टर, पुरोहित हैं, छोटी लड़की को चमत्कृत करते हैं। पुरुषमात्र के लिए वयस्क स्त्री, जो रागात्मक और संवेगात्मक उद्विग्नता दिखाती है, वह अपने आपमें पुरुष को ऊंचाई में जमे रहने के लिए काफी बड़ा आधार होती हैं दुनिया को वास्तविकताएं औरत को पुरुष से हीन अवस्था में ठहराती हैं। सम्पूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथ और साहित्यिक रचनाएं केवल पुरुष की गाथाओं से भरी हैं। यह पुरुष ही था जिसने ग्रीस बनाया, जिसने रोमन साम्राज्य का निर्माण किया तथा फ्रांस आदि देशों और राष्ट्रों का संगठन तथा संचालन किया। यह पुरुष है जो सिल्क, चित्रकला और साहित्यिक उपलब्धियों पर छाया हुआ है। बच्चों की पुस्तकें, कहानियां और परीकथाएं, पुरुष के दृष्टिकोण से ही रचित हैं। ये पुरुष को इच्छा और असीमितता के प्रतीक हैं, जिनमें एक छोटी लड़की की तरह औरत अपना जगत् खोजती है और अपनी नियति पढ़ पाती है।

पुरुष को श्रेष्ठता का कोई अंत नहीं। एक ही जॉन ऑफ आर्क इतिहास में हुई है, जबकि इतिहास अनेक हरक्यूलिस, डेविड, एचिलस, लैंसलाट और नेपोलियनों की गाथाओं से भरा हुआ है। और जॉन ऑफ आर्क भी किसके लिए युद्धरत थी। उसका आदर्श पुरुष माइकेल ही था। आप किसी भी प्रसिद्ध औरत की जीवन-गाथा उलट लीजिए। महान्

पुरुषों की तुलना में उसकी तस्वीर बहुत फीकी मिलेगी और इनमें अधिकतर स्त्रियां पुरुष नायकों को महिमा से ही प्रदीप्त होती हैं । हिव्वा का जन्म आदम का मन बहलाने के लिए हुआ, वह भी उसी की पसलियों की हड्डी से। बाइबिल में भी साहसिक और निर्भीक स्त्रियों की कथाएं कम हैं। उनके कारनामों की तुलना में पुरुष के संस्मरण बहुत अधिक उज्ज्वल लगते हैं। गैर-ईसाई पुरा-कथाओं की देवियां चंचल और सनकी हैं। प्रोमेथियस जहां सूरज की रोशनी स्वर्ग से चुराकर ले आता है वहीं पैंडोरा पाप और दुःख की संदूक खोलने वाली कहानियों में स्त्री की तुलना राक्षसियों और डायनों से की गई है। इनमें कुछ अधिक लुभाने वाली कहानियां परियों, जलपरी और मोहिनी की हैं जो पुरुष के अधिकृत क्षेत्र के बाहर स्थापित रहती हैं, किंतु उनका अस्तित्व वैयक्तिक नहीं होता। मानवीय मामलों में हस्तक्षेप करने के बावजूद इनकी अपनी कोई नियति नहीं। जिस दिन से एंडरसन की छोटी जलपरी औरत हो गई, उसने प्यार करना तो सीख लिया, किंतु पीड़ा ही उसकी नियति हो गई। व्यवहार-जगत् इन बातों की पुष्टि करता है। युवा लड़की यदि अखबार पढ़े, बड़ों की बातचीत सुने तो यही समझेगी कि दुनिया का संचालन पुरुष करता है । राजनीतिक नेता, सेनाध्यक्ष, गवैये और कलाकार, जिनकी वह भक्ति और प्रशंसा करती है, सव पुरुष हैं। पश्चिमी धर्म में परमपिता ईश्वर भी एक पुरुष है। वह एक वृद्ध व्यक्ति है, जिसका पौरुषीय गुण लम्बी सफेद दाढ़ी में प्रकट होता है । देवदूतों का कोई सेक्स न होने पर भी उनके नाम मर्दाना हैं और वे खूबसूरत जवान लड़कों की तरह ही उपस्थित होते हैं। पृथ्वी पर ईश्वर अपने पिता की तरह ही होता है। इस बात में कैथोलिक ईसाई धर्म की लड़की के मानस पर सबसे अधिक दबाव पड़ता है। साध्वी जीसस के पैरों पर गिरकर अपने आपको उनकी नजरों के सामने मिटा देना चाहती हैं। कामनात्मक और रहस्यात्मक भाषा के बीच एक अजीबोगरीब समानता होती है। जीसस के लिए संत थेरेसा लिखती हैं, "ओ मेरे प्रेमी! तुम्हारे प्रेम के माध्यम से, तुम्हारे अव्यक्त चुम्बनों से मैं प्रार्थना करती हूं. कि तुम मेरे ज्वलंत उद्गारों को अपने हदय में स्थान दो प्रभु! मैं तुम्हारे प्रेम को शिकार हो जाऊं।" इन उदगारों को सेक्सुअल नहीं मानना चाहिए। जब स्त्री की सेक्सुअलिटी विकसित होती है, तब वह धार्मिक भावनाओं पर भी छा जाती है। बचपन के प्रभाव के कारण औरत पुरुष को ही संबोधित करती है। स्त्री का प्रेम उन्हीं अनुभवों की अभिव्यक्ति है, जिनमें एक सचेत ईगो अपने आपको दूसरे व्यक्ति की चेतना के सामने वस्तुरूप में उपस्थित करता है और ऐसा करते हुए वह चर्च की छाया में एक निष्क्रिय आनंद पाता है।

झुका हुआ सिर, हथेलियों में छिपा हुआ चेहरा । औरत चाहती है त्याग का चमत्कार। घुटनों पर चलकर वह स्वर्ग की सीढ़ियां चढ़ती है। प्रभु की बांहों में समर्पित होकर वह अपने लिए देवत्व खोज लेती है। इस चमत्कारिक और अद्भुत अनुभव में वह अपना जागतिक भविष्य खोजती है। एक छोटी लड़की होने के नाते वह दिवा स्वप्न देखती है कि कैसे पुरुष की बांहों में अपने को खोकर महिमा के स्वर्ग में पहुंचा जा सकता है। ऐसे प्यार

की उसको केवल प्रतीक्षा करनी है। ऐसे प्यार के लिए औरत एक सोई हुई खूबसूरती है, सिंड्रेला, स्लोव्हाइट। ये सब वही पात्र हैं, जो प्रतीक्षा करते अपनी नियति पढ़ पाती है।

पुरुष को श्रेष्ठता का कोई अंत नहीं। एक ही जॉन ऑफ आर्क इतिहास में हुई है, जबकि इतिहास अनेक हरक्यूलिस, डेविड, एचिलस, लैंसलाट और नेपोलियनों की गाथाओं से भरा हुआ है। और जॉन ऑफ आर्क भी किसके लिए युद्धरत थी। उसका आदर्श पुरुष माइकेल ही था। आप किसी भी प्रसिद्ध औरत की जीवन-गाथा उलट लीजिए। महान् पुरुषों की तुलना में उसकी तस्वीर बहुत फीकी मिलेगी और इनमें अधिकतर स्त्रियां पुरुष नायकों को महिमा से ही प्रदीप्त होती हैं । हिव्वा का जन्म आदम का मन बहलाने के लिए हुआ, वह भी उसी की पसलियों की हड्डी से। बाइबिल में भी साहसिक और निर्भीक स्त्रियों की कथाएं कम हैं। उनके कारनामों की तुलना में पुरुष के संस्मरण बहुत अधिक उज्ज्वल लगते हैं। गैर-ईसाई पुरा-कथाओं की देवियां चंचल और सनकी हैं। प्रोमेथियस जहां सूरज की रोशनी स्वर्ग से चुराकर ले आता है वहीं पैंडोरा पाप और दुःख की संदूक खोलने वाली कहानियों में स्त्री की तुलना राक्षसियों और डायनों से की गई है। इनमें कुछ अधिक लुभाने वाली कहानियां परियों, जलपरी और मोहिनी की हैं जो पुरुष के अधिकृत क्षेत्र के बाहर स्थापित रहती हैं, किंतु उनका अस्तित्व वैयक्तिक नहीं होता। मानवीय मामलों में हस्तक्षेप करने के बावजूद इनकी अपनी कोई नियति नहीं। जिस दिन से एंडरसन की छोटी जलपरी औरत हो गई, उसने प्यार करना तो सीख लिया, किंतु पीड़ा ही उसकी नियति हो गई। व्यवहार-जगत् इन बातों की पुष्टि करता है। युवा लड़की यदि अखबार पढ़े, बड़ों की बातचीत सुने तो यही समझेगी कि दुनिया का संचालन पुरुष करता है । राजनीतिक नेता, सेनाध्यक्ष, गवैये और कलाकार, जिनकी वह भक्ति और प्रशंसा करती है, सव पुरुष हैं। पश्चिमी धर्म में परमपिता ईश्वर भी एक पुरुष है। वह एक वृद्ध व्यक्ति है, जिसका पौरुषीय गुण लम्बी सफेद दाढ़ी में प्रकट होता है । देवदूतों का कोई सेक्स न होने पर भी उनके नाम मर्दाना हैं और वे खूबसूरत जवान लड़कों की तरह ही उपस्थित होते हैं। पृथ्वी पर ईश्वर अपने पिता की तरह ही होता है। इस बात में कैथोलिक ईसाई धर्म की लड़की के मानस पर सबसे अधिक दबाव पड़ता है। साध्वी जीसस के पैरों पर गिरकर अपने आपको उनकी नजरों के सामने मिटा देना चाहती हैं। कामनात्मक और रहस्यात्मक भाषा के बीच एक अजीबोगरीब समानता होती है। जीसस के लिए संत थेरेसा लिखती हैं, "ओ मेरे प्रेमी! तुम्हारे प्रेम के माध्यम से, तुम्हारे अव्यक्त चुम्बनों से मैं प्रार्थना करती हूं. कि तुम मेरे ज्वलंत उद्गारों को अपने हदय में स्थान दो प्रभु! मैं तुम्हारे प्रेम को शिकार हो जाऊं।" इन उदगारों को सेक्सुअल नहीं मानना चाहिए। जब स्त्री की सेक्सुअलिटी विकसित होती है, तब वह धार्मिक भावनाओं पर भी छा जाती है। बचपन के प्रभाव के कारण औरत पुरुष को ही संबोधित करती है। स्त्री का प्रेम उन्हीं अनुभवों की अभिव्यक्ति है, जिनमें एक सचेत ईगो

अपने आपको दूसरे व्यक्ति की चेतना के सामने वस्तुरूप में उपस्थित करता है और ऐसा करते हुए वह चर्च की छाया में एक निष्क्रिय आनंद पाता है।

झुका हुआ सिर, हथेलियों में छिपा हुआ चेहरा । औरत चाहती है त्याग का चमत्कार। घुटनों पर चलकर वह स्वर्ग की सीढ़ियां चढ़ती है। प्रभु की बांहों में समर्पित होकर वह अपने लिए देवत्व खोज लेती है। इस चमत्कारिक और अद्भुत अनुभव में वह अपना जागतिक भविष्य खोजती है। एक छोटी लड़की होने के नाते वह दिवा स्वप्न देखती है कि कैसे पुरुष की बांहों में अपने को खोकर महिमा के स्वर्ग में पहुंचा जा सकता है। ऐसे प्यार की उसको केवल प्रतीक्षा करनी है। ऐसे प्यार के लिए औरत एक सोई हुई खूबसूरती है, सिंड्रेला, स्लोव्हाइट। ये सब वही पात्र हैं, जो प्रतीक्षा करते हैं और समर्पण करते हैं। कहानियों और लोक-गीतों में जवान आदमी औरत की खोज में जाता है। वह राक्षस से युद्ध करता है। वह भयंकर जीव-जंतुओं को मार गिराता है और अंत में राजकुमारी को किसी बंद किले से, किसी महल के कोने से या किसी गुफा से प्राप्त करता है। राजकुमारी पत्थरों से बंधी हुई कैद, गहरी निद्रा में, बस केवल प्रतीक्षा करती है।)

उपरोक्त विश्लेषण से ऐसा लगता है, औरत का सबसे बड़ा कर्तव्य पुरुष को अपनी ओर आकृष्ट करना ही है। साहसी और उत्साही नायिका भी अंततः पुरुष की बांहों में ही समर्पण करती है। पुरुष- समाज में सौंदर्य के अतिरिक्त उसके किसी दूसरे गुण की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। औरत चाहे राजकुमारी हो, चाहे चरवाहिन। प्रेम और सुख पाने के लिए उसका सुंदरी होना अनिवार्य शर्त है। कुरूपता और सादगी बड़ी क्रूरता से बदमाशी के साथ जोड़ दी जाती हैं । कुरूप लड़की अभागी ही समझी जाती है। रचनाओं में नायिका शुरू में खूबसूरत लेकिन दुःखी दिखाई जाती है। प्रेम और पीड़ा के समीकरणों से औरत समझ जाती है कि दयनीय होकर ही वह नायक को पा सकती है। वह आत्मपीड़न में ही रुचि लेने लगती है। इस प्रकार आहत और अपमानित नायिकाओं के शहीदाना उदाहरणों से लोक-कल्पना भरी हुई है।

छोटी लड़की प्रायः यही सपना देखती है कि अब वह प्यार पाने योग्य हो गई है। वह नौ और दस वर्ष की उम्र में ही वयस्क हो जाने की चेष्टा करती है, किंतु वह वास्तविक कामना के अनुभव को नहीं पाना चाहती । सेक्स के प्रति उसमें केवल एक कौतूहल भरा होता है और उसके सपनों के साथी दिवा-स्वप्न में उसे निष्क्रियता सिखाते हैं, किंतु वह भी एक मानव-जीव ही हैं। स्थितियों के बीच उसे यह पता चल जाता है कि अपने आपको औरत बनाने के लिए उसे स्वयं को पंगु बनाना होगा।

लड़की का प्रारम्भिक जगत् मां तक ही सीमित रहता है । प्रायः लड़की का सहज उत्साह और खेल में आनंदित होकर हंसना-बोलना मां के द्वारा नियंत्रित किया जाता है। मां के मन में बेटी के प्रति एक दबा हुआ आक्रोश होता है। मां एक तरह से बेटी को अपना प्रतियोगी

मानती है। मां बेटी को अपनी ही तरह बनाने की कोशिश करती है। इस स्थिति में लड़की प्रायः विद्रोह कर उठती है। यह विद्रोह तब और अधिक होता है जब मां को बेटी को अपेक्षा कम सम्मान मिलता है। यह मां ही है जो प्रतीक्षा करती है, शिकायत करती है, रोती है और फसाद खड़ा करती है। यह ऐसी भूमिका है जिसके लिए रोजमर्रा की जिंदगी में मां को कोई प्रशंसा नहीं मिलती। वह पीड़ित रहती है। कर्कशा के रूप में उससे नफरत की जाती है। उसकी तकदीर मानो एक ही घटना के बार-बार घटने की निरंतरता है। उसकी जिंदगी कहीं पहुंचती नहीं। गृहस्थी में उसकी भूमिका इतनी स्थापित है कि अब कोई परिवर्तन या विकास सम्भव नहीं होता। अपनी बेटी के लिए वह निषेध और अवरोध है। बेटी अपनी मां की तरह नहीं होना चाहती। वह उन महिलाओं से प्रभावित होती है जो अपनी दासता से मुक्त हो चुकी हैं। ऐसी महिलाएं उसकी श्रद्धा और भक्ति तथा प्रशंसा की पात्र होती हैं, जैसे अभिनेत्रियां, शिक्षिकाएं और लेखिकाएं। वह खेलकूद और पढ़ने में जुटी रहती है। वह पेड़ पर चढ़ती है, कपड़े फाड़ती है, लड़कों की तरह जोखिम लेती है। प्राय: उसकी एक अंतरंग सहेली होती है, जो उसका विश्वास करती है। प्रायः दोनों के बीच किसी एक का एक भाई भी होता है जो कि त्रिकोण का निर्माण करता है। इस तरह की दोस्ती धुंध में लिपटी होती है, और कहा जा सकता है कि इस उम्र में बच्चे स्वभाव से गोपनीयता पसंद करते हैं । अत्यंत साधारण बातों को भी जब लड़की गुप्त रखना पसंद करती है तो यही समझ में आता है कि उसकी यह गोपनीयता उसको महत्त्वपूर्ण बनाती है। वह दिलो-जान से दूसरों से ऐसी ताकत पाने की चेष्टा करती है जिससे उसको वयस्कों की दुनिया में प्रवेश मिले। अपनी सहेलियों के बीच वह लड़कों का मजाक उड़ाती है और अपना एक अलग दल बना लेती है।

लड़की अपने दल में खुश नहीं रहती। जैसे शराबी अपने दल में रहते हुए भी अपने साथियों के प्रति अवज्ञा का भाव रखते हैं और उनके साथ नाम जुड़ने से हीनता महसूस करते हैं तथा बड़ी जल्दी धर्म-परिवर्तन के लिए तैयार हो जाते हैं, उसी प्रकार लड़कियां भी लड़कों के दल में शामिल होना चाहती हैं, उनकी स्वीकृति और प्रशंसा के लिए ललकती हैं। उन्हें औचित्य, शालीनता और मर्यादा के नाम पर लगाए गए बंधन, घर की सीमा और पहनावे में परिवर्तन अच्छे नहीं लगते। हर लड़की अपने दिल में लड़का होने की चाहत रखती है, जबकि हर लड़का यहां तक कि प्लेटो जैसा महान् दार्शनिक भी यह कहते हुए सुना गया, "यदि वह लड़की होता, तो बेहद संत्रस्त होता।" हैवलाक ऐलिस के अनुसार, सौ में एक व्यक्ति लड़की होना चाहता है, जबकि 75 प्रतिशत लड़कियां लड़का होना चाहती हैं। कार्ल पिपैल द्वारा किए गए एक शोध के अनुसार इसके कारण निम्न हैं : लड़कियों को लड़के ज्यादा खुशकिस्मत लगते हैं...औरत की जगह उनको पीड़ा नहीं भोगनी पड़ती...मेरी मां मुझसे ज्यादा प्यार करती...लड़का ज्यादा रुचिकर काम पाता है...उसको पढ़ने का शौक ज्यादा है, मैं लड़कियों को हरा सकती...मुझे लड़कों से भयभीत नहीं होना पड़ता...लड़कों

के खेल ज्यादा रुचिकर हैं...कपड़ों की चिंता लड़कियों को बेहद सताती है । कपड़े खराब न हो जाएं, दाग न लग जाए, कपड़े लड़कियों की सहजता को अवरुद्ध करते हैं।

लड़की को अपने ही वर्ग से घृणा होती है। आरोपित तौर-तरीकों को वह नकारना चाहती है। वह अच्छे कपड़े नहीं पहनना चाहती । वह घर-गृहस्थी के कामों में दिलचस्पी नहीं लेना चाहती। जो भी बातें उस पर औरतपने की तैयारी में लादी जाती हैं, उन सबका वह विरोध करती है। लड़का न होने की अपनी इस वंचना को लड़कियां न केवल अपने प्रति अन्याय समझती हैं, बल्कि अपने पूरे वर्ग को इस अन्याय का शिकार पाती हैं। जिंदगी के प्रति लड़कियों के उत्साह को कम किया जाता है। उनकी ताकत नर्वसनेस में परिणत हो जाती हैं। उनकी निष्क्रिय और तंद्रिल कार्यावस्था उनकी प्रचुर शक्ति का अवशोषण नहीं कर सकती। परिणामस्वरूप वे बोर होती हैं और बोरियत तथा हीन अवस्था की क्षतिपूर्ति रोमांटिक सपने देखकर पूरा करती हैं। दिवा-स्वप्नों में यह सरल पलायन उनको एक स्वाद दे जाता है, जिससे उनमें वास्तविक का बोध नहीं रह जाता। संवेग को वे अनियंत्रित उन्माद में, काम को केवल बात में और प्रायः गम्भीर शब्दों और विचारों को बकवास में परिणत कर देती उपेक्षित और गलत समझी जाने के कारण लड़कियां आत्मरति के काल्पनिक खयालों में सुकून खोजती हैं। वे अपने को रोमांटिक कहानियों की कभी सुखी तो कभी दु:खी नायिका समझती हैं। स्वाभाविक ही है कि वे छिछोरी और नाटकीय बनी रहें । उनकी ये कमियां किशोरावस्था में और भी अधिक स्पष्ट हो जाती हैं। उनका यह विद्वेष प्रकट होता है, शिकायतों और आंसुओं में। उनको रोना अच्छा लगता है। इन आंसुओं का स्वाद अनेक वयस्क महिलाओं के जीवन में देर तक बना रहता है। उसका सबसे बड़ा कारण तो यह है कि अधिकतर महिलाएं शहीद होना पसंद करती हैं। उनकी यह शहादत जहां उनकी कठिन स्थिति का विरोध है, वहीं दूसरी ओर अपने आपको आकर्षण का अपना केंद्र बनाने का तरीका भी बनती है।

अधिकतर लड़कियों के जीवन का नाटक पारिवारिक सम्बंधों से ही रचा जाता है, जिसमें कभी वे अपनी मां से सम्बंध तोड़ती हैं, कभी उससे चिढ़ती हैं, तो कभी उसकी सुरक्षा चाहती हैं। वे पिता के प्रेम पर एकाधिकार चाहती हैं। वे ईर्ष्यालु, संवेदनशील और अधिकार जताने वाली होती हैं । प्रायः अपने दोस्तों के सामने वे कहानियां गढ़ती हैं। वे सोचती हैं कि मां-बाप की कोई गुप्त जिंदगी है। प्रायः वे पिता को दु:खी और गलत समझा गया पाती हैं। वे सोचती हैं कि पिता को पत्नी में आदर्श साथी नहीं मिला, बल्कि अपनी लड़की में वह यह भाव पा सकता था। फंतासी, त्रासदी, झूठा उत्साह और बेतुके व्यवहार के कारण औरत की आत्मा में न खोजकर उसके बचपन के वातावरण और उसकी परिस्थितियों में खोजे जाने चाहिए।

वास्तव में यह एक बड़ा विचित्र अनुभव है कि एक अनुभवातीत विषयी, जो निरपेक्ष चेतना है, अपनी हीनता को पूर्ण निर्धारित सारतत्त्व के रूप में अपने स्वभाव में निर्धारित पाए। यह विचित्र अनुभव है कि अपनी एकलता में व्यक्ति अपनी अन्यता अथवा दूसरापन पहचाने । जिंदगी पर परवान चढ़ती हुई लड़की बहुत जल्द ही समझ जाती है कि औरत होना किसे कहते हैं । उसका दायरा होगा सीमित, निर्धारित। वह कितनी भी ऊंची उड़ान भरे, हमेशा सिर टकराने को छत होगी। दीवारें राह रोकेंगी। मसीहा पता नहीं, कहां दूर किसी स्वर्ग में होगा, पर ये छोटे-छोटे मसीहे, जो औरत की दुनिया का संचालन और निर्धारण करते हैं, बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

टीक यही मानसिकता हम अमरीकन नीग्रो में भी पाते हैं। रिचर्ड राइट की पुस्तक 'नेटिव सन' में नायक बड़ी कड़ुआहट से अपनी जिंदगी के आखिरी वक्त में यह निर्धारित और सुस्पष्ट हीनता महसूस करता है। दूसरापन उसकी काली चमड़ी पर गोद दिया गया है। वह आकाश में उड़ते हवाई जहाजों को देखता है, लेकिन उनमें उड़ नहीं सकता।

औरत तथा एक नीग्रो में मौलिक फर्क तो यह है कि जहां नीग्रो विद्रोह की भावना के साथ समर्पित होता है, बड़ी-से-बड़ी सुविधा में भी क्रांति की भावना बनाए रखता है, वहीं औरत को सह- अपराधिता की प्रेरणा मिलती है। जैसा कि पहले भी कहा गया है, औरत में जहां प्रामाणिक स्वाधीनता की ललक और चाह है, वहीं उसमें स्वयं को चुराने और पलायन और अप्रामाणिक चाह भी भरी हुई है। अभिभावक और शिक्षक निरंतर निष्क्रियता का महत्त्व एवं लाभ छोटी लड़की को समझाते रहते हैं। उसको बचपन से यह सिखाया जाता है कि बस तुम प्रतीक्षा करो, सुख अपने आप मिलेगा। इस निष्क्रिय भूमिका में लड़की बिना किसी विरोध के उस नियति को स्वीकारने की तैयारी कर रही होती है, जो बाहर से उस पर लादी जा रही है। इस स्थिति की आशंका से वह भयभीत होती है। छोटा लड़का, चाहे महत्त्वाकांक्षी हो, भीरु हो या बेवकूफ, एक खुले हुए सम्भव भविष्य का सामना करेगा, जिसमें बहुत कुछ आकस्मिक रूप से उसके सामने होगा। आकस्मिकता का सामना करने के लिए वह पूरी तैयारी करता है जबकि लड़की की सम्भावित भूमिकाएं लिखी जा चुकी हैं। उसको पत्नी और मां बनना है, बच्चे पैदा करने हैं, गृहस्थी चलानी है। जैसा उसने अतीत में अपने आसपास देखा-पाया, वैसा ही भविष्य बनाना है। दिन-प्रतिदिन इसी पहचान भरे भविष्य को वह खोलती है। बिना कुछ बनाए जिंदगी को समझने की उत्सुकता उसमें भी है। जिंदगी को समझने की उत्सुकता के बावजूद लड़की जिंदगी से डरती है। उसे वे मोड़ पहले से दिखते हैं, जिनकी ओर उसकी जिंदगी अविरल हर दिन खिसकती जाएगी।

उपरोक्त विवेचन से साबित होता है कि छोटी लड़की अपने भाई की तुलना में सेक्स की रहस्यमयता के प्रति क्यों इतनी उत्सुक रहती है। यह ठीक है कि लड़के भी इन मामलों में गहरी रुचि खते हैं, किंतु उनकी चिंता का विषय पिता या पति के रूप में उनकी भूमिका

नहीं है। औरत के लिए शादी और मातृत्व उसकी सम्पूर्ण नियति बन जाते हैं और इनकी झलक पाते ही उसका शरीर उसकी ही नजर में घृणित हो जाता है। मातृत्व का जादू छिन्न-भिन्न हो जाता है। और लड़की समझ जाती है कि बच्चे कैसे पैदा होते हैं। यह विचारमात्र उसे दहशत से भर देता है। यह तरह-तरह के प्रश्न करती है। सबसे परेशान करने वाला प्रश्न तो यह है कि बच्चा पैदा कहां से होता है, हालांकि उससे किसी ने प्रसव- -पीड़ा का जिक्र नहीं किया पर इतना तो वह समझ जाती है कि किसी भी प्रकार की व्याख्या उसको सहारा नहीं देगी। गर्भस्थ उदर का फूलना, विदीर्ण होना या रक्त-स्राव आदि बहुत-सी घटनाएं हैं, जो उसको परेशान करती रहती हैं, जिनसे वह भयाक्रांत रहती है। लड़की जितनी अधिक कल्पनाशील होगी, उतनी ही इन खयालों से सहमेगी। बड़ों के समझाने से भी उसकी परेशानी कम नहीं होती और प्रायः प्रजनन के सम्बंध में वह अपने से बड़ों के मुख से झूठ ही सुनती है।

जन्म और गर्भ का दैहिक पक्ष बहुत गम्भीर समझा जाता है। यह पक्ष पति-पत्नी के बीच दैहिक रूप में घटता है। खून का रिश्ता, खून की पवित्रता, गंदा खून । ऐसी बहुत-सी बातों से वह समझने लगती है कि विवाह के साथ रक्त का एक खास निजी रूपांतरण होता है। अब तक जहां दैहिक भूगोल मल-त्याग की क्रियाओं से सम्बंधित रहता था, वहीं अब लड़की समझती है कि स्त्री-पुरुष के बीच एक घिनौना सम्बंध होता है। सेक्सुअल क्रियाएं, उसकी नजर में एक घिनौना रूप ले लेती हैं। बचपन में उसे अपरिचितों से मिलने से मना किया जाता है। सिनेमा हॉल या गली-कूचों में उसके साथ कभी-कभी जो बर्ताव हो जाता है या कोई बीमार व्यक्ति अपना काम-प्रदर्शन करता है, उसके मन में एक जुगुप्सा-भाव पैदा हो जाता है। घर में मां और पिता के किसी टकराव की वजह से मां का हिस्टीरिकल होना छोटी लड़की की दुनिया को हिला जाता है। जब उसको सबसे पहले औरत और पुरुष का सेक्सुअल सम्बंध बताया जाता है, तब वह विश्वास नहीं कर पाती। मेरे माता-पिता के बीच ऐसा ही कुछ घटा था, यह जानकारी उसे एकदम से दहला जाती है।

दिखने में बड़े सौम्य और जिंदगी को युक्तिसंगत तरीके से लेने वाले सभ्य लोग एकाएक कैसे जानवर बन जाते हैं ? एक असहजता लड़की के मन में समा जाती है और यह घटना तथा ज्ञान उसके लिए दूध-छुड़ाई की घटना से भी ज्यादा बोझिल और पीड़ादायक हो जाते हैं, क्योंकि अब वह न केवल अपनी मां के आंचल से अलग हो रही है, बल्कि उसके चारों ओर का एक सुरक्षित जगत् भर-भराकर गिर पड़ता है। वह अकेली रह जाती है अंधेरै भविष्य का सामना करने के लिए। आखिर सम्भोग की यह क्रिया क्या है? इसका दीक्षा-संस्कार उसको कैसे मिला? वह आसपास के पार्कों में जानवरों को देखती हैं। वह किताबों को पढ़ती है। वह माता-पिता से प्रश्न करती है और कल्पना करती हैं। वास्तविकता यह है कि किसी भी प्रकार का स्पष्ट ज्ञान और निर्देशन उसकी समस्या को नहीं सुलझाएगा,

क्योंकि कामनात्मक अनुभवों को शब्दों और अवधारणाओं से नहीं समझाया जा सकता। इनका तो अनुभव करना पड़ता है। इन्हें भोगना और जीना पड़ता है। किसी भी तरह का विश्लेषण सत्य को हमेशा हास्यास्पद तरीके से ही व्यक्त करेगा। प्रेम की भावना एक आवेगहीन बच्चे को कैसे समझाई जा सकती है? यह अंधे आदमी को रंग समझाने जैसा होगा। जुगुप्सा की की यह भावना प्रायः लड़कियों का आत्मविश्वास कम कर देती है।

इसके साथ ही किशोरावस्था में मासिक-धर्म का शुरू होना लड़की को और भी विचलित कर देता है। प्रायः लड़कियों को इसके बारे में नहीं बताया जाता। अधिकतर माताएं स्वयं ही अपने जीवन में स्त्री-धर्म को स्वीकार नहीं कर पातीं। यह एक प्रकार का ऐसा प्राचीन भय है जो पुरुष तथा स्त्री, दोनों को ही परेशान करता है। पहले-पहल जब यह घटना घटती है तो लड़की भी अपने को मां मानने लगती है। 1896 में हैवलाक एलिस ने 125 छात्राओं का अध्ययन किया। अपने पहले मासिक- धर्म के बारे में 36 लड़कियां कुछ नहीं जानती थीं। 39 को हल्का-सा आभास था और करीब आधी से अधिक तो इस विषय में बिल्कुल अनजान थीं। यह ठीक है कि आज स्त्री-शिक्षा के कारण समय बदल गया है, फिर भी समाज, परम्परा और धर्म रजस्वला स्त्री को ग्लानि की भावना दिए बिना नहीं मानते । स्त्री अपने आपको इस प्रकार धोती है, मानो अपना पाप धो रही है। पाप की इस भावना के साथ लड़की प्रायः दूसरों से छिपने लगती है। उसको लगता है कि यह एक अव्यक्त गुप्त सत्य है। वह कई बार सोचती है कि उसको स्त्री का शरीर न मिला होता तो अच्छा होता। अब तक इससे पहले वह अपने आपको चाहे लड़कों के बराबर समझती रही हो, किंतु अब उसको अपनी मां तथा दादी-नानी के खेमे में रहना अनिवार्य हो जाता है। यह हो सकता है कि उसको अपने विकास पर अभिमान हो, किंतु प्रायः युवा लड़की इस बात को लेकर घंटों रोती रहती है कि उसके भाई और पिता को भी उसके बारे में पता है। यहां पर अपने शरीर के प्रति लड़की के मन में वितृष्णा और भावना पैदा होती है। यह भावना केवल पहली बार नहीं होती, बल्कि हर महीने जिंदगी- भर घटने वाली घटना बन जाती है। रात-दिन उसको कपड़े बदलते हुए, कहीं बाहर आते-जाते इसकी चिंता रहती है कि कहीं दूसरों को उसके कपड़े का कोई दाग न दिख जाए। ऐसा कुछ होने पर लड़की को त्रासद दैन्य की अनुभूति होती है। इस प्रकार की भयानक सम्भावना प्रायः मानसिक विकृति और रोग पैदा करती है। यह स्त्रियोचित दाग युवा लड़की को जितना ही घिनौना लगता है, उतना ही वह अपने प्रति सजग हो जाती है।

यह संक्रांति प्रायः नौ से बारह वर्ष की उम्र के बीच होती है, जबकि एक लड़का किशोरावस्था में पंद्रहवें वर्ष में पहुंचता है। इस शारीरिक घटना में लड़की का अनुभव त्रासद होता है। फर्क तो दोनों की स्थिति का है। वयःसंधि-काल दोनों के लिए बिल्कुल अलग-अलग निर्धारित है। उस समय लड़की को अपने शरीर के प्रति लज्जा होती है। लड़का भी

व्याकुल होता है, घबराता है, किंतु जैसे ही विकास प्रारम्भ होता है, लड़के के मन में अपने पौरुष के लिए अभिमान पैदा होने लगता है। वह खुशी-खुशी पुरुप होने की गरिमा स्वीकार कर लेता है जबकि औरत को एक पूर्व-निर्धारित ढांचे में ही बड़ा होना है। यह उसके नारीत्व की सीमा है। एक ऐसा कुरूप और निर्धारित नाटक, जो उसकी तकदीर ने उसके लिए लिख छोड़ा है। पुरुष का लिंग जिस सामाजिक संदर्भ में एक विशिष्ट महत्त्व पाता है, वहीं सामाजिक संदर्भ औरत के मासिक-धर्म को एक अभिशाप बनाकर रख देता है। जहां एक का विकास और संवृद्धि पौरुष के प्रतीक हैं, वहीं नारीत्व की घटना, जो पहले से ही एक हीनता और लानत का शिकार थी, अब और अधिक शर्म, ग्लानि और धिक्कार प्रकट करने लगती है। वह तो पहले ही अपने आपमें एक कमी महसूस करती रही थी। प्रश्न उठता है कि क्या उसकी यह दैहिक कमी रजस्वला होने से पूरी हो जाती है ? शायद नहीं। कोई नहीं कहता कि अब तुम एक औरत हो। उसके जीवन में अचानक घटने वाली यह सूनी घटना उसे भौंचक कर देती है। वह विचलित होकर अपने आपसे ही पूछ बैठती है कि औरत होने का क्या अर्थ है ? क्या इस नियति से अब मुक्ति नहीं? वह जानती है कि मुक्ति नहीं।

स्त्री और पुरुष को यौन के आधार पर अलग नहीं देखने वाले समाजों में औरत मासिक-धर्म को एक खास परियोजना के रूप में लेती है, जिसके द्वारा वह व्यस्क जीवन प्राप्त करेगी। स्त्री हो या पुरुष, मानव-शरीर की अपनी-अपनी जरूरतें होती हैं, जिनका खयाल रखना पड़ता है, किंतु स्त्री का मासिक-धर्म समाज या परिवार द्वारा अब भी सहजता से स्वीकृत नहीं। यह एक दाग है, जो औरत को हीन और अपूर्ण वर्ग में रख देता है। बराबरी के अधिकारों से वंचित होना औरत के ऊपर एक बोझ है। वह मानवीय गरिमा से वंचित होती है। वंचना का यह भाव तब दूर हो सकता था जब औरत के लिए अपने अस्तित्व के अतिक्रमण के अन्य सारे रास्ते पुरुष की बराबरी में खुले होते । यदि वह भविष्य में लड़के की तरह खेलकूद, सामाजिक कार्य और बौद्धिक विचार-विमर्श में बराबरी का हिस्सा ले सकती तो शरीर और सेक्स का यह विशिष्टीकरण और रूपांतर उसको यों पंगु नहीं कर जाता। अपनी शारीरिक स्थिति की सीमा से वह ऊपर उठ सकती है। युवा लड़की प्रायः इस अवस्था में न्यूरोटिक स्थिति में अटक जाती है। यह इसलिए कि उसकी यह भवितव्यता, यह कर्म-रेखा और नियति उसको अकल्पनीय मुसीवतों और संकटों के सामने बिल्कुल असहाय और अरक्षित छोड़ जाती है। अपना नारीत्व उसकी आंखों में एक बीमारी, दुख और मौत का प्रतीक बन जाता है।

न केवल मासिक-धर्म ही हर महीने घटने वाली घटना है, जो लड़की की नियति की घोषणा करती है बल्कि और भी कुछ संदिग्ध और अस्पष्ट घटनाएं उसके जीवन में घटने लगती हैं। जहां तक उसको काम-भावना का सवाल है, अब तक वह सुप्त थी। जांघों के बीच हलके स्पंदन से वह परिचित थी। पेड़ पर चढ़ते हुए, साइकिल पर बैठे, कभी कपड़ों

की रगड़ से जिस हलकी सिहरन का एहसास उसको होता था, अब अपने हाथ से वह उसी मादकता को पाना चाहती है। खैर, किसी प्रकार क्यों न हो, लड़की को मिलने वाला सुख बड़ा मासूम और उसके बचपन की हरकतों से सम्बंधित होता है। लड़की शायद ही इस व्यक्तिगत सुख के साथ अपनी नियति को जोड़ती है। लड़कों के साथ उसके सारे सम्बंध उत्सुकता और कौतूहल पर ही आधारित थे, लेकिन अब वह एक ऐसा उलझन भरा संवेग महसूस करती है, जिसको वह खुद ही नहीं पहचान पाती। उसके शरीर का रोआं- रोआं एक तड़पती हुई कामना, आवेग और प्रखर संवेदना से भर जाता है। अचानक किसी स्पर्श से, खेल-खेल में कहीं किसी के साथ उसे अपने शरीर में विचित्र सिहरन और उत्तेजना महसूस होती है। प्राय: उसका सुरक्षित और संरक्षित कौमार्य यदि कहीं दुर्घटनाग्रस्त होता भी है, तो वह शर्म और ग्लानि के कारण इसका जिक्र नहीं करती। उसको आघात लगता भी है तो अपने लोगों से, अपने परिचित पुरुषों के माहौल से जैसे घर में आने वाले दर्जी, हेयर-ड्रेसर या पुरोहित, डॉक्टर और पुरुष अभिभावकों से। अपने साथ घटने वाली घटना का दुर्व्यवहार का, जिक्र वह करती भी है तो सिवाय फटकार या डांट के कुछ नहीं पाती। ऐसी बातें नहीं बोली जातीं।' वह चुप रहने लगती है। हर जगह उसका शरीर दूसरों की नजर का शिकार होने लगता है। सिनेमा हॉल के अंधेरे में, किसी एकांत जगह में, घर में और बाहर, हर कहीं पुरुष की लोलुप दृष्टि उसका पीछा करती है। लड़की को पुरुष के इन दुस्साहसों का अर्थ नहीं मालूम। प्रायः युवा लड़की के मन में इन हादसों को लेकर अजीब जटिलता भरी रहती है, क्योंकि उसका सैद्धांतिक ज्ञान वास्तविक अनुभव से मेल नहीं खाता । इच्छा और कामना की तपिश वह महसूस करती है, लेकिन यों कैसे बना जाता है, औरत होने का पूरा अर्थ क्या है, से किन अनुभवों से पुरुष के साथ गुजरना होगा। इसका बड़ा धुंधला अहसास उसको रहता है।

पुरुष के प्रति उसके रोमांटिक दिवा-स्वप्नों में, जो कि प्यार कहलाता है और पुरुष से मिलने वाले इन क्रूर आघातों में, कहीं कोई समानता नहीं होती। उसके मासूम सपनों, भावुक कविताओं और संगीत में, प्रेम-कहानियों में और वास्तविक पुरुषों में कोई समन्वय नहीं होता। अचानक पुरुप उसको बहुत ही घिनौना लगने लगता है, किंतु पढ़ने-लिखने से, वार्तालाप से और सुने गए शब्दों से युवा लड़की अपनी इस मांसल हलचल को नया अर्थ दे देती है। वह खुद एक चाहत और एक अपील बन जाती है। अपनी उत्तेजना, भीगापन और हलके दर्द के साथ उसका शरीर एक बेचैनी भरा नया आयाम खोज लेता है। युवा पुरुष जहां स्वेच्छा या स्वगत भाव से अपनी कामोत्तेजक प्रवृत्तियों को स्वीकार करता है, खुशी-खुशी अपने पौरुष को प्रोत्साहित करता है, अपनी यौन-इच्छाएं अपने संगी-साथियों के बीच अभिमानपूर्वक व्यक्त करता है, वहीं छोटी लड़की का यौन-जीवन हमेशा एक रहस्य ही बना रहता है। कामना के उदय से अब उसका अपने शरीर पर नियंत्रण नहीं रहता। अपने किसी भी निर्णय से वह पीड़ा से छुटकारा नहीं पा सकती। कुछ ग्रहण करने, आदान-

प्रदान करने या तोड़ने और हिंसा को वह अपना सपना नहीं बना सकती। उसकी भूमिका है केवल प्रतीक्षा करने की, कुछ चाहने की, किसी पर निर्भर होने की। अपने इस अलगावित मांसल शरीर से उसे खतरे की बू आने लगती है। अपनी सुखद निष्क्रियता और अबूझ प्रतीक्षा में वह यह समझ पाती है कि शरीर केवल उसके सुख के लिए बना है और सेक्सुअल अनुभव केवल अपनी अंतर्वर्तिता तक सीमित रहेंगे। वह निरंतर अपने किसी आने वाले प्रिय की प्रतीक्षा करती है। उसकी चाह को अर्थ प्रदान करने वाली यह छाया हर समय उसका पीछा करती रहती है। अब बचपन का पुरुष के प्रति भयजनित विराग ज्यादा अनेकार्थक रूप ग्रहण कर लेता है। अपनी भावनाओं का स्रोत, जिसे बचपन में वह नहीं समझ पाती थी, अब अपनी मांसलता में ठोस रूप से समझने लगती है। वह समझने लगती है कि किसी के द्वारा अधिकृत, अनुप्राणित और संचालित होना, उसकी नियति है । वह बनी ही इसीलिए है। वह पुरुष का संग चाहती है और साथ ही साथ अपनी इस चाहत से विद्रोह भी करती है। उसके मन में जहां पुरुष के प्रति उत्तेजना रहती है, वहीं वह अपने आपको उसकी दृष्टि के सामने असहाय भी पाती है। वे हाथ, जो उसको छूते हैं, दृष्टि से अधिक उदंड होते हैं, लेकिन सबसे कुत्सित है पुरुष का यौन-अंग, जो शारीरिक रूप से उसको अधिकृत करने का उपकरण है। युवा औरत यह सोचकर नफरत करती है कि कोई उसका बेधन कर रहा है, उसको कपड़े की तरह चीर रहा है। शिकायत तो उसको इस बात की होती है कि कोई उसको आघात पहुंचा रहा है। यह खयालमात्र ही उसको संत्रस्त करता है। एक साधारण संदर्भ में यह खयाल अपने आपमें गंदा और दैन्य उपजाने वाला है।

युवा लड़की उद्विग्नता, चिंता और दुःस्वप्नों के बावजूद अपने में पुरुष के प्रति एक चाह पाती है। वह अपने साथ बलात्कार की स्थिति भी महसूस करती है। यह विचार उसके सपनों में तथा वास्तविक आचरण में कई रूपों में प्रकट होता है। रात को सोने से पहले वह पलंग के नीचे झांकती है कि कोई बंदा छिपा तो नहीं है । वह नींद में चौंक पड़ती है। वह पुरुष से भयभीत रहती है। उसके मन में अपने पिता के प्रति एक विरक्ति और घृणा उपजने लगती है। पिता की तम्बाकू की गंध उसको सहन नहीं होती। पिता के प्रति स्तंह के बावजूद एक प्रकार की शारीरिक वितृष्णा तो उसके मन में होती ही है।

सबसे अधिक जो बात युवा लड़की को पीड़ित करती है, वह है शरीर के द्वारा सेक्स की मांग। उसको पानी-सा पारदर्शी और पवित्र होना है। वह वैसे ही कपड़े पहनती है। उसका कमरा कोमल रंगों से रंगा होता है। उससे धीमे स्वर में बात की जाती है लेकिन वास्तव में कोई भी लड़की इतनी नासमझ नहीं होती, न इतनी पवित्र कि कोई भी गलत खयाल न उठे उसके मन में या वह चाहत की तपिश में न सुलगे। बस होता यही है कि वह अपनी रागात्मकता को छिपाना सीख जाती है; जितना ही जीना चाहती है, उतना ही उसका मन विद्रोह करता है। फलस्वरूप उसका व्यक्तित्व बीमार, रुग्ण और दुराव-छिपाव वाला हो

जाता है। एक ओढ़ी गई सरलता और मासूमियत की बात अलग है, लेकिन वास्तविक सरलता वह शायद ही हासिल कर पाती है। इतना होने पर भी रूपांतरण अवश्यम्भावी है। वह रूपांतरित होती भी है किंतु पछताती हुई।

यह समझने की बात है कि इस नाजुक उम्र के दौर में लड़की कष्ट झेलती है। वह बड़ा होना चाहती है किंतु वयस्कों की दुनिया उसे बड़ी उबाऊ तथा बोझिल लगती हैं, जैसा कि कालेट आंद्रे कहती हैं, "मैं बड़ा होना चाहती थी, किंतु मेरे आस-पास की औरतें जैसी जिंदगी जी रही थीं, वैसी मैं नहीं चाहती थी। अत: बड़ी होने पर भी वयस्क जिम्मेदारी से बचने की पूरी चेष्टा मुझमें अंतर्निहित थी।" लड़की जहां मां के दायरे से निकलना चाहती है, वहीं बाहरी जगत् के अतिक्रमण का सिलसिला उसकी चेतना पर बोझिल प्रतीत होता है। संदिग्ध दोस्तियां, अश्लील पुस्तकें, कुछ छिपी हुईं हरकतें। हेलेना की एक रोगिणी कहती है, "मम्मी चाहती है कि मैं लम्बे स्कर्ट पहनूं और मेरी जिद है कि बस एक बार, आखिरी बार ही सही, मुझे अपना पिंक वाला फ्रॉक पहनने दे। आह ! मैं बड़ी होने से कितना डरती हूं!"

जहां तक युवा लड़की के सपनों एवं चाहतों का सवाल है, यदि वे सही रूप से अभिव्यक्त नं हो पाएं, तो भी उसके काल्पनिक जगत् में तो बने ही रहते हैं। समाज चाहे जैसे भी बंधन लगाए, हम चाहे लड़की को कितना भी अलगावित रखें, अपने शरीर के प्रति वह सचेत होगी ही और साथ ही अपनी नियति के बारे में चिंतित भी। अच्छा तो यह होता कि उसे स्वयं को स्वीकारना सिखाया जाता। बिना किसी ग्लानि के अपनी कामनाओं और इच्छाओं की उसे सही अभिव्यक्ति की छूट दी जाती।

इस अध्याय में हम किशोरावस्था की इस अनिवार्य सच्चाई से परिचित हो गए हैं कि बिना अपने नारीत्व को स्वीकारे लड़की वयस्क नहीं हो सकती और साथ ही वह यह भी जान जाती है कि एक जड़ और पंगु अस्तित्व को स्वीकार करना उसकी नियति है। इस नियति का सामना वह अस्पष्ट अपराध-भावना और रुग्ण मानसिकता से करती है। वह जिंदगी के रास्तों पर भविष्य की ओर, एक चोट खाई हुई, शिकायत, शर्म और गलतियों से भरी हुई, चलना शुरू करती है।

युवती

बचपन की सारी पीड़ाओं और समस्त अवरोधों के बावजूद लड़की स्वयं को एक स्वायत्त व्यक्तित्व ही महसूस करती हैं। अपने सारे सम्बंधों में, स्कूल तथा घर के कामों और खेलों मैं, वह अपनी अनुभवातीत सम्भावनाओं से भरे व्यक्तित्व को नहीं भूलती । निष्क्रियता भविष्य की घटने वाली एक सम्भावना है, जबकि अब किशोरावस्था के साथ

भविष्य उसके शरीर में एक ठोस आकार ग्रहण करने लगता है। जहां किशोर लड़का सक्रिय रूप से वयस्क दुनिया में प्रवेश करता है, वहीं लड़की एक अदृश्य और अपरिचित भविष्य की प्रतीक्षा करती है । समय मानो उसके लिए ठहर जाता है। बचपन अतीत है और भविष्य अपनी सम्भावनाओं के साथ उसकी नियति में पहले से ही लिखा हुआ है। बिना किसी उद्देश्य और ठोस कार्य के उसका यौवन प्रतीक्षा करते हुए बीतने लगता है। वह प्रतीक्षा करती है एक पुरुष की। यह सही है कि किशोर लड़का भी लड़की की कल्पना करता है, किंतु कोई एक लड़की उसकी नियति नहीं होगी। जबकि लड़की बचपन से ही नारीत्व की सीमा में रहकर या उससे परे जाकर पुरुष के प्रेम का कोई विकल्प नहीं खोज पाती है। वह उसके सपनों का राजकुमार और मुक्तिदाता होता है । वह शक्तिशाली होता है जो उसको जिंदगी का सुख दे सकता है। उसने तो हमेशा बचपन से पुरुष की वरीयता और श्रेष्ठता स्वीकार की है। पुरुष की वरीयता कोई मरीचिका नहीं होती, बल्कि उसका सामाजिक और आर्थिक आधार होता है। पुरुष इस दुनिया का मालिक है, यह सत्य है। आस-पास का वातावरण और जागतिक अंतक्रियाएं लड़को को एक ही बात बार-बार समझाती हैं कि वह पुरुष की दासी बनकर, उसके प्रति समर्पित होकर ही जिंदगी में कुछ हासिल कर सकेगी। यदि उसे अधिक आकर्षित कर पाने में वह सफल होती है तो पिता को उस पर गर्व होता है। मां उसके लिए एक सुनहला भविष्य देखती है । सहेलियां उससे ईर्ष्या करती हैं। उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा भी इसी पर निर्भर करती है। अन्य सभी कार्यों और व्यवसायों की अपेक्षा विवाह न केवल एक सम्मान और आदरणीय कैरियर है बल्कि वह औरत की सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाए रखते हुए उसके जीवन में प्रेम और आदर सहित सेक्सुअल संतुष्टि का माध्यम भी है । अत: यह उसके भविष्य का सबसे अधिक विचारणीय विषय है। इसमें कोई मतभेद नहीं कि एक अच्छा पति या कुछेक उदाहरणों में अच्छा संरक्षक पाना स्त्री के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्योग है। उसकी दृष्टि में पुरुष उसे व्यक्तित्व प्रदान करता है, उसको पुनर्स्थापित करता है। लड़की जीवन में अपनी अनिवार्यता चाहती है। वह व्यक्ति होना चाहती है और बिना पुरुष की सहायता के वह व्यक्ति नहीं हो सकती। पुरुष की सहायता उसको तभी मिल सकती है, जब वह स्वयं को पुरुष की नजरों में वस्तु-रूप में पेश करे और उसके सामने स्वयं गौण बनी रहे। इसी स्थिति में पुरुष उसका उद्धार कर सकेगा। वह अपनी मां के घर से छुटकारा चाहती है, नया भविष्य चाहती है, किंतु स्वयं को सक्रिय करके नहीं, बल्कि अपने आपको निष्क्रिय और विनयी बनाकर ही कुछ हासिल कर सकती है। अपने इस नए मालिक के सामने वह पूर्ण रूप से समर्पित होती है। यह जाहिर करते हुए कि वह पुरुष की अपेक्षा भौतिक और नैतिक, हर रूप से हीन है, वह यह मान लेती है कि पुरुष की होड़ और बराबरी करने में वह असमर्थ है और इस असम्भव प्रतियोगिता को तिलांजलि दे देती है। वह यह बताना चाहती है कि उसको सुखी करना पुरुष-जाति के ऊपर निर्भर हैं।

स्त्री की यह पूर्वनिर्धारित हीनता उसके अतीत और बचपन, सामाजिक परिवेश और जन्म से ही उस पर आरोपित नियति है। जहां किशोरावस्था उसके बाल-शरीर का रूपांतरण करती है, वहीं वह अपने को पहले से ज्यादा नाजुक और कमजोर पाती है। अब उसके अंग अतिसंवेदनशील और कोमल हो गए हैं, मजबूत नहीं। शरीर पर उठ आए स्तन उसके लिए बोझ हैं, भविष्य में उसकी मांसपेशियों की क्रियात्मकता सहन करने की क्षमता और दक्षता पुरुष की अपेक्षा कम रहेगी। उसके शरीर में हारमोन के असंतुलन के कारण उसका स्नायविक तनाव अधिक होगा। मासिक-धर्म पीडाजनक होने के कारण सिर में दर्द, थकान और पेट में दर्द उसकी रोजमर्रा की जिंदगी को कठिन बना देंगे। प्रायः मानसिक परेशानियां भी शुरू हो जाती हैं। तनावग्रस्तता और चिड़चिड़ेपन के कारण एक औरत सामयिक रूप से पागल की तरह हो जाती है। जहरीली विकारग्रस्तता के कारण रक्त-संचरण में परेशानी औरत के मन और दुनिया के कार्य-व्यापारों के बीच एक दीवार-सी खड़ी कर देती है। शिकायत करते हुए तनावग्रस्त मांसल शरीर के कारण वह अपने को सबसे कटा हुआ पाती है। वह अन्यमनस्क-सी रहती है। वह परिचित चेहरों को भी कई बार नहीं पहचान पाती।

एक लड़के को आक्रामक हंसी उम्र के तेरहवें साल से शुरू होती है। इस समय एक लड़की खेलकूद की दुनिया छोड़ चुकी होती है। यह ठीक है कि वह कुछ खेलों को अपना सकती हैं किंतु खेलों के प्रति उसकी रुचि अब रूपांतरित हो गई रहती है। खेल से उसकी अरुचि का कारण यही है कि बचपन से दूसरों की प्रतिद्वंद्विता में उसे अपने आपको स्थापित करने की मनाही रही है। अन्वेषणों और सम्भावनाओं की अंतिम सीमा की परख स्त्री के लिए अपरिचित रहती हैं। यह ठीक है कि औरतें आपस में प्रतियोगिता करती हैं, किंतु वास्तविक प्रतियोगिता और चुनौती तथा औरतों की आपसी निष्क्रिय प्रतियोगिता में बहुत बड़ा फर्क होता है। दो स्वतंत्र व्यक्ति जब एक-दूसरे का सामना करते हैं, तब उनमें दुनिया को और विस्तृत करने की इच्छा रहती है। उनमें दुनिया के ऊपर प्रभुता प्राप्त करने की होड़ होती हैं । वयस्कों की दुनिया में हिंसा की सम्भावना हर समय प्रेत की छाया की तरह मंडराती रहती है। पुरुष की ताकत पुरुष के काम आती है । वह हिंसा पुरुष के संकल्प, आवेश और ईमानदारी के प्रति एक प्रमाणित सबूत होती है। वह दूसरों को अपने ऊपर हावी नहीं होने देता। यहीं पर हम लड़की और लड़के में फर्क पाते हैं। जहां लड़का अपनी आक्रामकता और हिंसा को शब्दों तथा क्रियाओं में प्रकट कर सकता है, वहीं लड़की की भावनाओं का कोई तात्कालिक प्रभाव नहीं होता। लड़की, जो अन्या है, अपने आपको केवल वस्तु-रूप में पेश करती है। जगत् उसके संदर्भ के बिना परिभाषित होता है। लड़की की शारीरिक कमी के कारण उसमें भीरुता पैदा होती है। शक्ति में उसका कोई विश्वास नहीं, क्योंकि अपने शरीर में उसने उसका स्वाद ही नहीं चखा। उसे साहस नहीं होता नए

उद्यम का, क्रांति का, आविष्कार का। वह समाज में पूर्व निर्धारित स्थान ही ले सकती है। अत: उसकी नजर में स्थापित व्यवस्था अपरिवर्तनीय होती है।

एक ऐसी लड़की की कहानी जानती हूं जो बचपन से लड़कों की ही तरह बड़ी हुई थी। वह शारीरिक शक्ति में विश्वास रखती थी। रास्ते में यदि कोई बच्चा या स्त्री सताए जाते थे तो वह. पुरुषों से मारपीट करने से बाज नहीं आती थी। किंतु दो-एक घटनाओं ने उसको यह समझा दिया कि वहशी ताकत पुरुषों के पास अधिक है। जवान लड़के प्रायः अपने शरीर और मांसपेशियों की ताकत दिखाकर खुश होते हैं। जवान लड़के की काम-भावनाएं उसके अपने शरीर के प्रति विश्वास को और भी मजबूत करती हैं । कामनात्मक इच्छाओं में वह अपनी शक्ति और अनुभवातीतता का प्रमाण पाता है जबकि लड़की के जीवन में हम देखते हैं कि उसका पूरा शरीर ही बाधा डालता है। मासिक- धर्म के कारण भी वह खेलकूद में खुलकर हिस्सा नहीं ले पाती। हमने यह देखा है कि कैसे स्त्री मनोविज्ञान की विशेषताओं का स्नायविक नियंत्रण के साथ बड़ा करीबी रिश्ता होता है । वह प्रायः ही तो अपने को बीमार समझती है। स्त्री-रोगों के विशेषज्ञ इस बात से सहमत हैं कि उनकी अधिकतर रोगिणियां काल्पनिक बीमारियों से ग्रस्त रहती हैं। औरत में निहित चिंताएं और उस पर ओढ़ाए गए बंधन प्रायः उसके शरीर की तबाही कर देते हैं। यह स्पष्ट हो गया है कि औरत की जैविक स्थिति उसके जीवन में अक्षमता की तरह है। सही रूप में लिए जाने पर उसकी स्नायु-दुर्बलता उस पर अधिक हावी नहीं हो सकती। महीने में एक-दो दिन यदि कोई जैविक स्थिति तकलीफ भी दे, तब भी वह अड़चन नहीं होनी चाहिए। अनेक स्त्रियां इस स्थिति से समझौता कर लेती हैं। फलस्वरूप वे बाल- रूम में नाच और कुछ भारी कामों को भी कर लेती हैं। जहां तक खेलकूद की दुनिया का सवाल है; नायकत्व तो हर प्रकार के खेल में मिलता है। कई खेलों में शारीरिक शक्ति की बिल्कुल जरूरत नहीं पड़ती। खेलकूद की दुनिया में तो प्रत्येक के लिए शारीरिक सीमा के अंदर ही पूर्णता पाने का महत्त्व होता है। यहां नायक यदि पुरुष है तो स्त्री भी हो सकती है। बस इनके खेलों के वर्ग अलग- अलग होंगे। यदि लड़की को तैरना, पहाड़ पर चढ़ना, हवाई जहाज चलाना तथा अन्य जोखिम भरे खेल दिए जाएं तो दुनिया के सामने वह भीरुता नहीं रहेगी, जिसका हमने जिक्र किया है। परिस्थिति की इस जटिलता का प्रभाव न केवल औरत की शारीरिक उपलब्धियों पर, बल्कि उसके मानसिक विकास पर भी पड़ता है। प्रायः कहा जाता है कि किशोरावस्था के बाद लड़की को एक लड़के की तुलना में इन क्षेत्रों में प्रोत्साहन कम मिलता है बल्कि उससे यह आशा की जाती है कि अपने व्यवसाय के अलावा वह अन्य कार्यों को भी करे। एक औरत डायरेक्टर का रिमार्क सुनिए, 'युवा लड़की नौकरी के कारण अपने आपको स्वतंत्र व्यक्ति समझने लगती हैं। उसकी इच्छाओं का सम्बंध उसके परिवार से नहीं होता। प्रायः उसको पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा काम करना पड़ता है। रात में थककर लौटने के बाद भी घर का काम, मां की आज्ञा और अपने व्यक्तिगत काम। वह दु:खी हो जाती है। उसे एक

मिनट की भी राहत नहीं मिलती, जबकि उसके भाई को घर का काम नहीं रहता। फलतः वह विद्रोही हो जाती है।"

घर-गृहस्थी का काम एक ऐसा बेसुरा राग है, जो हर समय बजता रहता है। मां भी कई कामों को वक्त-बेवक्त उस पर थोपने से बाज नहीं आती। मां मन के भीतर लड़की की स्वतंत्रता से ईर्ष्या करती है और बहुधा जान-बूझकर उसको परेशान करने के लिए फिजूल कामों में थकाने से बाज नहीं आती जबकि लड़के का काम और उसका बड़ा होना सम्माननीय होता है। स्वावलम्बी लड़की की गतिविधियों पर भी पूरी निगरानी रखी जाती है । वह स्वेच्छा से कहीं आ-जा नहीं सकती। विरले ही हम किसी लड़की को घूमने-फिरने या लम्बी यात्रा का कार्यक्रम बनाते देखते हैं। इस कमी का कारण उसकी परम्परागत शिक्षा है। परम्परा लड़की की स्वाधीनता को स्वीकार नहीं करती। उसके सड़क पर घूमने पर फिकरे कसे जाते हैं। साहसी होने और अन्य लड़कियों की तरह भीरु न होने पर भी वह इसलिए अकेले घूमना नहीं चाहेगी कि हर समय की सतर्कता उसमें निरर्थक तनाव की सृष्टि करेगी। दल बनाकर सड़क पर घूमने वाली लड़कियां दूसरों के लिए नमूना बन जाती हैं। उनका उछलते-कूदते चलना, जोरों से हंसना, ठहाके लगाना या कुछ खाना पुरुष-वर्ग का ध्यान आकर्पित हो करंगा। जो ऐसा करती हैं, उनकी चर्चा हुए बिना नहीं रहती। लापरवाह खुशी उनके लिए एक बुरा आचरण ही कहलाती है। आत्म-संशय की जो बात औरत के लिए उठाई जाती है, वह वास्तव में उसका दूसरा स्वभाव ही बन जाता है। अत्यधिक संशय के कारण सहजता का अभाव उसकी जोवन- शक्ति का ह्रास करता है और इसका अंतिम नतीजा है तनाव तथा ऊब । वह न केवल खुद से ऊब उठती है, बल्कि अपनी सहेलियों से भी। इसीलिए लड़कों की संगति उसको अच्छी लगती है। स्वावलम्बी होने की उसकी अक्षमता उसमें एक प्रकार की भीरुता पैदा करती है जो कि उसके पूरे जीवन और कार्य-क्षेत्र को कमजोर बनाती है। वह सोचने लगती है कि किसी उत्कृष्ट उपलब्धि की हकदार औरत नहीं, बल्कि केवल पुरुप है। इसीलिए औरत अपने जीवन का उद्देश्य शुरू से ही ज्यादा ऊंचा नहीं बनाती। हमने देखा है कि कैसे 18 साल की लड़की अपनी तुलना लड़के से करने पर निस्संकोच कहती है कि लड़के ज्यादा अच्छे हैं। यह एक प्रकार की बाधित आस्था है जो अंत में लड़की को आलसी और औसत दर्जे की बनाती है। लड़की की इस हार की भावना का मूल कारण है-युवा लड़की का कभी स्वयं को अपने भविष्य के लिए जिम्मेदार न समझना। वह स्वयं से संघर्ष की मांग नहीं करती। सत्य तो यह है कि वह मानव-प्राणी की हैसियत से अपना मूल्य बढ़ाकर पुरुष की आंख में महत्त्वपूर्ण नहीं बन पाएगी। उसको तो पुरुष के सपनों के अनुरूप ही ढलना है। बचपन में अनुभवहीन रहने पर तो वह फिर भी लड़कों के साथ बराबर की आक्रामकता प्रदर्शित करती है। उसमें हम एक शक्ति, कड़ापन और अभिमानी सपाटबयानी पाते हैं; किंतु यह भी ठीक है कि इस तरह के दृष्टिकोण वाली लड़कियों का भविष्य अंधकारमय हो जाता है। हर लड़की चाहे वह सीधी

हो या तेज-मिजाज, समय के साथ पुरुष को खुश करने के लिए झुकना सीख जाती है। माताएं भी अपनी लड़कियों को लड़कों के साथ बराबरी न करना सिखाती हैं। यदि वे लड़के से दोस्ती या रोमांस शुरू करना चाहती हैं, तो उन्हें बड़ी चतुराई से अपनी पहले की प्रवृत्ति को छिपा देना पड़ता है क्योंकि प्रायः पुरुष ज्यादा बुद्धिमान, ज्यादा साहसी या ज्यादा सांस्कृतिक और ज्यादा निष्ठावान गुणों वाली लड़की से सहम । हैं। अधिकतर रोमांटिक उपन्यासों में, जैसा कि जार्ज इलियट कहती हैं, "अंत में एक दबंग, बुद्धिमान लड़की की तुलना में एक बेवकूफ और खूबसूरत नायिका ही पुरुष को जीत पाती है।" स्त्री होने के लिए औरत का पुरुष की नजर में कमजोर, व्यर्थ और सीधा होना जरूरी है। अतः युवा लड़की को जहां एक ओर पुरुष के लिए अपने आपको पेश करना पड़ता है, तैयार रहना पड़ता है, वहीं दूसरी ओर अपनी सहजता को एक सीखे हुए सौंदर्य और हाव-भाव से प्रतिस्थापित करना होता है। युवा-पुरुष के अस्तित्व में, उसके मनुष्य होने में और पुरुष होने में हम कोई विरोधाभास नहीं पाते। बचपन से उसको ये सुविधाएं मिली हुई हैं और अपनी स्वाधीनता में आत्म-प्रतिस्थापन के माध्यम से वह पुरुष होने का एक सामाजिक मूल्य प्राप्त करता है। महत्त्वाकांक्षी पुरुष धन, यश और औरत की प्राप्ति को उद्यमशीलता मानते हैं। इसका दूसरा प्रतिरूप यह हुआ कि औरत भी शक्तिशाली .. और यशस्वी पुरुषों को ही चाह पाती है। इसके विपरीत जवान औरत के सही माने में इंसान होने और स्त्री होने में हम एक विरोधाभास पाते हैं। इस विरोधाभास के कारण ही हम जानते हैं कि किशोरावस्था औरत के लिए कितनी कठिन और निर्णायक होती है। अब तक वह एक स्वायत्त व्यक्ति रही थी किंतु अब समय आ गया कि वह अपनी प्रभुता का त्याग करे। वह अतीत और भविष्य के बीच बंटी हुई है और इसके साथ उसके जीवन का उद्देश्य भी विरोधाभासों में प्रकट हो रहा है। मौलिक रूप से जहां वह एक सक्रिय स्वतंत्र व्यक्ति होना चाहती है, वहीं दूसरी ओर उसकी कामनात्मक इच्छाएं और सामाजिक दबाव उसको एक निष्क्रिय वस्तु होने को बाध्य कर रहे होते हैं। तब अचानक वह अपने आपको गौण मान ले? उसके मन में संघर्ष होता है कि यदि पुरुष की तुलना में अपने को गौण स्थापित करना ही मेरी नियति है और तभी मैं पूर्ण हो सकती हूं, तब कैसे यह व्यक्ति अपने अहं का त्याग करे? यहां बड़ी उलझन-भरी पीड़ाजनक दुविधा उपस्थित हो जाती है। एक ओर जहां चाह है, वहीं दूसरी ओर इस दयनीय स्थिति के प्रति विद्रोह भी। लड़को आशा और निराशा के बीच, अपने बचपन की स्वाधीनता और औरत होने की समर्पणता को नियति के बीच झूलती रहती है।

युवा लड़की अपनी प्रारम्भिक प्रवृत्तियों के अनुकूल इस परिस्थिति में विभिन्न रूपों में प्रतियोगिता करती है। यदि किसी में मातृ-भाव अधिक हो तो वह परिवर्तन के समय अपनी मां की भूमिका स्वेच्छा से स्वीकार करेगी लेकिन फिर वह पुरुष के लिए भोग की एक वस्तु या उसकी नौकरानी बनने के प्रति विद्रोह करेगी। प्रायः कुछ विरोध के बाद युवा लड़की स्त्री की अपनी नियति स्वीकार कर लेती है। अब तक वह निष्क्रिय होने का फायदा समझ चुकी

होती है। अपने शरीर की जादुई शक्ति, जो पुरुष को काबू में कर सकती है, वह समझ जाती है। शरीर अब उसके लिए एक हथियार होता है- पुरुष को लुभाने का एक अस्त्र। स्त्री को अब अपने शरीर का अभिमान रहता है। एकदम बचपन में जो छिछोरेपन की प्रवृत्ति खत्म हो गई थी, अब फिर अभिव्यक्त होने लगती है। सेक्स की भावना और पुरुष को लुभाने की भावना में इतना गहरा सम्बंध है कि जहां संवेदना नहीं जगी हो, वहां लड़की में पुरुष को खुश करने की इच्छा भी नहीं रहती। युवा लड़की के लिए अनुभवातीतता हासिल करने का एक उपाय है कि वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए पुरुष का शिकार बन जाए। वह वस्तु बनकर ही आश्चर्यचकित होकर अपने अस्तित्व का और एक नया आयाम खोज लेती है। उसको अपना ही शरीर अपने सामने एक दोहरा प्रतिरूप लगता है। युवा लड़की अपने शरीर से प्यार करती है, स्वयं पर मुग्ध रहती है। वह शीशे में घंटों अपने को निहारती है और महसूस करती है, मानो शीशे में कोई दूसरा ही व्यक्ति है। ड्राइंगरूम में या लोगों के बीच वह ध्यानाकर्षण की चेष्टा करती है। यहां पर उसकी कामनात्मक भावनाओं में एक मौलिक उलझन होती है। वह पुरुष के प्रति अपनी इच्छा और अपने अहं के लिए आत्म-प्रेम में कोई विभेद नहीं कर सकती। यह आत्म-मुग्धता युवा लड़की में न केवल शारीरिक व्यक्तित्व की आराधना में अभिव्यक्त होती है बल्कि वह अपने आत्म को भी श्रद्धांजलि देने की इच्छा रखती है। उसकी यह इच्छा अभिव्यक्त होती है आंतरिक डायरियों में, जिनके पन्नों में वह अपनी सारी पीड़ा, सारी आकांक्षा खोलकर रख देती है। मैरी बाशकिर्सेव की आंतरिक डायरी बहुत मशहूर है जिसमें एक युवा लड़की अपनी डायरी से वैसे ही बातें करती है जैसे बचपन में अपनी गुड़िया से किया करती थी। डायरी उसकी दोस्त और विश्वासपात्र है। वह उससे ऐसे ही प्रश्न किया करती है मानो किसी व्यक्ति से प्रश्न पूछ रही हो। दोस्तों, रिश्तेदारों और अभिभावकों से छिपाकर डायरी के पन्नों में ऐसी कविताएं लिखी हुई हैं मानो लेखिका खुद अपने अकेलेपन से एकांत में सम्मोहित हो। एक लड़की, जो बीस वर्ष की उम्र तक डायरी लिखती रही थी, निम्नांकित प्रारम्भिक समर्पण लिखती है

"मैं तुम्हारी छोटी नोट-बुक हूं,
खूबसूरत, अच्छी और समझदार,
मुझे अपने सब रहस्य समझाओ!
मैं तुम्हारी, केवल तुम्हारी छोटी टिप्पणी हूं।"

वह अपनी डायरी में यह सूचना लिखती है कि इसे मरने के बाद पढ़ा जाए। वास्तव में रहस्य और गुप्तता का भाव लड़की में, उम्र के साथ गहराता जाता है। वह अपने बारे में कम बोलना चाहेगी, उसका छिपा हुआ ईगो ही उसका वास्तविक स्वरूप है। वह अपनी सारी

कल्पनाओं को इसी ईगो पर आरोपित करती है। कल्पना में वह बड़ी-से-बड़ी कलाकार, लेखिका और नर्तकी कुछ भी हो सकती है। वास्तव में एक साधारण लड़की को उसके दोस्त और रिश्तेदार कभी नहीं समझ पाते। वह इस बात से दुःखी भी रहती है। वह सबसे कटी हुई अपने आपको ज्यादा महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट समझती हैं। वह यह प्रतिज्ञा करती है कि वह इस संकुचित अस्तित्व की सीमाबद्धता में आजीवन नहीं : पड़ी रहेगी। एक-न-एक दिन वह सारे बंधनों को उतार फेंकेगी । सपने उसको अच्छे लगते हैं। सपनी में वह पलायन करती है। भयभीत करने वाली दुनिया के ऊपर वह कविता के मुहावरे चढ़ा लेती है। पुरुष को चांद की शीतलता प्रदान करती है। गुलाबी बादल और मखमली रातें। अपने शरीर को वह संगमरमर और मोती-सी चमक की वस्तु समझती है। इन बेवकूफियों में प्राय: वह इतनी डूबती है कि वास्तविकता के ऊपर उसका कोई नियंत्रण नहीं रह जाता। वह तो केवल धुंध में रहकर प्रतीक्षा करना चाहती है। जवान लड़का भी सपने देखता है, पर ऐसे सपने, जिनमें वह सक्रिय होता है; जबकि लड़की चीजों और व्यक्तियों को लेकर एक जादुई जगत् का निर्माण करती है। किसी भी प्रकार के जादृ में एक निष्क्रिय शक्ति रहती है और चूंकि लड़की निष्क्रियता में डूबी हुई और साथ ही दूसरों पर नियंत्रण भी चाहती है, इसलिए वह अपने शरीर की जादुई शक्ति पर विश्वास करने लगती है जो पुरुष को खींच लाएगी। वह उस भाग्य पर विश्वास करती है जो उसके बिना कुछ किए ही उसे सब कुछ दे देगा। वह वास्तविक दुनिया को भूल जाना चाहती है। एक छोटी लड़की लिखती है, "स्कूल में जब कुछ पढ़ाया जाता है तब मैं प्रायः सपनों की उड़ान में शरण ले लेती हूं क्योंकि वास्तविक दुनिया से मेरे सपनों की दुनिया ज्यादा हसीन है। कल्पना में बिना सिर-पैर की बातों को सोचना कितना आसान है। कितना सुखद!" यह कल्पना उसके लिए सुकून बन जाती है। प्रायः ये दिवा-स्वप्न उसके सारे अस्तित्व को ग्रसित कर लेते हैं और परिणामस्वरूप वास्तविक जगत् का उसे बिल्कुल ही बोध नहीं रह जाता। ये सपने इसलिए देखे जाते हैं कि लड़की को अपनी जिंदगी बहुत अपूर्ण लगती है और वह अस्तित्व की वास्तविकता का सामना करने से डरती है।

यह आत्म-पूजा अपने आपमें काफी नहीं, बल्कि और अधिक संतुष्टि खोजने के लिए युवा लड़की एक ऐसा साथी खोजती है जो उसके प्रति भक्ति-भाव से न्यौछावर रहे। उसकी पक्की सहेली प्रायः प्रत्येक युवा लड़की में पाई जाती है और इस समय पनपती है। यह प्रवृत्ति प्रायः प्रत्येक युवा लड़की में पाई जाती है और इस आत्मरति के सुख से उसे अलग करना कम सम्भव होता है। जहां पुरुष सेक्सुअली एक विषयी तथा अन्य व्यक्तियों से अपनी इच्छा और वस्तु के प्रति आकर्षण में भिन्न है, वहीं औरत इच्छा और चाह की निरपेक्ष वस्तु होती है। इसीलिए स्कूलों-कॉलेजों में खास दोस्तियां उग आती हैं । कुछ दोस्तियां शुद्ध प्लैटोनिक होती हैं, तो कुछ स्थूल शारीरिक। पहली अवस्था में दो पुरुष आपस में दिल खोलकर बातें करते हैं, विश्वासपात्र बनाते हैं और सबसे अधिक आत्मीयता

उस समय दिखाई जाती है जब अंतरंग डायरियों को दोस्तों को पढ़ने दिया जाता है। यहां स्थूल रूप से सेक्स की क्रियाएं न भी हों तो भी सूक्ष्म रूप से एक-दूसरे के प्रति अनुराग और समर्पण रहता है। एक-दूसरे के सपने देखे जाते हैं। गीत गाए जाते हैं।

'मेरी प्रिय सखी! तुम कितनी सुंदर हो! मेरे लिए तुम अन्य साधारण लड़कियों से अलग स्थान रखती हो। तुम एक प्रतीक हो। दुनिया में जो कुछ भी सुंदर है उसका प्रतीक ! मैं बिना किसी स्वार्थ के बिल्कुल शुद्ध रूप से तुम्हारी हूं।"

पत्रों के सम्बोधन होते हैं- मेरी प्रिय परी, डार्लिंग आदि-आदि। कई बार दो सहेलियों में एक- दूसरे के ऊपर अपनी शक्ति की आजमाइश परपीड़न के भी रूप में प्रकट होती है किंतु प्रायः इनका प्रेम-व्यवहार पारस्परिक होता है, बिना किसी संघर्ष के । यह प्रेम अपने आपमें बहुत मासूम होता है। यह शुद्धता अपने आपमें फीकी भी लगती हैं। लड़की प्रायः अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति से प्यार करना चाहती है। कई बार वह पुरुष की तुलना में किसी शक्तिशाली और ओहदेदार महिला से प्रेम करने लगती बहुत अधिक है। ऐसी महिला से, जिसको पुरुषों वाला सम्मान मिला है। पुरुष की तरह ही ये औरतें किसी व्यापार में या सिनेमा जगत् में लगी होती हैं। लड़कियों में अपनी शिक्षिका के प्रति जो अत्यधिक लगाव दिखाई देता है, उसका भी यही कारण है। कई बार स्कूल की शिक्षिका के प्रति प्रेम बहुत उत्कट होता है। कई बार प्रेम-पत्र अध्यापिकाओं को सीधे लिखे जाते हैं। चूंकि शिक्षिका को इन लड़कियों के जीवन में पौरुषीय भूमिका निभानी होती है, अतः इस बात को अधिक तरजीह दी जाती है कि वह टीचर अविवाहित हो। लड़की नहीं चाहती कि उसकी चाह की वस्तु का मालिक कोई और भी हो। इस सहज स्नेह से कामोत्तेजक सुख की ओर भी लड़की बहुत जल्दी अग्रसर हो जाती है। यह तो ठीक है कि हिंसा का भय किशोर लड़की के मन में इतना अधिक होता है कि शायद वह अपना प्रथम प्यार पुरुष की अपेक्षा औरत को ही अर्पण करती है किंतु प्राय: इस प्रकार के एकाधिक अनुभव विकास की प्रथम अवस्था का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रथम लड़का, जिसके साथ युवा लड़की एकात्म महसूस करती है, बहुत जल्दी ही उसकी आत्मा के करीब पहुंच जाता है। देवता के रूप में पुरुष ज्यादा स्थापित है। युवा लड़की अपने कौतूहल और संवेदना की प्रेरणा से चेष्टा करती है कि अब वह ज्यादा शक्तिशाली व्यक्ति का सहारा खोजे । खेल में वह प्रेम, ईर्ष्या, क्रोध, अहं और सुख-दुख सब कुछ भोग चुकी होती है। वह जानती है कि यह प्यार का एक गुजरता हुआ दौर है और उसकी अंतिम नियति है वह पुरुष, जिसको वह चाहती है और जो उसको पूर्णता दे सकेगा। पुरुष के प्रति उसके मन में एक विचित्र विरोधाभास रहता है। जहां वह उसको लुभाता है, चकित करता है, वहीं वह उसकी सेक्सुअलिटी से भयभीत है और उसके ऊपर एक देवत्व की भावना आरोपित कर देती है। वह उसकी भक्ति करती है, पूजा करती है जैसे वह सपने का राजकुमार हो या फिल्मी अभिनेता या कोई महान्

नायक। उसकी कल्पना का प्रिय पात्र हमेशा उससे दूर और अजाना रहता है। ऐसे प्रेम व्यापार में कोई समस्या भी नहीं रहती। प्रायः सामाजिक या बौद्धिक सम्मान वाले पुरुष, जो शारीरिक रूप से आकर्षक न भी हों, लड़की के जीवन में खास महत्त्व रखते हैं। ऐसे लोगों के सम्पर्क में वह सुरक्षा महसूस करती है। अत: जो दुर्लभ है, अप्राप्य है, उसका चुनाव करके लड़की ने प्रेम को एक अमूर्त व्यक्तिगत अनुभव बना दिया। वह ईर्ष्या की कड़वाहट झेलती है किंतु विना वास्तविक उलझन के; मजेदार बात तो यह है कि यह अप्राप्य अभिनायक इसलिए चुना जाता है ताकि अंतर्वर्ती कामनात्मक जीवन में आत्मरति का दृष्टिकोण ज्यादा दिनों तक चले। इस प्रकार किशोर लड़की वास्तविक अनुभव से बचती है और प्रायः एक अत्यंत गहरा काल्पनिक जीवन विकसित कर लेती है। उसका यह काल्पनिक भावनात्मक सम्बंध इसलिए होता है कि परिस्थिति की सीमा में अपना नारीत्व वह समझने लगती है। वह अपने अहं का उदात्तीकरण चाहती है और इसीलिए यदि वह पुरुप चाहती भी है तो अपने से श्रेष्ठ, जिस पर वह गर्व कर सके। यहां पर उसके अहं को ताकत दूसरे से मिलती हैं। जितना शक्तिशाली पुरुष होगा, उतना ही औरत का ईगो भी शक्तिशाली और समृद्ध होगा। पुरुष की इसी शक्ति के सामने अपने आपको समर्पित करने में वह पूरी तरह अपने को खत्म कर देना चाहती है। आत्मोत्सव के बाद आत्म-पीड़ा का यह दूसरा चरण उसके मानसिक विकास में हम पाते हैं।

अब वह वह नहीं रहना चाहती बल्कि सपने में भी जिसे प्यार करती है, ठीक वैसा ही हो जाना चाहती है। अनेक लड़कियां वास्तविक दुनिया में भी अपने सपने को बनाए रखने की चेष्टा करती रहती हैं। वे अपने जीवन में भी एक सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति, जिसके पास यश और पैसा, दोनों हों तथा जो अपने प्रेम से उनके समर्पण को गौरवान्वित करेगा, चाहती हैं।

आत्मरति की इन प्रवृत्तियों के अलावा भी अनेक युवा लड़कियां वास्तविक रूप से एक संरक्षक और गाइड खोजती हैं। घर के नियंत्रण से बाहर उनको अपना स्वतंत्र अस्तित्व बड़ा व्याकुल करता है। वे परेशान हो उठती हैं और स्वतंत्रता का निषेधक व्यवहार ही कर पाती हैं । सनकी, तुनुकमिजाज या विद्रोही लड़कियों की कहानियों में हम पढ़ते हैं कि कैसे अंत में वे एक समझदार पुरुष द्वारा पालतू बना ली जाती हैं। फिल्मों में प्रायः दिखाया जाता है कि कैसे एक उदंड लड़की पति या प्रेमी के सामने दो-एक थप्पड़ों से हो समर्पित हो जाती है। आदर्श प्रेम से सेक्सुअल प्रेम की ओर यह रूपांतरण वास्तव में इतना सरल नहीं है। अनेक लड़कियां ठगी न जाएं, इसलिए प्रेम करने से डरती हैं। अपने आदर्श पुरुष को लुभाने के लिए वे छिछोरापन तक दिखाती हैं किंतु जैसे ही पुरुष आकर्षित होता है, वे भाग खड़ी होती हैं। ऐसी लड़की तभी तक आकर्षित है, जब तक वह पुरुष उसके जीवन में अगम्य है। वह एक आम पुरुष को प्यार नहीं कर पाती। यदि उससे शादी भी हो जाए तो ठंडी बनी रहती है। असम्भव को पाने की यह चाह बहुधा लड़की का ध्यान उसकी सहेली

के प्रेमी की ओर आकर्षित कर देती है और कई बार तो वह विवाहित पुरुष भी होता है। वह इस डानजुआन से बुरी तरह प्रभावित होती है। वह उसको अपने काबू में रखने का सपना देखती है। जिसको और लड़कियां न पा सकी या अपने साथ न रख सकीं, ऐसे व्यक्ति को वह सुधारकर रख पाने की आशा करती है। यह जानते हुए भी कि वह असफल रहेगी, वह चुनाव कर बैठती है। कई लड़कियां एक पूर्ण और वास्तविक. प्रेम करने में असमर्थ होती हैं । वे जीवन-भर एक असम्भव आदर्श को उपलब्ध करने की चेष्टा करती रहती हैं।

यहां पर हम लड़की की आत्मरति और सेक्सुअल-नियति में एक विरोध पाते हैं। औरत अपने आपको 'अन्या' तभी स्वीकार सकती है जब 'अन्या' होने की प्रक्रिया में वह अपने आपको पुनः खोज निकाले। वह वस्तु होना चाहती हैं और इसलिए तर्कों का जाल उलझाती है। वह ऐसा जीवन झेलती है कि वह वस्तु ही बनी रहे। वह ऐसी वस्तु बनना चाहती है, कि जो सस्ती नहीं है, जिसको पाने में पुरुष को समस्याओं का सामना करना पड़े। पुरुष का घूरना जहां उसको अच्छा लगता है, वहीं आर-पार देखती हुई, नग्न करती हुई पुरुष की दृष्टि उसे भयभीत भी करती है। पुरुष को उसका यह परस्पर-विरोधी और असंगत व्यवहार प्रायः परेशान कर देता है। पुरुष को कामना की आग में जलाने में वह पीछे नहीं रहती, किंतु जैसे ही उसकी वासना भड़क उठती है, वैसे ही उसके मन घृणा की भावना आ जाती है। अपरिपक्व स्त्री प्राय: अपने चेहरे और अपनी आंखों को अपरिचित व्यक्ति से छिपा लेना चाहती है। अपने शरीर से कभी उसका सारा शरीर विद्रोह कर उठता है। वह होंठ पोंछने लगती है। औरत अपने आपको एक कच्चे फल की तरह पत्तों में छिपाकर रखना चाहती है ताकि पुरुष को उसकी झलक तो दिखे किंतु वह उसे पा नहीं सके । युवा लड़की की इसीलिए प्रायः आधी जंगली और आधी पालतू के रूप में तुलना की जाती है। वह बड़ा बनना चाहती है लेकिन अपने आपको निरंतर नकारती हुई।

स्वयं के नकार की यह प्रवृत्ति ही स्त्री के बहुत से आचरणों को उत्पन्न करती है। वह अपने आपसे इतनी बंधी हुई, समाज और प्रकृति के द्वारा प्रदत्त नियति को न संवारती हुई, ऐसे संदर्भ में पड़ जाती है जहां वह भविष्य को नियमित करना चाहती है किंतु पुरुष का शिकार होना नहीं चाहती। उसकी प्रत्येक चाह के पीछे एक भय है। अपने से परे जाते हुए वह डरती है। अतः पुनः वस्तु रूप अपने प्रेम से उनके समर्पण को गौरवान्वित करेगा, चाहती हैं।

आत्मरति की इन प्रवृत्तियों के अलावा भी अनेक युवा लड़कियां वास्तविक रूप से एक संरक्षक और गाइड खोजती हैं। घर के नियंत्रण से बाहर उनको अपना स्वतंत्र अस्तित्व बड़ा व्याकुल करता है। वे परेशान हो उठती हैं और स्वतंत्रता का निषेधक व्यवहार ही कर पाती हैं । सनकी, तुनुकमिजाज या विद्रोही लड़कियों की कहानियों में हम पढ़ते हैं कि कैसे अंत में वे एक समझदार पुरुष द्वारा पालतू बना ली जाती हैं। फिल्मों में प्रायः दिखाया जाता है

कि कैसे एक उदंड लड़की पति या प्रेमी के सामने दो-एक थप्पड़ों से हो समर्पित हो जाती है। आदर्श प्रेम से सेक्सुअल प्रेम की ओर यह रूपांतरण वास्तव में इतना सरल नहीं है। अनेक लड़कियां ठगी न जाएं, इसलिए प्रेम करने से डरती हैं। अपने आदर्श पुरुष को लुभाने के लिए वे छिछोरापन तक दिखाती हैं किंतु जैसे ही पुरुष आकर्षित होता है, वे भाग खड़ी होती हैं। ऐसी लड़की तभी तक आकर्षित है, जब तक वह पुरुष उसके जीवन में अगम्य है। वह एक आम पुरुष को प्यार नहीं कर पाती। यदि उससे शादी भी हो जाए तो ठंडी बनी रहती है। असम्भव को पाने की यह चाह बहुधा लड़की का ध्यान उसकी सहेली के प्रेमी की ओर आकर्षित कर देती है और कई बार तो वह विवाहित पुरुष भी होता है। वह इस डानजुआन से बुरी तरह प्रभावित होती है। वह उसको अपने काबू में रखने का सपना देखती है। जिसको और लड़कियां न पा सकी या अपने साथ न रख सकीं, ऐसे व्यक्ति को वह सुधारकर रख पाने की आशा करती है। यह जानते हुए भी कि वह असफल रहेगी, वह चुनाव कर बैठती है। कई लड़कियां एक पूर्ण और वास्तविक. प्रेम करने में असमर्थ होती हैं । वे जीवन-भर एक असम्भव आदर्श को उपलब्ध करने की चेष्टा करती रहती हैं।

यहां पर हम लड़की की आत्मरति और सेक्सुअल-नियति में एक विरोध पाते हैं। औरत अपने आपको 'अन्या' तभी स्वीकार सकती है जब 'अन्या' होने की प्रक्रिया में वह अपने आपको पुनः खोज निकाले। वह वस्तु होना चाहती हैं और इसलिए तर्कों का जाल उलझाती है। वह ऐसा जीवन झेलती है कि वह वस्तु ही बनी रहे। वह ऐसी वस्तु बनना चाहती है, कि जो सस्ती नहीं है, जिसको पाने में पुरुष को समस्याओं का सामना करना पड़े। पुरुष का घूरना जहां उसको अच्छा लगता है, वहीं आर-पार देखती हुई, नग्न करती हुई पुरुष की दृष्टि उसे भयभीत भी करती है। पुरुष को उसका यह परस्पर-विरोधी और असंगत व्यवहार प्रायः परेशान कर देता है। पुरुष को कामना की आग में जलाने में वह पीछे नहीं रहती, किंतु जैसे ही उसकी वासना भड़क उठती है, वैसे ही उसके मन घृणा की भावना आ जाती है। अपरिपक्व स्त्री प्राय: अपने चेहरे और अपनी आंखों को अपरिचित व्यक्ति से छिपा लेना चाहती है। अपने शरीर से कभी उसका सारा शरीर विद्रोह कर उठता है। वह होंठ पोंछने लगती है। औरत अपने आपको एक कच्चे फल की तरह पत्तों में छिपाकर रखना चाहती है ताकि पुरुष को उसकी झलक तो दिखे किंतु वह उसे पा नहीं सके । युवा लड़की की इसीलिए प्रायः आधी जंगली और आधी पालतू के रूप में तुलना की जाती है। वह बड़ा बनना चाहती है लेकिन अपने आपको निरंतर नकारती हुई।

स्वयं के नकार की यह प्रवृत्ति ही स्त्री के बहुत से आचरणों को उत्पन्न करती है। वह अपने आपसे इतनी बंधी हुई, समाज और प्रकृति के द्वारा प्रदत्त नियति को न संवारती हुई, ऐसे संदर्भ में पड़ जाती है जहां वह भविष्य को नियमित करना चाहती है किंतु पुरुष का शिकार होना नहीं चाहती। उसकी प्रत्येक चाह के पीछे एक भय है। अपने से परे जाते हुए

वह डरती है। अतः पुनः वस्तु रूप में निष्क्रियता की ही खोज उसका जीवन बन जाती है। शुरू से उसमें हम हर प्रकार की निषेधक जिद, बेईमानी और उलझाव तथा द्विअर्थिता पाते हैं। वह पलटी करना तो पसंद करती है लेकिन गहरी समस्या से घबराती है। वह सब पर हंसती है, वयस्क स्त्रियों के भोलेपन, समर्पण और शरीर पर भी। प्रेम के लिए उसके पास एक ही कारण होता है-पुरुष को बेवकूफ बनाने की चाह । इन्हीं कारणों से लड़की हंसी-मजाक के द्वारा अपनी उलझनों पर काबू पाना चाहती है। वह शब्दों और तस्वीरों से खेलती है। इस खतरनाक जादू को खत्म करने के लिए यदि युवा लड़की को कोई प्यार भी करता है तो अपने साथी के सामने वह उसका उपहास करने से नहीं चूकती।

इस उम्र में लड़कियां प्रायः कड़ी भाषा बोलती हैं और जोरों से हंसती हैं। कई लड़कियों की भाषा इतनी खराब होती है कि उनका भाई भी उनके सामने शर्म खाए। यहां लड़की का उद्देश्य यह होता है कि इस प्रकार के व्यवहार से वह अपनी सेक्सुअलिटी को नकार सके। सेक्स को वह एक यांत्रिक क्रिया मानती है। भाषा और व्यवहार से वह अपने से बड़ों को चुनौती देती है। यह एक प्रकार की स्वैच्छिक विकृति है। समाज और प्रकृति का मजाक बनाकर लड़कियां बहुत बार अजीबोगरीब हरकतें करती हैं। कक्षा में पेंसिल चबाना या चूस खाना या बिना किसी रोग के दवाएं खाना ऐसी बहुत-सी अजीबोगरीब हरकतें वे अपना लेती हैं। इस तरह की तमाम हरकतें बड़ी बेतुकी और जुगुप्साकारक होती हैं लेकिन वे ही उसको आकर्षित करती हैं। युवा लड़की अपने शरीर, मासिक- धर्म और वयस्क सेक्सुअल व्यवहार से घबराने लगती है और ऊपरी तौर पर वह जताना चाहती है कि मुझे अपनी नियति से भय नहीं। कभी वह हथेलियों को सिगरेट से जला लेती है, कभी हाथ की कोई नस काट लेती है। पार्टी में न जाना पड़े इसलिए पैर में चोट लगा लेना या बिना बात के बुखार आ जाना साधारण बातें हैं। परपीड़न और आत्म-पीड़न की ये घटनाएं एक ही साथ सेक्सुअल अनुभव और उसके विरोधाभास का प्रतिनिधित्व करती हैं।

चूंकि स्त्री पुरुष का निष्क्रिय शिकार होने को बाध्य है, अत: इस उम्र में, वह कष्ट झेलकर भी अपनी स्वाधीनता का अस्तित्व स्थापित करना चाहती है। अपने को नकारकर और मिटाकर वह कौमार्य-भंग की क्षति का विरोध करती है। एक स्वतंत्र व्यक्ति की हैसियत से वह अपने शरीर को, जो उसके नियंत्रण में है, पीड़ा दिए बिना नहीं मानती। वह वही शरीर है जो पुरुष के प्रति समर्पित होगा। उसके भीतर के परपीड़न और आत्म-पीड़न के भाव वास्तव में एक मौलिक पाखंड लिए होते हैं। हिंसा के ये ज्वार वास्तव में त्याग और निष्क्रियता की गहराई से उत्पन्न होते हैं। एक लड़का जब अपने पिता के प्रति विद्रोह करता है, दुनिया को नकारता है और दोस्तों से झगड़ा करता है, तब उसकी हिंसा प्रभावी होती है। वह अपनी विषयिता को अपनी बांहों के बल पर अर्जित करता है। दूसरे शब्दों में, वह अपने शब्द जगत् पर आरोपित करना चाहता है किंतु किशोरी लड़की को न तो अपने

आपको स्वीकारना है और न जगत् पर कुछ आरोपित करना है, क्योंकि वह जगत् का कोई विरोध नहीं कर पाएगी और न ही कोई अतिक्रमण। अत: उसके विरोध के उबाल में एक प्रकार की भयंकर निराशा हम पाते हैं। जब वह क्रुद्ध होती है तो गिलास तोड़ती है, खिड़की पर कुछ दे मारती है किंतु उसके क्रोध में अपने भाग्य को जीतने की इच्छा नहीं होती। यह एक प्रकार का प्रतिशोधात्मक विद्रोह बनकर रह जाता है। वह अपनी वर्तमान असहायता के द्वारा मिलने वाली गुलामी का विरोध करती है। मजे की बात तो यह है कि उसके लिए ये सब विस्फोट उसके बंधनों को काटने के बजाय और अधिक मजबूत कर देते हैं।

अपने प्रति इस प्रकार का नकारात्मक दृष्टिकोण आत्म-पीड़ा का भाव पैदा करता है। स्त्री अपनी पीड़ा में रस लेने लगती है। जहां एक लड़का किसी भी प्रकार के आघात का निदान खोजता है, वहीं लड़की अपने बचपन की दुनिया से बंधती है। वह अपनी विकृति से छुटकारा पाने की अपेक्षा अपने बंधनों में ही जकड़ी हुई छटपटाती रहती है। यह बंधन हमेशा परिवार और समाज का नहीं होता। यह एक प्रकार की मानसिक दासता है जिसके कारण यदि स्त्री को सुविधा भी मिले तब भी वह उससे निकलने की चेष्टा नहीं करती। उसके मानस की संरचना निषेधक, प्रतिक्रियात्मक और संकेतात्मक नहीं रहती है।

कई उदाहरणों में यह स्थिति एक गम्भीर रूप लेकर अनेक मानसिक व्याधियों तक में प्रकट होती है। कुछ करते हुए भी न करना, अपने प्रति पूरी तरह उद्विग्न और सचेत होने के बावजूद किसी पुरुष का शिकार हो जाना, ये सब किशोरी स्त्री की सेक्सुअलिटी के खतरनाक खेल हैं । युवा लड़की के सारे अपराधी आचरण इसी विकृति और विरोधाभास के द्योतक हैं।

चौर्यवृत्ति, गुमनाम पत्र भेजने, किसी को बिना किसी कारण और मजाक के लिए ही परेशान करने और अफवाह उड़ाने का आचरण हम रोजमर्रा की जिंदगी में देखते हैं। इस प्रकार के आचरण से लड़की अपनी शक्ति को गुप्त रूप से संचालित करती है। युवा लड़की का आज्ञा न मानना, समाज को चुनौती देना और बंधे हुए नियमों पर न चलना, कई बार बिना किसी ठोस कारण के केवल उत्तेजक आत्म-प्रदर्शन के लिए होता है। इसमें कोई शक नहीं कि वस्तु-रूप में परिणत न होने के विरोध के कारण प्राय: वह अंत में एक वस्तु ही बन जाती है। प्रत्येक निषेधक मनोग्रसित की साधारण प्रतिक्रिया होती है। एक छोटी-सी प्रतिक्रिया के रूप में उन्मादग्रस्त औरत यह चाह सकती है कि उसको लकवा हो जाए और सच में उत्तेजना के कारण उसके जीवन में ऐसा हो भी सकता है। हम यह जानते. हैं कि किसी भी मानसिक व्याधि का निदान उसको भूल जाना ही है।

एक स्वस्थ युवा लड़की के व्यवहार भी न्यूरोटिक होने लगते हैं। मीनिया, मानसिक विकृति, चेहरे के खिंचाव और मांसपेशियों के तनाव आदि का कारण इच्छा का विरोधाभास और द्विअर्थिता की स्थिति है। यह साधारण बात है कि स्त्री घर में झगड़ा करके

भाग जाने की धमकी दे या कुछ दिनों कहीं बाहर घूम भी आए लेकिन वह लौटकर फिर पुराने बंधनों में अपने ही समझौते से आ जाती है। वह कभी यथार्थ रूप से अपने परिवार से पूरी तरह नहीं कटती। वह पलायन का नाटक भी करती है। यदि कोई उससे सच में घर से दूर होने का सुझाव रखे तो वह मानती नहीं। वह घर छोड़ना भी चाहती है और नहीं भी। घर से भागते हुए अनेक बार वह कल्पना करती है कि वह एक वेश्या है और इस भूमिका को वह निभाती भी है-- भड़कीले मेकअप, बनाव-शृंगार, राह चलते हुए घूरना आदि। हम किसी भी तरह सोचें किंतु वह अपने आपमें विद्रोह करती है।

यह उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के प्रत्येक आचरण के द्वारा युवा लड़की सामाजिक और प्राकृतिक व्यवस्था का अतिक्रमण करना नहीं चाहती, न ही वह सम्भावना की सीमा का विस्तारण चाहती है और न वह स्थापित मूल्यों का पुनः मूल्यांकन ही करती है। वह ऐसे जगत् की सीमा में, जिसकी नियति और दायरे संरक्षित हैं, केवल विद्रोह प्रदर्शन करके ही संतुष्ट हो जाती है। इस प्रकार का दृष्टिकोण मौलिक रूप से सिद्ध करता है कि युवा लड़की वास्तव में जिस तथ्य से परिभाषित होती है, वह है उसकी अप्रामाणिकता की पीड़ा। वह दुनिया को और अपनी नियति को नकारती हुई भी उसे यथावत् स्वीकार कर लेती है। परिस्थितिक सीमा का सामना निषेधक रूप से करने के अलावा, सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसी में सीमित रहकर वह परिस्थितिजन्य कमियों की सम्पूर्ति की चेष्टा करती हैं। यदि वह भविष्य से भयभीत है और वर्तमान में असंतुष्ट तो बच्ची ही बनी रहना चाहती है। वह व्यस्त है, किंतु कुछ नहीं करती और चूंकि कुछ नहीं करती इसलिए उसके पास कुछ है भी नहीं। वह खाली है, अभावग्रस्त है। अपने इस खालीपन को वह नाटकीयता और झूठ से भरती है। प्रायः लोगों को उससे शिकायत होती है कि वह मनगढंत कहानियां बनाती है। सत्य तो यह है कि झूठ और दुराव-छिपाव उसके लिए अनिवार्य हो जाते हैं । सोलह वर्ष की उम्र तक एक औरत कई दर्दनाक दौरों से गुजर चुकी होती है। किशोरावस्था, मासिक-धर्म, सेक्स-भावना का उत्पन्न होना, पहली चाह, आवेग और कामना का पहला बुखार, भय, चिंता और दुश्चिंता आदि बहुत से अनिश्चित और संदिग्ध अनुभवों को उसने अपने हित में छिपा रखा है। उन अनुभवों के ऊपर वह जीवन-भर परतें चढ़ाती रहती है। वह चेष्टा करती है कि कोई उसके जीवन में हर महीने घटने वाली घटनाओं को जान न ले।

किशोर लड़की के सामने सबसे बड़ी भूमिका अपने आपको एक मोहक वस्तु में परिणत करने की रहती है। अपने आपको वस्तु-रूप में देखने की इच्छा स्वयं से विलग कर देती है। स्त्री सहज अभिव्यक्ति का प्रयास करती है लेकिन अनुग्रहपूर्ण कौतूहल से मुक्त नहीं हो पाती। वातीत की ओर जाने की अपेक्षा वह अपनी अंतर्वर्तिता में ही स्थायी हो जाना चाहती है। युवा लड़की अब केवल समर्पण के लिए तैयार एक फूल या पका फल बन जाती है, जिसको कोई भोगेगा। पुरुष शुरू में युवा लड़की के इन हाव-भावों को प्रोत्साहन देता है,

बाद में चाहे शिकायत करे या परेशान हो । उसकी कमजोरी यह है कि वह केवल इसी प्रकार की लड़की से आकर्षित हो सकता है। निष्कपट लड़की के प्रति प्रायः वह उदासीन रहता है। ऐसी लड़की खुद ही समर्पित और शिकार की तरह जाल में फंसने को आतुर लगती है। पुरुष के लिए लड़की को पाना एक चेष्टा है। लड़की जितनी कमजोर होती है, उतनी ही वह अपनी कमजोरी ताकतवर उपकरण की तरह इस्तेमाल करती है। चूंकि वह प्रकट रूप में न तो आक्रामक हो सकती है और न आघात कर सकती है, इसलिए वह छल-बल, युक्ति और दांव-पेंच अपनाने से बाज नहीं आती। यह सत्य है कि वह अपने समर्पण का एक मिथक निर्मित करती है। वह किसी के द्वारा नियंत्रित होना चाहती है। उसका यह धोखा और छलावा जान-बूझकर किया गया षड्यंत्र नहीं होता। बचपन में जिस नाटकीयता को वह सीख चुकी होती है, अब भी उसकी परिस्थिति उससे उसी की मांग करती है। वह समझ जाती है कि आने वाले भविष्य पर उसका कोई नियंत्रण नहीं है। वह तात्कालिकता में अपने बचपन की धृष्टताएं जीने लगती है। वह सपने देखती है क्योंकि सपने काल और बाधाओं से परे होते हैं । यदि किसी के पास वास्तविक परियोजना हो तो वह समय का ध्यान रखेगा और अपनी वास्तविक शक्ति को तौलना चाहेगा। युवा लड़की अपने लिए सब कुछ चाहती है क्योंकि ऐसा कुछ भी नहीं जो उसको करना है। वयस्क लोग उसको हमेशा ज्यादा सावधान और फीके लगते हैं। उसको चूंकि अभी तक वास्तविकता का सामना नहीं करना पड़ा है, अत: वह बड़ी विलक्षण प्रतिज्ञाओं का भी निदान करने से नहीं घबराती। उसकी अनिश्चितता आत्म-नियंत्रण के अभाव के कारण है । वह दूसरों की प्रशंसा चाहती है, फिर वह दूसरा चाहे कितना ही अपरिचित क्यों न हो। उसका यह दोहरा व्यक्तित्व उसको व्यर्थ ही भावुक और सतही बना देता है। थोड़ी-सी आलोचना और थोड़ी-सी डांट उसको उखाड़ने के लिए काफी होती है। अपनी चेष्टा से वह अपना मूल्य नहीं प्राप्त करती बल्कि दूसरों की सनक-भरी पसंदगी और अनुमोदन चाहती है। इस प्रकार से उपलब्ध मानसिकता हर बात को केवल संख्याओं से तौलती. है। यही कारण है कि लड़की अपने आपको सबसे अलग अपवाद, असाधारण, विरल और प्रशंसनीय समझती है। उसके संगी-साथी उसके दुश्मन और प्रतियोगी होते हैं। वह उनसे जलती है। प्रायः उनको निंदा करती है।

स्पष्टतः ये बुराइयां किशोर लड़की की परिस्थिति से पैदा होती हैं । परावलम्बित विजय को इस उम्र में औरत सीखती है कि अब कुछ भी जीतने को नहीं, कि उसका भविष्य पुरुष की सुख- सुविधा पर निर्भर करता है, कि उसको अपनी आत्मा का परित्याग करना है। इसी उम्र के सामाजिक और सेक्सुअल स्तर पर नई आकांक्षाएं पैदा होती हैं किंतु वे अतृप्त ही रह जाती हैं। काम करने का सारा उतावलापन, चाहे वह शारीरिक हो या आत्मिक, निष्फल हो जाता है। वह शायद ही अपना संतुलन रख पाती है। उसके विचलन, आंसू, स्नायविक, संक्रांति और दुर्बलता का कारण शरीर की कमजोरी नहीं, बल्कि एक गम्भीर असंतुलन की

स्थिति है। सब कुछ के बावजूद यह सम्भव है कि युवा लड़की प्रामाणिक रूप से अपनी स्थिति स्वीकार कर ले।

युवा लड़की प्रायः परेशान तथा गम्भीर विरोधाभास की शिकार होती है। यह जटिलता उसको समृद्ध बनाती है। उसका आंतरिक जीवन उसके भाई की तुलना में ज्यादा गहराई से विकसित होता है। वह अपनी भावनाओं के प्रति ज्यादा सचेत रहती है। उसमें गहरी दृष्टि होती है। वह नैतिक यथास्थिति के सम्मुख कम समर्पण करती है। स्त्री अपनी स्थिति की द्विअर्थिता से परिचित होती है। कई बार अपने बांझ विरोधों के परे, साहस से व्यवस्थात्मक आशावादिता से बने-बनाए मूल्यों और सतही नैतिकता के बारे में वह प्रश्न उठा सकती है। हम उसमें पाते हैं एक ऐसा विद्रोह, जो अपने समकालीन समाज में स्वीकृत सिद्धांतों और स्थापित मूल्यों को झकझोरकर रख देता है। ऐसी स्थिति में कई बार वह पुरुषों की कठोर दुनिया से परे एक प्रामाणिक व्यक्ति की तरह प्रकट होती है।

स्त्री की निष्क्रियता एक ऐसी दुर्लभ ग्रहण-शक्ति को जन्म देती है, जिसके कारण वह समझदार, स्नेही और दूसरों का खयाल रखने वाली तथा निष्ठावान बन जाती है। यह जरूरी नहीं कि वह हमेशा आत्म-पूजा ही करे या धोखे और छलावे का सहारा ले। उसका प्यार यदि एक बार कोई पा जाता है तो वह अपने आपको न्यौछावर करने से नहीं चूकती। ऐसे अनेक उपन्यास हैं जिनकी नायिकाएं अपमान, झूठ और ढोंग के मुखौटों में नहीं रहतीं। उन्होंने प्यार करना चाहा है, समझना चाहा है और अपनी सही उदारता में दूसरे को हमेशा कुछ देना चाहा है। अपने ही आपमें सुसंगत और समझदार ऐसी अनेक लड़कियां हैं, जो औरत होकर महान् प्रेम कर सकती हैं।

स्त्री को प्रेम नहीं मिल पाता, कविता भले मिल जाए क्योंकि वह कर्म नहीं करती। एक छोटी- सी मुस्कान उसके भीतर ध्वनियों-प्रतिध्वनियों का सिलसिला जगा देती है। बने-बनाए चौखटों में रहते हुए उन पुरुषों के साथ, जिनके चेहरे जिंदगी के अनुसार ढल चुके हैं, यही औरत सम्बंध बनाती है। एक युवा पुरुष की तुलना में वह ज्यादा आवेगमय होती है। वस्तुपरकता को निष्क्रिय भाव से वह एक बच्चे की तरह देखती-भर है। चीजों के भीतर डूबने के बदले वह उनके प्रतीक, उनके आकार और उनके रूपांतरण को समझती है। अपने संवादों, पत्रों और खींची हुई तस्वीरों में वह एक मौलिक संवेदना का परिचय देती है। वह दुनिया की चीजों में इतने उत्साह के साथ डूबती है कि उपलब्ध कुछ नहीं कर पाती लेकिन उसकी संवेदनाएं जरूर प्रखर हो जाती हैं। अपने में खाली और असीमित होकर वह अपने निषेध की गहराई से सबको पुकारती है, सबमें लय हो जाना चाहती है। इसलिए उसमें प्रकृति के लिए प्रेम तथा पूजा का भाव लड़के की अपेक्षा अधिक होता है। अतः सारी दुनिया को ही वह अपना समझती है। फूलों की खुशबू में, नीले आकाश में, पत्तों से झरते ओस-कणों में और धड़कते हुए जंगलों में वह एक पवित्र कविता के सौंदर्य का बोध पाती

है। सूरज की किरणों के साथ उसके सारे शरीर में एक सिहरन दौड़ जाती है। उसके लिए प्रकृति जाना मानो एक धार्मिक अनुभूति है। इस शाश्वत प्रकृति के सामने जागतिक घटनाएं और कठोर नैतिकताएं चिथड़ों में बिखर जाती हैं। वह एक अजीबोगरीब उन्माद में प्रकृति में शरण पाती है। घर-परिवार, मां का बंधन, परम्परा और रोजमर्रा की नियमितता की परेशानी से वह पलायन कर सकती है। समाज की सदस्य होने के नाते वह वयस्क जीवन में औरत होने के लिए अपनी स्वतंत्रता का परित्याग करती है। जहां पेड़ों- पौधों और पालतू जानवरों के बीच वह एक मानव-प्राणी है, जहां किसी निर्जन एकांत में वह अपनी आत्मा की आवाज सुन सकती है, जहां विस्मृत आकाश उसको अनुभवातीत जगत् की एक हल्की झांकी दिखा देता है, वहीं वह अपनी वास्तविक स्थिति की परिसीमा को नजरंदाज भी कर पाती है। झरनों के संगीत में, रोशनी की चमक में, उसकी आंखों में जो आंसू आते हैं, वे उसके हृदय की आवाज हैं। फूलों के रंग एक अबूझ भाषा बोलते हैं। इन सबके बावजूद एक सच्चाई बार-बार स्पष्ट तथा स्पष्टतर होती जाती है, वह है-जिंदगी। अस्तित्व केवल एक अमूर्त नियति नहीं, जिसको रेखाओं और आंकड़ों में सीमित किया जा सके, बल्कि वह एक समुद्र और वास्तविक तथा मांसल भविष्य है। जहां मां की नजरों में अपने शरीर के लिए लड़की लज्जित होती थी, वहीं अब वह बड़े अभिमान के साथ अपने शरीर की तुलना फूलों से करती है। वह किसी भौरे की प्रतीक्षा करती है। शरीर अब उसके लिए आनंद और सौंदर्य की वस्तु है। शरीर, जो जमीन है और आकाश भी। वह अपने आपको, अपनी असीमित चेतना को, प्रकृति में फैला देती है। उसका अस्तित्व धरती की तरह पुष्ट और विजयी है। प्रकृति से परे कई बार वह वास्तविकता को एक दूरी बनाए रखकर ही देखती है। अपने आपको वह भाव-समाधि में खो देना चाहती है। धर्म में अत्यधिक श्रद्धा और आस्था, अपने आपको उस परम के प्रति पूर्णरूप से समर्पित कर देना या कई बार मानवता के प्रति असीम करुणा से भर उठना एक औरत के लिए ही सम्भव है। यह उसका उल्लास और उत्कंठा है जो कई बार इतिहास में सारे विरोधों के बावजूद औरत की महानतम साहसिकता में प्रकट हुआ है। दुनिया के इतिहास और धर्म के क्षेत्र में ऐसे कई उदाहरण हमें मिलेंगे।

चूंकि स्त्री समकालीन समाज में सम्पूर्ण रूप से एकात्मिक नहीं है इसलिए उसकी सारी निष्ठा मानव-सीमा से परे कई बार एक रहस्यमय जगत् में प्रवेश करने के लिए लालायित हो उठती है। हम यह तो जरूर मानेंगे कि अपने स्वभाव की समृद्धि तथा कई बार परिस्थितियों की अनुकूलता के कारण ऐसी स्त्रियों का उदाहरण देखने को मिलता है, जिन्होंने वयस्क जीवन में अपनी किशोरावस्था के सपनों को पूर्ण किया है, लेकिन ये सब अपवाद ही हैं। दुनिया और समाज के खिलाफ खड़ी औरत यह तो समझ जाती है कि पुरुष की प्रतियोगिता में यह संघर्ष बराबरी का नहीं। अंत में हार तथा समझौता ही औरत की नियति है। औरत का संघर्ष और सामना यदि एक प्रतीकात्मक क्रांति है तो हार अनिवार्य है। वह

सपने देखती है, आशा करती है, किंतु है तो निष्क्रिय ही। युवा लड़की का यह सारा विरोध वयस्क लोगों के मन में दया का ही भाव. जगाता है। वे उससे आशा करते हैं कि वह अपने सारे विद्रोह और बचपने को छोड़कर जिंदगी को एक औरत के दृष्टिकोण से औरत की तरह स्वीकार कर ले, समझौता कर ले। युवा लड़की हताश होकर धीरे-धीरे अपना बचपन दफना देती है। अपने स्वतंत्र और धृष्ट अस्तित्व को नकारकर वह समर्पित रूप से वयस्कों की दुनिया में प्रवेश कर जाती है।

यह ठीक है कि हम उम्र के आधार पर कोई स्पष्ट वर्गीकरण नहीं कर सकते। अनेक नई औरतें आजीवन बच्ची ही रह जाती हैं। जिन आचरणों का हमने जिक्र किया है, ये कई बार बड़ी उम्र तक भी बने रहते हैं, फिर भी एक 15 वर्ष की किशोरी के जीवन में कल्पना अधिक रहती है। अंत में युवा लड़की अपना नारीत्व स्वीकार करती है। प्रायः बिना कीमत के हासिल यौवन के सुख और संतोष को भोगती है। इस उम्र में अब भी उसके ऊपर कोई खास जिम्मेदारी नहीं होती। वह अपने वर्तमान को न खाली देखती है और न भ्रामक। वर्तमान व्यर्थता की क्षतिपूर्ति वह अपने भविष्य के सपनों से करती है। वह आज में रहती हुई कल की प्रतीक्षा करती है। जैसे-जैसे वह बड़ी होती है, उसकी मां की शक्ति उसके ऊपर अधिक हावी होती जाती है। वह गृहस्थी के कामों में मां की अधीनता या छाया में काम करना पसंद नहीं करती। वह अपना घर चाहती है, अपने बच्चे चाहती है। कई बार मां के साथ एक प्रकार की होड़ और प्रतियोगिता की भावना उसमें पैदा हो जाती है। वह सोचती है कि उसकी मां का अपना समय था, जब उसके बच्चे थे, जब उसको काम करना पड़ता था। घर से बाहर काम करने वाली लड़की घर में रहना पसंद नहीं करती क्योंकि अब भी उससे एक स्वतंत्र व्यक्ति की तरह व्यवहार नहीं किया जाता।

अब वह रोमांटिक प्रेम के बदले शादी के बारे में अधिक सोचती है। अपने भावी पति से वह सर्वांगीण सुरक्षा और संरक्षण की आशा करती है। प्रेम के समर्पण में उसकी भावना यह रहती है- "लो मैंने भी तो सब कुछ दिया, जो भी कुछ था मुझमें, अब मेरे बच्चे होंगे, मेरा घर होगा, मेरी रसोई होगी। मैं अपनी मां की तरह बनूंगी।" प्राय: वयस्क लड़कियों के लिए, चाहे वे मेहनत से काम करतो हों या फिर सतही जिंदगी बिताती हों, घर में बंद रहती हों या थोड़ी-बहुत स्वतंत्रता का भोग करती हों, एक पति को पाना, जो हमेशा उनको प्यार करता रहेगा, जिंदगी का सबसे महत्त्वपूर्ण मकसद हो जाता है। उनकी यह अपेक्षा उनके समकालीन जीवन के लिए बड़ी नुकसानदेह होती है। लड़की अपनी सहेलियों से ईर्ष्या करने लगती है। आपस में होड़ और प्रतियोगिता का भाव आ जाता है। उसे सीधी- सादी और बेवकूफ सहेलियों पर गुस्सा आता है, और तेज सहेलियों से भय लगता है। पुरुष के लिए यह अधैर्य तथा आकांक्षा की मनोवृत्ति प्रायः युवा लड़की के दृष्टिकोण को सीमित कर देती है। वह अहंवादी और कठोर होने लगती है। तरह-तरह के दांव-पेंच अपनाने से वह

नहीं चूकती। यदि सपनों का राजकुमार आने में देर करता है, तब उसके मन में कडुवाहट और निराशा भरने लगती है। लड़की का चरित्र, स्वभाव और आचरण उसकी परिस्थिति की उपज हैं। यदि परिस्थितियां परिवर्तित हों, सुधारी जाएं तो लड़की दूसरा रास्ता भी अपना सकती है। आज यह सम्भव हो रहा है कि अपने भविष्य की बागडोर स्त्री अपने हाथ में ले। अब वह अपने भावनात्मक और सेक्सुअल द्वंद्व तथा विरोधाभासों से काफी हटकर जी सकती है। इसके बावजूद यदि वह स्वतंत्र रहना चाहती हैं, तब भी उसके जीवन में पुरुष और प्रेम का महत्त्वपूर्ण स्थान रह जाता है। पूरी तरह अपनी परियोजनाओं में निमान रहने पर सम्भव है कि औरत होने की नियति से वह चूक जाए। यह भावना उसके सुस्पष्ट उद्देश्यों को कमजोर कर देती है। फिर भी कामकाजी औरत यह तो चेष्टा करती ही है कि उसकी व्यावसायिक सफलता और शुद्ध नारीजनित उपलब्धियां एकबद्ध हो सकें। नतीजे में न केवल उसको अपने बनाव-शृंगार के लिए अधिक समय खर्च करना पड़ता है, बल्कि इससे भी गम्भीर बात तो यह है कि वह अपने ही भीतर बंटी हुई रहती है। जहां एक पुरुष विद्यार्थी कक्षा में नियमानुसार उपस्थित होने के बाद भी अपनी प्रेरणाओं और विचारों के लिए अलग से समय निकाल लेता है, वहीं लड़की की कल्पना उसको दूसरी दिशा में ले जाती है। खाली समय में अपने उद्देश्यों से सम्बंधित विषयों पर सोचने के बदले वह अपने व्यक्तिगत रूप-रंग, पुरुष और प्रेम के विषय में ज्यादा सोचने लगती है। यह उसकी मानसिक कमजोरी नहीं या काम को ध्यान से कर पाने की अक्षमता नहीं, बल्कि यौनगत विभेद है जो किसी भी तरह समाधेय नहीं। इन विरोधी रुचियों में सामंजस्य स्थापित करना बड़ा कठिन है। इससे एक ऐसा दुष्चक्र स्थापित होता है जिसमें हम देखते हैं कि औरत आश्चर्यजनक रूप से पति को पाने के बाद पढ़ाई-लिखाई, संगीत और अपना व्यवसाय छोड़ बैठती है। समाज का दबाव उसकी वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षाओं को हमेशा नियंत्रित करना चाहेगा और उसको विवाह में संगतता तथा सामाजिक स्थिति पाने को कहेगा। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक हो जाता है कि स्त्री अपनी चेष्टा से दुनिया में अपना स्थान न बनाए और यदि बनाए, भी तो कमजोर कदम उठाकर। जब तक पूर्ण आर्थिक बराबरी नहीं हो जाती, तब तक समाज में औरत हमेशा अपनी उपलब्धियों को छोटा ही करती रहेगी। वह देखती है कि उसके कमजोर प्रयास की तुलना में दूसरी औरतें केवल पत्नी या रखैल होकर पुरुष की दी हुई सुविधाओं के कारण समाज में ज्यादा स्थापित हैं। यह पर्यवेक्षण उसकी कुंठा का कारण बनता है।

वयस्कता प्राप्त करने के बावजूद जीवन के प्रति युवती की शिक्षा पूरी नहीं हो जाती। उसके जीवन का एक और अध्याय खुलना बाकी रहता है और वह है-सेक्सुअल दिशा का । यदि बचपन में कोई दुर्घटना हो गई है या गलत शिक्षा मिली है तो बड़ी होने के बाद भी लड़की में सेक्स के प्रति घृणा और भय बना रहता है। यह भी हो सकता है कि परिस्थिति के कारण एक लड़की को अपनी इच्छा के विरुद्ध भी लम्बे समय तक कुंवारी रहना पड़े।

सेक्स उसके जीवन में एक नया अनुभव होता है, जो अदेखी परिस्थितियों में घटता है, जिसकी प्रतिक्रिया स्वतंत्र रूप से होती है। अब हम अगले अध्याय की ओर प्रस्थान करेंगे।

यौन-प्रशिक्षण

स्त्री में भी पुरुष की ही तरह बचपन से काम-इच्छा उत्पन्न हो जाती है। स्त्री को उसका ज्ञान पुस्तकों और व्यवहार-जगत् से प्राप्त होता है। बचपन से बालिग होने तक यह ज्ञान मिलता रहता है। प्रारम्भ में मुख द्वारा, फिर मल द्वारा और अंत में जननेंद्रियों द्वारा किसी भी युवती के काम- सम्बंधी अनुभव उसकी बचपन की काम-सम्बंधी क्रियाओं के विकसित व विस्तृत रूप नहीं होते। वे नए अनुभव अतीत के अनुभवों से भिन्न होते हैं । बहुधा ये आशा के विरुद्ध ही होते हैं और आनंददायी भी नहीं होते। जीवन में ये अनुभव एक नई घटना के रूप में घटित होते हैं। इन अनुभवों के दौरान युवतियों को जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कई अवस्थाओं में यह जटिल समय सहजता से बीत जाता है, पर कुछ ऐसी दुःखद घटनाएं भी होती हैं, जहां समस्या का अंत मृत्यु और पागलपन तक में होता है। स्त्री का भविष्य उसके प्रथम काम-अनुभव के प्रति हुई प्रतिक्रिया से अत्यधिक प्रभावित होता है। मानसिक रोगों के सभी चिकित्सकों ने स्त्री के प्रथम काम-अनुभव पर विशेष जोर दिया है। इससे स्त्री का पूरा भविष्य प्रभावित होता है।

यह समस्या पुरुषों और स्त्रियों में शारीरिक, सामाजिक और मानसिक हर रूप में भिन्न होती है। पुरुष में बचपन से लेकर बालिग होने तक इस काम-अनुभव और क्रिया में परिवर्तन सरलता से होता है। उसे काम-आनंद किसी अन्य के साथ प्राप्त होता है। उसकी इच्छा का केंद्र भी अन्य व्यक्ति होता है। यह इच्छा उसके अपने व्यक्तित्व तक ही सीमित नहीं रहती। लिंग के तनाव द्वारा यह इच्छा व्यक्त होती है। पुरुष लिंग, हाथ और मुंह सहित अपने साथी की ओर बढ़ता है परंतु क्रिया का केंद्र वह स्वयं रहता है। वह व्यक्ति-रूप होता है, जो वस्तु से भिन्न है, जिसे वह देखता है। अपनी स्वतंत्रता नष्ट किए बिना वह अन्य की ओर बढ़ता है। स्त्री-शरीर के द्वारा ही वह उस विशेष स्थिति तक पहुंचता है, जिसकी उसे चाह रहती है। वीर्य-पतन के पश्चात् पुरुष अशांति और परेशान करने वाले स्रोतों से मुक्त हो जाता है मानो उसे पूर्ण शांति मिलती है।

सेक्सजनित अनुभव स्त्रियों की जटिल स्थिति प्रतिबिम्बित करते हैं। स्त्री अपने व्यक्तिगत जीवन में अपनी जाति-विशेष की प्रबल इच्छाओं को व्यक्त नहीं कर सकती। वह तो अन्य जाति के हाथों शिकार होती रहती है। उस जाति-विशेष की रुचियां स्त्री की रुचियों से नितांत भिन्न होती हैं। अन्य प्राणियों की अपेक्षा मानव-जाति की स्त्री में यह अंतर अधिक होता है। योनि और भगशिश्न में असमानता के कारण यह अंतर स्पष्ट दिखाई पड़ता

है। बचपन में भगशिश्न ही स्त्री की काम-इच्छा का केंद्र होता है। कुछ मानसिक रोगों के चिकित्सकों का कथन है कि बचपन से ही कुछ लड़कियों में यौन-संवेदनशीलता रहती है। यह एक गौण विवादास्पद विषय है। भगशिश्न की बनावट बचपन से बालिग होने तक एक-सी रहती है। भगशिश्न द्वार स्त्री की कामोत्तेजना पुरुष की कामोत्तेजना की ही तरह बहुत-कुछ यांत्रिक ढंग से घटित होती है। परोक्ष रूप में यह स्वाभाविक रतिक्रिया से सम्बंधित होती है। इसका जनन-क्रिया से कोई सम्बंध नहीं होता।

योनि-द्वार द्वारा ही पुरुष स्त्री में प्रवेश करता है और उसकी जनन-शक्ति को सक्रिय करता है। । पुरुष के हस्तक्षेप द्वारा ही मानो यह अंग-विशेष काम-उद्विग्नता का केंद्र बनता है। इस क्रिया को एक रूप में सीमा-भंग भी कह सकते हैं। प्राचीन काल में तो वास्तविक व बनावटी बलात्कार द्वारा ही स्त्री को उसके बचपन के विश्व से दूर कर पत्नी के रूप में लाया जाता था। वास्तव में यह एक तरह का बल-प्रयोग है जो एक लड़की को औरत में परिवर्तित कर देता है। आज भी कुछ ऐसे ही शब्दों, जैसे कन्या के कौमार्य को दूर करना, कौमार्य को भंग करना आदि का प्रयोग होता है। योनिक्षत क्रमशः विकसित क्रिया नहीं होती। शरीर-रचनाशास्त्र इस विषय को बहुत स्पष्ट नहीं करता। किनसे रिपोर्ट के अनुसार वास्तविक अवस्था निम्नलिखित है :

शरीर-रचना और चिकित्सा-सम्बंधी अनेक प्रमाणों के अनुसार योनि के भीतरी भाग में शिराएं नहीं होती। बिना 'शून्य' किए योनि में शल्य-क्रिया की जा सकती है। भगशिश्न के भीतरी आधार के पास योनि में कुछ शिराएं होती हैं।

बिना उस क्षेत्र को उत्तेजित किए ही स्त्री को उसकी योनि में किसी वस्तु के प्रवेश का अनुभव होता है, खासकर जब योनि की मांसलता कस जाती है किंतु तृप्ति विशेषतः योनि से स्राव होने से ही मिलती है, काम-शिराओं की संवेदनशीलता से नहीं।

इसमें शक नहीं कि योनि रति-आनंद का स्थान है। स्त्रियां भी हस्तमैथुन करती हैं क्योंकि इससे उन्हें तृप्ति मिलती है। यौन-प्रक्रिया बड़ी ही जटिल है क्योंकि वह केवल शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं पर ही आधारित नहीं है बल्कि इससे पूरा नाड़ी-मंडल सम्बंधित रहता है और व्यक्ति-विशेष की सम्पूर्ण आनुभविक स्थिति का भी प्रभाव पड़ता है।

प्रथम सम्भोग के बाद काम-क्रिया का एक नया सिलसिला प्रारम्भ होता है। यह सिलसिला नए सिरे से नाड़ी-मंडल को व्यवस्थित करना चाहता है।

इस प्रकार की योजनाओं में, जिनको पहले विस्तृत रूप नहीं दिया गया था और न जिसकी रूपरेखा ही बनी थी, भगशिश्न भी सम्मिलित रहता है। इसे उत्तेजित करने में कभी-कभी समय लगता है और ऐसी भी घटनाएं होती हैं, जिनमें यह कभी भी सफलतापूर्वक उत्तेजित नहीं किया जा सकता। यह ध्यान देने योग्य है कि स्त्रियां दो तरीकों के बीच अपनी पसंद चुनती हैं। एक के अनुसार स्त्री अपनी किशोरावस्था की स्वतंत्रता को

ज्यों का त्यों रखना चाहती है और दूसरे में स्त्री बिल्कुल पुरुष की हो जाती है और बच्चों को जन्म देना ही उसका मुख्य कार्य बन जाता है। स्वाभाविक रति-क्रिया में स्त्री पुरुष के ऊपर अवलम्बित रहती है। जिस प्रकार पशु-जगत् में नर-पशु ही आक्रामक भूमिका ग्रहण करता है, उसी प्रकार मानव-जगत् में भी पुरुष ही आगे बढ़ता है। स्त्री उसके आलिंगन में जकड़ जाती है। लिंग में तनाव का अनुभव करने पर ही पुरुष स्त्री को ग्रहण कर सकता है।

चूंकि स्त्री 'अन्या' है, इसलिए उसकी निष्क्रियता पुरुष की स्वाभाविक क्रिया में बाधक नहीं बन पाती। पुरुष इस बात की परवाह नहीं करता। स्त्री केवल समर्पण कर देती है। एक निष्क्रिय स्त्री-शरीर के साथ भी सम्भोग सम्भव है लेकिन पुरुष की इच्छा की तुष्टि होना इसका स्वाभाविक परिणाम है। स्त्री किसी भी आनंद का अनुभव किए बिना गर्भधारण कर सकती है किंतु गर्भाधान उसके लिए रति-क्रिया की पूर्णता नहीं होता। इसी प्रकार पुरुष के प्रति उसकी जिम्मेदारी बढ़ जाती है। धीरे-धीरे कुछ दर्द और परेशानी के साथ वह इस जिम्मेदारी को निभाती है। प्रारम्भ, गर्भधारण, शिशु-जन्म और फिर स्तनपान ।

स्त्री और पुरुष की शारीरिक संरचना में काफी फर्क होता है। उनकी नैतिक और सामाजिक स्थितियां भी भिन्न होती हैं। पुरुष-प्रधान समाज में स्त्री की पवित्रता पर विशेष जोर दिया जाता था। पुरुष को काम-सम्बंधी स्वतंत्रता प्राप्त थी किंतु स्त्री विवाह द्वारा ही काम-आनंद प्राप्त कर सकती थी। संस्कार व कानून द्वारा मान्यता प्राप्त किए बिना स्त्री काम-क्रिया नहीं कर सकती थी। ऐसा करना उसके लिए अपराध, पतन, पराजय और निर्बलता माना जाता रहा। उससे अपने सम्मान की आशा की जाती रही । मर्यादाच्युत होने और समर्पण कर देने पर वह घृणा की पात्र मानी जाती रही है परंतु उसे पथभ्रष्ट करने वाला पुरुष निंदा का पात्र नहीं बनता बल्कि उसे तो प्रशंसा भी मिलती है। आदिकाल से आज तक सम्भोग को एक 'सेवा-रूप' दिया गया है, जिसके लिए पुरुष स्त्री को धन्यवाद देता है, उपहार देता है, उसकी जीविका का भार ग्रहण करता है। सेवा करना वस्तुतः अपने को किसी स्वामी के हाथ सौंप देना है। इस तरह के सम्बंध में पारस्परिकता नहीं रहती। विवाह-संस्कार के विभिन्न रूपों और वेश्याओं का अस्तित्व इस बात का प्रमाण है कि स्त्री को पुरुष के प्रति समर्पित होना ही पड़ता है, पुरुष मानो उसकी कीमत देकर उसे ग्रहण करता है। मालिक के रूप में व्यवहार करना पुरुष के लिए वर्जित नहीं है। अपने से निम्न जीवों को वह ग्रहण कर सकता है। नौकरानियों के साथ पुरुष की हरकतों को सहन कर लिया जाता है किंतु यदि स्त्री 'शोफर' या 'माली' के साथ किसी तरह सम्बंध कर बैठे तो वह अपनी मर्यादा खो देती है। गृहयुद्ध के पहले और आज भी दक्षिण में रहने वाले, जातीयता को प्रधानता देने वाले बर्बर अमरीकनों को लोकप्रथा के अनुसार 'काली स्त्रियों के साथ सम्बंध स्थापित करने का अधिकार रहा है। वे अपने इस अधिकार का गर्व के साथ प्रयोग

भी करते रहे हैं जबकि श्वेत स्त्री को गुलामी के दिनों में किसी 'काले आदमी' से सम्बंध स्थापित कर लेने पर मृत्यु-दंड मिलता था। ऐसी स्त्री की हत्या भी कर दी जाती थी।

इस तथ्य को व्यक्त करने के लिए कि अमुक पुरुष ने स्त्री के साथ सम्भोग किया है, वह पुरुष स्वयं कहता था कि मैंने उस स्त्री को प्राप्त कर लिया, वह मेरे अधिकार में है। प्रेम-सम्बंधी बातें करते समय अति सभ्य व्यक्ति भी कुछ ऐसे ही शब्दों का प्रयोग करते हैं। विजय, आक्रमण, हमला, घेर लेना और विपक्षी से अपनी रक्षा, पराजय और समर्पण अर्थात् प्रेम-प्रकरण की चर्चा में युद्ध- शब्दावली का प्रयोग। एक व्यक्ति मानो दूसरे को दूषित करता है। दूषित करने वाले में अहं व गर्व का भाव रहता है जबकि दूषित व्यक्ति में लज्जा और अपमान के भाव रहते हैं, चाहे उसकी इच्छा से ही क्यों न उसे दूषित किया गया हो।

यह शब्दावली एक नई कहानी रचती है। पुरुष स्त्री को कलुषित करता है। वीर्य-प्रवाह को दूषित प्रवाह नहीं कहा जाता। इसके विपरीत स्त्री के प्रसंग में कहा जाता है कि वह अपवित्र होती है क्योंकि उसका स्राव गंदा होता है और वह पुरुष को दूषित करती है। दूषित करने वाले को किसी रूप में श्रेष्ठता देना सम्भव नहीं, यह श्रेष्ठता बड़ी संदेहात्मक होगी। पुरुष को विशेष स्थान उसकी शारीरिक रचना में निहित आक्रामक शक्ति के कारण मिलता रहा। पुरुष के सामाजिक कार्य भी उसे स्वामित्व के और भी अधिकार देते हैं । सामाजिक जिम्मेदारी और कार्यों के कारण ही स्त्री और पुरुष की शारीरिक भिन्नताओं का महत्त्व इतना अधिक है। संसार का शासक पुरुष है। उसकी इच्छा की प्रभावशीलता उसके प्रभुत्व की प्रतीक है। काम-क्षमता-सम्पन्न पुरुष को मजबूत और शक्तिशाली आदि विशेषणों से अलंकृत किया जाता है। ये गुण उसकी क्रियाशीलता और उत्कृष्टता के प्रतीक होते हैं। स्त्री 'अन्या' है। व्यावहारिक सम्पर्कों के जगत् में स्त्री को या तो अधिक कामुक या बिल्कुल ठंडी कहा जाता है अर्थात् उसे एक निष्क्रिय वस्तु के रूप में ही देखा जाता है।

जिस वातावरण व जलवायु में स्त्री में रति-भाव उत्पन्न होते हैं, वे पुरुष के चारों ओर के वातावरण से भिन्न होते हैं। पहली बार पुरुष के सम्मुख आने पर स्त्री में जगने वाले रति-भाव बड़े जटिल होते हैं। यह कहना गलत है कि कुमारी कन्या में काम-भावना होती ही नहीं और पुरुष को ही उसमें काम-इच्छा जाग्रत करनी चाहिए। यह कथन भी पुरुष की शासन करने की अभिरुचि को व्यक्त करता है । तात्पर्य यह है कि स्त्री किसी भी रूप में स्वतंत्र नहीं होती। यदि उसमें पुरुष के लिए चाह है तो वह चाह पुरुष ही जाग्रत करता है। सच तो यह है कि पुरुष में ही नहीं बल्कि स्त्री में भी विपरीत यौन के सम्पर्क में आने की इच्छा रहती है। अधिकांश युवतियां पुरुष के सम्पर्क में आने के पहले ही बड़ी बेचैनी से चुम्बन और प्यार की लालसा करती रहती हैं।

किसी अविवाहिता कन्या की इच्छा आवश्यकता के रूप में व्यक्त नहीं होती। वह स्वयं अपनी इच्छा नहीं जानती। बचपन का काम-उत्साह उसमें कुछ अंश तक यौवन में भी बना रहता है। उसके प्रथम मनोवेग मानो कुछ ग्रहण करना चाहते थे। वह अब भी आलिंगन करना और होना चाहती है। वह अपने प्रिय व्यक्ति में उन गुणों और विशेषताओं को देखना चाहती है जो उसे स्वाद, गंध और स्पर्श के माध्यम से मान्यताओं के रूप में प्रतीत हुई थीं। काम का क्षेत्र कोई भिन्न क्षेत्र नहीं है। बचपन के इंद्रिय-सुख और स्वप्न जारी रहते हैं। बालक और बालिका, दोनों ही बचपन और किशोरावस्था में मलाई की तरह नरम, चिकनी, लचकदार और स्निग्ध वस्तुओं को विशेष पसंद करते हैं। स्त्री भी पुरुष की तरह बालू के टीलों की हल्की ऊष्मता, रेशम का हल्कापन, बत्तख के पंखों की कोमलता, फूलों के विकास और फलों के रसीलेपन को पसंद करती है। किशोरियां हल्के रंग पसंद करती हैं। वे खुरदुरे कपड़े पसंद नहीं करतीं, चट्टानें और दुर्गंध उन्हें अप्रिय होती हैं। उन्हें अपने से ही मोह होता है। उनको अपनी जाति के साथ काम-सम्बंध प्रिय होते हैं। अत: वे व्यक्ति के रूप में रहकर दूसरी स्त्री के शरीर पर अधिकार चाहती हैं। पुरुष के सामने रहने पर वे अपने हाथों और होंठों' में ऐसी इच्छा का अनुभव करती हैं कि वह उन्हें अपने प्रेम में जकड़ ले। किसी भी स्त्री को सख्त पेशियों, सख्त चमड़े और बालों से भरा हुआ कोई पुरुष पसंद नहीं होता।

यदि स्त्री में आधिपत्य स्थापित करने की रुचि ज्यों की त्यों बनी रहती है, तो वह समलिंगी कामुकता की ओर झुकती है या ऐसे पुरुषों को पसंद करती है, जिनके साथ वह स्त्री की तरह बर्ताव कर सकती है। कुछ स्त्रियां तेरह या चौदह वर्ष के लड़कों या इससे भी छोटे लड़कों से लाड़-प्यार करती हैं, किंतु वयस्क पुरुषों से कतराती हैं। अधिकांश स्त्रियों में बचपन से ही सुप्त काम-भावना रहती है। स्त्री स्वभावतः चाहती है कि कोई उसका आलिंगन करे, लाड़ करे । विशेषकर यौवन आरम्भ होने पर स्त्री की चाह पुरुष की बांहों में सिमटने की होती है। सक्रिय भूमिका तो पुरुष ही निभाता है।

इस प्रकार स्त्री दो भावनाओं के बीच पिसती रहती है। वह एक ऐसे आलिंगन में जकड़ जाना चाहती है, जिसमें कांपती रहे, किंतु वह अपने साथ बल-प्रयोग पसंद नहीं करती। स्त्री मिलन-प्रसंग में सम्भव सीमा तक पुरुष के साथ सामंजस्य चाहती है। वह एक शक्तिशाली पुरुष के हाथों में अपने को समर्पित करना चाहती है। वह यह भी चाहती है कि वह पुरुष युवा और आकर्षक हो। एक सुंदर युवक में वह मोहित करने वाले सभी गुणों को पाती है। पुरुष स्त्री से वह प्राप्त करता है, जिसकी उसको चाह रहती है। स्त्री पुरुष के लिए प्रकृति का पूर्ण सौंदर्य होती है। वह कीमती नग होती है। वह बहता हुआ झरना होती है। वह तारों की झिलमिलाहट होती है। स्त्री में स्वयं वह साधन नहीं है, जिसके द्वारा वह इन निधियों को प्राप्त कर ले। उसकी शरीर-रचना ही इस प्रकार की है कि वह एक हिजड़े की

तरह इस विषय में भद्दी और नपुंसक' रही है। आधिपत्य जमाने की उसकी इच्छा व्यर्थ हो जाती है क्योंकि उसके शरीर में वह अंग नहीं है, जिससे यह इच्छा मूर्त-रूप ले सके। पुरुष स्त्री का ठंडापन हमेशा नापसंद करता है। कभी-कभी परिस्थितियां युवती को बाध्य करती हैं कि वह ऐसे पुरुष के सम्मुख भी समर्पण कर दे जो उसमें काम-भावना तो उत्पन्न कर देता है पर न तो वह उसकी ओर देखना चाहती है और न वह उसके चुम्बन करने पर उलटकर उसे चूम लेती है। यह ठीक-ठीक नहीं देखा गया है कि स्त्री की इच्छा के साथ-साथ जो विरोधी भाव रहता है, उसमें केवल पुरुष की आक्रमणकारी प्रकृति के प्रति भय की भावना है या घोर निराशा का भाव। स्त्री में स्वतः उठने वाले कामोद्वेग की अवहेलना करने पर भी रति-आनंद मिल सकता है किंतु पुरुष को देखने और स्पर्श करने से उसे एक विशेष आनंद मिलता है। इस आनंद के विशेष आधार भी होते हैं। इन क्रियाओं से विशेष काम-सुख मिलता है।

निष्क्रिय काम-भावना के लक्षण भी बड़े अस्पष्ट होते हैं। कुछ व्यक्ति हर प्रकार की धातु को बिना किसी घृणा व संकोच के छूते हैं पर पशुओं और पौधों से घृणा करते हैं। रेशम और मखमल के स्पर्श से स्त्री के शरीर में हर्ष से रोमांच भी हो सकता है और भय से कम्पन भी। अस्पष्टता तथा परस्पर-विरोधी परिस्थितियों का सृजन एक कुमारी के लिए केवल इसलिए ही होता है कि उसकी स्थिति भी बड़ी ही विरोधात्मक रहती है। जिस अंग में परिवर्तन होता है, वह तो मानो 'सील' में बंद रहता है। उसके सारे शरीर में एक बेचैनी और गरमाहट केवल उस स्थान की उपस्थिति के कारण रहती है, जिसके माध्यम से सम्भोग-क्रिया होती है। कुमारी कन्या के शरीर में कोई भी अंग ऐसा नहीं होता, जो उसकी काम-इच्छा पूरी करने में सहायता दे।

स्त्री की निष्क्रियता नितांत जड़ता नहीं, उसमें उत्तेजना जाग्रत करने के लिए कुछ चीजें उसी के पास हैं। उसके शरीर में कामोत्तेजक क्षेत्र हैं। उत्तेजित अवस्था में स्राव का होना, नाड़ी की गति तेज होना और जोर-जोर से दिल धड़कना आदि स्त्री की रति-भावना के सूचक होते हैं । यौन-आनंद की इच्छा का अर्थ ही है कि स्त्री को भी अपनी शक्ति का ह्रास करना होगा। केवल पुरुप पर ही यह बात लागू नहीं होती। यद्यपि स्त्री में ग्रहण करने की प्रवृत्ति है किंतु जब वह यौन-भूख व्यक्त करती है, तब उसकी सक्रियता दिखाई पड़ती है। उसके मस्तिष्क और पेशियों में तनाव आ जाता है। उदासीन और भावना-शून्य स्त्रियां हमेशा ठंडी रहती हैं। स्त्री की काम-क्षमता कुछ मानसिक तत्त्वों द्वारा ही निर्धारित होती है किंतु इसमें संदेह नहीं कि शारीरिक बनावट और कमी साथ ही शक्ति की न्यूनता भी स्त्री को रति-क्रिया में उदासीन रखती है।

स्त्री को खेलकूद में शक्ति नष्ट कर देने से रति-संतुष्टि नहीं मिलती। स्कैंडीनेविया की स्त्रियां स्वस्थ और शक्तिशाली होने पर भी 'ठंडी' होती हैं। उनमें काम-भावना की उत्तेजना

नहीं होती। वास्तव में कामोत्तेजित होने वाली स्त्रियां वे हैं, जिनमें प्रेम-विह्वलता के साथ उत्तेजना भी रहती है जैसी कि इटली और स्पेन की स्त्रियां। इनकी शक्ति केवल शरीर द्वारा ही व्यय होती है। प्रेम करती हुई स्त्री न तो निद्रा में रहती है और न मृत । उसमें एक तूफान उठता है जो घटता-बढ़ता रहता है। इस तूफान का घटाव उसे मानो मंत्र-मुग्ध रखता है और यही उसकी रति-इच्छा को जीवित रखता है। उत्तेजना. और शांति के संतुलन को नष्ट करना बड़ा सरल । मनुष्य की इच्छा उसमें उद्विग्नता ला देती है। यह उद्विग्नता ऐसे शरीर में व्याप्त रहती है, जिसकी शिराएं और पेशियां तनी रहती हैं। अंगों को क्रियाशील बनाने वाली चेष्टाएं अंगों के प्रतिकूल नहीं होती बल्कि उनकी सक्रियता को बढ़ाती हैं। इसके विपरीत स्त्री की कोई भी चेष्टा नहीं होती जो उसे समर्पण न करने दे, इसलिए वह सम्भोग के उन आसनों को पसंद करती है, जिनमें उसे चेष्टा नहीं करनी पड़ती, जिनसे उनमें तनाव नहीं आता। आसनों में हठात् परिवर्तन या शब्दों का व्यवहार स्त्री की मंत्र-मुग्ध अवस्था भंग कर देते हैं। अत्यधिक कामुकता स्त्री में चिड़चिड़ापन, खिंचाव और तनाव पैदा करती है। कुछ स्त्रियां अतिरेक में पुरुषों को नोच-खसोट लेती हैं। वे मानो किसी अस्वाभाविक शक्ति द्वारा अपने शरीर को कठोर और कड़ा कर लेती हैं किंतु यह स्थिति विशेष आवेश की स्थिति में ही होती है। सम्भोग की स्थिति में किसी प्रकार का शारीरिक और नैतिक दुराव नहीं रहता। पूरी शक्ति केवल रति-क्रीड़ा में लगा दी जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि सम्भोग के समय यदि स्त्री का मन दूसरी तरफ हो और वह चुपचाप समर्पण कर दे तो तृप्ति न तो उसे होती है और न उसके साथी को। एक ऐसे साहसिक कार्य में उसे सक्रिय रूप से भाग लेना पड़ता है, जिसको इच्छा उसे कुंवारी अवस्था में नहीं रहती, क्योंकि ऐसी इच्छा के प्रति अनेक निषेध, बंधन और दंड निर्धारित हैं।

यह सहज ही समझा जा सकता है कि स्त्री में काम-सम्बंधी किसी प्रेरक शक्ति का होना कठिन ही है। बचपन और युवाकाल की कुछ परिस्थितियां ऐसी बाधाएं उपस्थित करती हैं, जिनको दूर करना कठिन होता है। कभी-कभी वह उन घटनाओं को भूल जाना चाहती है परंतु इस कोशिश से गम्भीर अंतर्द्वंद्व पैदा होता है। उसे जिस रूप से पाला-पोसा और बड़ा किया जाता है, उसमें पाप और भय की भावना, माता की अवज्ञा आदि के भाव बड़े शक्तिशाली और बाधक सिद्ध होते हैं। अनेक समाजों में कुमारीत्व को इतना अधिक महत्त्व दिया जाता है कि कानूनी शादी के अलावा इसका नष्ट होना एक भयंकर संकट माना जाता है। यदि कोई लड़की कौतूहल या आवेगवश समर्पण कर देती है तो उसे लगता है मानो उसने अपना सम्मान खो दिया है। शादी की रात कुंवारी कन्या ऐसे व्यक्ति को सौंप दी जाती है, जिसे उसने स्वयं नहीं चुना और जो विवाह के कुछ घंटों बाद ही काम-क्रिया का प्रारम्भ कर देगा। उस क्षण का अनुभव स्त्री के लिए अद्भुत होता है। वास्तव में हर परिवर्तन जरा परेशान करता ही है, खासकर यदि स्त्री-पुरुष विपरीत स्वभाव के हों। स्त्री के लिए कुंवारी से एक स्त्री या औरत बन जाना और अतीत से सम्बंध टूट जाना एक ऐसा ही अद्भुत

अनुभव होता है। यह परिवर्तन बड़ा नाटकीय होता है। यह बीते हुए कल और आने वाले कल के बीच का एक रिक्त बिंदु है। यह एक किशोरी को उसकी कल्पना के संसार से, जहां वह खिलती और बढ़ती है, दूर कर यथार्थ जीवन में ढकेल देता है। माइकेल लोरिस ने 'विवाह के पलंग' को यथार्थ कहा है। जितने दिनों तक शादी की बात चलती है, शादी पक्की होती है, प्यार का आदान-प्रदान होता है, उतने दिन लड़की मानो दिवा-स्वप्न देखती रहती है। वह परिचित उत्सवों की दुनिया में रहती है। उसका प्रेमी उससे प्रेमपूर्ण और मीठे शब्दों में बातें करता है, मानो वे आंख-मिचौनी खेलते हों। लेकिन हठात् वह क्या देखती है? दो दृष्टियां उस पर जमी हैं। दो हाथ उसे जकड़े हैं। दृष्टि और जकड़ की कठोर वास्तविकताएं उसे भयभीत कर देती हैं।

काम-क्रीड़ा में आरम्भ में भूमिका युवक पुरुष को निभानी पड़ती है क्योंकि ऐसी ही परम्परा है और उसकी शारीरिक रचना भी ऐसी है। यह भी सही है कि उसकी पहली प्रेमिका कुंवारी कन्या उसे इस क्रिया का अवसर देती है। युवक की स्वतंत्र काम-इच्छा ही पहले लिंग के तनाव से व्यक्त होती है। उसकी पत्नी उसे वह वस्तु प्रदान करती है, जिसकी कि उसे चाह स्त्री-शरीर। एक किशोरी को एक ऐसे नवयुवक की आवश्यकता रहती है, उसे उसके शरीर का रहस्य दिखाए। वह उस पर अत्यधिक निर्भर रहती है। अपने पुराने अनुभवों के अनुसार भी पुरुष सक्रिय रहता है, निश्चित-सा रहता है भले ही वह अपनी प्रेमिका से पहले मिलता-जुलता रहा हो और उसे पाने की इच्छा करता रहा हो। एक युवती से प्रेम किया जाता है, उसकी चाह की जाती है, यदि वह पुरुष को उकसाए तो भी सम्बंध स्थापित करने का भार पुरुष ही लेता है।

पहली बार तो स्त्री पुरुष की आंखों से आंखें नहीं मिलाना चाहती। उसकी लज्जा उसे परेशान रखती है। ये भावनाएं गहराई से जमी रहती हैं। पुरुष और स्त्री, अपने शरीर के नग्न-प्रदर्शन में लज्जा का अनुभव करते हैं। शरीर के दूसरों की दृष्टि का केंद्र बनने की भावना उद्विग्नता पैदा करती है, पर यह सचाई है। युवतियों में लज्जा अधिक होती है, युवकों में नहीं। युवकों की भूमिका इस कार्य में हमेशा आक्रमणकारी की होती है। उन्हें संकोच या भय नहीं कि किसी को उनकी निष्क्रियता दिखाई देगी। उनकी स्त्रियां उनसे सक्रियता की आशा करती हैं। उन्हें तो श्रेय तभी मिलता है, जब वे अपनी काम-शक्ति दिखा सकें, स्त्री को आनंद प्रदान कर सकें। वे सिद्ध करना चाहते हैं कि वे इस कला में विजय प्राप्त कर सकते हैं। स्त्री अपनी इच्छा के अनुसार अपने शरीर को बदल नहीं सकती। चुम्बन और प्यार के लिए मन ही मन तड़पने के बावजूद वह पुरुष के स्पर्श और पकड़ने का विरोध करती है। उसके नितम्बों और कुचों में काफी उभार और चर्बी रहती है। ये भाग उसमें लज्जा पैदा करते हैं। कई वयः प्राप्त महिलाएं भी, जब कपड़े पहने रहती हैं, पसंद नहीं करती कि कोई उन्हें पीछे से देखे। कोई भी कल्पना कर सकता है कि प्रेम-क्षेत्र

में प्रवेश करने वाली नवदीक्षिता किस प्रकार प्रतिरोध कर विजय प्राप्त करके अपने को समर्पित कर देती है। वह पुरुष को अनुमति दे देती है कि वह उसे भर आंख देखे। वह दम्भ से अपना प्रदर्शन करती है। वह सौंदर्य के आवरण से ढंकी रहती है। स्त्री अपने शारीरिक सौंदर्य पर तब तक दम्भ नहीं करती, जब तक पुरुप उसके दम्भ को पुष्ट नहीं करता। अब भी उसका प्रेमी ही निर्णायक होता है। हर रूप में वह उसे उसका सच्चा रूप दिखा देता है। यद्यपि स्त्री को आईने में अपनी परछाई देखकर हर्ष होता है, वह मुग्ध हो जाती है, फिर भी उसे भय रहता है। पुरुष के निर्णय के प्रति वह शंकित रहती है। वह रोशनी बंद कर देना और बिस्तर में छिप जाना चाहती है। जब वह पुरुष के सम्मुख होती है, उसकी आंखें उसे देख रही होती हैं तब वह धोखा नहीं दे सकती, संघर्ष नहीं कर सकती। पुरुष के सम्पर्क में ही स्त्री को काम-सम्बंधी वास्तविक अनुभव होते हैं। किशोरियों के मन में तरह-तरह के भय रहते हैं। किसी को अपनी बड़ी एड़ी से भय लगता है, किसी को अपने वक्ष के अधिक उभार से। किसी की जांधे पतली होती हैं तो किसी की मछली-सी। यह सब न होने पर भी स्त्री के हृदय में शक बना रहता है। पता नहीं कौन-सी शारीरिक कमी दिख जाए। नवयुवतियों के मन में एक अजीब भय रहता है कि वे शारीरिक रूप से अस्वाभाविक हैं। उदाहरणार्थ किसी को ऐसा लगता है कि नाभि ही वह स्थान है, जहां सम्भोग- क्रिया की जाती है और चूंकि वह बंद है, इसलिए वह दुःखी रहती है। किसी को लगता है कि वह उभयलिंगी है।

यदि किशोरियों में यह भय नहीं रहता तो वे सोचती हैं कि अब तक शरीर में जो अंग उपस्थित नहीं हैं वे हठात् उपस्थित हो जाएंगे। क्या नया अंग ऊब व घृणा उत्पन्न करेगा? उदासीनता के भाव जाग्रत करेगा? क्या व्यंग्यात्मक शब्द कहे जाएंगे? उन्हें पुरुष के निर्णय को मानना है। परीक्षा का समय आ गया है। इसीलिए स्त्री के ऊपर प्रथम सम्भोग का बड़ा गहरा और दीर्घकालीन प्रभाव पड़ता है। पुरुष के प्रेम की तीव्रता से स्त्री में विश्वास जाग्रत होता है और इससे सर्वदा उसका हित ही होता है। चाहे उसकी उम्र अस्सी साल हो जाए, वह अपने को एक रात पुरुष की इच्छा को संतुष्ट करने वाली भाग्यशालीनी ही समझती है। इसके विपरीत अनाड़ी प्रेमी या पति स्त्री में हीन-भावना पैदा कर सकता है। ऐसी स्थिति में स्त्री की मानसिक अवस्था असंतुलित हो जाती है। वह विषाद से भरकर सेक्स के प्रति उदासीन और ठंडी हो जाती है। स्टेकल ने ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। एक स्त्री को कई वर्षों तक पीठ में दर्द होता रहा और वह ठंडी बनी रही क्योंकि विवाह की रात्रि में योनि-क्षत के समय बहुत दर्द हुआ और पति ने उस पर धोखा देने का आरोप लगाया, उसके कौमार्य पर शक किया। दूसरे पति ने अपनी पत्नी के पैरों को मोटा और भद्दा कहा। वह उसी समय ठंडी हो गई। यह 'ठंडापन' सारी जिंदगी बना रहा और साथ ही मानसिक विकार भी उत्पन्न हो गए। किसी अन्य स्त्री ने बताया कि उसके पति ने किस प्रकार पाशविकता से योनि-क्षत किया। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं।

यदि घूरकर देखना एक खतरा है तो दूसरा खतरा है मारपीट का। स्त्रियां प्रायः बल-प्रयोग से अपरिचित रहती हैं। जिस प्रकार बचपन और युवाकाल में पुरुष भिड़ते रहते हैं, उस तरह स्त्रियां नहीं। सम्भोगकाल के शारीरिक संघर्ष में पुरुष स्वभावतः अधिक शक्तिशाली सिद्ध होता है। स्त्री के पास स्वप्न देखने, देर करने और प्रयास करने का समय नहीं रहता। वह तो पति के हाथों में रहती है। उसके बल से दबोची गई रहती है। कठोर बाहुपाश उसे मानो एक संघर्ष में लगाए रखता है। उसे भय लगता है। वह ऐसे संघर्ष से परिचित नहीं है। उसके प्रेमी ने उसे प्यार किया। उसके साथी और मित्र ने बड़ी शिष्टता और भद्रता के साथ उसके साथ व्यवहार किया, पर अब वह एक ऐसे व्यक्ति के सम्मुख है, जो बड़ा हठी और 'अहं' वाला है। उस बेचारी के पास इस अजनबी के सम्मुख कोई चारा नहीं। कभी-कभी तो मानो युवती को वास्तविक बलात्कार जैसा अनुभव होता है और पुरुष पाशविक रूप से पेश आता है। हर वर्ग और समाज में यह देखा जाता है कि पति द्वारा कन्या को अपनाने का मुख्य उद्देश्य स्वयं आनंद प्राप्त करना होता है। यदि पत्नी विरोध करती है तो उसे अपमान का अनुभव होता है और कभी-कभी योनि-क्षत करने में कठिनाई होने पर वह क्रोध से तिलमिला उठता है।

पुरुष चाहे कितना भी भद्र और विनयी क्यों न हो, पहली बार स्त्री के शरीर में उसका प्रवेश करना बल-प्रयोग का ही परिचायक है। स्त्री चाहती है कि पुरुष उसे होंठों और वक्षःस्थल पर प्यार करे। वह किसी काल्पनिक व सच्चे काम-आनंद की लालसा करती है, जिससे वह कुछ परिचित है। इसके विपरीत उस नवयुवती के योनि-द्वार को क्षत कर पुरुष-लिंग उस क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है, जहां पर उसकी चाह नवयुवती ने नहीं की थी। अनेक लेखकों ने कुंवारी कन्या के दर्द-भरे विस्मय के बारे में लिखा है। वह अपने पति की बांहों में लिपटी और लेटी सोचती है कि उसके उन्माद- भरे रति-स्वप्न साकार होंगे, पर उसे तो अपने गुप्तांगों में दर्द का अनुभव होता है। उसका स्वप्न भंग हो उठता है। उसकी उत्तेजना नष्ट हो जाती है और प्रेम मानो उसके लिए एक शल्य-क्रिया का रूप बन जाता है।

वास्तविक अनुभवः यह बताता है कि दर्द उतनी विशेष घटना नहीं है, जितनी कि पुरुष का शरीर में प्रवेश । सम्भोग में पुरुष अपने बाह्य अंग का प्रयोग करता है, पर स्त्री के नाजुक भीतरी अंगों पर उसका प्रभाव पड़ता है। नि:संदेह कुछ युवक घबराहट और चिंता के साथ स्त्री के रहस्यमय अंधकार-भरे अंग में प्रवेश करते हैं। एक बार फिर से बचपन में गुफा की दहलीज पर खड़े होने से जो भय होता है, या कब्र के पास जाने से जो भय होता है, उसकी याद आ जाती है। जैसे बचपन में किसी के जबड़े, जाल और हंसिया देखकर भय का संचार होता था, वैसा ही आज भी होता है। एक बार स्त्री की योनि में प्रवेश हो जाने पर, स्त्री को फिर ऐसा भय नहीं रहता, पर वह महसूस करती है कि उसके शरीर पर किसी ने अनधिकार स्वामित्व प्राप्त कर लिया है।

भूमिपति का अपनी भूमि पर अधिकार रहता है। गृह-स्वामी गृह में किसी का अनधिकार प्रवेश पसंद नहीं करता। स्त्री को सर्वोपरि स्थान नहीं मिल पाता। उसमें ईर्ष्या के भाव उत्पन्न होते हैं और वह अपनी विशेष चीजों को हमेशा सुरक्षित रखती है। उसके अपने बक्से, कपड़े की आलमारी और संदूक मानो सभी पवित्र हैं। कालेट ने बताया है कि एक वृद्धा वेश्या ने उससे कहा था, "महाशय! आज तक किसी पुरुष ने मेरे कमरे में प्रवेश नहीं किया है। मेरा शरीर दूसरों के लिए था पर कुछ विशेष स्थान ऐसे थे, जहां लोगों का प्रवेश वर्जित था। मुझे पुरुषों से जो सरोकार है, उसके लिए पेरिस बहुत बड़ा है।"

एक किशोरी कन्या अपने शरीर के अलावा और किसी चीज को अपना नहीं कह सकती। यही उसकी सबसे बड़ी पूंजी है। जो पुरुष उसके साथ सम्पर्क स्थापित करता है, वह उसकी यही पूंजी छीन लेता है। युवती जिस अपमान की कल्पना करती है, वह सच है। उसे समझौते के लिए बाध्य किया जाता है। उस पर विजय प्राप्त कर ली जाती है। सम्भोग के समय वह पुरुष के नीचे रहती है। एडलर ने इस हीन-भावना का विशेष उल्लेख किया है। बचपन की हीनता और महत्ता को भावनाओं का बहुत महत्त्व है। पेड़ पर ऊंचे चढ़ना बड़ा प्रभावशाली है। ऊपर उठना मानो सफल होना है। कुश्ती में एक प्रतिद्वंद्वी दूसरे प्रतिद्वंद्वी को कंधे से पकड़कर जमीन पर बैठा देता है। स्त्री पराजित स्थिति में लेटती है। पुरुष जिस प्रकार पशु पर सवार होकर उसे चोट पहुंचाता है, लगाम खींचता है, वैसी ही परिस्थिति स्त्री की होती है। वह हमेशा शांत रहती है। उसका लाड़ किया जाता है, उसके शरीर में प्रवेश होता है और वह सम्भोग में भाग लेती है, जबकि पुरुष निरंतर क्रियाशील रहता है। पुरुष का लिंग धारी वाली स्वेच्छाचालित मांसपेशी नहीं है, न यह हल या तलवार है, यह केवल मांस है, जिसे पुरुष गति प्रदान करता है। इच्छा-शक्ति द्वारा यह आगे और पीछे बढ़ता है, रुकता है और फिर गतिमान हो जाता है। स्त्री शांत भाव से ग्रहण करती रहती है। काम-क्रिया के आसन का निश्चय पुरुष करता है। खासकर जब रति-केलि में स्त्री नई रहती है, पुरुष ही निर्णय करता है कि कितनी बार और कितनी देर तक इस क्रिया को किया जाए। स्त्री को प्रतीत होता है मानो वह पुरुष के हाथों चालित यंत्र है। पूर्ण स्वतंत्रता तो पुरुष के हाथों में है। इस अवस्था को कई कलात्मक ढंगों से व्यक्त किया गया है। स्त्री तो वायलिन की तरह है। पुरुष धनुष-तीर है, जो उसे स्पंदित करता है। पुरुष स्त्री से सम्भोग के माध्यम से आनंद पाता और देता है। फिर भी इस पूरे क्रम में सच्ची पारस्परिकता कहीं नहीं होती।

स्त्री शुरू से ही कुछ ऐसे सिद्धांत सुनती आई है, जिनके अनुसार पुरुष की काम-इच्छा महत्त्वपूर्ण होती है, जबकि स्त्री की काम-भावना लज्जाजनक। स्त्री के अनुभव भी यही प्रमाणित करते हैं। किशोर-वय के लड़के और लड़की अपने शरीर से भिन्न-भिन्न रूपों में परिचित होते हैं। वे एक ही रूप में शरीर के प्रति सचेत नहीं होते। पुरुष परिवर्तन को सहज

स्वीकार कर लेता है और उसे अपनी इच्छा पर गर्व होता है। स्त्री भी अपने सौंदर्य पर गर्व करती है परंतु वह परिवर्तन से अशांत-सी प्रतीत होती है और उसे यह परिवर्तन विचित्र-सा लगता है। पुरुष का 'काम'-सम्बंधी अंग साधारण है और एक अंगुली की तरह है। वह दिखाई भी पड़ जाता है और पुरुष गर्व और स्पर्धा के साथ अपने साथियों को दिखाते भी हैं किंतु स्त्री का गुप्त अंग रहस्यमय होता है। उसे अपना काम-अंग रहस्यमय लगता है। उसमें श्लेष और नमी रहती है। हर महीने रक्त-स्राव होता है। वह शरीर के स्रावों से दूषित होती है। उसका अपना रहस्य और खतरनाक जीवन होता है। स्त्री अपने इस अंग में अपने को नहीं देखना चाहती। इसीलिए रति की इच्छा को स्त्री अपनी इच्छा नहीं समझती। ये इच्छाएं बेचैन करने वाली स्थितियों से व्यक्त होती हैं। पुरुष के अंग में कठोरता आ जाती है, किंतु स्त्री का अंग पसीज जाता है। इसके साथ बचपन की बिछौना भिगो देने की याद आ जाती है। पुरुष को भी ऐसी ही घृणा और ऊब होती है, जब अनिच्छा से रात्रि को उसका वीर्य-पतन हो जाता है। इच्छा से किसी तरल पदार्थ, पेशाब व वीर्य को त्यागना शर्म का विषय नहीं है, जिसमें शिराएं, पेशियां और अवरोधिनी शक्ति है, जो कि मस्तिष्क के अधीन हैं और एक चेतन व्यक्ति के अस्तित्व की ओर संकेत करता है। वह एक पात्र है, जिसमें जड़ पदार्थ भरा रहता है और जो यांत्रिक और सनकी शक्तियों के वश में रहता है। स्त्री की काम-इच्छा जीवन की हल्की धड़कनों के समान होती है। पुरुष में उतावलापन होता है, जबकि स्त्री केवल अशांत रहती है। शांत रहते हुए भी उसकी आशा तीव्र हो सकती है। पुरुष अपने शिकार पर मानो बाज या गिद्ध की तरह झपटता है। स्त्री जीव-भक्षी पौधे की तरह मानो प्रतीक्षा करती रहती है। स्त्री वह दलदल होती है जो बच्चों और कीड़ों को निगल लेती है। वह अस्पष्ट रूप से सोचती है मानो वह सब-कुछ सोख लेती हो, चूस लेती हो, खाद को मिट्टी में ले लेती हो। वह अलकतरे और गोंद के समान है। शांत रूप से सब कुछ भीतर ले लेती है। वह पुरुष के शासन करने के विचार का प्रतिरोध करती है। उसमें स्वयं अंतर्द्वंद्व होता है। उसकी शिक्षा ही ऐसी है कि वह बहुत- सी बातों का निषेध करती है। उन्हें गुप्त रखती है। समाज भी उसे कुछ ऐसी ही शिक्षा देता है और उसके काम-अनुभव भी उसमें ऊब और अस्वीकृति के भाव उत्पन्न करते हैं। दोनों का प्रभाव इस सीमा तक बढ़ जाता है कि प्रायः प्रथम सम्भोग के बाद स्त्री काम-इच्छा का और भी अधिक विरोध करती है, मानो वह विद्रोह करती हो।

इसके अलावा कुछ दूसरे कारण भी पुरुष को स्त्री के प्रतिकूल बना देते हैं। रति-क्रीड़ा स्त्री के लिए एक गम्भीर संकट बन जाती है। उसे गर्भ रह जाने का भय रहता है। अवैध संतान एक सामाजिक और आर्थिक बाधा होती है। अपने को गर्भवती महसूस करने पर अविवाहित कन्या आत्महत्या कर लेती है। कुछ ऐसी माताएं अपनी नवजात संतान की हत्या कर देती हैं। लोकाचार के अनुसार विवाह से पूर्व काम-सम्बंध एक भयंकर संकट का रूप धारण कर सकता है, इसलिए किशोरियां अपनी पवित्रता के प्रति बड़ी सजग रहती हैं।

एक किशोरी अपने प्रेमी के शरीर में भी एक संकट का रूप देखती है। स्टेकल ने ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जिनमें यह खतरा बड़े स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है।

पति व प्रेमी पर पूरा भरोसा नहीं रहने पर स्त्री की काम-भावना अतिरिक्त सतर्कता के कारण शिथिल पड़ जाती है । वह पुरुष की क्रियाओं को बड़ी सावधानी से देखती रहती है। वह सम्भोग के बाद शीघ्र ही उठकर बैठ जाती है और ऐसे उपाय करती है, जिनसे शुक्राणु उसके गर्भाशय में प्रवेश न करें। अभी प्रेम का जो जादू चढ़ा था, वह इस तरह की क्रियाओं से बुरी तरह नष्ट हो जाता है। जो शरीर पारस्परिक सम्बंध में आनंद का अनुभव कर रहे थे, अब बिल्कुल अलग हो जाते हैं। | पुरुष के शुक्राणु खतरनाक कीटाणु प्रतीत होते हैं। वे अवांछनीय पदार्थ प्रतीत होते हैं। स्त्री अपनी योनि को इस प्रकार साफ करती है मानो किसी दूषित पात्र को साफ कर रही हो जबकि पुरुष बिल्कुल निश्चित विश्राम की मुद्रा में लेटा रहता है।

आधुनिक स्त्री को काम-सम्बंधी मामलों में काफी सुविधाएं प्राप्त हो गई हैं वयोंकि पूर्ण रूप से निर्भर किए जा सकने वाले और सुविधाजनक 'निरोधक' रति-आनंद में सहायक होते हैं। प्रथम सम्भोग एक बड़ी अग्नि-परीक्षा है जिससे सफलतापूर्वक निकल जाना सहज नहीं है। अनेक बाधाएं घिरी हैं और यह गूढार्थक भी होता है। इस प्रक्रिया में कभी-कभी तो गहरा मानसिक आघात पहुंचता है और कभी तो प्रथम अनुभव के बाद सुषुप्त मानसिक विकार विकृति के रूप में प्रकट होने लगते हैं। स्टेकल ने अपनी Hrigids in women में अनेक ऐसे उदाहरण दिए हैं जिनमें से एक नीचे उद्धृत हैं :

एक तेईस वर्षीया स्त्री को आरोग्य-निवास भेजा गया क्योंकि उसे हमेशा उदासी रहती थी और दृष्टि-भ्रम होता था। स्टेकल ने देखा कि वह आरोग्य-निवास में जाने वाले व्यक्तियों की उपस्थिति को भी शायद जान नहीं सकती थी। उसके मुख पर भय के चिह्न स्पष्ट रहते थे और वह प्रतिरोध की ऐसी मुद्रा में आ जाती थी मानो उसके साथ कोई बलात्कार करने जा रहा है। हठात् उसके चेहरे पर प्रसन्नता के भाव आ जाते थे। वह धीरे-धीरे कुछ मोठे शब्द कहती और स्पष्ट रूप से उस दृश्य को नकल करती जिसमें स्त्री और पुरुष में एक-दूसरे पर आसक्ति के कारण प्रेम-सम्बंध हो गया था। कुछ समय पश्चात् वह स्वस्थ हो गई किंतु उसे पुरुषमात्र के साथ मिलना-जुलना अप्रिय हो गया और उसने शादी का प्रस्ताव भी अस्वीकृत कर दिया।

सामान्य जीवन की अनेक घटनाओं में यह स्पष्ट देखा जाता है कि स्त्री में उदासी और मानसिक आघात की स्थिति तभी होती है, जब पुरुष का व्यवहार पाशविक होता है या फिर कोई घटना हठात् घटित होती है। स्त्री में काम-भाव जगाने के लिए पुरुष को बल-प्रयोग नहीं करना चाहिए। उसे खूब सोच-समझकर आगे बढ़ना चाहिए। यदि युवती अपनी लज्जा को धीरे-धीरे छोड़ सके, अपने साथी को पहचान सके, तो वह उसके प्रेम का सच्चा

आनंद ले सकती है। इस विषय में तो अमरीकन स्त्रियों के व्यवहार की प्रशंसा करनी ही पड़ेगी। वे बड़ी स्वतंत्र रहती हैं। अब फ्रेंच स्त्रियां भी ऐसा ही स्वतंत्र व्यवहार करने लगी हैं। गले लगने और थपथपाने की शुरुआत सहजता से हो जाती है क्योंकि लड़को के मन में निषेध की भावना नहीं रहती। वह अपने साथी के साथ भी काफी खुली रहती है। यदि पुरुष प्रेमी युवक रहता है, डरपोक नवसिखुआ रहता है, बराबर उम्र का होता है तो लड़की में संकोच कम रहता है। ऐसी अवस्था में उसका स्त्री में बदलना एक बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं होता।

कुछ युवतियां काम-आनंद के लिए अनेक व्यक्तियों से सम्बंध बनाती हैं। इस तरह वे कामजनित बेचैनी से मुक्ति की आशा करती हैं। प्रतिरोध, भय और अतिरिक्त सतर्कता से समर्पण करने वाली स्त्री वास्तविक काम-आनंद नहीं प्राप्त कर सकती। इस तरह का अनुभव अस्वाभाविक होता है। यदि यह खतरनाक कम होता है तो आनंददायक भी कम। दिखावटी भावावेश और अनचाहे समर्पण के कारण अस्वाभाविक काम-क्रिया चिंता और भय से भरी रहती है। योनि-क्षत के बावजूद ऐसी स्त्रियां लड़कियों की ही तरह रहती हैं। किसी कामुक और सत्ता वाले पुरुष के सम्पर्क में आने पर वे एक कुंवारी लड़की की तरह विरोध करती हैं। इनकी अवस्था विचित्र होती है। लाड़ से इन्हें गुदगुदी मचती. है। चुम्बन से ये हंसने लगती हैं। शारीरिक प्रेम इनके लिए मानो एक खेल होता है। इस खेल की इच्छा न रहने पर प्रेमी की इच्छा इन्हें अरुचिकर लगती है। इनमें ऊब, भय और किशोरावस्था की लज्जा आ जाती है। वास्तविक काम-परिपक्वता सम्भोग-क्रिया में शरीर का महत्त्वपूर्ण स्थान समझने वाली स्त्रियों में ही होती है।

उत्साही स्वभाव की स्त्रियों की भी सारी कठिनाइयां सहज ही दूर नहीं हो जाती । परिस्थिति इससे विपरीत भी हो सकती है। पुरुष को स्त्री को काम-उत्तेजना की तीव्रता का पूरा पता नहीं चलता। पुरुष की काम-उत्तेजना तीव्र किंतु सीमित होती है। कामोत्तेजना की चरम सीमा के अतिरिक्त पुरुष अपने वश में ही रहता है किंतु स्त्री तो अपना मानसिक संतुलन भी खो बैठती है। बहुतों के लिए यह क्षण प्रेम का सबसे उन्मादक क्षण होता है । अपने बाहुपाश में जकड़ी स्त्री से कभी-कभी पुरुप भयभीत भी हो जाता है। वह संतुलन गंवाकर आपे । बाहर हो जाती है। पुरुष भी उन्माद में आगे बढ़ता है किंतु उसमें स्त्री-जैसा तूफानी वेग नहीं होता। यह उत्तेजना स्त्री की लज्जा को कुछ समय के लिए नष्ट कर देती है। बाद में इस क्षण के बारे में सोचकर स्त्री भय और लज्जा का अनुभव करती है। आनंद और उन्माद के आवेश में स्त्री निःसंकोच बहुत आगे बढ़ जाती है और अपनी इस स्थिति को वह खुशी और गर्व से स्वीकार भी कर लेती है। अतृप्ति की अवस्था में वह काम-सम्पर्क अस्वीकार भी कर देती है।

अब हमारे सम्मुख स्त्री के काम-आनंद से सम्बंधित बड़ी संगीन समस्या आती है। स्त्री के जीवन में प्रेम का अंकुर जमते ही आत्म-समर्पण द्वारा उसे किसी निश्चित और तीव्र आनंद की प्राप्ति नहीं होती। वह अपनी लज्जा और अहं छोड़कर ही स्वर्ग का द्वार खोल सकती है। योनि-क्षत युवती के लिए एक मधुर अनुभव नहीं होता। यह एक असाधारण अनुभव होता है। योनि के द्वारा आनंद तत्काल नहीं मिलता। स्टेकल के निष्कर्ष के अनुसार केवल चार प्रतिशत स्त्रियों को ही कामोन्माद का सुख आरम्भ में प्राप्त होता है। करीब पचास प्रतिशत स्त्रियां सम्भोग का सुख योनि-क्षत के बहुत समय बाद ही अनुभव कर पाती हैं।

इस सिलसिले में मानसिक तत्त्व का महत्त्व अधिक होता है। स्त्री के शरीर में मन और काया का विशेष सम्बंध रहता है। स्त्री कुछ नैतिक भावों के कारण काम-भावना खुलकर व्यक्त नहीं करती। अक्सर ये अनुभव उसके लिए आनंददायक भी नहीं होते। इन अनुभवों में विचित्र परिस्थितियां जन्म लेती हैं। शुरू-शुरू में कई पुरुषों का व्यवहार विचित्र होता है। कुछ शब्द-विशेष, कुछ भद्दे संकेत, विजय-हास्य आदि पूरे मधुमास-भर स्त्री को विक्षिप्त रखते हैं। स्त्री को तत्काल ही आनंद नहीं मिलता इसलिए युवती को मिलने वाला दु:ख पूरे जीवन में सुखी काम-सम्बंध में बाधक बना रहता है। स्वाभाविक तृप्ति न होने पर पुरुष भगशिश्न को उत्तेजित करके स्त्री को आनंद प्रदान करता है। इससे भी स्त्री को कामोन्माद और शक्ति मिलती है किंतु कई स्त्रियां इसे पसंद नहीं करती क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई अपनी इच्छा लाद रहा है। पुरुष का अहं-भाव स्त्री को स्वीकार नहीं होता। अपनी तृप्ति के लिए पुरुष बेचैन रहता है। स्त्री को आनंद प्रदान करने के लिए पुरुष द्वारा अपनाया गया कोई अस्वाभाविक तरीका स्त्री को स्वीकार नहीं होता। स्टेकल के अनुसार दूसरे को आनंद का अनुभव कराना मानो उस पर प्रभाव जमाना है। अपने को किसी को दे देना मानो अपनी इच्छा का दमन करना है। स्त्रियां भी काम-आनंद को सहजता से स्वीकार कर लेती हैं, यदि वह पुरुषों जैसा ही स्वाभाविक हो। इसके विपरीत अपने पर अतिरिक्त दबाव महसूस करने पर वे विद्रोह करती हैं। कुछ स्त्रियां 'हाथ द्वारा उत्तेजित किया जाना पसंद नहीं करतीं। हाथ वह अंग नहीं है जो आनंद का अनुभव करे जो पुरुष प्रदान कर रहा है। यदि पुरुष का लिंग स्त्री को लिंग न लगे बल्कि बड़ी चतुराई से प्रयुक्त किया जा रहा यंत्र लगे, तो भी स्त्री विरोध करती है। एक भी अस्वाभाविक तरीका एक सहज स्त्री पसंद नहीं करती क्योंकि वह उसकी नैतिकता के प्रतिकूल होता है।

स्त्री पुरुष के आलिंगन में अपने को शरीर-रूप में वस्तुनिष्ठ होकर प्रस्तुत कर सकती है पर वह अपना व्यक्तित्व नष्ट करना नहीं चाहती। वह पुरुष को अपने वश में रखना चाहती है जैसे कि वह स्वयं पुरुष के वश में हो जाती है। इसीलिए स्त्री अड़ जाती है और निरुत्साहित रहती है। मोहित करने की शक्ति से हीन निरुत्साहित और लापरवाह पुरुष स्त्री में सहज काम-उत्तेजना नहीं जगा सकता। वह उसे अतृप्त छोड़ देता है। शक्तिशाली और

कुशल पुरुष का भी स्त्री प्रतिरोध कर सकती है क्योंकि वह पुरुष का शासन पसंद नहीं करती। कुछ स्त्रियों को डरपोक, कमजोर और कुछ अंश में नपुंसकों से ही काम-आनंद प्राप्त होता है क्योंकि उनसे उनको डर नहीं होता। पुरुष अपनी पत्नी में बड़ी सहजता से तीखापन और विषाद भर सकता है। विषाद ही स्त्री के निरुत्साह का कारण होता है। बिस्तर पर स्त्रियां पुरुषों को उन सभी गलतियों के लिए सजा देती हैं, जिन्हें वे गलत समझती हैं । वे जबर्दस्ती के विरोध में निरुत्साहित रहकर पुरुष का अपमान करती हैं। कभी-कभी स्त्री में उग्रहीन भावना रहती है। "तुम प्यार नहीं करते। मुझमें अवगुण हैं, जो तुम्हें अरुचिकर हैं। मैं घृणित हूं, तो भला मैं क्यों तुम्हारे प्यार, इच्छा और आनंद के सम्मुख समर्पण करूं?" इस प्रकार स्त्री पुरुष से भी बदला लेती है, साथ ही अपने से भी। पुरुष के लिए अपने द्वारा उत्पन्न की गई इस कटुता का अंत करना कठिन है। हार्दिक सम्मान और आंतरिक प्रेम-प्रदर्शन के द्वारा परिस्थिति सामान्य की जा सकती है। आज्ञापूर्ण दृढ़ता दिखाने वाली स्त्रियां भी प्रेम-विवाह की अंगूठी उपहार में पाने पर प्रसन्न हो जाती हैं। उनका संकोच दूर हो जाता है। एक नया प्रेमी, जिसमें सम्मान की भावना है, प्रेम और भावुकता भी है, एक ऐसी स्त्री को भी सुखी पत्नी बना सकता है, जिसके साथ कभी घृणित व्यवहार हुआ हो। ऐसा प्रेमी स्त्री को हीन-भावना से मुक्त कर देता है और स्त्री प्रेमपूर्वक ऐसे प्रेमी के सम्मुख समर्पण भी कर देती है। सेक्स के प्रति स्त्रियों के निरुत्साह का वर्णन करते हुए स्टेकल कहते हैं कि सेक्स सम्बंधों में मानसिक स्थिति सबसे अधिक महत्त्व रखती है।

स्त्री अपने अंतर्द्वंद्वों पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद योनि द्वारा कामोन्माद का अनुभव भी करने लगती है। तब भी उसकी सारी समस्याएं समाप्त नहीं होतीं। स्त्री में उत्तेजना आने में समय लगता है। कुछ स्त्रियों को तो जीवन-भर इस चरम सीमा तक पहुंचने का आनंद नहीं मिलता। पुरुष बहुत देर तक काम-क्रीड़ा में वीर्य-पतन किए बिना नहीं रह सकता, जिससे स्त्री के साथ-साथ ही वह स्खलित हो। यह कीन्से का कथन है।

कहा जाता है कि भारत में पति सम्भोग करते समय कुछ पढ़ते रहते हैं या सिगरेट पीते हैं, जिससे कि उनका ध्यान कुछ बंटा रहे और स्त्री को तृप्त होने का समय मिल जाए। पाश्चात्य देशों में एक कैसानोवा इस बात पर गर्व करता है कि वह बार-बार यह क्रिया कर सकता है और उसे उस समय विशेष गर्व का अनुभव होता है, जब उसकी पत्नी उससे दया चाहती है। काम-परम्परा के अनुसार पुरुष ऐसा करने में प्रायः सफल नहीं होता। पुरुष यही शिकायत करता है कि स्त्रियां बहुत अधिक मांग व चाह करती हैं । गर्भाशय उन्मादी है। उसे एक ऐसा पेटू और दानवी शक्ति वाला कहा गया है, जिसे कभी तृप्ति नहीं मिलती।

स्त्री का रति-सुख पुरुष के काम-सुख से भिन्न होता है। कामोन्माद की स्थिति में स्त्री को योनि में कैसा अनुभव होता है, यह निश्चित नहीं है। इस विषय पर स्त्रियों के मन्तव्य बहुत

कम प्राप्त हैं और जो प्राप्त हैं, वे भी बड़े अस्पष्ट हैं। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की राय भिन्न-भिन्न है। जीव-विज्ञान के अनुसार पुरुष के लिए सम्भोग का एक ही उद्देश्य है-वीर्य-पतन। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए : वह विभिन्न तरीकों का इस्तेमाल करता है। सम्भव है कि वीर्य-पतन द्वारा पुरुष की इच्छा तृप्त न होती हो पर कुछ समय के लिए वह स्थगित जरूर हो जाती है। इस सम्बंध में स्त्री का उद्देश्य अनिश्चित . रहता है। वह मानसिक तृप्ति अधिक चाहती है, शारीरिक कम। वह आमतौर पर काम-उत्तेजना और आनंद चाहती है। यह अनिश्चित है। इसलिए कहा जाता है कि स्त्री के लिए मैथुन-क्रिया का अंत नहीं होता। पुरुष में काम-इच्छा तीर की तरह उठती है। एक सीमा पर पहुंच जाने पर यह तृप्त हो जाती है। पुरुष की काम-क्रिया एक निश्चित रूप ग्रहण करती है और फिर खत्म हो जाती है, जारी नहीं रहती। स्त्री का आनंद पूरे शरीर में व्याप्त रहता है, यह हमेशा जननेंद्रियों तक ही सीमित नहीं रहता। यह आनंद वहीं तक रहने पर भी योनि का संकुचित होना, कामोन्माद की स्थिति का सृजन नहीं करता बल्कि ताल सहित लहरों का उठना, गिरना, पुनः उठना मानो एक आवेग की स्थिति पैदा होती है। यह बड़ी अस्पष्ट स्थिति है। स्त्री शिथिल हो जाती है पर इच्छा समाप्त नहीं होती। स्त्री के आनंद को व्यक्त करने के लिए कोई विशेष शब्द नहीं है। यह इच्छा असीमित की ओर अग्रसर होती है और मानसिक तृप्ति पर समाप्त। स्त्री थक जाती है, अभिभूत हो जाती है पर उसे मानो पूरी मुक्ति नहीं मिलती।

काम-आनंद स्त्री में एक मंत्र-मुग्धता की स्थिति लाता है। इसमें पूरे समर्पण की आवश्यकता होती है। शब्दों या दूसरी गतिविधियों से.बाधा पड़ने पर यह मुग्धता नष्ट हो जाती है। इसी कारण प्रायः स्त्री अपनी आंखें बंद कर लेती है। उसकी बंद पलकें मानो उसकी तन्मयता की सूचक होती हैं। वह अंधेरे में भी पलकें झुकाए रहती है। वह आसपास के वातावरण को भूल जाती है। वह उस क्षण की विशेषता भी भूल जाती है। वह अपने और अपने प्रेमी के अस्तित्व को भुला देती है। वह एक ऐसे दैहिक सुख में खो जाती है जो माता के गर्भ की तरह छाया से पूर्ण रहता है। वह पुरुष और स्त्री के बीच की पृथकता मिटा देना चाहती है। वह पुरुष में एकाकार हो जाना चाहती है। सेक्स- सम्बंधों में पारस्परिकता दोनों के लिए आवश्यक होती है। सेक्स-सम्बंधों में आनंद की अनुभूति न होने पर स्त्री अपने को छली गई महसूस करती है। एक बार भी अपने को अन्या या गौण महसूस करने पर वह पारस्परिकता को अस्वीकार कर देती है। सम्भोग के बाद दो शरीरों के अलगाव का क्षण स्त्री के लिए विषादपूर्ण होता है। पुरुष पुनः एक स्वतंत्र और शुद्ध शरीर हो जाता है। वह या तो सोना चाहता है या स्नान करना। वह सिगरेट पीता है या फिर बाहर चला जाता है। स्त्री सहज ही शारीरिक सम्बंध तोड़ना नहीं चाहती। वह मंत्र-मुग्ध अवस्था में रहती है। अलग होना उसके लिए दुःखद होता है। उसे उस प्रेमी के प्रति अफसोस होता है जो उसे हठात् छोड़कर चला जाता है। उसे उन शब्दों द्वारा और भी अधिक कष्ट होता है जो मिलन के उस क्षण के बिल्कुल प्रतिकूल होते हैं, जिस क्षण पर उसे पूरा विश्वास रहता है।

सम्भोगजनित आनंद की शाब्दिक अभिव्यक्ति कई स्त्रियों को रुचिकर नहीं लगती। शाब्दिक अभिव्यक्ति उस आनंद को नितांत सांसारिक वस्तु बना देती है। इससे पुरुष और स्त्री की अनुभूतियों में विलगाव आ जाता है। ऐसा करना प्रेम को एक यांत्रिक कार्य में बदल देना है, जिसे पुरुष संचालित करता है। पुरुष हमेशा अपना आधिपत्य व शासन चाहता है। वस्तुत: वह हार्दिक पारस्परिकता नहीं चाहता । स्त्री से पृथक होकर वह फिर अपने व्यक्तित्व की सत्ता स्थापित करता है। अपनी इस विशेष स्थिति के त्याग के लिए पुरुष में उदारता और प्रेम का होना आवश्यक है। वह स्त्री को हमेशा अपमानित करना चाहता है। जो कुछ स्त्री देती हैं, पुरुष हमेशा उससे अधिक चाहता है। यदि पुरुष काम-क्रीड़ा को एक युद्ध-क्षेत्र और बिस्तर को अखाड़ा मानना बंद कर दे तो स्त्रियों की कई परेशानियां सहज ही दूर हो जाएंगी।

आत्मगौरव और आत्म-मुग्धता के बावजूद एक स्त्री शासित होना चाहती है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के अनुसार आत्मपीड़क कामुकता स्त्री की एक विशेषता होती है। इसलिए वह अपने को प्रेम-सम्बंधी किसी भी स्थिति के अनुकूल बना लेती है। आत्मपीड़क कामुकता बड़ी क्लिष्ट और उलझन की परिस्थिति है और उस पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

फ्रायड के अनुसार स्त्री में आत्मपीड़क कामुकता तीन प्रकार की होती है। प्रथम के अनुसार काम-आनंद में सामंजस्य स्थापित करना, दूसरी के अनुसार काम-सम्बंधी मामलों में स्त्री का परावलम्बी होना, तीसरी के अनुसार स्त्री का स्वयं को दंडित करना। स्त्री में आत्मपीड़क कामुकता इस अर्थ में होती है कि उसमें आनंद और प्रेम का सुंदर सम्मिश्रण होता है। योनि-क्षत और शिशु-जन्म के समय उसे पीड़ा होती है, किंतु वह अपनी इन भूमिकाओं को शांत भाव से ग्रहण करती है।

स्त्री की विनम्रता भी बड़ी विचित्र होती है। वह भी द्वयर्थक होती है। एक युवती कल्पना में किसी नायक या किसी अर्धदेव को स्वीकार करती है लेकिन यह भी उसका एक आत्ममोह होता है । वास्तव में वह किसी के शारीरिक सुख के लिए साधन बनने की कल्पना नहीं करती। अक्सर इसके विपरीत व्यक्ति के व्यवहार को कल्पना के माध्यम से समझा नहीं जा सकता, क्योंकि कल्पना की सृष्टि और कल्पना को संजोना, दोनों ही वायवीय होते हैं। मैरी बाशकोर्सेव कहती हैं, "मैंने जिंदगी-भर अपने को किसी काल्पनिक सत्ता के अधीन रखना चाहा परंतु वास्तविक जीवन में मैं जिन पुरुषों के सम्पर्क में आई, उन्हें मैंने अपनी अपेक्षा बहुत साधारण पाया, इसलिए मुझे ऐसे पुरुषों से विरक्ति ही हुई।"

यह ठीक है कि काम-केलि में स्त्री की भूमिका शांत रहती है किंतु उस शांत भूमिका को वह जिस तरह निभाती है, वह पुरुष के आक्रमणकारी और पीड़क व्यवहार की तरह परपीड़क कामुकता से किसी तरह भिन्न नहीं होती। स्त्री लाड़-दुलार, उत्तेजना और पुरुष

का प्रवेश, सबको पीछे छोड़कर स्वयं आनंद-प्राप्ति की चाह में व्यग्र हो सकती है। इस प्रकार वह अपने व्यक्तित्व को बनाए रखती है। वह प्रेमी के साथ मिलन की कामना कर सकती है और अपने को समर्पित कर सकती है पर ऐसा करने में वैयक्तिकता तभी रहती है, जब व्यक्ति दूसरे की चेतना में अपने को अस्तित्ववान देखना चाहता है, जिससे अन्य उसे स्वीकार करे। आत्म-पीड़क कामुकता अपनी 'अन्यता' द्वारा दूसरों को मुग्ध करने की चेष्टा नहीं है बल्कि दूसरों की दृष्टि में अपनी अन्यता पर स्वयं रीझना है। आत्म-पीड़क कामुकता वहीं परिलक्षित होती है, जहां अहं का पृथक अस्तित्व रहता है और इस दुहरे अहं को हम अपनी अन्य इच्छा पर निर्भर पाते हैं।

वस्तुत: यह आत्मपीड़क कामुकता कुछ ही स्त्रियों में रहती है। आत्ममुग्धा अल्पवयस्क लड़कियों का झुकाव इस ओर अधिक रहता है। आत्ममोह का तात्पर्य ही अपने अहं को अन्या या अजनबी के रूप में देखना है । काम-भाव उत्पन्न होने के साथ ही तीव्र इच्छा और उत्तेजना का अनुभव करने वाली स्त्री अपने अनुभव को अपने भीतर ही देखेगी। वह अपने में ही उन अनुभवों को देखना चाहेगी किंतु यदि वह निरुत्साहित है, तो अपने बाह्य रूप के अस्तित्व पर अधिक जोर देगी। इस अवस्था में उसे पुरुष की । वस्तु कहना अनुचित होगा। इस प्रकार आत्मपीड़न और परपीड़न दोनों ही अपराध हैं। "मैं अन्य हूं, इसलिए मैं दोषी हूं"- सार्च का यह विचार फ्रायड के 'आत्मदंडित' विचार से समानता रखता है। एक लड़की अपने को समर्पित कर देने में अपने को ही दोषी समझती है और वह अपने को स्वयं दंडित करती है। इस प्रकार स्वेच्छा से ही अपना अपमान और दासत्व वह बढ़ा लेती है। ऐसा देखा गया है कि कुंवारी लड़कियां अपने प्रेमी के प्रति अवज्ञा के भाव रखती हैं । प्रेमी के वास्तव में सम्मुख रहने पर वे अपने को तरह-तरह से सोचकर यह यातना देती हैं कि अब समर्पण करना पड़ेगा। वे जिद पर अड़ी रहती हैं। निरुत्साहित स्त्रियां अपने और अपने साथी, यानी दोनों को दंडित करती हैं। उनका दर्प भंग हो जाता है। उन्हें अपने और अपने प्रेमी के लिए दु:ख होता है। वे स्वयं को आनंद से वंचित रखती हैं। आत्मपीड़क कामुकता के प्रभाव में हताश होकर वे पुरुष की दासता स्वीकार कर लेती हैं। वे प्यार के शब्द बोलती हैं। मानो वे अपमानित और ताड़ित होना चाहती हैं। वे अपने अहं को अपने से लगातार अलगाती जाती हैं। इसलिए वे उनके पैरों पर गिरती हैं, उनकी हर 'सनक' और धुन के अनुसार व्यवहार करती हैं। वे अपना सर्वस्व उसे समर्पित करती हैं, पर साथ ही उनके और अपने प्रति विद्रोह भी करती हैं। वे उनकी बांहों में बर्फ की तरह ठंडी पड़ जाती हैं।

आत्मपीड़क कामुकता से प्रेरित स्त्री का समर्पण बनावटी होता है। वह अपने और आनंद के बीच बोध की सृष्टि करती है। इस प्रकार वह स्वयं से प्रतिशोध लेती है क्योंकि वह आनंद को समझने की क्षमता नहीं रखती। इस प्रकार निरुत्साह की भावना और आत्मपीड़क कामुकता की भावना का पुरुष एक दुष्चक्र चलता है और तब पुरुष में

परपीड़क कामुकता आ जाती है। कई स्त्रियों का निरुत्साह उनमें काम-सम्बंधी प्रौढ़ता आ जाने पर दूर हो जाता है। वे आत्म-मुग्धता त्याग देती हैं। वे अपनी सम्भोग-सम्बंधी निष्क्रियता समझ जाती हैं। वे इसका वास्तविक अनुभव करती हैं। अब सेक्स खिलवाड़ नहीं रह जाता। आत्मपीड़क कामुकता में विरोधाभास रहता है। स्त्री निरंतर अपनी सत्ता स्थापित करना चाहती है जबकि वह अपना अधिकार त्याग देती है। बिना पूर्व-विचार के समर्पण कर देने और स्वतः ही अन्य की ओर अग्रसर होने से व्यक्ति अपने अहं को भूल जाता है। यह सच है कि स्त्री में आत्मपीड़क कामुकता के भाव पुरुष से अधिक रहते हैं। काम-सम्बंधी मामलों में निष्क्रिय 'अन्या' रहने के कारण वह अपनी निष्क्रिय भूमिका भली-भांति निभाती है। यह एक प्रकार से आत्मदंड है लेकिन स्त्री अपनी आत्म-मुग्धता और निरुत्साह के कारण ही यह दंड भोगती है। अनेक स्त्रियों, विशेषकर युवतियों में आत्मपीड़क कामुकता पाई जाती है। आत्मपीड़क कामुकता की भावना विकृत मनोवृत्ति वाली किशोरियों में पाई जाती है। स्त्री के यौन-सम्बंधी अंतर्द्वद्वों का यह समाधान नहीं है, बल्कि यह तो उससे दूर भाग जाने का साधनमात्र है, वह भी गुलछर्रे मारकर, आनंद उठाकर । आत्मपीड़क कामुकता स्त्री के सुखी और स्वाभाविक काम-भाव की सूचक नहीं होती।

प्रेम, स्नेह और इंद्रिय-सुख प्राप्त करने में स्त्री को सफलता तभी मिलती है, जब वह अपनी निष्क्रियता को दूर कर दे और अपने साथी के साथ पारस्परिकता का सम्बंध स्थापित करे । स्त्री और । के मध्य काम-प्रेम की असमानता ऐसी समस्याओं की सृष्टि करती है, जिनका समाधान बहुत सहजता से हो सकता है, यदि स्त्री पुरुष की इच्छा के साथ-साथ स्वतंत्रता को भी मान्यता दें। ऐसा करने से स्त्री अपने को 'मुख्य' समझती है, यद्यपि वह 'अन्या रूप' ही रहती है, पर उसकी अखंडता नष्ट नहीं होती। वह स्वेच्छा से समर्पण करती है। ऐसी परिस्थिति में प्रेमियों को दोनों पक्षों के लिए. सुखदायक आनंद मिल सकता है। आनंद कृतज्ञता है। आनंद स्नेह है। अपने मूर्त और शरीर रूप में दोनों आपस में एक-दूसरे के 'अहं' को समझते हैं, और एक-दूसरे के अन्य रूप से भी परिचित रहते हैं। कुछ स्त्रियों का कथन है कि वे पुरुष के लिंग को अपने शरीर का अंश समझती हैं और कुछ पुरुष अपने को वह स्त्री-रूप देखते हैं, जिसमें वे प्रवेश करते हैं। इन शब्दों का अर्थ और भी व्यापक होता है। 'अन्य' का सम्बंध तो कायम रहेगा ही, पर 'अन्यता' का रूप शत्रुता का नहीं होगा। यह आनंद और भी बढ़ जाता है, सुखमय हो जाता है, जब दोनों ही भावावेश में अपनी-अपनी सीमाओं को स्वीकार भी करते हैं और साथ ही अस्वीकार भी। किसी अंश में दोनों में समानता है और किसी अंश में दोनों असमान। स्त्री और पुरुष को पृथक करने वाली असमानता मिलन की बेला में मंत्र- मुग्धता का स्रोत बन जाती है। स्त्री पुरुष की बेचैन उग्रता में अपनी उस मौन तड़प को देखती हैं, जो उसे दग्ध करती है। पुरुष की शक्ति का प्रतिबिम्ब, स्त्री की उस मोहिनी शक्ति में है, जिस पर वह आसक्त हो उठता है।

जीवन की यह मांग उसे अपनी लगती है, उसी प्रकार पुरुष की मुस्कान भी स्त्री को आनंद की अनुभूति देती है। पुरुषत्व और स्त्रीत्व की सारी निधियां एक-दूसरे को प्रतिबिम्बित करती हैं और वे एक अलौकिक एकता में बद्ध जाते हैं। वह एकता, जो रूप बदलती रहती है। ऐसा सुंदर सम्बंध स्थापित करने के लिए यह आवश्यक नहीं कि स्त्री और पुरुष किसी कलात्मक विधि को अपनाएं बल्कि जिस क्षण सम्भोग में प्रेम की मुग्धता प्राप्त होती है, उसे वे हृदय और शरीर की उदारता पर आधारित होकर स्वीकार करें। पुरुष की औदार्य-भावना उसके दम्भ द्वारा और स्त्री की औदार्य-भावना कायरता से नष्ट हो जाती है। दुराव को इस भावना के रहने तक स्त्री उदार नहीं हो सकती। इसलिए कामोन्माद स्त्री में देर से पैदा होता है। करीब 35 वर्ष की अवस्था में उसकी रति-भावना चरम सीमा पर रहती है। दुर्भाग्यवश यदि वह विवाहिता है, तो उसका पति अभी तक उसके निरुत्साह से ही परिचित रहता है। वह नए प्रेमियों को मुग्ध करने की क्षमता रखती है पर उसके यौवन का उन्माद शिथिल होने लगता है। उसके यौवन के दिन गिने हुए अथवा सीमित रहते हैं । यह वह समय है, जब पुरुष उसकी विशेष चाह नहीं करता। वह पुरुष के लिए वांछित नहीं रहती। कुछ स्त्रियां इस समय निःसंकोच अपनी इच्छा व्यक्त करती हैं।

स्त्री का यौन-जीवन किस रूप में विकसित होगा, यह उसकी सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति पर निर्भर रहता है। काम-सम्बंधी अनुभव व्यक्तियों को बहुत गम्भीरता से उसकी स्थिति से परिचित कराते हैं। वे व्यक्ति-रूप भी होते हैं और वस्तुनिष्ठ भी। इस संघर्ष का रूप स्त्री के लिए बहुत नाटकीय होता है क्योंकि वह अपने को 'अन्या' के रूप में देखती है और रति-आनंद में अपनी स्वतंत्रता को नहीं समझ पाती। स्त्री को अपनी उत्कृष्ट स्थिति को मर्यादा से परिचित होना चाहिए। वह भी एक स्वतंत्र व्यक्ति-रूप है, यह सत्य है। वह दैहिक भी है। यह एक ऐसा साहस का कार्य व विचार है, जिसे स्त्री बड़ी परेशानी और संकट के साथ पूरा कर पाती है। कभी-कभी तो इसमें वह असफल भी सिद्ध होती है। उसकी स्थिति की जटिलता उसे उस जाल में फंसने नहीं देती, जिसमें पुरुष सहजता से फंस जाता है। पुरुष की भूमिका आक्रमणकारी की है। इसे वह सौभाग्य समझता है, पर यह सौभाग्य भी छल है, जो पुरुष को बुरी तरह छलता है। उसे कामोन्माद का अनुभव होता है, पर वह अपने को देह-रूप में देखने में संकोच करता हैं । स्त्री अपने प्रेम को पुरुष से अधिक सच्चे रूप में देखती है।

स्त्री अपनी शांत भूमिका के अनुकूल अपने को बनाए या न बनाए, उसे एक सक्रिय के रूप में हमेशा हताश होना पड़ता है। वह पुरुष के आधिपत्य स्थापित करने वाले लिंग से ईर्ष्या नहीं करती, वह तो स्वयं पुरुष का शिकार होती हैं।

यह एक विचित्र बात है कि पुरुष स्त्री-जगत् में विचरण करता है, जहां मधुरता है, स्नेह और शालीनता भी। स्त्री पुरुष-जगत् में विचरण करती है, जहां रुखापन है और कठोरता

भी। उसकी कामना मुलायम और कोमल शरीर को स्पर्श करने की होती है। वह एक किशोर बालक, एक दूसरी स्त्री, फूल और 'फर' और शिशु को प्राप्त करने की इच्छा रखती है। वह एक ऐसी सम्पत्ति की चाह करती है, जिसे वह स्वयं पुरुष को प्रदान करती है। इसीलिए अनेक स्त्रियों में समलिंगी कामुकता बड़ी स्पष्ट रहती है। अनेक स्त्रियों में अनेक कारणों से यह इच्छा बड़ी शक्तिशाली रहती है और व्यक्त भी। प्रत्येक स्त्री अपनी यौन-सम्बंधी समस्या को सामाजिक मान्यता की दृष्टि से हल करने में न तो समर्थ है और न इच्छुक ही।

समलिंगी स्त्री

पुरुषोचित वेशभूषा धारण करने वाली और पुरुषों की तरह दिखने की कोशिश करने वाली स्त्री को हम समलिंगी कामुक स्त्री कहते हैं। उसके पुरुषों जैसे बाह्य रूप से ऐसी शंका होती है कि उसके हारमोन' अस्वाभाविक हैं। समलिंगी कामुकता को पुरुषत्व की बराबरी में रखना गलत होगा। हरम में रहनेवाली अनेक स्त्रियों में समलिंगी कामुकता होती है। पुरुषोचित गुणों वाली कुछ स्त्रियां उभयलिंगी कामुक होती हैं। यौन-वैज्ञानिकों और चिकित्सकों के विचारानुसार समलिंगी स्त्रियों की शारीरिक रचना दूसरी स्त्रियों से भिन्न नहीं होती। शरीर-रचना के आधार पर उनकी कामुकता का निर्णय करना सहज नहीं।

शारीरिक विशेषताएं निश्चय ही खास स्थितियां पैदा करती हैं। जीव-विज्ञान के अनुसार स्त्री और पुरुष-यौन में कोई विशेष अंतर नहीं होता। कुछ हारमोन ऐसे होते हैं, जो दैहिक तत्त्वों पर एक समान प्रभाव डालते हैं। फलस्वरूप पुरुष या स्त्री-शरीर की रचना होगी, इसका निर्णय जैविक तत्त्वों से होता है। किंतु गर्भ में भ्रूण के विकास के समय यह प्रभाव बदल भी सकता है। कुछ पुरुषों में स्त्री के गुण आ जाते हैं क्योंकि उनके पुरुष-अवयव धीरे-धीरे बढ़ते हैं। हम अक्सर देखते हैं कि इस प्रकार की लड़कियों में खेलकूद के प्रति विशेष लगाव होता है। वे लड़कों में बदल जाती हैं। कुछ स्त्रियों में पुरुष 'हारमोन' का प्रभाव होता है, उन्हें भी स्त्री ही कहते हैं। उनमें पुरुष- यौन की कुछ विशेषताएं पाई जाती हैं जैसे मुख पर वालों का होना । स्त्री-हारमोन की कमी के कारण कुछ स्त्रियों में बचपना अधिक रहता है क्योंकि उनका विकास संतुलित नहीं होता। ऐसी विशेषता स्त्री समलिंगी कामुकता की पहचान है। जिस स्त्री में स्फूर्ति और शक्ति रहती है, वह हमेशा सक्रिय रहती है। वह निष्क्रियता पसंद नहीं करती। जिस स्त्री का विकास ठीक नहीं होता, जिसे उचित परिवेश नहीं मिलता, वह अपनी हीनता के भावों की पूर्ति के लिए शक्तिशाली गुणों को प्रदर्शित करती है। यदि उसको काम-भावना भी अविकसित रहती है तो उसे पुरुष के आलिंगन और लाड़ पसंद नहीं आते।

शरीर-रचना और हारमोन केवल स्थिति का सृजन करते हैं, किंतु स्थिति जहां उत्कृष्ट होती है वहां वे वस्तु को स्थापित नहीं करते। हेलेन दोएश ने, पोलैंड के एक जवान सैनिक, जो उनकी सेवा में आया और जो वास्तव में एक नवयुवती था तथा जिसमें पुरुष-यौन की विशेषता गौण थी, का वर्णन किया है। उसने एक नर्स के रूप में सेना में प्रवेश पाया और फिर अपने 'यौन' को गुप्त रखकर सैनिक बन गई। वह अपने एक साथी से प्रेम करने लगी। उनके बीच अनुकूल समझौता कायम रहा। उसके बर्ताव को देखकर उसके साथियों ने सोचा कि वह पुरुष समलिंगी कामुक है। उसमें पुरुषोचित विशेषता के साथ स्त्रीत्व के भी गुण थे। पुरुष हमेशा स्त्रीत्व को नहीं चाहता। एक समलिंगी कामुक पुरुप में पूर्ण पुरुष की सारी विशेषताएं रहती हैं, अतः वह स्त्री जिसमें पुरुषोचित गुण हों, हमेशा समलिंगी कामुक नहीं होती।

स्त्रियां प्राय: शरीर-रचना के आधार पर clitoridis और vaginal होती हैं । पहली प्रकार की स्त्रियां सजातीय कामुकता वाली होती हैं। बचपन में काम-वासना सुप्त रहती है। आगे चलकर वह एक सीमा तक सीमित रहती है या उससे ऊंचे उठ जाती है, यह विषय शरीर-विज्ञान के अंतर्गत नहीं है। यह भी नहीं है कि बचपन में हस्तमैथुन करने वाली लड़कियां आगे चलकर भगशिश्न को प्रमुखता न देती हों। आज के यौन-विज्ञान के अनुसार बालक का हस्तमैथुन एक बिल्कुल स्वाभाविक घटना है। स्त्री में प्रेम और काम-भावना का विकास एक मानसिक क्रिया है, जो शारीरिक तत्त्वों से प्रभावित होती है। यह क्रिया व्यक्ति के अस्तित्व के प्रति दृष्टिकोण पर निर्भर होती है। एक विद्वान् के अनुसार कामुकता का गुण एकरूपता हैं । पुरुष में यह गुण पूर्ण विकसित होता है। स्त्रियों में यह अर्ध-विकसित अवस्था में रहता है। स्त्री-कामुकता को अपनी एक विशेष रचना होती है, इसलिए स्त्री और पुरुष की कामुकता उत्कृष्टता व हीनता का जिक्र व्यर्थ है। किसी भी काम-वस्तु को पसंद करने में यह नहीं देखा जाता कि स्त्री में शारीरिक शक्ति किस परिमाण में है।

मनोवैज्ञानिक विद्वानों ने समलिंगी स्त्रियों में कुछ मानसिक विशेषताएं देखी हैं, शारीरिक नहीं। शारीरिक विशेषताएं बहुत-कुछ बाह्य परिस्थितियों द्वारा प्रभावित और निर्धारित होती हैं। फ्रायड के अनुसार, स्त्री में काम-भावना तब परिपक्व होती है, जब वह clitoridis को पार कर Vaginal स्थिति में पहुंच जाती है, जबकि छोटी बालिका को मां के प्रति उतना प्यार नहीं रहता, जितना पिता के प्रति। अनेक कारणों से इस विकास में बाधा पड़ सकती है। हो सकता है कि स्त्री अपनी अवस्था के परिवर्तित रूप को स्वीकार न करे। वह अपने से ही 'लिंग' की अनुपस्थिति को छिपाती रहे और मां तक ही अपना प्रेम स्थित रखे, जिसके लिए वह हमेशा प्रतिरूप खोजती रहती है।

ऐडलर के अनुसार विकास का रुक जाना एक ऐसी आकस्मिक घटना नहीं है जिसे कि व्यक्ति शांति भाव सहन कर ले। यह व्यक्ति द्वारा इच्छित होता है। उसकी इच्छा सत्ता प्राप्त

करने की होती है। स्त्री नहीं चाहती कि उसका रूप विकृत किया जाए। वह पुरुष के साथ समानता स्थापित करना चाहती है और उसके शासन को अस्वीकार भी करती है, भले ही इसे बाल्यावस्था में ही स्थित हो जाना या फिर पुरुष का प्रतिरोध कहा जाए। विकास का रुक जाना ही समलिंगी कामुकता है। जिस प्रकार उत्कृष्ट स्त्री अविकसित नहीं होती, उसी प्रकार समलिंगी कामुक स्त्री भी अविकसित नहीं होती। किसी भी व्यक्ति का इतिहास एक काल्पनिक विकास नहीं होता। हर क्षण एक नया दृष्टिकोण भी इसे विशेष महत्त्व नहीं देता। वास्तविकता के आधार पर उसका मूल्यांकन करना चाहिए। समलिंगी कामुकता मानो स्त्री के लिए अपनी स्थिति से भागना है, बचना है या फिर इसे स्वीकार करना है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषकों की सबसे बड़ी गलती यह है कि वे इसे अस्वाभाविक मानते हैं।

स्त्री वह अस्तित्व है, जिसे अपने को अन्य-निष्ठ व वस्तु मान लेने के लिए विवश किया जाता है। व्यक्ति रूप में उसकी कामुकता में भी एक ऐसा आक्रमणकारी तत्त्व रहता है, जो पुरुष के शरीर द्वारा तृप्त नहीं हो सकता। अत: उन संघर्षों की सृष्टि होती है, जिनका उसकी काम-इच्छा किसी प्रकार दमन न कर सके। जब स्त्री अपने को पुरुष के सम्मुख समर्पित कर देती है और संतान को जन्म देकर अपनी सत्ता स्थापित कर लेती है, तब सामाजिक कल्याण के दृष्टिकोण से इस विधि को साधारण माना जाता है । इतरलिंगता दूसरे समाधान भी प्रस्तुत कर सकती है। समलिंगी कामुकता के द्वारा स्त्री अपनी स्वतंत्रता और अपनी दैहिक निष्क्रियता में सामंजस्य स्थापित करती है। यदि प्रकृति के अनुसार देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि सभी स्त्रियां समलिंगी कामुक होती हैं। समलिंगी कामुक स्त्री की सबसे बड़ी पहचान उसका पुरुष को अस्वीकार करना और स्त्री को पसंद करना है। हर किशोर युवती सम्भोग से डरती है यद्यपि पुरुष के शरीर के प्रति उसमें आकर्षण भी होता है। पुरुष के लिए वह चाह की एक वस्तु होती है।

अपने को व्यक्ति-रूप में देखने वाला पुरुष अपने को अन्य से अलग रखता है। वह उस स्त्री को अन्य के रूप में देखता है जिसे वह ग्रहण करता है। यह स्थिति के ठोस आदर्श को ठेस पहुंचाती है। अपने को वस्तु के रूप में देखने वाली स्त्री स्वयं को एक अन्य कोटि के जीव व पुरुष का शिकार समझती है। समलिंगी कामुक पुरुष, जो एक छोटी उम्र के लड़के के साथ लिंग-सम्बंध स्थापित करता है, इतरलिंगी स्त्री और पुरुष को सम्मानपूर्ण व्यक्ति के रूप में ही देखना चाहते हैं। पुरुष और स्त्री समलिंगी कामुक पुरुष को उपहास की ही दृष्टि से देखते हैं।

पुरुष सक्रिय और स्वतंत्र स्वभाव वाली इतरलिंगी स्त्री से जितना घबराता है, उतना शांत समलिंगी कामुक स्त्री से नहीं। प्रथम प्रकार की स्त्री मानो पुरुष के अधिकारों को चुनौती देती है जबकि समलिंगी कामुक स्त्री परम्परा से चलते आए पुरुष और स्त्री के अंतर को अस्वीकार नहीं करती। वह स्त्रीत्व को स्वीकार करती है, उसे अस्वीकार नहीं। इस प्रकार

की समलिंगी कामुकता प्रायः किशोर-वय की लड़कियों में पाई जाती है क्योंकि ये विपरीत लिंगी के साथ सम्बंध या तो समय के अभाव से या कठोरता के भय से स्थापित नहीं कर पातीं। समलिंगी कामुक लड़की मानो रति-कला की दीक्षा लेती है। इस अवस्था में वह प्रेम करना सीखती है। ऐसी लड़की आगे चलकर बहुत ही प्रेम देने वाली पत्नी और स्नेहमयी माता बन सकती है।

समलिंगी कामुकता वाली स्त्रियां दो प्रकार की होती हैं। एक प्रकार की स्त्रियों में मर्दानापन रहता है। वे पुरुषों को नकल करती हैं। दूसरे प्रकार की स्त्रियां स्त्री-सुलभ गुणों वाली ही होती हैं, उन्हें पुरुषों से भय लगता है। समलिंगी कामुक स्त्रियों में दो दृष्टिकोण देखे जाते हैं। कुछ स्त्रियां निष्क्रियता पसंद नहीं करतीं। कुछ ऐसी हैं जो अन्य स्त्रियों की बांहों में शांत भाव से सहारा लेना पसंद करती हैं। उन दोनों अंतरों की आपस में प्रतिक्रिया होती है। जो वांछित है, उसकी सहायता से अवांछित को समझा जा सकता है किंतु यह अंतर अपनी इच्छानुसार किया गया है। कुछ समलिंगी कामुक स्त्रियां पुरुषों की नकल करती हैं, पर उन्हें पुरुष की संज्ञा देना अनुचित होगा। मनोवैज्ञानिकों ने इस प्रकार के विवेचन से बड़ी समस्या खड़ी कर दी है। वास्तव में आज साकार या तटस्थ को ही स्वीकार किया जाता है। समलिंगी स्त्री निराकार और नगण्य होती है, मानो वह पुरुष की बराबरी कर रही हो। उसकी खेलकूद, राजनीतिक और बौद्धिक क्षमता और अन्य स्त्रियों के प्रति उसकी काम-भावना से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि वह पुरुष का विरोध कर रही है। वह जिन मान्यताओं को लक्ष्य बनाकर आगे बढ़ती है, आमतौर पर उन्हें अस्वीकार किया जाता है और कहा जाता है कि वह पुरुष का विरोध कर रही है। कहा जाता है कि वह व्यक्ति के रूप में कृत्रिम पसंद अपनाती है। स्त्री-जीव का स्त्री लगना ही स्वाभाविक है। जरूरी नहीं है कि वह मां बने । जिस प्रकार से हिजड़े बनाए जाते हैं, उसी प्रकार अब 'सच्ची माता' आधुनिक सभ्यता की कृत्रिम बनावट है। स्त्री को विनम्र प्रेमिका के रूप में रहने की शिक्षा उसी प्रकार दी जाती है, जिस प्रकार पुरुष को लिंग पर गर्व करना सिखाया जाता है। पुरुष हमेशा अपनी शक्तिशाली भूमिका को स्वीकार नहीं करता। इसी प्रकार स्त्री भी कुछ निजी कारणों से थोपी हुई भूमिका को सहज विनम्रता से स्वीकार नहीं कर पाती। स्त्रीत्व की आरोपित आवश्यकताओं द्वारा तुच्छ करार दिए जाने के कारण स्त्री में हीनभाव जन्म लेता है। वह हृदय से तो पूर्ण व्यक्ति ही होना चाहती है एक ऐसा व्यक्ति, एक ऐसी स्वतंत्र सत्ता, जिसका संसार में भविष्य हो। अगर उसकी पसंद और शक्ति में तकरार मेल न बैठे, तो आज वह अपना रूप विकृत समझती है, अपने को क्षत-विक्षत देखती है। अनेक समलिंगी स्त्रियों ने चिकित्सकों को जो वक्तव्य दिए हैं, उनसे यह स्पष्ट होता है कि उन्हें सबसे अधिक घृणा बचपन में भी 'स्त्री' के रूप में देखे जाने से थी। उन्हें लड़कियों की रुचियों और चाहों से घृणा होती है। वे लड़कों के खेल- खिलौने पसंद करती हैं, उन्हें स्त्रियों के भाग्य पर दुःख

होता है। उन्हें स्वयं 'स्त्री' बन जाने का भय रहता है और वे लड़कियों के स्कूल में भी पढ़ने जाने में आपत्ति करती हैं।

इस प्रकार का विरोध स्पष्ट कर देता है कि ऐसी स्त्रियां समलिंगी कामुक होती हैं। बहुत छोटी लड़कियों को बड़ी निराशा और अपमान का अनुभव होता है, जब उन्हें यह पता चलता है कि उनके शरीर की रचना ऐसी हुई है कि उनकी रुचि और महत्त्वाकांक्षा उनके लिए निंदा की वस्तु बन गई है। कालेट ने घोर अपमान का अनुभव किया, जब उसे बारह साल की उम्र में यह पता चला कि वह एक नाविक नहीं बन सकती। यदि 'यौन' के आधार पर स्त्री पर कोई बंधन लगे तो वास्तव में भविष्य की स्त्री भी उसे अपना अपमान समझेगी। प्रश्न हमारे सम्मुख यह नहीं है कि वह उन्हें क्यों अस्वीकार करती है बल्कि वास्तविक समस्या तो यह है कि वह ऐसे बंधन क्यों स्वीकार करे? यद्यपि बहुत-सी बातें वह अपनी विनम्रता और कायरता के कारण मान लेती है, तो भी यह स्वाभाविक है कि वह विद्रोह करेगी। स्त्री की शारीरिक रचना का विशेष महत्त्व होता है। यदि किसी लड़की का शरीर बेडौल या चेहरा कुरूप हो या उसे अपने बारे में ऐसा भ्रम हो, तो वह स्त्री के भाग्य को अस्वीकार कर देती है क्योंकि उसमें वांछित शारीरिक आकर्षण नहीं है । स्त्री में स्त्री-रूप की कमी को पूर्ण करने के लिए पुरुषोचित गुण आने चाहिए, ऐसा सोचना भी गलत होगा। सच तो यह है कि किशोर लड़की अपने लिए प्राप्त अवसरों और सुविधाओं को पुरुषोचित सुविधाओं के लिए नहीं त्याग सकती। सभी लड़कियां, जिनका लालन-पालन परम्परागत है, लड़कों की वेशभूषा से ईर्ष्या करती हैं, क्योंकि वे सुविधाजनक लगते हैं। यदि शीशे में उन्हें अपना प्रतिबिम्ब और भविष्य ऐसा मालूम पड़े, जिससे धीरे-धीरे उनका महत्त्व घट जाएगा या सत्य प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण उन्हें आभास दे कि उनकी शक्ल साधारण-सी है, उनका भविष्य विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है तो उन्हें रिबन और लेस एक कष्टकारी पहनावे लगते हैं। यहां तक कि अपनी स्वाभाविक वेशभूषा हास्यास्पद लगती है और वे हठ करके लड़कों का स्वभाव अपना लेती हैं।

यदि सुंदर आकृति और आकर्षक चेहरे वाली लड़की किसी महत्त्वाकांक्षी योजना में डूबी है या स्वाभाविक स्वतंत्रता चाहती है तो वह दूसरे मनुष्य की इच्छा के सम्मुख कभी नहीं झुकेगी। वह अपने कार्यकलापों में अपने को देखती है। पुरुष की इच्छा, जो उसे उसके शरीर तक ही सीमित रखना चाहती है, उसे एक गहरा धक्का पहुंचाती है। स्वाभाविक स्वतंत्रता चाहने वाली स्त्री विनम्र और आत्म- समर्पण करने वाली स्त्रियों से उतनी ही घृणा करती है जितनी एक शक्तिशाली पुरुष एक समलिंगी कामुक पुरुष से, जो छोटे लड़कों के साथ यौन-सम्बंध स्थापित करता है। वह पुरुषों का-सा रुख ग्रहण कर लेती है और नम्र व कायर स्त्रियों का कोई भी चिह्न वह अपने लिए अस्वीकार करती है। वह पुरुष की वेशभूषा ग्रहण करना चाहती हैं। वह पुरुषों की भाषा और जीवन-पद्धति अपनाती है। वह स्त्री-

सुलभ गुण वाली स्त्री के साथ मित्रता के अवसर पर पुरुष की भूमिका ग्रहण करती है, चाहे इसे नाटकीय ही कहा जाए, वह बिल्कुल पुरुष की तरह प्रतिरोध करती है। यह भूमिका तो गौण है किंतु मुख्य बात तो यह है कि इस तरह वह पुरुष की अजेय और शक्तिशाली सत्ता को अस्वीकार करती है। यह विचार कि उसे पुरुष को अपनी देह सौंपनी पड़ेगी, कष्टदायी लगता है। इसके लिए वह सहज प्रस्तुत नहीं होती।

अनेक खिलाड़ी स्त्रियां समलिंगी कामुक होती हैं। वे उस शरीर को शरीर नहीं मानतीं जो शांत है। ऐसे निष्क्रिय शरीर में पेशियां, क्रियाशीलता, प्रतिक्रियात्मकता और जोश नहीं होता। ऐसा शरीर लाइ-दुलार के भाव उत्पन्न नहीं करता। शरीर तो संसार का मुकाबला करने का एक साधन है। शरीर संसार की एक वस्तु-मात्र नहीं है। इन सब घटनाओं में अपना शरीरं अपने लिए और अपना शरीर दूसरों के लिए, के बीच एक गहरी खाई है, जिसे 'पाटा' नहीं जा सकता। ऐसा ही प्रतिरोध उन प्रशासिका और बुद्धिमती स्त्रियों की ओर से पाया जाता है, जिनके लिए शरीर का समर्पण असम्भव है।

दोनों 'यौनों' में समानता स्थापित कर देने पर अनेक घटनाओं में यह बाधा दूर हो सकती है। बिल्कुल साधारण स्तर की स्त्रियों से अलग निजी व्यक्तित्व रखने वाली किसी स्त्री को पुरुष की श्रेष्ठता के भाव का आरोप स्वीकार नहीं होता। यह कहा जा सकता है कि हठी और शासन करने वाली स्त्रियां पुरुषों से मुकाबला करने में जरा भी नहीं हिचकतीं। कई शक्तिशाली स्त्रियां पूर्ण रूप से इतरलिंगी होती हैं। मनुष्य होने के नाते स्त्री अपने अधिकारों को त्यागना नहीं चाहती, साथ ही वह अपने स्त्रीत्व से भी वंचित होना नहीं चाहती। वे पुरुषों के संसार में प्रवेश करती हैं और उनका उपयोग भी करती हैं। उनकी शक्तिशाली प्रेम-भावना को पुरुष के बल का भय नहीं होता। वे । पुरुष के शरीर से आनंद प्राप्त कर सकती हैं। रूखे और पाशविक स्वभाव वाली स्त्री को सम्भोग में अपमान का अनुभव नहीं होता लेकिन एक बुद्धिमान् और निर्भीक हृदय वाली स्त्री अपमानपूर्ण सम्भोग को अस्वीकार कर सकती है। जॉर्ज सैंड को स्त्रियोचित गुणों वाले युवक पसंद करते थे किंतु मादाम डे स्टेल अपने प्रेमियों में सौंदर्य और यौवन अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में ही चाहने लगती थीं। वह अपनी शक्तिशाली मानसिक अवस्था और गर्व के साथ पुरुषों की प्रशंसा ग्रहण करके पुरुषों पर आधिपत्य जमा लेती थीं। उनकी बांहों में वे अपने को उनका शिकार नहीं समझती थीं। कैथरिन महान् परपीड़क कामुकता में बुरी तरह रत हो जाती थी। हर हालत मे वह अपना आधिपत्य बनाए रखती थी। इजाबेला, जो पुरुष-वेश में घोड़े पर सवार होकर 'सहारा' रेगिस्तान से गुजर रही थी, एक शक्तिशाली निशानेबाज के सम्मुख नि:संकोच समर्पण कर देती है। वे स्त्रियां, जो पुरुष को अपने आनंद का यंत्र व माध्यम बनाना चाहती हैं, उनमें अनुकूल परिस्थितियों में अपने साथी पर निर्भर रहने पर प्रतियोगिता के भाव दूर हो जाते हैं। वे ऐसी स्थिति में अपनी स्त्रियोचित अवस्था का

अनुभव करती हुई आनंद- लाभ करती हैं, जिस प्रकार पुरुष अपनी पुरुषोचित अवस्था का आनंद लेता है।

सक्रिय व्यक्तित्व व रति-प्रेम की भूमिका के बीच सामंजस्य स्थापित करना पुरुषों से अधिक स्त्रियों के लिए कठिन होता है। अनेक स्त्रियां ऐसा प्रयास करना ही नहीं चाहतीं। स्त्री कलाकारों और कवियों में समलिंगी कामुकता बहुत होती है। इसलिए नहीं कि उनकी 'काम' विशेषता उनकी सृजन-शक्ति का स्रोत है और न यह उनकी उत्कृष्ट शक्ति की परिचायक है, बल्कि बात तो यह कि गम्भीर कार्यों में लगी रहने के कारण वे अपना समय स्त्री की भूमिका के निर्वाह में नष्ट नहीं करना चाहतीं और न वे पुरुषों से संघर्ष करना चाहती हैं। वे पुरुष की श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करती और न उसे जानने का ढोंग करती हैं। वे पुरुष से होड़ लगाकर स्वयं क्लांत होना नहीं चाहतीं। वे रति-क्रीड़ा से अपना ध्यान हटाकर विश्राम और शांति की चाह करती हैं। वे उस साथी से कतराती हैं जो प्रतिद्वंद्वी के रूप में आता है। इस प्रकार वे स्त्रीत्व के बंधनों से आजाद रहती हैं। इतरलिंगी कामुकता का अनुभव ही शक्तिशाली स्त्री के सम्मुख दो प्रस्ताव रखता है- या तो वह स्वाभाविक काम-भावना को स्वीकार करे या फिर इस भावना को अस्वीकार कर दे। पुरुप से प्राप्त अवहेलना घरेलू स्त्री में यह भावना उत्पन्न कर देती हैं कि उसमें आकर्षण का अभाव है। इससे आत्म-सम्मान रखने वाली स्त्री में निरुत्साह आ जाता है। उदासीनता, भय, अफसोस, गर्भाधान का भय और गर्भपात का आघात इसके कारण होते हैं। स्त्री में पुरुष के प्रति जितना ही अविश्वास होगा उसमें उपर्युक्त भावनाएं उतनी ही प्रबल होंगी।

विशेष सत्ता रखने वाली और विशेष व्यक्तित्व वाली स्त्री की समस्याओं का एकमात्र समाधान समलिंगी कामुकता नहीं है। ऐसी स्त्री अपना स्वत्व स्थापित करना चाहती है, इसलिए यदि वह अपनी स्त्रियोचित सम्भावनाओं को व्यक्त न कर सके, तो उसे विषाद होता है। उसे इतरलिंगी सम्बंध हीन बनाने वाले दीखते हैं। अपने 'यौन' की सीमाओं को अस्वीकार करके वह अपने को 'अन्य'-रूप में सीमित कर लेती है। जिस प्रकार एक ठंडी स्त्री काम-आनंद की इच्छा करती है, जबकि वह उसे अस्वीकार भी करती है, उसी प्रकार समलिंगी कामुक स्त्री भी, एक पूर्ण व स्वाभाविक स्त्री होना चाहते हुए भी स्त्रीत्व की सहजता को अस्वीकार करती है। स्टेकल ने पुरुष का वेश धारण करके पसोपेश में पड़ी रहने वाली एक स्त्री का वर्णन किया है। सोलह वर्ष की अवस्था में उसने अन्य लड़कियों के साथ काम-सम्बंध प्रारम्भ किए। वह उन लड़कियों से घृणा करती थी और उनसे ऊब भी जाती थी, जो उसके सम्मुख आत्म-समर्पण कर देती थीं। फिर उसने गम्भीर अध्ययन करना और शराब पीना भी शुरू कर दिया। उसने शादी की और काम-क्रीड़ा में आक्रमणकारी की भूमिका ग्रहण की। तवं भी उसे आनंद न मिला। उसने अपने पति को, जिसे अपने ही कथनानुसार वह बहुत चाहती थी, छोड़ दिया और स्त्रियों के साथ सम्बंध रखने लगी। जिस

समय वह सृजन-कार्य में रत रहती थी, उस समय अपने को पुरुष अनुभव करती थी। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से पता चला कि वह किसी भी रूप में संतुष्ट नहीं थी ।

समलिंगी कामुक स्त्री अपने स्त्रीत्व को त्यागने के लिए शीघ्र प्रस्तुत हो जाती है। ऐसा करने से उसे बड़ी सफलतापूर्वक शक्ति और शौर्य प्राप्त हो जाता है। अपनी प्रेमिका के योनि-क्षत के लिए वह कृत्रिम उपायों का प्रयोग करती है। वह उसे अपने वश में रखती है। वह एक तरह से मानो अपना लिंग-परिवर्तन कर लेती है और जब उसे इस बात का अनुभव होता है, तब उसे स्वयं पीड़ा होती है। स्त्री की हैसियत से वह अपूर्ण रहती है। उसकी इच्छाएं अतृप्त रहती हैं। पुरुष की हैसियत से वह नपुंसक होती है। इस प्रकार की अव्यवस्था से उसमें मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। एक रोगिणी ने मनोचिकित्सक से कहा, "काश! मेरे पास प्रवेश के लिए कोई साधन होता। यह कितना अच्छा होता।" दूसरी रुग्ण स्त्री कहती है कि उसकी छाती कठोर होती तो अच्छा होता। समलिंगी कामुक स्त्री अपनी शक्तिहीनता को अन्य रूपों से दूर करना चाहती है। वह मिथ्या गर्व-प्रदर्शन के जरिए अपनी स्थिति सुदृढ़ करना चाहती है। ऐसा करके वह स्वयं अपने असंतुलन का परिचय देती है। कभी-कभी वह अन्य स्त्रियों के साथ ऐसा सम्बंध स्थापित कर लेती है जैसा कि स्त्री-सुलभ गुणों वाला पुरुप या वह युवक, जिसे स्वयं अपनी शक्ति का पूर्ण ज्ञान नहीं रहता, स्त्रियों के साथ रखता ऐसा अक्सर देखा जाता है कि बचपन में मां का पूरा प्यार पाने वाली लड़की को जीवन- भर एक अधूरापन खटकता रहता है। आगे चलकर वह वही वात्सल्य अन्य स्त्रियों के जरिए प्राप्त करना चाहती है। उसके मन में पुरुषों के प्रति घृणा और ईर्ष्या बनी रहती है। स्त्रियों के प्रति अपना आदर भाव और काव्यगत स्नेह अधिक उम्र वाली और अकेली स्त्रियों पर वह मानो उंडेल देना चाहती है। उसकी दृष्टि में उन स्त्रियों का चरित्र पवित्र होता है। संवेदनशील और स्त्री-सुलभ गुणों वाली किशोरियां हमेशा मां की उम्र वाली महिलाओं पर विशेष मुग्ध होती हैं। अनेक समलिंगी कामुक स्त्रियां कभी भी अपनी समता मां से नहीं करतीं। या तो वे अपनी माता की अतिप्रशंसा करती हैं या उससे विशेष चिढ़ती हैं। स्त्री होना पसंद न करने के बावजूद वे स्त्रियों को प्राप्त सुरक्षा चाहती हैं। वे सुरक्षा की कल्पना से सुख का अनुभव करती हैं। वे मां के सुरक्षित गर्भ से संसार में पुरुषों का साहस लेकर जन्म लेती हैं। उनका व्यवहार पुरुषों जैसा होता है पर पुरुष की हैसियत में वे निर्बल और नाजुक होती हैं। इसीलिए उनका स्नेह वय-प्राप्त स्त्री पर ही अधिक होता है।

मनोवैज्ञानिकों ने समलिंगी कामुक स्त्री के उसकी मां के साथ बचपन के सम्बंधों पर विशेष जोर दिया है। या तो बचपन में मां लड़की की देखभाल विशेष स्नेह से करती थी या फिर बदमिजाज मां लड़की के साथ क्रूर व्यवहार करती थी। दूसरी स्थिति ने लड़की में अपराध की भावना अवश्य उत्पन्न की होगी। पहली अवस्था वाली लड़कियों में समलिंगी

कामुकता रहती है। ऐसी लड़कियां मां के साथ सोती हैं। मां बेटी एक-दूसरे को लाड़-प्यार करती हैं या फिर वक्ष पर चुम्बन करती हैं। ऐसी लड़कियां आगे चलकर दूसरों की बांहों में ऐसे ही सुख की कामना करती हैं। दूसरी कोटि की लड़की ऐसी अच्छी मां की आवश्यकता का अनुभव करती है जो प्रारम्भ से ही उसकी रक्षा करे और उस पर आरोपित अभिशाप को दूर करे। हैवलाक ने एक ऐसी पात्रा का वर्णन किया है जिसे अपनी मां से घृणा थी ।। यह घृणा बचपन में हादसा बनी रही। आगे चलकर सोलह वर्ष की अवस्था में इस पात्रा को एक वृद्ध स्त्री से प्रेम हो गया, जिसका वर्णन निम्नलिखित है

मैंने अपने को एक ऐसी अनाथ बालिका जैसा महसूस किया जिसे हठात् मां प्राप्त हो गई हो। इस महिला के माध्यम से ही मानो मैं वय-प्राप्त व्यक्तियों का सम्मान करने लगी। पहली बार मेरे हृदय में श्रद्धा के भाव आए। उनके प्रति मेरा प्रेम बिल्कुल पवित्र था। मैंने उन्हें बिल्कुल मां के रूप में देखा। मैं चाहती थी, वे मेरा स्पर्श करें। वे मुझे अपनी बांहों में भर लेती थीं और कभी-कभी अपनी गोद में बिठा लेती थीं। बिस्तर पर जाते समय मुझसे 'शुभ रात्रि' कहने आती और मेरे मुख पर चुम्बन करती थीं।

किशोरावस्था के बाद लड़की एक साधारण स्त्री का जीवनयापन करने के लिए अपने को परिपक्व पाती है। समलिंगी कामुक होने के लिए स्त्री या तो अपने स्त्रीत्व को बिल्कुल अस्वीकार कर देती हैं या किसी स्त्री की ही बांहों में विकसित होने देती है। मां पर लड़की की निर्भरता हमेशा विपरीतता ही व्यक्त नहीं करती, वह स्थिति कुछ दूसरे कारणों से भी स्वीकार की जाती है। शायद पूर्ण व आंशिक अनुभव से स्त्री को पता लग जाता है कि वह इतरलिंगी सम्बंध से पूर्ण आनंद प्राप्त न कर सकेगी। यह आनंद उसे अन्य स्त्री ही दे सकेगी। वह अन्य स्त्री के आलिंगन में विशेष संतोष प्राप्त करती है। इस बात पर विशेष जोर देना आवश्यक है कि लड़की केवल स्त्रीत्व के अस्वीकार के लिए ही समलिंगी कामुक नहीं बनती।

अनेक स्त्रियां ऐसी समलिंगी कामुक होती हैं, जो अपने स्त्री-सुलभ गुणों को विकसित देखना चाहती हैं। एक ठंडी वस्तु में बदल जाने की इच्छा का अर्थ यह नहीं है कि स्त्री अपने व्यक्तित्व के सभी दावे छोड़ दे। इस प्रकार वस्तु-रूप में स्त्री अपनी पहचान की आशा करती है। वह अपना वास्तविक रूप देखना चाहती है लेकिन तब वह अपने को 'अन्य'-रूप में पाएगी। एकाकी स्त्री अपने को दुहरे रूपों में परिणत करने में सफलता नहीं पाती। वह अपने-आप अपने वक्षस्थल को चूम सकती है लेकिन इससे यह आभास नहीं मिलता कि एक अपरिचित को उसके कुच कैसे प्रतीत होते हैं और न वह यह अनुभव कर सकती है कि दूसरे अजनबी हाथों के स्पर्श की प्रतिक्रिया क्या होती है। । पुरुष ही उसे उसकी देह के

अस्तित्व से परिचित कराता । वह यह समझा देता है कि वह स्वयं अपने अपने प्रिय शरीर को किस रूप में देखती है बल्कि यह नहीं कि उसका शरीर दूसरों के लिए क्या है। जब पुरुषों के हाथ स्त्री के शरीर को टटोलते हैं, तब दर्पण का चमत्कार मानो पूर्ण हो जाता है। स्त्री और पुरुष के बीच प्रेम एक क्रिया है। अपने व्यक्तित्व से दूर दोनों ही एक-दूसरे के लिए मानो अन्य होते हैं।

प्रेम में रत स्त्री को यह देखकर आश्चर्य होता है कि उसकी क्लांत निष्क्रियता किस प्रकार पुरुष की तीव्र विह्वलता में प्रतिबिम्बित होती हैं। आत्ममुग्धा स्त्री अपनी मोहक शक्ति को पहचान लेती है। पुरुष के उत्तेजित रूप में उसे उसका धुंधला-सा आभास मिलता है। दो स्त्रियों के बीच का प्रेम चिंतनशील होता है। उनमें प्यार द्वारा दूसरे को अपने अधिकार में लाने का प्रयास नहीं होता बल्कि उसके माध्यम . से पुनः अपने ही व्यक्तित्व का सृजन होता है। पृथकता नष्ट हो जाती है। संघर्ष नहीं रहता। न विजय है, न पराजय। ऐसी पारस्परिकता में दोनों ही व्यक्ति-रूप भी होती हैं, वस्तु-रूप भी। यहां स्वामी और सेवक का द्वैत भाव मानो पारस्परिकता बन जाता है।

इस प्रकार प्रतिबिम्ब मानो मां की भूमिका का निर्वाह करता है। मां, जो अपना रूप पुत्री में देखती है और अपना रूप उस पर प्रतिबिम्बित करती है, अपनी पुत्री से बहुधा काम-स्नेह करती है। समलिंगी कामुक की तरह उसमें भी अपने को दूसरे में प्रतिबिम्ब करने और अपने जैसे मुलायम शरीर को अपनी बाहों में झुलाने की चाह रहती है। इस समता को कालेट ने निम्नरूप में प्रस्तुत किया है, "मेरे ऊपर झुकी हुई तुम मुझे प्रसन्न करोगी। तुम्हारी आंखों में मां का स्नेह भरा है। । तुम में उस संतान को देखती हो जिसे तुमने जन्म नहीं दिया है।" रेनी विवियन ने भी इन्हीं भावनाओं को और तीव्रता से व्यक्त किया है, "मेरी बाहों में मानो तुम्हें विश्राम मिलता है।"

प्रेम की प्रत्येक चाह में, चाहे वह वासनात्मक हो या वात्सल्यपूर्ण, स्वार्थ और उदारता एक साथ प्रदर्शित होते हैं। इन स्थितियों में दूसरे को अपनाने और सर्वस्व देने की इच्छा होती है। मां और समलिंगी कामुक स्त्री में सबसे बड़ी समानता यह है कि दोनों में आत्ममोह की भावना रहती है। मां बालिका पर मुग्ध होती है। स्त्री-मित्र पर स्त्री आसक्त होती है। वे एक-दूसरे में अपना ही प्रतिबिम्ब देखती हैं। मां पर केंद्रित आत्ममोह भी हमेशा समलिंगी कामुकता का सूचक नहीं होता जैसा कि मैरी बाशकिर्सेव की रचनाओं से प्रमाणित होता है। उनकी रचनाओं में कहीं भी स्त्री के प्रति स्नेह नहीं है। उनमें कामुकता नहीं थी बल्कि मानसिक शक्ति थी और वे अति अभिमानिनी थीं। बचपन से ही यह उनका स्वप्न था कि पुरुष उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखें। उन्हें उन्हीं बातों में विशेष रुचि थी, जिनसे उनकी ख्याति बढ़े। वह स्त्री, जो अपनी ही प्रशंसा और गौरव के लिए व्यग्र थी और जिसका

एकमात्र उद्देश्य जीवन में सफलता प्राप्त करना था, भला किस प्रकार अन्य स्त्रियों के साथ गहरी दोस्ती कर सकती थी? उनमें वह दुश्मन व प्रतिद्वंद्वी का रूप देखती हैं।

वस्तुतः कोई भी एक बात पूरी स्थिति की निर्णायक नहीं होती। उन वांछित तत्त्वों को छांटने की गुंजाइश हमेशा रहती है। स्वतंत्र विचारों पर आधारित एक पूर्ण व जटिल स्थिति बनती है। किसी भी स्त्री का जीवन सेक्स की नियति से शासित नहीं होता। काम-पिपासा जीवन के प्रति व्यक्ति का दृष्टिकोण व्यक्त करती है।

परिस्थितियों का भी पसंद पर बहुत प्रभाव पड़ता है। आज भी स्त्री और पुरुष अलग-अलग स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते हैं। उन छात्रावासों और अध्ययन-गोष्ठियों में रहने वाली युवतियां समलिंगी कामुक बहुत कम होती हैं, जहां युवक लड़के और लड़कियां स्वतंत्र रूप से मिलते-जुलते हैं। अपने कार्यालयों में अन्य स्त्रियों से घिरी रहने वाली स्त्रियों को पुरुषों से मिलने का मौका भी कम मिलता कभी-कभी है। ऐसी स्त्रियां प्रेमपूर्ण मित्रता स्त्रियों के साथ ही करती हैं। स्त्रियां प्रायः विकृत स्वभाव वाली तभी हो जाती हैं जब उन्हें विपरीत लिंगी व्यक्तियों के साथ सम्बंध स्थापित करने में कठिनाई होती है या मनचाहे पुरुष नहीं मिलते। भाग्य से समझौता और पूर्व-निर्धारित स्थिति के बीच विशेष अंतर होता है। एक स्त्री का प्रेम अन्य स्त्री से इसलिए भी हो जाता है कि पुरुष ने उसे निराश कर दिया है। पुरुष उसे इसलिए निराश कर देते हैं कि वह पुरुष में भी स्त्री को ही ढूंढ़ती है।

इन्हीं कारणों से समलिंगी कामुक स्त्री और इतरलिंगी कामुक स्त्री के बीच अंतर का पता लगाना कठिन होता है। किशोरावस्था बीत जाने पर कोई भी साधारण युवक समलिंगी मनोरंजक वस्तुएं पसंद नहीं करता किंतु साधारण स्त्री अक्सर वही प्रेम-क्रीड़ा दोहराने लगती है, चाहे वह पवित्र हो या वायवीय, जिससे वह अपने युवा-काल में मुग्ध हुई थी। पुरुष से निराश होकर वह स्त्री में ही अपने खोए प्रेमी को खोजती हैं। कालेट ने अपनी वेगावांड में लिखा है कि इस सांत्वना देने वाली भूमिका का क्या महत्त्व है ? इसके माध्यम से स्त्रियों में वर्जित रति-क्रीड़ा पाई जाती है। कई स्त्रियां तो अपना पूरा जीवन इसी प्रकार को सांत्वना में गुजार देती हैं। ऐसी स्त्री भी, जो पुरुष की बांहों में जकड़ सकती है, इस प्रकार के आनंद से घृणा नहीं करती। यह उन्माद-रहित प्रेम भी उसे प्रिय लगता है। यदि वह शांत है पर कामुक है, तो उसे अपनी स्त्री-मित्र का लाड़-दुलार अप्रिय न लगेगा क्योंकि इस भूमिका में उसे केवल अपने को समर्पित करना पड़ता है और वह अपनी इच्छा-पूर्ति सहज में ही कर लेती है। यदि वह सक्रिय एवं उग्र है, तो उभयलिंगी लगती है, इसलिए नहीं कि उसमें 'स्त्री और पुरुष' दोनों हारमोनों का रहस्यमय संयोग है, बल्कि इसलिए कि आक्रामकता और आधिपत्य स्थापित करने को उसकी भावना उसके विशेष गुण दिखते हैं। अच्छी स्त्रियों में प्रेम की इच्छा बड़ी सावधानी से दबी रहती है। उनकी यह इच्छा या तो मित्रता के रूप में व्यक्त होती है या मातृत्व के रूप में। ऐसी स्त्रियां कभी-कभी बहुत उग्र हो

जाती हैं। यह घटना मासिक-धर्म बंद होने या किसी मानसिक विकार के उत्पन्न होने से भी होती है।

समलिंगी कामुक स्त्रियों को दो भागों में विभाजित करना व्यर्थ है। अपने वास्तविक सम्बंध पर वे स्वयं सामाजिक भावना थोपती हैं। वे स्वयं समलिंगी कामुक स्त्रियों को दो भागों में विभाजित करती हैं- एक शक्तिशाली स्त्री, दूसरी स्त्री-सुलभ गुणों वाली स्त्री। एक तरह की समलिंगी कामुक स्त्रियां पुरुष के वस्त्र पहनती हैं और दूसरे प्रकार की समलिंगी कामुक स्त्रियां स्त्रियों की फ्रॉक, किंतु इस ऊपरी आवरण से किसी भ्रम की आवश्यकता नहीं। सूक्ष्म विवेचन करके देखा गया कि कुछ घटनाओं को छोड़कर ऐसी स्त्रियां प्रायः अस्पष्ट और दोहरे चरित्र की होती हैं। कुछ ऐसी समलिंगी कामुक स्त्रियां होती हैं, जो गर्व के साथ पुरुष का आधिपत्य अस्वीकार कर देती हैं, पर वे ही अपनी मां में लड़ाकू अथवा वीरता की प्रवृत्ति को पा प्रसन्न होती हैं।

जो स्त्री अपने स्त्रीत्व को स्त्री की बांहों में सौंपकर आनंद प्राप्त करना चाहती है, उसमें यह गर्व होता है कि वह किसी स्वामी की आज्ञा नहीं मानती। रीनी विवियन को स्त्री के सौंदर्य से विशेष प्रेम था। वह स्वयं सुंदर होना चाहती थी। वह अपना साज- -शृंगार करती थी। उसे अपने लम्बे केशों पर गर्व था, लेकिन वह स्वतंत्र रहना चाहती थी ताकि कोई उसका स्पर्श न करे। अपनी कविताओं में उसने उन स्त्रियों के प्रति घृणा व्यक्त की है, जो विवाह के द्वारा पुरुष की दासी बनने के लिए सहमति दे देती हैं। तेज शराब पसंद करना और अश्लील भाषा का प्रयोग आदि उसकी चाहों को व्यक्त करते हैं। अनेक युग्मों में लाड़-प्यार पारस्परिक होने के कारण दोनों साथियों की भूमिका क्रमानुसार निश्चित नहीं होती। जिस स्त्री के स्वभाव में बचपना होता है, वह किशोर-युवक की भूमिका ग्रहण करती है और उसकी बांहों में वय-प्राप्त गृहस्वामिनी होने का अनुभव करती है। वह समानता की अवस्था में प्रेम का आनंद पाती है। चूंकि दोनों साथिनें एक ही-सी हैं, मौलिक रूप में एक हैं, इसलिए किसी भी रूप में सम्मिश्रण कर सकती हैं, जिस तरह चाहें, उस तरह आसन भी बदल सकती हैं। दोनों साथिनों की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति और सम्पूर्ण स्थिति के अनुसार ऐसे 'युग्म' के सम्बंध संतुलित हो सकते हैं। उनमें से जो दूसरी की सहायता करती है या सहारा देती है, वह पुरुष की भूमिका अपना लेती है। कभी-कभी उसकी भूमिका अत्याचारी रक्षक की होती है, कभी उस सीधे व्यक्ति की, जिसका शोषण हुआ है और कभी सम्मान्य स्वामी की तो कभी भड़ुआ या कुटनी की। एक तरह की नैतिक, सामाजिक और बौद्धिक उत्कृष्टता उसे सत्ता प्रदान करती है, जो उसे अतिप्रिय होती है। वह उन विरोधी सुविधाओं का आनंद उठाती है, जो ऐसे अतिप्रेम करने वाले प्रेमी के वशीभूत होकर प्राप्त होती हैं। दो स्त्रियों का मिलन भौतिक लाभ या आदत पर आधारित हो सकता है या प्रणय का रूप ले सकता है। यह भावुक प्रेम का भी रूप ले सकता है। ऐसे प्रेमियों में पीड़ा देने की प्रवृत्ति व

उदारता हो सकती है। प्रेमी के प्रति सच्चाई, श्रद्धा व सनक होना, आत्म-केंद्रित होना और दगा देना, सभी सम्भावनाएं रहती हैं । समलिंगी कामुक स्त्रियों में वेश्याएं भी होती हैं और महान् प्रेमिकाएं भी।

कुछ परिस्थितियां इन समलिंगी कामुक स्त्रियों को खास विशेषताएं प्रदान करती हैं। इन प्रेमियों का प्रेम बड़ा ही मार्मिक, निष्कपट व सच्चा होता है, क्योंकि यह प्रेम-बंधन किसी संस्था, रीति-रिवाज या परम्परा द्वारा नहीं बांधा जाता। स्त्री और पुरुष, कभी-कभी पति और पत्नी भी, मानो एक-दूसरे के सम्मुख कोई विशेष भूमिका निभाते हों। यह बात विशेषकर स्त्री पर लागू होती है क्योंकि पुरुष उससे बहुत कुछ चाहता है। वह ऐसी पवित्रता दर्शाती है, जिसमें शक की गुंजाइश न हो। वह मुग्ध करने की चेष्टा करती है। वह कभी छलना की भूमिका अपनाती है तो कभी निरीह अबोध बालिका की और कभी कठोरता भी दिखलाती है। स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के आलिंगन से मुक्त होने के बाद अजनबी हो जाते हैं। पुरुष के शरीर से स्त्री को विकर्षण होने लगता है और पुरुष को भी स्त्री के शरीर से मानो घृणा होने लगती है। शारीरिक स्नेह दो स्त्रियों के बीच बराबर बना रहता है। यह क्रम अनेक दिनों तक चलता है। सांरा पांसवा और उसकी स्त्री-प्रेमिका का प्रेम करीब पचास वर्षों तक चलता रहा। इसमें कभी भी उतार नहीं आया। ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि वे इस संसार से दूर एक शांतिपूर्ण स्वर्ग में रहती थीं।

प्रायः स्त्री-युग्म अपने को वास्तविक रूप में ही प्रदर्शित करता है। इन दोनों में कोइ अंतर नहीं होता और न आत्म-संयम की ही आवश्यकता होती है। कभी-कभी स्त्री-युग्मों के बीच बड़े भयंकर दृश्य पैदा होते हैं। स्त्री और पुरुष के मन में पारस्परिक भिन्नता का डर पैदा होता है। दोनों के मन में डर समाया रहता है। स्त्री के प्रति पुरुष के हृदय में दया और चिंता के भाव रहते हैं। उसके साथ कभी वह संयम से काम लेता है तो कभी 'काम' में लीन हो जाता है। स्त्री पुरुष का आदर करती है। दूसरे की भावनाओं से अपरिचित रहने के कारण वे एक-दूसरे को रहस्यमयता से कतराना चाहते हैं। स्त्रियां एक-दूसरे के प्रति निर्मम होती हैं। वे आपसी सम्पर्कों में बाधाएं उपस्थित करती हैं, उकसाती हैं, पीछा करती हैं, एक-दूसरे से बुरी तरह जूझने लगती हैं और एक-दूसरे को घृणित अवस्था में गिराने की चेष्टा करती हैं। पुरुष जल्दी परेशान नहीं होता। उसमें या तो आत्म-संयम रहता है या अन्यमनस्कता। इसीलिए पुरुष के सम्मुख किसी अप्रिय दृश्य की सृष्टि कर पाने में स्त्री को मनचाही कामयाबी नहीं मिलती। जिस तरह पानी की तेज धारा बांध से टकराकर गिर पड़ती है, उसी तरह दो स्त्रियों के बीच आंसू और उन्माद का बारी-बारी से आरोह-अवरोह होता रहता है। उनकी आपसी होड़'गाली-गलौज की स्थिति तक ला देती है। वे एक-दूसरे को नीचा दिखाकर कभी तृप्त नहीं होती। मांग, ईर्ष्या, दोषारोपण और अत्याचार, जो वैवाहिक जीवन के अभिशाप हैं, स्त्री-युग्म के जीवन में दुगुनी तीव्रता से प्रकट होते हैं।

आपस में कटु हो जाने वाली प्रेमिकाएं (स्त्री-युग्म) इतरलिंगी युग्म की अपेक्षा अधिक भयंकर स्थिति पैदा करती हैं। वह समाज, जिसमें वे अच्छी तरह मिल-जुल नहीं सकतीं, उन्हें बहिष्कृत करता है। पुरुष भूमिका को ग्रहण करने वाली स्त्री, चाहे वह ऐसा अपनी प्रकृति, परिस्थिति या भावनाओं के वशीभूत होकर ही क्यों न करती हो, बाद में पश्चात्ताप करती है क्योंकि उसने अपनी प्रेमिका को स्वाभाविक और सम्माननीय जीवन प्रदान नहीं किया, उससे विवाह न कर सकने पर अपने को कोसती है, वह स्वयं पर आरोप लगाती है कि उसी के कारण उसकी मित्र संदिग्ध जीवन व्यतीत कर रही है। पश्चात्ताप एक रुग्ण चिंता के रूप में व्यक्त होता है, खासकर पीड़ित करने वाली ईर्ष्या के रूप में। वह अपने को हीन, विकृत और हताश पाती है। उसे उस स्त्री से शिकायत रहती है जो उसे इस दशा तक पहुंचा देती हैं। ऐसा भी हो सकता है कि इनमें से कोई एक संतान की कामना करे। वह अपनी बंध्या अवस्था से समझौता कर लेती है. या किसी बालक को गोद ले सकती है। जिसे संतान की चाह होती है, वह पुरुष से निवेदन कर सकती है। बालक दोनों के बीच की मजबूत कड़ी बन जाता है। कभी-कभी वह एक नए संघर्ष का कारण भी बन सकता है।

समलिंगी कामुक स्त्रियां पुरुष की भूमिका कामुकता के कारण नहीं निभातीं। यह भूमिका तो उन्हें स्त्री-जगत् में ही सीमित रखती है। पुरुषों से कोई सरोकार न होने पर भी जीवन की जिम्मेदारियां उन्हें पुरुष की भूमिका निभाने के लिए कभी-कभी विवश कर देती हैं, परंतु वेश्या की स्थिति में कुछ अंतर रहता है। उसकी स्थिति समलिंगी कामुक स्त्रियों से अलग होती है। हमेशा पुरुषों के साथ रहते- रहते वेश्याओं में कठोरता आ जाती है। अंशतः वे भी पुरुषों की तरह आचरण करने लगती हैं। पुरुष से पृथक, अपने में सीमित स्त्री कुछ अस्वाभाविक-सी लगती है। यह सच नहीं हैं कि पुरुष स्त्री का सम्मान करते हैं। वे एक-दूसरे का सम्मान अपनी स्त्रियों, पत्नियों और माताओं के माध्यम से करते हैं। कभी-कभी जिन वेश्याओं के चंगुल में वे रहते हैं, उनके प्रभाव से भी वे स्त्री को सम्मानित करते हैं। पुरुष द्वारा सुरक्षा पाने के अभाव में स्त्री उस वर्ग के सम्मुख असहाय रहती है, जो आक्रमणकारी होता है । स्त्री समलिंगी कामुकता प्रेम का विकृत रूप है इसलिए उस पर हंसी आना स्वाभाविक है, किंतु जब इसे जीने का एक ढंग बना लिया जाता है, तब यह घृणा के भाव उत्पन्न करती है और इसे कलंकित मानकर बहिष्कृत किया जाता है। स्त्री समलिंगी कामुकों में आक्रामकता और कृत्रिम रूखेपन का कारण उनकी स्थिति का स्वाभाविक परिणाम होता है। यहां स्वाभाविक का अर्थ है- अपने स्वत्व के प्रति अचेतन रहकर अपने कार्य को स्वयं नहीं देखना, किंतु अन्य लोगों का रुख हमेशा स्त्री समलिंगी कामुक का ध्यान उनकी ओर ले जाता है।

निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि समलिंगी कामुक स्त्री स्वेच्छा से पुरुष की तरह वेशभूषा धारण करती है या सुरक्षा के लिए प्रायः अपनी ही पसंद पर निर्भर रहती है।

उसका स्त्रियों की तरह वस्त्र पहनना अस्वाभाविक नहीं होता। इसमें शक नहीं कि पुरुष की पोशाक स्त्री के लिए कृत्रिम होती है पर सीधी-सादी और सुविधाजनक भी। कालेट पुरुषों की ही पोशाक पहनती थी। अपनी आत्मकथा में उसने कहा है कि उसकी पसंद पुरुष की पोशाक थी-पाजामा। हर क्रियाशील स्त्री नीची एड़ी के जूते और मजबूत वस्तुएं पसंद करती है।

स्त्रियोचित कहलाने वाली पोशाक एक प्रकार की सजावट होती है। सजावट का मकसद होता है-किसी को आकर्षित करना। इतरलिंगी स्त्री-स्वभाव वाले पुरुष इस मामले में उतने ही कट्टर होते हैं, जितनी समलिंगी कामुक स्त्री। वे अपने को माल या बिक्री का सौदा बनाने के लिए प्रस्तुत नहीं होते। वे दर्जी की बनाई हुई पोशाक पसंद करते हैं। फेल्ट के हैट लगाते हैं। नीचे गले का गाठन प्राचीन सामाजिक व्यवस्था का प्रतीक लगता है। आज वास्तविकता व यथार्थ प्राप्त करने में उन्हें सफलता मिली है, इसलिए अब प्रतीक उनकी दृष्टि में विशेष महत्त्व नहीं रखते। समलिंगी कामुक स्त्री के लिए यह आवश्यक होता है कि वह अपने दावे पर जोर न दे। पुरुष की कठोर पोशाक उस पर तभी जंचती है, जब उसकी शारीरिक विशेषताएं उसे स्त्री समलिंगी कामुकता की ओर प्रेरित करती यह सत्य है कि अच्छे और कोमल वस्त्र स्त्री को स्पर्श-सुख देते हैं, किंतु समलिंगी कामुक स्त्री मखमल और रेशम के वस्त्र पसंद नहीं करती। पुरुषों की समानता के लिए ही समलिंगी कामुक स्त्री शराब पीती है, धूम्रपान करती है, रूखी भाषा का प्रयोग करती है और शक्ति-प्रदर्शन करने वाले व्यायाम करती है। अपनी कामुकता में उसे स्त्री की कोमलता और मधुरता विशेष रूप से प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार विषमता में वह एक सम-जलवायु का आनंद लेती है।

अब एक नई घटना सामने आती है। समलिंगी कामुक स्त्री का सम्बंध पुरुष के साथ बड़ा रहस्यमय रहता है । जिस स्त्री को यह पूर्ण विश्वास रहता है कि उसमें पुरुषोचित शक्ति है, वह केवल पुरुषों को मित्र बनाना पसंद करती है। ऐसा विश्वास बहुत कम स्त्रियों में होता है क्योंकि उनकी रुचि पुरुष की रुचि से भिन्न होती है। वे व्यापार नहीं करतीं और कला के क्षेत्र में भी पुरुषों के साथ कार्य नहीं करतीं, न उनकी तरह सफलता प्राप्त कर पाती हैं। वह समलिंगी कामुक स्त्री, जिसमें पुरुषोचित गुण विशेष रूप में होते हैं, स्त्री के प्रति दोहरा रुख रखती है। स्त्रियों से उसे घृणा होती है, किंतु अन्य स्त्रियों की तरह वह भी हीन-भावना का शिकार होती है। स्त्री और पुरुष, दोनों ही रूपों में उसमें होन-भावना रहती है। उसे अनुभव होता है कि पुरुष उसे एक दोषपूर्ण स्त्री समझेंगे और पुरुष के रूप में उसे अपूर्ण पाएंगे। इसलिए वह एक गर्वपूर्ण उत्कृष्टता प्रदर्शित करना चाहती हैं। अधिकांश समलिंगी कामुक स्त्रियां पुरुषों से दूर रहती हैं। निरुत्साही स्त्री की तरह ऐसी स्त्रियों में भी अफसोस, कायरता और गर्व की भावनाएं होती हैं। वास्तव में ये अपने को पुरुष के बराबर नहीं पातीं। इनकी 'स्त्रीत्व' भावना विषादपूर्ण होती है। ऐसे हीन-पुरुष इनके प्रतिद्वंद्वी होते हैं, जिनमें अपनी

वांछित वस्तु को मोहित करने और आधिपत्य में रखने की क्षमता अधिक होती है। पुरुष स्त्री को जिस प्रकार दूपित करता है, उससे इन्हें घृणा होती है। पुरुष को प्राप्त सामाजिक सुविधाओं से उन्हें ईर्ष्या होती है। वे यह भी अनुभव करती हैं कि पुरुष इन लोगों से अधिक शक्तिशाली होता है। अपने प्रतिद्वंद्वी से जूझ न सकना, एक बड़ी अपमानजनक चीज होती है। यह विचार ही, कि वह मुक्के की एक चोट से ही उसे गिरा देगा, स्त्री को तिलमिला देता है।

इस प्रकार की शत्रुता ही कुछ समलिंगी कामुक स्त्रियां अपने को विशेष रूप में प्रदर्शित करती हैं। वे एक साथ एकत्रित होती हैं। वे सभा व समाज का गठन करती हैं। वे पुरुषों को यह दिखा देना चाहती हैं कि उन्हें जिस प्रकार पुरुषों की यौन-सम्बंध के लिए आवश्यकता के भाव के कारण नहीं है, उसी प्रकार सामाजिक आवश्यकता भी नहीं है। वे केवल डींग मारती हैं। वे ऐसा नाटक करती हैं, जिसमें सच्चाई का अंश कम होता है। समलिंगी कामुक स्त्री पहले तो पुरुष होने का खेल खेलती है, बाद में वह अपने लिए ही खिलवाड़ बन जाती है। पुरुष की पोशाक वह वेश बदलने के लिए ग्रहण करती है लेकिन वही उसकी स्थायी पोशाक बन जाती है। वह पुरुष के दबाव से भागने के लिए जिस चरित्र की भूमिका ग्रहण करती है, उसी की वह दासी बन जाती है। वह स्त्री की स्थिति नापसंद करती है, पर वह स्वयं समलिंगी कामुक बन जाती है। वास्तव में ऐसी स्त्रियां संकुचित दृष्टिकोण और विकृत रूप का प्रतीक बन जाती हैं। कुछ स्त्रियां अपने को समलिंगी कामुक अपने स्वार्थ के कारण बनाती हैं। चूंकि समलिंगी कामुकता से उभय पक्ष के लाभ होते हैं इसलिए अनेक स्त्रियां इसे पसंद करती हैं। वे आशा करती हैं कि जो पुरुष विकृत स्त्री को पसंद करते हैं, उन्हें वे मोह लेंगी। ऐसी अति उत्साही स्त्रियां अपने ऊपर स्वयं बुराई व ढोंग का आरोप लगवाती हैं।

वस्तुतः समलिंगी कामुकता वह विकृत यौन-भावना नहीं है, जिसमें जान-बूझकर लोग उलझ जाते हैं। वह तो भाग्य का अभिशाप है। वह जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण है जो विशेष स्थिति में ग्रहण किया जाता है। यदि उसे मुक्त भाव से अपनाया जाता है तो उसे अपनाने के लिए उकसाया भी जाता है। सामाजिक, शारीरिक व मानसिक दशाएं इसके लिए जिम्मेदार नहीं होतीं। यद्यपि इनमें से प्रत्येक कामुकता का कारण बताई जा सकती है। समलिंगी कामुकता एक ऐसा तरीका है, जिसके माध्यम से स्त्री अपनी समस्या का एक सामान्य हल निकालती है, विशेषत: अपनी 'काम' स्थिति का प्रत्येक मानवीय आचरण की तरह समलिंगी कामुकता भी एक व्यामोह, असंतुलन, कुंठा और झूठ जो प्रश्रय देने वाली है। इसके विपरीत वास्तविक जीवन में सावधानीपूर्वक सोच-समझकर व्यवहत किए जाने पर यह उदारता, सच्चाई और स्वतंत्रता का भी स्रोत बन सकती है।

दो : स्थिति

1. विवाहिता
2. मातृत्व
3. सामाजिक जीवन
4. वेश्याएं एवं कुलटाएं
5. वृद्धावस्था
6. स्त्री की स्थिति एवं चरित्र

विवाहिता

परम्परा ने विवाह को औरत की नियति माना। यह सच है कि आज भी अधिकतर स्त्रियां या तो विवाहिता हैं, या कभी रही थीं या पुनर्विवाह की योजना बना रही हैं और विवाह के अभाव में दुःखी रहती है। अविवाहित जीवन की स्थिति भी विवाह के ही संदर्भ में परिभाषित होती है। क्या अविवाहित स्त्री कुंठित रहती है? वह विवाह की परम्परा के प्रति या तो विद्रोहिणी होती है या उदासीन?

आर्थिक विकास के कारण औरत की समकालीन स्थिति में आए भारी परिवर्तनों ने विवाह- संस्था को भी हिला दिया है। विवाह अब दो स्वतंत्र व्यक्तियों के बीच एक पारस्परिक समझौते से उत्पन्न बंधन है, जो व्यक्तिगत तथा पारस्परिक होता है। किसी भी प्रकार का व्यभिचार विवाह के अनुबंधों और इकरारनामों का उल्लंघन ही माना जाएगा। इसी आधार पर दोनों पक्षों को विवाह तोड़ने का भी अधिकार मिलता है। बच्चे पैदा करना अब स्त्री की इच्छा पर निर्भर करता है और गर्भकाल में उसको सवेतन छुट्टी का हक राज्य देता है। आज स्त्री के लिए पुरुष द्वारा संरक्षित होने की अनिवार्यता समाप्त होती जा रही है। आज के संक्रमण के दौर में भी बहुत थोड़ी ही स्त्रियां उत्पादन में विनियोजित हैं। अधिकांश स्त्रियां पुरातन मूल्यों के प्रचलन और प्रभुत्व वाले समाज की ही सदस्य हैं।

पुरुष के जीवन में विवाह का अर्थ सिर्फ वही नहीं होता जो औरतों के लिए । स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के लिए अनिवार्य होते हुए भी समानता के स्तर पर पारस्परिक नहीं होते क्योंकि औरत- जाति ने कभी समानता के स्तर पर पुरुष-जाति से कोई अनुबंध तथा विनिमय किया ही नहीं। सामाजिक रूप से एक पुरुष बिल्कुल स्वतंत्र और पूर्ण व्यक्ति होता

है। पुरुष का अस्तित्व उसके कामों से निर्धारित होता है जबकि औरत प्रजनन तथा गृहस्थी की परिसीमित भूमिका के कारण पुरुष के साथ समानता के स्तर पर नहीं पहुंचती। यह ठीक है कि पुरुष को औरत की जरूरत है। कई आदिम समूहों में अब भी एक अविवाहित पुरुष अपना जीवन-निर्वाह स्त्री के बिना नहीं कर पाता। कृषि-समाज में किसान के लिए स्त्री सहकर्मी की बेहद जरूरत रहती है। पुरुष को नियमित यौन-जीवन और संतति के लिए स्त्री की जरूरत पड़ती है किंतु वह सीधे स्त्री की मांग नहीं करता। यह तो पुरुषों का ही समूह है जो अपने सदस्यों को पिता और पति की भूमिका में आत्म-संतुष्टि खोजने की अनुमति देता है। आदिम समाज में औरत दान की वस्तु थी, पारस्परिक विनिमय का एक माध्यम सभ्यता के विकास के साथ विवाह-संस्था ने अनुबंध का आकार ग्रहण किया। क्रमशः हम देखते हैं कि स्त्री विरासत में अपना हक पाती है और व्यक्ति के हिसाब से एक सामाजिक स्थान भी, किंतु दहेज और विरासत अब भी उसे परिवार में एक गुलाम की स्थिति में ही रखते हैं। अनुबंध ससुर और दामाद के बीच होता है, पति और पत्नी के बीच नहीं। युवा लड़की के लिए वरण की स्वतंत्रता हमेशा ही सीमित रखी जाती रही है। कुछ उदाहरणों में जहां ब्रह्मचर्य बड़ा पवित्र माना जाता था; वहां औरत को परजीवी, पराश्रयी और लावारिस के स्तर पर ही न्यूनीकृत कर दिया जाता था। विवाह उसके अस्तित्व के लिए एकल औचित्य ही सिद्ध होता है । यह दो कारणों से पुरुष के जीवन में इतना अनिवार्य हो जाता है- प्रथम तो उसकी शारीरिक जरूरतों को संतुष्ट करने के लिए औरत की जरूरत, और दूसरा उसकी गृहस्थी का खयाल रखने वाली की आवश्यकता। विवाह एक ऐसा अनिवार्य सेवा-कार्य था जिसके बदले पुरुष स्त्री को उपहार तथा भरण-पोषण की सुविधा देता था। कर्त्तव्य-पालन के लिए स्त्री को मिले अधिकार वास्तव में पुरुष के लिए एक नैतिक बंधन और इकरार साबित होते थे। अपनी इच्छा से पुरुष वैवाहिक बंधनों को तोड़ नहीं सकता था। इसके लिए समाज की स्वीकृति आवश्यक होती थी और धन के रूप में उसकी सम्पूर्ति करना बिल्कुल जरूरी हो जाता था। बहुविवाह या एक से अधिक स्त्रियों का पुरुष के जीवन में रहना समाज कम-अधिक हमेशा स्वीकार करता आया है। पुरुष, दासी और रखैल या वेश्या, किसी के भी साथ सो सकता था किंतु वैध पत्नी के साथ गलत व्यवहार किए जाने पर पत्नी वापस अपने पिता के परिवार में तलाक लेकर जा सकती थी। समाज इस प्रकार के अलगाव को स्वीकार करता था। अतः दोनों ही पक्षों के लिए विवाह बोझ होते हुए भी कुछ अनिवार्य सुविधाओं का भी आधार बनता था। किंतु स्त्री और पुरुष की परिस्थितियों में विवाह के कारण कोई समानता नहीं देखने में आती। समाज में लड़की के लिए विवाह का अर्थ हुआ समाज से । एकात्म होना । परित्यक्ता लड़की समाज में एक निकृष्ट पदार्थ के रूप में ही देखी जाती है। इसीलिए माताएं हमेशा लड़की की शादी के लिए अधिक इच्छुक रहती हैं। पिछली सदी में तो इस सम्बंध में लड़की की राय भी नहीं ली जाती थी। सम्भावित विवाहार्थियों को बड़ी चतुराई और व्यवहार-कौशल से परिचालित

किया जाता था ताकि लड़के-लड़की एक-दूसरे को देख सकें । जैसाकि जोला के एक उपन्यास में मां अपनी बेटी से कहती है, "तुम कितनी मूर्ख हो । अब सब कुछ खत्म हो गया। आखिर उस पुरुष ने न कर ही दिया। अब एक बात तो समझ लो कि चूंकि तुम्हारे पास दहेज नहीं है इसलिए तुमको पुरुष को और किसी रूप से फंसाना होगा। दूसरे शब्दों में तुमको एक सीमा तक उसकी सारी हरकतों को बर्दाश्त करना होगा।" इस लम्बे वार्तालाप के दौरान सारी शाम वह लड़की चुप और शांत बनी रही किंतु भीतर से उसका दिल शर्म और ग्लानि से बहुत ही उदास था। ऐसी परिस्थिति में जहां लड़की बिल्कुल निष्क्रिय रहती है, वहीं उसका विवाह कर दिया जाता है। अभिभावकों द्वारा उसको विवाह में किसी दूसरे को दान दिया जाता है जबकि लड़का पत्नी को ग्रहण करता है। यह कार्य वह स्वेच्छा से करता है। विवाह उसके लिए जिंदगी जीने का एक तरीका है। विवाह के विकल्प में वह हमेशा ब्रह्मचारी रहने का भी निर्णय ले सकता है।

विवाह के बाद पुरुष का धर्म और वर्ग, सब कुछ औरत को स्वीकार करना पड़ता है। वह पुरुष के परिवार में शामिल हो जाती है। वह पुरुष की अर्धांगिनी बन जाती है। जहां भी पुरुष को काम करना है, वहीं उसको भी जाना पड़ता है। विवाह के बाद औरत प्रायः निर्णायक रूप से अपने अतीत के सम्बंधों को तोड़ लेती है। अब वह पति की दुनिया से सम्बंधित होती है और अपना व्यक्तित्व, अपना कौमार्य तथा जिंदगी भी पति की सेवा में अर्पित कर देती है । परम्परा और समाज उससे इन बंधनों के निर्वाह की आशा करते हैं, आज्ञा देते हैं।

चूंकि पति एक उत्पादक श्रमिक है अतः वह परिवार की सीमा से परे समाज के अन्य सदस्यों के साथ एक सामूहिक भविष्य का निर्माण करता है। औरत को केवल जाति की निरंतरता बनाए रखनी पड़ती है तथा घर-गृहस्थी संभालनी पड़ती है। यानी औरत को बिल्कुल एक अंतर्वर्ती जीवन हो स्वीकारना पड़ता है । वस्तुस्थिति तो यह है कि प्रत्येक मानवीय अस्तित्व में एक ही साथ और एक ही समय में अंतर्वर्तिता और अनुभवातीतता बनी रहती है। प्रगति और सम्पोषण के ये दोनों तत्त्व किसी भी जैविक कार्य में निहित होते हैं किंतु जहां विवाह में पुरुष इन दोनों ही कार्यों का एक स्वस्थ संश्लेषण कर पाता है, वहीं औरत केवल सम्पोषण की अंतर्वर्तिता में ही सीमित रह जाती है। उसके पास ऐसा कोई भी काम नहीं जो उसे वर्तमान का अतिक्रमण कर सर्वोपरिता की ओर बढ़ने का अवसर दे। पुरुष अपने कार्य-क्षेत्र तथा राजनैतिक जीवन में परिवर्तन और प्रगति का सामना करता है। वह जगत् और काल के माध्यम से अपना प्रसारण करता है और जब जगत् की व्यापकता में थक जाता है तो लौटकर अपने घर आता है। शाम को वह घर में आराम करता है जबकि उसकी पत्नी के पास बच्चों की देखभाल और रोजमर्रा की जिंदगी को ठीक से चलाते रहने के अलावा अन्य कोई विशेष काम नहीं होता। वह केवल स्थायीकरण में ही लगी रहती है।

औरत बंद दीवारों के भीतर जीवन की निरंतरता बनाए रखती है। न वह भविष्य पर प्रभाव डाल सकती है और न बिना अपने पति की मध्यस्थता के जगत् से सम्पर्क स्थापित कर सकती है।

विवाह आज भी अधिकतम रूप से अपना पारम्परिक स्वरूप ही बनाए रखे है। आज भी युवा पुरुष की तुलना में युवा लड़की के ऊपर शादी का बंधन जबर्दस्ती लादा जाता है। ऐसे भी विशिष्ट वर्ग हैं जिनमें विवाह के अलावा स्त्री के सामने अन्य कोई रास्ता नहीं होता। विवाह जहां औरत को पुरुष का गुलाम बनाता है, वहीं उसको घर की सम्राज्ञी भी। मध्यवर्गीय परिवारों में युवा लड़की अब भी अपनी स्वतंत्र आजीविका का निर्वाह करने में एकदम असमर्थ ही रखी जाती है। या तो वह पिता के घर में आश्रिता है या फिर किसी अजनबी के घर में उसको जाना पड़ता है। यदि वह थोड़ी- बहुत स्वाधीन है तो उसको वस विवाह का चुनाव करने की सुविधा है। इसके कारण वह पुरुष से मिलने वाली सुविधा की भी हकदार होती है। पति को दिया हुआ प्रेम एक प्रकार की सेवा है, जिसको ग्रहण करके बदले में वह पति से आर्थिक संरक्षण पाती है। उसका शरीर पति खरीदता है। औरत के लिए स्वयं अपना शरीर एक पूंजी है, जिसका उपयोग वह करती है। कभी-कभी वह अपने साथ दहेज लाती है और प्रायः घर के काम तथा बच्चों के पालन-पोषण में लगी रहती है। इसमें कोई शक नहीं कि पारम्परिक नैतिकता में स्त्री को अपराजित होना सिखाया जाता है। उसे दूसरे पर निर्भर रहने का हक दिया है, इसीलिए स्त्री विवाह को अन्य सभी कैरियरों से अधिक आकर्षक, आसान और सुविधाजनक मानती है। जहां बाह्य जगत् के अन्य सभी व्यवसाय और रोजगार कठिन हैं तथा कम पैसा देते हैं, वहीं विवाह के कारण मिलने वाली सुविधाएं बहुत अधिक हैं।

सामाजिक परम्परा द्वारा स्त्री को अब भी यौन-स्वतंत्रता नहीं दी गई है। आज भी समाज के अधिकतम लोगों के सामने स्वतंत्र प्रेम या विवाहित स्त्री का व्यभिचार एक बड़ा अपराध है। यदि वह किसी से प्रेम करना चाहती है तो यह जरूरी है कि वह उससे विवाह करे। स्त्री आत्मनिर्भर होने पर भी जब तक विवाह नहीं करती, तब तक पूरे मानवीय अधिकार तथा सम्पूर्ण मानवीय गरिमा नहीं पा सकती। कुआंरी मां होना समाज की नजरों में एक बड़ा अपराध है और नाजायज बच्चा औरत के जीवन का बहुत बड़ा बोझ । इन्हीं कारणों से अधिकतर किशोर लड़कियां आज भी अपने भविष्य की परियोजना के संदर्भ में यही उत्तर देती हैं कि मैं शादी करना चाहती हूं। विवाह उनके जीवन को एक मौलिक परियोजना है जबकि पुरुष के जीवन में आर्थिक स्वतंत्रता ही एक स्थायी प्रतिष्ठा लाती है। हालांकि आधुनिक जीवन में युवा पुरुष के ऊपर विवाह अनेक कठिन जिम्मेदारियां भी लाद देता है। विवाहित पुरुष आसानी से कहीं भी रहने-खाने की सुविधा प्राप्त कर सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि विवाह बहुत-सी भौतिक और मानसिक सुविधाओं का कारण बनता है।

प्रथम तो यह व्यक्ति को अकेलेपन से मुक्त करता है और घर तथा बच्चों द्वारा उसको समय और स्थान में सुरक्षित रूप से स्थापित करता है। यह उसके अस्तित्व का बड़ा ही सुस्पष्ट भराव है किंतु सारी सुविधाओं के बावजूद आज पुरुषोचित मांग स्त्री की संपूर्ति की तुलना में कम ही है। पति की खोज में लगी हुई लड़की पुरुष के जीवन में अपनी जरूरत बनाए रखना चाहती है । फ्रांस में व्यवस्थित और नियोजित विवाह आज भी किसी-न-किसी रूप में प्रचलित है। बुर्जुवाओं का एक बहुत ही ठोस हिस्सा इसको जिलाए है। विवाह के अभ्यर्थी को उम्मीदवार की खोज में अपने अभिभावकों के साथ कहीं भी, चाहे वह समुद्र का किनारा हो या कोई चाय-पार्टी या अन्य कोई सार्वजनिक आयोजन, देखा जा सकता है। इस प्रकार के नियंत्रित परिवेश में निर्णय लेना पड़ेगा, लड़की यही जानती है। वह जानती है कि उसके पास दिन-प्रतिदिन चुनाव की सम्भावना कम होती जा रही है और उसकी स्थिति उस खानाबदोश लड़की से कम दयनीय नहीं जिसको भेड़ के झुंड के विनिमय में किसी भी पुरुष को सौंप दिया जाता था। कई बार मां-बाप की आंखों के सामने, उच्च वर्ग में जवान लड़के-लड़की एक-दूसरे से मिलते हैं, बातें करते हैं और विवाह का निर्णय करते हैं। यदि घर के लोग अधिक उदार विचारों के हों, तो बहुधा लड़की घर से बाहर जाती है और ऐसी जगह शिक्षा प्राप्त करती है या ऐसा व्यवसाय अपनाती है, जिसमें पुरुषों से मिलने की सुविधा अधिक हो । इस प्रकार के मध्यवर्गीय विचार ज्यादातर समाजों में प्रचलित हैं और फ्रांस में अन्य देशों की तुलना में नियोजित विवाहों का प्रचलन ज्यादा है। अखबारों में विवाह के विज्ञापन ज्यादा स्थान घेरते हैं और परिवार के वयोवृद्ध, दोस्त, माताएं तथा स्त्रियों की पत्रिकाएं युवा लड़की को, पति का शिकार करने के नुस्खे बताती हैं। इस कार्य में बहुत अधिक दक्षता की जरूरत होती है। उससे कहा जाता है कि तुम बहुत ऊंचे या बहुत नीचे समझौते मत करो, वस्तुस्थिति को समझो, और बहुत रोमांटिक होना बेकार है, न बिल्कुल कम मांगो और न बहुत ज्यादा। विनयशीलता के साथ थोड़ा छिछोरापन भी रखो । पुरुष को यह पता नहीं चलना चाहिए कि तुम उसको प्रभावित करने की चेष्टा कर रही हो। उत्साह के बदले साधारणतया उसका चुनाव एक प्रकार की निष्क्रियता, हिसाब-किताब और विरक्ति लिए हुए होता है। यदि पुरुष सामान्यतः स्वस्थ और अच्छी स्थिति में है तो वह उससे प्रेम करे या न करे, वह उसको स्वीकार जरूर कर लेती है।

विवाह की इच्छा रखते हुए भी लड़की प्रायः इससे भयभीत रहती है। चूंकि पुरुष की तुलनां में उसको विवाह में सुविधा अधिक मिलती है और इसलिए वह पुरुष की तुलना में विवाह की ज्यादा इच्छुक है, किंतु उसको विवाह के कारण त्याग भी अधिक करना पड़ता है। उसको अपना अतीत काटकर फेंक देना होता है। हमने देखा है कि बहुत-सी किशोर लड़कियां पिता का घर छोड़ने की कल्पनामात्र से परेशान हो जाती हैं। यह वही क्षण है जिसमें अनेक स्नायविक विकारों की उत्पत्ति होती है। वे यह सोचकर भयभीत रहती हैं कि

पहले की गलतियां और कौमार्य-भंग पति जान जाएगा। ज्यादातर उदाहरणों में लड़की अपने आपको एक अपरिचित की बांहों में पूरी तरह समर्पित करने में असमर्थ रहती है। पिता के घर से पूरी तरह कट जाना उसकी बर्दाश्त से बाहर होता है। अधिकतर शादी की इच्छुक लड़कियां दूसरों की देखा-देखी ही शादी कर लेना चाहती हैं क्योंकि उनके ऊपर आसपास के परिवेश का दबाव रहता है। वे जानती हैं कि समझ में आने योग्य यही एक समाधान है। एक पत्नी और मां का स्वाभाविक अस्तित्व पाने के लिए वे विवाह का निर्णय लेती हैं। इन सबके बावजूद उनके भीतर कहीं हिचकिचाहट और एक गहरी वेदना रहती है, जिसके कारण कई बार वैवाहिक जीवन के प्रारम्भ में असुविधाएं होती हैं। कई बार तो स्त्री आजीवन कोई सुखद संतुलन नहीं प्राप्त कर पाती।

विवाह प्रेम पर आधारित नहीं होता। जैसा कि फ्रायड ने कहा है कि पति प्रेमी-पुरुष का एक सम्पूरक तो हो सकता है किंतु वह प्रेमी-पुरुष नहीं हो सकता। प्रेम और विवाह का यह अंतर आकस्मिक नहीं, बल्कि विवाह की संस्था में निहित विरोधाभास है। इसका उद्देश्य समाज के स्वार्थ की सिद्धि के लिए स्त्री और पुरुष का यौन तथा आर्थिक गठबंधन होता है। समाज उनके व्यक्तिगत सुख का ठेका नहीं लेता। अनेक जातियों और सम्प्रदायों में आज भी लड़के-लड़की विवाह की रात्रि से पहले एक-दूसरे का मुंह भी नहीं देखते । भावनात्मक या कामनात्मक जरूरतों के आधार पर विवाह में प्रेम और सौंदर्य की अपेक्षा आज भी सामाजिक स्तर और भौतिक सुख-सुविधाओं की जरूरत अधिक देखी जाती है। पुरुष अपने लिए विवाह नहीं करता, बल्कि अपने परिवार और संतान के लिए करता है।

चूंकि पुरुष ही स्त्री को ग्रहण करता है, स्वीकारता है, अतः उसके सामने इस मुद्दे पर कुछेक सम्भावनाओं में से हमेशा एक के चुनाव की सुविधा उपलब्ध रहती है। खासकर उस समय तो और भी अधिक, जब स्त्रियों को बहुसंख्या हो। चूंकि रतिक्रिया औरत द्वारा प्रदत्त एक सेवा मानी जाती रही है, जिसको निभाना उसका धर्म समझा जाता रहा है तथा जिसके विनिमय में वह हमेशा कुछ विशिष्ट अधिकारों की स्वामिनी होती है, अत: जब उसको विनिमय में सुविधा मिलती है, तब पुरुष का चुनाव करते समय उसकी इच्छा-अनिच्छा का कोई प्रश्न नहीं उठता। विवाह का निर्धारित उद्देश्य ही औरत को बंधन में रखना है; लेकिन हम जानते हैं कि बिना स्वातंत्र्य के न कोई प्रेम कर सकता है और न अपने व्यक्तित्व का निर्माण। मैंने किसी परिवार में एक बड़ी धार्मिक मां को अपनी बेटी से कहते हुए सुना कि प्रेम एक ऐसी छिछली भावुकता है जिससे कोई भी इज्जतदार औरत अपने जीवन में अनभिज्ञ रहना चाहेगी। यह केवल पुरुषों के मन-बहलाव का विषय है। हीगेल ने भी कुछ इसी तरह की वातें अपनी मासूमियत में कही थीं। वे औरत के लिए मां और पत्नी की एक सामान्य भूमिका ही स्वीकारते हैं, जिसमें औरत की व्यक्तिगत इच्छाओं को प्रश्रय देना अनैतिक कहलाएगा। यौन-संतुष्टि में स्त्री की व्यक्तिगत रुचि और अरुचि का

प्रश्न ही नहीं उठता। उसके नारीत्व की भूमिका समाज द्वारा निर्धारित कर दी जाती है। समाज का हित सर्वोपरि है जिसमें व्यक्ति की इच्छा और संतुष्टि सामाजिक हितों के अधीनस्थ रहती है। इस प्रकार प्रेम को प्रजनन की प्रक्रिया से अलग कर दिया जाता है, जिसका नतीजा होता है, सम्भोग का संस्थापन। स्त्री की परिभाषा ऐसे समाजों में अनिवार्य रूप से एक मादा की भूमिका तक ही सीमित होती है और इसी भूमिका में वह अपने जीवन की युक्तिसंगतता पा सकती है। दूसरी बात यह है कि स्त्री और पुरुष में जैविक भेद के कारण पुरुष जहां अभिकर्ता है, वहीं औरत के जीवन में प्रजनन की प्रक्रिया को कामनात्मक सुख से बिल्कुल विलग कर दिया जाता है। औरत के लिए विवाह का अर्थ उन नैतिक मान्यताओं का पोषण है जो औरत के कामनात्मक जीवन का दमन करती हैं। पुरुष एक पूर्ण नागरिक होता है। वह एक सार्वजनिक अभिकर्ता के रूप में सर्वोपरिता की ओर अग्रसर होता हुआ विवाह के पहले या बाद में भी परस्त्री के साथ यौन सम्पर्क रख सकता है। पुरुषों ने जान-बूझकर औरत की सेक्सुअल कुंठा को प्राकृतिक कहकर स्वीकार किया है। उन्होंने इसको औरत की नियति माना है। गर्भाधान के बोझ को स्त्री की नियति कह देने से अनेक पुरुषों को परपीड़न का सुख मिलता है। यह पुरुष के ही हित में आता है कि वह स्त्री की यौन-इच्छा की उपेक्षा करते हुए उसकी स्वाभाविक यौन-प्रवृत्तियों के दमन को उचित ठहराए। कई लेखकों ने तो यहां तक कहा है कि यदि वैवाहिक जीवन में शृंगार और कामुक इच्छाओं को प्रोत्साहित किया जाए तो परेशानियां ही बढ़ती हैं। विवाह एक पवित्र बंधन है और इसमें रागात्मक सुख का गम्भीरतापूर्वक नियंत्रण अवश्य किया जाना चाहिए। पुरुष स्त्री में एक ही साथ विभिन्न भूमिकाओं को देखना चाहता है। स्त्री मां भी रहे और भोग्या भी, कामकाज में सक्रिय भी हो और उसकी बांहों में बिल्कुल निष्क्रिय भी। ये विरोधाभासपूर्ण अपेक्षाएं स्त्री को किसी भी स्थिति में संतुलित नहीं रहने देती। धो तो कहते हैं कि वैवाहिक जीवन में किसी भी तरह की रसिक बातें गार्हस्थ्य धर्म और सामाजिक कर्त्तव्य के पालन में बाधक होती हैं।

19वीं सदी तक आते-आते जहां एक ओर विवाह संस्था को बचाए रखने की अनिवार्यता महसूस होने लगी, वहीं दूसरी ओर व्यक्ति के विकास के साथ स्त्री की मांगों का दमन भी कठिन होता गया। संत साइमन, फर्रियर और जार्ज सैंड जैसी प्रसिद्ध लेखिकाओं ने औरत के प्रेम करने के अधिकार को सर्वोपरि रखा। समस्या यह खड़ी हो गई कि वैवाहिक जीवन में व्यक्तिगत इच्छा-अनिच्छा और रागात्मक चाहों को एकात्म कैसे किया जाए? यह वही समय था जब दाम्पत्य प्रेम की एक अनिश्चित और अनेकार्थक अवधारणा का विकास हुआ। बाल्जाक जैसे लेखकों ने तो विवाह जैसी पवित्र संस्था में औरत जैसी घटिया चीज के प्रति अधिक प्रेम रखने की तीव्र भर्त्सना की है। विवाह की जरूरत संतति के लिए है और विवाहजनित प्रेम एक बेतुका खयाल है । बाल्जाक इसके बाद जीवन की एक वैज्ञानिक व्याख्या करते हैं। बाल्जाक एक ही बात का ध्यान रखना चाहते थे कि पति को

प्रेम मिले या न मिले किंतु वह ठगा न जाए। अतः अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने के लिए पुरुष पत्नी को फूहड़ और मूर्ख बनाए रखता है तो कोई गलती नहीं करता। पुरुष अपनी सुविधा के लिए शादी करता है और निर्लिप्त रूप से । सुख भोगता है। इसके बाद धीरे-धीरे समय के साथ पुरुष पत्नी में अपने प्रति प्रेम जगाता है, लेकिन सच में पत्नी के मन में ऐसे पुरुष के लिए प्रेम पैदा होता है या घृणा? वस्तुतः अपने बहुत से विवरणों में बाल्जाक इन समस्याओं के प्रति बिल्कुल उदासीन रहे हैं। वे इस बात को कतई नहीं समझ पाते कि भावनाएं कभी तटस्थ नहीं होती और प्रेम का अभाव कोमल भावनाओं को जगाने के बदले चिढ़, अधैर्य और क्रोध को ही जन्म देगा।

अंततः विवाह और प्रेम के समन्वय की कठिनाइयों को देखकर ही कीर्केगार्द जैसे लेखकों को कहना पड़ा कि बिना दैवी-इच्छा के यह सम्भव नहीं। वे कहते हैं, "प्रेम सहज है, स्वतःस्फूर्त है जबकि विवाह एक निर्णय है और इन दोनों का मेल एक ऐसी रहस्यमयता है जो केवल दैव की इच्छा से ही सम्भव हो सकती है।" प्रेम कर्त्तव्य कैसे बनता है, यह एक उलझन है, जिससे कीर्केगार्द भी परेशान होते हैं क्योंकि जब निर्णय करने के लिए प्रेम के विषय में सोचा जाता है तब उसकी सहजता खत्म हो जाती है। यहां पर निर्णय नैतिक सिद्धांतों पर आधारित होता है। जहां तक पति का सवाल है, वह विवाह का निर्णय एक धार्मिक कर्त्तव्य की भावना से करता है जबकि औरत के जीवन में प्रेम मात्र इस विवाह-बंधन की धार्मिकता के कारण ही आ पाता है।

फ्रांसीसी उपन्यासकार और नाटककार दाम्पत्य प्रेम और सुख को इतना बड़ा धार्मिक काम न समझकर एक मानवीय संदर्भ देने की चेष्टा करते हैं और इस बात का दावा करते हैं कि वैध प्रेम में कामनात्मक इच्छाओं का भी समन्वय हो सकता है। उपन्यासों में क्रमश: यह दिखाया गया है कि जहां पत्नी छलनामयी, झूठ बोलने वाली, भोगवादी, ऐंद्रिक और जिद्दी तथा सनकी है, वहीं पति उदार, बुद्धिमान और शक्तिशाली प्रेमी है। व्यभिचार करने वाली या किसी भावनात्मक बहाव में बहने वाली पत्नी भी अंततः पति की बांहों में वापस लौटकर ही सुख पाती है।

इन्हीं कारणों से हम आज भी देखते हैं कि एक अमरीकन विवाह जैसी संस्था का घोर समर्थक होने के बावजूद व्यक्तित्व को बचाने की भी चेष्टा करता है। वैवाहिक जीवन पर ऐसी अनेक पुस्तकें हैं जो पति-पत्नी को एक-दूसरे के साथ समझौता करने तथा एक-दूसरे की जरूरतों को पूरा करने की सीख देती हैं। मनोविश्लेषक और डॉक्टर मध्यस्थ पार्षदों की भूमिका निभाते हैं। यह कानूनी रूप से स्वीकृत है कि स्त्री को भी सुख का अधिकार है तथा पुरुष का यह कर्त्तव्य है कि वह औरत को संतुष्ट रखे। हमने देखा है कि सुख प्राप्ति की कोई निश्चित तकनीक नहीं हुआ करती । युवा पुरुष ने यदि ऐसी बीसों पुस्तकें पढ़ी हों तब भी वह अपनी पत्नी को प्रेम करने के लिए शिक्षित नहीं कर सकता। यह तो एक पूर्ण

मनोवैज्ञानिक परिस्थिति है जिसकी प्रतिक्रिया स्त्री पर होती है। पारम्परिक विवाह में स्त्री के जीवन में कामना को कोई स्थान नहीं दिया गया था। स्त्री का कौमार्य पितृ-प्रधान समाज में एक नैतिक, धार्मिक और रहस्यात्मक मूल्य ग्रहण करता है। आज भी यह मूल्य कायम है। पुरुष के जीवन में विवाह का उत्सव एक अमूर्त तथा सार्वभौमिक प्रतीक के रूप में आरोपित होता है। यह एक ऐसा आरोपित प्रतीकात्मक आयोजन है जो समाज और धर्म द्वारा निरंतर कायम रखा जाता रहा है। अकेले कमरे में पति और पत्नी जैविक स्तर पर बिल्कुल जानवर होते हैं । विवाह जैसी पवित्र संस्था का यह एक अश्लील पक्ष अब तक बड़े ही निर्वैयक्तिक रूप से सामने रखा जाता रहा है। पत्नी को सुहागरातं न केवल एक नाटकीय मनोरंजन और प्रहसन ही लगती है बल्कि पहले से सेक्सुअल अनुभव न होने के कारण यह सारी घटना बड़ी आकस्मिक और त्रासद सिद्ध होती है। वह अचानक अपने आपसे कह उठती है, "अरे, यही शादी है क्या? इसीलिए इन कार्यों को अब तक इतना गुप्त रखा गया?" वह सोचती है, परेशान होती है लेकिन किसी से कह नहीं सकती। आज भी कई युवा स्त्रियों के लिए इन बातों को अच्छी तरह जानने के बावजूद कौमार्य-भंग की क्रिया एक बलात्कार के अनुभव से कम त्रासद नहीं होती। कॉलेट जैसी प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका भी अपनी एक दोस्त की सुहागरात का वर्णन करते हुए कहती है, "वह मुझे नवदम्पति के कमरे में ले गई, रेशमी पर्दे, फूलों की सेज, नरम तकिए, अगरबत्ती, भोज्य पदार्थों और पसीने की मिली-जुली गंध जल्द ही वर-वधू यहां पधारेंगे और वे एक अजीबोगरीब संघर्ष में गुंथ जाएंगे, जिसके बारे में मेरी मां के अस्पष्ट शब्द तथा खलिहान में देखे गए दृश्य अब तक बहुत-कुछ सिखा गए थे। मैं आतंकित हो उठी।" लड़की इस नादान व्यथा में एक विरोधाभास महसूस करती है। पूर्वी देशों में जहां औरत का व्यक्ति-रूप स्वीकृत नहीं, वहां विवाह का यह व्यभिचारी अश्लील पक्ष स्पष्टतः उभरता है, लेकिन पश्चिमी समाजों में जहां स्त्री एवं पुरुष व्यक्ति-रूप में स्वीकृत हैं, वहां सुहागरात के दिन हंसी-ठहाकों के बीच नववधू यह जरूर समझ जाती है कि उसका उपभोग इस सारे अनुष्ठान में कौन करने वाला है। यह कैसा वीभत्स एवं घिनौना वैषम्य है जो हम शोभायात्रा की धूमधाम और प्रतिमा के विसर्जन में देखते हैं लेकिन विसर्जित होने वाली प्रतिमा पूछताछ के लिए मुंह तक नहीं खोलती। विवाह-रात्रि में रोती हुई लड़की का भागकर मां के घर आना केवल नाटकों की घटना नहीं। मनोविज्ञान में ऐसी बेशुमार घटनाओं का जिक्र किया गया है जहां लड़को पति की सारी हरकतों में एक वहशी अंदाज पाती हो या सेक्स-सम्बंधी अल्पज्ञान की वजह से बहुधा वर्षों किसी विरोध के एक विकृतकामी पुरुष के साथ जीवनयापन करती रही हो।

हैवलॉक एलिस जैसे प्रबुद्ध यौन-शास्त्री ने यहां तक कहा कि विवाह के कारण होने वाले बलात्कार संख्या में दूसरे बलात्कारों से अधिक होते हैं। उनके अनुसार मध्यवर्गीय बुद्धिमान स्त्रियों ने यह कहा कि उनका पहला सम्भोग एक आकस्मिक दहलाने वाली घटना ही थी और उन्हें इससे शारीरिक पीड़ा ही अधिक हुई। हमने यह पहले भी देखा है कि कुंवारी

लड़की के लिए पहली दीक्षा शारीरिक और मानसिक रूप से प्रसव-पीड़ा से कम नहीं होती और एक ही रात में सबकुछ कर गुजरना वास्तव में बहुत बर्बर और फूहड़ साबित होता है। पहले ही अनुभव में इसे कर्तव्य-भावना का रूप देना बड़ा बेतुका लगता है। स्त्री और भी भयभीत होती है क्योंकि परिवार, धर्म और समाज ने उसको पवित्र अनुष्ठानों के साथ पति के हाथों में सौंप दिया था-एक समूचे भविष्य को सुख-सुविधा और सुरक्षा के लिए। विवाह हमेशा के लिए उठा हुआ एक निश्चित कदम होता है। स्त्री सोचती है कि उसका ग्रहणकर्ता पूर्ण रूप से पुरुषमात्र का प्रतिनिधि है और इसी के साथ उसको जीवन बिताना है। पुरुष की अपनी कठिनाइयां हैं और अपनी चिंताएं, जो या तो उसे बहुत ही भीरु और बिल्कुल अनाड़ी बनाकर रख देती हैं। कभी-कभी विवाह-रात्रि में वह नपुंसक भी साबित होता है। मनोविज्ञान ऐसे बहुत से उदाहरणों को हमारे सामने रखता है। अधिक जल्दबाजी और उतावलेपन से कुंवारी लड़की भयभीत हो जाती है। बहुत ज्यादा गम्भीर और गौरवशाली व्यक्तित्व उसको ओछा कर देता है। स्त्री अनेक विरोधाभासों और कुंठाओं को इसी एक अनुभव से संचित कर लेती है। विवाह-रात्रि की कुछ शर्तों को पूरा करने में स्त्री-पुरुष, दोनों ही अपने आपको असमर्थ पाते हैं। दोनों ही अपनी-अपनी समस्याओं से इतने परेशान और चिंतित रहते हैं कि अपने साथी के बारे में उदारता से सोच ही नहीं पाते । पवित्रता की औपचारिकता का आडम्बर एक ऐसा विकट और दुर्जेय माहौल बनाता है जिसमें औरत हमेशा के लिए हतोत्साहित हो सकती है। बहुत अधिक नियंत्रण में पली हुई लड़कियां इतनी कुंठित होती हैं कि वे किसी प्रकार का सहयोग नहीं दे पातीं। स्त्री के दृष्टिकोण में हम एक प्रकार की द्व्यर्थकता पाते हैं। वह एक ही साथ सुख की इच्छा भी रखती है और सुख को नकारती भी है। युवक पति उसको या तो बहुत ही स्वेच्छाचारी लगेगा या बिल्कुल अनाड़ी। अत: इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि 'पत्नी को दाम्पत्य कर्तव्य' प्रायः उबाऊ और अरुचिकर लगे। तथ्य तो यह है कि अनेक स्त्रियां बिना पूर्ण संतुष्टि का अनुभव किए ही मां और दादी बन गई हैं। अनेक उदाहरणों में तो पत्नियां किसी-न-किसी बहाने इस कार्य को करना नहीं चाहतीं। उसकी सम्भोग की इच्छा ही नहीं रहती जबकि मनोविज्ञान यह कहता है कि औरत की कामनात्मक क्षमता असीम है। यह विरोधाभास सिद्ध करता है कि स्त्री के कामनात्मक जीवन के नियंत्रण के प्रयास में विवाह उसकी इच्छाओं को खत्म ही कर देता है।

सगाई तथा विवाह के बीच का समय लड़की के लिए वास्तव में क्रमिक रूप से यौन-विज्ञान की प्रारम्भिक दीक्षा का समय है। एक बार पूर्णतया अपने आपको समर्पित कर देने वाली लड़की का पूरा भविष्य हमेशा के लिए बंध जाता है। उसकी प्रारम्भिक अनुभवों से पैदा कठिनाइयां उसी समय दूर होती हैं जब दोनों व्यक्तियों का आपसी मत बिल्कुल मिलने लगता है। एक-दूसरे की स्वतंत्रता को पूरी तरह स्वीकारने वाले प्रेमियों को ही शारीरिक संवेग की शक्ति और गरिमा प्राप्त होती है और इन्हीं परिस्थितियों में शरीर की कोई भी

क्रिया उन्हें अपमानजनक और अमानवोचित नहीं लगती। यहां कोई भी एक-दूसरे के दबाव में आकर कुछ नहीं करता और न ही स्त्री का यह आत्म-समर्पण परवशता कहलाएगा बल्कि यह तो एक औदार्यजनित संकल्प ही होगा। विवाह तो उस समय गंदा स्वरूप ग्रहण करता है जब आपसी सम्बंध सहज आवेग और इच्छा पर आधारित न होकर कर्तव्य हो जाएं और इस समर्पण को प्राप्त करना पुरुष का अधिकार बन जाए ऐसी स्थिति में दो व्यक्ति व्यक्ति नहीं रहते बल्कि महज एक-दूसरे को शासक और शासित के ही रूप में जानते हैं। पति भी यह सोचकर उदास रहता है कि उसको केवल एक कर्त्तव्य पूरा करना पड़ रहा है और पत्नी भी इस बात से लज्जित होती है कि कोई उसके ऊपर अपने अधिकार का प्रयोग कर रहा है, उसका उपभोग कर रहा है। यह भी हो सकता है कि वैवाहिक जीवन के आरम्भ में उनके सम्बंधों का व्यक्तिकरण सम्भव हो सके और यौन-शिक्षा धीरे-धीरे मिले। विवाह से स्त्री को एक सुविधा तो जरूर मिलती है कि उसके मन में शरीर से सम्बंधित किसी पाप की भावना नहीं आती और नियमित रूप से प्राप्त सुख दोनों के बीच एक शारीरिक आंतरिकता को प्रेरित करता है। इसीलिए विवाह के प्रारम्भिक वर्षों में पूर्ण संतुष्टि पाने वाली स्त्रियों के मन में पति के प्रति इतनी कृतज्ञता रहती है कि वे बाद में पति के बहुत से अपराधों और दोषों को माफ कर देती हैं। स्टेकल कहते हैं कि दुखी वैवाहिक जीवन से भी मुक्त नहीं होने वाली स्त्रियां पति से प्राप्त यौन-सुख से पूर्ण संतुष्ट रहती हैं। कभी-कभी लड़की आजीवन एक अनजान पुरुष के प्रति समर्पित होकर, बहुत बड़े जोखिम का सामना करती है। यह कहना बिल्कुल ढोंग होगा कि सुविधा पर आधारित सम्बंध प्रेम पैदा कर सकते हैं। यह बेतुकी बात है कि व्यावहारिक, सामाजिक और नैतिक व्यवहारों के कारण जुड़े हुए वैवाहिक व्यक्ति एक-दूसरे के साथ आजीवन शारीरिक रूप से संतुष्ट रह पाएं। विवाह-संस्था के पक्षधर यह कहते नहीं थकते कि प्रेम-विवाह भी एक-दूसरे को पूर्ण सुखी नहीं कर पाते। इसका प्रथम कारण तो यह है कि आदर्श प्रेम या प्रथम प्रेम का अनुभव करने वाली युवती वास्तव में सेक्सुअल आकांक्षा से कम प्रेरित होती है। 'प्रेम-सम्बंध' उसका दिवास्वप्न होता है, उसका आवेगमय बचपना, जो इस तस्वीर पर प्रक्षेपित होता है या फिर एक किशोरावस्था की अंधी जिद, जो प्रेम की कल्पना से चिपकी हुई है। ऐसा प्रेम रोजमर्रा की जिंदगी का तनाव नहीं झेल सकता। लड़की और उसके प्रेमी में बहुत ही तीन कामनात्मक आकर्षण पैदा हो जाने पर भी आजीवन उद्योग और बंधन के लिए यह कोई ठोस आधार नहीं होता। प्रेम के मरुस्थल में इन रूमानी रुझानों और शारीरिक सुखों का बहुत कम स्थान होता है। अंधेरे मे रेगिस्तान में जलने वाली यह एक क्षीण रोशनी है जो आसपास के खतरों से अनजान रहती है। यदि विवाह के पहले यौन-सुख प्रेम का अनुभव हो भी या हनीमून के समय ही वह पैदा हो जाए तो आने वाले दीर्घ जीवन में यह शायद ही स्थायी और सतत बना रह सकता है। इसमें कोई शक नहीं कि ईमानदारी और निष्ठा का अर्थ तभी तक है जब तक सम्बंध सहज हैं और हम जानते हैं कि कामना का जादू शीघ्र ही

समाप्त हो जाता है। सुखद आश्चर्य तो यह है कि उस क्षण में और उस शरीर के साथ व्यक्ति एक अपरिमित अनुभवातीतता की ओर उन्मुख है किंतु जो सम्पर्क बनता है, वह तो कम-से-कम बड़ा ही तीव्र और मादक होता है। जब इस प्रकार के सम्पर्क की किसी रोग या उदासीनता या फिर घृणा के कारण इच्छा न रहे तब कामनात्मक आकर्षण विलुप्त हो जाता है। एक-दूसरे के प्रति सम्मान और दोस्ती रहते हुए भी यह खत्म हो जाता है। यह भी हो सकता है कि साथ-साथ रहने और साझे की परियोजनाओं के बावजूद शारीरिक सम्बंध की इच्छा ही न होती हो। चूंकि इस प्रकार का सम्बंध अपना अर्थ खो चुका होता है, अतः इसका अरुचिकर लगना बहुत गलतं नहीं।

जहां पत्नी पति को मर्तबान में बंद अचार की तरह सुरक्षित रखना चाहती है, वहीं पति भी अपनी इच्छापूर्ति पत्नी की सुविधा का खयाल किए बिना या उसकी राय लिए बिना करता है। जरूरतों को यह जंगली संतुष्टि मानवीय सेक्सुअलिटी को संतुष्ट नहीं कर सकती और यही कारण है कि ऐसे गहरे आलिंगन के बाद भी पाप की कड़ुवाहट मुंह में आए बिना नहीं रहती। प्रायः पति-पत्नी दोनों ही एक-दूसरे पर अपने को आरोपित करते हैं। जैसा कि स्टेकल कहते हैं, "विवाह एक कॉमेडी है। यह दो साथियों के बीच की नाटकीयता है, जिसमें बहुधा वास्तव और कल्पना के बीच की दीवार ढह जाती है।" अनेक उदाहरणों में तो इसी अति के कारण स्पष्ट काम-विकृति भी देखने में आती है। उसी पुराने जादुई माहौल को, उन्हीं घिसी-पिटी उत्तेजनाओं को, फिर-फिर जीने के प्रयास में कभी पति पत्नी को पीड़ा देता है तो कभी पत्नी उसको दूसरी स्त्री के साथ सम्भोग करते हुए देखने की कल्पना करती है। पुरुष महसूस करना चाहता है कि वास्तव में उसने एक स्वतंत्र व्यक्ति को अधिकृत किया है। कई बार तो पत्नी खुद ही चाहती है कि पति उस पर निरंकुश रूप से शासन करे। यहां तक कि कई स्त्रियां शारीरिक पीड़ा के लिए भी तैयार हो जाती हैं। विकृति, अपराध और पाप, सभी कुछ विवाह में एक बड़ा ही ठंडा, पूर्व नियोजित रूप ग्रहण कर लेता है। सत्य तो यह है कि शारीरिक प्रेम न तो अपने आपमें एक उद्देश्य है और न ही दूसरे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए महज एक साधन। सेक्स कभी अस्तित्व का औचित्य स्थापित नहीं कर सकता और न ही सेक्स को हम कोई बाह्य औचित्य दे सकते हैं। इसकी तो मानव-जीवन में केवल एक स्वतंत्र और प्रासंगिक भूमिका ही हो सकती है।

बुर्जुवा आशावादिता विवाह की संस्था में एक युवा लड़की को प्रेम नहीं दे सकती । सुख का जो आदर्श उसके सामने रखा जाता है, वह वास्तव में एक अंतर्वर्तिता और पुनरावृत्ति-भरे जीवन में स्थापित ठंडे संतुलन का आदर्श है। किसी जमाने में सुरक्षा और धन के कारण मध्यमवर्ग का यह सबसे बड़ा आदर्श रहा होगा और खासकर जमींदारों का, जिनका उद्देश्य भविष्य पर विजय नहीं था बल्कि जो अतीत को जैसा का तैसा शांतिपूर्वक ढंग से संरक्षित रखना चाहते थे। विवाह इस वर्ग के लिए तो आवेग और महत्त्वाकांक्षाविहीन एक

ऐसा कार्यक्रम है जिसमें उद्देश्यहीन दिन अंतहीन रूप में दोहराए जाते हैं। जिंदगी धीरे-धीरे बिना अपना उद्देश्य पूछे मौत की तरफ सरकती जाती है। क्या इसी का अर्थ सुख है ? यह झूठी प्रथा, जिसको ग्रीक दार्शनिकों ने प्रेरित किया था, आज बिल्कुल संदेहजनक है। दुनिया को जैसे का तैसा बनाए रखना न तो सम्भव है और न वांछनीय। पुरुष को सक्रिय होने के लिए कहा जाता है। उसका काम है, उत्पादन करना, युद्ध करना, निर्माण करना, प्रगति करना, विश्व का अतिक्रमण करते हुए भविष्य की अपरिमितता को सूक्ष्मता के आनुभविक दायरे में समेटना। पारम्परिक विवाह स्त्री को पुरुष के साथ सर्वोपरिता की ओर जाने की कोई सुविधा नहीं देता। जहां पुरुष वर्तमान का अतिक्रमण कर भविष्य की परियोजना में संलग्न रहता है वहीं स्त्री अपने ही दायरे में बंद, अपनी ही आंतरिकता में कैद रहती है। इसी को वह सुख की जिंदगी समझती है। प्रेम के बदले वह एक कोमल और श्रद्धालु भावना महसूस करती है। इसी को दाम्पत्य प्रेम कहा जाता है। घर की चहारदीवारी में वह यही चेष्टा करती है कि मानव-जाति की निरंतरता आने वाले समय में भी बनी रहे। किंतु कोई भी मानव-अस्तित्व, चाहे वह स्त्री का हो या पुरुष का, सर्वोपरिता की ओर जाने की इच्छा का दमन हमेशा के लिए नहीं कर सकता। जहां पुराने बुर्जुवा ने यह सोच लिया था कि स्थापित व्यवस्था को संरक्षित रखकर वह ईश्वर की सेवा कर रहा है और अपने देश, अपने शासन तथा सभ्यता को बनाए रख रहा है तथा इसी में उसका सुख निहित है, वहीं औरत के लिए भी यह जरूरी हो जाता था कि वह घर के शांतिमय जीवन को भविष्य की ओर प्रक्षेपित करे। हम देखते हैं कि विवाह स्त्री के जीवन की उद्देश्यहीनता को मानव-मूल्य प्रदान करता है। पत्नी के साझे में वह उसकी शक्ति बन जाता है। पत्नी का काम है कि वह अपने आपको पति को समर्पित कर दे और यह पति ही है जो उसके जीवन को अर्थ प्रदान करता है। यह सारी.अवधारणा और परियोजना पूर्वानुमानित रूप से पत्नी को एक बड़ा विनयी और त्यागमय रूप देती है। यह सोचा जाता है कि. स्त्री मौलिक त्याग के प्रभाव से बचकर फिर एक बार अनिवार्यता हासिल कर पाएगी। अपने ही घर की रानी, अपनी सीमा में शांत-स्थिर पत्नी, मां और घर की सम्राज्ञी।

सुखी जीवन का आदर्श गृहस्थी में, चाहे वह झोंपड़ी हो या महल, हमेशा दुनिया से दूर अपने आपमें स्थायित्व पाना होता है। घर की चहारदीवारी के दायरे में एक गुरुत्व या पृथक अस्तित्व लिए हुए कुछ लोगों का समूह पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनी परम्परा और विशिष्टता बनाए रखना चाहता है। पूर्वजों की तस्वीरों और पुराने फर्नीचर के आकार में संरक्षित अतीत एक सुरक्षित भविष्य का वादा करता है। बगीचे में मौसम हर साल वसंत के वही फूल, गर्मियों में वही-वही सब्जियां और पतझड़ में बिल्कुल पिछले ही साल के फलों का उत्पादन अपने क्रम में प्रस्तुत करता रहता । जमीन-जायदाद पर आधारित प्रत्येक सभ्यता में घर और गृहस्थी के गीत मध्यवर्गीय मूल्यों में सीमित हो जाते हैं। अपने अतीत से चिपकाव, धैर्य और दूरदर्शिता, परिवार के प्रति प्रेम और परिजनों के लिए स्नेह आदि हमारे

आदर्श होते हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि घर-गृहस्थी की कवियित्री औरत होती है। यह औरत का ही काम है कि वह पारिवारिक समूह को सुख का आश्वासन दे और घर की सम्राज्ञी बनी रहे।

आज का परिवार अपनी पितृ-सत्तात्मक भव्यता और ऐश्वर्य खो चुका है। अधिकतर पुरुषों के लिए घर एक स्थान है जहां वे रहते हैं, जो न तो अतीत की मृत पीढ़ियों को ढो रहा है और न ही आने वाली सदी को परिसीमित कर पा रहा है किंतु औरत आज भी एक सच्ची गृहस्थी की चाह में अपनी इस अंत:स्थिति तथा अंतर्व्यापिता को मूल्य और अर्थ प्रदान करना चाहती है। घर कैसा भी हो, उसके लिए घर है। यदि वह गरीब है तब भी, चाहे चिथड़ों से ही क्यों न हो, घर को सजाना जरूर चाहेगी। उसकी यह इच्छा बड़ी सहज और स्वाभाविक है। एक साधारण पुरुष अपने आसपास की वस्तुओं को महज एक उपकरण मानेगा। घर के प्रति पुरुष का दृष्टिकोण क्रियात्मक होता है। जैसा कि हम देखते हैं कि कलाकार भी अपने वातावरण से बेखबर रहते हैं। घर और गृहस्थी में अपने आपको फिर से पाने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि पहले औरत अपने व्यक्तित्व का निर्माण अपने कार्यों और अपनी जरूरतों के ऊपर आधारित करे। पुरुष शायद ही अपने तात्कालिक परिवेश में रुचि लेता है क्योंकि वह अपनी परियोजनाओं में आत्माभिव्यक्ति पा लेता है जबकि औरत दामपत्य की सीमा के कारण अपने कैदखाने को स्वर्ग बनाने की जिम्मेदारी ले लेती है। वह गुलाम होकर स्वामित्व पाना चाहती है। वह स्वतंत्रता त्यागकर स्वतंत्रता की खोज करती है। दुनिया को त्यागकर वह दुनिया को जीतना चाहती है। बिना किसी शिकायत के वह अपने आपको घर की चहारदीवारी में कैद रखती है जबकि बचपन में पूरा गांव उसका घर था, खेत-खलिहान और जंगल, सब उसके थे। अब वह एक सीमित क्षेत्र में बंद है। पूरी प्रकृति उसके लिए गमले का फूल बनकर सिमट जाती है। दीवारें क्षितिज का फैलाव काट देती हैं किंतु उसकी भी जिद है कि वह इन सीमाओं के परे जाए। इन्हीं चहारदीवारियों में वह दुनिया के सारे पेड़-पौधे उगा लेना चाहती है। अतीत की हर स्मृति को वह फिर-फिर जीना चाहती है। मानव-समाज का प्रतिनिधि उसका पति उसके पास है और उसका बच्चा, जो उसको सम्पूर्ण भविष्य प्रदान करता है, जगत् का केंद्र है। यही चहारदीवारी उसका घर हो जाती है। दुनिया के विरोध में यह एक और प्रति-दुनिया, जो उसे बाहरी खतरों से बचाती है, उसके ऊपर साया रखती है। इसी के आश्रय में वह पुनः संस्थापित होती है। यही उसकी अंतिम वास्तविकता हो जाती है, जबकि उलझन-भरी बाहरी दुनिया अवास्तविक होने लगती है। खासकर शाम को खिड़कियां बंद कर पत्नी अपने आपको सम्राज्ञी ही महसूस करती है। वह दिन के उजाले से भय खाती है। रात की रोशनी के नीचे वह अपने आपको फिर खोज लेती है। वास्तविकता उसके घर के अंदर केंद्रित हो जाती है और बाहरी दुनिया एक प्रकार से उसके लिए समाप्त हो जाती है। रेशमी वस्त्र, मखमली कुर्सियां और चिकने कांच के बर्तन, ये सब किसी-न-किसी रूप से औरत

की कामनाओं को संतुष्ट करते हैं। घर की सारी साज-सज्जा उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। उसी ने इसका चुनाव किया है, बनाया है, खोजा है, तोड़ा-फोड़ा है। यह उसके व्यक्तित्व का सामाजिक प्रमाण-पत्र है, उसकी सच्ची आत्माभिव्यक्ति है। चूंकि वह कर्ता नहीं है, किसी परियोजना में नहीं लगी हुई, अत: बड़े उत्साह से, जो कुछ भी उसके पास है, उसी में मुक्ति खोजने लगती है।

कीर्केगार्द का कहना है कि प्रेम और विवाह में सामंजस्य स्थापित होने पर ही विवाह में सफलता मिलती है। यह सामंजस्य किसी अलौकिक शक्ति के हस्तक्षेप से ही सम्भव है। वे कहते हैं कि प्रेम की भावना स्वतः पैदा होती है जबकि विवाह एक निर्णय होता है। प्रेम की इच्छा विवाह करने की इच्छा का निर्णय हो जाने के बाद होती है। सोचने और निर्णय लेने के साथ कुछ ऐसी रहस्यात्मक घटना घटती है जिसे दैवी संयोग ही कहा जा सकता है। यह पूरी क्रिया एक साथ मानो यह कहने के बराबर है कि प्रेम करना विवाह करना नहीं है। यह भी कहना कठिन है कि प्रेम कर्त्तव्य कैसे बन जाता है। विरोध की यह स्थिति कीर्केगार्द को हताश नहीं करती। वे कहते हैं कि विवाह का निर्णय नैतिक सिद्धांतों पर आधारित एक स्वाभाविक स्थिति है। यह एक धार्मिक विचार है, जो प्रेम की इच्छा जाग्रत करता है और इसे सब संकटों से सुरक्षित रखता है। उनका कहना है कि एक सच्चा पति मिलना एक चमत्कार है। पत्नी में वैचारिक क्षमता कम होती है। वह प्रेम से तुरंत धर्म पर पहुंच जाती है। सीधी-सादी भाषा में कहा जा सकता है कि जब पुरुष में प्रेम की भावना उत्पन्न होती है तब वह विवाह करने का निर्णय करता है और उसे यह निर्णय लेने में ईश्वर के प्रति उसका विश्वास सहायक होता है। यह विश्वास भावनाओं में सामंजस्य स्थापित करके कर्त्तव्य-बोध पैदा करता है- जबकि स्त्री प्रेम की तात्कालिकता से धर्म की तात्कालिकता पर पहुंच जाती है। वह विवाह करना चाहती है। कीर्केगार्द पूर्णतया स्वीकार करते हैं कि विवाह के लिए इच्छा का होना आवश्यक है- और यह भी कम आश्चर्यजनक नहीं है कि यह इच्छा सम्पूर्ण जीवन बनी रहे।

कुछ अन्य कारणों से और भिन्न रूपों में आज के अमरीकन विवाह और सेक्स में सामंजस्य स्थापित करना चाहते हैं। वे विवाह और व्यक्तित्व, दोनों को सम्मान देते हैं । विवाहित जीवन पर ऐसी अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं जिनका उद्देश्य पत्नी और पति को यह बतलाना है कि वे आपस में कैसे एक-दूसरे के अनुकूल बनें और खासकर पति को किस प्रकार पत्नी के साथ सुखमय जीवन बिताना चाहिए। मनोवैज्ञानिक और चिकित्सक विवाह-सम्बंधी मामलों में परामर्श देते हैं। उन लोगों ने आमरूप में यह स्वीकार किया है कि पत्नी को भी काम-आनंद उठाने का अधिकार है और पुरुष को यौन- सम्पर्क का ठीक-ठीक ढंग आना चाहिए। किंतु काम-आनंद केवल एक टेक्नीक ही नहीं है। यदि कोई नवयुवक विवाह-सम्बंधी बीस पुस्तकें भी पढ़ ले तब भी यह निश्चित नहीं है कि वह अपनी

नई पत्नी को प्यार करना सीख ही लेगा। स्त्री की प्रतिक्रिया सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक स्थिति के अनुसार होती है। पारम्परिक शादियां मुश्किल से ही स्त्री में काम-भावना जाग्रत एवं विकसित कर पाती हैं।

मातृ-प्रधान समाज में विवाह के समय कन्या में कौमार्य का होना आवश्यक नहीं था। कुछ रहस्यात्मक कारणों से विवाह के पूर्व ही उसका कौमार्य भंग कर दिया जाता था। आज भी फ्रांस के कुछ गांवों में इस पुरानी प्रथा का प्रचलन । शादी के पूर्व पवित्रता रखना विशेष आवश्यक नहीं होता। वे स्त्रियां भी, जिन्होंने गलत कदम उठाए हैं और विवाह के पूर्व माता बन गई हैं, अन्य कुमारियों की तुलना में ज्यादा सहजता से पति प्राप्त कर सकती हैं। यह भी सत्य है कि स्त्री के प्रति उदार दृष्टिकोण वाले समाजों में लड़कियों को भी लड़कों की तरह सेक्स-सम्बंधी स्वतंत्रता रहती है किंतु पितृ-प्रधान समाज की नैतिकता इस बात पर जोर देती हैं कि विवाह के समय पति को कन्या कौमार्ययुक्त प्राप्त होनी चाहिए। पितृ-सत्तात्मक समाज में कौमार्य का एक नैतिक, धार्मिक और रहस्यात्मक महत्त्व रहा है और आज भी है । फ्रांस में कुछ स्थानों में आज भी शादी की रात वर के मित्र उसके कमरे के दरवाजे के पीछे खड़े रहते हैं। वे हंसते हैं, गाते हैं। इसी बीच खून के धब्बे लगी चादर लेकर पति बाहर आता है और अपनी विजय की सूचना देता है या माता-पिता भी दूसरे दिन पड़ोसियों को वह चादर दिखाते हैं।

इन रीति-रिवाजों के फलस्वरूप एक बृहद अश्लील साहित्य की सृष्टि हुई है। इस तरह के साहित्य में मानव-कामुकता को, जिसे अश्लील समझा जाता सामाजिक उत्सव और जैविक क्रिया के रूप में दिखाया जाता है। मानवीय नैतिकता के अनुसार जीवन के सभी अनुभवों का मानवीय अर्थ है। उन्हें स्वतंत्रता के साथ मिलाया जाना चाहिए। वास्तविक नैतिक काम-सम्बंध में इच्छा और आनंद, दोनों का समावेश होता है। जब कामुकता को व्यक्ति मान्यता नहीं देता, तब ईश्वर और समाज इसे न्यायसंगत ठहरा सकते हैं, ऐसा अनुमान किया जाता है। ऐसी अवस्था में पति और पत्नी का सम्बंध पशु-सम्बंधों से भिन्न और कुछ नहीं होता। सही दिशा में सोचने वाली विवाहिता स्त्री शारीरिक अनुभवों बारे में खीझ भरे शब्दों में ही बोलती है, क्योंकि ऐसी स्त्रियों ने पुरुष को सम्मोहित करने का कार्य किया है। इसीलिए भोजों में लोग अश्लील हास्य करते हैं। पाशविक क्रिया के उद्देश्य से एक महान् उत्सव मनाया जाता है। यह एक विरोधाभासपूर्ण सत्य है। विवाहों का महत्त्व विश्वव्यापी है। एक पुरुष और स्त्री कुछ प्रतीकात्मक संस्कारों के अनुसार सबके सम्मुख एक सूत्र में बद्ध होते हैं किंतु सम्भोग-शय्या पर वे मूर्त रूप में रहते हैं । जब सबकी दृष्टि उनकी ओर से हट जाती है तब वे एक- दूसरे के बाहुपाश में बंधे होते हैं। तेरह वर्ष की आयु में कॉलेट एक किसान के विवाह-उत्सव में । सम्मिलित हुई थीं। जब उनकी सखी ने उन्हें नव-विवाहित दम्पति का शयन-कक्ष दिखाया तब वे परेशान हो गईं। "नव-दम्पति के कमरे

में बिस्तर संकरा और ऊंचा था। उसके चारों ओर झालरें रंगी थीं। बिछौना पंखों से भरा हुआ था और ढेर सारे मुलायम तकिए रखे थे। दिन-भर की थकान के बाद पसीने, पशु और रसोई की गंध से भरे इस विस्तर पर आकर मानो वे दोनों एक दिन का अंत करेंगे। बहुत शीघ्र नव-दम्पति यहां पर आ जाएंगे। मैंने सोचा भी न था। वे लोग इस पंखों से भरे बिछौने पर लेट जाएंगे और एक ऐसे संघर्ष में जुट जाएंगे जिसके बारे में मैंने अपनी माता के स्पष्ट शब्दों द्वारा और खेत-खलिहान में रहकर बहुत कुछ लेकिन बहुत कम सीखा था। इसके बाद क्या होगा? मैं इस कक्ष से भयभीत हो गई। इस बिस्तर के बारे में मैंने कभी कल्पना भी न की थी।"

छोटी बालिका को दुःख होता है जब वह पारिवारिक उत्सव के जाल और परदे पड़े हुए बिस्तर की रहस्यमयी पाशविकता में प्रेम का अर्थ और विरोध समझती है। उन सभ्यताओं में, जिनमें स्त्री को वैयक्तिक सत्ता प्राप्त नहीं हुई है, शादी का यह अश्लील रूप वैसा नहीं दिखता, जैसा पूर्वी देशों और रोम तथा ग्रीक में। पंशुवृत्ति सामान्य रूप में एक सामाजिक संस्कार के रूप में प्रदर्शित होती है किंतु आज पाश्चात्य देशों में स्त्री और पुरुष, दोनों ही व्यक्ति माने जाते हैं। विवाहोत्सव में सम्मिलित सदस्य ठहाके लगाते हैं क्योंकि एक विशेष स्त्री और एक विशेष पुरुष व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त करने जा रहे हैं। वे एक ऐसा कार्य सम्पादित करेंगे जिसके लिए संस्कारों की शालीनता और कब्र की विनष्टता में घोर अंतर है। एक वार गाड़ देने के बाद शव कब्र से नहीं निकलता, किंतु नववधू अत्यंत गहरे पहुंचकर सच्चा और व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त करती है, जिसका आयोजन चर्च के संगीत उत्सवों के साथ होता है।

यह तो केवल प्रहसन में ही दिखाया जाता है कि विवाह-रात्रि में नववधू आंसू बहाती हुई अपनी माता के घर जाने को मचल पड़ती है। मनोवैज्ञानिक पुस्तकें इस प्रकार की कहानियों से भरी पड़ी हैं। मैंने भी ऐसी अनेक घटनाएं सुनी हैं। इन घटनाओं में देखा जाता है कि लड़कियां बड़ी सावधानी से पाली-पोसी और शिक्षित की जाती हैं लेकिन उन्हें काम-सम्बंधी शिक्षा नहीं मिलती। हठात् प्रेम और वासना का ज्ञान उनके लिए असह्य हो जाता है। कुछ लड़कियों को तो यह विश्वास रहता है कि चुम्बन ही मानी पूर्ण सम्भोग और रति की पूर्ण क्रिया है। स्टेकल ने एक ऐसी नववधू के बारे में लिखा है कि 'मधुमास' मनाने अपने पति के साथ जाने पर उसे पति का साधारण व्यवहार पागलों का-सा लगा। एक लड़की एक विकृत रुचि वाले पुरुष से भी विवाह कर सकती है और वर्षों उसके साथ बिना किसी गलतफहमी के रह सकती है

इन सारे अनुभवों के बाद स्त्री यह सोचती है कि "क्या इसे ही विवाह कहते हैं? शायद इसीलिए इसके विस्तृत रूप को गुप्त रखा जाता है।" वधू सोचती है, पर परेशान होकर वह कुछ कहती नहीं। पड़ोसियों को इसके बारे में कुछ पता नहीं चलता । आज बहुत-सी

नवयुवतियों को काफी जानकारी रहती है, किंतु उनकी इच्छा औपचारिक रहती है और आज भी उनका कौमार्य-भंग एक बलात्कार के रूप में ही होता है।

मनोवैज्ञानिक जेनेट ने इस प्रकार की घटनाओं का उल्लेख किया है। एक बार क्रोधित पुत्री के पिता ने तलाक की बातें आगे बढ़ने पर मेडिकल परीक्षा की मांग की। अभागे दामाद ने बताया कि उसमें विवाह से पूर्व शक्ति थी। उन पुरुषों के प्रति स्त्रियों को हमेशा के लिए शिकायत रहती है जो प्रथम रात्रि में कौमार्य-भंग करने में असमर्थ सिद्ध होते हैं या फिर चेष्टा ही नहीं करते।

विवाह की रात्रि ऐसी परीक्षा में परिणत हो जाती है जिससे उभय पक्ष को भय लगता है। दोनों ही अपनी-अपनी समस्याओं से घिरे रहने के कारण एक-दूसरे के बारे में उदारता के साथ सोच ही नहीं सकते। इसीलिए इस मौके को बड़ी गम्भीरता दी गई है। इस रात्रि की असफलता से स्त्री आजीवन निरुत्साह और ठंडी पड़ जाती है। पति के सम्मुख यह कठिन समस्या रहती है। अरस्तु के शब्दों में, "यदि पति कामोत्तेजित होकर पत्नी को बहुत ज्यादा छेड़ता है या गुदगुदी मचाता है, तो वह क्रुद्ध हो जाती है और बुरा मान जाती है।" अमरीकन पतियों को यह भय बहुत अधिक रहता है। खासकर जब कि पति-पत्नी कॉलेज की शिक्षा प्राप्त किए हों क्योंकि ये विवाह के पूर्व बड़े संयम से रहते हैं। ऐसा किंग्से रिपोर्ट से ज्ञात होता है। इस प्रकार की स्त्रियों में बहुत सम्मान करने वाला पति कामुकता के भाव जाग्रत नहीं कर सकता। इस परिस्थिति की सृष्टि स्त्री के अस्पष्ट रुख से ही होती है। युवती काम की इच्छा और काम-आनंद के लिए अपनी अस्वीकृति, दोनों साथ-साथ व्यक्त करती है। वह जो संयम चाहती है, उसके ही कारण उसे कष्ट होता है। विरले ही ऐसे युवक पति होंगे जो अति कामुक और घपलेबाज न हों। इसीलिए पत्नी को दाम्पत्य कर्तव्य बड़ा नीरस और अरुचिकर लगता है।

कुछ घटनाओं में देखा गया है कि चिकित्सक के परामर्श से या किसी और बहाने से वे इस अप्रतिष्ठित कर्त्तव्य से भागती हैं। किंग्से ने बताया है कि अनेक पत्नियों ने यह बयान दिया कि उनके पति बार-बार और बहुत कम दिन के अंतर में सम्भोग चाहते हैं । स्त्री की काम-क्षमता असीमित रहती । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि काम-क्रीड़ा को नियमित करने की चेष्टा की जाए तो कामुकता घटती जाती है।

सगाई का समय वह समय है जिसमें लड़की को धीरे-धीरे काम की ओर प्रवृत्त किया जा सकता है किंतु रीति-रिवाजों ने दोनों पक्षों पर काफी बंधन लगा दिए हैं। सगाई होने के बाद जब कुंवारी कन्या अपने भावी पति को जान जाती है तब उसकी स्थिति बहुत-कुछ नव-यौवना विवाहित वधू को तरह रहती है। वह इसलिए समर्पण करती है कि उसे सगाई उतनी ही निश्चित मालूम पड़ती है जितनी कि शादी। प्रथम सम्भोग तो उसके लिए परीक्षा ही बना रहता है। एक बार समर्पण कर देने पर गर्भधारण न करने के बावजूद उसके लिए अपना

निर्णय बदलना सम्भव नहीं रह जाता। दोनों पक्षों की सहमति और इच्छा रहने पर प्रथम सम्भोग की परेशानियां बहुत जल्द समाप्त हो जाती हैं। दोनों के द्वारा खुशी-खुशी एक-दूसरे की स्वतंत्रता स्वीकार कर लेने से उनकी शारीरिक इच्छा को शक्ति और मर्यादा मिलती है । इस परिस्थिति में उनकी कोई भी क्रिया किसी के लिए लज्जाजनक नहीं रहती क्योंकि समर्पण का प्रश्न ही नहीं रहता। यहां तो सब कुछ स्वेच्छा और उदार हृदय से होता है । विवाह अश्लील केवल इस रूप में है कि यह स्वाभाविक इच्छा पर आधारित आपसी सम्बंधों को अधिकार और कर्त्तव्य में बदल देता है। विवाह मानो यांत्रिक या अपमानजनक रूप देकर दो शरीरों को व्यक्ति- रूप नहीं बल्कि साधारण शरीर-रूप मानने को बाध्य कर देता है। पति का भी उत्साह बहुधा यह सोचकर ठंडा पड़ जाता है कि वह एक कर्त्तव्य पूरा कर रहा है। पत्नी को ऐसा महसूस होता है कि उसे किसी को सौंप दिया गया है और वह उस पर अपना अधिकार जमा रहा है । सेक्स में रुचि प्रथम रात्रि से ही एक शारीरिक आकर्षण बन जाती है। विवाह द्वारा स्त्री में समर्पण भाव आ जाता है और उसके हृदय में स्थित पाप का भय भी दूर हो जाता है। बार-बार और नियमित सम्भोग से दोनों में शारीरिक घनिष्ठता बढ़ जाती है। इस प्रकार काम-सम्बंध प्रौढ़ हो जाते हैं। इसीलिए, कुछ स्त्रियों को विवाह के प्रारम्भिक वर्षों से पूर्ण संतोष और तृप्ति रहती है। वे पति के प्रति कृतज्ञता का अनुभव करती हैं. और इसलिए आगे चलकर पति के दोषों को भी क्षम्य समझती हैं। स्टेकल का कहना है कि जो स्त्रियां अपने को दु:खी विवाह के बंधन से मुक्त नहीं कर सकतीं, वे प्रायः वैसी स्त्रियां हैं, जिन्हें अपने पति से पूरी तरह काम-तुष्टि मिलती है। सतही रूप से लोग समझते हैं कि वे असंतुष्ट हैं। वास्तव में लड़की एक बहुत बड़ा खतरा उठाती है जब वह सारा जीवन एक अपरिचित के साथ बिताने के लिए प्रस्तुत हो जाती है। वह उसके साथ सोती है। वह उससे बिल्कुल अपरिचित रहती है। वह उसके काम-स्वभाव को नहीं जानती। उसका काम-जीवन उसके साथी के व्यक्तित्व पर पूर्ण रूप से निर्भर रहता है।

यह सोचना भ्रामक है कि सुविधा के आधार पर सम्पादित विवाह में प्रेम का सृजन होता है। यह बड़ा ही बेतुका अनुमान है कि जो बंधन व्यावहारिक, सामाजिक और नैतिक सुविधा के अनुसार बंधा है, उसमें दम्पति को सम्पूर्ण जीवन काम-संतुष्टि मिलती रहेगी। उन विवाहों के सम्पर्क, जो विवेकपूर्ण सोच-विचार कर होते आवश्यक नहीं कि सदा सुखद ही सिद्ध हों। सर्वप्रथम कन्या जिस आदर्श प्रेम की कल्पना करती है, वह उसे वासना से लिप्त प्रेम की ओर आकर्षित नहीं होने देता। उसका पवित्र प्रेम, दिवा-स्वप्न और उसकी इच्छाएं, जो बहुत हद तक लड़कपन और किशोर अवस्था की इच्छाओं के सदृश होती हैं, उसे उस यथार्थ जीवन की परीक्षा में सफल नहीं होने देते और न यह प्रेम दीर्घकालीन होता है। यदि लड़की के मन में अपने प्रेमी के प्रति गम्भीर और हार्दिक स्नेह हो, तब भी यह जीवन-भर टिकने वाला स्थायी प्रेम नहीं होता। इसकी आधारशिला पर विवाह रूपी स्थायी इमारत का निर्माण नहीं हो सकता।

विवाह के पूर्व या फिर मधुमास काल में जाग्रत काम-वासना के दीर्घ काल तक स्थायी बने रहने की सम्भावना कम ही रहती है। दम्पति नहीं चाहते कि उनके दैहिक अनुभव किसी अन्य के साथ हों। वे चाहते हैं कि वे एक-दूसरे के लिए अनिवार्य हों। वफादारी तभी अर्थपूर्ण होती है जब वह स्वतः उत्पन्न हो। आश्चर्य की बात यह है कि यह काम-भावना कुछ क्षणों के लिए प्रत्येक प्रेमी के हृदय में जगती है। उस प्रेमी का, जिसका अस्तित्व अनुभवातीतता की ओर अग्रसर होता है, दूसरे के वश में आना असम्भव है, किंतु उसके साथ सम्पर्क विशेष आनंददायक होता है । यह काम-भावना उस दम्पति के जीवन में भी समाप्त हो जाती है जो सहज मित्रता के वातावरण में किसी एक सम्मिलित परियोजन में सर्वोपरि रूप में सम्मिलित होते हैं, एकाकार होते हैं। वे अनुभवातीतता की ओर अग्रसर हो जाते हैं। उन्हें दैहिक मिलन की आवश्यकता नहीं रह जाती। उनके लिए बहुधा यह मिलन अरुचिकर और अर्थहीन हो जाता है।

मांटेग्यू के इंसेस्ट शब्द का प्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण है। कामुकता वह गतिशीलता है जो अन्य की ओर अग्रसर होती है। यह इसकी मुख्य विशेषता है। किंतु गहरा सम्बंध और अधिक सान्निध्य पति और पत्नी को एक-दूसरे के लिए एकरूप बना देते हैं। उनके बीच अन्य कोई आदान-प्रदान सम्भव नहीं रहता। प्रेम में न कुछ खोना होता है और न किसी को विजित करना होता है। यदि वे प्रेम करना जारी रखते हैं तो महज एक आदतवश। उनमें वह अंतर्वैयक्तिक सम्बंध नहीं रहता जिसमें दोनों अपने से परे हो जाते हैं। यह एक प्रकार का सह-मैथुन है। वे एक-दूसरे को एक-दूसरे के लिए आवश्यक पात्र मानते हैं। ईर्ष्यालु स्त्री पुरुष को एक वस्तुमात्र मानती है जो उसे आनंद प्रदान करता है, जिस पर उसका अधिकार है। वह उसे आलमारी की चीजों की तरह बड़ी कंजूसी से रखती है। वह पति का जांघिया उठाकर देखती है कि कहीं उसमें वीर्य-पतन के धब्बे तो नहीं लगे हैं। पति पत्नी के साथ अपनी इच्छा पूर्ण कर लेता है। वह यह भी जानने की आवश्यकता नहीं समझता कि पत्नी को संतुष्टि मिली या नहीं।

पाशविक रूप में किसी आवश्यकता को तृप्त कर लेना मानव-कामुकता को तृप्त करने के समान नहीं है। इसीलिए वैध आलिंगन से निकलकर भी युग्म-प्रेमी तीखे और कटु स्वाद का अनुभव करते हैं। इसका पिछला स्वाद बुरा होता है। कभी-कभी पत्नी काम-कल्पना की सहायता लेती हैं। स्टेकल ने एक पचीस वर्षीया युवती के बारे में लिखा है कि पति के साथ सम्भोग करते समय उसे थोड़ी-सी कामोत्तेजना होती थी। वह कल्पना करती थी कि एक शक्तिशाली वयप्राप्त व्यक्ति ने बलपूर्वक उसे अपने आधिपत्य में ले लिया है। पत्नी ऐसी कल्पना करती थी कि मानो उसके साथ बलात्कार हो रहा हो। बलात्कार करने वाला उसका पति नहीं, बल्कि अन्य है। पति भी एक ऐसे स्वप्न का आनंद लेता है। अपनी पत्नी के रूप में मानो वह किसी नर्तकी के पांव पकड़ रहा है जिसे कि उसने रंगमंच पर देखा था;

किसी लड़की के वक्षस्थल पर हाथ फेर रहा है, जिसकी कि उसने तस्वीर देखी है। एक स्मृति, एक प्रतिमा! और वह ऐसा भी सोच सकता है कि उसकी पत्नी ही उसके बाहुपाश में है, जिसकी उसने इच्छा की थी, जिस पर उसने अधिकार जमाया था और जिसके कौमार्य को उसने भंग किया था। यह उसकी खोई हुई अन्यता को प्राप्त करने का साधन है। स्टेकल का कहना है कि शादी काल्पनिक हास्य-प्रधान नाटक की भूमिका होती है, जिसमें पति और पत्नी दो . पात्र होते हैं। पति अपनी पत्नी को अपने प्रेमी के साथ सम्भोग करते देखता है या इसके बारे में जानता है। वह पुराने सम्मोहित करने वाले जादू का अनुभव करता है, या फिर वह परपीड़न द्वारा अपनी पत्नी को अफसोस करने के लिए बाध्य करता है। अंत में वह उसकी चेतना के प्रति सतर्क हो जाता है। वह उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को ज्ञात कर लेता है और अनुभव करता है कि वह एक मनुष्य के जीवन पर आधिपत्य जमाए रखता है। परपीड़क कामुकता के भाव में भी जाग्रत हो सकते हैं। वह पति में अधिपति और अत्याचारी के भाव जाग्रत कर सकती है, जबकि वास्तव में वह ऐसा नहीं है। मैं एक शिक्षित स्त्री के बारे में जानती हूं-वह बड़ी पवित्रात्मा थी। दिन में उसमें सत्ता और आधिपत्य के भाव रहते थे, पर वह रात्रि में अपने पति से अनुरोध करती थी कि वह उसे चाबुक से मारे। उसके इस अनुरोध से पति भयभीत हो जाता था, पर वह पत्नी को इच्छा पूरी करता था। कभी-कभी किसी विवाह में पूर्व योजना के अनुसार घटित कोई बुराई निरुत्साही और मलिन रूप धारण करके विवाह को अंत में निराशा का रूप दे देती है।

सत्य तो यह है कि शारीरिक प्रेम को न तो लक्ष्य माना जा सकता है और न लक्ष्य-प्राप्ति का साधन। यह अस्तित्व को प्रमाणित नहीं कर सकता और न इसे बाह्य रूप में प्रमाणित किया जा सकता है।

किसी भी जीवन में काम-बंधनों की भूमिका स्वतंत्र और प्रासंगिक होती है लेकिन इन्हें स्वतः स्फूर्त होना चाहिए, थोपा हुआ या सायास नहीं । इस प्रकार की मध्यवर्गीय आशावादिता भी वागदत्ता कन्या को एक प्रेमी नहीं प्रदान करती। वास्तविक प्रेमी तो सुख का उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत करता है, जिसका वास्तविक अर्थ होता है, अंतस्थित जीवन में शांत संतुलन। सुरक्षा और सम्पन्नता के दिनों में मध्यवर्ग का यही आदर्श रहता है और खासकर भूमिपतियों का । उनका उद्देश्य भविष्य पर विजय प्राप्त कर लेना या विश्व पर विजय प्राप्त कर लेना नहीं होता था बल्कि शांतिपूर्वक अतीत को संजोए रखना तथा नई स्थिति को बनाए रखना होता था। सुख से उनका तात्पर्य उस सुनहली सामान्यता से है जिसमें आकांक्षा और भावना की तीव्रता का अभाव है। एपिक्यूरस और जेनो द्वारा प्रेरित मिथ्या और बुद्धिवादिता को आज कोई मान्यता नहीं देता। दुनिया जिस रूप में है, उस रूप में उसे संजोए और बनाए रखना न तो सम्भव है और न वांछित । पुरुष से आशा की जाती है कि वह उत्पादन करे, संघर्ष करे, सृजन करे, और अंतर्व्यापिता से ऊपर उठने की चेष्टा

करे तथा असीमित भविष्य की ओर अग्रसर हो, किंतु. परम्परागत विवाह के अनुसार स्त्री उसके साथ अनुभवातीतता की ओर उठ नहीं सकती। अंतापिता का यह रूप उसे अपने ही क्षेत्र तक सीमित रखता है। इस प्रकार वह कुछ करना नहीं चाहती। वह केवल स्थिर संतुलन के जीवन की सृष्टि करना चाहती है, जिसमें वर्तमान अतीत के जीवन के सिलसिले को बनाए रखता है। वह आने वाले कल के खतरों से दूर रहना चाहती है और उसी प्रकार ठोस ढंग से सुखी जीवन का निर्माण करती है। प्रेम के स्थान पर वह अति मृदु और सम्माननीय भावना, जिसे 'प्रणय-प्रेम' कहते हैं, सीखती है। पत्नी को पति के घर की चहारदीवारी के बीच सारी व्यवस्था करनी पड़ती है। वह अपने विश्व को संकुचित कर लेती है। आने वाले समय के माध्यम से वह मानव- जाति के अस्तित्व को जारी रखती है।

कोई भी व्यक्ति अपने अस्तित्व में ही सीमित नहीं रह सकता। प्राचीन काल का मध्यवर्ग सोचता था कि पुरानी व्यवस्था को सुरक्षित रखकर वह अपनी सम्पन्नता और उसकी अच्छाइयों के माध्यम से ईश्वर, देश, राज्य, सभ्यता और संस्कृति की सेवा कर रहा है। वह अपने मानवीय कर्तव्यों को पूरा कर सुखी हो सकता है। स्त्री को भी उन उद्देश्यों को लक्ष्य में रखना है जो घर के शांतिपूर्ण अंतर्व्यापी जीवन से परे हैं। यहां पर पुरुष अपनी पत्नी और विश्व के बीच व्यक्ति रूप में मध्यस्थ का कार्य करता है। वह एक असार और आकस्मिक जीवन को मानवीय अर्थवत्ता प्रदान करता है। पत्नी के साथ रहकर पुरुष शक्ति प्राप्त करता है जिससे वह कार्य कर सके, संघर्ष कर सके, योजनाएं बना सके। स्त्री के अस्तित्व को पुरुष ही न्यायसंगत सिद्ध करता है, अर्थवान् बनाता है। स्त्री को अपना अस्तित्व पुरुष को सौंप देना पड़ता है। इसका तात्पर्य है कि स्त्री को विनम्रतापूर्वक अपने विश्व का परित्याग करना पड़ता है, और इस त्याग के बदले उसे प्राप्त होता है पुरुष का संरक्षण। एक बार वह पुनः मुख्य बनकर अपने गृह की रानी के रूप में अपने पारिवारिक क्षेत्र में शांतिपूर्वक रहती है। पुरुष उसे असीमित काल और स्थान में ले जाता है। पत्नी, माता और स्वामिनी हर रूप में स्त्री विवाह के द्वारा जीवन की शक्ति पाती है और अपने जीवन का अर्थ समझती है। अब यह देखना है कि वास्तव में यह आदर्श कितनी दूर तक फलीभूत होता है ? घर में सुख के आदर्श का रूप हमेशा भौतिक रहा है। चाहे वह घर कुटिया हो या महल। यह घर विश्व से पृथक एक स्थायित्व का प्रतीक होता है। यह दीवारों के मध्य परिवार को एक पृथक इकाई के समूह या कोशिका के रूप में स्थित रहता है। उन पीढ़ियों द्वारा, जो आती और जाती हैं, परिवार अपनी पहचान बनाए रखता है। घर के फर्नीचर और पूर्वजों के चित्रों के रूप में अतीत सुरक्षित और संजोया रहता है। घर एक सुरक्षित भविष्य का भरोसा देता है। बगीचे में खाने योग्य तरकारी और सब्जियां उत्पन्न होकर ऋतु-परिवर्तन की सूचना देती हैं। हर साल बसंत उन्हीं फूलों सहित आता है और पुनः ग्रीष्म और पतझड़ के आने की सूचना देता है। हर वर्ष वही फल इन ऋतुओं में आएंगे, भिन्नता नहीं होगी। समय और स्थान भी अपनी स्थिति में रहते हैं। प्रत्येक सभ्यता में भूमि-

सम्पत्ति पर आधारित ऐसां विपुल साहित्य है, जिसमें घर की शोभा का काव्य है। साहित्य में अतीत के प्रति श्रद्धा, धैर्य, अर्थ, दूरदर्शिता, पारिवारिक प्रेम और स्वदेश प्रेम आदि वर्ण्य विषय रहे हैं। यह प्रायः देखा गया है कि गृह की कवियित्री स्त्रियां रही हैं क्योंकि यह स्त्री का कार्य है कि वह घर के सुख को बनाए रखे। रोमन साम्राज्य के प्रांगण में घर की स्त्री विराजित होती थी।

आज के घर ने पितृ-प्रधान परिवार का गौरव खो दिया है। अधिकांश व्यक्तियों के लिए अब यह केवल रहने का एक स्थान है, जहां न तो विगत पीढ़ियों की स्मृति सुरक्षित है, न ही आने वाली पीढ़ियों का भविष्य, किंतु स्त्री का सर्वस्व घर की प्राचीन गरिमा कायम रखने के लिए ही अर्पित है। कैनरी में स्टाइनबैक ने लिखा है कि एक घरविहीन स्त्री अपने वास-स्थान इंजिन-बायलर को पुराने गलीचों और परदों से सजाने के लिए व्याकुल थी। उसके पति ने बड़ी आपत्ति की और कहा कि जब निवास-स्थान में खिड़की ही नहीं है तो परदों का क्या होगा? यह स्थिति विशेषकर स्त्रियों की ही होती है। एक सामान्य व्यक्ति अपने चारों ओर की वस्तुओं को उपकरण के रूप में देखता है। वह उन्हें उद्देश्यानुसार व्यवस्थित करता है। पुरुष अपनी सिगरेट, कागज और यंत्र आदि ऐसे स्थान पर रखता है-जहां से उसे सहज प्राप्त हो जाएं, लेकिन स्त्री को हमेशा वहां अव्यवस्था नजर आती है। वह कलाकार की तरह अपनी सामग्रियों द्वारा विश्व का पुनर्सजन करती है, लेकिन चित्रकार और शिल्पकार तो अपने वातावरण के प्रति बड़े लापरवाह होते हैं।

रोडिन के बारे में रिल्के ने लिखा है, "जब मैं पहली बार रोडिन के पास आई तो मुझे पता लगा कि उसका घर उसके लिए कोई महत्त्व नहीं रखता था। घर उसके लिए एक छोटी-सी आवश्यकता है- पानी से बचने और सोने के लिए। वह सिर के ऊपर मानो एक छत-भर है। उसे उसकी कोई चिंता न थी और उसके एकाकीपन और विश्राम पर घर का कोई प्रभाव न था। अपनी गहराई में वह घर के अंधकार, आश्रम और शांति को वहन करता है। वह अपने ऊपर का आकाश स्वयं बन जाता है। "

अपने अंदर ही एक घर-आंगन की सृष्टि के लिए हर व्यक्ति को अपने कामों से आत्म-ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। पुरुष अपने चारों ओर के वातावरण में बहुत कम रुचि लेता है क्योंकि अपनी योजनाओं में ही वह आत्माभिव्यक्ति करता है, जबकि स्त्री अपने प्रणय-क्षेत्र तक ही सीमित रहती है। यह उसका कर्तव्य है कि वह कैदखाने को एक राज्य में परिणत करे। घर के प्रति उसका रुख उसी विवेक द्वारा निर्देशित होता है जो उसकी आम-स्थिति को व्यक्त करता है। स्त्री स्वतंत्रता को त्यागकर स्वतंत्रता प्राप्त करती है। उसका उद्देश्य संसार को त्यागकर संसार पर विजय प्राप्त करना होता है।

वह कुछ दुःख के साथ ही अपने नए घर के दरवाजे बंद कर लेती है। बचपन में सारा गांव उसका घर था। वन-उपवन उसके अपने थे। अब वह एक सीमित स्थान में कैद हो गई

है। प्रकृति उसके लिए संकुचित होकर एक छोटे से गमले में रंग-बिरंगे पौधों का रूप हो जाती है। दीवारें उसे क्षितिज से दूर कर देती हैं किंतु वह इन सीमाओं पर विजय प्राप्त करना चाहती है। कुछ कीमती और साधारण वस्तुओं सहित वह अपनी चहारदीवारी के भीतर ही संसार के प्राकृतिक सौंदर्य की सृष्टि कर लेती है। जंगल का आकर्षण उसके घर में है। उसका एक सुंदर अतीत है।

स्त्री के लिए घर विश्व का केंद्र भी होता है और यथार्थ भी। एक प्रकार से विश्व का प्रतिरूप या विश्व का विपरीत रूप यह आश्रम है, यह कंदरा है, यह गर्भ है, जो बाहरी संकटों के विरुद्ध आश्रय देता है। दुविधाओं से भरा बाहरी संसार उसे असार और असत्य प्रतीत होता है। विशेषकर शाम को खिड़कियों के पल्ले बंद करके पत्नी अपने को रानी जैसा अनुभव करती है। दोपहर के समय बाहरी रोशनी उसे परेशान करती है। वह सूर्य, जो सबके लिए चमकता है, उसे परेशानी का अनुभव कराता है। रात्रि के समय वह अधिकार और सत्ता से शून्य नहीं होती, क्योंकि वह उन सभी वस्तुओं को त्याग देती है जो उसकी नहीं हैं। लैम्प-शेड के नीचे का प्रकाश उसे अपना प्रतीत होता है क्योंकि वह केवल उसके वास-स्थान को प्रकाशित करता है। इसके अलावा और कुछ का अस्तित्व उसे दिखाई नहीं देता। सारा यथार्थ मानो घर के अंदर केंद्रित और संग्रहीत हो जाता है-बाह्य संसार मानो उसके लिए ढहने लगता है।

वह अपने को चारों ओर से मखमल, सिल्क और चीनी-मिट्टी की वस्तुओं से घेर लेती है-कुछ अंश तक स्त्री इन चीजों के स्पर्श से इंद्रिय सुख प्राप्त कर लेती है क्योंकि उसके काम-जीवन को मुश्किल से तृप्ति मिलती है। यह सजावट उसके व्यक्तित्व को व्यक्त करती है। स्त्री की वस्तुओं के द्वारा उसके जीवन के स्तर को समझा जा सकता है। उसका घर मानो उसका सांसारिक भाग्य है। वह उसकी सामाजिक मान्यता का रूप है क्योंकि वह वास्तव में कुछ नहीं करती। उसके पास जो कुछ भौतिक चीजें हैं उन्हीं के माध्यम से वह आत्म-बोध की चेष्टा करती है। जहां तक घरेलू कार्यों का प्रश्न है, नौकरों की सहायता से या स्वयं ही घर को सच्चे रूप में वह अपना बनाती है। वह अपने कार्यकलाप निश्चित कर लेती है। उसकी क्रियाएं संतोषपूर्ण ढंग से भौतिक वस्तुओं से सम्बंधित रहती हैं। वह स्टोव को चमकाकर रखती हैं, कपड़ों को साफ-सुथरा और सुंदर रखती है, फर्नीचर पर अच्छी पालिश करवाती है और उनकी देखभाल करती है, पीतल और तांबे की वस्तुओं को चमचमाती है, फिर भी वह अपनी सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर सकती। स्त्री के अनेक प्रयत्नों के बावजूद झोंपड़ी झोंपड़ी ही रहेगी। संसार की कोई शक्ति उसे सुंदर नहीं बना सकती । अरबों स्त्रियों ने निरंतर संघर्ष किया है किंतु गंदगी और धूल पर उन्हें विजय नहीं मिली। स्त्री के लिए गृह-कार्य सिसिफस का प्रयास बनकर रह जाता है। सफाई की हुई जगह फिर गंदी हो जाती है। सफाई का क्रम चलता रहता है। घरेलू सामानों की देखरेख

करते-करते गृह-स्वामिनी थक जाती है। वह कुछ सृजन नहीं करती, केवल वर्तमान को बनाए रखती है। किसी मूर्त अच्छाई पर वह कभी विजय का अनुभव नहीं करती, लेकिन वह अथक रूप से अमूर्त बुराई के विरुद्ध संघर्ष करती रहती है। एक युवती छात्रा ने अपने लेख में लिखा, "मैं कभी किसी दिन सफाई नहीं करती रहूंगी'; वह सोचा करती थी कि उसने मां को प्लेट धोते देखा तो उसे लगा कि वे दोनों किसी संस्कार द्वारा ये सब कार्य करने को बाध्य हैं और उन्हें मृत्युपर्यंत यह काम करते रहना पड़ेगा। खाना, सोना और सफाई करना, यही मानो उसका जीवन है। आने वाला समय उसे सर्वोपरिता की ओर नहीं ले जाएगा। समय सामने मुंह खोले फैला हुआ है। धूमिल और एकरस। धूल और गर्द के विरुद्ध संघर्ष में उसे कभी विजय प्राप्त नहीं होगी। कपड़े धोना, उन पर आयरन करना, कपड़े की आलमारी की सफाई करना, सभी काम मानो स्त्री के स्वतंत्र जीवन की अस्वीकृति हैं। समय विनाश और सृजन का कार्य साथ-साथ करता है, किंतु घरेलू पत्नी केवल इसके नकारात्मक रूप से परिचित रहती है। दार्शनिक दृष्टिकोण से मानीवादियों की यही स्थिति है। मानीवादी बुराई का विनाश कर अच्छाई को ग्रहण करना चाहते हैं। यह अच्छाई केवल अच्छे कार्यों द्वारा नहीं प्राप्त होती। ईसाई धर्म में मानीवाद का अस्तित्व नहीं है यद्यपि क्रिश्चियन मत के अनुसार शैतान का अस्तित्व है। ईश्वर के प्रति अपने को अर्पित करके व्यक्ति मानो शैतान से अच्छी तरह संघर्ष करता है, किंतु वह प्रत्यक्ष रूप से बुराई पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करता। स्त्री से यह आशा नहीं की जाती कि वह सुंदर विश्व की सृष्टि करे। उसका क्षेत्र निर्धारित है और उसे बुराई के विरुद्ध निरंतर संघर्ष करना है। वह धूल, दाग, धब्बे और कीचड़ के विरुद्ध संघर्ष करती हुई मानो शैतान के साथ जूझ रही होती है। यह दुर्भाग्य का विषय है कि रचनात्मक लक्ष्य की ओर बढ़ना छोड़कर केवल किसी शत्रु को पीछे ठेलने का प्रयास करता रहा जाए। घरेलू पत्नी मानो उन्मत्त होकर ऐसे ही शत्रु के पीछे लग जाती है। उसकी मानसिक अवस्था विकृत हो जाती । उसका रूप परपीड़न कामुकता का हो जाता है। सनकी और उन्मत्त पत्नी क्रुद्ध होकर गंदगी से संघर्ष करती है। वह जीवन को दोष देती है क्योंकि जीवन मात्र गंदगी को बढ़ाता और जन्म देता है। उसके घर में जब कोई भी प्राणी प्रवेश करता है तो मानो उसकी आंखों में एक खीझ-भरी चमक आ जाती है। मानो वह कहती है, "अपने पांवों को पोंछो। जमीन के दो हिस्से मत करो, साफ और गंदा। इसे ऐसा ही साफ रहने दो।" वह गंदगी के प्रति इतनी सख्त निगरानी रखती है कि कभी- कभी वह जीवन का सहज आनंद भी खो देती है। वह अति सतर्क और लोभी बन जाती है। वह सूर्य की रोशनी को प्रवेश नहीं करने देती क्योंकि उसके साथ कीड़े-मकोड़े और धूल-गंदगी का प्रवेश होता है और सूर्य की रोशनी सिल्क के परदे व सोफा-कवर' के रंगों को नष्ट कर देती है। वह नैपथिलीन की गोलियां डालती है जिनकी गंध हवा में फैल जाती है । वह मानो हर जीव के प्रति कटु, अरुचिकर और शत्रु-रूप बन जाती है। कभी-कभी इसका अंत बड़ा त्रासद होता है। स्वस्थ युवती कभी शायद ही धूल और गंदगी

के पति इतनी आक्रामक हो। परेशानी और घृणा उन स्त्रियों को होती है. जो निरुत्साही एवं निराश हों, वृद्धा या छली गई हों। अत्याचारी पति उनके अस्तित्व को एकाकी और शून्य बना देते हैं। मैं एक वृद्धा को जानती हूं। वह किसी समय बड़ी प्रसन्न और रसिक स्वभाव की थी। उसने एक ऐसे व्यक्ति से शादी की जो उसकी अवहेलना करता था और जिसने एकांत स्थान पर उसके शिशु को छोड़ दिया। उस स्त्री ने घर सजाने का काम शराब के नशे की तरह अपना लिया। इस पागलपन में उसका घर इतना साफ-सुथरा हो गया कि उसमें रहने का साहस कोई मुश्किल से करता। वह औरत इतनी व्यस्त हो गई कि वह अपना अस्तित्व ही भूल गई। घर में सतर्कता से करने के लिए असंख्य कार्य रहते हैं। फलस्वरूप औरत शायद अपने को भी भूल जाती है। अपने चारों ओर की वस्तुओं से संघर्ष का कारण एक अतृप्त काम-वासना भी होती है। यह विशेष शोचनीय विषय है कि हॉलैंड में, जहां सफाई की धुन ज्यादा है, वहां की स्त्रियां प्रायः ठंडी और निरुत्साही होती हैं। भूमध्यसागरीय प्रदेशों में स्त्री गंदगी के बीच भी आनंदपूर्वक रहती है। इसका कारण यह नहीं है कि वहां पानी का अभाव है, बल्कि शारीरिक सुख और पाशविक-वृत्ति के लिए मानव-शरीर की गंध, धूल और महान् गंदगी भी सहन करनी पड़ती है। रसोई बनाना सफाई करने से अधिक रचनात्मक और रुचिकर कार्य है। प्रथम तो इस उद्देश्य से बाजार जाना पड़ता है, जहां दिन का प्रकाश दिखाई देता है। दरवाजे की सीढ़ियों पर बैठकर तरकारी छीलने और गप्पे लड़ाने से एकांत से मुक्ति मिलती है। बंद कमरों में रहने वाली मुसलमान औरतों के लिए पानी लेने जाना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। दूकानों और बाजारों में स्त्रियां घरेलू मामलों पर बातें करती हैं। उन सबकी रुचि प्रायः एक- सी होती है। वे अपने को एक ऐसे समूह का सदस्य समझती हैं जो पुरुषों के समूह से भिन्न होता है। यह मानो गौण और मुख्य के बीच की भिन्नता है। कुछ खरीदने में अतिशय आनंद होता है। यह एक तरह का आविष्कार होता है। गृहस्वामिनी को खेल में विजय प्राप्त करना शायद मुश्किल से आता है पर एक कढ़ा हुआ पत्ता, गोभी, एक मुलायम पनीर का टुकड़ा मानो उसकी सम्पत्ति होते हैं। उसे इस सम्पत्ति को अनिच्छुक दुकानदार से खरीदना ही है। यहां पर खेल तो यह है कि कम-से-कम पैसों में अच्छी-से-अच्छी चीज प्राप्त हो। यहां मितव्ययिता का अर्थ जितना बजट से सम्बंधित नहीं है, उतना सौदे को सस्ते में जीत पाने से है। घरेलू पत्नी जब अपना भंडार भरा हुआ देखती है, तब उसे अपनी जीत पर गर्व होता है। गैस और बिजली ने अग्नि के जादू को नष्ट कर दिया है पर ग्रामीण अंचलों में आज भी अनेक स्त्रियां लकड़ियों से ही आग प्रज्वलित करती हैं। इस प्रकार अग्नि प्रज्वलित कर वे जादूगरनी का कार्य करती हैं।

चीजों को सुरक्षित रखना और उन्हें नष्ट न कर देना मानो उनके लिए काव्यमय होता है। चीनी की चाशनी में पकी चीजें कितने दिन टिकेंगी, यह वे जानती हैं। उन्हें पात्र में बंद रखकर मानो वे जीवन के किसी रहस्य का उद्घाटन और सृजन करती हैं। यदि कोई स्त्री

सफलतापूर्वक केक और पेस्ट्री बना लेती है तो उसे खुशी होती है। यह रसोई-कला स्त्रियों के लिए एक तरह का वरदान है।

छोटी लड़की को अपने से बड़ों की नकल करने में आनंद आता है। वह मिट्टी के मटर और अन्य चीजें बनाती है। वह रसोई में जाकर आटे की लोई बनाती है किंतु अन्य कार्यों की तरह बार- बार एक ही क्रिया करने से उसका आनंद और उत्साह नष्ट हो जाता है। मैक्सिको में रहने वाली भारतीय स्त्री को चूल्हा अपनी ओर आकर्षित नहीं करता। उसने अपना आधा जीवन गोल रोटी बनाने में व्यतीत कर दिया। यह प्रायः असम्भव है कि रोज ही कोई सम्पत्ति ढूंढ़ने की इच्छा से बाजार जाए या किसी भी खूब सुंदर पालिश की हुई तल को सौंदर्य की दृष्टि से देखे। पुरुष और स्त्री रचनाकार, जिन्होंने ऐसी विजय का उल्लासपूर्वक काव्यमय वर्णन किया है, शायद ही कभी गृह कार्य करते हों। यदि उसे जीवन-चरित मानकर चलें तो यह सिलसिला थकान उत्पन्न करने वाला और नीरस है किंतु जो व्यक्ति इन कार्यों को करता है, वह एक उत्पादक है, सृजनकर्ता है। जिस प्रकार जैविक कार्य जीवन के साथ एकाकार हैं, उसी प्रकार गृहकार्य भी स्त्री के जीवन के साथ स्वाभाविक रूप से मिले हुए हैं। पुरुषों के लिए ये क्षण नकारात्मक और महत्त्वहीन होते हैं । इनसे वे शीघ्र भागना चाहते हैं। पत्नी को नौकरानी की तरह कार्य करना पड़ता है। गृहिणी को जो लक्ष्य दिखाई पड़ते हैं, वे वास्तव में लक्ष्य नहीं बल्कि लक्ष्य के साधन हैं। वह अपने कार्य को व्यक्तित्व प्रदान करना चाहती है। वह उसे प्रमुख बनाना चाहती है। उसे विश्वास है कि उसके ये कार्य उससे अच्छी तरह दूसरा कोई नहीं कर सकता। उसके अपने संस्कार, अंधविश्वास और कार्य करने के तरीके होते हैं किंतु अक्सर उसके व्यक्तिगत कार्य बड़े ही अस्पष्ट और अर्थहीन होते हैं। स्त्री प्रायः अपने कार्य को मौलिकता और अद्वितीयता प्रदान करना चाहती है। इससे यह ज्ञात होता है कि उसका कार्य सावधानी से किया गया है, किंतु वह अंतिम रूप से पूर्ण- व्यवस्थित नहीं होता। इसीलिए स्त्री के घरेलू कार्यों का कभी सही मूल्यांकन नहीं हो पाता।

हाल की खोज से ज्ञात हुआ है कि स्त्री औसत रूप से एक सप्ताह में करीब तीस घंटा काम करती है और काम में लगी स्त्री के काम का तीन-चौथाई भाग गृहकार्य होता है। यह कार्य अत्यधिक है, यदि यह वैयक्तिक कार्य के अतिरिक्त है और बहुत ही नगण्य है। बालकों की देखभाल करना भी उसके कार्य को बहुत बढ़ा देता है। बेचारी मां रात-दिन खटती रहती है। मध्यमवर्ग की आलसी स्त्रियां, जो अपने कार्य के लिए सहायक रखती हैं, अपने अवकाश के समय में केवल खिन्नता और उदासी ही महसूस करती हैं। यदि उनमें बाहरी कामों में रुचि नहीं रहती तो वे अपने घर में लगी रहती हैं। स्त्री कर्त्तव्य-बोध से प्रेरित होकर कष्ट झेलकर भी काम में लगी रहती है। ओवन से केक को बाहर निकालकर देखकर वह आह भरती है, "कैसी शर्म की बात है, इसे अभी खा लिया जाएगा ।" यह कितनी खराब

बात है कि उसके पति और बच्चे अपने गंदे पैरों से उसकी साफ की हुई फर्श को फिर गंदा कर देंगे। जब चीजों का प्रयोग होता है तब वे गंदी हो जाती हैं, नष्ट हो जाती हैं। स्त्री चेष्टा करती है कि चीजों का प्रयोग न हो। वह चीजों को तब तक सुरक्षित रखती है जब तक वे फफूंद से खराब न हो जाएं। वह बैठकखाने में ताला लगाकर रखती है, किंतु समय निर्दयता से बीतता जाता है। खाद्य सामग्री भी ऐसी अनिश्चित चीजों से बनी है जो सड़ जाएंगी। दरअसल गृहिणी अपने को वस्तुओं के मध्य खो देती है। उसका सारा संसार ही वस्तुमय हो जाता है। लिनेन बदरंग हो सकता है, सेकते समय टोस्ट जल जाता है, चीनी-मिट्टी के बर्तन टूट जाते हैं। औरत के लिए यह सब बहुत बड़ी विध्वंस-लीला है । चीजें एक बार नष्ट होकर हमेशा के लिए नष्ट हो जाती हैं।

गृहकार्य का उद्देश्य उत्पादित वस्तुओं का उपयोग होता है। अतः स्त्री के सभी कार्य नष्ट होकर समाप्त होते हैं। उसमें निरंतर त्याग की भावना होनी चाहिए। उसके द्वारा उत्पादित चीजें और कार्य दूसरों को आनंद और प्रसन्नता देने में नष्ट होते हैं और उसको बिना किसी दुःख के उसे स्वीकार करना पड़ता है। गृहिणी अपने स्तर को बनाए रखने के लिए मेहनत करती है। पति घर आकर अव्यवस्था और अवहेलना को देखता जरूर है, पर उसे ऐसा लगता हैं कि व्यवस्था और सफाई स्वतः होती हैं। पति की विशेष रुचि भोजन में होती है। जिस समय स्त्री भोजन टेवुल पर सजाती है, उस समय एक रसोइए के रूप में मानो उसकी विजय का क्षण आता है। भोजन अच्छा होने पर संतान और पति प्रसन्नता और वाहवाही के साथ भोजन ग्रहण कर लेते हैं और शब्दों द्वारा भी प्रशंसा करते हैं। पाक-कला के चमत्कार-स्वरूप भोजन अति उत्कृष्ट और स्वादिष्ट बन जाता है।

मानव-शरीर को स्वस्थ और ठीक बनाए रखना अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके सम्मुख घर की फर्श को साफ-सुथरा रखना इतना महत्त्व नहीं रखता। रसोई बनाने वाले के प्रयत्न भविष्य की ओर संकेत करते हैं। अपने को पदार्थों और वस्तुओं में खो देने की अपेक्षा दूसरे के स्वतंत्र सर्वोत्कृष्ट रूप में भाग लेना अच्छा है। स्त्री ने खाना अच्छा बनाया, यह सत्य उनके द्वारा ही प्रमाणित होता है जो उसके हाथ के बने भोजन की प्रशंसा करें। वे इच्छा प्रकट करें कि फिर ऐसा भोजन बने। यदि वे भूख का अनुभव नहीं करते तो वह परेशान-सी हो जाती है और इस सीमा तक चिंतित रहती है कि सोचना पड़ जाता है कि तले हुए आलू उसके पति के लिए हैं या पति तले हुए आलुओं के लिए। घर संवारने वाली पत्नी की यह दुविधा उसके रुख से स्पष्ट होती रहती है। वह चाहती है कि पति जो कुछ भी कमाए, उसे वह घर सजाने और रेफ्रिजिरेटर खरीदने में खर्च कर दे। वह उसे खुश रखना चाहती है और उसके कार्यों की उस सीमा तक ही सराहना करती है, जहां तक वे उसकी दृष्टि में उसके सुख के निमित्त होते हैं।

एक समय इन दावों को साधारण रूप से संतुष्टि मिल जाती थी। उस समय पूर्ण आनंद और संतोष के लिए पुरुषों को भी अपने घर से लगाव रहता था। उन्हें परिवार से लगाव रहता था। उस समय संतान भी माता-पिता की विशेषता ग्रहण करना चाहती थी। वे परम्परा और अतीत को मान्यता हते थे। ऐसे समय में घर की शासिका स्त्री खाने की मेज की मुखिया होती थी। उसे उच्च स्थान दिया जाता था। आज भी भूमिपतियों और सम्पन्न किसानों के यहां स्त्री की वही उच्च भूमिका है। आज पारम्परिक वैवाहिक जीवन के नियमों के अवशेषों के बावजूद समाज में स्त्री की स्थिति प्राचीन समाज की अपेक्षा बुरी है, क्योंकि उस पर कर्त्तव्य-भार तो वही है पर उसे अधिकार, सम्मान और सुविधाओं से वंचित रखा जाता है। आज पुरुष संसार में खुद सहारा पाने के लिए विवाह करता है किंतु वह सांसारिक बंधन में फंसना नहीं चाहता । वह घर-बार चाहता है पर स्वतंत्र रहकर उससे भागता भी है। वह जीवन में स्थापित हो जाता है, घर बसा लेता है, पर दिल से आवारा ही बना रहता है। पारिवारिक सुख और आनंद से उसे घृणा नहीं है— पर वह उसे ही जीवन का एकमात्र ध्येय नहीं मानता। बार-बार एक-सी स्थिति का बने रहना उसे अरुचिकर लगता है। वह नवीनता चाहता है। वह खतरा मोल लेकर प्रतिरोधों पर विजय प्राप्त करता है। वह ऐसे संगी-साथी चाहता है जो उसे एकांत से दूर ले जाएं। पिता से अधिक संतानें परिवार की सीमाओं का अतिक्रमण करना चाहती हैं। उनके लिए जीवन और कहीं है। बालक हमेशा भिन्नता चाहता है। स्त्री ऐसे विश्व की स्थापना करना चाहती है जहां स्थायित्व हो, सिलसिला जारी रहे किंतु संतान और पति उसके द्वारा पैदा की हुई स्थिति से ऊंचे उठते हैं। उसके द्वारा निर्मित वातावरण को वे प्राप्य वस्तु के रूप में देखते हैं । यदि उसे उन कार्यों से घृणा भी है, जिनमें वह अपना सारा जीवन लगा देती है, तब भी उसे उन कार्यों को करना पड़ता है। वह माता और गृहिणी के रूप में रहती है। वह बदलकर विमाता और कर्कशा भी बन जाती है।

घर की सीमा के भीतर सम्पादित कार्य स्त्री को स्वतंत्रता नहीं देते। वह प्रत्यक्ष रूप में समाज के लिए हितकर और लाभकारी नहीं है। वह भविष्य का द्वार नहीं खोलती। वह किसी भी चीज का उत्पादन नहीं करती। उसके कार्यों का महत्त्व तभी है जब वे ऐसे अस्तित्वों से संलग्न होते हैं जो अपने से आगे बढ़ते हैं, अपने से ऊपर उठते हैं। स्त्री के घरेलू कार्य उसे स्वतंत्र नहीं करते बल्कि उसे पति और संतान पर आश्रित बना देते हैं। उसकी सार्थकता इन लोगों के माध्यम से होती है पर इनके जीवन में वह केवल एक गौण मध्यस्थ ही रहती है। आज्ञाकारिता उसका एक कानूनी कर्त्तव्य नहीं है और न यह उसकी स्थिति को किसी रूप में परिवर्तित करती है। यह युग्म की इच्छा पर निर्भर है किंतु प्रणय संयोग कुछ ऐसा होता है कि स्त्री पुरुष के प्रति कृतज्ञता का अनुभव करती है। स्त्री को अपने जीवन में किसी रचनात्मक कार्य को स्वतंत्र रूप से करने की अनुमति नहीं है, इसलिए पूर्ण व्यक्ति के रूप में कभी भी उसे स्वीकार नहीं किया जाता। चाहे वह कितनी

भी सम्माननीय क्यों न हो, पर उसकी स्थिति हमेशा गौण, नीची और पराश्रित होती है। उसके जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप उसकी पराश्रयिता है । प्रणय-जीवन की सफलताएं और असफलताएं पुरुष के लिए उतना महत्त्व नहीं रखतीं जितना वे स्त्री के लिए रखती हैं। पति नागरिक और उत्पादक पहले है, पति बाद में, किंतु स्त्री केवल पत्नी-रूप है। उसके कार्य, उसकी स्थिति नहीं बदलते। उसकी स्थिति के अनुसार ही उसके कार्यों का मूल्यांकन होता है। प्रेम करती हुई, पति के ऊपर श्रद्धा रखती हुई वह जो भी कार्य करती है, वह उसे उबाऊ ही लगता है। उसके भाग्य के निर्णय में उसके कार्यों की भूमिका गौण होती है। बचपन को पीछे छोड़कर किशोरावस्था में पहुंचने पर लड़की के सम्मुख एक गम्भीर स्थिति रहती है। पूर्ण वयस्क हो जाने पर उसकी स्थिति और गम्भीर हो जाती है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेश करने पर स्त्री को बड़ी परेशानी होती है। काम-जीवन की शुरुआत होने पर उसकी परेशानियां और बढ़ जाती हैं। नीत्शे ने इस परिस्थिति को इस प्रकार प्रस्तुत किया है, जिस प्रकार बिजली की चोट से व्यक्ति तिलमिला उठता है, उसी प्रकार शादी स्त्री को हठात् यथार्थ और ज्ञान के सम्मुख ला फेंकती है। उसे लज्जा और प्रेम के दो विरोधी भावों का अनुभव होता है। एक ही कर्म व्यक्ति के प्रति उसमें अनेक भाव पैदा करता है। वह आत्मविभोर हो उठती है। उसमें त्याग और दया के भाव जाग्रत होते हैं। वह कर्त्तव्य का भी अनुभव करती है पर साथ ही भय का भी। वह एक साथ देवता और पशु के सामीप्य का अनुभव करती है। उसकी आत्मा में बेचैनी होती है। वह अपनी 'समानता' की खोज करती है पर व्यर्थ ।

मधुमास (honeymoon) की प्रथा शायद इस परेशानी को दूर करने के लिए ही शुरू की गई थी। प्रतिदिन के जीवन से थोड़े दिन अलग रहकर, सभी सामाजिक बंधनों को कुछ समय के लिए तोड़कर, नव विवाहित स्त्री अपनी स्थिति, वास्तविक समय, स्थान और विश्व में भूल जाती है लेकिन देर-सबेर उसे अपनी वास्तविक स्थिति का सामना करना ही पड़ता है। उसे अपने नए घर में कुछ- न-कुछ अशांति का अनुभव होता है। पिता के घर में उसे सम्बंधों की घनिष्ठता मिली होती है। पति के घर उतने घनिष्ठ सम्बंध नहीं मिलते। स्त्री की स्थिति में परिवर्तन धीरे-धीरे दिखाई देता है। वह यदि स्वतंत्र होना चाहती भी है, तब भी अपने परिचितों और स्वजनों का विछोह उसे परेशानी में डाल देता है।

बहुत ही पूर्ण और सफल वैवाहिक जीवन स्त्री को विश्व में शांत वातावरण प्रदान कर सकता है किंतु प्रारम्भ में स्त्री को संतुष्टि से अधिक परेशानी ही होती है। उसकी प्रतिक्रिया प्रायः वैसी ही होती है जैसी प्रथम बार मासिक-धर्म होने पर होती है। स्त्रीत्व के उद्घाटन के प्रति उसे अरुचि होती है। बार-बार यह कार्य होगा, इस विचार से उसे विकर्षण होता है। मासिक-धर्म आरम्भ हो जाने पर युवती दुःख के साथ अनुभव करती है कि वह पूर्ण वयस्क नहीं हुई है। शादी हो जाने पर कौमार्य- भंग हो जाने पर वह वयस्क हो जाती है। अंतिम

कदम उठा लिए गए हैं। अब क्या होगा? विवाह के साथ बहुत बड़ी निराशा जुड़ी रहती है। ऐसी ही निराशा कौमार्य-भंग के साथ भी होती है। वह स्त्री भी जिसने अपने मंगेतर और अन्य पुरुष को अच्छी तरह पहचान लिया है, पूर्ण वयस्क जीवन में प्रवेश करते समय अनेक प्रतिक्रियाओं से जुड़ी रहती है। एक नया जीवन प्रारम्भ करने के उल्लास के साथ ही एक नए भाग्य के निर्माण का अहसास उसे निराश कर देता है। पितृ-गृह में पिता की सुरक्षा में वह विद्रोह करके, कुछ-न-कुछ स्वतंत्रता पा लेती थी। अब उसकी शादी हो गई। उसका भविष्य आ गया। अब और कोई दूसरा भविष्य नहीं आएगा। अब पृथ्वी पर उसका यही जीवन और भाग्य है। उसे ज्ञात हो गया है कि अब उसके कार्यकलाप क्या हैं, वे वही हैं जिन्हें उसकी मां करती थी। प्रतिदिन एक ही तरह के कार्यों की पुनरावृत्ति होगी। जब वह बालिका थी तब उसके पास कुछ था। वह स्वप्न में सब कुछ की आशा करती थी। अब उसे पृथ्वी पर जो कुछ मिलना था, मिल गया। वह पीड़ा से कराहकर पूछती है- हमेशा के लिए यह पति, यह घर। अब उसे न और किसी चीज की प्रतीक्षा है, न किसी और महत्त्वपूर्ण चीज की आशा। उसे अपनी नई जिम्मेदारियों से भय लगता है। यदि उसका पति सत्ता-सम्पन्न है, परिपक्व है, तब वह पत्नी को मुक्त नहीं कर सकता। नए घर एकाकी वातावरण में वह उस पुरुष के साथ बद्ध है जो उसके लिए अजनबी है। अब वह बालिक नहीं, पत्नी है और शीघ्र माता बन जाएगी। उसे एक भयजनित ठंडेपन का अनुभव होता है । अब वह मां की गोद से दूर है। वह ऐसे संसार में खो गई है, जहां उसका भविष्य नहीं है। वर्तमान बर्फ की ठंड से भरा है। यहां जीवन की उष्णता नहीं। वह अब अपने मलिन और उदासी भरे जीवन को पहचान लेती है। अब उसका जीवन शून्य, नीरस और आडम्बरपूर्ण है। इन कटु अनुभवों और दुःखों का वर्णन टालस्टाय की पत्नी ने अपनी 'डायरी' में लिखा है। बड़े ही उत्साह के साथ उसका विवाह एक विख्यात लेखक के साथ हुआ। उसके अतीत और उसकी रुचियों से वह नितांत अनभिज्ञ थी। वह उसके जीवन में प्रथम स्त्री नहीं थी। वह उसकी अंतर्चेतना को समझ नहीं सकी। उसके साथ शारीरिक सम्बंध उसे अरुचिकर लगे। वह कभी खुशमिजाज नहीं रहता था। वह प्रेम नहीं करता था। वह मौत का आवाहन करने लगी। जीवन का क्या महत्त्व था? वह घर क्यों छोड़ेगी? उसके पास कुछ करने को नहीं है। कोई साधन नहीं है। कुछ चाहने की इच्छा नहीं है। जीवन नीरस है।

विवाह कभी-कभी पुरुषों के लिए भी संगीन स्थिति पैदा करता है। कभी सगाई हो जाने पर पुरुष की मानसिक स्थिति बदल जाती है और कभी प्रणय-जीवन के प्रारम्भिक काल में वह विकारों का शिकार बन जाता है । काम-वासना का जोश थोड़े समय के लिए भड़क उठता है और वे अनुभव करते हैं कि उनका नया संसार उनकी रक्षा वास्तविक संसार से अलग से नहीं कर सकता। शादी के पश्चात् दूसरे दिन नवदम्पति यही अनुभव करते हैं। शीघ्र ही पत्नी परिचित और विनम्र बन जाती है। वह पति के एकाकीपन को समझ लेती है। वह पति पर एक जिम्मेदारी है। वह पति की जिम्मेदारी कम नहीं कर सकती बल्कि बढ़ा

देती है। उम्र, शिक्षा और स्थिति की भिन्नता के कारण पति-पत्नी एक-दूसरे को ठीक से समझ नहीं सकते। एक-दूसरे के बीच बहुत बड़ी खाई होती है। लड़की का लालन-पालन इस प्रकार होता है कि वह अनेक विषयों में अनभिज्ञ और अबोध रहती है जब कि उसका मंगेतर सक्रिय जिंदगी जीता है। वह उसे जीवन के सत्य से परिचित कराता है। कुछ पुरुष तो स्त्री की इस अबोध भूमिका से प्रभावित होते हैं, पर कुछेक पुरुष ऐसे होते हैं जिनकी दृष्टि बहुत पैनी होती है और वे खिन्न मन से उस दूरी को देखते हैं जो कि उन्हें उनके भविष्य के साथी से पृथक करती है।

टालस्टाय की पत्नी सोफी अपने विवाह के एक वर्ष बाद लिखती है, "वे काफी वय-प्राप्त हैं। काफी चिंतन में डूबे रहते हैं। उनकी अपेक्षा मैं काफी छोटी हूं। मूर्खता के कार्य करती हूं। बिस्तर पर जाने के बदले मैं चाहती हूं कि मैं किसी के साथ उन्मत्त होकर नाचूं। पर किसके साथ? वृद्धावस्था का वातावरण मेरे चारों ओर है। मेरे आसपास के सभी व्यक्ति वृद्ध हैं। मैं अपनी प्रत्येक युना चाह को दबाती हूं। उस संयमित वातावरण को मैं अपने प्रतिकूल पाती हूं।"

विवाह में प्रायः स्त्री की स्थिति पुरुष से नाजुक होती है, इसलिए पति-पत्नी में आपसी सम्बंध की समस्या स्त्री के लिए विशेष जटिल होती है। विवाह-संस्कार में भी परस्पर विरोधी भाव दिखाई पड़ते हैं। विवाह-संस्कार, प्रेम-सम्बंधी एक सामाजिक उत्सव है। इस द्वंद्व में पुरुष का जो रूप स्त्री के सम्मुख आता है, वह देवतुल्य होता है। पुरुष की विशेष प्रतिष्ठा है। वह पिता का स्थान ग्रहण करता है। वह रक्षक है, पोषणकर्ता हैं, शिक्षक और पथप्रदर्शक है। उसकी छाया में ही पत्नी का जीवन खुलता और प्रदर्शित होता है। वह परम्पराओं का अभिभावक और सत्य का प्रवर्तक है। पुरुष ही नैतिकता का प्रतिपादन भी करता है। पत्नी को पुरुष के साथ कुछ ऐसे अनुभव प्राप्त होते हैं जो बहुधा लज्जाजनक और विलक्षण होते हैं। वे परेशान करने वाले होते हैं।

पत्नी और पति के सम्बंध अनेक रूपों में सम्भव हैं। कभी-कभी पति पिता और प्रेमी, दोनों रूप एक साथ ग्रहण कर लेता है। अब काम-केलि पवित्र उत्सव और उन्मत्तता का रूप धारण कर लेती है। पूर्णरूपेण जीवन में ऐसी स्थिति प्रायः कम ही पाई जाती है। अपने श्रद्धापात्र की बांहों में लिपटना पत्नी पसंद नहीं करती। एक स्त्री ने एक महान् कलाकार से विवाह किया। उससे वह प्यार करती थी पर यौन-सम्बंध के समय वह बिल्कुल निरुत्साही और ठंडी हो जाती थी। वह उसके साथ सम्भोग कर सकती है और वह उसे आमरूप से भ्रष्टाचार समझती है और इससे उसके सम्मान और आदर भाव को ठेस पहुंचती है। यह भी सत्य है कि काम-वासना में निराशा मिलने पर पुरुष पशु की कोटि में आ जाता है। शरीर के रूप में उससे घृणा की जाती है और आत्मा रूप में भी वह घृणा पाता है। परिणाम यह होता है कि उसकी घृणा, उदासीनता और खिन्नता से स्त्री निरुत्साही हो जाती है।

युवा पत्नी पति की भावनाओं को इतनी हार्दिकता से स्वीकार नहीं करती। पति को प्यार करना और खुश करना वह अपना कर्त्तव्य समझती है। यह कर्त्तव्य स्वयं वह अपने प्रति और समाज के प्रति मानती है। उसका परिवार उससे यही आशा करता है। यदि उसके माता-पिता उसकी शादी का विरोध करते हैं, तो यह उनके व्यवहार में प्रकट हो जाता है। यदि स्त्री की काम-इच्छा तृप्त नहीं होती तो यह भाव बहुत उग्र, ईर्ष्या से पूर्ण और आधिपत्य स्थापित करने वाला बन जाता है। निराश होने पर, जो कि वह स्वयं स्वीकार नहीं करती, वह अपने पति के लिए और व्यग्र हो जाती है। शायद इस अतृप्त इच्छा द्वारा वह निराशा को दूर करना चाहती है। सोफीया टालस्टाय के पत्रों से यह ज्ञात होता है कि पति के प्रेम की पूर्ति वह नैतिक और काव्यात्मक उल्लास द्वारा करने की व्यर्थ चेष्टा करती थी। साथ ही वह तीव्र और ईर्ष्यापूर्ण मांगें भी करती थी जब कि उसके हृदय में पति के प्रति सच्चा प्रेम न था।

अनेक युवतियों में ज्ञान की कमी रहती है। शिक्षित होने, अनेक भाषणों को सुनने और सभ्य बनने की चेष्टा के बावजूद स्त्री को विविध सूचनाएं प्राप्त नहीं होती और उसके पास संस्कृति का अभाव होता है। वह मानसिक रूप में शिक्षित होती है, क्योंकि अनुभव ने कभी भी उसे तर्क करने के लिए प्रस्तुत नहीं किया। विचार स्त्री के लिए मनोरंजन की वस्तु होता है। बुद्धि, भावुकता और सच्चाई के बावजूद स्त्री अपने विचार ठीक रूप से व्यक्त नहीं कर पाती और न निष्कर्ष निकाल पाती है, क्योंकि उसमें बौद्धिक कला का अभाव रहता है। इसीलिए उसका पति अपने साधारण ज्ञान के बावजूद अपने को सही सिद्ध कर सकता है। पत्नी भी अड़ जाती है और पति के तर्कों को मान्यता नहीं देती। पति अपने विचारों पर अड़ा रहता है। इसी बिंदु पर दोनों के बीच गहरी गलतफहमी पैदा हो जाती है। स्त्री के पास चुप रहने, आंसू बहाने और कभी-कभी बल-प्रदर्शन के सिवा और कोई उपाय नहीं रहता। अंत में वह पति पर कोई चीज उछाल देती है।

कभी-कभी पत्नी संघर्ष जारी रखना चाहती है, पर अक्सर वह खुशी और अनमनेपन के साथ खत्म कर देती है। ऐसा ही इब्सन के नाटक में नोरा करती है। वह अपने पति से कहती है, "तुमने अपनी इच्छानुसार सारे निर्णय किए। जैसी तुम्हारी इच्छा है, वैसी ही मेरी भी थी, या फिर ऐसा मैंने दिखावा किया। मैं ठीक से सोच नहीं पाती कि किस रास्ते को अपनाऊं? यह रास्ता या वह रास्ता या फिर दोनों?" पत्नी साधारण मामलों में यही चाहती है कि उसका पति ही निर्णय करे। यह चाहना उसी कायरता, आलस्य और अद्भुत स्वभाव के कारण भी सम्भव है।

परामर्शदाता और पथ-प्रदर्शक की भूमिका निबाहने में पति आनंद का अनुभव करता है। नोरा का पति उसे विश्वास दिलाते हुए कहता है, "सिर्फ मुझ पर निर्भर करो। मुझे परामर्श और पथ-प्रदर्शन करने दो। तुम्हारी यह असहायता यदि तुम्हें मेरी दृष्टि में दुगुना

आकर्षक न बनाए तो मैं सच्चा पुरुष नहीं हूं। तुम्हारी रक्षा के लिए मेरे पास चौड़े पंख हैं।" सारे दिन अपने बराबर वालों के साथ संघर्ष करता हुआ शाम को वह घर में शांति चाहता है। उसे अपने से ऊंचे अधिकारियों के सम्मुख झुकना पड़ता है। घर में वह सर्वोच्च स्थिति चाहता है। जो वह कहे, उसे बिना किसी विरोध के स्वीकार किया जाए, ऐसी उसकी इच्छा होती है। वह सारे दिन की घटनाओं का वर्णन करता है । वह बताता है कि अपने प्रतिद्वंद्वी के साथ तर्क में वह कितना सफल रहा। उसे यह देखकर खुशी होती है कि उसकी पत्नी उसके आत्म-विश्वास का समर्थन करती है। वह समाचार-पत्रों और राजनीतिक विचारों पर आलोचना करता है और पत्नी के सम्मुख पत्र वगैरह जोर-जोर से पढ़ता है जिससे संस्कृति से उसके सम्पर्क स्वतंत्र न रहें । अपनी सत्ता बढ़ाने के लिए स्त्री की असमर्थता को वह और बढ़ा-चढ़ाकर व्यक्त करता है । स्त्री अपनी इस गौण भूमिका को नम्रतापूर्वक स्वीकार कर लेती है। यदि स्त्रियों को उनको क्षमता पर ही छोड़ दिया जाए तो वे पति की अनुपस्थिति पर अफसोस अवश्य प्रकट करती हैं पर साथ ही यह जानकर प्रसन्न भी होती हैं कि उनमें भी क्षमता है। वे घर का भार अपने हाथों में लेती हैं, बच्चों का लालन-पालन करती हैं, निर्णय करती हैं। कभी-कभी तो पति के वापस आ जाने पर उन्हें अपनी असमर्थ स्थिति पर दुःख होता है।

विवाह पुरुष को मानो शानदार बनने के लिए उकसाता है। प्रभुत्व जगाने की लालसा विश्वव्यापी है। इस लोभ का संवरण कोई नहीं कर सकता। बच्चे को माता के सम्मुख समर्पण करना पड़ता है और पत्नी को पति के सम्मुख । इस प्रकार मानो संसार में तानाशाही बढ़ती रहती है। पुरुष केवल यह नहीं चाहता कि उसकी बातों को माना जाए और उसकी प्रशंसा हो, वह परामर्शदाता और पथ-प्रदर्शक भी बनना चाहता है। वह आदेश देता है। वह स्वामी और अधिपति की भूमिका ग्रहण करता है। बचपन और किशोरावस्था में उसे जो भी अफसोस और शिकायतें रहती हैं, अपने बराबर वालों के साथ वह जिस भी पराजय का अनुभव करता है, वह विवाह के पश्चात् उन सबसे मानो मुक्त हो जाता है और अपना प्रभुत्व अपनी पत्नी पर जमाता है। वह बल, शक्ति और दृढ़ इरादों का प्रदर्शन करता है । वह सख्ती के साथ आदेश देता है। वह टेबुल पर हाथ पटकता है। यह सब उसकी पत्नी के लिए प्रतिदिन की वास्तविकता होती है। वह अपने अधिकारों पर दृढ़ रहता है। स्त्री की ओर से जरा भी स्वतंत्रता का आभास मिलने में वह उसे विद्रोह समझता है। अपनी आज्ञा के बिना मानो वह उसे सांस भी नहीं लेने देगा।

पत्नी पति से विद्रोह करती है। प्रारम्भ में वह पुरुष की प्रतिष्ठा से प्रभावित हो जाती है पर यह चकाचौंध शीघ्र नष्ट हो जाती है। जिस प्रकार बालक को यह ज्ञात हो जाता है कि उसके पिता एक साधारण मरणशील व्यक्ति है, उसी प्रकार पत्नी भी समझ जाती है कि उसका पति एक साधारण मरणशील व्यक्ति है। वह उच्च और महान् स्वामी नहीं है। वह

उसके अधीन रहना नहीं चाहती। वह उसे ऐसा लगता है मानो वह अनुचित और अरुचिकर कर्तव्य का प्रतिनिधित्व करता है। कभी-कभी वह परपीड़ित कामुकता के आनंद के साथ समर्पण कर देती है। वह 'शिकार' बनने की भूमिका स्वीकार कर लेती है। कभी-कभी वह खुल्लम-खुल्ला संघर्ष करने लगती है और पति पर अत्याचार करने के लिए उतारू हो जाती है।

एक अनुभवहीन पति ही ऐसा सोच सकता है कि वह अपनी पत्नी को दबा लेगा और उसे अपनी इच्छानुसार बना लेगा। बाल्जाक का कहना है कि पत्नी वह रूप है जो कि पति उसे बनाता है। कुछ पृष्ठों के बाद वह अपने कथन का खंडन करता है। तर्क और व्यावहारिक क्षेत्र में पुरुष का स्थान स्त्री से ऊंचा है। स्त्री उसकी सत्ता मान लेती है किंतु अपने से सम्बंधित मामले में वह पुरुष का गुप्त रूप से विरोध करती है। बचपन और यौवन के प्रभावों से स्त्री जितनी प्रभावित होती है उतना पुरुष नहीं, क्योंकि स्त्री अपने व्यक्तिगत इतिहास की सीमाओं में बंधी रहती है। जो कुछ बचपन में चाहती थी, वह सब आज भी चाहती है। पति अपनी राजनीतिक भावनाओं को पत्नी पर थोप सकता है पर वह उसके धार्मिक विश्वासों और अंधविश्वासों को परिवर्तित नहीं कर सकता। नए विचार और सिद्धांत अपनाने के बावजूद स्त्री वस्तुओं के प्रति अपना दृष्टिकोण नहीं बदलती। अपने पूर्वग्रहों के कारण वह अपने से अधिक बुद्धिमान पति को या तो समझने में असमर्थ रहती है या अपने को पुरुष की नीरस गम्भीरता से अलग कर देती है। ऐसी स्त्रियां हमें स्टेंढाल, इब्सन और शा की नायिकाओं में देखने को मिलती हैं। पली प्रायः पति के प्रतिकूल हो जाती है। इस उग्रता का कारण कभी तो काम-वासना की अतृप्ति होती है और कभी पति की अतिरिक्त आधिपत्य-भावना। पत्नी प्रतिशोध लेना चाहती है। वह पति की मान्यताओं के स्थान पर अन्य मान्यताओं को ग्रहण करती है। वह पिता और भ्राता या किसी अन्य पुरुष की सत्ता पर विश्वास करती है, क्योंकि इन व्यक्तियों को वह श्रेष्ठ समझती है। कभी-कभी तो वह अपने धर्मगुरु (आत्म-स्वीकृति करने वाले) की सत्ता मानना पसंद करती है, पर पति की नहीं। कभी-कभी वह स्पष्ट प्रतिवाद नहीं करती किंतु पति की बातों को काटकर उसे चोट पहुंचाती है और उसे हीन भावनाओं का शिकार बनाना चाहती है। यदि उसके पास साधन रहते हैं तो वह पति को चकित कर देने में आनंद का अनुभव करती है और अपने निर्णय उस पर थोपती है। वह अपने विचार और निर्देश पूर्ण नैतिक सत्ता के साथ ग्रहण कर लेती है।

बौद्धिक रूप में पति से नीचे स्तर में रहने वाली स्त्री काम-क्रीड़ा में उसे परेशान करके प्रतिशोध लेने की चेष्टा करती है। जब तक वह वांछित वस्तु पति से प्राप्त नहीं कर लेती तब तक पति को आलिंगन नहीं करने देती। कामोत्तेजित पति के हृदय में वह अपने निरुत्साह के द्वारा ईर्ष्या उत्पन्न करती है। तरह-तरह के छल से स्त्री पुरुष की शक्ति का अपमान

करती है। बात बढ़ाने की इच्छा न रहने पर वह अपना निरुत्साह छिपा लेती है। अपनी डायरी में वह इस विषय में लिखती है या फिर अपनी घनिष्ठ सहेलियों के बीच अपने पति की सरलता का मजाक उड़ाती है।

कुछ स्त्रियां ताक-झांक करने वाली होती हैं। वे दिन-रात विजय प्राप्त करना चाहती हैं। वे प्रेम-प्रदर्शन में बहुत निरुत्साही और ठंडी होती हैं। वे बातचीत में घृणा प्रकट करती हैं और उनका आचरण अत्याचारी होता है। कुछ ऐसी स्त्रियां या तो हमेशा पति के रूप, क्षमता और उपार्जन की शक्ति को हीन बताती रहती हैं या अपने कार्यों का मूल्यांकन नकद आमदनी के रूप में करती हैं। पुरुप के प्रति इस तरह का कपटपूर्ण आचरण वे उसकी सर्वोपरिता अस्वीकार करने के लिए करती हैं। पुरुष सोचते हैं कि स्त्रियां उन्हें दंड देने का स्वप्न देखती हैं लेकिन वस्तुतः स्त्रियों का रुख बड़ा अस्पष्ट और दोहरा होता है। वे पुरुष से बिल्कुल मुक्त हो जाना नहीं चाहतीं। स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि ऐसी स्त्री पुरुष को उसकी योजनाओं और भविष्य से वंचित करना चाहती है। सभी स्त्रियों को मानो विजयोल्लास होता है जब पति और संतान रुग्ण हो जाते हैं, थक जाते हैं और केवल देह-रूप रह जाते हैं। ऐसी स्थिति में वस्तुओं की तरह केवल वस्तुमात्र प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार बर्तनों की देखभाल की जाती है, उसी प्रकार बड़ी योग्यता से उनकी देखभाल करनी पड़ती है। स्त्री अपना भारी मांसल हाथ उनके शरीर पर रखकर उन्हें यह अनुभव करा देती है कि वह भी सिर्फ एक देह- रूप है।

'स्त्री यह नहीं चाहती कि पुरुष अपने को कर्ता के रूप में व्यक्त करे। वह पुरुष को केवल देह-रूप में देखना चाहती है। वस्तुओं के स्थान पर वह केवल जीवन की पुष्टि करती है, आत्मा की नहीं। उसके विचारानुसार पुरुष के दुःख का एकमात्र कारण यह है कि वह चुपचाप एक कमरे में बंद नहीं रहता। यदि स्त्री का वश चले तो वह प्रसन्नतापूर्वक पुरुष को घर में बंद रखे। पुरुष के वे कार्य, जिनसे प्रत्यक्ष रूप में परिवार का उपकार नहीं होता, स्त्री में प्रतिरोध की भावना उत्पन्न करते हैं। बर्नार्ड पालिसी की पत्नी का हृदय घृणा से भर जाता था जब उसका पति एक नए एनामेल का आविष्कार करने की चेष्टा में परिवार का फर्नीचर ईंधन की तरह जला देता था। उस समय विश्व को ऐसे एनामेल की कोई आवश्यकता नहीं थी। रेसिन की पत्नी चाहती थी कि उसका पति बगीचे में उत्पन्न किशमिश में रुचि ले, उसे पति की दुखांत रचनाओं में कोई रुचि नहीं थी।

यह मतांतर इतना अधिक बढ़ सकता है कि आपस में विछोह हो जाए। पत्नी पति की सत्ता का प्रतिरोध करती है। वह पति को बांधे रखना चाहती है। अपनी स्वतंत्रता कायम रखने के लिए वह पति और सारे विश्व से संघर्ष करती है। यह दोहरा खेल खेलना बड़ा कठिन हैं और इसी कारण अनेक स्त्रियां अपना सम्पूर्ण जीवन मानसिक तनाव और परेशानी में बिता देती हैं।

पति को पकड़ना एक कला है और उसे पकड़े रहना एक कार्य। इस कार्य में बड़ी क्षमता की आवश्यकता है। एक चिड़चिड़ी युवा पत्नी से उसकी बुद्धिमान बहन कहती है, "सावधान रहो। यदि तुम मार्शल के साथ इस प्रकार का अनुचित व्यवहार करोगी तो तुम्हें यह महंगा पड़ेगा और प्रेम तथा सुख के नाम पर प्राप्त सब कुछ नष्ट हो जाएगा।" पत्नी को जल्दी ही समझ में आ जाता कि उसका यौन-आकर्षण उसका सबसे शिथिल हथियार है। अति परिचय और घनिष्ठता से यह नष्ट । जाता है। चारों तरफ तो सुंदर-से-सुंदर स्त्रियां पड़ी हैं। वह चेष्टा करती है कि वह पति को आकर्षित और मीहित रख सके। वह दो. भावनाओं के बीच पिसती है। उसका घमंड उसे निरुत्साही बनाता है जबकि उसे हमेशा यह आशा बनी रहती है कि उसका रति-रूप उसके पति को हमेशा मोहित करता रहेगा और वह उसकी प्रिय बनी रहेगी। वह उसकी आदतों का भी फायदा उठाती है। घर के आकर्षण को बनाए रखने, उसकी अच्छे भोजन के प्रति रुचि के प्रति सजग रहने, बच्चों के प्रति उसके स्नेह को समझने, अच्छे शृंगार में रहने और उसका स्वागत करने की उसकी चेष्टा से पति प्रभावित हो जाता । पत्नी अपने परामर्श द्वारा पति को प्रभावित करती है और उसकी यह चेष्टा रहती है कि सामाजिक उन्नति और कार्य के लिए पति उसकी अनिवार्यता अनुभव करे।

सारी परम्परा यह बताती है कि पत्नी को पति को वश में रखने की कला आनी चाहिए। पत्नी को पति की कमजोरियां पता रहनी चाहिए और उचित मात्रा में चापलूसी तथा घृणा भी प्रदर्शित करनी चाहिए । पत्नी में अवसर के अनुकूल विनम्रता, प्रतिरोध, सतर्कता और ढिलाई के गुण भी होने चाहिए। सतर्कता और ढिलाई का मामला बड़ा नाजुक होता है। पति को न तो बहुत अधिक और न बहुत कम स्वतंत्रता देनी चाहिए। यदि पत्नी बहुत कृतज्ञ स्वभाव की है तो वह देखेगी कि उसका पति उससे ही भाग रहा है। जो स्नेह और पैसे वह दूसरी स्त्री पर व्यय करता है, वे मानो पत्नी के ही हिस्से के होते हैं। पति के ऊपर दूसरी स्त्री का प्रभाव पत्नी के लिए गम्भीर खतरा बन जाता है। पति या तो उससे सम्बंध-विच्छेद कर सकता है या दूसरी स्त्री को अपने जीवन में प्रथम स्थान दे सकता है। यदि पत्नी उस पर कड़ी निगरानी रखकर उसे परेशान करती है, घर में कलह की सृष्टि करती है। और मांगें करती रहती है तो निश्चय ही पति उसके विरुद्ध हो जाएगा। यह जानने और सीखने का विषय है कि किस प्रकार चालाकी के साथ कुछ ढील दी जाए। यदि पति धोखा देता है तो कभी- कभी आंखें बंद कर लेनी चाहिए, पर साथ ही खूब सतर्क भी रहना पड़ता है, खासकर किसी युवती के प्रति बड़ा ही सतर्क रहना पड़ता है, क्योंकि वह सहज ही उसके पति को अपने वश में कर लेती है। जिस प्रतिद्वंद्वी से भय हो, उससे दूर करने के लिए उसे पति को छुट्टियों में बाहर ले जाना चाहिए, उसके मनोरंजन का कोई साधन प्रस्तुत करना चाहिए। यदि किसी प्रकार सफलता नहीं मिलती तो पत्नी आंसू बहाती है, व्याकुल हो जाती है, कलह करती है, आत्महत्या की चेष्टा करती है। लगातार दोषारोपण की स्थिति में

निश्चय ही पति घर छोड़ सकता है। जिस समय पत्नी को अति आकर्षक और मोहिनी शक्ति से पूर्ण होना चाहिए, उसी समय वह अपने को पति की दृष्टि में असहाय बना लेती है। यदि उसे इस खेल में जीतना है तो वह कभी आंसू गिराएगी, कभी मुस्कुराएगी। वह भी छलिया प्रेमिका की भूमिका निभाएगी।

यह विज्ञान बहुत कष्टपूर्ण और जटिल है। कपट करना, चाल चलना, चुप रहकर घृणा और भय से भरी रहना, किसी पुरुष की कमजोरी और स्वाभिमान से खेलना, उसे बाध्य करने की कला सीखना, उसे धोखा देना- यह सब कुछ एक जटिल व्यूह जैसा है। स्त्री एकमात्र उलाहना यह देती है कि शादी-सम्बंधी सभी मामलों में उसे ही अधिक उलझना पड़ता है। उसके पास न कोई लाभदायक पेशा है, न उसमें कानूनी क्षमताएं हैं और न उसके निजी रिश्तेदार हैं। उसका नाम भी बदल जाता है। वह अपने पति की अर्धांगिनी है। यदि वह त्याग देता है तो उसे बाहर से न कोई सहायता देता है और न उसके स्वयं के पास कोई मजबूत साधन रहता है। टालस्टाय की पत्नी सोफीया की आलोचना करना तो आसान है पर यदि वह वैवाहिक जीवन में पाखंड न रचती तो कहां जाती? उसका क्या भाग्य होता? यह निश्चित है कि यह कर्कशा स्त्री घृणित लगती है किंतु क्या उसे कहा जा सकता था कि वह अत्याचारी पति से प्यार करे? वफादारी तभी सम्भव है जब दोनों एक-दूसरे से खुले हों और आपस में बराबरी का बर्ताव करें। पुरुष आर्थिक रूप से स्वतंत्र है और कानून तथा रीति-रिवाज उसको ही विशेष सुविधाएं देते हैं, इसीलिए क्या यदि वह अत्याचारी के रूप में प्रकट होता है तो क्षम्य है? और क्या तब भी स्त्री का विद्रोह छल ही कहलाना चाहिए?

विवाह की अंतर्निहित दुखांत घटनाओं और सम्भावित अपूर्णताओं को कोई अस्वीकार नहीं करता किंतु विवाह-प्रथा के समर्थकों का कथन है कि व्यक्तियों को दुर्भावनाएं ही दु:ख का कारण होती हैं, विवाह-प्रथा नहीं। 'वार एंड पीस' नामक पुस्तक में टालस्टाय ने जिस आदर्श दम्पति का वर्णन किया है, वे हैं- पियरे और नताशा। नताशा भी नखरेबाज और मनचली युवती थी किंतु विवाह के पश्चात् अपना पहनावा, समाज और मनोरंजन त्यागकर उसने सबको आश्चर्य में डाल दिया। वह दिल से अपने पति और संतानों में लीन हो गई। उसने अपने जीवन की उस लपट को त्याग दिया जो किसी समय उसके जीवन का आकर्षण थी। उसने अपने पति के प्रति कठोर और ईर्ष्यालु रुख प्रदर्शित किया। फलस्वरूप उसने अपने पुराने साथियों को त्याग दिया और अपना पूर्ण ध्यान परिवार और व्यापार की ओर लगा दिया।

इन आदर्श चरित्रों का आलोचनात्मक विश्लेषण अपेक्षित है। टालस्टाय का कथन है कि पति और पत्नी इस प्रकार एक-दूसरे के साथ जुड़े रहते हैं जिस प्रकार आत्मा और देह । यदि आत्मा शरीर को त्याग दे तो शरीर एक शव रह जाता है। यदि पियरे नताशा से प्रेम करना बंद कर देता तो नताशा का क्या होता? पत्नी को गलती हो या न हो, पुरुष अपनी

इच्छामात्र पर उसे छोड़ सकता है। पियरे, जो पूर्ण स्वस्थ और कामुक व्यक्ति था, अन्य स्त्रियों के प्रति आकर्षित हो सकता था। नताशा अपनी ईर्ष्या प्रदर्शित कर सकती थी। उनके सम्बंध कटु होने के पहले ही वह उसे छोड़ सकता था जिससे उसका जीवन नष्ट हो जाता या फिर वह उसे झूठ बोलता रहता और दु:ख के साथ जीवन-यापन करता, या वे फिर आपस में समझौता कर लेते और अर्धतुष्ट रहते, इससे भी उनका जीवन दु:खी ही रहता। यह आपत्ति की जा सकती है कि नताशा की संतान थी, किंतु माता-पिता के सुखी सम्बंधों की स्थिति में ही संतान सुख का कारण होती है। जिस पत्नी की उपेक्षा की जाए, जो ईर्ष्या की आग में जले, उससे संतान के प्रति अंध-प्रेम की आशा करना व्यर्थ है। दूसरों की दृष्टि में एक व्यक्ति मिट्टी की प्रतिमा हो सकता है, वास्तविक देवता नहीं। ऐसे देवता की पूजा करके व्यक्ति अपने जीवन की रक्षा नहीं कर सकता, उसे नष्ट भले ही कर दे। पर इसका पता कैसे लगे? पुरुषों के दावे में विरोध रहता है । सत्ता हमेशा सफल नहीं होती। स्त्रियों को निर्णय लेना चाहिए और आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। वे एक शांत प्रतिध्वनि मात्र नहीं रह सकती। स्त्रियों के ऊपर उन सिद्धांतों और मूल्यों को थोपना अनुचित है, जिन्हें वे अपने प्रयासों और अनुभवों द्वारा नहीं समझ सकी हों। वे पति के विचारों से सहमत भी हो सकती हैं, असहमत भी। अपने स्वतंत्र चिंतन द्वारा पत्नी को पति के विचारों का न तो अंध-विरोध करना चाहिए और न अंध-समर्थन । अपने अस्तित्व को बनाए रखने के कारणों को स्त्री दूसरे से उधार नहीं ले सकती।

पियरे और नताशा की कहानी का सबसे कटु निर्णय टालस्टाय के अन्य दम्पति पात्र लियो और सोफी में मिलता है। सोफी को अपने पति के प्रति तीव्र घृणा है। वह उसे नीरस पाती है। पति उसको धोखा देता है। पड़ोस की एक किसान-औरत के साथ उसका अवैध सम्बंध है। वह ईर्ष्या से जलकर मृत्यु की गोद में समा जाना चाहती है। वह मानसिक विकृति की स्थिति में अनेक गर्भ धारण करती है। उसके हृदय का सूनापन उसकी संतान नहीं दूर कर सकती और न उसके खाली दिनों को पति ही भर सकता है। घर सोफी के लिए बंजर रेगिस्तान है और लियो के लिए घर ही पृथ्वी पर नरक का रूप। इस कहानी का अंत तब होता है जब सोफी वृद्धावस्था में पहुंच जाती है। वह उन्मादित अवस्था में ठंडी रात में जंगल में अर्ध-नग्न पड़ी रहती है। वृद्ध और निष्ठुर लियो उसे उसी अवस्था में छोड़कर भाग जाता है।

इस कहानी की यह घटना अपवाद हो सकती है। अनेक ऐसे विवाह सफल होते हैं जिनमें पत्नी और पति समझौता कर लेते हैं । वे बिना किसी विशेष संताप के एक साथ रहते हैं। उन्हें एक-दूसरे से अधिक झूठ नहीं बोलना पड़ता, पर एक अभिशाप से वे मुश्किल से ही बच सकते हैं। वह है 'ऊब'। चाहे पति पत्नी को अपनी प्रतिध्वनि बना ले, या दोनों अपनी-अपनी दुनिया में अलग-अलग सिमटे रहें । कुछ समय के बाद उनके पास

एक-दूसरे से कहने-सुनने के लिए कुछ नहीं रहता। दम्पति मानो एक ऐसे समाज के सदृश हैं जिसके सदस्य अपनी स्वतंत्रता खो बैठते हैं पर एकाकी नहीं होते। वे आपस में बंधे होते हैं । वे 'एक' हैं। उनका सम्बंध बहुमुखी और जीवनोल्लास से पूर्ण नहीं होता। यही कारण है कि वे एक-दूसरे को कुछ दे नहीं सकते, न अदल-बदल कर सकते हैं। विचार-जगत् और वासना-जगत् दोनों में एक ही अवस्था रहती है। हजारों शामें कुछ अस्पष्ट बातचीत, चुप्पी और आंख के सामने अखबार रखकर जम्हाई लेते बीत जाती हैं। सोने के लिए वे बिस्तर पर चले जाते हैं।

कभी-कभी कहा जाता है कि यह शांति उस घनिष्ठता का परिचय है जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसे तो कोई भी अस्वीकार नहीं करेगा कि वैवाहिक जीवन सामीप्य और घनिष्ठता का सृजन करता है। यह बात तो हर पारिवारिक सम्बंध पर लागू होती है। चाहे वहां घृणा, ईर्ष्या व विषाद पनप ही रहे हों, किंतु इस प्रकार की घनिष्ठता और मानव-साथी के प्रति सच्ची भावना में बहुत अंतर है।

प्रणय-प्रेम के समर्थक यह स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हैं कि यह प्रेम-सम्बंधी मामला नहीं है। यही तथ्य इस समस्या को आश्चर्यजनक रूप देता है। हाल में ही मध्यमवर्ग ने एक विशेष प्रकार की शैली अपनाई है जिसके अनुसार रोज के नियमबद्ध कार्यों को साहसिक कार्यों को संज्ञा दी गई है। इसके अनुसार उदासीनता बुद्धिमत्ता बन जाती है और परिवार से घृणा प्रेम का सबसे गहरा रूप। एक सत्य तो यह है कि जब दो व्यक्ति एक-दूसरे से घृणा करते हुए भी एक-दूसरे के बिना जीवनयापन नहीं कर सकते तब ऐसे सम्बंध को सच्चा और हार्दिक नहीं कहा जा सकता बल्कि यह अति दयनीय सम्बंध होता है। आज का मनोविज्ञान यह प्रमाणित कर रहा है कि किस प्रकार निषेधात्मक सम्बंध से जुड़े दम्पति एक-दूसरे की क्षमता क्षीण करते रहते हैं। पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर व्यक्तियों के लिए यही सच्चा आदर्श है कि वे पारस्परिक प्रेम के आधार पर आपस में सम्बंध स्थापित करें। टालस्टाय को यह सराहनीय प्रतीत हुआ कि पियरे और नताशा के सम्बंध आत्मा और शरीर की तरह मजबूत हैं। यदि हम द्वैतवादी काल्पनिक सिद्धांतों को मान लें कि शरीर आत्मा के लिए एक नितांत आकस्मिक वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है और प्रणय-सूत्र के बंधन में बंधे व्यक्तियों के लिए दूसरे का साथ अनिवार्य, नीरस और नैमिनिक होता है तो यह एक विवेकहीन और अवांछनीय स्थिति होगी। जैविक अस्तित्व के लिए एक को दूसरे का साथ स्वीकार करना पड़ेगा और उससे प्रेम करना पड़ेगा। इन दो शब्दों को मानो जान-बूझकर उलझन पैदा करने वाला बना दिया गया है और इसीलिए सम्बंधों में रहस्यात्मकता की सृष्टि होती है। यदि कोई किसी को स्वीकार करता है तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह उससे हमेशा प्यार करता रहेगा। प्रेम बाह्य स्थिति के अनुसार स्थापित होने वाला एक गत्यात्मक सम्बंध होता है। वह अन्य व्यक्ति के प्रति उमड़ने वाला संवेग होता है। दोनों अस्तित्व पृथक

और भिन्न होते हैं। किसी भी बोझ को और अत्याचार को स्वीकार कर लेना प्रेम नहीं, बल्कि विकर्षण- भरा स्वीकार है।

किसी मानव-सम्बंध का मूल्य प्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से ही होता है। संतान और माता- पिता के सम्बंधों का मूल्य तभी होता है जब उन्हें पूर्ण चेतनता द्वारा अनुभव किया जाता है। यह आश्चर्य की बात नहीं कि पति-पत्नी के प्रत्यक्ष प्रेम-अनुभवों के बावजूद सम्बंधों की घनिष्ठता कम होती जाती है। इस स्थिति में पति और पत्नी अपनी भावनात्मक स्वतंत्रता खो देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रणय-प्रेम एक विचित्र मिश्रित भावनाओं का उपनाम है जिसमें स्नेह, अफसोस, घृणा, संयम, त्याग, नीरसता और आडम्बर निहित होते हैं। प्रेम की वास्तविकता के लिए आवश्यक है कि प्रेमी को स्वतंत्रता प्राप्त हो। प्रेम में स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंदता नहीं है। यह एक कोमल भाव है। यह भावनाओं का सम्बंध है। जिस क्षण यह भाव उठता है, उसी क्षण तिरोहित नहीं हो जाता। यह व्यक्ति-विशेष पर निर्भर होता है कि वह प्रेम के भाव को बनाए रखेगा या तोड़ देगा। मानव-भाव किसी बाहरी प्रतिबंध से नहीं बंधते, स्वतंत्र रहते हैं। मानव निर्भीक होकर सच्चाई के साथ इनका अनुभव करता है। प्रणय- प्रेम से जुड़े प्रतिबंध व्यक्ति को विवश करते हैं कि वह झूठ बोले, भावनाओं को दबाए। वास्तव में प्रतिबंध दम्पति को एक-दूसरे को जानने और समझने नहीं देते । प्रत्येक दिन की घनिष्ठता भी सहानुभूति और एक-दूसरे को समझने की क्षमता पैदा नहीं करती। पति पत्नी के प्रति इतना सम्मान प्रदर्शित करता है कि वह उसके मानसिक जीवन को ठीक प्रकार से समझ नहीं सकती। पति यह नहीं समझ पाता कि पत्नी भी कुछ ऐसी निजी समस्याओं से ग्रस्त होती है जो उसे परेशान कर सकती हैं। क्या वह पति से वास्तव में प्यार करती है ? क्या वह उसकी आज्ञाओं का पालन करके सुखी है ? वह इन प्रश्नों को पूछना नहीं चाहता। उसे ये प्रश्न भयंकर प्रतीत होते हैं।

पति सोचता है कि उसने एक अच्छी पत्नी से विवाह किया है। वह स्वभाव से गुणवती, श्रद्धालु,. वफादार, संतुष्ट और पवित्र है। वह वही सोचती है जो उसके लिए सोचना उचित है। पुरुष एक लम्बी बीमारी के बाद स्वस्थ होने पर अपने मित्रों, रिश्तेदारों और नों को देखभाल के लिए धन्यवाद देता है, पर जो पत्नी छह महीनों तक उसके बिस्तर के पास बैठी रहती है, उससे वह कहता है, "मैं तुम्हें धन्यवाद देता। तुमने अपना कर्त्तव्य निभाया है।" पति पत्नी की अच्छाइयों को कभी भी विशेष महत्त्व नहीं देता। पत्नी में इस गुण का होना समाज अनिवार्य समझता है। विवाह-संस्कार स्वयं यह ज्ञान कराता है कि पत्नी में सद्गुणों का होना अनिवार्य है। पुरुष भूल जाता है कि उसकी पत्नी किसी परम्परा से चली आती एक पवित्र रचनामात्र नहीं बल्कि एक जीता-जागता इंसान भी है। उसकी वफादारी और ईमानदारी को वह नियमस्वरूप मान लेता है। वह यह भूल जाता है कि वह भी लोभ में पड़ सकती है और उसकी भी लालसाएं हो सकती हैं। पत्नी बड़ी कठिनाई से धैर्य, पवित्रता

और शालीनता बनाए रखती है। पति यह नहीं समझता कि पत्नी के भी अपने स्वप्न, कल्पनाएं, इच्छाएं और अतीत के लगाव हैं। उसने भी किन्हीं भावनाओं में डूबकर अपना अतीत बिताया था। वह उसके सम्बंध में बड़ी भद्रता एवं स्नेह से सोचता और बोलता है। इस प्रकार सीधा-सादा पुरुष पत्नी द्वारा विश्वासघात करने पर भ्रम से मुक हो जाता है। उसे हठात् यह ज्ञात होता है कि उसकी पत्नी उससे प्रेम नहीं करती और उसे छोड़ रही है। बर्नस्टाइन के नाटकों में हमेशा यह दिखाया गया है कि पति की बदनामी तब होती है जब उसे यह पता चलता है कि उसकी पत्नी चोर, दुष्ट और बदचलन थी। वह इस सदमे को पुरुषोचित साहस से बर्दाश्त करता है, लेकिन नाटककार उसे हमेशा उदार और शक्तिशाली प्रदर्शित करता है, किंतु वास्तव में वह निग़ मूर्ख और गोबर-गणेश होता है। उसमें न तो सच्ची भावना होती है और न सद-इच्छा। पुरुष स्त्री को छल के लिए दोष दे सकता है किंतु उसका इतना विश्वास करना भी श्रेय की बात नहीं है। इसी कारण उसे बार-बार मूर्ख बनाया जाता है।

स्त्री का अनैतिक होना स्वाभाविक है। यदि वह नैतिक होती है तो उसे एक अतिमानवीय गुणों से सम्पन्न व्यक्तित्व प्राप्त करना पड़ेगा। वैसी स्थिति में वह आख्यानों की सद्गुणों वाली पत्नी, पूर्ण माता और ईमानदार स्त्री होगी। यदि उसे सोचने, कल्पना और इच्छा करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाए तो वह पुरुष के आदर्श के साथ विश्वासघात करेगी। इसलिए अनेक स्त्रियां पति की अनुपस्थिति में ही अपना असली रूप दिखलाती हैं। वे सोचती हैं कि वे अपने पति का सच्चा रूप देखती हैं क्योंकि वे उसे प्रतिदिन गौण परिस्थितियों में देखती हैं, किंतु पुरुष का सच्चा रूप अन्य व्यक्तियों के साथ प्रकट होता है। पुरुष के सर्वोपरि उठने के प्रयास को न समझना उसके असली स्वभाव को विकृत कर देना । एक पत्नी एक कवि से विवाह करती है और जब वह उसकी पत्नी बन जाती है तो सबसे पहले वह यही देखती है कि शौचालय में वह जंजीर खींचना भूल जाता है। कवि वास्तव में कवि ही रहता हैं और पत्नी, जो कि उसकी रचनाओं में रुचि नहीं लेती, उसे उतना नहीं जानती जितना कि उसके पाठक उसे जानते हैं। यह पत्नी का कसूर नहीं है कि उसे पति के कार्यों में भाग नहीं लेने दिया जाता। उसके पास न तो ऐसे अनुभव होते हैं और न संस्कृति ही, जिससे वह पति के कार्यों को समझ सके। वह पति के उन कार्यों में सहयोग नहीं दे पाती जिन्हें वह अत्यधिक आवश्यक समझता है। पली को दिन-प्रतिदिन का जीवन नीरस लगने लगता है।

कुछ विशेष स्थिति में, जहां पत्नी सच्चे रूप में पति की संगिनी होती है, पत्नी को पति के साथ बैठकर उसकी योजनाओं पर विचार-विमर्श का अवसर मिलता है। ऐसी स्थिति में भी पत्नी का यह सोचना भ्रामक है कि जिस कार्य को पूर्ण करने में उसने सहायता की, वह उसका अपना है क्योंकि पुरुष ही एक स्वतंत्र और जिम्मेदार व्यक्ति माना जाता है। यदि वह उससे प्रेम करती है तो उसे पति के कार्यों में आनंद का अनुभव करना चाहिए। यदि वह

ऐसा अनुभव नहीं करती तो उसे केवल परेशानी ही होगी। उसे अनुभव होगा कि उसके प्रयास निरर्थक हुए। बाल्जाक के सिद्धांतों पर चलने वाले पुरुष स्त्री के साथ गुलाम और दासी जैसा बर्ताव करते हैं जबकि वे चाहते हैं कि पत्नी यह सोचे कि वे उसे स्त्री की मर्यादा देते हैं। वे स्त्री के प्रभाव की अतिशयोक्तिपूर्ण व्याख्या करते हैं जबकि वे स्वयं जानते हैं कि वे झूठ बोल रहे हैं। अक्सर पुरुष पत्नी की अपेक्षा किसी अन्य से ही परामर्श लेता है। वह अन्य को कार्य का साथी बनाता है और उसे उस पर वैसा ही विश्वास रहता है, जितना कि पत्नी के साथ कार्य करने में। टालस्टाय ने अपनी एक पुत्री द्वारा पांडुलिपि की प्रतिलिपि बनवाई और संशोधन किया जबकि पत्नी का विश्वास था कि उसके कार्य के लिए वह अनिवार्य थी। स्त्री जिस कार्य को स्वतंत्र रूप से करती है, वही वास्तव में उसका स्वतंत्र कार्य माना जाता है।

वैवाहिक जीवन में भिन्न घटनाओं के भिन्न रूप होते हैं। अधिकांश स्त्रियों का दिन एक ही जैसा बीतता है। पति सुबह घर से चला जाता है और उसके प्रस्थान के पश्चात् दरवाजा बंद होने की आवाज सुनकर पत्नी आनंदित होती है। वह अब स्वतंत्र है। बच्चे स्कूल चले गए हैं। वह अकेली है। वह हजारों छोटे-छोटे कार्य करती है। उसके हाथ व्यस्त हैं पर उसका मस्तिष्क शून्य है। परिवार के लिए उसकी क्या योजना है? वह तो उन लोगों के लिए ही जीती है। उनके वापस आने पर उसकी खिन्नता दूर हो जाती है। उसका पति उसके लिए फूल लाया करता था। कुछ उपहार लाता था पर आज यह सब कितना मूर्खतापूर्ण प्रतीत होता है। आज वह घर लौटने की जल्दी में नहीं है। उसे मालूम है कि घर जाकर उसे वही दृश्य देखने हैं । दिन-भर ऊब का अनुभव करने वाली पत्नी पति पर खीझ उतारेगी। यदि वह पति की गलतियों पर चुप भी रहती है, तब भी पति निराश रहता है। वह श्रम से थक जाती है तब भी उसकी परस्पर-विरोधी इच्छाएं बनी रहती हैं। पत्नी से विश्राम और कार्य की प्रेरणा पाने की पति की इच्छा अव पूरी नहीं होती । शामें बड़ी नीरस होती हैं। कुछ पढ़ना, टी.वी. देखना, रूखी-सूखी बातें करना, एक-दूसरे के समीप रहते हुए भी दोनों को एकाकीपन का.ही अनुभव होता है। पत्नी आशा और भय के साथ सोचती है, "क्या आज रात को कुछ होगा?" निराशा लिए वह बिस्तर पर सोने जाती है। वह कभी परेशान रहती है, कभी आश्वस्त । दूसरे दिन सुबह पति फिर दरवाजा बंद कर चला जाता है। पत्नी खुश होती है। खटते हुए गरीबी में स्त्री का भाग्य और कठोर हो जाता है। अवकाश और मनोरंजन मिलने पर ऐसी स्थिति नहीं रहती, किंतु जीवन की खिन्नता और प्रतीक्षा से उत्पन्न निराशा असंख्य दम्पतियों के जीवन की नियति है।

ऐसे जीवन से छुटकारा पाने के रास्ते स्त्रियों को सुलभ नहीं होते। विवाह की बेड़ियां बड़ी मजबूत होती हैं और स्त्री को अपने को उस स्थिति के अनुकूल बनाना ही पड़ता है। वह छुटकारा नहीं पा सकती। कुछ स्त्रियां अपना महत्त्व रखते हुए अत्याचारी या कर्कशा बन

जाती हैं। कुछ शांति और समझौते की स्थिति में रहती हैं । वे आत्म-पीड़क कामुकता की शिकार और परिवार की गुलाम बन जाती हैं। जैसा कि युवतियों और किशोरियों में देखा गया है, वैसा ही आत्ममुग्धा जैसा व्यवहार कुछ स्त्रियां करती हैं। वे वास्तव में कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करतीं। उन्हें ऐसा अनुभव होता है कि उन्हें गलत समझा गया है, अतः वे अपने ही स्वप्नों, रोमांस, आडम्बरों और काल्पनिक नाटकों का आश्रय लेती हैं। इन प्रतीकात्मक व्यवहारों द्वारा स्त्री यथार्थ से भागना चाहती है; पर इससे उसका मानसिक पतन होता है।

अपनी परिस्थिति को समझते हुए भी जो स्त्री अपना दृष्टिकोण स्पष्ट रखने का निर्णय लेती है, वही सच्चे रूप में जीवनयापन करेगी। भौतिक रूप में दूसरे पर आश्रित होकर भी वह एक आंतरिक स्वतंत्रता का अनुभव करती है। वह परम्परागत सिद्धांतों को महत्त्व नहीं देती। वह अपना निर्णय लेती है, प्रश्न करती है और प्रणय की दासता से छुटकारा पाती है, किंतु उसके इस प्रकार उखड़े-उखड़े रहते हुए वफादारी करने और "सहन करो, बचती रहो, दूर रहो,' की स्थिति से एक नकारात्मक रुख की सृष्टि होती है। वह मानो गतिहीन हो जाती है। न वह संसार को त्यागती है और न उसका स्वस्थ रूप देख पाती है। वह अपनी शक्तियों का सार्थक या रचनात्मक प्रयोग नहीं कर सकती। वह दूसरों की सहायता करती है, सांत्वना देती है। वह कभी कुछ करती है तो कभी कुछ, पर अपने लिए कोई अनिवार्य कार्य निश्चित नहीं कर पाती। उसका कोई सच्चा लक्ष्य नहीं रहता। वह अपने एकाकीपन और खालीपन में अपने को ही अस्वीकार करती हुई नष्ट कर लेती है।

विवाह के प्रारम्भिक वर्षों में पत्नी भ्रम में रहती है। वह मुक्त हृदय से अपने पति की प्रशंसा करती है। वह उससे प्रेम करती है और ऐसा सोचती है कि पति और संतान के लिए वह अनिवार्य है। कुछ दिनों के पश्चात् उसको असलियत मालूम पड़ती है। वह यह महसूस करती है कि उसके बिना भी उसके पति का जीवन अच्छी तरह चल सकता है। उसकी संतान उससे पृथक हो जाएगी और उसके प्रति कभी भी आभारी नहीं होगी। घर उसके सूनेपन को भर नहीं पाएगा। वह अपने को एकाकी पाती है, बिल्कुल अकेली, एक व्यक्ति । सभी महान् लेखिकाओं ने तीस-वर्षीया स्त्री के हृदय में व्याप्त दुःख को महसूस किया है, स्त्री के चरित्र की यह विशेषता कैथरीन मैंसफील्ड, डोरोथी पार्कर और वर्जीनिया वुल्फ की नायिकाओं में पाई जाती है। स्त्रियां वैवाहिक जीवन के प्रारम्भ में मातृत्व के पद से विभूषित होकर प्रसन्नता से गाती हैं पर आगे चलकर एक प्रकार का शोक प्रदर्शित करने लगती हैं। यह उल्लेखनीय है कि फ्रांस में अविवाहित स्त्रियां जितनी आत्महत्याएं करती हैं, उतनी विवाहिताएं नहीं।

विवाह की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि यह स्त्री को अपेक्षित सुख नहीं देता। सुख के विषय में विवाह किसी प्रकार का आश्वासन नहीं देता। यह स्त्री को विकृत कर देता है।

उसके जीवन में एक ही 'घटना' दोहराई जाने लगती है और जीवन रूढिबद्ध रुटीन का शिकार हो जाता है। जीवन के प्रथम बीस वर्ष स्त्री के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण होते हैं। वह विश्व को देखती है और अपने भाग्य को जानती है। बीस वर्ष की आयु या इसके आसपास की आयु में वह एक घर की मालकिन बन जाती है। किसी पुरुष के साथ उसका स्थायी सम्बंध बन जाता है। उसकी गोद में एक शिशु खेलता है। जीवन के इस मोड़ पर पहुंचकर मानो उसका जीवन शेषप्राय हो जाता है। वास्तविक कार्यकलापों पर तो पुरुष का विशेष अधिकार रहता है। स्त्री को तो अपने को व्यक्त रखने के लिए कुछ करते रहना पड़ता है जो अक्सर बड़ी थकान पैदा करता है और कभी भी संतोष नहीं देता। उसके त्याग और श्रद्धा की सराहना होती है, किंतु उसकी दृष्टि में दो व्यक्तियों की देखभाल और चिंता करना बड़ा । निरर्थक-सा होता है। अपने को भूल जाना तो बड़ा अच्छा है, पर प्रश्न है, "किसके लिए और क्यों?" सबसे बुरी स्थिति तो यह है कि उसका अतिरिक्त प्रेम पुरुष को परेशान करता है। उसे यह दुराग्रह-सा प्रतीत होता है। पति को ऐसा लगता है मानो उस पर अत्याचार किया जा रहा है। वह इससे भागने की चेष्टा करता है । विडम्बना तो यह है कि पुरुष ही स्त्री से इस श्रद्धा और प्रेम की आशा भी करता है। वह चाहता है कि पत्नी उसे अपना सर्वस्व प्रदान कर दे, किंतु वह पत्नी को सर्वस्व देने के लिए तैयार नहीं होता।

पति का दोहरा व्यवहार पली के नाश का कारण बनता है किंतु आगे चलकर वह भी उसका शिकार बन जाता है। जिस प्रकार वह चाहता है कि पत्नी बिस्तर पर ठंडी और उत्तेजित, दोनों ही एक साथ रहे, उसी प्रकार वह यह भी चाहता है कि संसार में पत्नी उसे एक निश्चित स्थान पर स्थापित कर दे और फिर उसे स्वतंत्र भी छोड़ दे। जीवन की नीरस जिम्मेदारी पत्नी स्वयं उठाए और उसे किसी विषय में परेशान न करे। वह हमेशा करीब रहे पर कभी दुराग्रह न करे। वह चाहता है कि पत्नी हर रूप में उसकी रहे पर वह स्वयं पत्नी का होना नहीं चाहता। वह स्वयं को पूर्ण रूप से पत्नी को नहीं सौंपता । दाम्पत्य सम्बंधों के बावजूद वह अकेला रहना चाहता है। अतः पुरुष विवाह के दिन से ही पत्नी को धोखा देना शुरू कर देता है। स्त्री उसकी बेवफाई के दृश्य अपनी सारी जिंदगी देखती रहती है। डी. एच. लॉरेंस का काम-प्रेम के विषय में यह कहना बिल्कुल ठीक है, "पारस्परिक सम्पूर्णता का प्रयत्न करने पर दो मानवों का संयोग अंततः निराशा का ही रूप लेगा जिसका अर्थ होगा मौलिक रूप का विकृत हो जाना।" विवाह से दो व्यक्तियों का संयोग होना चाहिए। वे स्वतंत्र अस्तित्व होने चाहिए। विवाह आश्रय का रूप नहीं होना चाहिए और न भागने या जबर्दस्ती निर्वाह का। इब्सन की नोरा इस सत्य को अच्छी तरह जानती थी इसीलिए उसने पत्नी और माता बनने के पहले एक पूर्ण व्यक्ति बनने का निर्णय किया। पति और पत्नी के जोड़े को एक इकाई रूप में नहीं देखना चाहिए। आपसी लगाव की आधारशिला इसी विश्वास पर स्थापित की जानी चाहिए कि दोनों स्वतंत्र अस्तित्व हैं।

गहन पारस्परिक लगाव वाले दम्पति केवल कल्पना-जगत् में ही नहीं पाए जाते, यथार्थ जीवन में भी मिलते हैं। ऐसे आदर्श के रूप में कुछ विवाहित जोड़े भी मिलते हैं लेकिन प्रायः ऐसे जोड़े विवाह- बंधन से मुक्त दिखाई पड़ते हैं। कुछ जोड़ केवल 'काम-वासना' के वशीभूत होकर एक सूत्र में बंध जाते हैं। ये अपनी मित्रता और कार्य-क्षेत्र में स्वतंत्र रहते हैं। कुछ मित्रता के आधार पर बंधते हैं, पर इन्हें काम-सम्बंधी मामलों में पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। कुछ ऐसे भी होते हैं जो प्रेमी और मित्र, दोनों ही होते हैं । ये व्यक्ति एक-दूसरे में जीने का कारण नहीं ढूंढते। पुरुष और स्त्री के सम्बंधों के बीच अनेक सूक्ष्म भेद होते हैं । वे दोस्ती और आनंद के स्रोत हो सकते हैं। वे एक-दूसरे की सम्पन्नता और शक्ति के स्रोत भी हो सकते हैं। विवाह की असफलता के लिए केवल किसी व्यक्ति-विशेष को दोष देना युक्तिसंगत नहीं होता। यह कांट और टालस्टाय जैसे समर्थकों के दावे के प्रतिकूल होगा। विवाह-संस्था प्रारम्भ से ही विकृत रही है। यह सोचना और कहना कि स्त्री और पुरुष, जिन्होंने एक- दूसरे को साथी रूप में नहीं चुना है, कर्तव्यबद्ध हैं और उन्हें एक-दूसरे को सम्पूर्ण जीवन संतुष्ट रखना है, एक प्रकार की असंगत उक्ति है, जो अनिवार्यतः कपट, झूठ, शत्रुता और दुःख का कारण बनती हैं।

विवाह के परम्परागत रूप में परिवर्तन के बावजूद आज भी दोनों साथी विभिन्न रूपों में घुटन अनुभव करते रहते हैं। कुछ सीमा तक वे समानाधिकार का उपयोग करते हैं। आज वे प्रायः समान हैं। आज सी और पुरुष को पहले की अपेक्षा अपना साथी चुनने की अधिक स्वतंत्रता है। वे एक- दूसरे से सहज हो अलग हो सकते हैं । उस और संस्कृति में भी अब अंतर पहले की अपेक्षा कम रहता है। पति पत्नी को स्वतंत्रता को स्वेच्छा से स्वीकार कर लेता है। घर की देखभाल दोनों समान रूप से करते हैं। वे साथ-साथ मनोरंजन करते हैं। कैम्प में जाने, साइकिल की सवारी करने, तैरने और गाड़ी चलाने आदि में वे समान रूप से स्वतंत्र हैं। पत्नी अपना समय केवल पति के लौटने की प्रतीक्षा में नहीं गुजारतो। वह खेल के लिए बाहर जा सकती है। वह क्लबों में जाती है, संस्थाओं की सदस्या बनती है और संगीत-गोष्ठियों में सम्मिलित होती है। अब वह घर के बाहर भी व्यस्त रह सकती है। अब वह कोई ऐसा पेशा भी कर सकती है, जिससे कुछ आय हो।

कुछ ऐसे युवा दम्पति यह प्रदर्शित करना चाहते हैं कि उनके घर में बिल्कुल समानता है। जब तक कि पुरुष के हाथों में आर्थिक जिम्मेदारी रहेगी तब तक समानता का यह दावा भ्रम ही रहेगा। अपने कार्य की सुविधा के अनुसार पुरुष निर्णय करता है कि वे कहां रहेंगे। पत्नी उसके साथ गांव से शहर और शहर से गांव जाती है। पति की आय और पेशे के अनुसार ही स्त्री के जीवन का स्तर निर्धारित होता है। पति के व्यापार और पेशे के अनुसार ही दैनिक, साप्ताहिक और वार्षिक बजट बनता है। पुरुष के पेशे के अनुसार ही मित्रता और सम्बंध बनते हैं। वह पत्नी से अधिक समाज में घुला हुआ है इसलिए बौद्धिक,

राजनीतिक और नैतिक मामलों में वही स्त्री का पथ-प्रदर्शन करता है। सम्बंध-विच्छेद स्त्री के लिए व्यावहारिक सम्भावना नहीं है क्योंकि वह आय नहीं कर सकती। अमरीका में पुरुषों को त्यक्ता पत्नी को निर्वाह-धन देना पड़ता है। यह एक विशेष परिमाण में होता हैं किंतु फ्रांस में परित्यक्ता पत्नी और माता को बहुत कम खर्च मिलता है जो कि एक प्रकार से निंदनीय होता है।

पति और पत्नी के मध्य असमानता के और भी कारण हैं। पुरुष अपने कार्य और कार्य-क्षेत्र में तादात्म्य-बोध का अनुभव करता है, किंतु पत्नी को ऐसो स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। उसकी स्वतंत्रता का रूप नकारात्मक है। अमरीकन स्त्रियों को परिस्थिति प्रायः ह्रासशील रोमन स्त्रियों की तरह है। ये स्त्रियों कुछ सीमा तक स्वतंत्र थी। कुछ स्त्रियां अपना जोवन अपनी मातामही की तरह सद्गुणों से पूर्ण गुजारती थी और बिल्कुल अव्यवस्थित जोवन जीतो थी। इसी प्रकार कुछ अमरीकन स्त्रियां घर में हो रहती थीं। उनका आचरण परम्परागत आचरण के हो सदृश था और बाकी स्त्रियां अपने समय और गुणों को व्यर्थ नष्ट करती थीं। यद्यपि फ्रांस में पति पत्नी के प्रति सद्भावना रखता है पर मां बन जाने पर घर की सारी जिम्मेदारियां पलो को ही घेर लेती हैं।

आमतौर पर कहा जाता है कि आधुनिक परिवारों में, खासकर संयुक्त राज्य अमरीका में, पति की स्थिति गुलाम की तरह है। यह कोई नई बात नहीं है। प्राचीन काल से हो ग्रोक के पुरुषों ने लियों के अत्याचार को शिकायत की है। यह सत्य है कि आजकल स्त्रियां पुरुषों के क्षेत्रों में हस्तक्षेप करती हैं। अतीत में स्त्रियों के लिए वे क्षेत्र वर्जित थे। मुझे विश्वविद्यालय के छात्र-जोड़ों के बारे में ज्ञात है कि वहां स्त्री पुरुष की सफलता के लिए संघर्ष करती है। वह उसकी समय-तालिका और भोजन विधिवत् व्यवस्थित रखती है। वह उसके कामों पर नजर रखती है और उसे हर प्रकार के मनोरंजन से वंचित रखती है मानो उसे ताले-चाभी के अंदर बंद रखेगी। यह भी सच है कि आज पुरुष स्त्री की इस निरंकुशता के सम्मुख रक्षा-हीन है। पत्नी स्त्री के संवैधानिक अधिकारों का प्रयोग कर सकती है। अतः उसके जिस महत्त्व और शक्ति को क्षीण किया गया है, पुरुष को वह क्षति अपनी कीमत पर पूरी करनी होगी। स्त्री और पुरुष में समानता स्थापित करने के लिए पुरुष को स्त्री को अधिक अवसर देना पड़ेगा क्योंकि उसके पास अधिक अधिकार हैं। संक्षेप में, यदि वह पुरुष से कुछ मांग करती है, प्राप्त करती है तो निष्कर्ष यही है कि वह दरिद्र है। यहां 'स्वामी और दास' का तर्क पूर्णरूप से युक्तिसंगत हो सकता है। यदि कोई किसी को अधीनस्थ करना चाहता है और उसकी स्वतंत्रता की मांग का प्रतिरोध करता है तो अधीनस्थ प्राणी भी उस पर दबाव डालेगा, प्रतिरोध की चेष्टा करेगा। सम्बंधों का यह दुष्चक्र पारस्परिकता के भाव से ही खत्म हो सकता है। अपने विवेक द्वारा ही पुरुष अपनी स्वतंत्रता और सत्ता सीमित कर लेते हैं। वे अकेले उपार्जन करते हैं। पत्नी उनसे चेक मांगती है। पत्नी उनके काम में सफलता चाहती

है। इसका कारण यह है कि पुरुष सर्वोच्चता का मूर्त रूप है और पत्नी उसके इस रूप को नष्ट करना चाहती है।

इसके विपरीत कहना चाहिए कि स्त्री द्वारा किया गया अत्याचार पुरुष पर उसकी निर्भरता को ही दिखाता है । वह जानती है कि दम्पति की सफलता,भविष्य, सुख और अस्तित्व एक-दूसरे पर निर्भर हैं। यदि वह पुरुष को अपनी इच्छा के अनुसार झुकाना चाहे तो उसका कारण यह है कि वह उससे भिन्न और पृथक है। व्यक्ति-रूप में उसकी रुचि पति में ही है। वह अपनी कमजोरी को शस्त्र बनाती है और वस्तुतः वह कमजोर होती है। प्रणय-दासता पुरुष के लिए प्रतिदिन की मानो झुंझलाहट है परंतु पत्नी के लिए तो यह झुंझलाहट और भी अधिक है। पत्नी, जो कि घंटों पति को अपने पास रखती है, उसका कारण यह है कि वह स्वयं ऊबी रहती है, और इसीलिए पति को उबाना चाहती है। अंत में हम यह देखते हैं कि पुरुष स्त्री के बिना सहजता से जीवन चला सकता है पर स्त्री पुरुष के बिना नहीं। यदि पति उसे छोड़ दे तो उसका जीवन नष्ट हो जाता है। दोनों में अंतर यह है कि स्त्री की निर्भरता आंतरिक होती है। जब वह ऐसा प्रदर्शित करती है कि वह स्वतंत्र है, तब भी वह वास्तव में गुलाम ही रहती है, जबकि पुरुष मुख्यतः स्वतंत्र है और उस पर जो बंधन हैं, वे मात्र बाह्य हैं। यदि वह कभी-कभी स्त्री का शिकार प्रतीत होता है तो इसका कारण यह है कि उसके दायित्व बहुत स्पष्ट हैं। पति और पत्नी एक ही संस्था द्वारा उत्पीड़ित किए जाते हैं जबकि इस संस्था का निर्माण वे स्वयं नहीं करते। यह समाज, जिसका निर्माण पुरुषों अपने स्वार्थ के लिए किया, स्त्री की ऐसी स्थिति निश्चित करता है जो आज पुरुष और स्त्री. दोनों के लिए दुखद है।

स्त्री और पुरुष, दोनों के कल्याण के लिए आज स्थिति बदलनी चाहिए। स्त्री के लिए विवाह की अनिवार्यता को कैरियर बनाना प्रतिबंधित किया जाना चाहिए।

स्त्री अत्यंत बुरी है, इस आधार पर अपने को स्त्री-विरोधी कहने वाले पुरुष विवेकशील नहीं हैं। यह तो विवाह-प्रणाली है जो स्त्री को प्रार्थी का रूप देती है। यह प्रणाली उसे जोंक की तरह रक्तपिपासु जीव बनाती है। आवश्यकता है कि इस प्रणाली को बदल दिया जाए और फलस्वरूप स्त्री की साधारण स्थिति में परिवर्तन लाया जाए। स्त्री पुरुष पर निर्भर रहती है क्योंकि उसे स्वावलम्बी होने की अनुमति नहीं है। स्त्री को स्वतंत्रता प्रदान करके पुरुष स्वयं स्वतंत्र हो जाएगा और उसे भी संसार में कुछ करने का अवसर दे देगा।

कुछ स्त्रियां इस प्रकार की सक्रिय और पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने की चेष्टा कर रही हैं। कुछ स्त्रियां अपने अध्ययन और पेशे में बहुत परिश्रम करती हैं। साधारणतः वे अच्छी तरह जानती हैं कि उनको अपनी काम-सम्बंधी रुचि को अपने पति की रुचि पर छोड़ देना पड़ेगा। उनकी आय घर की आय की सहायक होती है। वे अपने को ऐसे कार्यों में लगाती हैं जो उन्हें प्रणय-दासता से स्वतंत्र नहीं कर सकते। वे स्त्रियां भी, जो किसी विशेष पेशे में

लगी हैं, समाज से वे लाभ नहीं प्राप्त कर सकती जो पुरुष प्राप्त करते हैं। अनेक स्त्रियों को अपने कार्य में पूर्ण स्वतंत्रता है पर साथ ही ऐसी भी अनेक स्त्रियां हैं जिन्हें बाहर का काम महंगा पड़ता है। यह उनकी घरेलू काम की थकान और बढ़ा देता है। प्रायः देखा जाता है कि शिशु का जन्म होने पर उन्हें अपना कार्य-क्षेत्र सीमित कर देना पड़ता है। उनकी प्रथम भूमिका माता की बन जाती है। कार्य और मातृत्व के भार में सामंजस्य स्थापित करना वर्तमान अवस्था में बहुत कठिन है।

परम्परा के अनुसार शिशु ही स्त्री को वास्तविक स्वतंत्रता दे सकता है क्योंकि उसके लालन- पालन में लग जाने पर वह अन्य दायित्वों से मुक्त हो जाती है। पत्नी के रूप में वह पूर्ण व्यक्ति हो या न हो, मां के रूप में अवश्य है। संतान ही उसका सुख है और वही उसके अस्तित्व को सार्थक करती है। संतान द्वारा ही वह सामाजिक और 'सेक्स' के रूप में अपने को पहचान सकती है। अतः गर्भधारण द्वारा ही विवाह का अर्थ पूरा होता है। स्त्री के जीवन के इतिहास में उसकी इस महान् अवस्था का विवेचन करना उचित होगा।

मातृत्व

मातृत्व का दायित्व ग्रहण करके स्त्री अपने 'शारीरिक भाग्य' को पूर्ण करती है। उसकी शारीरिक रचना ही जीवन के नैरंतर्य को बनाए रखने की दृष्टि से की गई है किंतु पुरुष समाज सब कुछ प्रकृति पर नहीं छोड़ना चाहता। आधुनिक जैविक अनुसंधानों के फलस्वरूप मनुष्य का जन्म अव इच्छा पर निर्भर होता है। कुछ देशों में जनसंख्या पर नियंत्रण के लिए गर्भ-निरोध के साधन अपनाए जाने लगे हैं। कैथोलिक प्रभाव वाले देशों में भी गुप्त रूप से गर्भ-निरोधक साधनों का प्रयोग होता रहा है। पुरुष को स्त्री की अंत्यधिक उर्वरा शक्ति से क्षोभ होता है और स्त्री भी यह सोचकर डरती रहती है कि पुरुप उसके शरीर में वीर्य-शुक्राणुओं का प्रवेश न करा दे। दोनों की सतर्कता के बावजूद स्त्री के गर्भवती हो जाने पर गर्भपात को अवैध मानने वाले देशों में स्त्री के प्रणय- जीवन में खलल पैदा होता है।

मध्यवर्गीय समाज की दृष्टि से गर्भपात बहुत बड़ा अपराध है। इस घटना का उल्लेख पूरी मानवता को कुत्सित रूप में प्रकट करने जैसा है। गुर्भपात की घटना स्त्री के जीवन में सबसे त्रासद संकट होती है। कुछ देशों में कानून इसे अपराध मानता है। गर्भपात को वैध बनाने के विरुद्ध दिए जाने वाले तर्क बहुत असंगत हैं । कहा जाता है कि यह ऑपरेशन खतरनाक है किंतु योग्य एवं ईमानदार चिकित्सकों का मत है कि यह ऑपरेशन यदि अस्पताल में पूरी सावधानी के साथ योग्य विशेषज्ञों द्वारा किया जाए तो इसमें किसी प्रकार का खतरा नहीं है जैसा कि दंडविषयक कानून बताता है। इसके विपरीत आज जिस रूप में

ये ऑपरेशन प्रायः होते हैं और जिस दुर्व्यवस्था में चिकित्सक ऑपरेशन करते हैं, उसके फलस्वरूप अनेक दुर्घटनाएं होती हैं।

जोर-जबरदस्ती मातृत्व का भार सौंप देने से संसार में अभागी संतानें आती हैं। माता-पिता उनका लालन-पालन करने में असमर्थ रहते हैं। ऐसी संतानें जनता की देख-रेख में रहती हैं। यह ध्यान देने की बात है कि हमारा समाज भ्रूण के अधिकारों की रक्षा तो करता है, किंतु उत्पन्न संतान में उसकी रुचि नहीं होती। गर्भपात कराने वाले व्यक्तियों को समाज दंड देता है, किंतु उन निंदनीय रूढ़ियों और परम्पराओं को सुधारने की चेष्टा नहीं करता, जिनसे बच्चों को कठिन यातना और असुरक्षा के वातावरण में रहना पड़ता है। बाल-आश्रमों में बच्चों के साथ जो क्रूर व्यवहार किया जाता है, समाज की आंखें उस ओर से बंद रहती हैं। यह नहीं माना जाता कि भ्रूण उस स्त्री का ही होता है जो उसे गर्भ में धारण करती है। यह स्वीकार किया जाता है कि बालक माता-पिता दोनों का होता है और उनकी दया पर आश्रित रहेता है। एक सर्जन ने सिर्फ इसलिए आत्महत्या कर ली कि उस पर गर्भपात कराने का अभियोग लगाया गया। एक पिता ने अपने पुत्र को इतना पीटा कि वह मृतप्राय हो गया, इसलिए पिता को तीन महीने कारावास में रखा गया। किसी पिता ने अपने पुत्र की देखभाल नहीं को और सुखंडी रोग से पीड़ित होकर मर गया। एक माता ने अपनी बीमार पुत्री के लिए चिकित्सक को बुलाने से इनकार कर दिया क्योंकि वह पूर्ण रूप से ईश्वर की इच्छा पर आश्रित थी। कब्रिस्तान में बच्चों ने उस माता पर ईंटें उछाली, किंतु जब पत्रकारों ने ऐसे माता-पिता के प्रति घृणा प्रकट की तो कुछ योग्य व्यक्तियों ने इसका विरोध किया और कहा कि संतान तो माता-पिता की होती है, इस विषय में दूसरों को हस्तक्षेप का अधिकार नहीं है। प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार ज्ञात होता है कि इस रुख के फलस्वरूप फ्रांस में लाखों की संख्या में बच्चे शारीरिक और नैतिक रूप से खतरे में हैं। उत्तरी अफ्रीका की अरब स्त्रियां गर्भपात नहीं करा सकतीं, और यदि उनके दस बच्चों में से सात या आठ मर भी जाते हैं तो उन्हें दुःख नहीं होता, क्योंकि उन्हें इतनी बार गर्भधारण करना पड़ता है कि उनकी मातृत्व की भावना ही नष्ट हो जाती है। अगर यह नैतिकता है तो इसके विषय में क्या कहा जा सकता है? यह बता देना चाहिए कि जिन विवेकशील व्यक्तियों में भ्रूण के जीवन के प्रति इतना अधिक सम्मान है, वे ही ऐसे व्यक्ति होते हैं जो युद्ध में उत्साह सहित वयस्कों को मृत्यु की गोद में पहुंचा देते हैं।

गर्भपात के विरुद्ध प्रचलित व्यावहारिक विचार तथ्यहीन हैं। वे इस पुराने कैथोलिक तर्क के सदृश हैं : "अजन्मे शिशु में भी आत्मा रहती हैं। यदि जन्म के पहले इसे नष्ट कर दिया जाए तो आत्मा स्वर्ग नहीं पहुंच सकती।" यह महत्त्वपूर्ण है कि चर्च भी युद्ध और कानूनी फांसी को मान्यता देकर वयस्क व्यक्तियों की हत्या करने की अनुमति देता है, लेकिन भ्रूण-अवस्था के मनुष्य के प्रति चर्च समझौताहीन मानववाद प्रदर्शित करता है।

वास्तविक प्रश्न यह उठता है कि चूंकि बपतिस्मा के बिना आत्मा का उद्धार सम्भव नहीं होता और बपतिस्मा जीव के जन्म के बाद ही सम्भव है, इसलिए भ्रूण-हत्या पाप है। लेकिन यही ईसाइयत धर्मयुद्ध के दौरान विधर्मियों की सामूहिक हत्या को प्रोत्साहित करती है। इसमें संदेह नहीं कि धर्माधिकार के शिकार सभी लोगों को दैवी-कृपा नहीं मिलती लेकिन जो अपराधी आज फांसी की सजा भोगते हैं या जो सैनिक युद्ध-क्षेत्र मे मारे जाते हैं, उनकी आत्माओं को भी तो मुक्ति नहीं मिलती?

सत्य तो यह है कि यहां बाधक रूप में वह पुरानी परम्परा है, जिसका नैतिकता से कोई सम्बंध नहीं। डॉ. राय ने अपनी पुस्तक, जो कि उन्होंने 1943 में लिखी थी और पेटेन को समर्पित की थी, में लिखा है कि वास्तव में गर्भपात कराने में भी खतरा रहता है। वे गर्भपात को भी अपराध ही नहीं बल्कि दुष्कर्म मानते हैं। उन्होंने इसका निषेध उस अवस्था में भी किया है जब गर्भधारण माता के जीवन और स्वास्थ्य के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है। दो जीवनों के बीच में किसे बचाया जाए? किसी एक पक्ष में होना उनके अनुसार अनैतिक है। उनकी दृष्टि में माता के जीवन का बलिदान उचित है। वे कहते हैं कि 'भ्रूण' एक स्वतंत्र जीवन है। वह मां का नहीं होता। वे कहते हैं कि भ्रूण माता के शरीर का एक अंश होता है। वह पराश्रित जीव है जो मां के ऊपर आश्रित है। आज भी अनेक स्त्री-विरोधी व्यक्तियों को स्त्री के उद्धार के अनुकूल सब कुछ अमान्य है।

वह कानून, जो अनेक युवा स्त्रियों की मृत्यु, बांझपन और बीमारी का कारण है, शिशु-जन्म की संख्या बढ़ाने में असमर्थ है। गर्भपात को पसंद और नापसंद करने वाले, दोनों कोटि के व्यक्ति इस बात से सहमत हैं कि दमन करने वाला कानून हमेशा असफल रहता है। इनमें से दो तिहाई विवाहित स्त्रियां रहती हैं। इस प्रकार गुप्त और अनुचित रूप से किए गए ऑपरेशनों से मौत और आघात की अनेक घटनाएं होती हैं।

कभी-कभी गर्भपात को वर्ग-विशेष के लिए अपराध की संज्ञा दी जाती है और इसमें काफी सच है। गर्भ-निरोधक साधनों के प्रयोग का ज्ञान मध्यमवर्ग में खूब अच्छी तरह होता है और स्तानागार रहने के कारण उनका प्रयोग आसानी से किया जा सकता है। मजदूरों और किसानों के घर में जहां बहते पानी की सुविधा नहीं है, वहां थोड़ी परेशानी होती है। मध्यमवर्ग की स्त्रियां अन्य स्त्रियों से काफी बुद्धिमान होती हैं और अच्छी परिस्थिति वाले लोगों में संतान कोई समस्या नहीं होती। दरिद्रता, अनेक जन-समूह से घिरे निवास स्थान और कार्य के लिए स्त्री का घर से बाहर निकलना, गर्भपात कराने के कई कारणों में से कुछ हैं। प्रायः देखा जाता है कि दम्पति दो से अधिक संतानों की इच्छा नहीं करते। जिस स्त्री ने गर्भपात कराया है, वह भी शानदार मां बन सकती है और अपनी बांहों में दो सुंदर बच्चों को खिलाती है। एक ही व्यक्ति गौरवमयी माता और गर्भपात करवाने वाली एक घृणित स्त्री भी

! कम आमदनी वाले समूह में गर्भपात करवाना या फिर स्वयं भ्रूण का नष्ट हो जाना बड़े दु:ख - और निराशा का विषय बन जाता है।

इस परीक्षा की कठोरता परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। जिस स्त्री की शादी परम्परा के अनुसार होती है, जिसे अच्छी तरह रखा जाता है, जिसे पुरुष का सहारा मिलता है, जो सम्पन्न है और जिसके आत्मीय और रिश्तेदार हैं, उसे काफी सुविधाएं रहती हैं। अन्य स्त्रियों की अपेक्षा उसे सहज में गर्भपात करने के पक्ष में समर्थन मिल जाता है। यदि आवश्यकता हो तो वह किसी ऐसे दूसरे स्थान में जा सकती है, जहां गर्भपात के प्रति उदार विचार हों, जैसे स्विट्जरलैंड। आज के युग में, जबकि स्त्री-रोग विज्ञान का ज्ञान बढ़ गया है, किसी विशेषज्ञ द्वारा ऑपरेशन करवाना कम खतरनाक है क्योंकि वह गर्भपात के कई तरीके जानता है। आवश्यकता होने पर गर्भिणी को चेतनाशून्य किया जा सकता है। यदि उसे अधिकारी वर्ग की सहायता न मिले तो वह अनधिकारी व्यक्तियों से सहायता ले सकती है। उसे अच्छे व्यवितयों के पते मालूम रहते हैं। वह अपनी देखभाल के लिए खर्च कर सकती है। उसे अधिक इंतजार नहीं करना पड़ता। उसका इलाज भी अच्छी तरह सोच-विचारकर होता है । कुछ सुविधा प्राप्त व्यक्तियों का कथन है कि छोटी-बड़ी थोड़ी-सी दुर्घटना शरीर के लिए हितकर होती है। इससे रंग-रूप भी निखरता है।

इसके विपरीत कई घटनाएं काफी कष्टपूर्ण होती हैं। एक युवा लड़की, जिसके पास पैसे का अभाव है, यदि कोई गलत कदम उठा लेती है, तो उसे परम्परा और कानून के अनुसार अपराधी समझा जाता है। फ्रांस में प्रति वर्ष करीब तीन लाख स्त्रियां, जो कहीं कार्यालय वगैरह में काम करती हैं, सेक्रेटरी हैं, छात्राएं हैं, कर्मचारी हैं या फिर कृपक स्त्रियां हैं, अवैध संतानों को जन्म देती हैं। यह गलती इतनी भयंकर मानी जाती है कि अनेक स्त्रियां लज्जावश आत्महत्या कर लेती हैं या शिशु-हत्या कर देती हैं, किंतु अविवाहित माता कहलाना पसंद नहीं करतीं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कोई भी सजा उन्हें गर्भ से छुटकारा पाने से रोक नहीं सकती। इन दु:खद घटनाओं के पीछे प्रायः एक ही कहानी रहती है। एक अबोध लड़की को कर्त्तव्य-ज्ञान से शून्य कोई नवयुवक प्रेमी सम्मोहित कर लेता है और अंत में वही होता है, जो अवश्यम्भावी है। इस बात को परिवार, मित्र और मालिक से छिपाया जाता । इससे मुक्त होने का बस एक ही उपाय रह जाता है, गर्भ को नष्ट करवा लेना।

अक्सर प्रलोभन देने वाला पुरुष स्त्री से गर्भ में स्थित शिशु से छुटकारा पा लेने को कहता है। ऐसा भी होता है कि गर्भवती स्त्री को वह पुरुष त्याग चुका होता है। कभी-कभी स्वयं इस लज्जाजनक घटना को पुरुष से छिपाती है, या फिर वह पुरुष को उसकी सहायता करने में असमर्थ पाती है। कभी-कभी दु:ख के साथ ऐसी स्त्रियां कुछ समय तक गर्भधारण रखती हैं। कभी-कभी वे गर्भ में स्थित भ्रूण को नष्ट करने का निर्णय नहीं कर

पातीं। ऐसा भी होता है कि उन्हें गर्भपात कराने के लिए सही स्थान का पता नहीं रहता। पैसे का भी अभाव रहता है। कुछ घटनाओं में फालतू दवाएं लेने में समय बीत जाता है। स्त्री को इस स्थिति का ज्ञान रहता है। दु:ख और निराशा के वशीभूत होकर वह अपना 'उद्धार' चाहती है। ग्रामीण स्त्री, जिससे ऐसी गलती जाती है, सीढ़ियों से नीचे गिर पड़ती है। इससे कभी-कभी वह अपने को व्यर्थ में चोट पहुंचाती है। उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती। कभी-कभी नवजात शिशु का गला घोंट दिया जाता है और उसका शव किसी गड्ढे या कूड़े में पड़ा मिलता है।

शहरों में स्त्रियां एक-दूसरे की सहायता करती हैं । यह सच है कि गर्भपात कराने वाले विशेषज्ञ हमेशा नहीं मिलते और न पर्याप्त पैसों का ही इंतजाम हर समय सम्भव है। गर्भवती स्त्रियां अपनी महिला मित्रों से अनुरोध करती हैं या अपना ऑपरेशन करवा लेती हैं। अधकचरे सर्जन इस कार्य के लिए अयोग्य होते हैं। वे सलाई या ऊन बुनने वाली सलाइयों से छिद्र करते हैं। एक डॉक्टर ने मुझे बताया कि एक अनभिज्ञ रसोइए ने एक बार 'शिरका' का इंजेक्शन गर्भाशय में न देकर मूत्राशय में दे दिया। फलस्वरूप गर्भिणी को अत्यंत पीड़ा हुई। लापरवाही और अयोग्यता के साथ गर्भपात कराने पर गर्भपात साधारण प्रसव से अधिक कष्टप्रद होता है। कभी-कभी प्रसव के समय स्त्री घबरा जाती है। उसे मिरगी के दौरे आने लगते हैं। कभी-कभी इस कारण अंदरूनी गड़बड़ी हो जाती है या घातक रक्तस्राव होने लगता है।

कॉलेट (Colette) ने अपनी रचना Gribiche में एक 'हॉल' में नाचने वाली नर्तको की बड़ी दु:खमय कहानी सुनाई है। उस नर्तकी की माता ने अज्ञान के कारण अपनी पुत्री को साबुन का गाढ़ा घोल पीने को कहा और पंद्रह मिनट के बाद उससे दौड़ने के लिए कहा। ऐसे उपचारों से प्रायः भ्रूण के नष्ट होने से पहले गर्भिणी की ही मृत्यु हो जाती है। मैं एक आशुलिपिक को जानती हूं जो कि चार दिन अपने कमरे में रही और अपने ही खून से लथ-पथ हो गई, पर बाहर से किसी को सहायता के लिए बुलाने का उसे साहस नहीं हुआ।

गर्भपात की ये घटनाएं बड़ी भयंकर होती हैं जिनमें मृत्यु की आशंका व खतरे के साथ - साथ अपराध और लज्जा के भाव भी मिश्रित रहते हैं। यह परीक्षा-दरिद्र विवाहिताओं के लिए इतनी जटिल नहीं होती क्योंकि वे अपने पति से परामर्श लेकर कुछ कदम उठाती हैं । विवेक भी उन्हें उतना जलील नहीं करता। एक समाज सेविका ने इस संदर्भ में मुझे बताया कि उनके मुहल्ले की स्त्रियां एक-दूसरे से परामर्श करती हैं। एक-दूसरे को वे गर्भपात के औजार देती हैं और सहायता करती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मामला बड़ा सरल है जैसे पांव में गड़े कांटे निकालने हों, पर उन्हें बड़ी पीड़ा का अनुभव करना पड़ता है किंतु उन्हें किसी भी नींद आने वाली औषधि का प्रयोग नहीं करने दिया जाता। वे दर्द की शिकार रहती हैं और पूरी सफाई करके गर्भाशय से भ्रूण निकाल दिए जाने तक वैसी ही तड़पती

रहती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सजा से स्त्री को केवल उस दर्द के प्रति घृणा नहीं होती जिसकी कि वह अभ्यस्त है, बल्कि उसका जो अपमान होता है, उससे वह अधिक मर्माहत हो उठती है।

सत्य तो यह है कि उनका ऑपरेशन गुप्त रहता है। अपराध को भावना खतरे को बढ़ा देती है और इसे एक घृणित दुःखमय रूप दे दिया जाता है। दर्द, बीमारी और मृत्यु मानो सजा के विभिन्न रूप बन जाते हैं । हम जानते हैं कि कष्ट और यातना में कितना अंतर है। किसी दुर्घटना और उसकी सजा में अंतर होता है। स्त्री सारे संकटों को बर्दाश्त करती है पर अपने को निंदनीय पाने का दुःख उसे तोड़ देता है।

परिस्थितियों के अनुसार इस नाटक के भौतिक अंश का अनुभव होता है। सम्पन्नता और सामाजिकता का खुलकर उपभोग करने वाली स्त्रियों को नैतिकता की यह समझ कोई तकलीफ नहीं देती । वे इसकी परवाह भी नहीं करतीं किंतु दरिद्रता और कष्ट में रहने वाली स्त्रियों की स्थिति दूसरी होती है। उन्हें नैतिकता के भाव सताते हैं। यौन-नैतिकता का अतिक्रमण उन्हें अपराध-बोध से भर देता है। वे उस अतिक्रमण के कारण दुःख भोगती हैं।

ऐसी स्त्रियों को औरों से दया की याचना करनी पड़ती है, घिघियाना पड़ता है, शर्मिंदा होना पड़ता है। वे लोगों से ऐसे डॉक्टर या मिडवाइफ का पता पूछती हैं जो उनकी सहायता कर सके। कुछ व्यक्ति उन्हें दुत्कार देते हैं । वे अपने लज्जाजनक अपराध को स्वीकार करती हैं। अधिकांश पुरुष नहीं जानते कि वे किस प्रकार अवैध कार्य करने के लिए स्त्री को विवश कर रहे हैं। वे स्त्री के भय और लज्जा की स्थिति का भी अनुभव नहीं करते। औरत अनेक बार गर्भ के भ्रूण के साथ छेड़- छाड़ करना नहीं चाहती। वह आत्मद्वंद्व में पड़ जाती है। उसकी स्वाभाविक इच्छा संतान-प्राप्ति की होती है। मातृत्व की इच्छा नहीं होने पर भी वह जो कार्य करने जा रही है, उसके प्रति बड़ी सशंकित रहती है । गर्भ-निरोध के साधनों को जिस दृष्टि से देखा जाता है, उस दृष्टि से गर्भपात नहीं देखा जाता। एक घटना घट चुकी है। जीवन-धारण किया जा चुका है। अब उसे नष्ट करना उसके विकास को रोकना है।

कुछ स्त्रियों को उस बालक की स्मृति भी सालती रहती है, जिसने पूर्ण रूप से विकसित होकर जन्म ग्रहण ही नहीं किया। एक लेखिका एक विवाहिता के बारे में बताती है कि वह मानसिक रूप में बिल्कुल स्वाभाविक और साधारण थी किंतु शारीरिक अवस्था के कारण उसे दो बार तीन-तीन महीने का गर्भ नष्ट करवाना पड़ा। उसने उन दोनों भ्रूणों की स्मृति में समाधि-प्रस्तर रखे। बड़ी श्रद्धा के साथ वह स्मारकों की देखभाल करती थी। आगे चलकर उस स्त्री की कई संतानें हुईं। यदि स्त्री स्वेच्छा से गर्भपात कराती है तो उसे ऐसा लगता है मानो उसने कोई अपराध किया है। कभी-कभी स्त्री को ऐसा लगता है कि उसने किसी शिशु की हत्या कर दी है। रोग-विज्ञान के अनुसार अनेक स्त्रियां हमेशा उदास रहती हैं। उनके हृदय में अपराध या पापकर्म करने का दुःख रहता है। कुछ स्त्रियां गर्भपात करवाने

के बाद सोचती हैं कि उन्होंने अपने ही किसी अंश को नष्ट कर दिया है। उन्हें उस पुरुष के प्रति शिकायत रहती है, जिसने ऐसा कार्य करने की सहमति दी या इसके लिए अनुरोध किया। एक लड़की किसी लड़के से अत्यंत प्रेम करती थी पर गर्भ रह जाने पर उसने स्वयं जिद करके गर्भपात करवा लिया ताकि नवयुवक का जीवन कलंकित न हो। बाद में उसने उस प्रेमी से मिलना-जुलना बंद कर दिया। उसे अनुभव हुआ कि उसने बहुत बड़ा त्याग किया। इस प्रकार बिल्कुल सम्बंध टूट जाने की घटनाएं कम हो सकती हैं किंतु स्त्री या तो हर पुरुष के प्रति निरुत्साही हो जाती है या केवल उस पुरुष के प्रति, जिसने उसे गर्भवती बनाया था।

पुरुष गर्भपात की घटना को बड़े साधारण रूप में लेते हैं। वे प्रतिकूल प्रकृति द्वारा स्त्री पर ढाहे गए संकटों में से गर्भपात को एक संकट समझते हैं, किंतु इनसे सम्बंधित मान्यताओं पर ध्यान नहीं देते। जिस स्त्री को गर्भपात करवाना पड़ता है, वह मानो स्वयं स्त्री-सुलभ मान्यताओं के विरुद्ध जाती है। वह अपनी मान्यताओं के प्रतिकूल आचरण करती है और साथ ही पुरुष द्वारा स्थापित नैतिकता के भी विरुद्ध जाती है। उसके सम्पूर्ण नैतिक विश्व में मानो उथल-पुथल मच जाती है। बचपन से ही लड़कियों से कहा जाता है कि उन्हें संतानोत्पत्ति करनी है। उनको मातृत्व का महत्त्व बतलाया जाता, है। स्त्री के शरीर की स्वाभाविक किंतु नीरस और अरुचिकर स्थितियां मातृत्व के गौरव के सम्मुख महत्त्वहीन हो जाती हैं। उसी का सौभाग्य है कि वह संसार में शिशुओं को जन्म देती है। गर्भपात का प्रेरक पुरुष उससे चाहता है कि वह अपनी स्त्रियोचित विजय को त्याग दे और वह भी पुरुष को स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए। गर्भपात की प्रेरणा देने वाले पुरुष की दृष्टि अपने भविष्य पर रहती है।

आधुनिक समाज में शिशु को जन्म देना किसी तरह का पवित्र कृत्य नहीं माना जाता। वचपन और किशोरावस्था में लड़की के लिए जन्म देना एक चमत्कार जैसा होता है। खोल की गुड़िया उसके लिए एक संतान जैसी होती है।

पुरुष अपने भाग्य को पुरुष-रूप में अच्छी तरह पूर्ण कर सकता है। जब वह स्त्री से उसकी प्रजनन-शक्तियों और क्षमताओं को त्यागने के लिए अनध करता है, उस समय वह स्वयं नैतिकता के नियमों के पाखंड का भंडाफोड़ करता है। पुरुष गर्भपात का सामान्य रूप में विरोध करता है पर व्यक्तिगत रूप में वह गर्भपात को इस समस्या के समाधान का सबसे सुविधाजनक हल समझता है। पुरुष लापरवाही के साथ अपना विरोध अपने आप करता है, किंतु स्त्री इन विरोधों का अनुभव अपने आघात खाए शरीर में करती है। वह इतनी कायर है कि खुलकर पुरुष का विरोध नहीं करती। वह अपने को अन्याय का शिकार पाती है साथ ही साथ अपने को दूषित एवं अपमानित भी समझती है। वह पुरुष की गलती को अपने में तत्काल मूर्त रूप में देखती है। पुरुष गलती करता है, पर वह अपनी गलती स्त्री के

सिर मढ़ देता है । वह कुछ शब्द विनम्रता, क्रोध या धमकी के रूप में कहता है और तुरंत उन्हें भूल जाता है। उनका परिणाम तो स्त्री को और रक्तपात के रूप में भोगना पड़ता है। पुरुष कभी भी कुछ नहीं कहता सिर्फ अदृश्य हो जाता है, मौन रहता है, किंतु उसका इस प्रकार भागना उसके द्वारा ही स्थापित नैतिक नियमों को भंग करना है।

गर्भ-निरोध साधनों का प्रयोग और कानूनी तौर पर गर्भपात करा लेना, स्त्री को मातृत्व का भार उठाने या न उठाने के लिए स्वतंत्र कर देता है। स्त्री की उर्वरा-शक्ति अंशत: उसकी इच्छा द्वारा और अंशत: आकस्मिक रूप से प्रयुक्त होती है। कृत्रिम ढंग से गर्भाधान कराना साधारणत: प्रचलित नहीं है। ऐसी भी सम्भावना है कि स्त्री बिना सम्भोग के ही मां बनना चाहे, क्योंकि उसका पुरुषों के साथ सम्पर्क नहीं है या उसका अपना पति नपुंसक है या वह स्वयं गर्भधारण करने योग्य नहीं है। साथ ही कभी-कभी स्त्री को गर्भाधान के लिए विवश भी किया जाता है। भिन्न-भिन्न स्त्रियां गर्भाधान और मातृत्व का अनुभव भिन्न-भिन्न रूपों में करती हैं। यह स्त्री के रुख पर निर्भर करता है।कभी वह विद्रोह करती है, कभी चुपचाप समर्पण कर देती है और कभी संतोष व उत्साह के साथ मां बनने को प्रस्तुत रहती है। एक नवयुवती मां की इच्छाओं के निर्णय और भावनाओं में हमेशा सामंजस्य नहीं रहता। अविवाहित युवती मां संतानोत्पत्ति के पश्चात् अपने को बोझ से दबा महसूस कर सकती है। बाह्य रूप में वह निराशा भी व्यक्त कर सकती है जबकि संतान में वह अपने गुप्त स्वप्नों को साकार होता देखती है। एक विवाहित युवा स्त्री गर्भाधान होने पर आनंद और गर्व का प्रदर्शन करती है जबकि मन ही मन उसके प्रति भय और अरुचि भी रहती है क्योंकि बचपन की कुछ यादों, कल्पनाओं और मानसिक स्थिति का प्रभाव बना रहता है। कभी-कभी खुले रूप में वह उन्हें स्वीकार नहीं कर सकती। यही कारण है कि स्त्रियां इस विषय पर रहस्यमय ढंग से चुप रहती हैं। उन्हें हर्ष होता है कि केवल उन्हें ही ऐसे आधुनिक समाज में शिशु को जन्म देना किसी तरह का पवित्र कृत्य नहीं माना जाता। कन्या के लिए जन्म एक चमत्कारपूर्ण घटना है। गुड़िया को वह भावी संतान-सा समझती है। कुछ स्त्रियां तो जीवन-भर यही रुख अपनाए रखती हैं, अत: वे मिडवाइफ, नर्स और गवर्नेस बनकर बच्चों की देखभाल करती हैं। कुछ स्त्रियों को मातृत्व से घृणा तो नहीं होती, पर वे अपने प्रेम-जीवन में या कैरियर में अधिक व्यस्त रहने के कारण संतान को अपने और अपने पति के लिए बोझ जैसा समझती हैं।

स्त्री मां बनते समय अपनी मां की भूमिका में आ जाती है। यह उसके जीवन का एक नया आरम्भ होता है। प्रसन्नतापूर्वक स्वेच्छया गर्भ-धारण करने वाली स्त्री संतान को कभी बोझ नहीं समझती। स्त्री और उसकी संतान के पिता का सम्बंध भी बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है ! एक प्रौढ़ परिपक्व स्वतंत्र स्त्री की यह इच्छा हो सकती है कि संतान पूर्णरूप से उसकी ही हो । यदि पति उससे प्रेम करता है तो वह प्रसन्नतापूर्वक शिशु की देखभाल

करती है। एक कायर और बचपना भरी स्त्री को सहारे की अधिक जरूरत होती है। कभी-कभी बहुत कम उम्र वाली पत्नी एक या दो बच्चों के जन्म के बाद अधिक आतंकित होने के कारण छोटी-से-छोटी समस्या के लिए भी पति को तंग करती है और उसे अपने पास सहारे के लिए सदा मौजूद रखना चाहती है।

गर्भाधान एक प्रकार का नाटक है जो स्त्री के शरीर के भीतर ही खेला जाता है। स्त्री को एक साथ ही सम्पन्नता और आहत होने का अनुभव होता है। भ्रूण उसके शरीर का एक अंश होता है। भ्रूण एक पराजीवी जीव है जो स्त्री से अपना पोपण प्राप्त करता है। वह संतान को अपने वश में रखती है और स्वयं संतान द्वारा अधिकृत कर ली जाती है। संतान द्वारा भविष्य में अपने प्रतिनिधित्व की आशा से गर्भधारण करके स्त्री अपनी सांसारिक महानता का अनुभव करती है। महानता का यह अनुभव ही स्त्री का विनाश कर देता है। उसे नगण्यता का अनुभव होता है। अपने गर्भ से बाहर आकर पृथक अस्तित्व ग्रहण करने वाले जीव पर गर्व करने के बावजूद स्त्री अनुभव करती है कि कोई उसे उसके स्थान से भगा रहा है। ऐसा लगता है कि वह अदृश्य शक्तियों के हाथों का खिलौना हो गई हैं। यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि ठीक उसी समय, जबकि गर्भवती स्त्री सर्वोपरि हो उठती है, वह अपने को विश्वव्यापी रूप में देखती है। वह अपने लिए अपना अस्तित्व नहीं रखती। उसका आकार पहले से बढ़ जाता है। एक कलाकार और कर्मरत व्यक्ति की ही तरह वह और उसकी संतान जीवन से पूर्ण एक अनिश्चित युग्म बन जाते हैं । प्रकृति के जाल में गर्भवती स्त्री एक पौधा है, एक पशु है, एक अंडा सेने की मशीन है। ऐसी स्त्रियां बच्चों से डरती हैं जिन्हें अपने सौंदर्य और गठन पर अभिमान होता है।

कुछ स्त्रियों को गर्भधारण में आनंद प्राप्त होता है। स्तनपान कराने में सुख की अनुभूति के कारण वे बार-बार गर्भवती होती हैं। बालक के द्वारा स्तनपान छोड़ दिए जाने पर वे निराशा का अनुभव करती हैं। ऐसी स्त्रियां मौन रहकर अधिक अंडे देने वाली चिड़िया बन जाती हैं। संतानोत्पत्ति को अपनी उर्वरता के कारण उन्हें ऐसा लगता है कि वे जीवन के मुख्य स्रोत से जुड़ गई हैं और पीढ़ियों की अशेष कड़ियों का नैरंतर्य बनाए हुए हैं। गर्भ में पनपता भ्रूण या वक्षस्थल से चिपकी संतान उसको एक स्वतंत्र व्यक्तित्व का आभास कराते हैं। वह सोचती है कि उसका अस्तित्व संतान के लिए है। संतान पर उसके अधिकार को समाज मान्यता देता है और मातृत्व के गौरव से उसे मंडित करता है। चूंकि अब वह जीवन का स्रोत है, अत: वह अपनी स्वतंत्रता प्रस्थापित कर सकती है। धार्मिक तस्वीरों में भी अपने पुण्य से मानव-जाति की रक्षा की प्रार्थना करती हुई माता मरियम के वक्षस्थल खुले दिखाए गए हैं। अपने अहं को त्यागकर माता स्वयं मानवी होने की गौरवानुभूति को पुष्ट करती है।

दरअसल गर्भ में मां बच्चे का सृजन नहीं करती। यह तो उसके गर्भ में स्थित पराजीवी भ्रूण है जो उसकी रक्त-मज्जा से अपना पोषण प्राप्त कर रहा है। स्त्री यहां किसी भी ऐसे स्वतंत्र अस्तित्व को स्थापित करने में असमर्थ हैं जिसे स्वयं संसार में जन्म लेकर अपने अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करना होगा। स्वाधीनता से किए जाने वाले सृजनात्मक कार्य वास्तव में वस्तु का मूल्य निर्धारित करते हैं और उनकी अनिवार्यता प्रस्थापित करते हैं। मां के शरीर में बढ़ता हुआ बच्चा महज एक अकारण कोषिकीय उत्पादन है। प्रकृति का एक ऐसा नैमित्तिक सत्य, जिसका जीना और मरना पारिस्थितिक । बच्चे को जन्म देना मां की चाह हो सकती है किंतु वह उसे उसका भविष्य नहीं दे सकती। वह उसके जीवन का कारण और औचित्य नहीं निर्धारित कर सकती। वस्तुत: बच्चा एक सामान्य प्रजातीय उत्पादन है। कॉलेट आने की नायिका कहती है :

मैंने कभी नहीं सोचा था कि वह मेरे जीवन को कुछ अर्थ देगा। उसके जीवन का बीजारोपण मेरे शरीर में हुआ। चाहे जो भी हो, मुझे समय के अनुसार उसे विकसित करना पड़ा। मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी उसे समय से पूर्व जन्म न दे सकी। उसकी उत्पत्ति मुझसे हुई। वह एक ऐसे कार्य के रूप में हुआ, जिसे मैं जीवन में कर सकती थी, पर वह उस प्रकार का न हुआ, जिस प्रकार का मैंने चाहा।"

अवतार का रहस्य प्रत्येक मातृ-गर्भ में दोहराया जाता है। हर शिशु ईश्वर के रूप में जन्म लेता है। उसे मनुष्य बनाया जाता है बिना जन्म लिए । जीव संसार में आत्मबोध प्राप्त नहीं कर सकता। वह स्वयं यह सोचकर आश्चर्य प्रकट करती है कि वह एक चेतनशील और स्वतंत्र जीव को जन्म देने जा रही है, किंतु साथ ही उसके हृदय में भय भी रहता है कि वह एक विकलांग एवं दानव-जीव को भी उत्पन्न कर सकती है। शरीर के विभिन्न संकटों को वह समझती है। उसके शरीर में बढ़ता हुआ भ्रूण भी तो एक शरीर ही है ? जातीय नैरंतर्य की चमत्कारिक गति में वह अमरत्व की झलक देखती है। वह हीगेल के शब्दों की सच्चाई नहीं भूलती कि संतान का जन्म माता-पिता की मृत्यु भी है। बालक अपने स्रोत से पृथक होकर ही अस्तित्ववान होता है। उसके इस पृथकत्व में मां मृत्यु की छाया देखती है।

गर्भाधान का महत्त्व अस्पष्ट होने के कारण यह स्वाभाविक है कि स्त्री इसके प्रति दोहरा रुख रखे । स्त्री का रुख भ्रूण की विभिन्न अवस्थाओं के विकास के साथ बदलता रहता है। यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि गर्भाधान की क्रिया के प्रारम्भ में शिशु उपस्थित नहीं रहता। होने वाली मां भावी संतान के बारे में सोचती रहती है। वह उसका झूला और कपड़े बनाने में व्यस्त रहती है। जैविक रहस्यों के ज्ञाता पुरोहितों का यह कथन भ्रामक सिद्ध हो चुका है कि स्त्री सम्भोग के चरम क्षणों में यह अनुभव कर लेती है कि वह गर्भवती हो गई है।

दरअसल स्त्री को यह अंतर्ज्ञान तत्काल नहीं होता। बाद में अनिश्चित संकेतों से स्त्री इस निष्कर्ष पर पहुंचती है। उसका मासिक-धर्म बंद हो जाता है, स्तनों में भारीपन लगने लगता है और सिर में चक्कर आता है। इन क्षणों में वह अपने गर्भवती होने की सच्चाई समझ जाती है और जान जाती है कि अब वह कुछ अजनबी शक्तियों की अधीनस्थ हो गई है। बार-बार की मितली से वह घबराहट महसूस करती है। मितली आने और जी घबराने के कारण कुछ जठरीय स्राव होते हैं। इस स्थिति का कारण स्टेकल मानसिक मानते हैं। मानसिक घबराहट में गर्भवती स्त्री का उल्टी करना मानो आने वाले शिशु को अस्वीकार करना है। यदि किन्हीं कारणों से स्त्री में गर्भ के प्रति कटुता और प्रतिकूलता है तो उसकी पूरी पाचन-प्रणाली में दोष आ जाते हैं मानो वह मुख द्वारा गर्भ को उगल देना चाहती है। यह स्टेकल का मत है।

कब्ज रहना, बार-बार दस्त आना या मितली होना इच्छा और चिंता की मिश्रित अवस्था के सूचक हैं। कभी-कभी तो गर्भपात भी हो जाता है। अपने-आप गर्भपात होने की सभी घटनाएं मानसिक होती हैं । शारीरिक परेशानियां स्त्री को अधिक आत्म-केंद्रित बना देती हैं। विशेषकर गर्भवती स्त्रियों की चाहें, लड़कपन की सनक-भरी चाहों की पुनरावृत्ति होती हैं, गर्भिणी स्त्री के कुछ आचरण तो परम्परागत होते हैं। एक सम्भ्रांत स्त्री अपनी डायरी में गर्भावस्था की इच्छाओं का जिक्र करती हुई लिखती है :

यह मेरी मां ही थी, जिसने एक दिन, जब मैं उसके साथ खा रही थी, कहा, "हे भगवान! मैं तो तुमसे पूछना ही भूल गई कि किस प्रकार का भोजन तुम पसंद करोगी।"
मैंने कहा, "मैं विशेष रूप में कुछ भी नहीं चाहती।"
मां ने आश्चर्य से कहा, "तुम्हें कोई खास चीज खाने की इच्छा नहीं है, ऐसा तो कभी सुना नहीं। तुम वास्तव में गलती कर रही हो। मैं इस विषय में तुम्हारी सास से बात करूंगी।" अब मेरी मां और सास आपस में परामर्श करने लगीं। मेरे पति भी भयभीत थे कि मैं उनके लिए ऐसी संतान को जन्म दूंगी जिसका सिर जंगली सूअर के सिर की तरह होगा। एक दिन सुबह उन्होंने मुझसे पूछा, "तुम क्या खाना चाहती हो?" मेरी ननद ने कहा कि वे अनेक ऐसी घटनाएं जानती हैं जिनमें शिशु विकलांग हो जाते हैं क्योंकि मां की इच्छाएं अतृप्त रह जाती हैं। अब मैं डर गई और सोचने लगी कि मुझे सबसे अधिक क्या अच्छा लगेगा लेकिन कुछ निर्णय न कर पाई। एक दिन अनन्नास के लोजेंस खाते समय मुझे लगा कि शायद अनन्नास ही मेरी मनचाही चीज है। मुझे यही खाना चाहिए। मेरी उसे खाने की इच्छा हुई और इच्छा और भी तीव्र हो गई, जब मुझे यह पता चला कि अनन्नास इस ऋतु का फल नहीं है। अब तो मेरी इच्छा इतनी प्रबल हो गई कि मुझे लगा कि इसके बिना मैं मर जाऊंगी। अंत में एक अनन्नास खरीदा गया और मुझे खाने के लिए दिया गया। लोगों को

तश्तरी मेरे सामने से हटानी पड़ी और कमरे की खिड़कियां भी खोल देनी पड़ी जिससे उसकी गंध कमरे के बाहर निकल जाए। एक क्षण में ही मुझे उससे घृणा हो गई। तब से आज तक मैं अनन्नास नहीं खा सकती। कभी खाया भी तो मुझे जबर्दस्ती खाना पड़ा। "

जिन स्त्रियों की बहुत देखभाल की जाती है और जो स्वयं अपने बारे में अधिक चिंतित रहती हैं, वे अत्यधिक अस्वस्थता के लक्षण दिखाती हैं। जो स्त्रियां बड़ी सहजता के गर्भकाल व्यतीत करती हैं, वे अपनी प्रजनन-क्रिया व शक्ति पर ही अपना पूरा ध्यान केंद्रित रखती हैं किंतु वे स्त्रियां, जो बिना किसी परेशानी के अपने शरीर के उस परिवर्तन के प्रति उदासीन रहती हैं और प्रसव के लिए प्रस्तुत रहती हैं, उनके स्वभाव में पुरुषों के-से गुण होते हैं।

ज्यों-ज्यों दिन चढ़ते जाते हैं, मां और भ्रूण के सम्बंध बदलते जाते हैं। भ्रूण अच्छी तरह मां के गर्भ में स्थित हो जाता है। ये दोनों जीव एक-दूसरे के अनुकूल बन जाते हैं और इन दोनों के वीच जैविक आदान-प्रदान आरम्भ हो जाता है। अब स्त्री को संतुलन प्राप्त होने लगता है। अब उसे ऐसा नहीं लगता कि वह किसी विवशता के अधीन है। अब तो उसके शरीर का फल स्वयं उसके वश में रहता है। कुछ स्त्रियों को गर्भावस्था के अंतिम दिनों में आश्चर्यजनक शांति का अनुभव होता है। उन्हें अपने जीवन की सार्थकता पर विश्वास हो जाता है। पहले उनकी इच्छा होती थी कि वे अपने को देखें और अपने शरीर का विवेचन करें, किंतु सामाजिक मर्यादा के कारण वे ऐसा प्रायः नहीं करती थीं, लेकिन अब यह उनका अधिकार हो गया है क्योंकि वे जो कुछ अपनी भलाई के लिए करती हैं, वह शिशु की भलाई के लिए भी होता है। इस प्रकार संतुष्ट होकर स्त्री अनुभव करती है कि किशोरावस्था से जो उसकी इच्छा थी, वह अब पूर्ण हुई क्योंकि अब वह केवल पुरुष की काम- लिप्सा पूर्ण करने का साधनमात्र नहीं है।

कुछ स्त्रियां पुरुषों को प्रसन्न करके आनंदित होती हैं। वे अपने को मुख्यत: कामोत्तेजक वस्तु के रूप में देखती हैं। उन्हें अपने शारीरिक सौंदर्य से अतिरिक्त लगाव रहता है। शरीर के बेडौल होने पर पुरुष की कामाग्नि भड़का पाने में उसकी असमर्थता उन्हें दुःखी करती है। गर्भावस्था उनके लिए न तो छुट्टी का समय होती है, न सम्पन्ता की सूचक । गर्भावस्था उनके अहं को छोटा और तुच्छ कर देती है।

गर्भावस्था के अंतिम चरण में शिशु और माता के पृथक होने की सूचना मिलती है। स्त्रियों को वालक की पहली गतिविधि का अनुभव भिन्न-भिन्न रूपों में होता है। एक स्वतंत्र जीव की उपस्थिति की सूचना पाकर स्त्री आश्चर्य में पड़ जाती है। स्त्री को दबाव का आंतरिक अनुभव होता है, उसे सांस लेने में कठिनाई होती है। अब वह किसी अन्य साधारण प्राणी के आधिपत्य में न रहकर भावी शिशु की सत्ता में रहती है। अब एक नया

ठोस यथार्थ उसके लिए कुछ नई समस्याओं का सृजन करता है। हर परिवर्तन चिंताएं लाता है। शिशु का जन्म बहुत त्रासद प्रतीत होता है। किसी अपराध- भाव से ग्रस्त स्त्री विश्वास करती है कि यह शिशु उस पर मां का अभिशाप है। वह सोचती है कि शायद अब वह स्वयं मृत्यु की गोद में समा जाएगी या फिर संतान की मृत्यु हो जाएगी।

शिशु के जन्म की सार्थकता भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती है। मां उस सम्भावित अजनवी से जहां एक ओर छुटकारा पाना चाहती है, वहीं वह उसे उसके अहं का मूल्यवान अंश भी लगता है। इस स्थिति में मां एक द्वंद्वात्मक मानसिकता से ग्रसित हो जाती है। वह अपने परिवार और स्वयं को यह बता देना चाहती है कि. किसी की सहायता के बिना भी वह परिस्थितियों का सामना करने में समर्थ है परंतु साथ ही उसे अपने परिवार, जीवन और संसार के प्रति शिकायत भी रहती है कि उसे कितने कष्ट उठाने पड़े। चूंकि प्रसव-पीड़ा और शिशु-जन्म में कभी चौबीस घंटे लग जाते हैं और । कभी-कभी तीन घंटों में ही यह कार्य हो जाता है, इसलिए इस सम्बंध में कोई सामान्य अनुमान व्यक्त करना कठिन है। कुछ स्त्रियां इस परीक्षा के कष्टों को सहजता से सह लेती हैं। कुछ स्त्रियों को तो इससे ऐंद्रिक सुख भी मिलता है। कुछ स्त्रियों का कथन है कि शिशु-जन्म द्वारा उन्हें सृजन-शक्ति प्राप्त होती है। वास्तव में ऐसी स्त्रियां यह उत्पादन-कार्य अपनी इच्छा के अनुसार पूर्ण करती हैं। ठीक उसके विपरीत ऐसी स्त्रियां भी हैं जो प्रसव-काल में अपने को निष्क्रिय, पीड़ित और कष्टमय अवस्था में पाती हैं।

प्रत्येक मां का नवजात शिशु के साथ एक-सा सम्बंध नहीं रहता। प्रसव के बाद कुछ स्त्रियां खालीपन का अनुभव करती हैं। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी सम्पत्ति उनसे छीन ली गई है। सिसिल शैवेज इस भाव को अपनी कविता में इस प्रकार व्यक्त करती हैं, "मैं मधुमक्खी के छत्ते के सदृश हूं जिसमें से एक झुंड चला गया है। उसका जन्म हो गया है। मैंने अपने 'छोटे प्रिय' को खो दिया है। अब उसका जन्म हो गया है और मैं अकेली हूं।"

हर युवती माता में एक आश्चर्यजनक कौतूहल होता है। एक जीवित प्राणी को शरीर में रखना और फिर उसे बाहर निकाल देना कितना चमत्कारिक है, लेकिन एक नए जीवन को विश्व में लाने में मां ने क्या किय:, यह उसे स्वयं नहीं पता। उसके बिना यह नवजात रह नहीं सकता था। तब भी तो यह उसे छोड़ देता है ? उसे अपने से बाहर और पृथक देखकर माता में विस्मय-मिश्रित दु:ख के भाव पैदा होते हैं और वह इस तथ्य से आश्वस्त होना चाहती है कि नवजात शिशु उसी का है। किसी स्पष्ट पहचान के अभाव में ही उसने अपनी गर्भावस्था का अनुभव किया था। इस छोटे-से अजनबी के साथ उसका अतीत भी संलग्न नहीं है। उसने आशा की थी कि वह शीघ्र ही उससे परिचित हो जाएगा, किंतु वह तो नवागंतुक है और जिस अन्यमनस्कता से वह उसे ग्रहण करती है, उसे स्वयं उस पर आश्चर्य है। जन्म के बाद शिशु से माता का जो अलगाव हो जाता है, उसे वह लालन-पालन द्वारा दूर करना

चाहती है और अपने शिशु से घनिष्ठ सम्बंध स्थापित करना चाहती है। यह स्थिति माता को । बाहुल्य प्रदान करती है। कॉलेट आने अपनी नायिका के बारे में कहती हैं :

"अपने शिशु को स्तनपान कराने के वक्त उसे और कुछ करना ही न था। वह घंटों उसे स्तन से चिपकाए रख सकती थी। उसने यह भी नहीं सोचा कि आगे केवल प्रतीक्षा करनी थी।"

कुछ स्त्रियां ऐसी भी होती हैं जो संतान का लालन-पालन नहीं कर सकतीं। जब तक वे शिशु के साथ कोई निश्चित नया सम्बंध स्थापित नहीं कर पाती तब तक शिशु के प्रति उनकी अन्यमनस्कता ही बनी रहती है। कॉलेट के साथ भी ऐसी ही घटना घटी; वे अपनी बालिका का लालन-पालन न कर सकीं। वे आने मातृत्व की भावना बड़ी सच्चाई के साथ व्यक्त करती हैं :

"मुझे नवजात शिशु को, जो प्रतिभासम्पन्न था, देखकर आश्चर्य हुआ। उसकी उंगलियों के नाखून पारदर्शी थे जैसी गुलाबी सीप होती है। वह पांवों को जमीन पर बिना टिकाए मेरे पास आ जाती थी। उसकी कोमल हल्की पलकों के बाल उसके गालों की ओर झुके थे, मानो वह पृथ्वी के सुंदर दृश्य और हल्के रंग के बादलों की तरह हैं। मैंने अपनी बेटी का सूक्ष्मता से विवेचन किया किंतु अभी तक मैंने उसे कोई नाम नहीं दिया। मुझे प्रेम का अनुभव नहीं हुआ। मैं उसे देखती रही और प्रतीक्षा करती रही। यह सब कुछ देखकर भी मुझमें साधारण मां की तरह सतर्कता और प्रतिस्पर्द्धा के भाव नहीं आए। मुझे प्रेम का अनुभव नहीं हुआ। मुझे यह ज्ञान नहीं था कि मैं कब दुबारा अपना सामान्य जीवन प्रारम्भ करूंगी। अंत में मुझे इस निष्कर्ष पर आना पड़ा कि मुझे भी ईर्ष्या, चिंता और आशंका के माध्यम से साधारण मां की कोटि में आना पड़ेगा। मुझे उस जीवन पर गर्व करना पड़ेगा जिसकी सृष्टि मैंने की है। जैसा कि मैंने दूसरों को विनम्रता का पाठ पढ़ाया, मुझे स्वयं वैसा ही बनना पड़ेगा। मुझे उसके प्रति आकर्षण तभी हुआ जब उसके मुंह से मधुर वाणी फूटी। उसकी शैतानी, चेतना और स्नेह ने उसे मेरी बेटी बना दिया।"

अनेक माताओं को नई जिम्मेदारियां सतर्क बना देती हैं । वे घबरा जाती हैं । गर्भावस्था में ऐसी स्त्री को कुछ नहीं करना पड़ता था। उससे कुछ करने के लिए नहीं कहा जाता था। अब उसके सम्मुख एक प्राणी है। उसके अधिकारों के बारे में उसे सोचना ही पड़ेगा। कुछ स्त्रियां अस्पताल में ही प्रसन्न दिखती हैं। वे अपने बच्चों को थपथपाती भी हैं, पर घर आकर ऐसा बर्ताव करती हैं मानो वह भारस्वरूप है। ऐसी स्त्री को स्तनपान कराने में भी सुख नहीं मिलता। वह सोचती है कि उसके स्तन नष्ट हो जाएंगे। वह सोचती है मानो

स्तनपान द्वारा शिशु उसकी शक्ति, जीवन और खुशी को चूस रहा है। बालक उसे दासता के बंधन में बांधता है। अब वह उसका अंश न रहा। उसे वह अत्याचारी लगता है। इस छोटे से अजनबी जीव के प्रति वह कटु हो जाती है। वह सोचती है कि शिशु ने उसके शरीर, स्वतंत्रता और अहं को खतरे में डाल दिया है।

इस सिलसिले में और भी कई बातें विचारणीय हैं। अपनी मां के साथ स्त्री के सम्बंधों का भी महत्त्व होता है। युवती मां अक्सर सहायता चाहती है, किंतु उसे यह देखकर ईर्ष्या होती है कि अन्य व्यक्ति शिशु की देखरेख करते हैं और इसलिए मां के प्रति उसका रुख कटु हो जाता है। शिशु के पिता के साथ उसके सम्बंधों का भी उस पर प्रभाव पड़ता है। आर्थिक और भावनात्मक कारणों से या तो बालक एक बोझ और बाधा बन जाता है या फिर एक कीमती नग, स्वतंत्रता और सुरक्षा का माध्यम बन जाता है। ऐसी भी घटनाएं होती हैं जिनमें बालक के प्रति शत्रुता खुली घृणा का रूप धारण कर लेती है। यह घृणा अवहेलना और दुर्व्यवहार के रूप में प्रकट होती है। मां को प्रायः अपने कर्तव्य का ज्ञान रहता है। वह विरोधाभासों से स्वयं जूझती है। वह दुबारा गर्भाधान के भय से डरतो रहती है। मनोविश्लेषण विज्ञान इस बात सहमत है कि जिन माताओं के मन में यह बात घर कर जाती है कि वे अपने बालक को क्षति पहुंचा सकती हैं और उनकी संतान भयंकर दुर्घटना का शिकार बन जाती है, वे बालक के प्रति हमेशा शत्रुता के अपने भावों को बलपूर्वक दबाए रखती हैं।

माता और संतान के सम्बंध दूसरे सम्बंधों से भिन्न होते हैं। इन सम्बंधों की विशेषता यह है कि बालक स्वयं सक्रिय भाग नहीं लेता। वह मुस्कुराता है, तुतलाता है। वह अज्ञानी है। जो कुछ मां उसे देती है, उसे ही वह जानता है। चाहे वह आकर्षक व अद्वितीय हो या फिर साधारण और घृणास्पद, वह तो पूर्ण रूप से मां पर निर्भर रहता है। इसलिए निरुत्साही, असंतुष्ट और उदासीन माताएं, जो बालक से साहचर्य की उष्णता और प्रेरणा की आशा करती हैं, अत्यधिक निराश होती हैं। स्त्री के जीवन के विभिन्न परिवर्तन, जैसे कि लड़कपन से किशोरावस्था में प्रवेश, रजोदर्शन, मातृ-जीवन का प्रारम्भ, विवाह और मातृत्व के प्यार को ग्रहण करना, उसकी आशाओं को पूर्ण नहीं करते। ये घटनाएं न तो उसके जीवन में नवीनता लाती हैं और न सार्थकता। सोफी टालस्टाय ने लिखा है कि वे नौ महीने उसके जीवन के भयंकर दिन थे, और दसवें महीने के बारे में जितना कम कहा जाए, उतना अच्छा। अपने मुखपत्र में उसने परम्परागत आनंद की व्यर्थता व्यक्त करने की चेष्टा की है, किंतु हम सब जानते है कि अपनी नई जिम्मेदारियों से उसे कितना कष्ट मिला था। वह मातृत्व की भावनाओं की दुहाई देती है और कहती है कि वह अपने पति से प्रेम करती है क्योंकि संतान उसकी है, पर वास्तव में वह अपने पति से प्रेम नहीं करती थी।

कैथरीन मैंसफील्ड ने एक युवती माता के अनिश्चित रुख के बारे में कहा कि उसे अपने पति से प्रेम था पर वह उसके आलिंगन से दूर भागती थी। उसे बच्चों के प्रति स्नेह था पर साथ ही वह एक शून्यता का भी अनुभव करती थी, जिसे वह नितांत अन्यमनस्कता कहती थी। आराम से बगीचे में लेटी हुई अपने हाल ही में उत्पन्न हुए पुत्र को गोद में लिए लिंडा अपने पति स्टेनली के बारे में सोचती है- अच्छा उसकी शादी उसके साथ हुई थी और वह उससे प्रेम भी करती थी। यह वह स्टेनली नहीं जिसे हर कोई देखता था। वह हर रोज वाला व्यक्ति नहीं बल्कि एक डरपोक, संवेदनशील और अबोध व्यक्ति जो प्रति रात्रि को घुटनों के बल बैठकर प्रार्थना करता था, किंतु परेशानी यह थी कि वह अपने को कभी-कभी ही देखती थी। वह एक मकान में रहती थी, जो कभी भी अग्नि की लपटों में आ सकता था। वह उस जहाज में थी जो प्रतिदिन नष्ट होता था। उसका सारा समय खतरों से बच्चे को बचाने और कहानी सुनाने में लग जाता था। बाकी समय उसे दुबारा संतानोत्पत्ति का भय सताता रहता था। एक बार के प्रसव से ही स्त्री की क्या अवस्था हो जाती है, वह यह प्रमाणित कर सकती थी। गर्भधारण से वह टूट गई थी। उसका साहस नष्ट हो गया था। गर्भधारण उसके लिए कष्टकर इसलिए भी था कि उसे बच्चों से प्रेम नहीं था। उन भयंकर यंत्रणाओं ने उसे मानो बिल्कुल ठंडा बना दिया था। संतान को देने के लिए उसके पास उष्णता नहीं थी। जहां तक बच्चे का प्रश्न था, उसे कभी वह लेती थी, कभी कोई और । कभी-कभी वह बड़ी विचित्र हंसी हंसती थी, अशालीन मुस्कान; पर वह अपने को वश में कर लेती और लड़के से भावशून्य होकर कहती, "मैं बच्चों को पसंद नहीं करती।" "क्या तुम बच्चों को पसंद नहीं करती?" लड़के को विश्वास नहीं होता। "क्या तुम मुझे नहीं चाहती?" वह मूर्खतापूर्ण हाथ हिलाते हुए चला जाता। लिंडा अपनी कुर्सी घास पर डाल लेती। "तुम क्यों हंसती हो?" वह सख्ती से उत्तर देती, "यदि तुम यह जानते कि मैं क्या सोच रही हूं तो यह प्रश्न नहीं करते।" छोटे बालक के विश्वास पर लिंडा को बड़ा आश्चर्य था। वह सोचती थी कि उसे सच्चा होना चाहिए, लेकिन जो कुछ अनुभव करती थी, वह भिन्न था। उसकी आंखों में आंसू भर आते और धीरे से पुत्र से कहती, "हैलो माई फनी!"

इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि मातृवृत्ति नामक किसी भावना का अस्तित्व नहीं। मनुष्य- जाति पर यह शब्द लागू नहीं होता। संतान के प्रति मां का रुख अपनी पूर्ण स्थिति पर और दूसरों की प्रतिक्रिया पर निर्भर रहता है।

यह सत्य है कि प्रत्यक्ष परिस्थितियों की प्रतिकूलता में स्त्री अपने जीवन का खालीपन संतान द्वारा भी दूर नहीं कर पाती। कॉलेट आने की एक पात्रा कहती हैं, "संसार की सारी वस्तुओं की तरह ही वह मेरी बाहों और वक्षस्थल पर भारी है। हठात् उसने संसार का बोझ मेरे कंधों पर रख दिया इसलिए ही मैं उसे चाहती थी। मैं अकेले में बहुत हल्केपन का अनुभव करती थी।" कॉलेट आद्रे की नायिका कहती है, "उसे अपनी संतान में अंगुलियों के

स्पर्श के लिए चर्म मिलता है। वह इतना कोमल है जितना बिल्ली के बच्चों का चर्म । बालक के शरीर में वह कोमलता और उष्ण लचक है, जिसे स्त्री ने बालिका रूप में अपनी मां के शरीर में चाहा था और बाद में हर स्थान पर विभिन्न वस्तुओं में वह यही कोमलता ढूंढ़ती रही है। बालक पौधा और पशु है। उसकी आंखों में वर्षा और नदी है। आकाश और सागर की नीलिमा है। उसकी अंगुली के नाखून मूंगे हैं। उसके केश रेशम के लच्छे हैं। वह एक जीवित गुड़िया है। एक पक्षी, एक बिल्ली का बच्चा। मेरे मोती! मेरे मुर्गी के बच्चे! मेरी मैना!"

संतान के प्रति मां प्रेमी के सदृश शब्दों और सम्बंध-कारकों का उत्सुकता से प्रयोग करती है। वह आधिपत्य की भावना, सभी संवेगों का प्रयोग करती है। वह दुलारती है, चूमती है, बालक को छाती से चिपकाती है। अपनी बांहों में उसे उष्णता देती है और अपने बिस्तर पर भी उसे स्थान देती है। कभी-कभी यह सम्बंध काम-रूप भी होते हैं। स्टेकल ने कहा कि माता को यह कहते लज्जा आती है कि स्तनपान कराते समय उसके मन में काम-भाव आ गए। बच्चे के स्पर्श से वह सिहर उठती है।

ज्यों-ज्यों बालक खड़ा होता है, मातृत्व का एक नया रूप सम्मुख आता है। प्रारम्भ में वह एक साधारण शिशु रहता है, अपने वर्ग का एक उदाहरण मात्र । धीरे-धीरे वह अपना व्यक्तित्व ग्रहण कर लेता है। प्रशासिका और कामुक प्रवृत्ति वाली स्त्रियां संतान के प्रति उदासीन हो जाती हैं। इसके विपरीत कुछ स्त्रियां इस समय अपनी संतान में विशेष रुचि लेने लगती हैं। संतान मां का प्रतिरूप होती है। कभी-कभी माता की इच्छा होती है कि वह अपने पूर्ण रूप को संतान में देखे। संतान मां की एक मूल्यवान वस्तु और सम्पत्ति है परंतु एक अत्याचारी और एक जिम्मेदारी भी। मां का आनंद उसके प्रति उदार रहने में है। मां को उसकी सेवा करने और सुखी बनाने में आनंद का अनुभव होता है।

बच्चे के सम्पर्क में एक प्रेमिका की तरह मां अपने को आवश्यक समझकर सुख का अनुभव करती है। वह त्याग द्वारा अपने अस्तित्व की सार्थकता प्रमाणित करती है। मां के प्रेम की कठिनाई और महानता इस सत्य में निहित है कि इस प्रेम में पारस्परिकता नहीं है। इस समय स्त्री के सम्मुख एक पुरुष नहीं, वीर नायक नहीं, देवता नहीं, बल्कि एक तुतलाता हुआ शिशु है जो सिर्फ उस पर आश्रित है। बालक के पास अपनी मान्यताएं नहीं होती, न वह किसी को मान्यता दे सकता है। उसके साथ स्त्री एकाकी होती है। उसे वह जो कुछ भी देती है, उसका उसे प्रतिदान नहीं मिलता और न वह आशा ही करती है। उसका निर्णय उसे स्वयं करना पड़ता है। इस उदारता के लिए पुरुष सदा स्त्री की प्रशंसा करता रहा है किंतु विरली ही घटनाओं में मां का प्रेम पूरी तरह सच्चा होता है। साधारणतः मातृत्व आत्म-मुग्धता, परोपकारिता, दिवास्वप्न, सच्चाई, अविश्वास, श्रद्धा और आडम्बर का एक विचित्र मिश्रण होता है।

हमारी संस्कृति में बालक का सबसे बड़ा संकट यह है कि जिस मां के ऊपर वह विवशतः आश्रित है, वह हमेशा एक असंतुष्ट स्त्री रहती है, या तो उसकी वासना अतृप्त रहती है या फिर वह उदासीन रहती है। सामाजिक क्षेत्र में वह अपने को पुरुष से निम्न स्तर पर पाती है। विश्व व भविष्य पर उसका कोई अधिकार नहीं होता। इन सब निराशाओं को वह बालक के माध्यम से. दूर करना चाहती है। स्त्री के लिए आत्म-सम्मान प्राप्त करना उसकी वर्तमान परिस्थिति में कठिन है। उसकी अनेक इच्छाएं होती हैं। उसकी अपनी विद्रोही भावनाएं होती हैं और अपनी उचित मांगों को वह मन में पोसती रहती है- ऐसी परिस्थिति में यह सोचना व्यर्थ लगता है कि उसके ऊपर आश्रित संतान उसे ही पूरी तरह सौंप दी जाए। वह अपनी गुड़ियों को कभी दुलारती है और कभी यातना देती है। उसका आचरण प्रतीकात्मक होता है। ये प्रतीक बच्चे के लिए कठोर वास्तविकता बन जाते हैं। बच्चे को पीटने वाली स्त्री केवल उसे नहीं पोटती बल्कि वह सारी दुनिया और अपने से प्रतिशोध ले रही होती है। बच्चे को दुःख भले ही न हो, पर वह मार का अनुभव तो करता ही है। मां का निर्दयी रूप भी बड़ी अच्छी तरह स्पष्ट होता है। अतीत में यह दोषारोपण सौतेली मां पर किया जाता था। कहा जाता था कि वह सुमाता की संतान को, जिसकी मृत्यु हो गई है, कष्ट देती है। आज के साहित्य में कुमाता का वर्णन कभी-कभी ही होता है, क्योंकि अधिकांश महिलाओं में इतनी नैतिकता और शालीनता है कि वे अपनी प्रवृत्तियों को दबा लेती हैं। फिर भी कभी-कभी वह प्रवृत्ति हठात् प्रकट हो ही जाती है- जैसे क्रोध की स्थिति में थप्पड़ मारने और सजा देने में। कुछ ऐसी माताओं को परपीड़ा में आनंद आता है। ऐसी भी माताएं होती हैं जो सनकी या शासन करने की प्रवृत्ति से भरी होती हैं। कभी वे अपने बच्चे के साथ गुड़िया का-सा बर्ताव करती हैं, कभी आज्ञाकारी गुलाम की तरह। अक्सर माताएं बच्चों से पालन-पोषण के बदले कृतज्ञतापूर्ण व्यवहार चाहती हैं। कार्नेलिया ने अपनी संतानों का प्रदर्शन करते हुए कहा कि ये मेरे रत्न हैं। उसने भावी पीढ़ी के लिए अच्छा उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया। अनेक माताएं अभिमानपूर्ण इस संकेत को दोहराती हैं। जब उनकी संतानें उनकी आशाओं को पूर्ण नहीं करती तो वे उन्हें सजा देने में संकोच नहीं करतीं। वे अपनी संतान को अपने पति की तरह बनाना चाहती हैं या उससे भिन्न या वे चाहती हैं कि उनकी संतान प्रशंसा पाने वाले अन्य रिश्तेदारों की तरह हो। वे उसे किसी वीर नायक की प्रतिमूर्ति के रूप में देखना चाहती हैं। यह अत्याचार संतान के लिए हमेशा हानिप्रद होता है और माता के लिए निराशाजनक । अक्सर परपीड़ा देने की प्रवृत्ति और हठ, दोनों मिल जाते हैं। माता जब बच्चे पर क्रोधित होती है तो उसका यही बहाना रहता है कि वह बच्चे को शिक्षा दे रही है। सफलता की इस स्थिति में उसके शत्रुता के भाव और बढ़ जाते हैं।

साधारण माता के प्यार में आत्म-पीड़ाजनित समर्पण के भाव निहित रहते हैं। मां का ऐसा व्यवहार बच्चे के लिए हानिप्रद होता है। कभी-कभी मां अपने हृदय के सूनेपन को

भरने और आत्म- प्रताड़ना के लिए भी बच्चे की सेविका बन जाती है। ऐसी माता के विचार भी रुग्ण हो जाते हैं। बच्चों को अपनी आंखों से ओझल नहीं करना चाहती। वह अपने सारे मनोरंजन छोड़ देती है। इस प्रकार अपना सब कुछ त्यागकर मां शासन करने की अत्याचारी इच्छा रखने लगती है। उसके कष्टों और पीड़ाओं से एक ऐसा शस्त्र बनता है जिसका प्रयोग वह परपीड़ा के लिए करती है। सब कुछ त्याग देने का उसका दिखावा बच्चों में अपराध की ऐसी भावनाओं को जन्म देता है जो सारे जीवन में उनमें बनी रहती हैं। बच्चे के लिए मां का यह रुख तो उसके आक्रमणकारी रुख से भी अधिक हानिकर होता है। परेशान बच्चा अपनी रक्षा की कोई जगह नहीं पाता। कभी उसे मारा जाता है तो कभी मां स्वयं आंसू बहाती है। इस प्रकार संतान में स्थायी अपराध-बोध की नींव पड़ जाती है।

स्त्री की सबसे बड़ी शिकायत यह रहती है कि बच्चे द्वारा उसे वह आत्म-पूर्णता प्राप्त नहीं होती जिसके सम्बंध में उसने बचपन में सुना था। अपनी गुड़ियों के साथ वह मनमाना व्यवहार करती थी। वह सखियों और बहनों की सहायता करती थी। उस समय उसकी अपनी कोई जिम्मेदारी नहीं रहती थी किंतु अब तो समाज, उसका पति, उसकी माता और स्वयं उसकी अपनी अहं भावना बालक के प्रति उसे जिम्मेदार ठहराते हैं। खासकर उसका पति बच्चे के किसी भी अपराध के कारण उसी पर नाराज होता है, जैसे वह पत्नी के दुर्व्यवहार से या फिर अस्वादिष्ट भोजन से क्रुद्ध हो जाता है।

पशु की तरह रहस्यमय और प्राकृतिक शक्तियों की तरह भयावह तथा अव्यवस्थित किसी मानव-अस्तित्व को एक पूर्व-निर्धारित ढांचे में ढालना कठिन होता है। किसी भी बच्चे को बिना वोले कुछ सिखाया नहीं जा सकता। उसे विवेकशील बातों को सुनने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। विवेकशील शब्दों का प्रयोग करने पर वह या तो जानवरों की तरह सुबकते हुए उत्तर देता है या झल्लाकर ढिठाई के साथ प्रतिरोध करता है।

वास्तव में बच्चे की शिक्षा की समस्या चुनौतीपूर्ण होती है। माता-पिता और बच्चे की रुचि का एक न होना ही सब कष्टों का कारण है। उसका बोझ माता-पिता पर बराबर रहता है। स्त्री को अपने पति और अपने भविष्य के लिए अपनी इच्छाओं और सुविधाओं का बलिदान करना पड़ता है। यह स्वाभाविक है कि बच्चा विद्रोह करता है। मां की बातें वह समझ नहीं सकता, क्योंकि उसकी मां भी उसकी चेतना को नहीं समझ सकती। मां उसके उस विश्व को देख नहीं सकती जो कि उसके स्वप्नों, भय, इच्छाओं और मानसिक स्थिति ने बनाया है। मां उस पर बाह्यरूप से शासन करती है किंतु वह उसे अनावश्यक पाता है और उसके नियमों को व्यर्थ की थोपी हुई चीज । बच्चे के बड़े हो जाने पर भी मां उसको पूरा नहीं समझ पाती। बच्चा रुचियों और मान्यताओं के एक ऐसे संसार में प्रवेश करता है, जिसमें उसकी मां का प्रवेश नहीं है इसलिए वह अक्सर अपनी मां से घृणा करता है। मां के आदेशों से लड़के को हंसी आती है क्योंकि उसे अपने पुरुपोचित विशेषाधिकारों का घमंड

रहता है। मां लड़के से कहती है कि वह अपने कर्तव्यों को निभाए, किंतु वह नहीं जानती कि किस प्रकार उसकी समस्याओं का समाधान होगा। वह बच्चे के साथ आगे नहीं बढ़ पाती। संतान की ओर से कभी मां को धन्यवाद नहीं मिलता। इस कार्य में मां थककर कभी-कभी आंसुओं में फूट पड़ती है। यह परेशानी उसका पति नहीं समझ सकता।

परिस्थिति लड़के और लड़की के लिए अलग-अलग रूप लेती है। लड़का होने पर मां परिस्थिति के अनुकुल बन जाती है। स्त्रियां पुरुषों को स्वभावत: अधिक सम्मान देती हैं। वास्तव में पुरुषों को कुछ विशेष सुविधाएं प्राप्त हैं भी। अनेक स्त्रियां पुत्र प्राप्त करना अधिक पसंद करती हैं। "किसी पुरुष को विश्व में लाना कितना आश्चर्यजनक है।'. वे कहती हैं। वे एक वीर नायक को जन्म देने का स्वप्न देखती हैं और नायक पुरुष-जाति का ही होता है। उसका पुत्र लोगों का नेता बनेगा, सैनिक बनेगा, वह विश्व को अपनी इच्छा अनुसार झुकाएगा। उसकी मां उसकी कीर्ति में अपने को साझीदार समझती है। वह सोचती है कि वह उसे ऐसा घर देगा जो उसने नहीं बनाया है। वह उसे उन प्रदेशों में ले जाएगा, जहां वह अब तक नहीं पहुंच सकी। वह उसे वे पुस्तकें पढ़ाएगा जो उसने नहीं पढ़ीं। वह सोचती है कि वह उसके द्वारा विश्व को प्राप्त करेगी। इन सबकी शर्त यह होती है कि वह स्वयं लड़के को अपने वश में रख पाएगी या नहीं। अत: उसके रुख में विरोधी भाव आ जाते हैं।

फ्रायड के अनुसार, माता और पुत्र का सम्बंध जरा भी अस्पष्ट नहीं होता। यह सत्य है कि स्त्री का रुख पुरुष की सर्वोपरि स्थिति के प्रति हमेशा द्वयर्थक होता है; चाहे वह प्रेम के सम्बंध में हो, या विवाह अथवा मातृत्व के सम्बंध में। विवाह के अनुभव ने यदि उसे पुरुष के प्रति कटु बना दिया है तो वह उस पुरुष के ऊपर शासन करेगी जो बाल-रूप में उसके सम्मुख है । घमंडी पुरुष- जाति के प्रति उसका व्यवहार व्यंग्यात्मक एवं रूखा रहेगा। कभी-कभी वह लड़के को यह कहकर डराती है कि यदि उसका व्यवहार ठीक नहीं होगा तो वह उसके लिंग को काटकर फेंक देगी। अगर स्त्री विनम्र और सभ्य है तथा अपनी संतान में भावी नायक को देखकर उसका सम्मान करती है, तब वह उसे अपना बनाने के लिए वर्तमान विश्वव्यापी वास्तविकता में उसे जबर्दस्ती लाती है। यह विश्वास बड़ा ही सरल और विवेकपूर्ण है कि स्त्री अपने बच्चों को इसलिए सजा देना चाहती है कि वे उसके स्वप्नों के अनुरूप नहीं। वह चाहती है कि उसके पुत्र में असीमित शक्ति हो, पर साथ ही वह उसे अपनी हथेली पर भी बिठाए रखना चाहती है। वह चाहती है कि वह संसार पर तो शासन करे पर उसके सम्मुख घुटने टेकता रहे। वह उसे एक ही साथ उदार और लोभी, डरपोक और सख्त होने के लिए प्रोत्साहित करती है तथा खेलों और साथियों से अलग भी रखना चाहती है। उसकी अपेक्षाओं के अनुरूप यदि बच्चा एक साहसी व्यक्ति या विजेता और गर्व करने योग्य महान् व्यक्ति नहीं बन पाता तो वह निराश होती है। समाज और परम्परा से

प्राप्त प्रोत्साहन के बल पर लड़के माता की अपेक्षाओं की जकड़न से प्रायः बच जाते हैं। इस स्थिति में मां लड़के की स्थिति के सामने समर्पण कर देती है।

छोटी बालिका पूर्णतया मां पर ही आश्रित रहती हैं, इसलिए उसके सम्बंध में मां के दावे और बढ़ जाते हैं। मां-बेटी के सम्बंध बहुत नाटकीय होते हैं। बालिका में मां अपनी अपेक्षा किसी उच्च कोटि के व्यक्ति को नहीं देखती। वह उसको अपना प्रतिरूप समझती है और पृथक अस्तित्व को चेष्टा करती है। प्रतिकूल स्थिति में मां का अनुभव होता है मानो उसके साथ धोखा हुआ। अब मां और बेटी के बीच घोर मतभेद और संघर्ष शुरू हो जाता है।

कुछ स्त्रियां लड़की से पूर्ण संतुष्ट रहती हैं। पुत्री के जन्म से उन्हें निराशा नहीं होती। वे लड़की को वे तमाम अवसर प्रदान करती हैं जो उन्होंने स्वयं प्राप्त किए थे। वे उसे वैसे अवसर भी देना चाहती हैं, जिन्हें वे स्वयं प्राप्त न कर सकीं। दरअसल मां को एकमात्र चिंता बेटी की खुशी ही रहती है, इसलिए वह आत्म-केंद्रित बन जाती है और विश्व के प्रति उसका रुख कठोर हो जाता है। उसे भय रहता है कि कहीं वह प्रिय पुत्री ही उसके लिए परेशानी की चीज न बन जाए।

कुछ स्त्रियां अपने नारीत्व को अभिशाप समझती हैं। वे प्राथमिकता तो पुत्र के जन्म को ही देती हैं लेकिन पुत्री के जन्म पर एक विवश प्रसन्नता व्यक्त करती हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि मानो लड़की को जन्म देकर उन्होंने कोई अपराध किया है। अतिरिक्त दुश्चिंता से भरकर वे लड़को पर इस आशंका से पहरा-सा बिठाए रखती हैं कि कहीं वह किसी की कामुकता की शिकार न बन जाए।

कुछ स्त्रियां बेटी पर अपनी ही तरह स्त्रियोचित स्थिति आरोपित करना चाहती हैं और साथ ही ऐसी स्थिति से घृणा भी करती हैं। वे हमेशा अप्रसन्न रहती हैं। स्वयं आत्महीनता की ग्रंथि से ग्रस्त रहने के कारण वे क्षतिपूर्ति के रूप में लड़की को लड़के की तरह बड़ा करना चाहती हैं। वे लड़की को श्रेष्ठ प्राणी बनाना चाहती हैं। विडम्बना यह है कि जिन असुविधाओं के कारण उन्होंने स्वयं दुःख पाया है, वही असुविधाएं वे अपनी पुत्री के लिए उपस्थित करने से नहीं चूकतीं। वे अपनी बेटी पर अपना ही भाग्य थोपना चाहती हैं। मेरे लिए जो कुछ अच्छा था, वही तुम्हारे लिए भी काफी है। मेरा लालन-पालन इस प्रकार हुआ था, तुम्हें भी मेरे भाग्य का साझीदार बनना पड़ेगा। कभी-कभी माता बड़ी गम्भीरता से बेटी से कहती है कि तुम मेरी तरह मत होना । वह बेटी को कॉन्वेंट में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजती है, क्योंकि वह स्वयं शिक्षित है। बेटी को यौवन-सुलभ गलतियों की ओर बढ़ती देखकर मां डांटती हुई कहती है-"समझने की चेष्टा करो। यदि तुम्हें कोई पुरुष बुलाए तो उसके पास मत जाओ। अपनी राह पर चलो। मुड़ो मत । तुम मेरी बात समझी; तुम्हें मैं चेतावनी दे रही हूं। ऐसी घटना तुम्हारे साथ नहीं होनी चाहिए। मेरे हृदय में तुम्हारे लिए जरा भी दया नहीं रहेगी, मैं तुम्हें नाली में छोड़ दूंगी।'

बेटी के बड़ी होने पर मां के साथ उसके मतभेद और संघर्ष बढ़ जाते हैं। लड़की अपनी स्वतंत्रता मां से अलग स्थापित करना चाहती है। को पुत्री का व्यवहार अकृतज्ञतापूर्ण लगता है। वह उसकी इच्छाओं पर अंकुश लगाना चाहती है। वह नहीं चाहती कि उसका प्रतिरूप कुछ और ही बन जाए। पुरुषों को स्त्री से श्रेष्ठता की भावना आनंदित करती है। इस प्रकार का आनंद अपने को अपनी पुत्री से श्रेष्ठ देखकर मां को भी होता है। यदि पुत्री उसके आधिपत्य को ठुकरा देती है तो उसे निराशा होती है। उसे अपनी प्रतिष्ठा और सत्ता, दोनों ही त्यागनी पड़ती हैं। मां चाहे स्नेहमयी रहे या ईर्ष्यालु, संतान का स्वतंत्र आचरण उसकी आशाओं को चूर कर देता है। उसे दो रूपों में विश्व से ईर्ष्या होती है। पहले तो वह उससे उसकी पुत्री को छीन लेता है और फिर उसकी पुत्री से भी विश्व का वह भाग छीन लेता है, जिस पर उसने विजय प्राप्त की है।

यह ईर्ष्या पहले छोटी कन्या और उसके पिता की घनिष्ठता को देखकर मां में जन्म लेती है। कभी-कभी मां पुत्री के माध्यम से पति को घर में रखना चाहती है। वह उसे घर से बांधना चाहती है। यदि ऐसा करने में उसे सफलता मिलती है तो उसका परेशान होना स्वाभाविक है। यदि उसकी योजना सफल हो जाती है तो वह अपने बचपन की ग्रंथि को विपरीत रूप में पुनर्जाग्रत कर लेती है। उसे पुत्री पर क्रोध आता है जैसा कि उसे कभी अपनी माता पर आता था। वह उदास रहने लगती है। वह अपने को त्यक्ता मानती है। वह सोचती है कि उसे गलत समझा गया है। बड़ी पुत्री, जिसे प्रायः पिता विशेष स्नेह देता है, मां से अधिक सजा पाती है। वह उसे काम की जिम्मेदारियों से लाद देती है। वह मां के साथ वयस्कों का-सा बर्ताव करती है। कभी-कभी मां अकारण संतान को थप्पड़ मार देती है। "अब तुम्हें समझ में आएगा!" वह अब भी यह दिखाना चाहती है कि उसका स्थान ऊंचा है, लेकिन परेशानी की बात यह है कि मां अपनी श्रेष्ठता के प्रति अतिरिक्त जागरूक होती है। वह ग्यारह व बारह वर्षीया बालिका का प्रतिरोध अच्छी तरह कर सकती है। उसे यह नहीं पता कि इस उम्र में लड़की अच्छी तरह घर के कामकाज कर लेती है। वह एक छोटी स्त्री होती है। उसकी जिज्ञासा-वृत्ति उसे स्पष्ट देखने की क्षमता देती है। स्त्रीत्व के विश्व पर मां स्वयं अकेली शासन करना चाहती है। वह सोचती है कि उसकी स्थिति अद्वितीय है, उसका स्थान अन्य नहीं ले सकता; किंतु उसकी सहायिका यह प्रमाणित कर देती है कि वह भी उन्हीं आम स्त्रियों में से एक है जो सामान्य कार्य करती हैं। यदि दो दिन अनुपस्थित रहने पर मां घर को अव्यवस्थित पाती है तो वह अपनी पुत्री को बुरी तरह डांटती है। यदि वह देखती है कि उसकी अनुपस्थिति में भी घर की व्यवस्था सुचारू रूप से चल रही है तो उसमें क्रोध और भय के मिश्रित भाव पैदा होते हैं। वास्तव में वह नहीं चाहती कि पुत्री एक स्वतंत्र व्यक्ति बने। परिवार के अत्याचारों के विरुद्ध जिन सखियों से पुत्री सहायता चाहतो है, मां उनसे विशेष चिढ़ती है। जो सखियां उसकी भावनाओं को समझती हैं, मां उनकी आलोचना करती है। वह उनके साथ मिलने-जुलने से उसे मना करती है क्योंकि वह

समझती है कि उसके ऊपर 'सखियों का खराब प्रभाव पड़ता है। अपने अलावा मां को हर किसी का प्रभाव खराव दिखाई देता है। अपनी उम्र की स्त्रियों का प्रभाव तो वह बर्दाश्त ही नहीं करती। मां को पुत्री की भावनाएं हास्यास्पद व रुग्ण प्रतीत होती हैं। लड़की की हंसी-खुशी, लापरवाही और क्रीड़ा-प्रियता से मां क्रोधित हो जाती है यद्यपि इन्हीं चीजों के लिए वह पुत्र को क्षमा कर देती है। पुत्र तो पुरुषोचित सुविधाओं का लाभ उठा रहे हैं, उनके लिए ऐसा करना स्वाभाविक है। वह समझ लेती है कि पुत्रों से इन सबके लिए जूझना व्यर्थ है किंतु जो सुविधाएं उसे न मिलीं, वे भला उसकी पुत्री को क्यों मिली ? पुत्री भी तो स्त्री हैं? चूंकि वे स्वयं गम्भीर मामलों में उलझी रहती हैं, इसलिए सभी मनोरंजन और ऐसे कार्य, जो लड़की को घर की ऊब से दूर रखते हैं, मां में ईर्ष्या पैदा करते हैं। इन बंधनों से बेटी की मुक्ति मानो उन सभी मान्यताओं को मिथ्या प्रमाणित कर देना है, जिनके लिए मां ने बलिदान दिया था।

ज्यों-ज्यों पुत्री बड़ी होती है, मां के मन में अवसाद बढ़ता जाता है। हर साल मां तो स्वास्थ्य और यौवन में घटती जाती है; जबकि हर वर्ष बालिका का शरीर बढ़ता और विकसित होता जाता है। इसलिए लड़की के पहले मासिक-धर्म के समय कुछ माताएं अधिक दुःखी हो जाती हैं। उन्हें शिकायत-सी रहती है कि लड़की भी अब पूर्ण स्त्री बन जाएगी। वह लड़की को घर में रखना चाहती है। वह उसे बेढंगे वस्त्र पहनाती है। उसके बाहर जाने और साज-शृंगार पर बेहद क्रुद्ध हो उठती है। जीवन के प्रति अपनी तमाम शिकायतें वह युवती लड़की के प्रति करती है। नए भविष्य की ओर बढ़ती युवती को वह अपमानित करने की चेष्टा करती है। कभी-कभी तो दोनों के बीच खुल्लम- खुल्ला विवाद हो जाता है। इस संघर्ष में प्रायः पुत्री की ही जीत होती है पर उसकी जीत 'गलत क्रिया' के भाव से मानो कलंकित हो जाती है। मां का रुख विद्रोह और पश्चात्ताप का-सा होता है। मां की उपस्थिति में बालिका मानो अपराध-भावना का अनुभव करती है। इच्छा या अनिच्छा से अंत में मां अपनी पराजय स्वीकार कर लेती है। पुत्री के वयस्क हो जाने पर मां-बेटी में एक तरह की मित्रता स्थापित हो जाती है। मां की निराशा देखकर पुत्री सोचती है कि उसकी मां का जीवन अभिशप्त है।

अब हम वयः प्राप्त माता और उनकी बड़ी संतानों के सम्बंधों पर विचार करेंगे। विशेषकर प्रथम तीस वर्षों तक बच्चे माता के जीवन में विशेष स्थान रखते हैं। प्रारम्भिक सम्बंधों के बारे में प्राय: दो विचार प्रचलित हैं। इन विचारों का खोखलापन प्रायः प्रमाणित हो चुका है।

पहला मत तो यह है कि हर अवस्था में मातृत्व स्त्री को महानता प्रदान करता है, पर बात ऐसी नहीं है । अनेक माताएं हमेशा दुःखी, कटु और असंतुष्ट बनी रहती हैं । टालस्टाय की पत्नी इसका एक विशेष उदाहरण है। उसने करीब बारह से भी अधिक शिशुओं को जन्म

दिया पर वह अपने पत्र में बराबर लिखती है कि उसे सभी वस्तुएं शून्य और सारहीन लगती रहीं, यहां तक कि अपना अस्तित्व भी। वह उन शांति और सुख के क्षणों के बारे में लिखती है जब वह अपनी संतान के लिए अनिवार्य हो जाती थी। वह यह भी कहती है कि पति की श्रेष्ठता के विरुद्ध संतानें उसकी एकमात्र शस्त्र थीं। यह सब कुछ उसके नीरस जीवन को सार्थक नहीं बना पाता था। कभी-कभी उसे ऐसा लगता था मानो वह कुछ करने के योग्य है, किंतु बच्चों की देखभाल के अलावा उसके पास अन्य कोई काम न था। खाना-पीना और सोना ही जीवन का क्रम था। वह इन सबसे दुखी रहती थी जबकि एक साधारण स्त्री को इन सबसे सुख प्राप्त हो सकता था। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि वह संतानों की अच्छी तरह देखभाल करे किंतु पति के साथ के चिर-संघर्ष ने उसके जीवन को अभिशप्त, अशांत और क्रोध से भर दिया था। स्त्री की सम्पूर्ण जीवन-स्थिति द्वारा ही उसका सम्बंध उसकी संतान के साथ स्थापित होता है। यह सम्बंध पति के साथ उसके सम्बंधों, उसके अतीत और पेशे तथा स्वयं उस पर आधारित रहता है। यह गलत और हानिकारक विचार है कि संतान विश्व की रामबाण औषधि है। किसी मानसिक विकार से ग्रस्त स्त्री से शिशु धारण करने के लिए कहना अपराध होगा। संतुलित और मानसिक तथा शारीरिक रूप से स्वस्थ और अपनी जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक स्त्री ही एक सुयोग्य माता बन सकती है। जैसा कि शादी का सबसे बड़ा अभिशाप पति-पत्नी का कमजोरियों में एक-दूसरे के साथ सम्मिलित होना है। हर एक व्यक्ति दूसरे से कुछ मांगता है, ताकि दूसरे को आनंद प्रदान करे। संतान द्वारा बाहुल्य, उष्णता और प्रतिष्ठा-प्राप्ति का स्वप्न देखना एक धोखा है। शिशु केवल मां को आनंद प्रदान कर सकता है क्योंकि वह नि:स्वार्थ भाव से दूसरे के सुख की कामना करती है। वह केवल अपने तक ही सीमित न रहकर अपने अनुभवों से ऊपर उठना चाहती है। संतान एक साहसिक कार्य की तरह है, जिससे कोई भी प्रेमपूर्वक संलग्न रह सकता है। संतान की चाह केवल संतान के लिए होनी चाहिए, किसी काल्पनिक लाभ के लिए नहीं।

मां के लिए बच्चे कर्त्तव्य होते हैं। उनका लालन-पालन इस प्रकार होना चाहिए जिससे वे भविष्य में सुखी मानव बन सकें। इस कर्त्तव्य-पालन की दीक्षा नैसर्गिक नहीं होती बल्कि इसे विकास के दौरान अर्जित किया जाता है। प्रकृति कभी भी एक नैतिक चुनाव के लिए आदेश नहीं देती। संतान का पोषण एक प्रतिज्ञा है, जिसे पूर्ण होना ही चाहिए। यदि मां अपने कर्त्तव्य से पीछे हटती है तो वह एक जीवन के प्रति अन्याय करती है। संतान उसके ऊपर अपने को थोप नहीं सकती। संतान और माता-पिता के सम्बंध पति-पत्नी के सम्बंधों की तरह स्वतंत्रतापूर्वक अपनी इच्छा से बनते हैं। संतान प्राप्ति को खासकर उन स्त्रियों के लिए विशेष उपलब्धि मानना ठीक नहीं है जो स्वभाव से नखरेवाज, कामुक, समलिंगी या अतिरिक्त महत्त्वाकांक्षिणी हैं। संतान प्रेम के अभाव या वक्त गुजारने का उपकरण और खिलौना नहीं हो सकती। संतान-प्राप्ति को स्त्री के जीवन का चरम लक्ष्य घोषित करने

वाला वक्तव्य विज्ञापन का नारा-भर होता है। वह वक्तव्य एक दूसरी भ्रांति को भी जन्म देता है। वह यह है कि बच्चा केवल मां की ही गोद में सुखी रह सकता है। मातृत्व-प्रेम इतना नैसर्गिक और स्वाभाविक माना जाता है कि इसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता की गुंजाइश नहीं होती; पर हमारे अनुभव बताते हैं कि कुमाताएं भी होती हैं।

मनोविश्लेषण के अनुसार बच्चों को सबसे बड़ा खतरा माता-पिता से ही रहता है। वयस्कों की मानसिक विकृति, घुटन और मनोग्रंथि का मुख्य कारण पारिवारिक जीवन में ही निहित होता है। वे माता-पिता, जिनमें आपस में मतभेद हैं, जो स्वयं झगड़ते हैं, कभी भी बच्चों के लिए अच्छे साथी नहीं हो सकते। अपने पारिवारिक जीवन से कलंकित व परेशान वयस्क कभी भी अपनी संतान के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं अपना पाते । वे निराश और विकृत मन:स्थिति के साथ ही अपनी संतान के साथ बर्ताव करते हैं। फलस्वरूप संतान भी उसी विकृत मनःस्थिति की शिकार बनती है। इस प्रकार दुःखों की श्रृंखला बढ़ती ही जाती है। विशेषकर यदि मां में आत्म-पीड़ाजनित परपीड़कता के भाव रहें तो बेटी में भी अपराध की भावनाएं आ जाएंगी। ऐसी लड़की आगे चलकर अपनी संतानों के प्रति भी ऐसा ही व्यवहार करेगी।

पुरुष में प्रायः पत्नी के प्रति साधारणतः घृणा का भाव रहता है परंतु माता के प्रति सम्मान का। स्त्री को जनन-कार्य से वंचित रखना अनुचित है। यह कैसा विरोधाभास है कि जहां पुरुष श्रम के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री को असमर्थ मानता है वहीं वह उसे संतान के लालन-पालन की गम्भीर और नाजुक जिम्मेदारी सौंपकर निश्चित हो जाता है ? अनेक स्त्रियां परम्पराओं और रूढ़ियों के कारण अशिक्षित और असंस्कृत रहती हैं। फिर कैसे इनकी गैर-जिम्मेदार बांहों में बिना किसी नैतिक हिचक के शिशु-रूपी जीवित खिलौने सौंप दिए जाते हैं और इन स्त्रियों के हीन-भाव की क्षतिपूर्ति समाज उन्हें हाड़-मांस के खिलौने सौंपकर करना चाहता है ? इस सुविधा के दुरुपयोग के लोभ का संवरण या तो एक पूर्ण संतुष्ट स्त्री ही कर सकती हैं या कोई महान् साध्वी। मांटेस्क्यू ने ठीक ही कहा था कि बच्चों को परिवार में सौंपने के बदले राज्य को सौंप देना अच्छा होगा, जहां उनकी देखभाल योग्य स्त्रियां करेंगी। उपयुक्त सुविधाएं मिलने पर ही स्त्री यह कार्य ठीक ढंग से कर सकती है, किंतु आज की स्थिति में शायद ही कोई स्त्री मानसिक संतुलन बनाए रख सके। अपने कार्य-जगत् में बहुत संतुलित, बुद्धिमान और विवेकशील माना जाने वाला पुरुष ही घर में अपनी पत्नी के साथ झूठा, उच्छंखल और कुतर्की साबित होता है। वह पत्नी को नीचा दिखाता है, अतः स्त्री का बच्चे के साथ वही व्यवहार किया जाना स्वाभाविक हो जाता है। स्त्री का बच्चे को ओछा दिखाने वाला भाव इसलिए अधिक खतरनाक होता है कि बच्चा तो अपनी रक्षा नहीं कर सकता जबकि स्त्री तो पति से अपनी रक्षा कर सकती है। दरअसल एक अखंडित और पूर्ण व्यक्तित्व वाली स्त्री ही, जिसने अपनी परियोजनाओं के माध्यम से समाज के

साथ एक स्वस्थ सम्बंध स्थापित करके आत्म-बोध प्राप्त किया है, अच्छी माता बन सकती है। संतान के लिए भी माता-पिता के ऊपर अतिरिक्त रूप से आश्रित होना उचित नहीं है। उसे माता-पिता के सम्पर्क के विकल्प में ऐसे वयस्कों का निर्देश मिलना चाहिए जिनके साथ उसके सम्बंध नि:स्वार्थ और पवित्र रहें।

यद्यपि एक संतुलित और सुखी परिवार में संतान सम्पत्ति-सदृश होती है, परंतु संतान मां के क्षितिज की सीमाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करती। वह उसे उसकी अंतर्व्यापी स्थिति से बाहर नहीं निकाल सकती। मां बच्चे के लालन-पालन के द्वारा सिर्फ एक अनुकूल स्थिति का सृजन कर सकती है, जिससे संतान एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में उभरे। मां न तो अपने पर आश्रित जीवन को उसका भविष्य दे सकती है, न उसके द्वारा अपनी क्षतिपूर्ति कर सकती है। प्रेम और विवाह की तरह इस क्षेत्र में भी प्राय: स्त्री की आशाओं पर तुषार-पात होता है।

एकल जीवन स्त्री के हीनता-बोध का प्रमुख कारण है जबकि पुरुष ने अपने स्वतंत्र जीवनयापन के आधारभूत कारण आविष्कृत कर लिए हैं। यदि स्त्री की स्थिति केवल मातृत्व की ही रहेगी तो इस परिस्थिति में परिवर्तन नहीं होगा। आज की स्त्री उन कार्यों में भाग लेना चाहती है, जिनमें पुरुष भाग लेकर जीने की सार्थकता सिद्ध करके ऊंचा उठना चाहता है। पुरुष नए लक्ष्यों और कार्यों की ओर अग्रसर होते हैं, जबकि स्त्री जीवन से निरासक्त रहकर सिर्फ मां बनना नहीं चाहती। यह उचित नहीं है कि स्वतंत्र व्यक्तियों के जन्म के साथ ही तोप, गोला और बारूद अर्थात् मृत्यु के साधनों की भी उत्पत्ति होती रहे । एक सुव्यवस्थित समाज में बच्चों की देखभाल समाज द्वारा होती रहे। स्त्री को स्थिति सुरक्षित होगी और उसको आवश्यक सहायता मिलेगी। मातृत्व' स्त्रियों के व्यक्तित्व के विकास में बाधक नहीं होगा। किसान औरतें, लेखिकाएं और औषधि-विक्रेता स्त्रियां गर्भावस्था को भी बहुत आसानी से सहन कर लेती हैं क्योंकि वे केथल अपने जीवन में ही नहीं डूबी रहतीं। जिस स्त्री का व्यक्तिगत जीवन समृद्ध और संतुष्ट रहता है, उसके पास संतान को देने के लिए भी बहुत-कुछ रहता है। वह संतान से बहुत कम आशा भी करती है। प्रयत्न और संघर्ष द्वारा जीवन की प्रतिष्ठा पाने वाली स्त्रियां संतान की भी बड़ी अच्छी तरह देखभाल करेंगी। अक्सर आज की स्त्री जिस कार्य को अपना लेती है, उसके लिए उसे घंटों घर से बाहर रहना पड़ता है और उसकी शक्ति क्षीण होती है, इसलिए बच्चों की रुचियों के साथ वह सामंजस्य नहीं बैठा पाती। स्त्री के कार्य आज भी बहुत-कुछ गुलामों- जैसे ही हैं। बच्चों की देखभाल, रक्षा और शिक्षा का घर से बाहर कोई उचित प्रबंध नहीं हुआ है। यह समाज की ओर से स्त्रियों और बच्चों की अवहेलना है और कर्तव्यच्युति भी। इस स्थिति को इस प्रकार सिद्ध करना कि ईश्वर और मनुष्य चाहते हैं कि मां और बालक विल्कुल एक-

दूसरे पर निर्भर रहें, उचित नहीं। यह बंधन हानिकारक और घुटन का वातावरण पैदा करता है।

यह कहना भी भ्रामक है कि मातृत्व के द्वारा स्त्री पुरुष के समान हो जाती है। मनोविश्लेषण विज्ञान का कथन है कि संतान माता को लिंग के सदृश वस्तु प्रदान करती है। यह पुरुषोचित ईर्ष्या का कारण हो सकता है किंतु इसकी उपस्थिति जीवन की सार्थकता सिद्ध नहीं करती और न यही जीवन का चरम लक्ष्य है। मां के पवित्र अधिकारों की भी काफी चर्चा होती है किंतु मां के रूप में ही स्त्री को वोट देने का अधिकार नहीं मिलना विवादास्पद है। सत्य यह है कि शादी द्वारा मां को गौरव प्राप्त हुआ क्योंकि वह पति के सहारे उठी। जब तक आर्थिक मामलों में परिवार का प्रधान पुरुष रहेगा, तब तक संतान पिता पर माता से अधिक आश्रित रहेगी। इसीलिए संतान के साथ मां का सम्बंध, पति के साथ पत्नी के सम्बंध द्वारा अत्यधिक प्रभावित होता है।

महिलाओं की पत्रिकाओं में महिलाओं के लिए परामर्शों का ढेर रहता है। यह राय दी जाती है कि घर-द्वार की देखभाल करते हुए भी स्त्री को अपना रतिरूप बनाए रखना चाहिए। पत्नी का यौन-आकर्षण घटना नहीं चाहिए, चाहे वह बर्तन धोती रहे या गर्भावस्था में हो। उसे हर अवस्था में सुंदर वस्त्र पहनने चाहिए। उसे तो सजीलापन, मातृत्व और आर्थिक समस्या, सभी का ध्यान रखना है। वह महिला भी, जो इस परामर्श का अक्षरशः पालन करती है, कार्य-भार, चिंताओं एवं जिम्मेदारियों से अपना सौंदर्य खो बैठती है। बर्तन मांजते रहना, संतान को जन्म देते रहना और साथ ही आकर्षक भी बने रहना बड़ा कठिन है। इसीलिए कामुक स्त्रियां संतान के प्रति उदासीन रहती हैं। संतान उनकी सम्मोहक शक्ति को नष्ट कर देती है और पति का ध्यान उनकी ओर से हटा देती है। यदि स्त्री मातृत्व को चाहने वाली है तो उसे बच्चों पर पति का आधिपत्य देखकर ईर्ष्या होगी।

अब हम यह देख चुके हैं कि प्रायः सफल गृहिणी जीवन की अन्य गतिविधियों से दूर रहती है। साफ-सुथरे फर्श का तो मानो बालक दुश्मन होता है। मां का स्नेह बालक द्वारा घर गंदा होने पर क्रोध और डांट में बदल जाता है। अनेक विरोधों के बीच रहने के कारण स्त्री का समय चिंता और परेशानी में गुजरता है। यह स्वाभाविक भी है। उसे किसी-न-किसी रूप में अपने को नीचा दिखाना पड़ता है। कामों से उसे मुक्ति कभी नहीं मिल सकती। दायित्व उसे अपने में रत रखते हैं पर उसकी सार्थकता प्रमाणित नहीं करते । स्त्री की सार्थकता अन्य स्वतंत्र व्यक्तियों पर आश्रित है, स्वयं उस पर नहीं। घर में बंद स्त्री अपना अस्तित्व स्वयं नहीं स्थापित कर सकती। आत्म-सत्ता के आवश्यक साधन स्त्री को सुलभ नहीं। इसीलिए स्त्री के व्यक्तित्व को अपेक्षित मान्यता नहीं मिलती।

आधुनिक समाज में अपना एक स्वतंत्र दृष्टिकोण रखने के बावजूद स्त्री जब तक 'वार एंड पोस' की नायिका नताशा की तरह अपनी ही आहुति परिवार के लिए नहीं दे देती, तब

तक वह सामान्य प्रेमिका, पत्नी या मां के स्तर से ऊंचा नहीं उठ पाती। साधारणता उसकी नियत्ति हो जाती है। नताशा को इस चरम आत्म-दैन्य की स्थिति से प्रसन्नता हो सकती है किंतु आज की पाश्चात्य स्त्री इसके विपरीत विशिष्टता के अन्य अवसर प्राप्त करना चाहती है। वह अपने जीवन के अभावों और तनावों की क्षतिपूर्ति सामाजिक जीवन में श्रेष्ठता-प्राप्ति के जरिए करना चाहती है।

सामाजिक जीवन

परिवार समाज से सर्वथा पृथक अपने आपमें बंद इकाई नहीं होता। उसको पृथक विशिष्टता अन्य सामाजिक इकाइयों के साथ आदान-प्रदान के क्रम में ही अभिव्यक्त होती है। घर किसी ऐसे भीतरी भाग का नाम नहीं होता जिसमें कुछ लोग सबसे कटकर निवास करते हैं। निवास करने वाले का जीवन-स्तर, उसको आर्थिक स्थिति और उसकी रुचि घर द्वारा, व्यक्त होती है और इसीलिए घर दूसरों की भी दृष्टि में पड़ना चाहिए। यह मुख्यतः स्त्री का कार्य है कि वह सामाजिक जीवन को दिशा दे। पुरुष समाज के साथ उत्पादक और नागरिक के रूप में जुड़ा रहता है। इस जुड़ाव की कड़ी कार्य-विभाजन पर आधारित आवयविक ठोसता होती है। दम्पति सामाजिक इकाई होते हैं। वे जिस परिवार, वर्ग, वृत्त और जाति के होते हैं, उसी के आधार पर उनकी व्याख्या कर दी जाती है। वे अपनी समानता वाले सामाजिक समूहों की यांत्रिक कड़ियों से जुड़े रहते हैं। समाज के साथ पली का सम्बंध अधिक निकट होता है। पति की व्यापारिक व्यस्तता उसे सामाजिक समूह से दूर भी रखती है किंतु इस तरह की कोई व्यस्तता न होने के कारण पत्नी अपने बराबर वालों के समाज के ही भीतर रहती है। स्त्री के पास आमंत्रित होने पर कहीं पहुंच पाने और अपने घर पर लोगों को बुला पाने के लिए समय रहता है । यद्यपि इन सम्बंधों का कोई व्यावहारिक प्रयोग या लाभ नहीं होता। सामाजिक वृत्त में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाले और अपने को दूसरे से श्रेष्ठ समझने वाले वर्ग के लोगों के लिए ऐसा सम्बंध आवश्यक होता है। पत्नी को अपना घर दूसरों को दिखाने में खुशी होती है। अपने रूप का प्रदर्शन उसे प्रिय होता है। उसके पति और बच्चे घर और उससे इतने परिचित रहते हैं कि उनकी दृष्टि में उसकी विशिष्टता सहज ही स्पष्ट नहीं होती। उसके सामाजिक कर्त्तव्य दूसरों की दृष्टि में प्रशंसा पाने की उसकी इच्छा के साथ जुड़े होते हैं। जहां तक पत्नी का सम्बंध है, उसे अच्छे रूप में प्रदर्शित होने की सहज इच्छा होती है। घर में काम-काज करती हुई वह केवल साधारण ढंग के कपड़े पहनती है पर बाहर जाने और किसी से विशेष रूप से मिलने के अवसर पर वह अच्छे कपड़े पहनती हैं । ढंग से बने वस्त्र नारी की सामाजिक स्थिति प्रदर्शित करते हैं। उसका जीवन-स्तर, सामाजिक समूह और आर्थिक सम्पन्न्ता उसके वस्त्रों के स्तर से प्रदर्शित होती है। वस्त्र स्त्री की आत्म- विमुग्धता की मानसिकता के

साकार रूप होते हैं। स्त्री अपने वस्त्रों और आभूषणों द्वारा ही व्यक्त करती है कि वह क्या है, क्योंकि अलग से वह कुछ भी करने के अवसर से वंचित होती है। अपने सौंदर्य की देखभाल करना और ढंग के कपड़े पहनना उसके ऐसे कार्य हैं, जिनके द्वारा वह अपने व्यक्तित्व पर स्वयं अधिकार और विश्वास जमाती है। जिस प्रकार वह अपने घर पर गृहकार्य द्वारा आधिपत्य जमाती है उसी प्रकार वह अपने अहं को वस्त्रों और साज-सजा द्वारा विशेषता प्रदान करती है और अपने व्यक्तित्व की विशिष्टता का पुनर्पुजन करती है। सामाजिक रीति-रिवाज भी यही चाहते हैं कि नारी अपने रूप के माध्यम से ही अपने को दिखाए। पुरुष के वस्त्र उसके शरीर की तरह उसकी सर्वोपरिता का निदर्शन करते हैं। वे ध्यानाकर्षण नहीं करते। पुरुष को अपनी शालीनता और सुंदरता द्वारा अपने को वस्तु-रूप में स्थित नहीं करना है। साधारणतः वह अपने रूप को अपने अहं का प्रतिबिम्ब नहीं मानता।

स्त्री की स्थिति इसके विपरीत होती है। समाज भी चाहता है कि वह अपने को काम-वासना का साधन बनाए । स्त्री के फैशन और शृंगार का उद्देश्य उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व का उद्घाटन करना न होकर पुरुष की इच्छा का शिकार बनना है। समाज यह नहीं चाहता कि स्त्री अपनी योजनाओं को स्वतंत्र रूप में आगे बढ़ाए, बल्कि वह उसकी गति में बाधा डालता है। स्कर्ट कुर्ती से कम सुविधाजनक होता है। ऊंची एड़ी के जूतों से चलने में बाधा पड़ती है। जो गाउन और ड्रेस कम व्यावहारिक हैं, जो हैट और मोजे नाजुक हैं, वे ही अधिक शानदार हैं। स्त्री की पोशाक उसके शरीर को छिपा सकती है, अन्य रूप में प्रदर्शित भी कर सकती है, उसे विकृत रूप दे सकती है। वह उसके शरीर की वक्रता और लोच का प्रदर्शन कर सकती है। किसी भी रूप में पोशाक नारी का प्रदर्शन करती है। इसीलिए छोटी बालिका के लिए अच्छे वस्त्र पहनना एक मोहक खेल होता है। वह अपने ही बारे में सोचना पसंद करती है। आगे चलकर जब उसे हल्के रंग की मलमल और विशेष प्रकार के चमड़े के जूते पहनने पड़ते हैं तो उसके बचपन की स्वतंत्रता विद्रोह करती है। एक ऐसी विचित्र उम्र आती है जब बालिका का मन दो भागों में बंट जाता है। प्रदर्शन की इच्छा अनिच्छा में और जब वह यह स्वीकार कर लेती है कि वह भोग की वस्तु है तब वह अपने शृंगार में आनंद का अनुभव करने लगती है।

श्रृंगार द्वारा स्त्री अपने को प्रकृति के साथ मिलाती हुई भी कृत्रिमता की आवश्यकता समझती है। पुरुष के लिए वह वस्तु और रत्न बन जाती है। पुरुष को जल का उतार-चढ़ाव और फर की कोमल उज्ज्वलता प्रदान करने के पहले वह स्वयं उन्हें ग्रहण करती है। उसका सम्बंध नुमाइशी चीजों, कुशन, गद्दियों और गुलदस्तों से उतना नहीं होता जितना पंख, मोती, सिल्क और जरी आदि से होता है क्योंकि इन्हें वह शरीर पर धारण करती है। स्त्री इन्हें जितना महत्त्व देती है उतना ही पुरुष की कामुकता को संतोष मिलता है। ऐसा करके

न तो वे पुरुषों की नकल करती हैं और न समाज की अवज्ञा । उन्हें कोमल मखमल और साटन पहनने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि उन्हें अपने शरीर में ये शांत गुण और विशेषताएं मिल जाती हैं। इतरलिंगी स्त्री, चाहे उसकी इच्छा हो या न हो, जिसे पुरुप के सख्त बाहुपाश में बंध जाना है, अपने शरीर में सुगंधित पदार्थ लगाती है जिससे कि उसका शरीर पुरुष के लिए सुगंध या फूल में बदल जाए। उसकी ग्रीवा में सुशोभित हीरों का हार उसकी त्वचा की चमक में मिल जाता है। इन्हें प्राप्त करने के लिए वह अपने को संसार की सम्पन्नता के साथ मिला देती है। स्त्री उनकी चाह केवल ऐंद्रिक सुख के लिए नहीं करती, बल्कि वह उनमें भावनात्मक और आदर्श मूल्य भी पाती है। ये रत्न मानो स्मारक चिह्न होते हैं, प्रतीक होते हैं। कई स्त्रियां अपने को गुलदस्ता बना लेती हैं। कुछ स्त्रियां मानो अजायबघर ही बन जाती हैं और कुछ चित्रलिपि। अपने यौवन-काल को याद करते हुए जार्जेटी लेब्लांक अपनी आत्मकथा में लिखती हैं, "मैं हमेशा चित्र की तरह वस्त्र धारण करती थी। मैं एक सप्ताह के लिए बाहर जाती थी। उस समय मैं वैन आइक या सेवेन के किसी चित्र-रूपक या मेमलिंग की कुमारी अप्सरा की तरह रहती थी। मुझे आज भी स्मरण है कि मैं किस प्रकार सर्दी के एक दिन ब्रूसेल की सड़क पर चल रही थी। उस समय मैंने जामुनी रंग की मखमली पोशाक पहनी थी। उसके किनारे रुपहले रंग की चोटी लगी थी। मेरी पोशाक का पुछल्ला इतना लम्बा था कि फुटपाथ पर झाड़ू लगा रहा था, पर उसे उठाकर चलने में मुझे घृणा होती थी। मैंने अपने बालों के ऊपर पीले रंग के फर का हुड लगा रखा था। सबसे असाधारण वस्तु तो मोती और हीरे का जड़ टीका था जिसे मैंने अपने ललाट पर पहना था। इन सबका कारण क्या था? सिर्फ यही कि मुझे यह पसंद था और परम्परा से नितांत भिन्न था। जितना ही लोग मुझे देखकर हंसते थे, मैं उतनी ही विचित्र पोशाक पहना करती थी। मैं अपनी पोशाक में कोई परिवर्तन करना नहीं चाहती थी क्योंकि इसका उपहास होता। यह मुझे नीचे दिखने वाला समर्पण प्रतीत होता, पर घर में मेरी वेशभूषा भिन्न होती थी। मेरे आदर्श देवदूत और वाट्स के चित्र थे। मैं हमेशा नीली और सुनहली पोशाक पहनना चाहती थी। मेरी पोशाक चारों ओर उड़ती रहती थी और उसमें अनेक छोर और पुछल्ले लगे रहते थे।"

दुनिया में इस प्रकार के श्रेष्ठ उदाहरण पागलखानों में मिलते हैं। प्रतीकों और मूल्यवान वस्तुओं के प्रति अपनी इच्छा को वश में नहीं रख पाने वाली स्त्री अपने सच्चे रूप को ही भूल जाती है और विशेष तड़क-भड़क वाली पोशाक पहनती है। छोटी बालिका सोचती है कि यदि वह ढंग से वेशभूषा धारण करे तो उसका असली रूप दिख जाएगा। वह परी रानी और फूल-सी दिखाई पड़ेगी। रिबन - और फूलों से लाद दिए जाने पर वह अपने को सुंदर समझने लगती है। वह सुंदर वस्त्रों के साथ आश्चर्यजनक रूप से अपने को एक कर लेती है। वह अनुभवहीन छोटी बालिका कुछ वस्तुओं के रंगों से इतनी मोहित हो जाती है कि वह अपने रंग के पीलेपन को देख नहीं सकती। यह कुरुचि उन वयस्क कलाकारों और विद्वानों

में भी पाई जाती है जो बाह्य जगत् से विशेष मुग्ध हो जाते हैं और अपने रूप के बारे में सजग नहीं रहते। प्राचीन वस्त्रों और प्राचीन रत्नों पर वे अत्यधिक मोहित हो जाते हैं । वे चीन और मध्ययुग का आवाहन करते हैं और दर्पण पर एक पक्षपाती दृष्टि डालते हैं। कभी-कभी ऐसी वृद्धा स्त्री को देखा जाता है जो पुराने साज-शृंगार से प्रभावित होती है जैसे मुकुट, लेस और भड़कीली पोशाक तथा विचित्र प्रकार के हार। उसकी प्रवृत्ति विकृत हो गई है और ये पुरानी वस्तुएं उसका ध्यान आकर्षित करती हैं। ऐसी स्त्रियों में अब सम्मोहित करने की शक्ति नहीं रहती। अनेक स्त्रियां खूब बनाव-श्रृंगार करती हैं जैसा कि वे छोटी उम्र में करती थीं। एक सुरुचि-सम्पन्न स्त्री साज-शृंगार से ऐंद्रिक सौंदर्य के आनंद की चेष्टा करती है। वह उसके अपने रूप के अनुसार होगा। उसकी सिलाई व बनावट इस प्रकार होगी कि वह अपनी आकृति को उत्कृष्ट रूप में दिखा पाए। वह अपने शृंगार' को महत्त्व देती है, शृंगार को नहीं।

साज-शृंगार स्त्री को केवल अलंकृत नहीं करता, वह उसकी सामाजिक स्थिति की ओर भी संकेत करता है। वेश्याएं, जिनका कि पेशा ही काम-वासना का पात्र बनना है, अपने केशों को केशरिया रंग में रंगती हैं, वे प्राचीन समय के वस्त्र, ऊंची एड़ी के जूते और बदन से चिपटे कपड़े पहनती हैं। वे अत्यधिक शृंगार और तेज सुगंध का प्रयोग करती हैं। इस प्रकार वे अपने पेशे का विज्ञापन करती हैं। अन्य कोई भी स्त्री यदि इस प्रकार की वेशभूषा धारण करेगी तो लोग उसकी आलोचना करेंगे और उसे सड़क पर भटकने वाली आवारा औरत कहेंगे। स्त्री की काम-क्षमता सामाजिक जीवन के साथ जुड़ी रहती है और वह गम्भीरता से ही प्रदर्शित होनी चाहिए। भद्रता से पोशाक पहनना नारी को विनम्रता का परिचायक नहीं है। स्पष्ट रूप से पुरुष की इच्छा भड़काने वाली स्त्री कभी भी सुरुचि वाली नहीं कही जा सकती, किंतु जो स्त्री पुरुष की इच्छा को स्वीकार नहीं करती, वह भी प्रशंसनीय नहीं होती। लोग सोचते हैं कि या तो वह पुरुषों की तरह रहना चाहती है या समलिंगी कामुक है या फिर वह अपने को विशिष्ट रूप में प्रदर्शित करती है और सनकी है। वस्तु-रूप में अपनी भूमिका को अस्वीकार कर वह समाज की अवज्ञा करती है और अराजकतावादी है। यदि वह विशेष रूप से प्रकट नहीं होना चाहती तो न सही, पर उसे सहज स्त्री के रूप में तो रहना ही चाहिए। रीति-रिवाज प्रदर्शन और विनम्रता में सामंजस्य स्थापित करते हैं। स्त्रियों को अपना वक्षस्थल ढंककर रखना चाहिए। कभी-कभी जवान लड़कियां अपने रूप पर ज्यादा जोर देती हैं जिससे वे लोगों को आकृष्ट कर सकें, जबकि कई विवाहित स्त्रियां कभी-कभी रंगीन और सुतने ढंग की सिली फिल्मी फ्रॉक पहनती हैं। कई वयप्राप्त महिलाएं भी शरीर से चिपके गाउन और भारी चीजें, भड़कीले रंग और उत्तेजित करने वाले स्टाइल अपनाती हैं। इस उम्र में उनका यह रंग-ढंग अच्छा नहीं लगता।

सामाजिक सुरुचि के नियमों को अमान्य नहीं करना चाहिए। उस समुदाय में भी, जहां काफी संयत व्यवहार किया जाता है, स्त्री के काम-रूप पर विशेष जोर दिया जाता है। एक पुरोहित की भी पत्नी, अपने केशों को धुंघराला रखती हैं और हल्का मेकअप करती है। वह भी शारीरिक आकर्षण बनाए रखने की चेष्टा करती है, जिससे यह ज्ञात होता है कि वह अपनी स्त्री-भूमिका स्वीकार करती है। संध्या के समय धारण किए जाने वाले वस्त्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि काम-जीवन और सामाजिक जीवन किस प्रकार एक-दूसरे से अभिन्न होते हैं। सामाजिक अवसरों पर पहनने के वस्त्र महंगे और विशेष प्रकार के होते हैं। गाउन महंगी और नजाकत से बनी होती है जिसे सम्भव सीमा तक असुविधाजनक बनाया जाता है। स्कर्ट खूब लम्बे और चौड़े होते हैं जिससे चलने में पांव अटकते हैं। जवाहरात, फूल, पंख, झालर और सितारों से सजी स्त्री कृत्रिम केश धारण की हुई मांस की गुड़िया में परिवर्तित हो जाती है। खिले हुए फूलों की तरह उसके शरीर का भी प्रदर्शन होता है। स्त्री अपने कंधों, पीठ और वक्ष का प्रदर्शन करती है। उन्मत्त कर देने वाले उत्सवों के अलावा पुरुष इन सबमें ज्यादा रुचि नहीं दिखाते हैं। वे कभी-कभी नजर डाल लेते हैं और नृत्य करते समय आलिंगन कर लेते हैं; परंतु प्रत्येक पुरुष को एक ऐसे विश्व का राजा होने पर प्रसन्नता होती है जो इस प्रकार की सुंदर निधियों से भरा है। जहां तक पुरुषों का प्रश्न है, पार्टी और समारोह ऐसे अवसर हैं, जहां उनके लिए उपहारों का आदान-प्रदान होता है। हर कोई एक-दूसरे को उपहार देता है। वह उपहार है, स्त्री-शरीर का हृदय। स्त्री, जो कि पुरुष की सम्पत्ति है। अपनी संध्या की पोशाक में पत्नी स्त्री के रूप में बदल जाती है। वह सभी पुरुषों को आनंद प्रदान करती है और अपने स्वामी के गर्व को संतुष्ट करती है।

साज-शृंगार स्त्री को अपनी वेशभूषा द्वारा समाज के प्रति अपना दृष्टिकोण व्यक्त करने की अनुमति देता है। यदि वह समाज की प्रचलित व्यवस्था को मान्यता देती है तो वह अपने व्यक्तित्व को विवेकशील और फैशनपरस्त बनाती है। यहां पर अनेक सूक्ष्म भेद हैं। वह अपने को नाजुक बालिका जैसी अबोध, रहस्यमय, स्पष्टवादी, संयमी, प्रसन्नमुख, गम्भीर, साहसी और शांत रूप में प्रस्तुत कर सकती है। इसके विपरीत यदि वह परम्पराओं से घृणा करती है तो अपनी मौलिकता से उसे स्पष्ट कर देगी। यह विशेष ध्यान देने की बात है कि अनेक उपन्यासों में स्वाधीन स्त्री अपनी वेशभूषा से उन स्त्रियों से अपना अंतर स्पष्ट कर देती है जिनकी पोशाक उनके 'काम-रूप' पर जोर देती है।

यदि प्रत्येक स्त्री अपने स्तर के अनुसार पोशाक पहने, तब भी एक खेल हो सकता है। कोई भी कौशल कला की तरह कल्पना-लोक से सम्बंध रखता है। कमरपट्टी, ब्रेसियर, हेयरडाई और मेकअप शरीर और चेहरे को बदल देते हैं। जो स्त्रियां कृत्रिमता को पसंद नहीं करतीं, वे अच्छी पोशाक पहन लेने पर भी दूसरों को अपने को दिखातीं नहीं। प्रदर्शन-प्रिय स्त्रियां एक तस्वीर व मूर्ति की तरह होती हैं। वे या तो रंगमंचीय अभिनेता की तरह होती हैं

या उस दूत की तरह जो दूसरे का प्रतिनिधित्व करता है। वे एक चरित्र का प्रतिनिधित्व करती हैं पर स्वयं वे 'वह' नहीं होतीं। किसी अस्वाभाविक स्थिर वस्तु के साथ या किसी उपन्यास के नायक या शिल्पी द्वारा बनाई प्रतिमा के साथ समानता स्थापित करके उन्हें संतुष्टि होती है। वे उस आकृति के साथ समानता स्थापित करना चाहती हैं और उन्हें ऐसा ही प्रतीत होता है।

साज-शृंगार को स्त्रियां इस भ्रम के कारण अधिक महत्त्व देती हैं कि वह बाह्य और अंतर्जगत् का पुनर्सजन लाता है। एक जर्मन उपन्यास में एक ऐसी युवती का वर्णन है जिसे सफेद फर से बने ढोले आवरण अधिक प्रिय थे। उसे पहनकर उसे ऐंद्रिक सुख मिलता था और उसकी तहों में उसे सुंदरता और सुरक्षा का अनुभव होता था। उस पोशाक को पहनकर उसे ऐसा लगता था मानो उसने सौंदर्य- जगत् और उस भाग्य को सुलभ कर लिया है जो वस्तुतः उसके लिए दुर्लभ था।

चूंकि स्त्री एक वस्तु है, इसलिए यह सहज बोधगम्य है कि उसकी मूलभूत कीमत उसकी पोशाक के ढंग और सजावट से प्रभावित होती है। वह व्यर्थ ही सिल्क और नायलोन के मोजे, दस्ताने और हैट को इतना महत्त्व नहीं देती। उसके लिए ये अनिवार्य हैं क्योंकि इनके द्वारा ही वह अपनी विशेष स्थिति बनाती है। अमरीका में कामकाजी लड़कियां सौंदर्य-प्रसाधनों और कपड़ों पर काफी खर्च करती हैं। फ्रांस की महिलाओं का यह खर्च कम है फिर भी जो स्त्री जितना अच्छा बाह्य रूप दिखाती है, उसका उतना ही सम्मान होता है। सम्पन्न दिखाई देना उसके लिए लाभदायक है। खूबसूरत, स्मार्ट और मोहक दिखाई देना मानो उसके लिए एक अस्त्र है, पताका है, रक्षा और सिफारिश का पत्र है।

रमणीयता एक प्रकार की दासता हैं, बंधन है। इसके लाभों की कीमत चुकानी पड़ती है जो बहुत अधिक होती है। दुकानों के जासूस एक अच्छी सम्पन्न नारी को परफ्यूम, सिल्क के मोजे और अंडरवीयर आदि चुराते पकड़ लेते हैं। अनेक स्त्रियां वेश्यावृत्ति में लग जाती हैं या फिर सहायिका का कार्य स्वीकार कर लेती हैं जिससे. अच्छी पोशाक पहनने का अवसर मिले। साज-शृंगार के लिए ही उन्हें अतिरिक्त पैसों की आवश्यकता पड़ती है, परंतु इस कार्य से कभी-कभी प्रत्यक्ष आनंद की प्राप्ति भी होती है। चतुर स्त्री अपनी पोशाक स्वयं बना लेती है। जिस दिन वह सौदा करने निकलती है, वह दिन उसके लिए अपूर्व आनंद का होता है। एक नई पोशाक एक प्रकार का उत्सव है। मेकअप' और हेयरडाई एक कलात्मक कार्य के सृजन का स्थान लेते हैं। आज स्त्री को अच्छी तरह ज्ञात है कि उसके शरीर का ढांचा और रंग कैसा हो। आज भी सौंदर्य-सम्बंधी जरूरतों के अनुसार वह सौंदर्य और कार्य को एक-दूसरे में सम्मिलित कर सकती है। वह अपनी मांसपेशियों को चुस्त रख सकती है और मोटापे को दूर कर सकती है। इस प्रकार शारीरिक सौंदर्य के क्षेत्र में वह एक व्यक्ति के रूप में आत्म-सत्ता व्यक्त कर सकती है और कुछ अंश में वह अपनी आकस्मिक देह से

अपने को स्वतंत्र रख सकती है, पर यह स्वतंत्रता भी परनिर्भरता में बदल जाती है। हॉलीवुड के स्टार ने प्रकृति पर विजय प्राप्त की है किंतु प्रोड्यूसर के हाथों में वह फिर भी एक वस्तु ही है।

स्त्री अपनी इन विजयों पर आनंद मना सकती है किंतु आकर्षक बने रहने के लिए भी उसे संघर्ष करना पड़ता है। कितने दिनों तक उसका आकर्षण बना रहेगा? उसकी देह एक वस्तु-सदृश है, अत: हर वस्तु की तरह समय के साथ वह भी क्षीण होती जाती है।

'अब यौवन का गठा और दृढ़ शरीर नहीं रह गया था। बांह और जांघ के पास की मांसपेशियों पर चर्बी आ गई थी और चमड़ी ढीली पड़ गई थी। चिंतित होकर उसने फिर अपनी दिनचर्या प्रारम्भ की। सुबह आधा घंटा व्यायाम और रात को बिस्तर पर जाने से पूर्व 15 मिनट तक मालिश। वह मेडिकल पुस्तकों और फैशन-सम्बंधी पत्रिकाओं को पढ़ने लगी। वह अपनी कमर के घेरे को ध्यान से देखती। वह फलों का रस और प्रायः जुलाब लेने लगी। वह बर्तन धोते समय हाथ में रबर के दस्ताने पहनने लगी। उसकी केवल दो चिंताएं थीं। अपने शरीर को नवीन बनाना, कायाकल्प करना और घर को सजाना। ऐसा प्रतीत होता था मानो दुनिया रुक गई है। उसने उम्र और विनाश को रोक दिया है। अपनी फीगर' को अच्छा रखने के लिए वह घंटों तैरती थी। सौंदर्य-सम्बंधी पत्रिकाओं के भोजन-सम्बंधी 'नुस्खे' उसका ध्यान आकर्षित करते थे। सिंगर रोजर्स कहती हैं कि इसमें केवल दो मिनट लगता है या ढाई मिनट, लेकिन मेरे केश रेशम की तरह मुलायम हो गए हैं। मैं अपने टखनों को पतला रखने के लिए दिन में करीब तीस बार पंजों के बल एड़ी को जमीन में लगाए बिना खड़ी होती थी। इस व्यायाम में केवल एक मिनट लगता है। पूरे दिन में एक मिनट की क्या कीमत? हाथ की अंगुलियों के नाखूनों को मैं तेल में डुबोकर रखती और हाथों में नींबू रगड़ती और मुख पर स्ट्राबेरी का रस मलती।"

यदि शारीरिक सौंदर्य की देखभाल और कपड़ों की अलमारी को सजाने का एक विधिवत नियम बना लिया जाए तो वह नीरस प्रतीत होता है। निरुत्साही और निराश स्त्रियों को जीवन के प्रति आशंका और भय हो जाता है, जब वे यह देखती हैं कि सभी जीवित प्राणियों का विनाश होता है। जिस तरह लोग अपना फर्नीचर और डिब्बे में बंद भोजन सुरक्षित रखते हैं, उसी प्रकार वे अपने शरीर को सुरक्षित रखने की चेष्टा करती हैं। यह लगातार सजगता उनके जीवन को उनका ही दुश्मन बना देती है। दूसरों के प्रति भी उनमें शत्रुता के भाव रहते हैं। पौष्टिक भोजन करने से शरीर की आकृति खराब हो जाएगी, मदिरापान करने से रंग खराब हो जाएगा, बहुत हंसने से चेहरे पर झुर्रियां पड़ जाएंगी, दिन में सूर्य की रोशनी में बाहर निकलने से शरीर का चमड़ा खराब हो जाएगा, सोने से सुस्ती आएगी और काम करने से थकान। प्रेम-क्रीड़ा करने से आंखों के नीचे कालिमा आ जाती है। चुम्बनों से गालों पर लाली आ जाती है और लाड़-दुलार से स्तनों का उभार नष्ट हो जाता

है। आलिंगन से शरीर में मुरझायापन आ जाता है तथा गर्भधारण शरीर और चेहरे को बिगाड़ देता है। हम जानते हैं कि किस प्रकार युवती माता अपने बालक को झिड़कती है, यदि वह उसके नृत्य की पोशाक से आकर्षित होकर उसका स्पर्श कर लेता है। नखरेबाज औरत अपने पति या प्रेमी को झिड़क देती है, यदि वह गौर से उसकी ओर देखती है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने को पुरुषों से, दुनिया से और समय से इतना बचा कर रखती है जितना लोग अपने फर्नीचर पर 'कवर' चढ़ाकर उसकी रक्षा करते हैं।

इतनी सतर्कता के बावजूद कोई न केशों को सफेद होने से रोक सका और न चमड़े को सिकुड़ने से । स्त्री यौवन-काल से ही जानती है कि इस भाग्य को बदला नहीं जा सकता। बुद्धिमानी और सतर्कता के बावजूद दुर्घटना होती ही है। पोशाक पर शराब गिर जाती है। सिगरेट इसे जला देती है। ऐसा होने पर वह खुश और उन्मत्त नारी, जो घमंड के साथ 'बालरूम' में मुस्कुराती नजर आ रही थी, अदृश्य हो जाती है। अब वह गम्भीर और कठोर मुद्रा धारण कर लेती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उसका साज-शृंगार आतिशबाजी की तरह नहीं था वह क्षणिक चकाचौंध न था जो कि एक क्षण को अपूर्व प्रकाशित कर दे। यही उसकी अमूल्य निधि है, अचल सम्पत्ति और लागत है। इसके लिए उसे बलिदान करना पड़ता है और उसकी क्षति उसके लिए भयंकर विनाश है। दाग, आंसू, कच्ची सिलाई की बनी पोशाक, बेढंगे ढंग से संवारे केश आदि बड़ी भारी विपत्तियां हैं। जला हुआ मांस, टूटा हुआ फूलदान इनके सम्मुख तुच्छ बातें हैं क्योंकि फैशनपरस्त स्त्री अपने को वस्तुओं द्वारा प्रदर्शित नहीं करती। वह स्वयं वस्तु बन जाती है। उसे लगता है मानो संसार में सचमुच उसके लिए भय है। यदि उसकी पोशाक सुंदर बनी रहती है तो ऐसा लगता है कि वह अपने स्वप्नों की मूर्ति है, किंतु यदि उसका दो बार का भी साज-शृंगार नष्ट हो जाए या फिर एक बार भी अस्त-व्यस्त हो जाए तो उसे ऐसा लगता है कि वह जाति के बाहर है। मैरी बाशकिर्त्तव कहती हैं कि उनका मिजाज, स्वभाव, मुखाकृति और सुख के भाव; सब कुछ उनकी पोशाक पर निर्भर करते थे। अगर वे ढंग से कपड़े नहीं पहनती थीं तो उन्हें ऐसा लगता था मानो वे बड़ी विचित्र, साधारण और अपमानित- सी लग रही हैं। कई स्त्रियां अनेक उत्सवों में सम्मिलित नहीं होतीं, यदि उनकी पोशाक ठीक नहीं होती। वे बुरी पोशाक पहनकर जाना नहीं चाहतीं। वे सबकी दृष्टि का केंद्र बनना चाहती हैं । कुछ स्त्रियां जोर देकर कहती हैं कि वे अपने लिए ही साज-शृंगार करती हैं, पर हम लोगों ने देखा है कि आत्म-मुग्धता की स्थिति में भी लोगों द्वारा देखा जाता है। जिन स्त्रियों को साज-शृंगार का शौक है, वे यह चाहती हैं कि लोग उन्हें देखें। मानसिक रोग की शिकार स्त्रियां इसकी अपवाद अवश्य हैं। शादी के दस वर्ष बाद भी टालस्टाय की पत्नी चाहती थी कि लोग उसकी प्रशंसा करें और उसका पति उसे देखे। उसे रिबन और आभूषणों का शौक था। वह अपने बालों को धुंघराला रखना चाहती थी। अगर कोई न भी देखे तो क्या हुआ, लेकिन वह तो मानो रुआंसी हो जाती थी।

सराहना की दृष्टि से देखने वाले की भूमिका में पति ठीक नहीं होता। उसकी चाह द्वयर्थक होती है। यदि उसकी पत्नी अत्यंत खूबसूरत होती है तो उसे ईर्ष्या होती है। वह चाहता है कि उसकी पत्नी उसके लिए श्रेय हो। उसकी पत्नी सुंदर, रमणीय और कम-से-कम कामचलाऊ अवश्य होनी चाहिए। अगर वह ऐसी नहीं है तो उसका मन खराब रहता है और जब वे इकट्ठे रहते हैं तब उसका रुख पत्नी के प्रति विद्रूप का रहता है। शादी में सामाजिक मान्यताओं और काम-भावना का सामंजस्य नहीं रहता, इसलिए दोनों में विरोध रहता है। जो नारी यौन-आकर्षण पर विशेष जोर देती है, वह मानो अपनी कुरुचि दिखाती है। ऐसा उसके पति का खयाल होता है। वह ढिंठाई पसंद नहीं करता और मोहिनी शक्ति दूसरी स्त्री में देखता है। पत्नी के प्रति यह अरुचि हर इच्छा का दमन कर देती हैं। अगर उसकी पत्नी बड़ी शालीनता व भद्रता से वस्त्र पहनती है, तब वह उसे पसंद तो करता है पर उत्साह नहीं दिखाता । वह उसे आकर्षक नहीं पाता और स्वयं अपने को दोषी समझता है। इसलिए कभी-कभी ही वह उसे अपने दृष्टिकोण से देखता है। वह उसे दूसरों की दृष्टि से देखना चाहता है। "लोग उसके बारे में क्या कहते हैं ?" उसकी कल्पना प्रायः ठीक नहीं रहती क्योंकि वह दूसरों को अपनी ही दृष्टि से देखता है।

जब पति किसी दूसरी स्त्री के कपड़ों और व्यवहार की प्रशंसा करता है और उन्हीं कपड़ों और वैसे ही व्यवहार के लिए अपनी पत्नी की निंदा करता है तो पत्नी को बेहद चिढ़ होती है। यह कहा जा सकता है कि पति उसके इतने समीप रहता है कि उसे ठीक से देख नहीं सकता, उसे उसकी शक्ल हमेशा एक-सी ही दिखती है। वह कभी भी उसका नया साज-शृंगार नहीं देखता और न केश संवारने के तरीके में अंतर । अति प्यार करने वाले पति और दिल से चाहने वाले प्रेमी अक्सर स्त्री की पोशाक के प्रति उदासीन रहते हैं। यदि वे उसे नग्न अवस्था में देखना ही अति पसंद करते हैं तो काफी सुंदर पोशाक मानो उसका सौंदर्य उनकी दृष्टि से परे रखती है। वह बुरे ढंग से कपड़े पहने या चकाचौंध करने वाली पोशाक पहने या थकी रहे, वे उसे उसी रूप में प्यार करेंगे। अगर वे उससे प्रेम नहीं करते, तो अच्छी-से-अच्छी पोशाक का भी कुछ प्रभाव उन पर नहीं पड़ेगा । पोशाक विजय प्राप्त करने का अस्त्र हो सकती है पर वह रक्षा का कवच नहीं। यह मृगतृष्णा नष्ट हो जाती है। प्रणय- भावना शारीरिक प्रेम की तरह यथार्थ के ठोस धरातल पर ही पनपती है। स्त्री उस पुरुष के लिए अच्छी पोशाक नहीं पहनती जिससे वह प्यार करती है। जेरोफी पार्कर ने अपने एक उपन्यास में एक युवा पत्नी के बारे में लिखा है :

it"उसका पति छुट्टियों पर घर आ रहा था। वह बेचैनी से उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। मिलन के क्षणों के लिए उसने अपने को सुंदर बनाने का निर्णय किया। उसने एक काली ड्रेस खरीदी। पति को काली ड्रेस पसंद थी। वह साधारण और सादगी से सिली हुई थी परंतु इतनी महंगी थी कि वह उसके दाम के बारे में सोच भी न सकी। "क्या तुम्हें सचमुच मेरी

ड्रेस पसंद है?"
"हां", पति ने कहा, "मुझे तुम पर यह पोशाक हमेशा अच्छी लगती है।"
पत्नी को काठ मार गया हो। "यह ड्रेस।" उसने जैसे अपमानित होते हुए कहा, " यह बिल्कुल नई है। जिंदगी में आज के पहले मैंने इस ड्रेस को कभी नहीं पहना । शायद तुम्हें अच्छी लगे- इसलिए आज मैंने इसे पहना।" उसने कहा, "प्रिये! मैं दुःखी हूं। यह बड़ी अच्छी है। मैं तुम्हें काले रंग की पोशाक में देखना पसंद करता हूं।" पत्नी ने कहा, "ऐसे क्षणों में मैं सोचती हूं, काश! मैं तुम्हारे लिए यह पोशाक नहीं पहनती।"

अक्सर ऐसा कहा जाता है कि स्त्री अन्य स्त्रियों में ईर्ष्या-भाव उत्पन्न करने के लिए अच्छी पोशाकें पहनती हैं और इस ईर्ष्या को उत्पन्न करना वास्तव में सफलता का चिह्न मानती हैं, पर एकमात्र यही उद्देश्य नहीं रहता। ईर्ष्या व प्रशंसा द्वारा स्त्री अपने सौंदर्य के प्रति आश्वस्त होना चाहती है। वह अपने को अस्तित्व में लाने के लिए आत्म-प्रदर्शन करती है। इस प्रकार वह फिर दूसरों पर आश्रित होती है। यदि गृह-स्वामिनी को लगन और कार्य को लोग न जान सकें तो भी हर्ज नहीं । उसकी लगन लाभकारी है, पर एक नखरेबाज और नकचढ़ी स्त्री के सभी प्रयत्न विफल होते हैं, यदि वह किसी का ध्यान आकर्षित न कर सके। वह चाहती है कि लोग उसकी प्रशंसा जरूर करें। सर्वोत्तम कहलाने की उसकी चाह बड़ी परेशानी पैदा करती है। यदि कोई कह दे कि यह हैट बदसूरत या भद्दा है तो वह मर्माहत हो जाती है। प्रशंसा का एक शब्द उसे प्रसन्न कर देता है जबकि उपेक्षा मानो उसका सर्वनाश कर देती है। उसे पूर्ण सफलता कभी नहीं मिलती। इसीलिए नखरेबाज और फैशनपरस्त स्त्रियां बड़ी संवेदनशील होती हैं। इससे यह भी व्यक्त होता है कि कुछ सुंदर और लावण्यमयी स्त्रियों को मानो यह विश्वास हो जाता है कि न तो वे सुंदर हैं, न लावण्यमयी। वे किसी अपरिचित निर्णायक द्वारा ही निर्णय चाहती हैं। उस लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती। ऐसी सर्वोत्तम फैशनपरस्त स्त्रियां बिरली होती हैं जो अपने में ही लावण्य के कानूनों को मूर्त रखती हैं, जिनमें कोई त्रुटि नहीं पा सकता। वे सफलता और असफलता की व्याख्या अपनी इच्छा के अनुसार ही करती हैं।

साज-शृंगार के दो लक्ष्य होते हैं। बाहर जाने और लोगों को अपने यहां आमंत्रित करने के उद्देश्य यही होते हैं। स्त्री अपनी नई पोशाक पहले बैठक-खाने में दिखाती है, फिर अन्य स्थान पर जाती है। वहां उसका प्रदर्शन करती है। वह अपने घर पर अन्य स्त्रियों को आमंत्रित करती है जिससे वे देखें कि वह अपने घर में किस प्रकार अध्यक्षता करती है। कुछ विशेष औपचारिक अवसरों पर उसका पति भी उसके साथ जाता है परंतु अधिकतर वह अपने ही कार्यों में व्यस्त रहता है जबकि पत्नी अपने सामाजिक कर्तव्यों का पालन करती है। इन सामाजिक उत्सवों में केवल उदासी और उबाऊपन की ही प्राप्ति होती है। सामाजिक अवसरों पर एकत्रित महिलाओं के पास आपस में बातचीत का कोई विषय ही

नहीं रहता। डॉक्टर और वकील की पत्नी को कोई एक विशेष रुचि एक-दूसरे के करीब नहीं लाती। दो डॉक्टरों की पत्नियों की भी रुचि एक-सी नहीं होती। साधारण वार्तालाप में बच्चों की चालबाजियों और पारिवारिक परेशानियों के बारे में बोलना अशोभनीय लगता है। इसलिए स्त्रियां या तो मौसम के बारे में अपने विचार व्यक्त करती हैं या फिर हाल में प्रकाशित फैशन की किसी पुस्तक के बारे में, या उन विषयों पर जिनके विषय में वे अपने पतियों को बातचीत करते सुनती हैं। इस प्रकार के सामाजिक उत्सव धीरे-धीरे घटते जा रहे हैं। फ्रांस में अब भी लोग एक- दूसरे के घर जाते हैं। अमरीका में स्त्रियां एकत्रित होकर ब्रिज खेलती हैं, वार्तालाप नहीं करतीं। जिन स्त्रियों को ताश के खेल में रुचि है, वे उसका ही आनंद लेती हैं।

परम्परागत कर्त्तव्यों को निभाने के अतिरिक्त भी सामाजिक जीवन में आकर्षण होता है। स्वागत- समारोह में स्त्री केवल अपने घर में आगंतुकों का स्वागत ही नहीं करती, बल्कि यह अवसर उसके घर को एक मनोहर स्थान में परिवर्तित कर देता है। वह सामाजिक उत्सव के अवसर पर अपने घर की सम्पन्न्ता प्रदर्शित करती है। वह चांदी, कांच और लिनेन की चीजें निकालती है। कागज के फूलों को काटकर सजाती हैं। फूल महंगे भी होते हैं और शीघ्र ही मुरझा जाते हैं। पार्टी में कितना फिजूल खर्च हुआ है, यह फूलों से ही पता चलता है। यह विलासिता और खर्च का परिचय है। गुलदस्ते में सजे फूल शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। ये उत्सवाग्नि, धूप, गंधक और तर्पण का स्थान ले लेते हैं। टेबुल पर महंगा भोजन और शराब सजी रहती है। ऐसे उत्सवों में यह ध्यान रखा जाता है कि मेहमानों को अच्छे उपहार दिए जाएं। उनकी आवश्यकता की पूर्ति की जाए। उनकी इच्छाओं का भी पहले से अनुमान लगा लिया जाता है। इस प्रकार एक भोज रहस्यमय उत्सव में परिवर्तित हो जाता है। वर्जीनिया वुल्फ ने अपने उपन्यास मिसेज डालवे में स्पष्ट किया है :

it"इस प्रकार दरवाजों से नि:शब्द एप्रेन और सफेद कैप लगाई छोटी और बड़ी नौकरानियां आने-जाने लगीं। यद्यपि इनकी बहुत आवश्यकता नहीं थी, लेकिन मई के महीने में जो उत्सव डेढ़ से दो बजे के भीतर मनाया जाता था, उसमें ये मेजबान का साथ देती थीं क्योंकि उनके द्वारा जो रहस्यमय व आलीशान धोखा दिया जाता था, उसमें ये पूर्ण कुशल थीं। हाथ हिला देने पर ट्राफिक रुक जाती है, और भोजन का टेबुल सामने लगा दिखता है। (इसके लिए कीमत नहीं देनी पड़ती) चांदी और कांच के बर्तन रहते हैं। टेबुल-मैट्स रखी रहती हैं। तश्तरी में लाल फल रखे रहते हैं। मछली की झिल्ली रखी रहती है। हांडी में कटे हुए मुर्गी के बच्चे तैर रहे होते हैं। आग जल रही होती है। शराब और कॉफी रखी रहती है। सोच में डूबी आंखों के सम्मुख सुखद दृश्य आता है। उन आंखों को, जो हिसाब लगा रही थीं, जीवन संगीतमय और रहस्यमय प्रतीत होता है। बड़े सुंदर ढंग से इस प्रकार एक भ्रमात्मक स्थिति की सृष्टि होती है।"

जो स्त्रियां इन भ्रमों की सृष्टि करती हैं, उन्हें इस बात पर गर्व रहता है कि किस प्रकार उन्होंने एक अपूर्व क्षण की सृष्टि की। मिसेज डालवे इसी प्रकार अनुभव करती थीं। पीटर उससे कहता है, "तुम्हारी इन पार्टियों का क्या अर्थ है ?" वह सिर्फ यह कहती है कि इन लोगों को एकत्रित करना और पार्टी देना एक भेंट है, सृजन है। पर किसके लिए? कोई कहीं का था-कोई कहीं का।

शायद यह एक भेंट केवल भेंट के लिए थी। यह उसका उपहार था। इसके अलावा उसके पास कुछ न था।

कोई भी इसे कर सकता था और वह उसकी प्रशंसा करती। वह यह सोचे बिना रह न सकती थी कि उसने यह कार्य किया।

दूसरों की सेवा में पवित्र उदारता का भाव रहने पर पार्टी पार्टी ही रहती है, किंतु देखा जाता है कि सामाजिक नियम के अनुसार एक उत्सव संस्था में बदल जाता है और उपहार एहसान में। पार्टी को एक संस्कार का महत्त्व दिया जाता है। किसी के यहां भोजन करते समय उसे याद रखना पड़ता है कि उसे बदले में निमंत्रण देना पड़ेगा। कभी-कभी उसे लगता है मानो खूब दिल खोलकर उसका सम्मान किया गया। वह अपने पति से कहती है कि मेजबान मानो हम लोगों को प्रभावित करना चाहती थी। मैंने सुना है कि पिछले युद्ध के समय पुर्तगाल के एक छोटे से शहर में चाय पार्टी बड़ी महंगी पड़ती थी। हर सम्मेलन में मेजबान चाहती थी कि पिछले सम्मेलन से उसकी आयोजन-व्यवस्था की विविधता और परिमाण में अधिकता और नवीनता हो। इस प्रकार यह आयोजन इतना महंगा पड़ा कि अंत में स्त्रियों ने निर्णय लिया कि चाय के साथ खाने का कुछ प्रबंध न किया जाए।

ऐसी परिस्थितियों में यदि पार्टी दी जाए। । इसका महत्त्व कम रह जाता है। ये केवल भार- स्वरूप एक कर्त्तव्यमात्र रह जाती हैं। उत्सवों के अवसर पर इस्तेमाल होने वाली चीजें परेशानी की सृष्टि करती हैं। कांच की चीजों और टेबुल-क्लाथ आदि की ठीक से देखभाल होनी चाहिए। शैम्पेन और मिठाइयां उचित मात्रा में रहनी चाहिए। कांटे का टूट जाना और कुर्सी की गद्दी का जल जाना आदि काफी नुकसानदायक सिद्ध हो सकते हैं। पार्टी के दूसरे दिन प्रयोग में लाई हुई वस्तुओं की सफाई करनी पड़ती है और व्यवस्थित रूप में उन्हें रखना पड़ता है। पत्नी इन सब अतिरिक्त कार्यों से घबराती है। गृहस्वामिनी की हैसियत से उसे अनेक प्रकार के बंधनों का मुकाबला करना पड़ता है। उसे तरह- तरह के भोजन तैयार करने पड़ते हैं। तलना, सेंकना, रसोइए और बावर्ची का काम करना और उन लोगों को इन अवसरों पर मदद देना तथा पति के संकेत पर चलना पड़ता है। जरा-सी कमी हो जाने पर पति की भौंहें चढ़ जाती हैं। पत्नी को अतिथियों का खयाल रखना पड़ता है। फर्नीचर वगैरह ठीक से रखने और लगाने पड़ते हैं। साथ-साथ यह भी चिंता बनी रहती है कि पार्टी सफल हुई या नहीं।

उदार और आत्म-विश्वासी स्त्रियां ही इस प्रकार की परीक्षा में सफलता पा सकती हैं। सफलता से उन्हें अति संतोष मिलता है किंतु अधिकांश स्त्रियों की स्थिति मिसेज डालवे की तरह है, जिन्हें अपनी सफलता से प्रेम है, जो उत्तेजना और तड़क-भड़क पसंद करती हैं।

आयोजक स्त्रियां भी इस तरह के उत्सवों का खोखलापन जानती हैं। यदि इन समारोहों को बहुत गम्भीर रूप दिया जाए तो इनका आनंद नष्ट हो जाता है। कुछ स्त्रियां मिथ्याभिमानिनी होती हैं। वे कभी संतुष्ट नहीं होती। कुछ ही भाग्यशाली स्त्रियों को सामाजिक उत्सवों में अवकाश मिलने का सुयोग मिलता है। जिनको वास्तव में समाज से स्नेह है, वे आत्म-प्रशंसा के लिए सामाजिक उत्सव नहीं मनातीं। इस उत्सव के माध्यम से वे महान् लक्ष्यों को पूर्ति करना चाहती हैं। सच्ची सामाजिक गोष्ठी की साहित्यिक और राजनीतिक भूमिका रहती है। इस प्रकार सामाजिक उत्सवों द्वारा स्त्रियां पुरुषों से ऊंचा उठना चाहती हैं और अपनी व्यक्तिगत भूमिका निभाती हैं। वे विवाहित स्त्रियों की स्थिति से अलग हो जाती हैं। विवाहित स्त्रियों को क्षणभंगुर आनंद द्वारा आत्मबोध नहीं होता और न सफलता से उनमें सुरक्षा के भाव आते हैं। उन्हें इन उत्सवों के बाद थकान का अनुभव होता है और कभी- कभी मन-बहलाव का भी। वे अपने और अन्यों के बीच किसी प्रकार का आदान-प्रदान नहीं चाहतीं। वह उन्हें उनके एकाकीपन से दूर नहीं करता।

मिसीलेट कहती हैं कि यह दुःख का विषय है कि पुरुष पर आश्रित रहकर जोड़े के रूप में ही अपने अस्तित्व को सार्थक कर पाने वाली स्त्री अपने को पुरुष से अधिक अकेला पाती है। पुरुष को हर जगह साथ मिल जाता है। वह निरंतर नए-नए सम्पर्क बनाता रहता है। परिवार के बिना उसका कोई महत्त्व नहीं पर परिवार का बोझ मानो उसे कुचल देता है, जैसे सचमुच ही सारा बोझ उसी पर पड़ता है। अपने सीमित क्षेत्र और एकाकीपन में रहने वाली स्त्री को साहचर्य का सच्चा स्वाद नहीं मिलता। एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साथ-साथ चलना किस उत्साह और उमंग की सृष्टि करता है? उसके क्रिया-कलाप उसके मस्तिष्क को व्यस्त नहीं रखते। उसकी शिक्षा उसमें स्वतंत्रता प्राप्त करने की इच्छा नहीं उत्पन्न करती और न उसे स्वतंत्रता का उपभोग करना आता है। वह अपने दिन एकाकी बिताती है। विवाह उसे अपने पिता के परिवार और बचपन के साथियों से दूर कर देता है। नए सम्बंध और घर से आने वाले पत्र इस कमी को पूरा नहीं करते। बहुत करीब रहने पर भी नए परिवार के साथ उसकी स्वाभाविक घनिष्ठता नहीं हो पाती। पति की मां और बहनें भी सच्ची मित्र नहीं बन पातीं। आजकल मकान की समस्या के कारण कुछ नव-दम्पति अपने माता-पिता के साथ रहते हैं लेकिन इस सामंजस्य से भी नव-वधू में उनके प्रति मित्रता के भाव नहीं आ पाते।

स्त्री की स्त्री के साथ मित्रता बड़ी मूल्यवान है, पर यह मित्रता पुरुषों की मित्रता से भिन्न होती है। पुरुष व्यक्ति के रूप में अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं और अपनी व्यक्तिगत रुचि प्रदर्शित करते हैं, किंतु स्त्रियां अपने स्त्रीत्व की नियति से सीमित रहती हैं और एक प्रकार से विश्वव्यापी पराधीनता की भावना से बंधी रहती हैं। वे सबमें सामान्य रूप से मौजूद विश्व का अंश देखती हैं। आपस में अपनी गुप्त बातें कह देती हैं और भोजन आदि के नुस्खों के बारे में बातचीत करती हैं। वे उस विश्व का प्रतिरूप बनाना चाहती हैं, जिसकी मान्यताएं पुरुषों की मान्यताओं से अधिक श्रेयस्कर हैं । समष्टि रूप में वे अपने बंधनों को तोड़ सकती हैं। वे एक-दूसरे को बताती हैं कि वे सेक्स के प्रति कितनी उदासीन हैं । इस तरह इस क्षेत्र में पुरुषों के आधिपत्य को वे अस्वीकार करती हैं। वे पुरुषों की इच्छा और उनके बेतुकेपन से मानो घृणा करती हैं। वे व्यंग्यात्मक रूप में अपने पति की नैतिक और बौद्धिक श्रेष्ठता की बातें करती हैं, साथ ही सम्पूर्ण पुरुष समाज की सामान्य रूप में।

वे आपस में अपने अनुभवों की तुलना ही करती हैं। वे अपनी गर्भावस्था की बातें करती हैं। वे प्रसव के समय की चर्चा करती हैं तथा अपनी और अपनी संतान की बीमारियों का वर्णन करती हैं। घर की देखभाल की बातें तो मानो कहानी का मुख्य अंश बन जाती हैं। उनके कार्यों में कोई कला-प्रवीणता नहीं होती। वे एक-दूसरे को बतलाती हैं कि किस प्रकार एक विशेष तरह का भोजन तैयार होता है मानो इस प्रकार एक गुप्त विज्ञान की खोज होती है जो मौखिक परम्परा पर आधारित है। कभी-कभी वे नैतिक समस्याओं के बारे में विचार-विमर्श करती हैं। महिला पत्रिकाओं में महिलाओं के जो पत्र छपते हैं, उन्हें पढ़ सहज में ज्ञात हो जाता है कि वे किस विषय में बातचीत करती हैं। सिर्फपुरुषों के अकेलेपन की चर्चा के किसी स्तम्भ की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। पुरुष दुनिया में एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं । यह विश्व उनका है, किंतु स्त्रियों को अपने विशेष क्षेत्र की व्याख्या करनी पड़ती है। उसे मापना और उसकी खोज करनी पड़ती है। उनके लेखों और पत्रों में सौंदर्य- प्रसाधन, भोजन-सामग्री बनाने की विधि, सिलाई और बुनाई के बारे में लिखा रहता है। वे इन विषयों पर परामर्श भी मांगती हैं। कभी-कभी ही उनकी बातचीत करने की इच्छा और आत्म-प्रदर्शन की रुचि के माध्यम से सच्ची चिंता व्यक्त होती है।

स्त्रियां जानती हैं कि पुरुषों के नियम उन पर लागू नहीं हैं। पुरुष इस बात को मान लेता है कि स्त्री कानूनों को नहीं देखेगी। वह उसे गर्भपात कराने, व्यभिचार करने, गलत राह पर चलने, धोखा देने और मिथ्यावादन के लिए प्रोत्साहित करता है; जबकि वह अपने लिए इनका विरोध करता है। एक स्त्री अन्य स्त्रियों से चाहती है कि वे अपने से मिलजुलकर एक आधिकारिक आचार-संहिता तैयार करें। स्त्रियां केवल दुर्भाव से ही अपने मित्रों के आचरण की आलोचना नहीं करतीं। दूसरों के आचरण का निर्णय करने और अपने आचरण को उचित ठहराने के लिए उनको पुरुषों से अधिक नैतिक कुशलता की आवश्यकता है।

स्त्रियों के आपसी सम्बंधों में सच्चाई की आवश्यकता है । पुरुष के सम्मुख स्त्री हमेशा मानो अभिनय करती है। जब वह यह स्वीकार करती है कि उसकी स्थिति अन्य गौण प्राणियों की तरह है, तब वह मिथ्या बोलती है। वह पुरुष के सम्मुख जब एक काल्पनिक व्यक्तित्व को कुछ शब्दों के प्रयोग और दूसरों की तरह वस्त्र धारण करके प्रस्तुत करती तब भी वह झूठ बोलती है। आडम्बरपूर्ण बर्ताव और अभिनय आसान नहीं है। इस प्रक्रिया में स्त्री निरंतर आतंकित रहती है। पति या प्रेमी के सम्मुख रहने पर उसे निरंतर ध्यान रहता है- "मैं अकेली नहीं हूं!" यहां का प्रकाश भी सुसंस्कृत नहीं। यहां के सम्पर्क रूखे हैं। अन्य स्त्रियों के मध्य मानो स्त्री पर्दे के पीछे हो। वह अपनी वस्तुओं को पोंछ-पांछकर साफ करती है (इसलिए नहीं कि उसे युद्ध-क्षेत्र में जाना है)। वह अपने कपड़ों को ठीक करती है, मेकअप ठीक करती है, सोचती है कि किस तरह वह पेश आएगी? स्टेज पर आने के पूर्व वह कुछ देर कमरे में ही ड्रेसिंग गाउन और स्लीपर में खड़ी रहती है। उसे सरल सान्निध्य और मैत्री का वातावरण प्रिय है। कॉलेट ने 'लाकेपी' में दो सखियों को दिखाया है जो साथ-साथ बैठी सिलाई कर रही हैं और अपने कार्य की सूक्ष्मता का वर्णन कर रही हैं। वे नए प्रकार के मेकअप के प्रयोग का अभ्यास भी कर रही हैं। इसके ठीक विपरीत एक दूसरा दृश्य है। यहां एक सखी किसी नवयुवक से मिलने की तैयारियां कर रही है। वातावरण में गम्भीरता है। आंखों में आंसू नहीं होने चाहिए। मेकअप करना है। मनचाही पोशाक खरीद न पाने के लिए वह अफसोस कर रही है। सिल्क के अच्छे मोजे तो अवश्य उधार लेने पड़ेंगे। जूड़े में फूल लगाया जाए या नहीं, इसका विचार करना पड़ेगा। ऐसे अनेक प्रश्न हैं। ऐसी परिस्थिति में स्त्रियां एक-दूसरे की सहायता करती हैं। वे अपनी सामाजिक समस्या पर विचार करती हैं, मानो एक-दूसरे के लिए वे रक्षा का स्थल बनाती हैं। वास्तव में वे जो कुछ भी कहती और करती हैं, वह सच ही होता है।

कुछ स्त्रियों को पुरुषों के साथ गम्भीर और दिखावेपूर्ण सम्बंध की अपेक्षा अन्य स्त्रियों के साथ सम्बंध, जिसमें सान्निध्य व चंचलता है, अधिक प्रिय है। आत्म-मोहित स्त्री अपनी किशोरावस्था में दूसरी स्त्री में अपना प्रतिरूप देखती है। दूसरी स्त्री की गौरवपूर्ण और स्पर्द्धाजनक दृष्टि द्वारा ही मानो वह अपने सुंदर सिले हुए गाउन की प्रशंसा करती है। वह अपने उत्कृष्ट आंतरिक रूप की प्रशंसा करती है। विवाह के पश्चात् उसकी सबसे अंतरंग सखी ही उसकी मानो प्रिय साक्षी बनी रहती है। वह सखी ही उसकी वांछित वस्तु रहती है। प्रत्येक नव-युवती में कुछ अंशों में समलिंगी कामुकता रहती है। पति के आलिंगन भी इस अभाव को दूर नहीं कर सकते। स्त्रियों को अपनी सखियों के मध्य रहने पर मानो एक प्रकार का ऐंद्रिक सुख प्राप्त होता है। सामान्य पुरुषों में इस भावना का अभाव रहता है। स्त्रियों में यह ऐंद्रिक सुख एक उत्कृष्ट भावना का रूप ले लेता है और वे इस भावना को विविध रूपों में व्यक्त करती हैं। उनकी प्रेम-लीला अवकाश के क्षणों का मनोरंजन भी हो

सकती है। हरम की स्त्रियों की सबसे बड़ी समस्या समय बिताने की रहती है। कभी-कभी वे पारस्परिक प्रेम-क्रीड़ा को ही प्राथमिकता देती हैं।

स्त्रियों में मुश्किल से सह-भाव सच्ची मित्रता में बदलता है। वे पुरुषों से अधिक संलग्नता का अनुभव करती हैं। वे सामूहिक रूप से पुरुष-जगत् का सामना करती हैं। प्रत्येक स्त्री उस विश्व की कीमत अपनी निजी मान्यता के आधार पर आंकना चाहती है। स्त्रियों के सम्बंध उनके व्यक्तित्व पर आधारित नहीं होते। वे साधारणत: एक-सा ही अनुभव करती हैं और इसी कारण शत्रुता के भाव का जन्म होता है। स्त्रियां एक-दूसरे को सहजता से समझ लेती हैं इसलिए वे आपस में समानता का अनुभव तो करती हैं, पर इसी कारण वे एक-दूसरे के विरुद्ध भी हो जाती हैं। गृहस्वामिनी अपनी नौकरानी के बहुत समीप रहती है लेकिन जो पुरुष समलिंगी कामुक नहीं होता, उसमें यह भाव नहीं देखा जाता। वह अपने नौकर या शोफर के साथ कभी निकट सम्बंध नहीं रखता। कभी-कभी किसी एक उद्देश्य के लिए वे साथी बन जाते हैं, किंतु उनमें आपस में स्पर्धा के भाव रहते हैं। मालकिन वास्तव में कोई कार्य स्वयं तो करती नहीं लेकिन उसकी जिम्मेदारी और श्रेय वह लेना चाहती है। वह अपनी अनिवार्यता प्रदर्शित करती है। वह लोगों को समझाना चाहती है कि उसका स्थान दूसरा नहीं ले सकता। उसे अपनी अनुपस्थिति में सब कुछ गलत होता लगता है। वह अपनी नौकरानी में दोष पाती है। यदि नौकरानी कोई कार्य बहुत अच्छी तरह करती है तो मालकिन को यह सोचकर असंतोष होता है कि अब वह स्वयं अद्वितीय नहीं रही। इस प्रकार वह निरंतर आया और नौकरानी के प्रति शिकायत करती रहती है कि वे उसकी इच्छा की परवाह नहीं करतीं, उसके विचारों के अनुकूल नहीं चलतीं। सत्य तो यह है कि उसकी अपनी कोई विशेष इच्छा होती ही नहीं। उसे तो परेशानी केवल इस बात से होती है कि दूसरे भी कार्य को ठीक उसी रूप में कर रहे हैं जैसे कि वह करती है। विशेषकर यही स्थिति पारिवारिक जीवन को विषाक्त बना देती है। प्रत्येक स्त्री अपनी सत्ता चाहती है। अपनी विशेष क्षमताओं के प्रदर्शन में असमर्थ रहने पर उसमें प्रभुत्व की आकांक्षा अधिक तीव्रता से जनमती है।

नखरा दिखाने और प्रेम करने में हर स्त्री दूसरी स्त्री में अपने शत्रु को देखती है। युवतियों में यह आदत विशेष रूप से रहती है और यह उनमें जीवन-भर बनी रहती है। फैशनपरस्त उच्चवर्गीय स्त्री का आदर्श सर्वोच्च मान्यता प्राप्त करना है। यदि उसे वह न मिले, यदि उसे गौरव में कुछ भी कमी लगे, तो वह दूसरी स्त्रियों के गौरव से घृणा करती है। दूसरे की प्रशंसा व सराहना को वह नष्ट कर देना चाहती है। आदर्श स्त्री सच्चे हृदय से प्रेम करती है। उसे अपने प्रेमी के हृदय पर शासन करने का संतोप रहता है।

सखियों की कृत्रिम सफलता से स्त्री को ईर्ष्या नहीं होगी लेकिन यदि उसका अपना प्रेम संकट में पड़ जाए तो वह किसी भी सीमा को तोड़ सकती है। इस स्थिति में एक स्त्री अपने

प्रेमी को अपनी सखी के सम्मुख प्रस्तुत करती है। वह चाहती है कि उसकी सखी भी उसी की दृष्टि से उसके प्रेमी को देखे। कई बार वह सखी भी अपनी सखी के प्रेमी पर रीझ जाती है। प्रेम-रस में डूबी रहने वाली अनेक स्त्रियां सहेलियों से कतराने लगती हैं। स्त्रियां एक-दूसरे की भावनाओं पर ज्यादा विश्वास नहीं करतीं। पुरुष की छाया हमेशा उनके सम्मुख घूमती रहती है। संत परों का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि सूर्य का जिक्र न भी किया जाए तब भी उसकी उपस्थिति हमारे मध्य रहती है। उसी प्रकार पुरुष का जिक्र न होने पर भी उसकी छाया स्त्रियों के मध्य मंडराती रहती है।

जब स्त्रियां एकत्रित होती हैं तब वे पुरुष से प्रतिशोध लेती हैं। वे पुरुष के लिए जाल तैयार करती हैं। पुरुष की अनुपस्थिति में स्त्री निष्क्रिय पड़ जाती है। उसे जीवन में खिन्नता, शुष्कता और निरर्थकता का आभास होता है। कैदखाने में भी स्त्री के वक्ष-स्थल में मातृत्व के भाव जीवन की उष्णता बनाए रखते हैं। कैदखाने में भी स्त्रियां प्रसन्नता से रहती हैं बशर्ते वहां से जल्दी छुटकारे की आशा हो। स्त्री को स्नानागार की उष्णता में आनंद आता है, यदि उसे यह आशा हो कि शीघ्र ही वह प्रकाशित ड्राइंगरूम में प्रवेश करेगी। बंदी अवस्था में स्त्रियां एक-दूसरे की सहायता करती हैं, पर उन्हें स्वतंत्र करने वाला पुरुषों के ही जगत् से आएगा।

अनेक स्त्रियों के लिए पुरुषों की यह दुनिया उनकी शादी के बाद भी अपनी रौनक बनाए रखती है। केवल पति अपनी प्रतिष्ठा खो देता है। स्त्री को अनुभव होता है कि उसके स्त्रीत्व में पुरुष का पवित्र अंश कुत्सित हो जाता है। वास्तव में पुरुष इस संसार का सत्य है, सर्वोच्च सत्ता है। वह चमत्कारपूर्ण है, स्वामी है, दृष्टि है, शिकार है, आनंद है, कर्मठता है, मोक्ष है और उसमें सृष्टि की सर्वोपरिता मूर्त हुई है। पुरुष ही इस दुनिया के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर है। एक वफादार पत्नी ऐसे चमत्कारी व्यक्ति को नहीं त्यागती और एक सीमित सम्भावनाओं वाले व्यक्ति के साथ आदान-प्रदान नहीं करती रहती। बचपन से ही उसे एक पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता रहती है। यदि उसका पति इस भूमिका को निबाहने में असमर्थ सिद्ध होता है तो वह अन्य पुरुष की शरण लेती है। पिता, भाई, चाचा या कोई अन्य रिश्तेदार या वृद्ध मित्र उसकी प्रतिष्ठा को कायम रखता है। वह उसका सहारा लेती है।

विशेषकर दो वर्गों के पुरुष अपने विशेष पेशे के कारण विश्वासपात्र और परामर्शदाता माने जाते हैं- पुरोहित और चिकित्सक। पुरोहित विशेष लाभदायक होता है, क्योंकि वह परामर्श के लिए अपना पारिश्रमिक नहीं चाहता। उसके भक्त उसके सम्मुख निःसंकोच सब कुछ कह देते हैं। तंग करने वाले परिचितों को प्राय: टाल देता है किंतु यह उसका धर्म और कर्तव्य है कि पथ-भ्रष्टों को नैतिकता की ओर ले जाए। यह कर्त्तव्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि स्त्री की सामाजिक और राजनीतिक महत्ता को चर्च एक माध्यम बनाना चाहते हैं। विवेक के निर्देशक पश्चात्ताप करने वाले के राजनीतिक विचारों को आदेशित करते हैं और

मतदान के समय उसे सहायता प्रदान करते हैं। अनेक पति इस प्रकार के हस्तक्षेप से क्रोधित हो उठते हैं- क्योंकि इस अवस्था में स्त्री को अपने शयन-कक्ष की गुप्त बातें बतानी पड़ती हैं और उचित तथा अनुचित पर भी विचार-विमर्श होता है। धर्मगुरु बच्चों की शिक्षा में रुचि दिखलाते हैं। पति के प्रति कैसा आचरण रखा जाए, वे इस पर. मत देते हैं। स्त्री ने हमेशा पुरुष में देवता को देखा है, अत: वह पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिरूप धर्मगुरु को मानती है।

डॉक्टर ज्यादा सुरक्षित हैं क्योंकि वे अपने कार्य के लिए रुपया मांगते हैं। वे दुराग्रही मरीजों को अपने चिकित्सालय में प्रवेश नहीं करने देते। डॉक्टर उस वर्ग के पुरुषों में अलग हैं जिन पर स्त्रियां विशेष अड़ियल ढंग से आक्रमण करती हैं। स्त्रियां जिन पुरुषों के पीछे पड़ जाती हैं, उनमें तीन-चौथाई डॉक्टर होते हैं। अनेक स्त्रियां जब अपना शरीर डॉक्टर को दिखाती हैं तो उन्हें प्रदर्शनकारिता का आनंद मिलता है। स्टेकल ने ऐसी बहुत-सी घटनाओं का वर्णन किया है। खासकर वयप्राप्त अविवाहिताएं डॉक्टर के पास छोटी-छोटी शिकायतें लेकर जाती हैं और कहती हैं कि पूर्ण रूप से उनको डॉक्टरी परीक्षा हो जाए। एक स्त्री एक चिकित्सक के पास से दूसरे चिकित्सक के पास जाती है और चाहती है कि उसे मालिश व इलाज बताया जाए। कुछ ऐसी निरुत्साही विवाहिताएं होती हैं जिन्हें केवल मेडिकल-परीक्षा के समय कामोत्तेजना और आनंद का अनुभव होता है।

स्त्री इस बात का बहुत जल्दी विश्वास कर लेती है कि जिस व्यक्ति के सम्मुख उसने अपने शरीर का प्रदर्शन किया है, वह उसके शारीरिक और आत्मिक सौंदर्य से प्रभावित हो गया है। ऐसी घटनाओं में वह विश्वास करती है कि डॉक्टर या पुरोहित उससे प्रेम करने लगा है। सामान्य अवस्था में भी उसे ऐसा लगता है मानो उसके और उस व्यक्ति के बीच आकर्षण की एक डोर बंध गई है। वह आदर सहित उसकी बातों पर अमल करती है और कभी-कभी तो उसे सुरक्षा की भावना का अनुभव होता है तथा अपना जीवन जीने में उससे सहायता मिलती है।

कुछ पत्नियों को जीवन के सहारे के लिए नैतिक सत्ता से संतुष्टि नहीं मिलती। वे प्रेम के उत्कृष्ट रूप की बड़ी आवश्यकता समझती हैं। यदि वे पति को छोड़ना भी नहीं चाहतीं और न धोखा देना चाहती हैं, तो वे अविवाहित नवयुवतियों का ही मार्ग अपना लेती हैं। वे काल्पनिक भावनाओं में डूब जाती हैं। स्टेकल ने ऐसे भी अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। एक सम्माननीय परिवार की विवाहिता किसी नाट्य-निर्देशक के प्रति आकर्षित हो जाती है। वह उसे फलों का उपहार भेजती है। कभी दो शब्द लिखकर भेज देती है। वह उसकी तस्वीर खरीदती है। वह उसके स्वप्न देखती है, लेकिन उससे मिलने का मौका आने पर उससे मिलने के लिए आगे नहीं बढ़ती। वह उसे शरीर-रूप में नहीं चाहती। एक वफादार पत्नी बनकर वह उससे केवल प्रेम करना चाहती है। एक दूसरी स्त्री किसी प्रसिद्ध

अभिनेता से प्यार करती थी। उसने अपने कमरे में उसकी तस्वीरें भर रखी थीं और लिखित रूप में उसके बैग में बहुत-कुछ था। उसके मर जाने पर वह पूरे एक वर्ष उसके घर शोक-प्रदर्शन करने जाती रही।

विवाहिताएं और कुमारियां चलचित्रों के अभिनेताओं की पूजा करती हैं। एकांत में उनकी प्रतिमूर्तियों की कल्पना करती हैं और कल्पना में उनके साथ प्रणय-सुख का भी अनुभव करती हैं। वे बचपन की किसी स्मृति को जगा सकते हैं। वे पितामह, भाई और शिक्षक की भूमिका का भी निर्वाह कर सकते हैं।

पत्नी के वातावरण में वास्तव में जीते-जागते कुछ व्यक्ति रहते हैं। चाहे वह पत्नी काम-वासना में तृप्ति पा चुकी हो, चाहे हताश व निरुत्साहित हो। कुछ ही ऐसी घटनाएं अपवाद में मिलेंगी जिनमें पति के प्रति पत्नी का प्रेम पूर्णतया उत्कृष्ट हो। पत्नी अपनी सराहना की बड़ी ऊंची कीमत चुकाती है। अब पति की दृष्टि में वह जादू नहीं रह जाता कि वह उसके रूप को उसके लिए जाग्रत करे। उसे तो अब ऐसी दृष्टि की आवश्यकता है जो उसके अंतस को समझे और उसकी धूमिल तस्वीर को परिष्कृत कर दे, उसके कपोलों के गड्ढों को फिर भर दे, और उसकी पलकों के कम्पन को पुनः उभार दे। यदि उसे कोई चाहे तो वह आज भी अति मुग्धकारी है। अपने वैवाहिक जीवन से पूर्ण सुखी होने पर भी स्त्री चाहती है कि अन्य व्यक्ति उसकी दम्भ की भावना को संतुष्ट करे। वह पुरुषों को आमंत्रित करती है कि वे भी उसके अहं व आत्म-प्रशंसा की पद्धति को अपनाएं । वह आकर्षक है, अधिकारी है और वर्जित प्रेम का स्वप्न देखकर उसे संतोष होता है। वह सोचती है-"काश...यदि मैं चाहती।" वह अनेक प्रशंसकों को आकर्षित करना चाहती है। किसी एक पुरुष से उसे खास लगाव नहीं रहता। वह प्रेम में उग्र रहती है पर उसमें लज्जा के भाव कम रहते हैं । वह चाहती है कि पुरुष उसकी शक्ति और मान्यता को स्वीकार करे। वह बड़ी दुःसाहसी होती है क्योंकि वह अपने गृह में सुरक्षित है और उसने एक पुरुष पर विजय प्राप्त कर ली है। वह इस प्रेम-क्रीड़ा को बिना किसी खतरे के जारी रखती है।

ऐसा भी होता है कि कभी लम्बे और थोड़े समय स्त्री पुरुष के प्रति वफादार रह लेने के बाद दूसरे पुरुषों के साथ चुहलबाजी और नखरेबाजी करने लगती है। बहुधा वह दुःखी होकर पति को धोखा देना चाहती हैं। ऐडलर का कथन है कि स्त्री की बेवफाई पुरुष से प्रतिशोध है। यह शायद अतिशयोक्ति है लेकिन स्त्री की इच्छा जितनी पति की अवहेलना करने की होती है उतनी ही प्रेमी के प्रेम-पाश में बंधने को नहीं। "मैं पति की गुलाम नहीं हूं। वह अपने को बहुत चतुर समझता है पर उसे भी मूर्ख बनाया जा सकता है।" निरादर करने पर भी पत्नी पति को प्राथमिक महत्त्व दे सकती है। जिस प्रकार एक युवती लड़की अपना प्रेमी बनाकर माता-पिता की अवज्ञा करती है, उनमें दोष ढूंढ़ती है और अपना महत्त्व स्थापित करना चाहती है; उसी प्रकार एक पत्नी भी पति से असंतुष्ट होकर उसके साथ

लगाव जरूर रखती है पर वह अपने प्रेमी में एक विश्वासपात्र ढूंढ़ती है। प्रेमी इस बात का साक्षी होता है कि पति ने किस प्रकार उसे शिकार बना रखा है। पति का निरादर करने में प्रेमी उसका साथी बनता है। वह निरंतर प्रेमी के हृदय में अपने पति के प्रति घृणा के भाव भरती रहती है, और जब प्रेमी अपनी भूमिका निबाहने को प्रस्तुत होता है, तब या तो वह प्रेमी से मुख मोड़ लेती और पति के पास वापस चली जाती है या फिर एक सांत्वना प्रदान करने वाले को ढूंढ़ लेती है। प्रायः देखा जाता है कि पत्नी नाखुश होकर नहीं बल्कि निराश होकर प्रेमी की बांहों को ढूंढ़ती है। विवाह में उसे प्रेम नहीं मिला। यौवन-काल में जिन खुशियों ने उसे मोहित किया था, जिनकी उसने आशा की थी, उनकी प्राप्ति न होने पर उसके लिए अन्यत्र समर्पण कठिन हो जाता है। ऐसी हताश विवाहिता स्त्रियों का व्यभिचारिणी हो जाना बिल्कुल स्वाभाविक है जिन्हें विवाह से न तो काम-आनंद प्राप्त होता है, न विचार-स्वातंत्र्य।

एंगेल्स का कहना है, "विवाह-प्रथा के स्थायित्व से दो सामाजिक विशिष्टताएं पैदा होती हैं। एक पत्नी का प्रेमी, दूसरी कुल्टा स्त्री। विवाह-प्रथा के साथ सामाजिक संस्थाओं में उपपत्नी और व्यभिचार अनिवार्य हो जाते हैं जिन्हें अवैध घोषित किया जाता है और जिनके लिए कठिन दंड भी दिया जाता है।"

यदि प्रणयबद्ध पत्नी को काम-सुख पूर्ण रूप से नहीं मिलता, यदि काम-क्रीड़ा केवल उसका कौतूहल जाग्रत करती है तो वह अन्य पुरुष के बिस्तर पर जाकर इस सुख को प्राप्त करने की चेष्टा करती है। यदि पति उसकी काम-भावना को जाग्रत करने में सफल होता है तो भी वह दूसरे पुरुषों के साथ इस सुख को प्राप्त करने की इच्छा करती है क्योंकि उसके हृदय में पति के प्रति विशेष लगाव नहीं रहता।

नैतिकतावादी प्रेमी के प्रति स्त्री के विशेष आकर्षण को पसंद नहीं करते लेकिन यह कुछ असंगत है कि पति को समाज और अन्य व्यक्तियों की दृष्टि में उत्कृष्ट दिखाकर उसकी रक्षा की जाए और उसे अपने प्रतिद्वंद्वी से ऊंचा दिखाया जाए। विचारणीय विषय तो यह है कि पत्नी की दृष्टि में वह प्रेमी कैसा है? विशेषकर दो कारणों से पति उसकी दृष्टि में घृणास्पद होता है। पहला कारण है- यौन-दीक्षा के क्षणों में प्रवर्तक की कृतघ्न भूमिका, किंतु एक कुंवारी ऐसा नहीं चाहती। वह तो स्वप्न देखती रहती है कि उसका पति उसके कुमारीत्व को भंग करने साथ-साथ उसका सम्मान भी करे। वह पति को इस भूमिका में असफल पाने के बाद उसकी बांहों में निरुत्साही और ठंडी पड़ी रहती प्रेमी के साथ स्त्री को न तो योनिक्षत का आतंक भयभीत करता है और न शील-भंग का अपमान सहना पड़ता है। उसे किसी प्रकार का मानसिक तनाव नहीं रहता। वह जानती है कि किस चीज मी आशा की जाए। वह उन्मुक्त रहती है और सहज में नाखुश नहीं होती। वह उतनी अनभिज्ञ नहीं रहती जितनी कि सुहागरात में रहती है। उसके मन में आदर्श प्रेम और शारीरिक इच्छा के बीच कोई द

नहीं रहता। भावना और काम-इच्छा में द्वंद्व नहीं रहता। वह अच्छी तरह जानती है कि प्रेमी क्या चाहता है।

इस अवस्था में स्त्री स्वतंत्रतापूर्वक अपना निर्णय लेती है। उसे अच्छी तरह ज्ञात रहता है कि वह क्या करने जा रही है। इस प्रकार फिर पति की परिस्थिति में यह दूसरी बाधक स्थिति है। उसे प्रायः उसकी पसंद से नहीं चुना जाता। उसके सम्मुख स्त्री को समर्पण करना पड़ता है। या तो पत्नी आश्रय पाने की आशा में पति को स्वीकार करती है या उसके परिवार वाले उसके साथ उसे बांध देते हैं। विवाह करने के बाद स्त्री पति को अपना स्वामी मान लेती है। उनका आपसी सम्बंध एक कर्तव्य बन जाता है और अक्सर पत्नी पति को एक अत्याचारी के रूप में देखती है। नि:संदेह प्रेमी को पसंद करने में भी स्त्री कुछ परिस्थितियों द्वारा सीमित होती है, लेकिन उनके सम्बंधों में कुछ अंश तक स्वतंत्रता रहती है। विवाह करना मानो कृतज्ञता स्वीकार करना है और प्रेमी को स्वीकार करना एक प्रकार की विलासिता। पत्नी इसलिए समर्पण करती है कि उसका प्रेमी प्रेम की याचना करता है। स्त्री को कम-से-कम प्रेमी के प्रेम का पूर्ण विश्वास रहता है। विवश होकर वह किसी कानून और बंधन का पालन नहीं करती। प्रेमी भी किसी लाभ से वंचित नहीं रहता। दिन-प्रतिदिन के मतांतर व अन्यमनस्कता द्वारा उनकी प्रतिष्ठा और आकर्षण नष्ट नहीं होते। स्त्री की स्थिति अन्य श्रेष्ठ के रूप में होती है। अपने प्रेमी से मिलने पर उसको ऐसा अनुभव होता है कि वह अपने साधारण रूप से भिन्न एक व्यक्ति है। उसके साथ उसे जीवन में एक नई सम्पन्नता का अनुभव होता है। वह अपने को एक दूसरी नवीन स्त्री के रूप में देखती है। वह चाहती है कि किसी में लीन हो जाए, विस्मृत हो जाए और अपने साधारण जीवन से परे हो जाए। प्रेमी के साथ सम्बंध टूटने पर स्त्री को विशेष खालीपन का अहसास होता है।

एक उनतीस वर्षीया स्त्री ने लिखा है कि वह किस प्रकार एक लेखक के प्रेम-पाश में बंधी रही। उनका साथ पांच वर्षों तक रहा। इस बीच उस लेखक ने उसे अपनी रचनाओं में भी सम्मिलित रखा। वह बड़ा ही सम्पन्न था; किंतु निराश होकर परित्यक्त होने पर वह कहती है कि वह बड़ा ही निरंकुश था। उसके प्रेम-पाश में बंधकर वह सब कुछ भूल गई थी। अन्य इकत्तीस वर्षीया महिला भी प्रेम-सम्बंध टूटने पर बीमार पड़ जाती है। वह हताश स्त्री चाहती है-"काश! वह प्रेमी की मेज की दवात-सदृश होती जिससे कम-से-कम उसे देख तो सकती।" वह कहती है कि वह अपने जीवन से ऊब चुकी थी। उसके पति को कुछ भी ज्ञात नहीं था। वह उसे किसी प्रकार भी व्यस्त नहीं रखता था। वह न कुछ समझता था और न कभी उसने पत्नी को विस्मित किया। उसमें साधारण ज्ञान का नितांत अभाव था, लेकिन उसका प्रेमी एक आश्चर्यजनक व्यक्ति है। वह कभी-कभी अति भावावेश जाग्रत होने देता है। उसका आत्म-संयम, साहस, बुद्धिमत्ता और तत्परता प्रेमिका का हृदय विजित कर लेते हैं।

कुछ स्त्रियों को अवैध सम्बंध में आनंदमय उत्तेजना का अनुभव होता है। वे एक के बाद दूसरे प्रेमी के पीछे भागती फिरती हैं। ऐसा भी होता है कि विवाह में असफलता मिलने के बाद स्त्री ऐसे अन्य पुरुष की ओर आकर्षित होती है उसके पति से भिन्न और उसके अनुकूल है। फलस्वरूप दोनों के बीच स्थायी सम्बंध स्थापित हो जाता है। प्रायः वह प्रेमी को आकर्षक पाती है, क्योंकि वह उसके पति से बिल्कुल अलग होता है।

जिस प्रकार युवती अपने उस उद्धारक की प्रतीक्षा करती है जो उसे उसके परिवार से अलग ले जाएगा, उसी प्रकार पत्नी भी प्रेमी की प्रतीक्षा करती है जो उसे विवाह की दासता से मुक्त कर । देगा। यह एक साधारण बात है कि एक बड़ा ही सच्चा प्रेमी भी अपनी प्रेम-क्रीड़ा में शिथिल पड़ जाता है और प्रेमिका से उस समय मुख मोड़ लेता है जब वह अपने विवाह-सम्बंधी जीवन की चर्चा करती है। प्रेमी प्रायः इस विषय पर बड़ा ही संयम रखता है और यह प्रेमिका को अखरता भी है। फलस्वरूप उनके आपसी सम्बंध विकृत हो जाते हैं। इस स्थिति में इसका स्वरूप भी प्रणय-सम्बंध की ही तरह हो जाता है। इसमें भी विवाह की सारी बुराइयां दिखलाई देने लगती हैं, जैसे ईर्ष्या, धोखा, सावधानी और सतर्कता आदि । स्त्री फिर ऐसे व्यक्ति का स्वप्न देखने लगती है जो उसे नियमित दिनचर्या से मुक्त कर सके।

परिस्थितियों और रीति-रिवाजों के अनुसार व्यभिचार के विभिन्न रूप होते हैं। आज भी हमारे समाज में जहां पुरुष-प्रधान समाज की परम्पराएं प्रचलित हैं, विवाह में सच्चा और वफादार न होना बहुत घृणित समझा जाता है, विशेषकर पत्नी के लिए। पति के लिए भी. यह क्षम्य नहीं है।

मांटेग्यू ने लिखा है, "पाप का न्याय भी कितने असंगत रूप में होता है। हम दुष्कर्म करते हैं पर उसका निर्णय अपने स्वार्थ के अनुसार करते हैं, पाप के स्वरूप के अनुसार नहीं।" यही कारण है कि दुष्कर्मों के रूप भी भिन्न होते हैं । व्यभिचार एक ऐसा अपराध माना जाता है जिसके प्रति कानून बड़ा कठोर होता है। साधारण भूल के लिए घोर दंड। जिन कारणों से नारी व्यभिचार करती है, वे बुरे अवश्य हैं, पर उसे जो परिणाम भोगने पड़ते हैं, वे भयंकर हैं।

इस कठोरता के कुछ विशेष कारण हैं। स्त्री के व्यभिचारिणी होने पर परिवार में किसी अपरिचित की संतान के आने का भय रहता है। अपरिचित की संतान वास्तविक उत्तराधिकारियों को उनके उत्तराधिकार से वंचित रख सकती है। पति स्वामी होता है और पत्नी उसकी सम्पत्ति। अब कुछ सामाजिक परिवर्तन जरूर हो गए हैं। गर्भनिरोध का प्रचलन हो गया है, अत: वास्तविक उत्तराधिकारी के लिए गम्भीर खतरा नहीं रह गया है किंतु आज भी स्त्री को आश्रित रखा जाता है और उसके लिए अनेक निषेधात्मक आदेश हैं। वह बहुधा बहुत-सी बातों को अपने तक सीमित रखती है। वह पुरुष के उच्छंखल व्यवहार को प्रायः नजरंदाज कर देती है। पुरुष की बेवफाई को देखकर भी अनदेखा कर

देती है। स्त्री पर लगे बंधन सभी महादेशों के छोटे नगरों में बड़े कठोर हैं। पुरुष पर ऐसे कठोर बंधन नहीं हैं। वह स्त्री से अधिक घर से बाहर निकलता है। वह पर्यटन करता है। उसके दोषों और कर्त्तव्यच्युत होने पर उतना गौर नहीं किया जाता, लेकिन एक विवाहिता को अपने नाम और प्रतिष्ठा के नष्ट होने का भय रहता है। स्त्री पर निगरानी रखी जाती है लेकिन वह बड़ी चतुरता से आंखों में धूल झोंकती है। पुर्तगाल के एक गांव में बड़ी पुरानी रीतियां मानी जाती थीं। स्त्रियों पर कड़ी नजर रखी जाती थी। वे केवल अपनी सास व ननद के साथ ही घर से बाहर निकल सकती थीं, पर वहां भी केश संवारने वालों के घरों में जाने पर वे अपने प्रेमियों से मिल लेती थीं। बड़े शहरों में स्त्रियों पर बंदिशें कम हैं- किंतु परिचितों का समूह छोटा होने के कारण जो अवैध सम्बंध स्थापित किए जाते हैं, वे बहुत सफल नहीं होते। उन सम्बंधों में स्वतंत्रता का भी अभाव रहता है और मानवीय गुणों का भी। ऐसी स्थिति में बहुत झूठ बोलना पड़ता है और विवाह की मर्यादा भी नष्ट होती है।

कुछ वर्गों में स्त्रियों को सेक्स-सम्बंधी स्वतंत्रता है, लेकिन उनके सम्मुख एक कठिन समस्या है। वैवाहिक जीवन के निर्वाह के साथ ही किस प्रकार काम-संतुष्टि भी प्राप्त की जाए? विवाह में साधारण शारीरिक प्रेम का प्रश्न नहीं रहता। काम-वासना और शारीरिक सौंदर्य को आसानी से अलग किया जा सकता है। एक पुरुष बहुत ही अच्छा पति हो सकता है पर वह हमेशा वफादार नहीं हो सकता। दूसरी स्त्रियों के साथ काम-सम्बंधों के बावजूद वह पत्नी के साथ बड़ी शांति व सुख से जीवनयापन कर सकता है। यह जीवन जितना पवित्र होगा, द्वैधता उतनी कम होती जाएगी और ऐसा सुख तभी सम्भव है, जब स्त्री उसके रास्ते में कोई बाधा नहीं डालती। स्त्री चाहती है कि वह पति के जीवन की साथी हो। उसकी संतान के लिए एक घर हो, पर साथ ही साथ अन्य व्यक्तियों के साथ भी वह प्रेम का अनुभव करती है। व्यभिचार केवल इसलिए बुरा माना जाता है कि यहां ढोंगपूर्ण सतर्कता के साथ चरित्र बनाए रखने की चेष्टा की जाती है। यदि पति और पत्नी आपस में समझौता कर लें, यदि दोनों को सम्बंधों की स्वतंत्रता हो और दोनों में सच्चाई हो, तो विवाह का कम-से-कम एक दोष यानी व्यभिचार तो दूर हो सकता है।

स्त्री और पुरुष की काम-स्थिति के अंतर का वर्णन परम्परा और आज की स्थिति के अनुसार किया गया है। आज भी ऐसा समझा जाता है कि स्त्री अपनी रति-क्रीड़ा द्वारा पुरुष की सेवा करती है, इसीलिए उसे उसका स्वामी माना गया है। पुरुष अपने से निम्न-स्तर की स्त्री को ग्रहण कर सकता है, परंतु यदि स्त्री अपने से नीचे के सामाजिक स्तर वाले पुरुष के सम्मुख समर्पण करती है तो उसे पतिता कहा जाता । उसका यह आचरण हर स्थिति में उसका पतन और समर्पण है। स्त्री को अपने पति के अन्य स्त्रियों के साथ सम्बंध की घटना सहज भाव से स्वीकार करनी पड़ती है। कभी-कभी तो उसे इस पर गर्व भी होता है।

स्त्री द्वारा अपनी चारित्रिक गरिमा बनाए रखने में भी यह खतरा बना रहता है कि वह प्रेमी के हृदय में पति के साथ समझौता कराना चाहती है। यह भी बहुत सम्भव है कि वह जानती है कि एक बार जल्दी में ही उसने किसी पुरुष के सम्मुख समर्पण कर दिया। उसने अपने पति के ऊपर श्रेष्ठता प्राप्त कर ली है। वह पुरुष भी यह सोचता है कि मैंने अमुक नारी को अपने वश में कर लिया और उसके पति को मूर्ख बना दिया । यही कारण है कि लेखक अपनी नायिका के प्रेमी को निम्न सामाजिक स्तर का दिखाते हैं। नायिका समझ-बूझकर ऐसा करती है। वह प्रेमी से ऐंद्रिक सुख की आशा करती है, पर उसे अपने पति से ऊंचा स्थान नहीं देती। मालरो ने अपनी एक रचना में लिखा है कि एक दम्पति आपस में समझौता कर लेते हैं कि वे एक-दूसरे की स्वतंत्रता का सम्मान करेंगे और एक- दूसरे को स्वतंत्रता प्रदान करेंगे, किंतु जब लड़की अपने पति से कहती है कि वह अपने मित्र के साथ सोई तो पति का हृदय दु:खी हो जाता है। वह सोचता है कि उस मित्र ने अवश्य सोचा होगा कि मैंने इसे प्राप्त कर लिया। फिर भी पति ने निर्णय किया कि वह पत्नी की स्वतंत्रता का सम्मान करेगा क्योंकि उसका खयाल था कि कोई किसी को प्राप्त नहीं कर सकता। अन्य पुरुष के आत्म- संतुष्टि के विचारों को अपनी पत्नी द्वारा जानकर वह मर्माहत हुआ और उसने अपमान का अनुभव किया। प्रायः लोग स्वतंत्र स्त्री और चरित्रहीन स्त्री को एक ही समझते हैं। उनका अंतर नहीं समझते। प्रेमी भी जिस स्वतंत्रता का लाभ उठाता है, उसे गलत रूप में देखता है । वह सोचता है कि उसकी प्रेमिका 'ने समर्पण किया है। उसने उस पर विजय प्राप्त कर ली है। उसे मुग्ध कर लिया है। एक स्वाभिमानी स्त्री अपने साथी के गर्व का सम्मान करेगी। यदि उसका सम्माननीय पति उसके प्रेमी के मिथ्याभिमान को बर्दाश्त कर ले तो वह उसे घृणित समझती है। स्त्री तब तक समानता नहीं प्राप्त कर सकती जब तक इस समानता को सार्वभौम मान्यता न प्रदान की जाए और जब तक उसे वास्तव में स्वीकार न कर लिया जाए।

अतः व्यभिचार, मैत्री और समाज-वैवाहिक जीवन में मन-बहलाव के साधन हैं। ये वैवाहिक सम्बंध को नष्ट नहीं करते। इसकी कठोरता बंधनों को सहन करने लायक बनाने में सहायक होती है। इनके द्वारा स्त्री अपने भाग्य को सच्चे अर्थों में अपने हाथों में नहीं रख सकती। वस्तुत: ये वास्तविक चुनौतियों से पलायन का रास्ता बनाते हैं।

वेश्याएं और कुलटाएं

विवाह का वेश्यावृत्ति के साथ बहुत स्पष्ट और प्रत्यक्ष सम्बंध है। प्राचीन काल से आज तक इसकी काली छाया परिवार पर मंडराती रही है। पुरुष बड़ी चालाकी से पत्नी से पवित्र बनी रहने की शपथ ग्रहण करवा लेता है, पर वह स्वयं इस सामाजिक व्यवस्था से संतुष्ट नहीं दिखाई पड़ता। मांटेग्यू ने मानो इसका समर्थन करते हुए लिखा है, "पार्सिया के

राजा भोज-समारोह में अपनी पत्नियों को आमंत्रित करते थे किंतु अपनी कामुकता को शांत करने की आवश्यकता प्रतीत होने पर वे अपनी पत्नियों को उनके निजी कक्षों में भेज देते थे ताकि पत्नियों को उनकी अनुचित-वासना में हिस्सेदार न बनना पड़े और उनके स्थान पर अन्य स्त्रियां बुला ली जाती थीं। ऐसी स्त्रियों के प्रति सम्मान-प्रदर्शन वे आवश्यक नहीं समझते थे।"

'राजप्रासादों को स्वच्छ रखने के लिए नालियों का होना आवश्यक है।' चर्च के फादर का कथन है। ऐसा अक्सर कहा जाता है कि स्त्री-वर्ग को एक अंश की रक्षा करने के लिए दूसरे अंश का बलिदान करना पड़ता है। अमरीकन लोगों ने गुलामी की प्रथा का समर्थन करते हुए कहा था कि यह आवश्यक है । दक्षिण में रहने वाले श्वेत-वर्ण के व्यक्ति दासता के हर कर्तव्य से मुक्त हैं। वे आपस में बड़े परिष्कृत और प्रजातंत्रीय सम्बंधों का निर्वाह कर सकते हैं। उसी तरह एक निर्लज वर्ग की स्त्रियों की उपस्थिति भी आवश्यक है, जिससे सच्ची और पवित्र स्त्रियों के साथ सम्मानपूर्वक बर्ताव हो सके । वेश्या की स्थिति एक बलि के बकरे के समान है। पुरुष उसके साथ व्यभिचार करता है और फिर उसे बहिष्कृत कर देता है। चाहे वेश्या वैध रूप से पुलिस की देख-रेख में रहे, चाहे अवैध रूप से छिपकर अपना कार्य करे, उसे हमेशा अछूत की तरह देखा जाता है।

आर्थिक दृष्टिकोण से वेश्या की स्थिति विवाहित स्त्री की स्थिति के ही समान है। मैरो का. कथन है, "एक वेश्या और एक विवाहिता में सिर्फ एक ही अंतर है, वैसे दोनों ही अपने को पुरुष के हाथों बेच देती हैं। अंतर केवल कीमत और समझौते की अवधि का है। दोनों के लिए रति-क्रीड़ा पुरुष स्त्रियां बहुत एक प्रकार की सेवा है। विवाहिता एक पुरुष द्वारा पूरे जीवन के लिए मानो भाड़े पर ग्रहण की जाती है और वेश्या के कई ग्राहक हैं, जो किस्तों में उसकी कीमत चुकाते हैं। एक की रक्षा एक पुरुष द्वारा अन्य पुरुषों के विरुद्ध होती है और दूसरी की रक्षा सब ग्राहक करते हैं, जिससे कोई एक विशेष व्यक्ति उसके साथ अत्याचार न कर सके।" शरीर के समर्पण द्वारा स्त्री को मिलने वाले लाभ का निर्णय आज के समाज की प्रतिद्वंद्विता द्वारा निर्धारित होता है। पति जानता है कि वह दूसरी पत्नी भी ग्रहण कर सकता था। प्रणय के कर्तव्यों को निबाहना व्यक्तिगत अनुग्रह है। वेश्यावृत्ति में पुरुष की इच्छा को संतुष्टि का प्रश्न रहता है, चाहे किसी भी स्त्री की देह से वह प्राप्त हो। उसकी इच्छा तो विशेष होती है, पर किसी स्त्री-विशेष से तात्पर्य नहीं रहता । पत्नी और उपपत्नी, कोई भी जब तक से परे न हो सके, उससे अनुचित लाभ नहीं प्राप्त कर सकती। वेश्या और पत्नी में एक विशेष अंतर यह है कि विवाहिता को दबाया व छोटा किया जाता है, पर मनुष्य की हैसियत से उसका सम्मान होता है। आज यह सम्मान धीरे-धीरे दबाव का काम कर रहा है। वेश्या को व्यक्ति के अधिकारों से वंचित रखा जाता है। स्त्री की दासता का हर रूप उसमें निहित है।

यह मूर्खता की बात होगी अगर इस पर आश्चर्य किया जाए कि स्त्री वेश्यावृत्ति क्यों अपनाती है? आज हम लाम्ब्रॉसों के उस सिद्धांत को मानने के लिए प्रस्तुत नहीं है, जिसके अनुसार वेश्याएं और अपराधी एक ही श्रेणी में रखे गए हैं। वह दोनों में ही पतन देखता है। आंकड़ों के अनुसार वेश्याओं का मानसिक विकास औसत स्त्रियों से कम होता है। यह मानना ही पड़ेगा कि कुछ कमजोर दिमाग की होती हैं। यह स्वाभाविक है कि कमजोर दिमाग वाली स्त्रियां ऐसे पेशे को स्वीकार करेंगी, जिसमें विशेष शिक्षा की आवश्यकता नहीं हो; परंतु अधिकांश वेश्याएं औसत बुद्धि की होती हैं। कुछ तो अत्यंत बुद्धिमान होती हैं। किसी शारीरिक दोष या वंशगत कारण से सामान्य स्त्री वेश्यावृत्ति नहीं अपनाती । सत्य तो यह है कि आज के विश्व में जहां बेकारी की समस्या बड़ी प्रबल है, लोग किसी भी ऐसे धंधे को अपना लेंगे, जो उन्हें सहजता से मिल जाए। जब तक वेश्यावृत्ति और फौज रहेगी, तब तक पुलिस और वेश्याएं भी रहेंगी, क्योंकि उस पेशे में अच्छी आमदनी होती है। स्त्रियां आर्थिक कारणों से वेश्यावृत्ति अपनाती हैं। पुरुष की इच्छा उन्हें इस पेशे की ओर प्रवृत्त नहीं करती। अपनी 1857 की रिपोर्ट में पैरेंट डचाटेलेट (Parent-Duchatelet) ने लिखा है कि वेश्यावृत्ति का मुख्य कारण बेकारी और गरीबी है। गरीबी, जो कि थोड़ी तनख्वाह के कारण उत्पन्न होती है। उचित दिशा में सोचने वाले नैतिकतावादी उपहासपूर्वक इस बात का उत्तर देंगे। वे कहेंगे कि वेश्याओं के आंसू गिराने और सिसकी भरने की कहानियां केवल दुनियादारी से अनभिज्ञ व्यक्तियों को ही मनोरंजक लगती हैं। प्रायः देखा जाता है कि वेश्या अपने जीविकोपार्जन का अन्य साधन भी ढूंढ़ सकती है। जिस रास्ते को उसने अपनाया है, यदि वह उसे खराब नहीं लगता तो इसका यह अर्थ नहीं कि उसके खून में दोष है। वास्तव में दोष तो उस समाज में है जहां अधिकांश स्त्रियों को यह पेशा मुख मोड़ने लायक नहीं लगता। वेश्या से अक्सर पूछा जाता है, "वह इस पेशे को क्यों चुनती है?" असली प्रश्न यह है कि उसने इस पेशे को क्यों नहीं चुना?

यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि स्त्री-वर्ग का एक अच्छा-खासा हिस्सा, जो आज वेश्यावृत्ति में लगा है, किसी समय घरेलू नौकरानियों का था। किसी भी नौकरानी के कमरे में एक दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाएगा। नौकरानी को हर तरह काम करने पड़ते हैं। उसका शोषण होता है। वह दासता में रहती है। उसके साथ आदमी जैसा बर्ताव नहीं होता। कभी-कभी परिवार के मालिक की इच्छा भी उसे स्वीकार करनी पड़ती है। वह अपने भाग्य में उन्नति की आशा और प्रतीक्षा करती रहती है। इस प्रकार से पारिवारिक दासता और कामुकता का शिकार बनने की अपेक्षा वह ऐसी दासता का स्वप्न देखती है, जो इस दासता से गई-बीती नहीं है। जिन परिवारों में वे काम करने आती हैं, वे उनके घरों से बहुत दूर होते हैं। यह हिसाब लगाकर देखा गया है कि पेरिस में प्रायः 80 प्रतिशत वेश्याएं प्रांतों और गांवों से आई हैं। यदि स्त्री का घर करीब होता है, तो उसे परिवार एक बदनाम धंधे में प्रवेश करने

से मना करेगा। साथ ही उसे बदनामी का भी भय रहता है, किंतु जब वह बड़े शहर में आकर खो जाती है, तब नैतिकता के कोरे सिद्धांत उसके मार्ग के वाधक नहीं बनते।

जब तक मध्यम-वर्ग के लोग काम-क्रीड़ा और कौमार्य के प्रति निषेध के आदेश रखेंगे, तब तक किसान और मजदूर-वर्ग के लोगों में अन्यमनस्कता के भाव बने रहेंगे। अनेक सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि बहुत-सी लड़कियां पहले पुरुष से सम्पर्क में ही अपना कौमार्य-भंग करवा लेती हैं। इसके पश्चात् किसी के सम्मुख समर्पण कर देना उनके लिए स्वाभाविक हो जाता है। डॉ. बाईजार्ड ने एक सौ वेश्याओं से पूछताछ की और वे निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचे : 5 प्रतिशत लड़कियों ने यौवनारम्भ के पहले ही अपने कौमार्य को नष्ट करवा लिया। आधी से अधिक लड़कियों का बयान है कि उन्होंने प्रेम के वशीभूत होकर समर्पण किया। वे प्रेम की भूखी थीं। अन्य ऐसी हैं, जिन्होंने अज्ञान से समर्पण किया। मोहित करने वाला प्रथम व्यक्ति प्रायः एक नवयुवक रहता है। प्रायः वह ऑफिस या दुकान में साथ काम करने वाला व्यक्ति रहता है, या बचपन का साथी। इसके बाद सैनिक, छात्र, सेवक और फोरमैन आते हैं। डॉ. बाईजार्ड की सूची में दो वकील, एक डॉक्टर, एक शिल्पी और एक औषधि विक्रेता हैं। देखा जाता है कि मालिक इस भूमिका को नहीं निबाहता, बल्कि उसका लड़का, भतीजा या उसका कोई मित्र इस क्षेत्र में आगे आता है।

शांत भाव से समर्पण करने वाली लड़कियों को भी कौमार्य-भंग से मानसिक आघात पहुंचता है। यह भी विचारणीय है कि इसका भविष्य पर क्या मानसिक प्रभाव पड़ता है। प्रायः वेश्याओं का मानसिक विश्लेषण नहीं किया जाता और वे कभी भी सही विवरण नहीं देतीं। वे हमेशा घिसी-पिटी कहानियां सुनाती हैं। कभी-कभी तो प्रथम पुरुष के सम्मुख लड़कियां इसलिए समर्पण कर देती हैं कि उनके मन में वेश्याओं जैसी कल्पनाएं होती हैं। कभी-कभी तो उन्हें सेक्स-भाव उत्पन्न होने से भय लगता है और कभी-कभी उनकी इच्छा वयस्कों की तरह आचरण करने की होती है। वे खूब साज- शृंगार करती हैं। लड़कों से मिलती-जुलती हैं। उन्हें उकसाती हैं और तरह-तरह से नाज-नखरे दिखाती हैं। जिनमें बचपना है, जिनमें सेक्स-भावना भी उत्पन्न नहीं हुई; वे सोचती हैं कि वे आग के साथ बड़ी सावधानी से खेल सकती हैं। एक दिन कोई भी व्यक्ति उनकी बातों में आ जाता है और वे स्वप्न से यथार्थ में आ जाती हैं। वे वास्तविकता का अनुभव कर लेती हैं। मैरो ने बताया है कि किस प्रकार एक चौदह वर्षीया वेश्या ने बताया कि एक बार दरवाजा खुल जाने के बाद उसे बंद रखना कठिन है। एक नवयुवती योनिक्षत के बाद ही किसी शहर में जाकर रहने की बात नहीं सोचती। कुछ समय तक वह अपने प्रथम प्रेमी के साथ लगाव रखती है और उसी के साथ रहती भी है। यह उसका प्रतिदिन का काम हो जाता है। जब उसका प्रेमी उसे छोड़ देता है, तब वह दूसरे प्रेमी का सहारा लेकर अपने को सांत्वना देती है। अब वह किसी एक

व्यक्ति-विशेष की नहीं रह जाती। वह सोचती है कि वह प्रत्येक पुरुष के सम्मुख समर्पण कर सकती है। कभी-कभी तो उसका पहला या दूसरा प्रेमी ही उसे इस प्रकार से जीविकोपार्जन की सलाह देता है। कुछ लड़कियों को उनके माता-पिता ही वेश्यावृत्ति के क्षेत्र में प्रवेश करा देते हैं। अनेक छोटी लड़कियां ऐसी होती हैं, जिनके रिश्तेदार उन्हें त्याग देते हैं। वे अपनी जीविका भिक्षावृत्ति से प्रारम्भ करती हैं और फिर वेश्यावृत्ति अपना लेती हैं। बीमारी के कारण भी कुछ स्त्रियां यह पेशा अपना लेती हैं। कुछ स्त्रियां तो दूसरे काम करने में असमर्थ रहती हैं। कुछ का काम छूट जाता है। फलस्वरूप वे अपना बजट नहीं संभाल सकतीं और अर्थ-उपार्जन के लिए शीघ्रातिशीघ्र कुछ साधन ढूंढ़ लेने पड़ते हैं। अवैध संतान को जन्म देने का भी यही परिणाम होता है। सेंट लाजारे कारागार में कम-से-कम 50 प्रतिशत ऐसी स्त्रियां हैं, जिनकी एक संतान है। किसी-किसी की तो तीन से लेकर छह तक संतानें हैं और कुछ की इससे भी अधिक। कुछ माताएं अपनी संतान के लालन-पालन के लिए वेश्यावृत्ति अपना लेती हैं। यह अच्छी तरह से ज्ञात है कि युद्ध-काल में वेश्यावृत्ति बढ़ जाती है, फलस्वरूप सामाजिक अव्यवस्था बढ़ जाती है।

'टेम्पस माडरनेस' पत्रिका में एक वेश्या ने मैरी थीरेज नाम से अपनी जीवन-कहानी लिखी :

it"16वें वर्ष में मेरा विवाह एक ऐसे व्यक्ति से हुआ, जो उम्र में मुझसे 13 वर्ष बड़ा था। मैं घर से बाहर रहना पसंद करती थी, पर मेरे पति चाहते थे कि मैं घर पर रहूं। उन्हें मेरे साज-शृंगार से आपत्ति थी। वे मेरा सिनेमा देखने जाना भी पसंद नहीं करते थे। मेरी सास हमेशा मेरे आसपास रहती थी और कहती थी कि मेरे पति ठीक कहते हैं। एक-दो वर्षों के अंदर ही मेरे दो बच्चे हुए। मैं ऊब गई। मैंने नर्सिंग का कोर्स शुरू किया। यह मुझे पसंद था। अस्पताल में एक कम उम्र वाली बेशर्म नर्स ने मुझे कुछ कहा, जिसके बारे में मुझे ज्ञात नहीं था। करीब छह महीनों तक मेरा पुरुषों से कुछ भी सरोकार नहीं रहा। एक दिन शाम को एक नौजवान मेरे कमरे में आया और उसने मुझसे कहा कि मैं उसके साथ पेरिस जाकर अपना जीवन बदल सकती हूं और वहां मुझे कुछ भी कार्य करने की आवश्यकता नहीं होगी। मैं एक महीने उसके साथ पड़ी रही। एक दिन वह एक अच्छी फैशन करने वाली स्त्री ले आया और मुझसे बोला कि वह स्त्री अपना सब बंदोबस्त कर लेगी। मैं उसकी बात पर राजी नहीं हुई। मैंने फिर एक चिकित्सालय में नौकरी भी कर ली। मैं उसे बता देना चाहती थी कि मैं उसके बिना सड़क की नहीं बन जाऊंगी। मैं अधिक समय प्रतिरोध नहीं कर सकी। वह मुझसे कहने लगा कि मैं उसे प्यार नहीं करती, नहीं तो मैं उसका कार्य करती। मैं हमेशा उदास रहने लगी। मैं चिकित्सालय में बैठकर रोने भी लगी। फिर मैंने उसे अनुमति दे दी कि वह मुझे हेयर-ड्रेसर के पास ले चले। वहां मैं धंधा करने लगी। जुलोट हमेशा मेरे आसपास रहता, जिससे मैं सावधान रहूं। पुलिस के आने पर वह मुझे चेतावनी दे देता था।"

कुछ अंशों में यह कहानी उन प्राचीन कहानियों के समान है, जिनमें एक युवती को कोई दलाल सड़क पर खड़ा कर देता है। कभी-कभी पति ही यह भूमिका निभाता है। कभी-कभी एक स्त्री दूसरी स्त्री को इस कार्य की ओर प्रेरित करती है। 570 नवयुवती वेश्याओं की घटनाओं का अध्ययन करने पर पता चला कि उनमें से 284 अकेली रहती थीं, 132 अपने पुरुष मित्रों के साथ और 64 किसी अन्य स्त्री के साथ रहती थीं, जिसके साथ उनका समलिंगी सम्बंध रहता था और कुछ स्वयं अन्य स्त्रियों के पास जाकर वेश्यावृत्ति अपना लेती हैं।

प्रायः अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए एक स्त्री वेश्यावृत्ति अपनाती है, पर एक बार इस चक्कर में पड़कर वह हमेशा के लिए इसमें फंस जाती है। ऐसी घटनाएं अपेक्षाकृत अधिक होती हैं, जिनमें स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध इस पेशे में रखा जाता है। ऐसी भी घटनाएं होती हैं, जिनमें उसे जबर्दस्ती झूठे वायदे कर, काम देने का लोभ दिलाकर इस सफेदपोश दासता के लिए विवश किया जाता है। यह पेशा प्रारम्भ करने के लिए जरूरी रुपया-पैसा दलाल देता है। इन व्यक्तियों के प्रति वह हमेशा आभारी रहती है। ये व्यक्ति उसकी अधिकांश आय ले लेते हैं और वह उनसे कभी भी पूरी आजाद नहीं हो पाती।

it"अंत में मैं इस निष्कर्ष पर पहुंची कि जुलोट को केवल मेरी आमदनी से मतलब है। इसीलिए मैंने सोचा कि मैं अपने और उसके बीच कुछ दूरी रखू, जिससे कि मैं कुछ रुपये बचा सकूँ। पहले मैं डरपोक थी। एक स्त्री, जो जुलोट को जानती थी, मुझ पर निगाह रखती थी। जुलोट ने मुझे लिखकर भेजा कि मैं प्रति रात्रि मैडम के पास अपने रुपये रख दूं, जिससे चोरी की आशंका न रहे। मैं एक पोशाक खरीदना चाहती थी, पर मैडम ने मुझसे कहा कि जुलोट.ने तुम्हें रुपये देने से मना किया है। मैंने उस घर से निकल जाने का निश्चय किया। मेरे साथ चाल खेली गई और मुझे अस्पताल भेज दिया गया। मुझे अपनी यात्रा के लिए रुपयों का बंदोबस्त करने के लिए फिर उस घर में जाना पड़ा। मैं सिर्फ एक महीना रही। मैं दूसरी जगह काम करने लगी। मुझे जुलोट से बेहद शिकायत थी और मैं पेरिस में रहना भी नहीं चाहती थी। वह मुझे भला-बुरा कहता था, मारता था और एक बार तो मानो मुझे उसने खिड़की से बाहर फेंक दिया। मैंने एजेंट के माध्यम से शहर से बाहर निकलने की सोची, पर जब मुझे पता चला कि जुलोट उसे जानता है, तो मैं फिर उसके पास नहीं गई। मैं बाहर निकल आई। मैं छह सप्ताह में ही ऊब गई। जुलोट ने जब मुझे रास्ते में देखा तो मुझे पीटा। मैंने जुलोट के साथ काफी यंत्रणा सही और अंत में मैंने जर्मनी जाने का निश्चय किया।"

साहित्य में जुलोट एक विशेष परिचित पात्र है। वह वेश्या के रक्षक की भूमिका निभाता है। वस्त्र खरीदने के लिए रुपये देता है और अन्य स्त्रियों की प्रतिस्पर्धा से उसकी रक्षा करता है। वह उसे पुलिस से बचाता है। कभी वह स्वयं पुलिस-मैन बन जाता है और उसके उन

ग्राहकों के विरुद्ध खड़ा होता है, जो बिना मूल्य चुकाए उसका उपयोग करना चाहते हैं और उसे पीड़ित करते हैं। कुछ वर्ष पूर्व मांद्रिद में फासिस्ट नवयुवक वेश्याओं को सर्दी की रातों में नदी में फेंककर आनंद का अनुभव करते थे। फ्रांस में छात्र लड़कियों को लेकर समय बिताने निकलते थे और रात्रि में उन्हें वहां नंगी अवस्था में छोड़ देते थे। वेश्या को किसी ऐसे व्यक्ति के सहारे की आवश्यकता रहती थी, जो उसके पैसों की अदायगी करा सके और रूखे व्यवहार से उसकी रक्षा कर सके। वह व्यक्ति नैतिक सहारा प्रदान करता था। कुछ लोग कहते हैं, "तुम अकेली ठीक से काम नहीं करती हो। तुम्हारा काम में मन नहीं लगता। तुम सुस्त पड़ जाती हो।" प्रायः वह ऐसे व्यक्ति से प्रेम करती है और प्रेम के कारण ही यह पेशा करती है। वह पेशे को उचित समझती है। उसे सहारा देने वाला पुरुष उससे श्रेष्ठ है। इस प्रकार प्रेम धर्म बन जाता है। अपने पुरुष मित्र की शक्ति में वह पुरुष का शौर्य देखती है और उसके सम्मुख समर्पण कर देती है। उसके साथ रहकर उसे ईर्ष्या और यातना का भी अनुभव होता है, साथ ही प्रेम में रत स्त्री आनंद का भी अनुभव करती है।

कभी-कभी वेश्या के हृदय में अपने पुरुष मित्र के प्रति शत्रुता और दुःख के भाव भी होते हैं, किंतु वह विवशता से उसके अधिकार में रहती है। वह उसके चंगुल में रहती है जैसा कि उपर्युक्त कहानी में देखा गया। मैरी थीरेज ने लिखा है :

it"जुलोट के अलावा भी सभी लड़कियों के प्रेमी होते हैं। मेरा भी लगाव एक नाविक से था। वह एक अच्छा व्यक्ति था। यह सत्य होते हुए भी मैं उसके साथ बंधन में न बंध सकी, पर हम लोग अच्छे मित्र थे। वह अक्सर मेरे साथ ऊपर आता था। प्रेम प्रदर्शन की क्रीड़ा नहीं होती थी। हम केवल बातें करते थे। वह कहता था कि यह स्थान मेरे योग्य नहीं है। मुझे यहां से निकल जाना चाहिए।"

वेश्याएं अन्य स्त्रियों का भी आश्रय लेती हैं। अनेक वेश्याएं समलिंगी कामुक होती हैं। यौन- जीवन के प्रारम्भ में प्रायः हर लड़की को समलिंगी कामुकता का अनुभव होता है। अनेक लड़कियां अपनी स्त्री मित्र के साथ ही रहती हैं। अन्ना रीउलिंग के अनुसार जर्मनी में बीस प्रतिशत वेश्याएं समलिंगी कामुक होती हैं। फाईभर रिपोर्ट के अनुसार एक साथ कैदखाने में रहने वाली युवतियां आपस में बड़े अश्लील प्रेम-पत्र लिखती हैं। ये पत्र स्कूली छात्राओं के पत्रों के सदृश होते हैं। अंतर केवल इतना है कि स्कूली छात्राएं अनुभवहीन और भीरु स्वभाव की होती हैं, जबकि इस वर्ग की स्त्रियां असंयमी होती हैं। उनके कार्य और शब्द मर्यादा के विरुद्ध रहते हैं।

मैरी थीरेज की जीवनी में देखा गया है कि किस प्रकार एक स्त्री ने उसे यौन-सम्बंधी जीवन से परिचित कराया और किस प्रकार उसकी सहेली ने उसके घृणित ग्राहक और अत्याचारी दलाल की अपेक्षा अधिक घृणित काम किया। "जुलोट एक पारिवारिक दरिद्र लड़की को अपने पास ले आया। उस बेचारी के पास जूते भी नहीं थे। उसकी जरूरत की

चीजें पुरानी चीजों की दूकान से खरीद दी गईं। वह मेरे साथ काम करने लगी। वह बड़ी ही प्रसन्नमुख थी। जो स्त्रियां मिल-जुलकर रहती थीं, उन्हें वह विशेष पसंद करती थी। मैंने नर्स से जो भी कुछ सीखा था, वह मुझे उन सभी बातों की याद दिलाती थी। प्रायः हम लोग आपस में हंसी-मजाक कर लेती थीं और काम के बजाय सिनेमा देखने चली जाती थीं। उसे अपने बीच पाकर मैं वास्तव में खुश थी।"

वेश्याओं के साथ रहने वाली लड़कियां अपना खाली समय साथियों के साथ प्रसन्नता से बिताती हैं। इनके पारस्परिक सम्बंध स्वार्थहीन होते हैं। ऐसे सम्बंध स्वेच्छा से स्थापित किए जाते हैं। पुरुषों के साथ सम्बंध रखने वाली वेश्याएं अन्य स्त्रियों का साथ अधिक पसंद करती हैं, क्योंकि पुरुषों के साथ उनके सम्बंध व्यापारिक होते हैं और समाज की दृष्टि में वे हीन और अस्पृश्य होती हैं । वेश्याओं में पारस्परिक एकता के भाव रहते हैं। यह भी सत्य है कि वे एक-दूसरे की प्रतिद्वंद्वी होती हैं। वे आपस में ईर्ष्या और स्पर्धा करती हैं। वे एक-दूसरे का अपमान करती हैं। वे आपस में झगड़े करती हैं फिर भी उन्हें एक-दूसरे की विशेष आवश्यकता रहती है, जिससे वे मानव विश्व से पृथक अपने निर्मित संसार में मानवीय सम्मान प्राप्त कर सकें। वे एक-दूसरे के वस्त्र व केश संवारने की कला की सराहना करती हैं। यद्यपि इन्हीं साधनों से वे पुरुषों को मोहित करती हैं और यही साधन उनमें आपस में ईर्ष्या का भाव भी जगाते हैं। ग्राहकों के साथ वेश्याओं के सम्बंध के विषय में लोगों में मतभेद हैं। हर घटना में एक-सा बर्ताव नहीं होता। बहुधा इस बात को काफी जोर देकर कहा जाता है कि वेश्या भी अपने प्रेमी के ही मुख पर चुम्बन द्वारा स्वेच्छा से किए गए प्रेम का प्रदर्शन करती है। वह जाता प्रेमालिंगन और व्यापार के आलिंगन में अंतर मानती हैं। पुरुषों द्वारा दिए गए प्रमाणों में हमेशा शक की गुंजाइश रहती है क्योंकि लड़की की उत्तेजित अवस्था को देखकर उनका अहं-भाव तृप्त होता है। एक वेश्या को एक के बाद एक प्रेमी से मिलने में थकान का अनुभव होता है और ऐसा अनुभव उसे तब भी होता है, जब परिचित व्यवित के साथ उसे बार-बार सम्बंध स्थापित करना पड़ता है। मैरी थीरेज ने अपने इस पेशे को काफी उदासीन भाव से किया था, किंतु उन्हें भी अपने जीवन की कुछ आनंदप्रद रातें याद हैं। ऐसी भी घटनाएं देखी जाती हैं कि स्त्री अपने ग्राहक से रुपये नहीं स्वीकार करती क्योंकि उसे ऐसे ग्राहक से काम-आनंद मिलता है। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि वेश्या तंग व परेशान ग्राहक को सहायता भी देती है।

साधारणतः पेशेवर वेश्याएं ग्राहकों के प्रति निरुत्साहित रहती हैं। कुछ वेश्याएं अपने सभी ग्राहकों के प्रति उदासीन रहती हैं। इस उदासीनता में घृणा का भी भाव रहता है। मैरी थीरेज लिखती हैं, "पुरुष भी कैसे जोश वाले होते हैं। स्त्री अपनी मनचाही बातें उनके मस्तिष्क में भर सकती है।" किंतु अनेक स्त्रियों के मन में पुरुष के स्वभाव के प्रति गहरा असंतोष रहता है। वे पुरुष की स्वाभाविक रुचि और उसके कुत्सित कार्यों से घृणा करती

हैं। वेश्यालय में जाने पर पुरुष का आचरण बदल । जैसा आचरण वह अपनी पत्नी व उपपत्नी के साथ नहीं कर सकता, वैसा वह वेश्या के साथ करता है। वेश्यालय में प्रवेश कर उसके हृदय में तत्काल कुत्सित भाव जाग्रत होते हैं। ऐसे पुरुष वेश्याओं से अनेक प्रकार के विकृत यौन-सम्बंधों की मांग करते हैं। मैरी थीरेज का कहना है कि विशेषकर फ्रेंच पुरुषों की कामना अतृप्त रहती है। सहानुभूति रखने वाले चिकित्सक से प्रायः वेश्याएं पुरुषों की रुचि का वर्णन करती हैं।

मेरी एक सखी व्यूजौन अस्पताल में एक वेश्या से मिली। उसके साथ मेरी सहेली ने बड़े विस्तार से बातें की। वह युवती बहुत चालाक थी। वह एक गृहस्थ के घर नौकरानी के रूप में गई थी। वह एक दलाल के साथ रहती थी और उससे प्रेम भी करती थी। उसका कहना था कि सिर्फ मेरे प्रेमी को छोड़कर अन्य सभी पुरुष कुत्सित भाव वाले हैं। इसीलिए मैं उससे प्यार करती हूं। यदि वह कभी भी कुत्सित आचरण का प्रदर्शन करेगा, तो मैं उसे छोड़ दूंगी। पहली बार आने वाले ग्राहक का व्यवहार स्वाभाविक रहता है। शायद उसे पहली बार अस्वाभाविक आचरण में संकोच होता है। बार-बार आने के क्रम में उसका आचरण बदल जाता है । वह अनुचित इच्छाएं प्रस्तुत करने लगता है। तुम कह सकती हो कि तुम्हारे पति में ऐसी कुत्सित वृत्ति के कारण ही वह अपने ग्राहकों से घृणा करती थी। 1943 में मेरी सखी एक अन्य वेश्या के सम्पर्क में आई, जो फ्रेजने में रहती थी। उस वेश्या ने बताया कि उसके 90 प्रतिशत ग्राहक कुत्सित रुचि के थे और 50 प्रतिशत बिल्कुल निर्लज्ज थे। वे उसे डराते थे। उसने एक जर्मन अधिकारी के बारे में बताया कि वह उदार और विनम्र प्रकृति का होने के बावजूद चाहता था कि उसके पहुंचने पर वह नंगी होकर अपने हाथों में फूलों का गुच्छा लिए घूमे। वह उड़ने को तैयार चिड़िया की नकल करता था। उसे आते देखकर यह वेश्या भाग जाया करती थी। मैरी थीरेज ऐसी सभी सनकी मांगों से घृणा करती थी। ऐसी हरकतों की कीमत साधारण सम्भोग सुख देने से अधिक होती थी और उनमें स्त्री को कष्ट भी कम दिया जाता था।

ये तीनों स्त्रियां असाधारण रूप में बुद्धिमान और संवेदनशील थीं। ये सिर्फ अपने ग्राहकों के सम्मुख पेशेवर स्त्रियों की तरह रहती थीं। ये अपने को अधिक सुरक्षित समझती थीं, किंतु जब उनके ग्राहक सिर्फ एक साधारण ग्राहक न होकर अपना भिन्न व्यक्तित्व व्यक्त करते, तब इन बेचारियों को थो, तब सनकी, स्वतंत्र और सतर्क व्यक्ति की इच्छा स्वीकार करनी पड़ती थी। यहां केवल साधारण रूप में सौदा नहीं होता था। कुछ वेश्याएं कुत्सित रुचि को संतुष्ट करने में विशेष कुशल होती हैं, क्योंकि उस कार्य के लिए उन्हें अधिक कीमत मिलती है।

इस वर्ग की प्रायः सभी स्त्रियों में अपने ग्राहकों के प्रति आक्रोश की भावना रहती है। हेलेन डोउच ने एक आकर्षक स्त्री अन्ना के जीवन का वर्णन करते हुए बताया कि

साधारणतः विनम्र स्वभाव को होने के बावजूद उसे भी क्रोध के दौरे आते थे, विशेषकर अधिकारी वर्ग के प्रति । उपचार के लिए उसे एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सक के पास ले जाया गया। उसके घर की परिस्थिति असंतोषजनक उसने अच्छे अवसरों के प्राप्त होने पर भी विवाह करने से इंकार कर दिया। वेश्या के रूप में उसने जीवन के साथ अच्छी तरह समझौता कर लिया था, परंतु क्षयरोग से ग्रस्त होने पर उसे अस्पताल भेजा गया। वह सभी सम्माननीय व्यक्तियों से घृणा करती थी। उसका कथन था कि ये सभी व्यक्ति बहुत सहजता से अपनी भद्रता का जामा उतार देते हैं। ये आत्म-संयम खो बैठते हैं, अपना महत्त्व भूल जाते हैं और पशुओं की तरह बर्ताव करने लगते हैं। सिर्फ इस मानसिक विकार के अलावा वह संतुलित स्त्री प्रतीत होती थी, जो 15 वर्ष की आयु से ही असंयम का जीवन व्यतीत कर रही थी। वह कमजोर, गरीब और असहाय व्यक्तियों के प्रति बड़ी उदार थी।

अधिकांश वेश्याओं का अपने जीवन के साथ समझौता कर लेने का कारण यह नहीं है कि उनमें वंशगत और जन्मजात अनैतिकता है, बल्कि वे अपने को एक ऐसे समाज के साथ मिला लेती हैं, जिसकी सेवाओं की अन्य व्यक्तियों को आवश्यकता है। वे जानती हैं कि पुलिस अधिकारियों की नीतिपूर्ण भाषा केवल शब्दों का ढेर होती है और वेश्यालय के बाहर उनके | ग्राहक महान् आदर्शों को बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। मैरी थीरेज का कथन है कि चाहे उसे सेवा की कीमत दी जाए या नहीं, उसे वेश्या ही कहा जाता है। पैसे दिए जाने पर उसे बहुत चालाक समझा जाता है। उसकी पैसों की मांग पर लोग कहते हैं कि उन्होंने ऐसा नहीं सोचा था कि वह इस कोटि की स्त्री है। कीमत मिले या न मिले, उसकी वेश्या की स्थिति में कुछ अंतर नहीं पड़ता।

वेश्याओं की नैतिक और मनोवैज्ञानिक अवस्था इतनी कष्टप्रद नहीं होती, जितनी उनकी आर्थिक अवस्था। अनेक दलाल और मुंह-बोली मौसियां उनका शोषण करती हैं। इनमें से तीन-चौथाई वेश्याओं की अवस्था बड़ी अरक्षित रहती है। वे प्रायः दरिद्र रहती हैं। प्रायः पांच वर्ष तक इस पेशे को करने के बाद करीब 75 प्रतिशत वेश्याएं सिफलिस नामक बीमारी से ग्रस्त हो जाती हैं। यह डॉक्टरों का मत है। अनुभवहीन अल्प वयस्काओं को बहुत शीघ्र स्पर्श से यह बीमारी आक्रांत कर लेती है। करीब 25 प्रतिशत अल्प-वयस्क वेश्याओं को गनोरिया के कारण शल्य-चिकित्सा करानी पड़ती है। प्रति बीस में एक को क्षय रोग ग्रस्त कर लेता है। 60 प्रतिशत या तो नशीली दवाओं और नशीले पदार्थों को अभ्यस्त बन जाती हैं और 40 प्रतिशत चालीस वर्ष की अवस्था के पहले ही मर जाती हैं। बहुत सावधानी बरतने पर भी प्रायः ये गर्भधारण कर लेती हैं और प्रतिकूल परिस्थिति में ऑपरेशन करा लेती हैं। साधारणतः वेश्यावृत्ति बहुत दयनीय पेशा है, जिसमें स्त्री का आर्थिक और यौन-शोषण किया जाता है। उसे पुलिस के हवाले कर दिया जाता है। लज्जाजनक डॉक्टरी जांच

होती है। ग्राहकों की सब तरह की सनकों के अनुसार आचरण करना पड़ता है। स्पर्श और छूत की बीमारियां आक्रांत कर लेती हैं। वास्तव में वे अति दीन व तुच्छ वस्तु रह जाती हैं।

एक उच्च कोटि की रखैल और साधारण वेश्या में अनेक भिन्नताएं होती हैं। पहला अंतर तो यह है कि वेश्या आमतौर पर अपना पेशा करती है। उसे अपने क्षेत्र में प्रतिद्वंद्विता का सामना करना पड़ता है, जबकि रखैल यह चाहती है कि उसे एक व्यक्ति के रूप में समाज में सम्मान मिले। इस उद्देश्य की सफलता उसकी आकांक्षाओं को बढ़ा देती है।

उच्च कोटि की रखैल के लिए सौंदर्य और यौन-आकर्षण आवश्यक होने पर भी यही पर्याप्त नहीं होते। स्त्री का अपना पृथक महत्त्व माना जाना चाहिए। यह सत्य है कि किसी पुरुष की द्वारा उसके गुणों का परिचय मिलता है। उसकी विशेषता विश्व को तभी ज्ञात होती है, जब उसकी ओर किसी पुरुष द्वारा लोगों का ध्यान आकर्षित कराया जाता है। पिछली शताब्दी में उसका शहर का मकान, उसकी गाड़ी और उसके जेवर इस बात के प्रमाण होते थे कि वह किस कोटि की रखैल है और पुरुष पर उसका कितना प्रभाव है, वह फैशनपरस्त समाज में क्या स्थान रखती है। पुरुष द्वारा अपनी रखैल के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करते रहने की घड़ी तक रखैल के गुण स्थायी बने रहते हैं। सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों ने अब इस कोटि की तड़क-भड़क वाली स्त्रियों की श्रेणी और समाज में भी परिवर्तन ला दिया है। अब यह श्रेणी लुप्तप्राय है। अब ऐसा फैशनपरस्त समाज मिटता जा रहा है, जिसमें रखैल का ऊंचा स्थान हो। अब महत्त्वाकांक्षी स्त्रियां दूसरे तरीके से अपना महत्त्व स्थापित करती हैं। आज की सिने स्टार मानो रखैल के स्थान पर आती हैं। पति द्वारा परित्यक्त ऐसी स्त्रियों की हॉलीवुड में विशेष मांग रहती हैं।

वेश्यावृत्ति और कलाओं में आदिकाल से ही एक अस्पष्ट सम्बंध बना रहा है क्योंकि सौंदर्य और यौन-आनंद आपस में स्पष्ट रूप में जुड़े हुए हैं। यह सत्य नहीं है कि सौंदर्य वासना को जाग्रत करता है पर प्लैटोनिक सिद्धांत के अनुसार प्रेम द्वारा ही वासना जाग्रत होने की बात भी युक्तिसंगत नहीं है। जब एथेंस के एरियोपेगस के जजों के सम्मुख फिराइल ने अपने वक्षस्थल को आवरणहीन किया और रिहाई प्राप्त की, तब उसने वास्तव में पुरुषों को पवित्र विचार के बारे में सोचने की प्रेरणा दी। नग्न शरीर का प्रदर्शन करना एक प्रकार की कला है। अमरीका में होने वाले प्रहसनों में आवरण एक नाटकीय ढंग से उतारा जाता है। वृद्ध भद्र व्यक्ति अश्लील तस्वीरों का संग्रह करते हैं और दुहाई देते हैं कि नग्नता में पवित्रता और कला है। एक वेश्यालय में भी ग्राहकों की पसंद के लिए पहले वेश्याओं का प्रदर्शन होता है। मामला गम्भीर होने पर वेश्या-विशेष को कला की कोई भंगिमा ग्रहण करनी पड़ती है या अपनी जीती-जागती तस्वीर सम्मुख रख देनी पड़ती है।

विशेष महत्त्व चाहने वाली वेश्या केवल अपने शरीर का प्रदर्शन नहीं करती। प्राचीन ग्रीक में बांसुरी बजाकर और नृत्य करके स्त्रियां पुरुषों को मोहित करती थीं। अल्जीरियन अरब

स्त्रियां अपने कद्रदानों के सम्मुख अपना प्रदर्शन कलात्मक ढंग से करती हैं। जोला की नाना भी रंगमंच पर उतरकर अपने रक्षक की तलाश करती है। कुछ संगीतकक्ष और पहले के नाइट क्लब भी एक प्रकार से वेश्यालय ही थे। हर स्त्री के प्रदर्शन से जुड़ने का धंधा शृंगारिक माना जा सकता है। टैक्सी डांसर्स, फैन डांसर्स, फंसाने वाली लड़कियां, पिनअप गर्ल्स, मॉडल, गायिकाएं और अभिनेत्रियां प्रेम-जीवन और व्यापारिक जीवन को मिला नहीं देतीं। उनके प्रदर्शन नए धंधे के लिए ही माने जाएंगे। प्रायः आम के सम्मुख व्यापार की इच्छा से जीने वाली स्त्रियां अपने सौंदर्य के कारण दूसरे धंधों के लिए लालायित हो उठती हैं। इसके विपरीत एक वेश्या और कुलटा अपना पेशा छिपाने के लिए कुछ दूसरे धंधे भी करती है। कुछ स्त्रियां कॉलेट की नायिका की तरह हैं, जिनके मित्र उन्हें प्रिय कलाकार कहकर सम्बोधित करते हैं और वे जवाब देती हैं, "कलाकार! सच, मेरे प्रेमी कितने अविवेकी हैं।" जनता यह देखा गया है कि रखैल की कीमत और प्रतिष्ठा उसकी बाजारू कीमत से मापी जाती है। आजकल तो रंगमंच और परदे पर आने वाली स्त्रियों का नाम व्यापार की असली पूंजी हो जाता है।

सिंड्रेला हमेशा ही स्वप्नों के राजकुमार का स्वप्न नहीं देखती। पति और प्रेमी से उन्हें भय रहता है कि कहीं वे एक अत्याचारी व्यक्ति में परिणत न हो जाएं। बड़े-बड़े सिनेमा-गृहों के दरवाजों पर लगे अपने ही हंसते हुए मुखड़े को दिखाना वे अधिक पसंद करती हैं किंतु हमेशा पुरुष के संरक्षण में ही उनकी आकांक्षाएं पूरी होती हैं। हमेशा ही पुरुष, चाहे पति हो या प्रेमी, उसे सफलता का मुकुट अपनी ख्याति और पैसों का साझीदार बनाकर पहनाते हैं।

मैंने उप-पत्नी शब्द का प्रयोग उन सभी स्त्रियों के लिए किया है, जो केवल अपने शरीर ही 'नहीं बल्कि पूरे व्यक्तित्व का उस पूंजी की तरह प्रयोग करती हैं, जिसका शोषण किया जाए। उनका दृष्टिकोण उन सभी सृजनात्मक कर्मियों से नितांत भिन्न होता है, जो अपने कार्य द्वारा अपने से ऊपर उठ जाते हैं, और 'अन्यो' में स्थित स्वतंत्रता को आकर्षित करके उनके लिए भविष्य का द्वार खोल देती हैं। उप-पत्नी विश्व का दर्शन नहीं कराती । वह मनुष्य को सर्वोपरि उठने का कोई रास्ता नहीं दिखाती। ठीक उसके विपरीत अपने लाभ के लिए वह संसार को अपना बंदी बनाना चाहती है। अपने प्रशंसकों के अनुमोदन के लिए वह अपने को प्रस्तुत करती है किंतु वह अपने उस स्त्रीत्व को इस मोहक ढंग से प्रस्तुत करती है कि पुरुष उसके जाल में फंस जाता है। उसके साथ मनोरंजन करके वह उन्हें अपने विश्वव्यापी रूप के घेरे में घेर लेती है। इस मार्ग को अपनाने वाली स्त्री अपने लिए कुछ सीमा तक स्वतंत्रता प्राप्त कर लेती है। अनेक के सम्मुख समर्पण करने के कारण वह किसी एक की ही नहीं रहती। वह धन संचय कर लेती है और वस्तु के नाम की तरह अपना नाम भी प्रचारित करने लगती है। उसे आर्थिक स्वतंत्रता मिल जाती है। प्राचीन ग्रीक की काफी स्वतंत्र स्त्रियां न तो वेश्याएं थीं और न मालकिनें, बल्कि वे थीं उप- पत्नियां । यूरोप

में पुनर्जागरण-काल की वेश्याओं और जापान में नर्तकियों ने अपने समय की अन्य स्त्रियों से अधिक स्वतंत्रता का आनंद लिया। फ्रांस की स्त्री, जो काफी स्वतंत्र प्रतीत होती है और ऐसा लगता है कि उसे पुरुष के समान आजादी प्राप्त है, वास्तव में नियोन दे लेभेलॉस (Ninon de Lavelos) हैं- सत्रहवीं शताब्दी की बुद्धि और सौंदर्ययुक्त नारी । यद्यपि यह विरोधाभास-सा लगता है कि ये स्त्रियां अपने स्त्रीत्व को विकसित करके पुरुष के समान ही अपनी स्थिति बना लेती हैं। वे यौन द्वारा पुरुष के सम्मुख अपने को पहले तो वस्तु के रूप में प्रस्तुत करती हैं और फिर स्वयं कर्ता का रूप ले लेती हैं। वे पुरुषों की तरह केवल जीविकोपार्जन के साधन ही एकत्रित नहीं कर लेतीं, बल्कि पूर्ण रूप से पुरुषों के माने Ninon de Lavelos की तरह असाधारण बौद्धिक स्वतंत्रता प्राप्त कर लेती हैं। उनमें से प्रख्यात तो हमेशा ही कलाकारों और लेखकों से घिरी रहती हैं, क्योंकि पुरुषों का यह वर्ग सती स्त्रियों से ऊब जाता है।

उप-पत्नी में पुरुष को 'मोहकता' और 'आकर्षण-शक्ति' का सबसे सुंदर रूप प्राप्त होता है। वह अन्य से अलग स्त्री होती है। शरीर और आत्मा की दैवी-मूर्ति, प्रेरणा और काव्य। चित्रकार और शिल्पी उसे 'मॉडल' रूप में देखते हैं। वह कवियों के सपनों को पूरा करती है। बुद्धिवादी व्यक्ति उसमें स्त्री के अंतर्ज्ञान का दर्शन करते हैं। वह स्वामिनी से अधिक बुद्धिमान होती है क्योंकि उसमें मिथ्याचरण -कम होता है। उच्च-स्तर की प्रतिभाशालिनी स्त्रियां Egaria की भूमिका से ही संतुष्ट नहीं होतीं। वे पुरुष की विश्वसनीय परामर्शदाता होती हैं। उन्हें प्राप्त प्रशंसा योग्यता के प्रदर्शन की प्रेरणा देती है। वे अपनी प्रतिभा में निहित सम्भावनाओं को क्रियाओं में साकार करना चाहती हैं। स्वतंत्र व्यक्तित्व के विश्व में विचरण करती हुई वे गद्य और कविता की सृष्टि करती हैं । वे चित्र बनाती हैं। वे संगीत का सृजन करती हैं। इम्पीरिया ने इस प्रकार इटली को गणिकाओं में विशेष ख्याति प्राप्त की। स्त्री के लिए यह भी सम्भव है कि वह पुरुष के माध्यम से पुरुषोचित कार्य करे। सत्ताधारी पुरुषों की प्रिय उप-पत्नियों ने अपने शक्तिशाली प्रेमियों के माध्यम से विश्व के शासन में भाग लिया।

इस प्रकार के स्त्रीत्व की स्वच्छ कामना केवल भोग के स्तर पर ही प्रभावशाली रहती है। आर्थिक और अन्य लाभ वे पुरुषों से प्राप्त करती हैं। पुरुष उन्हें स्त्रीत्व को हीन-भावना की क्षतिपूर्ति के रूप में धन देता है। इस तरह पुरुष धन के शुद्धीकरण की शक्ति के प्रयोग से स्त्री-पुरुष के संघर्ष का अंत कर देता है। इस तरह की कई स्त्रियां पेशेवर भी नहीं होतीं । वे पुरुषों से नकद और उपहार के रूप में कुछ प्राप्त करना चाहती हैं। वे केवल प्रेम-प्रदर्शन नहीं करतीं । वे उससे कुछ विशेष प्राप्त करना चाहती हैं। वे पुरुष को एक यंत्र में परिवर्तित कर देती हैं। इस प्रकार की स्त्री पुरुष से एकात्म होने से कतराती है। पुरुषं ऐसा सोच सकता है कि उसने स्त्री पर आधिपत्य स्थापित कर लिया है, पर काम-तुष्टि के लिए स्त्री को

पा लेना, एक भ्रममात्र है, बल्कि बहुत अंशों में स्त्री ही पुरुष के ऊपर आर्थिक अधिकार स्थापित कर लेती है। इससे उसके गर्व की तुष्टि होती है। वह प्रेमी के आलिंगन में बंध जाती है। उसे यह अहसास रहता है कि वह अपनी इच्छा के विरुद्ध समर्पण नहीं कर रही है। आनंद उसके ऊपर थोपा' नहीं जा रहा है।

कहा जाता है कि वेश्याएं प्रायः निरुत्साहित रहती हैं। अपने हृदय पर संयम और अपनी काम- इच्छा पर नियंत्रण उनके लिए लाभदायक होता है। भावावेश और कामावेश में आने पर वे किसी एक पुरुष के आधिपत्य में आ जाएंगी। वह उसे यातना देगा। वेश्या पुरुष की उच्छृखलता का विरोध अपने निरुत्साहित व्यवहार से करती है। उप-पत्नी भी पत्नी की कुछ चालों का प्रयोग करती हुई मिथ्याचरण करती है। इन स्त्रियों की यह घृणा और स्पष्ट कर देती है कि ये शोषित होने के तमाशे में किसी प्रकार भी परास्त नहीं की जा सकतीं। परनिर्भरतां इनका भाग्य है।

कोई भी पुरुष वेश्याओं का पूरी तरह स्वामी नहीं होता, पर उन्हें पुरुष की नितांत आवश्यकता होती है। यदि पुरुष के हृदय में वेश्या के प्रति कोई इच्छा न रहे तो वेश्या अपनी जीविका और सहारे का साधन खो देती है। आरम्भ में इस कार्य में आने वाली स्त्रियां जानती हैं कि उनका भविष्य पुरुष के हाथ में है। एक अभिनेत्री भी ऐसा अनुभव करती है कि पुरुष-सहारे के अभाव में उसकी प्रतिष्ठा घट जाएगी। सुंदर-से-सुंदर स्त्री भी अपने भविष्य के सम्बंध में निश्चित नहीं रहती, क्योंकि उसके मोहित करने के अस्त्र तो जादुई होते हैं और जादू की सफलता हमेशा निश्चित नहीं रहती। वह अपने रक्षक, पति और प्रेमी के साथ एक सुपत्नी की तरह जुड़ी रहती है। उसे केवल बिस्तर के साथी के रूप में अपनी सेवाएं नहीं देनी पड़तीं, बल्कि उसे अपने प्रेमी मित्र से वार्तालाप, उसकी उपस्थिति और उसके मिथ्याभिमान की मांगें भी पूरी करनी पड़ती हैं। ऊंची एड़ी के जूते, साटन की स्कर्ट आदि खरीदने के लिए एक युवती के प्रशंसक को पैसे लगाने पड़ते हैं और उस लागत का उसे उचित प्रतिदान मिलता है। एक उद्योगपति अपनी उप-पत्नी को मोतियों और कीमती पोशाकों का उपहार देकर अपनी सम्पत्ति और शक्ति का प्रदर्शन करता । उसके लिए स्त्री पैसे कमाने का साधन है। उसे भी उस पर पैसे लुटाने पड़ते हैं। यह सोचने का विषय है। स्त्री को सेवा तो हर रूप में देनी पड़ती है। उसको मिले उपहार मानो उसके लिए बंधन होते हैं। वह जो पोशाक व आभूषण धारण करती है, क्या वे अभाव उसी के हैं ? सम्बंध-विच्छेद हो जाने पर कभी-कभी पुरुष इन वस्तुओं को वापस भी मांग लेता है, पर बड़ी भद्रता के साथ।

अपने रक्षक को बांधे रखने के लिए स्त्री चालबाजी, झूठ और मिथ्या आचरण अपनाती है। उसे वह सब करना पड़ता है, जिससे विवाहित जीवन असम्मानित होता है। यह सारा खेल दासत्व का है। जब तक उप-पत्नी अपना सौंदर्य और ख्याति बनाए रखती है, तभी

तक वह समर्थ है। एक स्वामी से घृणा हो जाने पर वह दूसरा स्वामी बना लेती है। सौंदर्य भी चिंता की सृष्टि करता है। यह एक बड़ी नाजुक सम्पत्ति है। उप-पत्नी तो केवल अपने सौंदर्य व शरीर पर ही निर्भर रहती है । उम्र बढ़ने के साथ-साथ उसका निखार व सौंदर्य घटने लगता है । उम्र के विरुद्ध उसका सौंदर्य बड़ा ही नाटकीय रूप ग्रहण कर लेता है। यदि उसकी प्रतिष्ठा अत्यधिक होती है, तब मुख-मंडल और शरीर में विकृति विशेष क्षति नहीं पहुंचाते । अपने नाम को बनाए रखने के लिए उसे अनेक अत्याचार सहने पड़ते हैं। हॉलीवुड की अभिनेत्रियां किस प्रकार शासित होती हैं, यह सब जानते हैं। उनका शरीर उनका अपना नहीं रहता। फिल्म का प्रोड्यूसर ही उनके बालों का रंग, उनके वजन, शरीर के गठन और चाल- ढाल के तरीकों का फैसला करता है। वह गालों में उभार ला देता है, आवश्यकता होने पर दांतों को निकलवा देता है। खाने में कमी, व्यायाम, शरीर-गठन की अतिरिक्त चेष्टाओं का आदेश वही देता है। उनके व्यक्तित्व और बाह्य रूप की देखभाल का जिम्मेदार व्यक्ति ही पार्टियों के कार्यक्रम बनाता और प्रेमपूर्ण व्यवहार के पात्रों का निर्णय करता है। फ्रांस में इस विषय में किसी लिखित संहिता के के बावजूद एक चतुर स्त्री अपने प्रचार के लिए आवश्यक उपकरणों से अच्छी तरह परिचित होती है। आवश्यकतानुसार अपने को न ढाल पाने वाली अभिनेत्री का या तो धीरे-धीरे पतन हो जाता है या वह लोगों की दृष्टि से गिर जाती है। अपने को समर्पित करने वाली वेश्या दासत्व में उतनी नहीं जकड़ी रहती, जितनी अपने जीवन का ध्येय जनता का मनोरंजन बना लेने वाली स्त्री।

प्रायः एक रखैल स्त्री जनमत का सम्मान करती है। वह अपनी वैयक्तिक इच्छा और यंत्रणाओं को अपने तक सीमित रखती है। वह सामाजिक मान्यताएं स्वीकार करती है। वह फैशनपरस्त समाज का सम्मान करती है। वह उसके तौर-तरीके ग्रहण करती है। वह एक मध्यवर्गी समाज के आदर्शों की कसौटी पसंद करती है। वह धनी मध्य-वर्ग के सहारे पनपती है, उसके विचारों को अपनाती है। वह परम्परावादी होती है। उसे इस बात का गर्व होता है कि जो संसार परिवर्तन पसंद करता है, उसमें उसने अपनी एक अच्छी स्थिति बना ली है। संघर्ष के पश्चात् वह अपना स्थान बना लेने पर भी मातृत्व और मानव-संगठन के विचारों से सहमत नहीं होती। अपनी सफलता के लिए उसे एक लम्बी सीमा तक दासता स्वीकार करनी पड़ती है। वह विश्व-स्वतंत्रता के सिद्धांत की कामना नहीं करती जोला ने नाना के चरित्र में इस रूप को अच्छी तरह प्रदर्शित किया है।

किताबों और नाटकों के विषय में नाना के विचार निश्चित रहते थे। उसे उच्च कोटि के भावों की रचनाएं पसंद थीं। इस प्रकार वह रिपब्लिकन के विरुद्ध क्रोध करती है। वह कहती है, "वे सूअर, जो कभी स्तान नहीं करते, आखिर क्या चाहते हैं ? वे मनुष्य सुखी नहीं थे? क्या राजा ने उनके लिए सब कुछ नहीं किया? ये लोग तो मानो सूअर की तरह हैं। मैं उन्हें जानती हूं और उनके बारे में सब कुछ कह सकती हूं । वास्तव में उनका गणतंत्र

सभी के लिए महान् दुर्भाग्य की वस्तु है। ओह ! भगवान! मेरे सम्राट को जितने दिन हो सके, सुरक्षित रखो।"

युद्ध के दिनों में ये स्त्रियां जितना देश-प्रेम दिखाती हैं, उतना किसी और श्रेणी की स्त्री नहीं। उच्च भावनाओं के माध्यम से वे सम्राज्ञी के महान् पद तक उठने की आशा करती हैं। प्रायः वे आत्मीयता के भाव खो देती हैं। मिथ्या और अतिशयोक्ति के बीच उनके शब्द अर्थहीन हो जाते हैं। उप-पत्नी का सम्पूर्ण जीवन मानो एक प्रकार का दिखावा होता है। उसके शब्द और उसकी रटी- रटाई बातें उसके हृदयगत भावों को व्यक्त नहीं करते, बल्कि इन सबका उद्देश्य किसी को प्रभावित करना होता है। वे प्रेमी के साथ प्रेम का सुखांत नाटक खेलती हैं। कुछ सुखद क्षणों में वे अपनी भूमिका के प्रति बड़ी गम्भीर हो जाती हैं। जनमत के साथ मानो वे समानता और प्रतिष्ठा के सुखांत खेल खेलती हैं। वे विश्वास करने लगती हैं कि वे सद्गुणों की मूर्ति और पवित्र प्रतिमा हैं । इस भ्रम से ही उनका पूरा आंतरिक जीवन शासित रहता है। वे सत्य का आभास देते समय झूठ बोलती हैं। उनके जीवन में कुछ बातें स्वतः घटने लगती हैं। वे प्रेम से नितांत अनभिज्ञ नहीं रहतीं। किसी-किसी के साथ तो वे हार्दिक प्रेम करने लगती हैं। वे अधिक भावुक हो जाती हैं। किसी बात के लिए सनक- सी जाती हैं या फिर आनंद की विशेष इच्छा करने लगती हैं। ऐसी स्थितियों में उनकी हालत डांवाडोल हो जाती है। प्रायः इन सभी मामलों में वे एक व्यभिचारिणी पत्नी की तरह सतर्कतापूर्ण व्यवहार करती हैं। अपनी वास्तविक स्थिति उन्हें जनता और ग्राहक से छिपानी पड़ती है। वे प्रेमी को बहुत सुख नहीं दे सकतीं। प्रेमी तो मानो उनके लिए एक मनबहलाव और विश्राम का साधन होता है। सफलता की भावना उन्हें इतना चिंतित बनाए रखती है कि वे वास्तविक प्रेम-सम्बंध का विचार मानो भूल ही जाती है। उप-पत्नियों के लिए कामुक प्रेम-सम्बंध स्थापित करना स्वाभाविक है। वे खुद पर शासन करने वाले पुरुषों से शत्रुता रखती हैं। दूसरी स्त्री की बांहों में वे विश्राम और प्रतिशोध का अनुभव करती हैं। कुछ ऐसी ही स्थिति नाना और उसकी सखी सैटिन के बीच रही। अपनी स्वतंत्रता का वास्तविक प्रयोग करने के लिए वे संसार में सक्रिय भूमिका अपनाती हैं। वे अन्य जीवों को भी अपने वश में रखना चाहती हैं। कम उम्र वाले लड़कों को वे अपना आश्रित बना लेती हैं। उनके प्रति उनका व्यवहार एक शासक का होता है।

उप-पत्नी चाहे समलिंगी कामुक हो या नहीं, पर अन्य स्त्रियों के साथ उसके सम्बंध जटिल होते हैं। वे एक निर्णायक और दर्शक के रूप में दूसरी स्त्रियों की आवश्यकता अनुभव करती हैं। वे उन्हें अपने विश्वासपात्र साथी के रूप में देखना चाहती हैं। इस विश्व के समानांतर वे एक दूसरे विश्व का सृजन करना चाहती हैं। ऐसा पुरुष से पीड़ित हर स्त्री चाहती है। यहां स्त्रियों को स्पर्द्धां चरम सीमा पर पहुंच जाती है।

उप-पत्नी का सबसे बड़ा दुर्भाग्य उसकी आत्म-निर्भरता व स्वतंत्रता का हजारों तरह की परनिर्भरताओं में बदल जाना है। उसकी स्वतंत्रता नकारात्मक होती है। रैचियल जैसी अभिनेत्रियों और इसाडोरा डंकन जैसी नर्तकियां यद्यपि पुरुषों की सहायता प्राप्त अवश्य करती हैं, लेकिन अपने पेशे में वे अपनी योग्यता के सहारे ही उठती हैं। वे जिस कार्य को ग्रहण करती हैं, पसंद करती हैं, उसमें उन्हें प्रकट रूप से पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होती है। उसके अभ्यास के माध्यम से वे किसी सच्ची योजना में रत नहीं रहतीं। जिस चित्र में अभिनेत्री निर्देशक के अधीन रहती है, उसमें वह अपनी सृजनात्मक क्षमता का पूरा उपयोग नहीं कर पाती। कोई दूसरा ही उसकी क्षमता का शोषण करता है। वह कोई नया सृजन नहीं कर सकती। वस्तुतः एक सफल अभिनेत्री बनना बड़ा कठिन होता है। सर्वोपरिता की ओर बढ़ने का उस क्षेत्र में उसे कोई खुला मार्ग नहीं मिलता। जोला ने नाना के सम्बंध में यह स्पष्ट किया है :

"विलासिता और रास-रंग के वातावरण में नाना ऊब गई थी। रात के प्रत्येक मिनट के लिए उसके पास पुरुष आते थे। उसके चारों ओर धन बरसता था। कार्यालय की दराज पैसों से भरी थी, पर उसे संतुष्टि नहीं मिली। इस वातावरण में उसका जीवन नीरस हो गया। उसका प्रत्येक दिन एकरसता से दबा रहता था। वह सारे दिन तत्पर पड़ी रहती थी क्योंकि उसे विश्वास था कि किसी भी क्षण उसकी मांग हो सकती है। वह अपने को दूसरे किसी काम में नहीं लगाती थी क्योंकि उसके हृदय में भय था और कॉन्वेंट में रहने वालों की तरह समर्पण की भावना थी। उसे ज्ञात था कि उसका जीवन एक वेश्या की चहारदीवारी से घिरा है। वह अपना समय पुरुष की प्रतीक्षा में व्यतीत करती थी।"

अमरीकन साहित्य में ऐसी खिन्नता और क्लांति के अनेक उदहारण मिलते हैं। यह उदासी हॉलीवुड में छा गई है। वहां जाने वाला हर यात्री इस क्लांति का शिकार बन जाता है। अभिनेता और सह-अभिनेता भी इसी तरह ऊब जाते हैं। फ्रांस की अधिकतर सरकारी व राजकीय पार्टियां थकान उत्पन्न करने वाली औपचारिकताओं से भरी होती हैं। एक नई अभिनेत्री के जीवन को निर्देशित करने वाला संरक्षक काफी वयस्क और धूर्त होता है। उसके उद्देश्य से अपरिचित युवतियां यह नहीं जान पातीं कि किस प्रकार और किस सीमा तक उनका शोषण किया जा रहा है।

एक उप-पत्नी की सम्पूर्ण जीवन-कथा एक भयंकर देवता के लिए अपना आनंद, खुशी और प्रेम न्यौछावर कर देने तक सीमित रहती है।

एक गृह-स्वामिनी के जीवन का आदर्श गृह-कार्य के लिए अपनी खुशी और प्रेम सब कुछ न्यौछावर कर देना रहता है। उसके जीवन का आदर्श पति और संतान के कल्याण का वातावरण बनाए रखना होता है। समय के साथ ही इस जीवन में फैलाव आता है, किंतु उसका जीवन अंतर्वर्ती ही रहता है। वह अपनी पहचान के लिए अपने स्वामी के नाम का

प्रयोग करती है। सामाजिक स्तर में ऊंचे उठने वाली स्त्रियां अपनी प्रकृति और क्षमता के अनुसार बड़ी बुद्धिमत्ता और साहस का प्रयोग करती हैं। कुछ स्त्रियां कमरे में बंद रहकर अपने सुंदर वस्त्रों की साज-संभाल को ही जीवन का अंतिम उद्देश्य बना लेती हैं।

कुछ स्त्रियां भयाक्रांत होकर संतुलन की अतिरिक्त चेष्टाओं के कारण अनावश्यक रूप से स्तायविक तनाव से ग्रस्त रहती हैं। यह स्थिति कभी-कभी उन्हें विचलित कर देती है। कुछ स्त्रियां सदा अपना नाम फैलाने की ही चेष्टा में लगी रहती हैं। उनकी स्थिति तो बेबल के टावर की तरह है, जो व्यर्थ ही आसमान की ओर उठता दिखाई पड़ता है। कुछ स्त्रियों में वीरता और अन्य गतिविधियों का एक ऐसा सामंजस्य होता है कि वे सच्चे रूप में साहसिक बालाएं प्रतीत होती हैं। ऐसी स्त्रियां माताहारी या फिर गुप्त दलालों की भी कोटि में आती हैं। वास्तव में ये स्त्रियां अपनी योजनाएं स्वयं नहीं बनाती। ये किसी पुरुष के हाथों एक यंत्र बन जाती हैं।

उप-पत्नी का दृष्टिकोण प्रायः एक साहसिक कार्य करने वाले व्यक्ति का होता है। वह गम्भीरता और साहस के बीच रहती है । व्यावहारिक रूप में देखा जाता है कि वे अन्य पुरुषों के प्रति उग्न होती हैं और अन्य स्त्रियों से शत्रुता रखती हैं। यदि वे बुद्धिमान । और नैतिक रूप में अपने स्वत्व को न्यायसंगत सिद्ध करना चाहती हैं, तो उनका झुकाव नीत्शेवाद की ओर रहता है। वे साधारण के ऊपर अपने को असाधारण के रूप में थोपती हैं। मॉड की अपेक्षा वे सम्भ्रांत को अधिक मान्यता देती हैं। वे स्वयं अपने को सम्पत्ति समझती हैं। उनका अस्तित्व ही मानो मानवता के लिए एक वरदान होता है। पुरुष के सम्मुख पूर्ण समर्पिता स्त्री के हृदय में प्रेम-सम्बंधी विचार निरंतर घूमते रहते हैं। यदि उसे अपनी ख्याति पर गर्व है तो केवल आर्थिक कारणों से नहीं, बल्कि अपनी आत्म-रति के कारण। ऐसी आत्म-मुग्धा स्त्री स्वयं का देवीकरण कर लेती हैं।

वृद्धावस्था

स्त्रियोचित दायित्वों से बंधी रहने के कारण स्त्री के जीवन का इतिहास पुरुष के जीवन के इतिहास की अपेक्षा उसकी शारीरिक बनावट पर अधिक निर्भर रहता है। उसके भाग्य के मोड़ पुरुष के भाग्य के मोड़ों की अपेक्षा अधिक ऊबड़-खाबड़ और कटे-फटे रहते हैं। जीवन के एक स्तर से दूसरे स्तर पर पहुंचने की प्रक्रिया में स्त्री को हठात् और भयंकर परिवर्तन झेलने पड़ते हैं। हर स्थिति में मानो उसके लिए एक चरम सीमा आ जाती है, जैसे कौमार्य का प्रकट होना, वयःसंधि- काल, कामोद्दीपन के भावों का जाग्रत होना और मासिक-धर्म बंद होना। ये सभी अवस्थाएं स्त्री के जीवन में अकस्मात् लेकिन निश्चित रूप से घटित होती हैं। पुरुष क्रमशः वृद्ध होता है किंतु स्त्री हठात् अपनी स्त्रियोचित विशेषताओं

से वंचित हो जाती है। यद्यपि स्त्री अधिक वृद्ध नहीं लगती किंतु वह अपना आकर्षण खो बैठती है। उसकी प्रजनन-शक्ति नष्ट हो जाती है। अब वह और समाज, दोनों ही सोचते हैं कि जीवन के इस काल में वह सुखी रहेगी। स्त्री को अब भी अपने जीवन का लगभग आधा वयस्क हिस्सा जीने को रहता है।

इस भयंकर उम्र की कुछ प्रतीकात्मक विशेषताएं महत्त्वपूर्ण होती हैं। जीवन के इस परिवर्तन को वे स्त्रियां विशेष महत्त्व नहीं देती, जो भारी कार्यों में लगी रहती हैं। इस तरह की स्त्रियां रजोधर्म बंद हो जाने पर खुश होती हैं। किसानों और मजदूरों की पत्नियां मासिक-धर्म रुक जाने पर प्रसन्न दिखाई पड़ती हैं क्योंकि अब उन्हें गर्भधारण का भय नहीं रहता। इस संगीन अवस्था में स्त्री जिस परेशानी व उलझन का अनुभव करती है, उसका कारण शारीरिक नहीं, बल्कि इस परिवर्तन से उपजी कुछ मानसिक चिंताएं होती हैं। शारीरिक परिवर्तन प्रारम्भ होने से पहले मानसिक परिवर्तन होने लगते हैं। पूर्ण शारीरिक परिवर्तन हो जाने के काफी समय के बाद मानसिक अवस्था में 'ठहराव' आ जाता है।

अवश्यम्भावी विकृति प्रारम्भ होने से पहले स्त्री को बुढ़ापे का भय सताने लगता है। एक परिपक्व पुरुष प्रेम के अतिरिक्त कुछ दूसरे महत्त्वपूर्ण व साहसिक कार्यों में भी लग जाता है। अब उसमें जवानी जैसी काम-इच्छा नहीं रहती। उसमें स्त्री की तरह ठंडे गुणों का आविर्भाव भी नहीं होता। शरीर और चेहरे पर आए परिवर्तन उसके आकर्षण को क्षीण नहीं करते। करीब पैंतीस वर्ष की अवस्था में स्त्री को ऐसा विश्वास-सा हो जाता है कि उसके रति-रूप का पूर्ण विकास हो चुका है। इस अवस्था में स्त्री की कामेच्छा बड़ी तीव्र रहती है और वह उसे तृप्त करना चाहती है। वह सेक्स-सम्बंधी मान्यताओं के प्रति बड़ी जागरूक रहती है। वह अपने पति से संलग्न रहना चाहती है। वह उसे अपने वश में रखना चाहती है और आश्वस्त होना चाहती है कि उसे पति का संरक्षण प्राप्त हो रहा है। अनेक कार्यों को करते भी वह अपना आकर्षण बनाए रखने की कोशिश करती है क्योंकि उसे पुरुष को प्रसन्न रखना है। स्त्री पुरुष के माध्यम से ही विश्व पर अपना अधिकार जमाए रखती है। पुरुष पर नियंत्रण खो देने पर उसकी दशा कैसी होगी? शारीरिक सौंदर्य घटने के क्रम में स्त्री चिंतित होकर स्वयं से ही यह प्रश्न करती है। वह एक संघर्ष प्रारम्भ कर देती है। केशों को रंगना, चर्म का उपचार और प्लास्टिक सर्जरी उसके ध्येय हो जाते हैं। ये बाह्य उपचार ढलते यौवन को कुछ समय तक के लिए रोक लेते हैं । कम-से-कम वह अपने दर्पण को धोखा दे देती है। युवाकाल में प्रस्फुटित उसके सौंदर्य का महल जब ढहने लगता है, तब वह स्वयं को मृत्यु के हाथों से स्पर्शित होती महसूस करने लगती है।

ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि एक आत्ममुग्धा स्त्री ही विशेष चिंतित रहती है, पर सच्चाई कुछ और ही है। आत्ममुग्धा स्त्री अपने सौंदर्य व आकर्षण पर इतनी मुग्ध रहती है कि उसे उसके अवश्यम्भावी विनाश का पूर्वाभास नहीं होता और न वह उससे बचने की

तैयारी करती है। सौंदर्य विनष्ट होने पर उसे कष्ट अवश्य होता है, किंतु वह अचम्भित नहीं होती और शीघ्र परिस्थिति के अनुकूल बन जाती है; लेकिन जो स्त्री आत्म-विस्मरण करके दूसरे के प्रति समर्पित रहती है, उसे इस सत्य का अहसास बहुत परेशान कर देता है। मुझे तो केवल एक ही जीवन जीना था। मेरा भाग्य कितना सुंदर था? अब मेरे रूप को देखो। उसमें घटित परिवर्तन आश्चर्य पैदा करता है। वह मानो अपने कार्यों से विमुख हो जाती है। उसकी तमाम योजनाओं में उथल-पुथल हो जाती है। अब वह अपने को यथार्थ के सम्मुख पाती है। उसे कोई दूसरा आश्रय नहीं दिखता। वह रास्ते की माप-शिला से टकराकर लड़खड़ा जाती है। उसे अब जीवन-यात्रा में और कुछ नहीं करना है। उसे अपने अच्छे दिनों की स्मृति संजोए रखनी है। अब उसका शरीर सौंदर्यहीन हो गया है। वे स्वप्न और आकांक्षाएं जो पूर्ण नहीं हुई थीं, अब अपूर्ण ही रहेंगी। जीवन ने उसे जिन संकीर्ण सीमाओं में बांध दिया है, उनसे वह भयभीत हो उठती है।

अपने जीवन की इस संक्षिप्त नैराश्यपूर्ण कथा से परिचित हो जाने पर स्त्री फिर उस किशोरी जैसा आचरण करने लगती है, जो भविष्य की दहलीज पर खड़ी है। अपने अस्तित्व के इस दारिद्रय की तुलना वह अपने व्यक्तित्व के अस्पष्ट वैभव के साथ करती है । स्त्री होने के नाते वह अपने भाग्य को विवश होकर बर्दाश्त करती है। वह अपने को छली गई महसूस करती है। कैसे अनजाने में वह यौवन को पार करके प्रौढ़ावस्था में पहुंच गई? उसे यह ज्ञात होता है कि उसका पति, उसका वातावरण और उसके कार्य उसके अनुकूल नहीं थे। उसे लगता है कि उसे सराहना नहीं मिली। जिस वातावरण और परिवेश से वह अपने को उत्तम समझती है, उससे दूर हो जाती है। वह अपने रहस्य को अपने तक ही सीमित रखती है। वह रहस्य है, उस दुःखमयी भाग्य की कुंजी। अब वह उन सभी सम्भावनाओं को आजमाना चाहती है, जो अभी तक उसके द्वारा नहीं आजमाई गई थीं। वह व्यक्तिगत 'डायरी' लिखने लगती है। अगर उसे कोई विश्वसनीय साथी मिल जाता है, तो वह उसके साथ वार्तालाप में जुट जाती है। रात-दिन वह अपनी दुःखमय गाथा पर विचार करती है और अपनी गलतियों पर पश्चात्ताप करती है। एक युवती अपने भविष्य का स्वप्न देखती है, पर प्रौढ़ा अपने अतीत का स्मरण करती है। वह बीते हुए अवसरों के चित्र अपने सम्मुख खींचती है और अतीत के प्रेम-अनुभवों का पुनर्निर्माण कल्पना में करती है।

लड़कपन और किशोरावस्था की चिंताएं फिर जग जाती हैं। स्त्री अपने यौवन के दिनों को हुए बार-बार याद करती है। माता-पिता और भाई-बहनों के प्रति उसकी सोई हुई भावनाएं फिर जाग जाती हैं। कभी-कभी वह शांत और स्वप्निल दुःखों में डूब जाती है, किंतु बहुधा वह अपने खोए अस्तित्व को बचाने की चेष्टा करती है। अब वह अपने उस व्यक्तित्व का प्रदर्शन करती है और उसकी तुलना अपने तुच्छ भाग्य से करती है। अपने व्यक्तित्व के गुणों पर वह प्रकाश डालती है और बड़े गर्व के साथ न्याय की मांग करती है। अनुभवों से

परिपक्व हो कर वह अब सोचती है कि जीवन में वह फिर एक नया स्थान बना सकती है। वह पुनः कार्यों में व्यस्त हो जाती है। वह भागते समय को वापिस लाना चाहती है। मातृत्व से प्यार करने वाली स्त्री दावा करती है कि वह अब भी संतानोत्पादन कर सकती है। वह बड़ी व्यग्रता से जीवन की सृष्टि करने की चेष्टा करती है। कामुक स्त्री एक नए प्रेमी को फंसाने की चेष्टा करती है। ऐसी स्त्रियां दूसरों पर दर्शा देना चाहती हैं कि समय ने उनका स्पर्श नहीं किया। वे नवयुवतियों की तरह पोशाकें पहनने लगती हैं। एक वयप्राप्त स्त्री बहुत अच्छी तरह जानती है कि रति-सौंदर्य नष्ट हो जाने के कारण वह पुरुष के आकर्षण की वस्तु अब नहीं रह गई। वह यह सोचकर कुछ आश्वस्त होती है कि उसका भी एक अपना अतीत और अनुभव था और वह भी एक मनमानी करने वाली व्यक्ति थी। उसने भी संघर्ष और प्रेम किया है, उसने भी इच्छानुसार आनंद पाया है। आज की स्वतंत्रता उसे भयावह लगती है। वह ऐसी स्वतंत्रता त्याग देना चाहती है। अब वह अपने स्त्रीत्व को और बढ़ा-चढ़ाकर प्रदर्शित करने के लिए अधिक सौंदर्य प्रसाधनों का उपयोग करती हैं। वह आकर्षक व लावण्यमय बनने की पूरी चेष्टा करती है। वह पुरुषों से बालिकाओं की तरह बातें करके उनसे प्रशंसा पाना चाहती है। इस सुखांत नाटक को वह मन लगाकर करती है। वह अपना जीवन फिर नए सिरे से शुरू करना चाहती है।

किंतु सच्चाई यह है कि वह किसी प्रकार एक नए जीवन का प्रारम्भ नहीं कर पाती। उसे ऐसा कोई भी लक्ष्य दृष्टिगोचर नहीं होता, जिसकी ओर वह स्वतंत्र व प्रभावशाली रूप से अग्रसर हो सके। उसके कार्यकलाप अब असंगत प्रतीत होते हैं क्योंकि वह अतीत की गलतियों और भूलों को केवल प्रतीकात्मक रूप से ही सुधार सकती है। प्रौढ़ा स्त्री अपनी बचपन और किशोरावस्था की इच्छाओं को फिर पूरा करना चाहती है। वह पुनः अपना पियानो बजाने लगती है, शिल्प-कलाओं में लीन हो जाती है। वह लिखने लगती है, भ्रमण करती है, छायाचित्र बनाती है और विदेशी भाषाओं का अध्ययन करती है। उसने अतीत में जो कुछ 'नकार' दिया था, उसे आज मुक्त हृदय से स्वीकार करती है। जिस पति को वह पहले सहन कर लेती थी, उसके प्रति आज वह घृणा व्यक्त करती है और निरुत्साह हो जाती हैं। वह अपनी दबी इच्छाओं को आज व्यक्त करती है। वह पति के सम्मुख सम्भोग का प्रस्ताव रखती हैं। बचपन में छोड़ दिए गए 'हस्तमैथुन' को वह फिर प्रारम्भ करती है। वह प्राय: सभी स्त्रियों में पाई जाने वाली समलिंगी कामुकता को व्यक्त करती है। बहुधा वह अपनी इस कामुकता को अपनी पुत्री के प्रति प्रदर्शित करती है या फिर किसी महिला मित्र के प्रति ।

अनेक स्त्रियां चेष्टा करके अपने खोए हुए सत्य व अनुभव को फिर प्राप्त करना चाहती हैं। वे ऐसा प्रेम चाहती हैं, जिसे अब तक नहीं जान पाई और न भविष्य में जान पाएंगी। प्रायः वे घरं से बाहर निकल जाती हैं। उन्हें ऐसा लगता है मानो उनका घर उनके रहने योग्य

नहीं है। वे एकाकीपन चाहती हैं और कभी-कभी दु:साहस के कार्य भी करती हैं। अगर उन्हें किसी दुस्साहस का अवसर मिल जाए, तो वे बड़ी लोलुपता से उसमें जुट जाती हैं। ऐसा स्टेकल द्वारा वर्णित एक घटना में हुआ :

it"एक सयानी संतान वाली चालीस वर्षीया विवाहिता को महसूस होने लगा कि जीवन में किसी ने उसकी सराहना नहीं की और उसका जीवन निरर्थक हो गया। उसने नए-नए कार्य प्रारम्भ कर दिए। एक बार वह छायाचित्रांकन के लिए पहाड़ पर गई। वहां उसकी एक तीस वर्षीय व्यक्ति से भेंट हुई। वह उसकी पत्नी बन गई।"

एक मर्यादित स्त्री किसी भी क्षेत्र में अति नहीं करती, किंतु उसके भी स्वप्नों में कामुक आकांक्षाएं बनी जरूर रहती हैं। जागृत अवस्था में वह ऐसे स्वप्न देखती है और अपनी संतान के प्रति कामुकतापूर्ण प्रेम भी प्रदर्शित करती है। एक के बाद एक युवा पुरुषों से वह प्रेम करने लगती है। किशोरी बालिका की तरह उसे भी कभी-कभी ऐसा लगता है कि उसके साथ किसी ने व्यभिचार किया है। कभी-कभी वह वेश्यावृत्ति के लिए भी व्याकुल हो उठती है। वह इच्छा और भय के विरोधाभास के बीच पिसती रहती है। मानसिक विकृति आ जाने के कारण वह अपने सम्बंधियों के अनुचित आचरणों का मिथ्या प्रचार करने लगती है। ऐसा प्रचार वास्तव में उसके ही काल्पनिक जीवन की अभिव्यक्ति होता है।

कल्पना और यथार्थ के बीच की दीवार इस अवस्था में किशोरावस्था से कहीं अधिक कष्टदायक होती है। पूर्ण स्वस्थ अवस्था में मृत्यु के करीब आने पर मनुष्य कौतूहल के साथ अपने दो रूप देखता है। एक रूप में वह चेतन, स्वतंत्र व सक्रिय जीव होता है और दूसरे रूप में एक ऐसा शांत जीव होता है, जिस पर भाग्य अपना चक्र चला रहा है। मैं वह नहीं हूं जिसे ढकेलकर गाड़ी ने गिरा दिया है। वह 'मैं' नहीं हो सकता। वृद्धा स्त्री का दर्पण पर प्रतिबिम्ब ! वह स्त्री, जिसने अपने को जीवन में कभी बहुत निखरते हुए युवा रूप में नहीं देखा और न जिसने कभी ऐसी वृद्धावस्था का अनुभव किया, इन दोनों रूपों में सामंजस्य नहीं बैठा सकती। मानो स्वप्न में समय गुजरता जाता है और उसके ऊपर अपने चिह्न छोड़ता जाता है। इस प्रकार यथार्थ पीछे हटता जाता है । यह भ्रम से ठीक-ठीक दूर नहीं किया जा सकता। स्त्री उस पर विशेष विश्वास करती है, जो उसकी अंतर्दृष्टि के सम्मुख है; बजाय उस विचित्र विश्व के, जिसमें समय उस अतीत की ओर मुड़ता होता है, जिसमें उसके दोहरे रूप उसे वास्तविक रूप से नहीं मिलते और जहां परिणाम ने उसे धोखा दे दिया है। उसकी इच्छा परमानंद प्राप्त करने की होती है। उसकी अपनी महत्त्वाकांक्षाएं होती हैं। वह उन्मुक्त हो उठती है; इस अवस्था में प्रेम उसकी मुख्य चाह बन जाता है। वह इस भ्रम में रहती है कि उसे प्यार किया जाता है। ऐसे कामोन्मादी दस व्यक्तियों में नौ स्त्रियां होती हैं। ऐसी स्त्रियों की उम्र चालीस से पचास के भीतर होती है।

हर एक के लिए यथार्थ की दीवार को सहजता से फांदकर निकल जाना आसान नहीं होता। स्वप्न में भी प्रेम न करने वाली अधिकांश स्त्रियां ईश्वर की ओर झुक जाती हैं। रजोधर्म बंद हो जाने पर मनचली साहसी और दुराचारिणी स्त्रियां प्रायः प्रौढावस्था में धार्मिक बन जाती हैं। जीवन का पतझड़ शुरू होने पर ये अनुभव करती हैं कि इन्हें जीवन में सराहना नहीं मिली। इनका भाग्य ही ऐसा था। अब ये धर्म में आश्रय ढंढ़ती हैं। भक्त स्त्री अपने भ्रष्ट जीवन को ईश्वर द्वारा ली गई एक परीक्षा समझती है। उसकी यह सोच उसे ईश्वर का कृपा-पात्र बना देता है। वह शीघ्र ही अपने को दैवी-प्रेरणा प्राप्त समझने लगती है।

इस अवस्था में स्त्री प्रायः यथार्थवादी दृष्टिकोण खो देती है। वह हर प्रकार का सुझाव ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत रहती है। आत्म-स्वीकृति कराने वाला धर्म-गुरु उसकी आत्मा को विशेष रूप से प्रभावित करता है। वह विवादास्पद सत्ता को भी सहर्ष स्वीकार कर लेती है। वह शीघ्र ही किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय में सम्मिलित हो जाती है । वह आध्यात्मिक और कपटी भविष्यवक्ताओं के जाल में फंस जाती है। वास्तविक विश्व से सारे सम्पर्क तोड़कर वह अंतिम सत्य ज्ञात करने के लिए व्याकुल हो जाती है। अब उसके लिए कोई ऐसा साधन अवश्य होना चाहिए, जो उसकी रक्षा के साथ ही विश्व की भी रक्षा कर सके। स्पष्ट रूप में जो तर्क उस पर लागू नहीं होता, उससे वह घृणा करती है। वह अपने ही लिए प्रस्तुत किए गए तर्कों और प्रमाणों पर विश्वास करती है। प्रेरणा, रहस्योद्घाटन, दैवी-संदेश और आश्चर्यजनक घटनाएं ऐसी स्त्री को स्वाभाविक लगती हैं। कभी-कभी वह वाणिज्य, अनुसंधान और किसी साहसिक कार्य में लग जाती है। ऐसे कार्यों की प्रेरणा या तो उसे कोई परामर्शदाता देता है या फिर उसकी आत्मा की आवाज।

ऐसी स्त्री चाहे विचारशील हो या क्रियाशील, उसके रूप में उन्मुक्त आह्लाद रहता है। रजोधर्म बंद हो जाने पर उसका जीवन मानो दो भागों में बंट जाता है। स्त्री को 'एक नए जीवन' का भ्रम होता है। वह एक नए अनुयायी की तरह उसमें प्रवेश करती है। वह आध्यात्मिक प्रेम करने लगती है या कला और मानवता के कार्यों में अपने को 'खपा' देने में ही महानता समझती है। मानो मृतक होकर वह पुनः जीवित हो जाती है। वह एक ऐसी दृष्टि से विश्व को देखती है मानो उसने इस विश्व का अनुभवातीत रहस्य जान लिया है। प्रौढ़ की काम-इच्छा यदि जाग्रत रहती है तो उसका संघर्ष और भयंकर हो उठता है। एक बार प्रिंसेस मैटरनिक से पूछा गया कि किस उम्र में स्त्री के शरीर की भूख शांत होती है? उसने उत्तर दिया, "मुझे इसका ज्ञान नहीं है, मैं केवल पैंसठ वर्ष की हूं।" मोनफैजन के अनुसार विवाह स्त्री की इच्छा बड़े ही छोटे अंश तक पूरी करता है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ स्त्री विवाह की निरर्थकता देखने लगती है। उसे प्रौढ़ावस्था में अपने निरुत्साह और संकोच की कीमत चुकानी पड़ती है। जब-जब वह इच्छा की तीव्रता का अनुभव करती हैं, तब-तब उसका पति उसकी उदासीनता के साथ समझौता करके अपने को उसके अनुकूल बना

लेता है। अति सामीप्य व संयम के कारण अब वह यौन-आकर्षण खो चुकी होती है। अतः वह दाम्पत्य जीवन के प्रेम को पुनः प्रज्वलित नहीं कर सकती। अधिक परेशानी महसूस करने पर वह सारी झिझक खो बैठती है। । वह पुरुष की तलाश करती है जैसे पहले प्रेमी की करती थी। वह स्वयं समर्पण के लिए प्रस्तुत रहती है। दूसरों पर अपना प्रभाव जमाने के लिए वह विनम्रता, मैत्री और कृतज्ञता के जाल फैलाती है। यौवन के शरीर को ताजगी और स्फूर्ति की वह चाह करती है और नवयुवकों के पीछे मंडराती रहती है।

अपनी चालों और शिक्षा द्वारा अपने कार्य में सफल न हो पाने वाली स्त्री के पास अब एक ही साधन बच जाता है, वह है देना। 'मध्य युग' की छोटे-छोटे चाकुओं से सम्बंधित कहानियां बड़ी जनप्रिय हैं। ये कहानियां इन अतृप्त दानवीय प्रवृत्ति वाली स्त्रियों के भाग्य का वर्णन करती हैं। एक नवयुवती अपने अनुग्रह के बदले अपने प्रत्येक प्रेमी से एक छोटा कैनिवेल मांगती थी। छोटी आलमारी में रखती थी। एक समय ऐसा आता था कि उसका कप-बोर्ड ऐसे कैनिवेल्स से भर जाता था। उसके प्रेमी प्रत्येक रात्रि की प्रेम-क्रीड़ा के पश्चात् उससे उपहार मांगते थे। शीघ्र ही उसकी आलमारी खाली हो जाती थी। उसे नए कैनिवेल्स खरीदने पड़ते थे। कुछ स्त्रियां इस स्थिति को एक विचित्रता एवं कटुता से देखती हैं। उनका समय अब बीत गया। अब उनकी कैनिवेल्स देने की वारी आई है। उनकी दृष्टि में पैसा वेश्या के लिए जो कार्य करता है, उससे विपरीत इस स्थिति में करता है । वह अपनी है। वह पुरुष को एक यंत्र में परिणत कर देता है और स्त्री को प्रेम-सम्बंधी वह सुविधा देता है, जिसे उसने यौवन के दम्भ में अस्वीकार कर दिया था।

यद्यपि बाह्य दृष्टि से ऐसा ज्ञात नहीं होता किंतु प्रेम-रसिक उदार स्त्री प्रायः मृग-तृष्णा की तरह प्रेम पाना चाहती है। वह प्रशंसा व सम्मान चाहती है। वह ऐसा प्रदर्शित करती है कि देने से आनंद की प्राप्ति होती है, इसलिए वह देती है। अपनी पसंद के नवयुवक को कुछ प्रदान करने में वह माता की उदारता का अनुभव करती है। नवयुवक अपने हृदय के रहस्य को नारी की सहायता करते समय जानना चाहता है। इस संदर्भ में सौदे की रुखाई रहस्य में परिणत हो जाती है। हृदय का अनमनापन दीर्घ काल तक उदार नहीं रह सकता। यौन-संघर्ष अब उस द्वंद्व में परिणत हो जाता है, जो शोषक और शोषित के मध्य होता है। इसमें स्त्री धोखा खा जाती है। वह पराजित हो जाती है। अतृप्त रहने पर भी बुद्धिमान स्त्री हथियार डाल देती है।

जिस दिन से स्त्री वृद्ध होने लगती है, उसी दिन से स्थिति बदलने लगती है। इस दिन तक वह दुर्भाग्य से जूझ रही युवती थी। अब उसका दुर्भाग्य रहस्यात्मक ढंग से उसके रूप और आकृति को नष्ट करता है। वह उससे संघर्ष करती है। आज वह परिवर्तित हो गई। उसका यौन-आकर्षण मानो समाप्त हो गया। अब वह एक वृद्धा है। उसकी उम्र गम्भीर एवं संगीन अवस्था से गुजर चुकी है। यह नहीं समझना चाहिए कि अब उसका जीवन सरल हो गया

है। अब उसके जीवन का दूसरा संघर्ष प्रारम्भ होता है। विश्व में उसका एक स्थान होना ही चाहिए।

अपने जीवन के पतझड़ में स्त्री अनेक बंधनों से मुक्त हो जाती है। वह उम्र का फायदा उठाकर अनेक बोझों से मुक्त हो जाती है। वह अच्छी तरह जानती है कि अब उसका पति उसे डराए-धमकाएगा नहीं। वह उसके बाहुपाश से दूर रहती है। उसके समीप ही रहकर वह नए ढंग से अपना जीवन गठित करती है, जिसमें कभी मैत्री-भाव, कभी शत्रुता तो कभी उदासीनता रहती है। यदि पुरुष की उम्र जल्दी ढलने लगती है, तो वह अकेले ही स्थिति को वश में लाने की चेष्टा करती है। वह 'फैशन' और लोगों की बातों की परवाह नहीं करती। अब वह सामाजिक बंधनों व जिम्मेदारियों से मुक्त रहती है। उसे न तो अल्पाहार की आवश्यकता है, न सौंदर्य के प्रति जागरूकता की। संतानें इस समय तक बड़ी हो जाती हैं। उसके सहारे के बिना भी वे जीवन में अग्रसर हो सकती हैं। उनकी शादियां होने लगती हैं और वे घर से अलग हो जाती हैं। अपने कर्तव्यों से छूट कर स्त्री अब स्वतंत्रता का अनुभव करती है, किंतु यह दुर्भाग्य का विषय है कि हर स्त्री के जीवन के इतिहास में देखा जाता है कि वह प्राप्त स्वतंत्रता का उपयोग नहीं कर सकती। पुरुष-प्रधान समाज में स्त्री के प्रत्येक कार्य को सेवा माना गया है। स्त्री अपना आकर्षण खोकर ही दासता से मुक्त होती है। पचास वर्ष की आयु में वह अपने को सारी शक्तियों से पूर्ण मानती है। अब वह अपने को पूर्ण अनुभवी समझती है। जिस उम्र में पुरुष महान् पदं पर बहुत महत्त्वपूर्ण स्थिति में पहुंच जाता है, उसी उम्र में स्त्री अवकाश प्राप्त कर लेती है। उसे किसी की सेवा में ही रहने की शिक्षा मिली थी। पर अब उसकी सेवा कोई नहीं चाहता। वह अपने को निरर्थक और असंगत पाती है। वह उस दीर्घ अवधि के बारे में सोचती है, जिसमें वह कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकी। वह मन ही मन कहती है, "अब किसी को मेरी आवश्यकता नहीं है।"

स्त्री इस अवस्था को तत्काल स्वीकार नहीं कर लेती। कभी-कभी अपने दुःख और चिंताओं से वह अपने पति को विरक्त करती है। अब तक वैवाहिक जीवन का कार्यक्रम निर्धारित हो जाता है। वह जानती है कि बहुत समय से वह पति के लिए आवश्यक नहीं रही या फिर पति ही उसके प्रयत्नों के योग्य नहीं रहा। दोनों का एक साथ जीवन-निर्वाह उतना ही अप्रासंगिक हो जाता है, जितना कि वृद्ध होना । अब वह अपनी आशाओं के लिए संतान की ओर झुकती है। यहां अभी 'पांसा' फेंका नहीं गया है। अब भी उसका कुछ भविष्य संसार । अब वह बच्चों पर आसक्त होती है। अधिक उम्र में संतान को जन्म देने वाली स्त्री को कुछ लाभ मिलते हैं। जब दूसरी स्त्रियां दादी और नानी बन जाती हैं, तो भी वह मां ही रहती हैं। मां की उम्र चालीस व पचास के बीच होने पर संतान सयानी हो जाती है। यह वह समय जब संतान मां से कतराती है और मां उसके सहारे जीना चाहती है।

स्त्री यदि पुत्र के सहारे अपना उद्धार चाहती है तो उसका रुख एक तरह का होता है। और यदि वह पुत्री के सहारे अपना मोक्ष चाहती है तो उसका रुख भिन्न होता है। प्रायः वह बड़े अरमान से पुत्र पर ही आशा लगाती है। अतीत के गह्वर से उसके सम्मुख अब वह आता है । वह पुरुष, जिसके आगमन के साथ-साथ उसने सुदूर क्षितिज को देखा था। पुत्र का प्रथम क्रंदन सुनने के साथ-साथ उस दिन की प्रतीक्षा प्रारम्भ कर दी थी, जिस दिन वह उस पर सारी निधियां न्यौछावर कर देगा। वे निधियां, जो उसका पिता देने में असमर्थ रहा। उसने पुत्र को थप्पड़ भी मारा है। उसे धमकाकर सुधारा भी है। अब वह सब विस्मृत हो चुका है। वास्तव में उसका पुत्र उसके लिए एक गौण देव. है, जो संसार पर शासन करता है। आज वह उसे मातृत्व के पूर्ण गौरव में मान्यता प्रदान कर रहा है। पिता के शासन से अब वह उसकी रक्षा करने जा रहा है। उसके भूतपूर्व से वह प्रतिशोध लेगा। वह उसका रक्षक व उद्धारक होगा। पुत्र के प्रति उसका व्यवहार आसक्ति व आडम्बरपूर्ण होता है जैसा कि एक युवा कन्या का, जिसकी दृष्टि हमेशा अपने सपनों के राजकुमार के लिए खुली रहती है। पुत्र के साथ चलते समय वह शालीन और आकर्षक रहना चाहती है। मानो वह उसकी बड़ी बहन है। पुत्र अमरीकन नायकों की नकल करते हुए उसे चिढ़ाता है, पर मजाक में और मर्यादा की सीमा के भीतर। गर्वपूर्ण विनम्रता के साथ आज वह संतान के शानदार पौरुष को स्वीकार करती है।

किस सीमा तक इन भावनाओं को कुत्सित माना जा सकता है ? पुत्र के साथ बड़ी बहन की तरह खड़ी रहने से उसे बड़ा संतोष मिलता है। उसकी कल्पना द्व्यर्थक होती है। तृप्त-अवस्था के लापरवाह क्षणों और दिवा-स्वप्नों में वह काफी आगे चली जाती है। यदि कभी भी मां पुत्र में प्रेमी को देखती है, तो वह एक खिलवाड़मात्र होता है। मां और पुत्र के सम्बंधों में कामुकता का कोई स्थान नहीं।

माता और पुत्र का एक युग्म बनता है। माता हृदय की गहराई से अपने पुत्र में महान् पुरुष का अभिनंदन करती है। प्रेम में रत स्त्री की तरह स्नेहपूर्ण भावनाओं के साथ वह अपने को पुत्र के हाथों में सौंप देती है। इस उपहार के बदले में वह आशा करती है कि उसे ईश्वर की दाईं ओर आसन प्राप्त होगा। इस आशा की पूर्ति के लिए प्रेम में रत स्त्री अपने प्रेमी से निवेदन करती है। वह हिम्मत के साथ एक खतरा मोल लेती है। प्रेमी की व्यग्रतापूर्ण मांगों में ही उसका पारितोषिक निहित होता है। पुत्र को जन्म देने के नाते मां पुत्र पर अपना अधिकार समझती है। पुत्र उसका आभारी हो, इसकी वह प्रतीक्षा नहीं करती। वह तो उसका ही अंश और सम्पत्ति है। प्रेम में रत स्त्री की तरह वह तीव्रता से मांग नहीं करती। वह शांत और संतुलित रहती है। उसे अधिकार और त्याग की चिंता नहीं होती। उस जीव की उसने स्वयं सृष्टि की है। उसे वह अपना ही अस्तित्व समझती है। वह उसके कार्यों को

उचित समझती है। वह उसकी अच्छाइयों को मान्यता देती है। अपने गर्भ के 'फूल' को महान् बनाते हुए वह स्वयं ऊंचाइयों पर पहुंचने लगती है।

हमेशा दूसरे का प्रतिरूप बने रहना उचित नहीं होता। घटनाएं इच्छानुकूल नहीं भी घट सकती हैं। ऐसा भी हो सकता है कि पुत्र बिल्कुल ही बेकार हो, शरारती, असफल, मूर्ख व अकृतज्ञ। वह किस महान् पुरुष के गुणों से अलंकृत होगा, इस विषय में माता के अपने विचार होते हैं। सबसे असाधारण बात तो यह है कि मां अपनी संतान में उस मानव का सम्मान करती है, जो असफलता में भी अपनी स्वतंत्रता को महत्त्व देता है। ऐसी माताओं की संख्या अधिक होती है जो कि स्पार्टा की मां से मानो स्पर्धा करती हैं। या तो पुत्र विजयी हो या फिर मृत्यु के मुख में चला जाए। पुत्र का मुख्य ध्येय यह है कि माता जिन वस्तुओं को मूल्यवान समझे, वह उन्हें मां को प्राप्त कराकर उसके जीवन को सार्थक बना दे। मां की कामना रहती है कि उसके देव-शिशु की योजनाएं उसके आदर्शों के अनुकूल हों और उनमें पुत्र को निश्चित रूप से सफलता मिले। हर माता की यह इच्छा होती है कि उसकी संतान महान् और प्रतिभाशाली हो किंतु सभी प्रतिभासम्पन्न और महान् व्यक्तियों की माताओं ने शुरू में यही शिकायत की थी कि उनकी संतान उनका दिल तोड़ रही है। सत्य तो यह है कि प्रायः पुत्र मां की इच्छा के विरुद्ध वह विजय-चिह्न प्राप्त कर लेता है, जिसे कि मां ने स्वयं विजित करने का स्वप्न देखा था; पर जब उन विजय-स्मारकों को लाकर वह मां के चरणों में रखता तो वह उन्हें पहचान भी नहीं पाती। सिद्धांत रूप में वह अपने पुत्र के कार्यों को पसंद करती है तथापि प्रेम में रत स्त्री की तरह वह भी विरोधी भावों से पीड़ित रहती है। अपने और अपनी मां के जीवन को सार्थक करने के लिए उसे आगे बढ़ना है, ऊपर उठना है, निश्चित उद्देश्यों को पूर्ण करना है। इस प्रयास में उसका स्वास्थ्य संकट में पड़ सकता है और उसे खतरे का सामना करना पड़ सकता है। प्राणों की बाज़ी लगाकर कुछ उद्देश्यों की ओर अग्रसर होते समय उसके मन में यह प्रश्न उठता है कि मां के उपहार की क्या कीमत है? उसे आघात लगता है कि जिस जीव को उसने जन्म दिया है, उस पर अपना महान् आधिपत्य रखती है। इतने कष्टों से जिसे उसने जन्म दिया है, उसे अपने को नष्ट करने का अधिकार नहीं। "तुम अपने को थका लोगे- रुग्ण हो जाओगे-कुछ घट न जाए" वह धीरे से उसके कानों में कहती है।

वह अच्छी तरह जानती है कि केवल जीना ही काफी नहीं है। यह जीवन निरर्थक होगा, यदि संतति योग्य नहीं होगी। यदि उसका पुत्र निकम्मा अथवा कायर होता है, तो सबसे पहले वहीं आपत्ति करती है। उसे किसी तरह चैन नहीं पड़ता। पुत्र जब युद्ध-क्षेत्र में प्रस्थान करता है तो मां की यही कामना रहती है कि वह सकुशल वापस आए। वह चाहती है कि उसे अपने जीवन में सफलता मिले, पर उसे भय रहता है कि कहीं वह अधिक श्रम न कर बैठे। वह जो भी कुछ करता है, उसकी उसे चिंता रहती है। वस्तुतः अब उस पर उसका

कुछ भी वश नहीं रहता। उसे भय रहता है कि कहीं वह राह से भटक न जाए, कहीं वह असफल न हो जाए। पुत्र पर पूरा भरोसा व विश्वास रहने पर भी उनकी उम्र और यौन में अंतर रहता है, इसलिए वह उसका सहयोग नहीं कर सकती। वह उसकी भाषा से परिचित नहीं होती। उससे सहयोग मांगा भी नहीं जाता।

पुत्र-वधू के प्रति उसकी कटुता और अनुदारता का वर्णन किया जा चुका है। उसने मां से उसकी संतान ले ली। मां ने उसे पाशविकता के अलौकिक रहस्य की ऊंचाइयों पर उठाया है। उसे यह किसी भी तरह स्वीकार नहीं कि किसी दूसरे के निर्णय को अधिक महत्त्व दिया जाए। उसकी दृष्टि में मान्यताएं पहले ही निश्चित हो चुकी थीं। वे प्रकृति से प्राप्त होती हैं। एक नए कर्त्तव्य को जो कि स्वतंत्रता से ग्रहण किया जाता है, वह गलत समझती है। उसने पुत्र को जन्म दिया है, पुत्र उसका आभारी है। कल तक की एक अपरिचित स्त्री के प्रति उसका क्या दायित्व है ? किसी जादू- टोने द्वारा इस स्त्री ने इस सम्बंध की डोर बांध ली है, जो कि कल तक अज्ञात थी। उसने जान- बूझकर योजना बनाई है। वह खतरनाक है। मां हमेशा बड़ी बेचैनी से प्रतीक्षा करती रहती है कि इस ढोंगी स्त्री का भंडाफोड़ हो। सुमाता की कहानी से उसे प्रोत्साहन मिलता है और वह हमेशा बद- नारी द्वारा दिए गए घावों को भरने के लिए प्रस्तुत रहती है। पुत्र के अस्वीकार करने पर भी उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो वह दुःखी है। वह हमेशा छिपकर पुत्र-वधू के कार्यों को देखा करती है और उसकी आलोचना करती रहती है। वह उसके द्वारा किए गए परिवर्तन नापसंद करती है। वह पुत्र-वधू को बर्दाश्त नहीं कर सकती।

हर स्त्री अपने प्रिय की खुशी अपनी दृष्टि से देखती है। पत्नी पति में उस पुरुष को देखती है, जिसके द्वारा वह समाज पर विजय प्राप्त कर सकती है। माता उसे वाल-रूप में देखने की चेष्टा करती है और उसे सुरक्षित चाहती है। नवयुवती पत्नी चाहती है कि उसका पति ऊंचा उठे, सम्पत्तिशाली हो। मां उसके परिवर्तनशील स्वभाव का विरोध करती है। वह कहती है कि उसका पुत्र बहुत नाजुक है। उसे अधिक श्रम नहीं करना चाहिए। वधू के गर्भवती होने पर अतीत और भविष्य के बीच का विरोध और भी बढ़ जाता है। संतानों का जन्म मानो माता-पिता के लिए मृत्यु का सूचक होता है। इस सत्य का उद्घाटन बड़ी क्रूरता से होता है। जिस माता ने आशा की थी कि वह पुत्र के सहारे जिएगी, उसे अब ऐसा लगता है कि पुत्र ही उसे मृत्यु की ओर ढकेल रहा है। उसने एक बार उसे जीवन प्रदान किया था। अब उसका जीवन उसके बिना भी चल सकता है। अब वह मां नहीं, एक सम्बंधमात्र रह गई है। अब वह अमर देवों के आसन से गिर पड़ती है। अब तो वह नष्टप्राय एक व्यक्ति- भर रह गई है। अब तो उसकी घृणा इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वह मानसिक विकारों की शिकार हो जाती है या फिर कभी-कभी अपराध भी कर बैठती है।

साधारणत: दादी कटुता को भूल जाती है। वह पुत्र की संतान को केवल पुत्र का ही समझकर उससे बेहद स्नेह करती है, पर नवयुवती माता संतान को अपना समझती है। अत: दादी के हृदय में जलन व ईर्ष्या के भाव उत्पन्न होते हैं । वह संतान से ऐसा स्नेह करती है, जिसमें कटुता के पीछे चिंता छिपी रहती है।

अपनी सयानी लड़की के प्रति माता का रूप दोहरा होता है। पुत्र में वह देव-रूप देखती है और पुत्री में उसे दोहरा रूप दीखता है। दोहरापन एक संशयपूर्ण व्यक्तित्व होता है जो कि अपने असली रूप को नष्ट कर सकता है। स्त्री होने के नाते पुत्री मां की मृत्यु चाहती हैं तो भी वह उसे जीने देती है। मां का बर्ताव पुत्री के प्रति बदलता रहता है। यदि वह पुत्री में नाश का रूप देखती है तो उसका वर्ताव एक तरह का होता है और यदि उदार का रूप देखती है तो उसका बर्ताव भिन्न होता है।

अनेक माताएं पुत्री के प्रति कटु होती हैं। जिसको उसने स्वयं जन्म दिया है, उसके प्रति विनम्रता उसे पसंद नहीं। एक बदचलन स्त्री को एक किशोरी युवती के कौशल से ईर्ष्या होती है। उस स्त्री को प्रत्येक स्त्री में अपना घृणित प्रतिद्वंद्वी दिखलाई पड़ता है, वह अपनी पुत्री को भी बर्दाश्त नहीं कर 'सकती। वह उसे दूर भेज देती है। वह उसे अपनी दृष्टि से परे रखती है। वह उसे सामाजिक अवसरों से भी वंचित रखना चाहती है। जो स्त्री स्वयं 'मां' और 'पत्नी' होने पर गर्व करती थी, वह आज पुत्री को उस पद से वंचित करने के लिए संघर्ष करती है। वह कहती है कि उसकी कन्या अभी बालिकामात्र है। उसके कार्यों को वह बच्चों का खिलवाड़मात्र समझती है। वह उसे विवाह के लिए छोटी और प्रजनन के लिए बहुत ही नाजुक समझती है। यदि पुत्री पति, घर और संतान की चाह पर अड़ी रहती है तो यह एक कपट व धोखा ही सिद्ध होता है। मां निरंतर उसकी आलोचना करती है, उपहास करती है और कष्टों का वर्णन करती रहती है। पुत्री की जिद पर वह उसे चिर-बालिका रहने का अभिशाप देती है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो वह उसके वयस्क जीवन को नष्ट करने की चेष्टा करती है। ऐसा देखा गया है कि उसको इसमें प्रायः सफलता मिलती है। अनेक युवा स्त्रियां बंध्या रहती हैं। उनके गर्भ गिर जाते हैं। इस हानिकारक प्रभाव के फलस्वरूप वे अक्सर बालक के लालन- पालन में असफल रहती हैं और घर-गृहस्थी का भार भी नहीं संभाल सकतीं। उनका दाम्पत्य जीवन असम्भव-सा बन जाता है। दुःखी.और एकाकी स्थिति में अंत में पुत्री को मां की ही बांहों में आश्रय प्राप्त होता है। पुत्री की धृष्टता एवं स्वतंत्रता से मां को जिस चिड़चिड़ेपन का अनुभव होता है, उसका शिकार प्रायः दामाद बनता है।

जो स्त्री प्रेमपूर्वक पुत्री के साथ अपना 'एकीकरण' कर लेती है, वह भी कम क्रूर नहीं होती। वास्तव में वह अपने परिपक्व अनुभवों द्वारा पुनः अपना यौवन प्राप्त करना चाहती है। इस प्रकार वह अपने अतीत की रक्षा करती है। उसने जैसे पति का स्वप्न देखा था, पर

प्राप्त न कर सकी थी, वैसा दामाद चुनती है। मानो वह ऐसी कल्पना करती है कि वह उससे ही विवाह कर रहा है। पुत्री के माध्यम से वह सम्पत्ति, सफलता और ख्याति की अपनी इच्छाएं पूरी करती है। ऐसी भी स्त्रियां हैं, जो अपनी संतान को बड़ी इच्छा से वीरता की राहों पर ले जाती हैं। वे उन्हें चलचित्र व थिएटर देखने ले जाती हैं। उनकी देख-रेख करने के बहाने वे स्वयं उनका-सा जीवन व्यतीत करने लगती हैं। ऐसा भी सुना गया है कि नवयुवती कन्याओं को चाहने वाले नवयुवकों को माताएं अपने शयन-कक्ष में ले गई हैं। नवयुवती पुत्री ऐसे संरक्षण को दीर्घकाल तक पसंद नहीं करती। योग्य पति मिल जाने पर वह विद्रोह करती है। अब वह सास, जिसने दामाद से बहुत कुछ आशा की थी, कटु हो जाती है। उसे मनुष्य की अकृतज्ञता से शिकायत रहती है। वह मानो शहीद हो गई हो। वह मां के रूप में भी ईर्ष्यालु सिद्ध होती है।

ऐसी निराशाओं का आभास मिलने पर अनेक स्त्रियां पुत्रियों के बड़ी होने के साथ-साथ एक अन्यमनस्क रुख अपना लेती हैं। वे बहुत कम आनंद का अनुभव करती हैं। अपनी संतान के जीवन को सम्पन्न व समृद्ध बनाने के लिए मां में उदारता व पृथकता के गुण होने चाहिए। संतान के प्रति न तो उन्हें क्रूर बनना चाहिए और न उन्हें पीड़ित करना चाहिए।

अपनी लड़की की संतानों के प्रति नानी की वैसी ही भावनाएं रहती हैं जैसी उसकी पुत्री के प्रति रहती है। पुत्री से क्रुद्ध रहने पर स्वाभाविक रूप में उसकी संतान के प्रति भी कटुता पैदा होती है। कुछ स्त्रियां कलंक से बचने के लिए ही पुत्री की अवैध संतान का त्याग करवा देती हैं। वे इसी कारण अनुचित सम्बंध से रहे गर्भ को नष्ट करवाती हैं। वे वस्तुतः पुत्री को मातृत्व से वंचित रखना चाहती हैं। कुछ स्त्रियां तो विवाहित पुत्री को गर्भपात का परामर्श देती हैं और बच्चे को स्तनपान नहीं कराने देती। वे इन बच्चों के प्रति उदासीनता के द्वारा उनके अस्तित्व को मानो नकारती हैं। वे बच्चों को निरंतर डांटती रहती हैं और उन्हें दंडित करती रहती हैं।

पुत्री के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेने वाली मां अपनी पुत्री की संतानों को बड़े लाड़ से अपना लेती है। नानी के लिए जीवन की पुरानी कहानी फिर से आरम्भ होती है। मानो उसे बीस वर्ष पहले का जीवन फिर मिल जाता है। अपनी संतान के ऊपर से उसका शासन उठ चुका होता है। अब वह पुत्री की संतान पर आधिपत्य जमाती है। मासिक-धर्म के बंद हो जाने के कारण वह मातृत्व की आशा त्याग देती है, लेकिन प्रेमी के माध्यम से उसकी यह आशा आश्चर्यजनक रूप से फिर पूरी होती है। वह फिर वास्तविक मां बन जाती है। बड़े अधिकार से वह बच्चों की जिम्मेदारी ग्रहण करती है और यदि यह भार उस पर छोड़ दिया जाता है, तो वह प्रसन्नतापूर्वक बच्चे में लीन हो जाती है। दुर्भाग्यवश यदि उसकी पुत्री अपनी संतान पर अपना अधिकार प्रदर्शित करती है, तो वह केवल सहायता का कार्य करती है जैसाकि उसके बड़ों ने किया था। वह अपने को अधिकार- वंचित समझती है और

अपने को दामाद की मां के समान मानने लगती है। पुत्री की सास के प्रति उसे हमेशा ईर्ष्या रहती है। प्रथम-प्रथम बालक के लिए उमड़े स्नेह में घृणा होने पर विकृति आ जाती है। अनेक नानियों की चिंता में उनकी दोहरी भावनाएं व्यक्त होती हैं । चूंकि बालक उनका है, इसलिए उन्हें वह प्रिय होता है, किंतु छोटे नव-परिचित जीवन के प्रति उनमें कटुता भी होती है। इस कटुता. के लिा उनमें संकोच बना रहता है। यदि नानी आधिपत्य की भावना को त्यागकर बच्चे से हार्दिक स्नेह करे, तो बच्चे के जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। नानी वास्तव में अलौकिक संरक्षिका होती है। वह अधिकार व कर्त्तव्य को मान्यता नहीं देती। वह पूर्ण उदारता के साथ बच्चे से स्नेह करती है। बच्चों के माध्यम से आत्ममुग्धा स्त्री की तरह वह स्वप्न नहीं देखती। वह बालकों से कोई प्रत्याशा नहीं करती। वह एक अदृश्य भविष्य बच्चों पर न्यौछावर कर देती है। वह अपने पर निर्भर उन छोटे प्राणियों से प्यार करती है। वह न तो उनकी शिक्षिका होती है और न उनके लिए न्याय व कानून का मूर्त रूप। इस कारण उसके साथ बेटी और दामाद मतभेद भी रख सकते हैं।

कुछ ऐसी भी घटनाएं होती हैं, जिनमें स्त्री का कोई वंशज नहीं रहता, या अपनी संतानों च- उनकी संतानों के साथ उसका स्वाभाविक स्नेह-बंधन नहीं होता। अपने वंशज के प्रति उनके मन में लगाव नहीं रहता। ऐसी स्थिति में वह स्त्री यह सम्बंध अन्यत्र कायम करना चाहती है। वह साधारण व्यक्तियों के प्रति अपना वात्सल्य प्रदर्शित करती है। हो सकता है कि उसका ऐसा प्रेम नितांत विकार- रहित न हो। इस तरह के प्रेम में कुछ मात्रा में कामुकता की गंध आ जाती है। यह सत्य है कि मजदूरों से समानता का व्यवहार करने वाली स्त्रियों को उदारतापूर्वक किसी मनुष्य की सहायता और भलाई में आनंद का अनुभव होता है। ऐसी स्त्रियां कामना करती हैं कि वे जीवन की स्रोत, अनिवार्य आवश्यकता और आधार बनें। वे मां भी बनती हैं और प्रेमी के साथ पूर्ण प्रेमिका के रूप में भी रहती हैं, पत्नी के रूप में नहीं । प्रायः मातृत्व-भाव वाली स्त्रियां लड़कियों को गोद लेती हैं। लड़कियों के साथ इनके सम्बंध बहुत कुछ कामुकता के होते हैं। इस प्रेम में शुद्धता रहती है या वासना? यह ज्ञात नहीं।

अभिनेत्री, नर्तकी व गायिका, सभी शिक्षिकाएं बनती हैं। वे अपनी शिष्याओं का गठन व निर्माण करती हैं। मदाम शारी की तरह बुद्धिमती स्त्री ने अवकाश के समय शिष्या को अपने सिद्धांतों से परिचित कराया। वे आध्यात्मिकता की ओर झुकी हुई बालिकाओं को एकत्रित करती हैं। वीर प्रवृत्ति की स्त्री 'मैडम' बनती है। यदि इस कोटि की स्त्रियां अपनी नवदीक्षिताओं में उत्साह की सृष्टि करने में समर्थ होती हैं, तो उसका यह कारण नहीं कि वे अपने क्षेत्र में विशेष रुचि लेती हैं, वे अपनी शिष्याओं में एक नए अवतार की चेष्टा करना चाहती हैं। इनके सम्बंधों में भी, मां और पुत्री के सम्बंध वाली उदारता-मिश्रित कटुता आ जाती है। यह भी सम्भावना रहती है कि नानी अपनी बेटी की संतान को कम गोद ले ले।

कभी-कभी मां की चाची व धर्म-माता भी वही भूमिका निभाती हैं, जो अपनी नानी निभाती है। स्त्री के लिए अपनी ढलती उम्र को अपने स्वाभाविक असली व दत्तक वंशजों में न्यायसंगत देखना बड़ा कठिन है। वह इन छोटे अस्तित्वों के जीवन को पूरी तरह अपना बनाने में असमर्थ रहती है। या तो उन्हें अपना बनाने के प्रयत्न में वह अड़ी रहकर अंत में इस संघर्ष में निराश व क्लांत हो जाती है, या अपने को एक विनीत भागीदार के रूप में मानकर संतोष कर लेती है। वृद्धा मां, नानी या दादी अपने आधिपत्य की भावनाओं को दबाकर अपने विषाद को छिपाए रखती हैं। उनकी संतानें उन्हें जो कुछ देती हैं, उसे ही ग्रहण कर वे संतोष कर लेती हैं। इस अवस्था में भी उन्हें बहुत सहायता मिलती है। वे भविष्य के रेगिस्तान का मुकाबला अकेली करती हैं। वे निष्क्रिय रहकर एकाकी, नीरस व दु:खमय जीवन व्यतीत करती हैं।

प्रौढ़ा स्त्री जीवन के इस दु:खद भाग में अनुभव करती है कि वह निरर्थक है। मध्यमवर्गीय स्त्री को प्रायः जीवन-भर समय काटने की समस्या हल करनी पड़ती है। जब संतान बड़ी हो जाती है और पति भी जीवन में अच्छी तरह स्थापित हो जाता है, तब भी उसके लिए समय बिताने को समस्या रह जाती है। फैंसी कार्य करने की प्रथा का प्रचलन समय का उपयोग कर पाने के लिए ही हुआ। ऐसी स्त्रियां कशीदाकारी और बुनाई के जरिए क्रियाशील रहना चाहती हैं। किसी उद्देश्यहीन वस्तु के निर्माण का महत्त्व बहुत तुच्छ होता है। इस वस्तु के इस्तेमाल की एक समस्या बन जाती है। कई बार लोग इन चीजों को मित्रों को या किसी दातव्य संस्था को दे देते हैं या फिर 'सेंटर- टेबुल' व 'मेंटिल-पीस' पर ये बिखरी पड़ी रहती हैं। यह कोई ऐसा खेल नहीं है, जिससे जीवन का आनंद प्राप्त हो। यह समय काटने का भी उचित साधन नहीं है क्योंकि दिमाग तो खाली रहता है। पोसियल के शब्दों में यह मनोरंजन का विचित्र साधन है। सूई और 'क्रोशिया' हाथ में लेकर मानो स्त्री जीवन की नगण्यता को बुनती है। पानी के रंगों से चित्रकारी करने, संगीत में लगे रहने या फिर पुस्तक पढ़ने का भी यही उद्देश्य रहता है। बेकार स्त्री इस प्रकार के कार्यों द्वारा विश्व पर अपना अधिकार नहीं स्थापित करती। इससे वह सिर्फ अपनी नीरसता दूर कर पाती है। एक बेकार स्त्री पुस्तक खोलती है, पृष्ठ पलटती है और फिर उसे बंद करके रख देती है। वह पियानो पर बैठती है, फिर उठ जाती है, फिर कशीदाकारी करती है, जम्हाई लेती है और अंत में टेलीफोन उठाकर बातचीत का सिलसिला प्रारम्भ करती है।

ऐसी स्त्री प्राय: सामाजिक जीवन द्वारा चैन व राहत पाने की चेष्टा करती है। वह बाहर निकलती है। वह लोगों के घरों में जाती है। मिसेज डालवे की तरह लोगों को मनोरंजित करने को वह विशेष महत्त्व देती है। वह विवाह-उत्सवों में सम्मिलित होती है। वह शोक-अवसरों पर जाती है क्योंकि उसके पास कोई काम नहीं होता। एक समय की छैल-छबीली बातचीत का विषय बन जाती है। वह लोगों के आचरण पर अपना मत प्रकट करती है।

शायद अपनी निष्क्रियता की क्षति-पूर्ति के लिए वह बेहद आलोचना में मस्त रहकर अपने आसपास वालों को परामर्श देती है मानो उन्हें अपने अनुभव से लाभान्वित कर रही हो। यदि उसके पास साधन होता है, तो वह एक ऐसी 'गोष्ठी' स्थापित कर लेती है, जिसके द्वारा वह दूसरों की सफलताओं और कार्यों को समझ सके । वास्तव में अब वह सब कुछ आकर्षण का केंद्र बनने के लिए करती है। वह दूसरों की प्रेरणा का स्रोत बनने की चेष्टा करती है।

सांसारिक मामलों में दखल देने के और भी सीधे उपाय हैं । फ्रांस में कुछ दातव्य संस्थाएं और कुछ सभाएं भी हैं। विशेषकर अमरीकन स्त्री क्लब जाना पसंद करती है। वहां वह अन्य स्त्रियों के साथ ब्रिज खेलती है और पुस्तकों के विषय में राय पढ़ती है। वह साहित्यिक पुरस्कार प्रदान करती है और सामाजिक वातावरण को सुधारने की चेष्टा करती है। अमरीका और फ्रांस में ऐसी संस्थाओं की विशेषता यह है कि उनका अस्तित्व केवल ऐसी ही स्त्रियों के लिए है। इन्हें किसी उद्देश्य को पूर्ति का माध्यम कहना तो मानो इनके अस्तित्व को टिकाए रखने का बहानामात्र है। बेबल के टावर- निर्माण में किसी को भी रुचि नहीं थी। किसी ने इसकी परवाह नहीं की, किंतु इसके बनने वाले स्थान के समीप एक शहर बस गया, जिसने कि वहां की सारी सम्पत्ति को व्यवस्था में व्यय कर दिया। ठीक इसी प्रकार इन संस्थाओं की सदस्याएं अपना काफी समय इन संस्थाओं के प्रबंध में व्यतीत कर देती हैं। वे अधिकारियों का चुनाव करती हैं और इन संस्थाओं का विधान बनाती हैं। वे आपस में विवाद करती हैं और प्रतिद्वंद्वी संस्थाओं के साथ अपनी संस्था की प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करती हैं। वे नहीं चाहती कि उनकी संस्था के दरिद्र, रोगी, आहत व अनाथ दूसरी संस्था में चले जाएं, भले ही वे उनकी संस्था में मर जाएं। ऐसी महिलाएं सामाजिक शासन की व्यवस्था नहीं कर सकतीं। अन्याय और दोषों को दूर करने की चेष्टा में वे अपनी सेवा को अर्थहीन बना देती हैं। वे युद्ध और दुर्भिक्ष पसंद करती हैं क्योंकि इन प्राकृतिक विपत्तियों द्वारा उन्हें मानवता के कल्याण का अवसर मिलता है। अतः यह स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में बुने हुए वस्त्र और खाद्य सामग्री सैनिकों और क्षुधा-पीड़ितों के लिए नहीं हैं, बल्कि हेलमेट और बंडल पाने के साधन हैं।

इन सब बातों के अलावा यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ऐसे कुछ संस्थान हैं, जिन्हें उचित फल मिलता ही है। अमरीका में ऐसी संस्थाओं का प्रभाव काफी अधिक है। पराश्रित जीवन-यापन करने के कारण ऐसी स्त्रियों को काफी अवकाश प्राप्त होता है। अत: कभी-कभी परिणाम दूषित भी होते हैं। फिलिप वाइली ने लिखा है कि अमरीकन महिला शायद चिकित्सा, कला, विज्ञान, धर्म, कानून व सफाई के बारे में कुछ नहीं जानती और न सदस्य होने के नाते उसकी उस विशेष कार्य में रुचि रहती है जिसे वह कर रही है, तो भी वह कुछ-न-कुछ करती रहती है। उसकी चेष्टाएं व प्रयत्न संगठित व एकरूप नहीं होते। उसके

सम्मुख विशेष उद्देश्य की प्राप्ति का भी लक्ष्य नहीं होता। वह अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए सदस्या बनती है। उसकी रुचियों और एकांगी विचार इन संस्थाओं के माध्यम से अच्छी तरह व्यक्त होते हैं। संस्कृति के क्षेत्र में भी उसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है। वह अनेक पुस्तकें खरीदती हैं, पर उन्हें पढ़ती ठीक उसी प्रकार है, जैसे कोई अकेले ताश खेलता हो। साहित्य का महत्त्व एवं प्रतिष्ठा तभी है, जब वह योजनाओं में लगे व्यक्तियों को प्रभावित कर सके और लोगों को प्रशस्त क्षितिज की ओर अग्रसर कर सके तथा मानव की सर्वोपरि अवस्था के साथ उनको एकाकार कर सके, किंतु स्त्रियां कलात्मक कृतियों एवं पुस्तकों की निंदा करती हैं। वे उन्हें अपनी विश्वव्याप्त स्थिति के साथ समेट लेती हैं। चित्र उनके लिए प्रदर्शनी की वस्तुमात्र रहता है। संगीत में उन्हें ऊब उत्पन्न करने वाली आवृत्ति दिखाई देती है। उनके लिए उपन्यास एक दिवा-स्वप्न है, जिसका महत्त्व क्रोशिये से बुने आवरण से अधिक नहीं। पुस्तकों की अति बिक्री का श्रेय अमरीकन स्त्रियों को है। इन पुस्तकों का उद्देश्य सबका मनोरंजन नहीं है, बल्कि उन बेकार स्त्रियों का मनोरंजन है जो समय गुजारने के लिए व्यग्र हैं। मोम्स' के भाव के बारे में फिलिप वाइली ने निम्नलिखित शब्द कहे हैं :

it' 'राजनीतिज्ञों से इनको खीझ होती है। इनकी संस्थाएं धर्म-गुरुओं को भयभीत करती हैं। बैंक के 'प्रेसीडेंट' इनसे खीझ जाते हैं और स्कूल के 'बोर्ड' तो बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं। 'मोम्स' की अनेक ऐसी संस्थाएं हैं, जो अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं के अनुसार घृणित वातावरण की सृष्टि करती हैं। ये शहर और प्रांत की सभी नवयुवती वेश्याओं को बाहर निकाल देती हैं। बसें इनकी सुविधानुसार रास्तों पर जाती हैं, कर्मचारियों की सुविधाओं के अनुकूल नहीं। ये असाधारण मेलों और पार्टियों का आयोजन चैरिटी के लिए करती हैं और इस राशि से द्वारपाल से बीयर मंगवाती हैं। क्लब इनको अनेक अवसर देते हैं, जिनके द्वारा वे दूसरों के मामले में हस्तक्षेप कर सकें।"

इस तीखे व्यंग्य में काफी सच्चाई है। ये स्त्रियां किसी राजनीति, अर्थशास्त्र या यांत्रिक शाखा की विशेषज्ञ नहीं होती। वृद्ध महिलाओं का समाज पर प्रत्यक्ष रूप से कुछ भी आधिपत्य नहीं होता। जिन समस्याओं के समाधान की आवश्यकता है, वे उनसे अपरिचित रहती हैं। वे किसी रचनात्मक कार्य के योग्य से नहीं होती। जिस प्रकार 'कांट' के आदर्श अस्पष्ट व औपचारिक हैं, उसी प्रकार ऐसी स्त्रियों की नैतिकता केवल औपचारिक और अमूर्त होती है। उन्नति के मार्ग खोलने के बजाय ये प्रतिबंध व निषेध लगाती हैं। ये प्रत्यक्ष रूप में नवीन अवस्थाओं की सृष्टि नहीं करतीं। बुराइयों के निराकरण के लिए ये संगठित रहती हैं, जैसे शराब, वेश्यावृत्ति व अश्लील साहित्य। इन्हें ज्ञात नहीं होता कि केवल नकारात्मक प्रयत्नों से असफलता ही मिलती है जैसा कि अमरीका में 'निषेध' आज्ञा की

असफलता से हुआ। स्त्री जब तक स्वयं पराश्रित रहेगी, तब तक वह विश्व को उत्तम बनाने में कोई योगदान न दे सकेगी।

ऐसा देखा गया है कि इस सबके बावजूद कुछ ऐसी स्त्रियां हैं, जो वास्तव में साहसपूर्ण कार्य करती हैं। वे वास्तव में प्रभावशाली होती हैं । वे अपना समय व्यतीत करने के लिए बेचैन नहीं होती। उनके पास कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं । वे अपने ढंग से कुछ रचनात्मक कार्य करती हैं। वे पराश्रित जीव नहीं होतीं। उनमें से अधिकांश अपने व्यक्तिगत व सामाजिक क्षेत्र व कार्यों से किसी फल-प्राप्ति की आशा नहीं करतीं, बल्कि किसी रूप में अपने को व्यस्त रखती हैं। केवल समय व्यतीत करने के लिए किए जाने से किसी भी कार्य का महत्त्व नष्ट हो जाता है। अपने जीवन को समाप्तप्राय समझने वाली स्त्रियां उन किशोरियों की तरह परेशान रहती हैं, जिनके विकास का अभी प्रारम्भ भी नहीं हुआ है। उन्हें कोई भी प्रेरणा नहीं मिलती। यदि वे किसी कार्य पर विचार भी करती हैं तो सोचती हैं कि इसका क्या लाभ होगा? किंतु एक किशोर बालक जीवन में पौरुष के साथ प्रवेश करता है। उसे अपने सम्मुख उद्देश्य, जिम्मेदारी और प्रतिष्ठा दिखाई पड़ती है। वह अपने निर्णय के द्वारा साहसिक कार्य का बीड़ा उठाता है। यदि किसी वृद्धा से कहा जाए कि वह एक नए भविष्य की ओर अग्रसर हो, तो वह उदासीनता से उत्तर देती है कि अब काफी देर हो चुकी है। ऐसी बात नहीं है कि उसका समय सीमित है। स्त्री पुरुष की अपेक्षा शीघ्र अवकाश ग्रहण कर लेती है। उसमें न जोश रहता है, न विश्वास, न आशा । उसमें वह आवेग नहीं रहता, जिससे वह चारों ओर देखने में समर्थ हो सके और नए उद्देश्यों की खोज के लिए प्रोत्साहित हो। कार्य को दोहराना उसका स्वभाव बन जाता है। वह अति मितव्ययी बन जाती है। उसमें आस्था के भाव आ जाते हैं। वह सुख और दुःख के प्रति उदासीन हो जाती है।

जीवन का अंत समीप आने पर वृद्धा काफी शांत हो जाती है। वह संघर्ष त्यागकर भविष्य की सारी चिंताओं से मुक्त हो जाती है। प्रायः उसके पति की अवस्था उससे अधिक होती है और वह चुपचाप संतोष के साथ पति के स्वास्थ्य का गिरना देखती रहती है मानो यह उसका प्रतिशोध है। यदि पति को मृत्यु पहले हो जाती है तो वह इस क्षति को सहर्ष झेल लेती है। ऐसा देखा गया है कि पुरुष वृद्धावस्था में पत्नी की मृत्यु से अधिक विक्षिप्त होता है। विवाह द्वारा पुरुष विशेषकर वृद्धावस्था में, अधिक लाभान्वित होता है। इस समय पत्नी उसका ध्यान रखती है और तालमेल बनाए रखती है। वह सामाजिक कार्यों को त्याग देता है। वह बिल्कुल बेकार हो जाता है। पत्नी अभी भी घर चलाती है। वह पति के लिए आवश्यक है जबकि पति केवल निरर्थक जीव रह जाता है।

वृद्धाएं अपनी स्वतंत्रता पर गर्व करती हैं। अंत में वे अपने दृष्टिकोण से विश्व को देखती हैं। उन्हें यह आभास होता है कि उन्हें सारा जीवन धोखा दिया गया, मूर्ख बनाया गया। वे

पूर्ण सावधान रहती हैं और लोगों का विश्वास नहीं करतीं। वे अक्सर कटु व कपटी बनकर जीती हैं। विशेषकर जिस स्त्री ने सच्चे रूप में जीवन जिया है, वह पुरुष से अधिक मनुष्यों को पहचानने लगती है। जिसने पुरुष को केवल जन-साधारण की दृष्टि से प्रतिरूप में नहीं देखा, बल्कि उसे एक अवलम्बित व्यक्ति के रूप में देखा, परिस्थितियों के एक शिकार रूप में देखा। प्रत्येक पुरुष अपने बराबर वालों की अनुपस्थिति में इसी रूप में रहता है। वह अन्य स्त्रियों को भी पहचानने लगती है क्योंकि एक स्त्री दूसरी स्त्री के सम्मुख निःसंकोच अपना वास्तविक रूप दिखा देती है। वह प्रायः ओट में रहती है। यदि उसे धोखा और मिथ्या प्रदर्शन का अवसर प्राप्त होता है, तो उसका अनुभव उसे इस योग्य बना देता है कि वह सत्य का दिग्दर्शन करा सके। चाहे यह कटु लगे या हास्यास्पद, स्त्री की बुद्धिमत्ता प्रायः अप्रत्यक्ष ही रहती है। इसका रूप विरोध, अस्वीकृति और अभियोग में दीखता है। वह शुष्क रहती है। अपने विचारों व कार्यों में वह अधिक स्वतंत्रता दिखा सकती है। वह या तो संशयी प्रकृति की हो जाती है, या सबके प्रति उदासीन। जीवन में किसी भी समय वह अति प्रभावशाली और पूर्ण स्वतंत्र होने में सफलता नहीं पाती।

स्त्री की स्थिति और चरित्र

स्त्रियों के ऊपर यूनियनों द्वारा लगाए गए और आज के समाज में लगाए जा रहे आरोपों की कुछ मान्यताएं सहज एवं बोधगम्य हैं । स्त्री की दशा सामयिक परिवर्तनों के बावजूद प्रायः एक जैसी बनी रही। इस स्थिति के द्वारा ही स्त्री-चरित्र का निर्धारण होता रहा है। स्त्रियां अपनी विश्वव्यापी स्थिति में खुश हैं, वे विरोधाभासों में जीती हैं। वे हीन और मूर्ख हैं, वास्तविकता से अपरिचित हैं। उनमें नैतिकता का अभाव है, वे उपयोगितावादी हैं, वे मिथ्याचारिणी हैं, वे नाटकीय हैं, वे आत्म- केंद्रित हैं आदि बातें आरोपों के रूप में कही जाती हैं। आरोपों में कुछ-न-कुछ वास्तविकता है। स्त्री 'हारमोन' के कारण न तो स्त्री-चरित्र एक विशेष प्रकार का होता है और न इसका कारण उसके मस्तिष्क की खास बनावट होती है। इस तरह-तरह के व्यवहार के लिए स्त्री की परिस्थिति ही जिम्मेदार होती है। इसी दृष्टि से हमें स्त्री की स्थिति का अध्ययन करना है। इस कार्य में दोहराव की सम्भावना है, किंतु शाश्वत नारीत्व की सही समझदारी के लिए हमें आर्थिक, सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थिति को पूरा समझना होगा।

कभी-कभी 'स्त्री-जगत्' की 'पुरुष-जगत्' के साथ असमानता प्रदर्शित की जाती है किंतु इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि स्त्री-वर्ग कभी भी स्वतंत्र समाज का निर्माण नहीं करता, बल्कि वह एक ऐसे समूह का अंतरंग अंश है जो कि पुरुष द्वारा शासित है और जिसमें स्त्री की स्थिति पुरुप पर अवलम्बित है। समानता के आधार पर स्त्री समुदाय की एकता और पारस्परिक संलग्नता के धागे में गूंथा जा सकता है। यह एकात्मता मानो यंत्रवत् होती है।

इसमें आंगिक और पारस्परिक एकता का अभाव रहता है। मानो उन्हें आपस में गूंथकर एकात्मता स्थापित की जाती है। ऐसा आज के क्लबों, सैलूनों और सामाजिक सेवा संस्थाओं में देखा जाता है, किंतु ये सारी संस्थाएं 'पुरुष-जगत्' के ही अंतर्गत रहती हैं। इनका रूप 'काउंटर सर्विस' का रहता है। इसीलिए स्त्रियों की स्थिति हमेशा विरोधाभासी रहती है। वे एक प्रकार से 'पुरुष-जगत्' के ही अंतर्गत आती हैं, किंतु साथ ही एक ऐसे क्षेत्र में भी आती हैं जो पुरुष-जगत् को चुनौती देता है। वे मानो अपने ही जंगत् में बंद रहकर भी पुरुष-जगत् से घिरी रहती हैं और कहीं भी शांति नहीं पातीं। उनमें विनम्रता लेकिन अवज्ञा के साथ ग्रहण करने के भाव बने रहते हैं। इस दशा में स्त्री का रुख केवल बहुत कुछ किशोर कन्या की तरह रहता है। यह रुख बनाए रखना स्त्री के लिए कठिन हो जाता है क्योंकि केवल प्रतीकों के सहारे वह स्वप्न नहीं देख सकती, पर उसे वास्तव में जीवन की वास्तविकता देखनी पड़ती है।

स्त्री यह मानती है कि विश्व उन पुरुषों का है जिन्होंने इसे बनाया, इस पर आधिपत्य स्थापित किया और जो आज भी शासन करते हैं। स्त्री अपने को विश्व के निर्माण की जिम्मेदार नहीं समझती। वह पुरुष पर आश्रित और उससे निम्न स्तर पर रहती है। उसने हिंसा और विद्रोह के पाठ नहीं पढ़े हैं। समूह के अन्य सदस्यों के सम्मुख वह कभी कर्ता के रूप में नहीं आती। वह अपने ही शरीर तक सीमित रहती है। वह घर की सीमा में बंधी रहती है। वह पुरुष के मुखड़ों वाले देवताओं के सम्मुख हमेशा शांत रहती है। ये ही नर-देव उसके जीवन के लक्ष्य और मान्यताओं के निर्धारक होते हैं। स्त्री को 'चिर-शिशु' मानने वाली कहावत सही है। मजदूर वर्ग, गुलाम हब्शी और कॉलोनी के बाशिंदे वयप्राप्त बालक कहलाते हैं। जब तक कि लोगों को उनसे भय नहीं था, जब तक अन्य व्यक्तियों द्वारा निर्मित कानून और नियम वे मानते रहे, तब तक उनकी दशा अपरिवर्तित रही। स्त्री को सम्मानपूर्वक पुरुष की आज्ञा माननी चाहिए, यही उसका भाग्य है। न व्यवहार में और न विचारों में यथार्थ पर स्त्री का आधिपत्य होता है। इन स्थितियों से वह अलग रहती है।

यह सत्य है कि स्त्री में उस यांत्रिक शिक्षा का अभाव है जिसके द्वारा वस्तु पर आधिपत्य स्थापित किया जाए। वह किसी भौतिक पदार्थ को पकड़ना नहीं चाहती । वह जीवन पर शासन चाहती है, लेकिन किसी भी यंत्र द्वारा जीवन पर आधिपत्य स्थापित नहीं किया जा सकता। इसके लिए जीवन के रहस्यपूर्ण नियमों और कानूनों को स्वीकार करना पड़ता है। विश्व स्त्री के लिए उसके उद्देश्य और इच्छा के बीच स्थित चर्चा का समूह नहीं बल्कि दृढ़ता से प्रतिरोध करने वाली अजेय शक्ति है। विश्व नियति द्वारा शासित है। किसी रहस्यात्मक सनक द्वारा इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। स्त्री के गर्भ में स्थित छोटा-सा बीज किस प्रकार मानव-रूप धारण कर लेता है, इसे कोई गणितज्ञ किसी समीकरण के जरिए नहीं व्यक्त कर सकता। इसे किसी भी मशीन द्वारा शीघ्र ही आगे नहीं बढ़ाया जा सकता और न

इसकी गति ही शिथिल की जा सकती है। स्त्री एक ऐसी निरंतरता की शक्ति का अनुभव करती है जिसे न तो अच्छे-से-अच्छे यंत्र विभाजित कर सकते हैं और न गणितज्ञ जिसकी वृद्धि कर - सकते हैं। उसका अस्तित्व उसके शरीर के भीतर है जो कि चंद्रमा के बढ़ने-घटने के नियमों द्वारा मानो शासित होता है। प्रतिदिन रसोईघर में भी स्त्री को धैर्य और शांति का पाठ सीखना पड़ता है। उसे अग्नि का आदेश मानना पड़ता है, जल का महत्त्व स्वीकार करना पड़ता है। उसे चीनी के घुलने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। सने आटे में 'खमीर' उठाया जाता है, गीले वस्त्र सूखते हैं और फल पकते हैं। घरेलू कार्य यंत्रवत् क्रियाओं की तरह होते हैं, किंतु वे बड़े नीरस और प्राथमिक महत्त्व के होते हैं। वे मशीनी ढंग से होते रहते हैं। यह नियम स्त्री समझ नहीं सकती। इन पदार्थों का रूप बड़ा सनकी होता है। कुछ को धोना आवश्यक होता है, जबकि कुछ चीजों की धुलाई नहीं हो सकती। कुछ दाग छूट जाते हैं और कुछ नहीं छूटते। कुछ चीजें टूट कर छिन्न-भिन्न हो जाती हैं और कुछ पौधों की भांति विकसित होती रहती हैं।

स्त्री के मस्तिष्क में कृषि-सभ्यता की स्मृति रहती है। वह धरती की जादुई शक्ति की आराधना करती है। वह जादू में विश्वास करती है। चूंकि उसकी काम-इच्छा निष्क्रिय होती है, इसलिए वह इस इच्छा को कामना का रूप नहीं मानती। स्त्री अधिकांशत: अंधविश्वासी होती है। उसे ऐसा अनुभव होता है मानो वह लहरों, प्रकाश और कुछ रहस्यमय तरल पदार्थों से घिरी रहती है। उसे सम्मोहन विद्या, हस्तविद्या, दूरसम्पर्क विद्या, खगोल विद्या और अतींद्रियतादर्शी विद्या में विश्वास रहता है। वह साधु-संतों पर भी आस्था रखती है। उसके. धर्म का रूप प्राचीन अंधविश्वासों पर आधारित होता है। वह प्रकृति में आत्मा की उपस्थिति मानती है। साधु-संत ईश्वर के अवतार होते हैं। कुछ आत्माएं पथिकों की रक्षा करती हैं। कुछ आत्माएं स्त्री की प्रसव-पीड़ा के समय रक्षा करती हैं। कुछ आत्माएं खोई हुई वस्तुओं को पुनः प्राप्त करा देती हैं। कोई चमत्कार स्त्री को आश्चर्यचकित कर सकता है। वह प्रार्थना करती है और परम्परा तथा संस्कारों को मान्यता देती है।

स्त्री नियमबद्धता पसंद करती है। वह समय में नयापन नहीं देखती। उसके लिए नएपन में सृजनात्मक बहाव नहीं होता क्योंकि उसके भाग्य में तो दोहराव ही बदा है। भविष्य में उसे अतीत का प्रतिरूप दिखाई पड़ता है। शब्द और फार्मूलों का ज्ञान न होने पर भी उर्वरा-शक्ति स्वयं उसके साथ सम्मिलित हो जाती है। वह महीनों और ऋतुओं के अधीन है। प्रत्येक गर्भावस्था, प्रत्येक फूल का प्रस्फुटन और ऋतुओं का आना-जाना तथा फलों का पकना-गिरना कालक्रम से सम्भव होता रहता है। घटने का क्रम शनैः-शनैः चलता रहता है। जिस प्रकार समय के फलस्वरूप फर्नीचर और कपड़े नष्ट होते हैं, उसी प्रकार प्रजनन-शक्ति भी उम्र के साथ नष्ट हो जाती है । स्त्री इस विनाश-शक्ति की अनिवार्यता पर विश्वास नहीं करती।

स्त्री विश्व को बदलने की अपनी क्षमता और स्थिति की वास्तविकता से अनभिज्ञ रहती है। वह विश्व में इस प्रकार खोई रहती है मानो वह एक अस्पष्ट विशाल निहारिका के मध्य हो। वह पुरुष के तर्कों से अपरिचित है । स्तांदाल ने कहा कि जरूरत होने पर स्त्री भी विश्व को पुरुष जैसी कुशलता से ही संचालित कर सकती है, किंतु वास्तव में वह ऐसी मशीन हो गई है जिसका प्रयोग करने की जरूरत कठिनाई से पड़ती है। जिस प्रकार तर्क से 'सलाद का मसाला' नहीं बन सकता और न रोते बच्चे को पुरुष का कोई तर्क चुप करा सकता है, उसी प्रकार स्त्री भी अपनी शक्ति और सम्भावना समझ पाने में असमर्थ है। पुरुषों के जगत् में स्त्री के विचार दिवा-स्वप्नों की तरह हैं क्योंकि वे योजनाबद्ध नहीं हैं। स्त्री को वस्तु-सत्य का वास्तविक ज्ञान नहीं है। शब्दों और मानसिक चित्रों के सिवाय वह अन्य चीजों को ग्रहण नहीं कर सकती, इसीलिए बहुत विरोधी स्थितियों से भी वह न तो चिंतित होती है, न व्याकुल। अपनी पहुंच से परे के क्षेत्रों के रहस्यों को जानने की वह जरा भी कोशिश नहीं करती। उसे सहज ही अस्पष्ट विचारों, विचित्र पार्टियों, स्थानों और घटनाओं से संतोष हो जाता है। वह जिज्ञासा नहीं करती। एक विचित्र अव्यवस्था मानो उसके मस्तिष्क को घेरे रखती है।

वास्तव में वस्तुओं को स्पष्ट रूप में देखना स्त्री का क्षेत्र नहीं है क्योंकि उसे प्रारम्भ से ही पुरुष की सत्ता स्वीकार करने की शिक्षा दी गई है। इसीलिए किसी बात की आलोचना, जांच-पड़ताल और उसका निष्कर्ष स्त्री स्वयं नहीं निकालती। सब कुछ वह पुरुष पर छोड़ देती है। वह वस्तुतः जगत् को पूर्ण और सर्वोपरि रूप में देखती है। फ्रोजन का कथन है कि पुरुष देवताओं की सृष्टि करता है और स्त्री उनकी आराधना। मूर्तियों के सम्मुख पुरुप पूर्णतः घुटने नहीं टेकता क्योंकि ये मूर्तियां उसी के द्वारा निर्मित हैं। स्त्री ऐसी मूर्तियां देखकर यह नहीं सोचती कि वे हाथों द्वारा निर्मित हैं। वह अनायास उनके सम्मुख नतमस्तक हो जाती है। विशेषकर वह देवता में औचित्य और व्यवस्था देखना चाहती है। स्त्री के लिए प्रत्येक पुरुष में एक महान् देवता स्थित है। किसी आदर्श देव में 'पुरुष' रहस्यमय तत्त्व की तरह स्थापित है और पिता, पति तथा प्रेमी उसकी धुंधली छायामात्र हैं। यह कहना व्यंग्यात्मक प्रतीत होता है कि इस महान् प्रतीक की आराधना में काम-भाव छिपा रहता है, किंतु बाल्यावस्था में जिस प्रकार घुटनों के बल बैठकर पूर्ण समर्पण के भाव से पूजा की जाती है, स्त्री आगे चलकर शायद उसी भाव को तुष्ट करती है। फ्रांस में पेटेन और देगाल जैसे नायकों को हमेशा स्त्रियों का समर्थन मिला। यह तो सर्वविदित है कि किस प्रकार स्त्री पत्रकारों ने टीटो और उसके शानदार लिबास की प्रशंसा की। गम्भीर चिंतन करने वाले सभी व्यक्ति नायक, आदेशक और ज्ञानी को ऐसा देव-पिता मानते हैं जो सभी मान्यताओं की रक्षा करता है। स्त्री अज्ञानी और प्रभावहीन होने के कारण नायकों, वीरों और पुरुष-जगत् के कानूनों को सम्मान देती है। वह तर्क-वितर्क करके विश्वास के वशीभूत होकर श्रद्धा अर्पित करती है। ज्ञान के अभाव में उसके विश्वास में उन्मत्तता आ जाती है।

उसका यह विश्वास अंधा, मूढ़ और भावना के वशीभूत रहता है। वह जो कुछ भी स्वीकार करती है, वह सारा विवेक और इतिहास के विरुद्ध होता है।

परिस्थितियों के अनुसार इस प्रकार के आदर और श्रद्धा के दो रूप होते हैं । या तो यह कानूनी रूप हो सकता है या ऐसे कानून का नाममात्र, जिसका स्त्री बड़ी इच्छा से पालन करती है। विशेष सुविधा प्राप्त वर्ग की व्यवस्था से लाभान्वित स्त्री यथास्थिति की पक्षधर होती है। पुरुष अच्छी तरह जानता है कि वह भिन्न-भिन्न संस्थाओं का निर्माण और विकास तथा एक नए नैतिक शास्त्र तथा संविधान की सृष्टि कर सकता है। वह जानता है कि वह सर्वोपरि उठ सकता है। अतः वह इतिहास को विशेष महत्त्व नहीं देता। अत्यंत रूढ़िवादी पुरुष भी जानता है कि किसी-न-किसी रूप में विकास अवश्यम्भावी है, अत: वह अपने कामों और विचारों को परिवर्तन के अनुरूप बनाना चाहता है, किंतु स्त्री इतिहास में कोई भूमिका नहीं निभाती, इसलिए वह उसकी आवश्यकताएं भी नहीं समझती। उसे भविष्य के बारे में हमेशा शंका बनी रहती है। वह मानो समय की गति को अवरुद्ध कर देना चाहती है। यदि उसके पिता, भाई और पति द्वारा स्थापित मूर्तियों को कोई तोड़ दे तो वह असमंजस में पड़ जाती है। वह नए देवता की स्थापना नहीं कर सकती। वह पुराने देवताओं की रक्षा के लिए व्यग्र रहती है।

अमरीका के गृहयुद्ध के समय स्त्रियों ने ही दासप्रथा का सबसे अधिक समर्थन किया था। इंग्लैंड में बोअर युद्ध और फ्रांस में कम्यून के समय स्त्रियां ही सबसे अधिक भड़की थीं। उन्होंने अपनी भावना की तीव्रता द्वारा अपनी निष्क्रियता छिपाई। विजय प्राप्त हो जाने पर वे शत्रुओं पर चीलों की तरह झपट पड़ीं। परास्त होने पर वे किसी भी समझौते के लिए प्रस्तुत नहीं थीं। प्रगतिशील विचारों के अभाव के कारण वे पुराने तर्कों का समर्थन करती थीं। 1914 में वे वैधतावादी थीं तो 1951 में जारवादी। कभी-कभी पुरुष उन्हें मुस्कुराते हुए प्रोत्साहन देता है क्योंकि उनकी उन्मत्तता उसका विनोद करती है, पर कभी-कभी उनकी जिद व मूर्खता पर उसे खीझ भी होती है।

इस प्रकार का अड़ियल और जिद्दी रुख स्त्री पूर्ण संगठित सामाजिक व्यवस्था तथा विकसित सभ्यता में ही ग्रहण करती है। आमतौर पर वह कानून का सम्मान इसलिए करती है कि कानून कानून हैं। कानून बदल जाने पर भी कानून का प्रभाव स्त्री पर बना रहता है। स्त्री की दृष्टि में शक्ति ही अधिकारों का स्रोत होती है। उसका विश्वास है कि पुरुषों के अधिकार भी उनकी शक्ति पर निर्भर हैं। इसीलिए किसी भी सामाजिक संस्था के नष्ट हो जाने पर स्त्रियां ही विजेताओं के चरणों में पहले झुकती हैं। वे जो कुछ हैं, उसे सहज में स्वीकार कर लेती हैं। त्याग और समर्पण स्त्री की चारित्रिक विशेषताएं हैं। पम्पीआई के खंडहरों में देखा गया कि पुरुषों की मृत देहों के मुख पर विद्रोह के भाव थे, जबकि स्त्रियों के मुख पृथ्वी की ओर झुके हुए ' पुरुष मानो अलौकिक शक्ति की भी अवहेलना करते

प्रतीत होते थे या मांगने की चेष्टा में थे। स्त्री अपने को शक्तिशाली पाती है। ज्वालामुखी, पुलिस, पुरुष और संरक्षक-सबके सम्मुख स्त्री लाचार होती है। उसका खयाल रहता है कि वेदना सहन करने के लिए ही उसका जन्म होता है। पीड़ा उसका जीवन है। इस दिशा में कुछ भी करना असम्भव है।

त्याग की भावनाएं स्त्री को सहिष्णु बनाती हैं। इस विशेष गुण के लिए स्त्री की प्रशंसा सदा की जाती रही है। वह पुरुष से अधिक शारीरिक पीड़ा बर्दाश्त कर सकती है। उसमें सहनशक्ति, संयम और साहस की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। पुरुष की तरह वह उद्धत और आक्रामक नहीं होती। स्त्री के शांत प्रतिरोध में उसकी दृढ़ता और धीरता का परिचय मिलता है। वह पुरुषों से अधिक साहस के साथ गरीबी, दुर्भाग्य और जटिलताओं का मुकाबला करती है। चाहे आपत्ति का समय कितना ही लम्बा क्यों न हो, स्त्री का संयम नहीं टूटता। कार्य के लिए शांत भाव से उद्यमशील स्त्री को अंततः सफलता प्राप्त होती ही है। कभी भी स्त्री की शक्ति का अपमान नहीं करना चाहिए। उदार प्रकृति की स्त्री का त्याग-भाग उसकी सहनशक्ति में परिणत हो जाता है। स्त्री किसी की सहज ही अवहेलना नहीं करती क्योंकि उसका विश्वास है कि वस्तु और व्यक्ति अपनी प्रकृति सहसा बदल नहीं सकते। एक गर्वीली स्त्री में त्याग का गुण अवश्य रहता है। दिक्कत यह है कि स्त्री की बुद्धिमत्ता विकासशील नहीं होती। उसे हमेशा सोचते रहने की आदत होती है। वह संवरना चाहती हैं और अनुकूल ढलना चाहती है। पुनर्निर्माण और विध्वंस उसका सहज स्वभाव नहीं। वह विद्रोह की अपेक्षा समझौता अधिक पसंद करती है।

19वीं शताब्दी में स्त्रियों ने मजदूरों के स्वातंत्र्य-आंदोलन का विशेष विरोध किया। अनेक डरपोक स्त्रियों ने अपने पतियों से अनुरोध किया कि वे किसी भी तरह किसी नए प्रयोग की चेष्टा न करें। उन्हें केवल हड़ताल, वेकारी और गरीबी का भय नहीं था, बल्कि वे विद्रोह को एक भूल समझती थीं। वे कष्ट सहने के लिए प्रस्तुत रहती थीं क्योंकि उन्हें किसी भी नई दिशा में कदम उठाना स्वीकार नहीं था। उनका खयाल था कि शायद वे घर में बाहर से अधिक सुरक्षा और सुविधा प्राप्त कर सकती हैं।

स्त्रियों का भाग्य नाशवान वस्तुओं के साथ बंधा रहता है। वे समझती हैं कि वस्तुओं के विनाश के साथ उनका सब कुछ नष्ट हो जाएगा। अपनी सत्ता स्थापित कर सकने और वस्तुओं की अवहेलना में समर्थ व्यक्ति ही विनाश भी रोक सकता है। यह क्षमता स्त्री में नहीं होती। वह मुक्ति और स्वतंत्रता गुलाब की में विश्वास नहीं करती क्योंकि उसने कभी स्वतंत्रता की शक्ति की परीक्षा नहीं की। उसकी दृष्टि में विश्व एक ऐसी अदृश्य नियति द्वारा शासित है जिसका विरोध असम्भव है। स्त्री ने उन भयंकर रास्तों को स्वयं नहीं देखा है जिन पर चलने का उसे आदेश दिया जाता है। इसलिए उत्साहपूर्वक उन रास्तों पर चल पाना उसके लिए स्वाभाविक नहीं होता। उसके लिए भविष्य के द्वार खोल दिए जाने पर हो वह

अतीत को त्याग सकती है। उद्देश्य का पूर्ण आभास हो जाने पर ही स्त्री सक्रिय हो पाती है। ऐसी अवस्था में उसमें पुरुष से कम साहस नहीं रहता।

स्त्री पर अनेक आरोप लगाए जाते हैं। उसे आलसी, दासी और लड़कपन से भरी हुई तथा तमाम विशेषताओं से शून्य कहा जाता है। उसकी इन कमियों का एकमात्र कारण उसके सम्मुख किसी स्वतंत्र रास्ते का न होना ही है। ऐसा कहा जाता है कि स्त्री विषयी होने के कारण अपनी अंतापिता में ही मगन रहती है। हरम में रहने वाली स्त्री के हृदय में सुवास और इत्र की गंध की स्वाभाविकता नहीं होती। उसे तो किसी तरह अपना समय बिताते रहना पड़ता है।

वह चटखोरी के लिए चटनी और अचार पसंद करती है। मखमल का कोमल स्पर्श उसे जल और सूर्य की किरणों की तरह रोमांचित करता है। वह अन्य स्त्री मित्रों और युवा प्रेमी के साथ समय बिताना पसंद करती है क्योंकि पुरुष ने हमेशा उसके शारीरिक रूप को ही महत्त्व दिया है, इसीलिए स्त्री भी अपने पशु स्वभाव को ही विशेष महत्त्वपूर्ण समझती है। पुरुष और स्त्री में काम-भावना की तीव्रता प्रायः बराबर ही होती है, किंतु स्त्री ने उन अल्पक्षणों के आनंद और वेदना को अपनी अपूर्ण विजयं का प्रतीक माना है। क्षणों की तात्कालिकता के सम्मुख वह भविष्य और बाह्य जगत्, दोनों से वंचित रह जाती है। उसकी यह दैहिक लौ केवल धुआं होकर रह जाती है।

स्त्री अपनी अतिरिक्त भौतिक लिप्साओं के कारण ही किसी महान् लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाती। वह अपने जीवन का सारा समय छोटी-छोटी बातों में गंवा देती है। उसके लिए तुच्छतम वस्तु भी अधिक कीमती हो जाती है। स्त्री की आकर्षकता बहुत सीमा तक उसकी पोशाक और अन्य सौंदर्य प्रसाधनों पर निर्भर रहती है। सौंपे हुए कार्यों की नगण्यता के कारण वह आलसी और निष्क्रियता को ढंकने के लिए शब्दों का प्रयोग करती है। किसी सम्मानित कार्य में लगी हुई स्त्री अपने को कर्मठ, योग्य और अल्पभाषी प्रमाणित करती है। ऐसी स्थिति में उसका तपस्वी रूप भी सामने आता है।

स्त्री पर दासत्व का अभियोग लगाया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि वह हमेशा अपने स्वामी के चरणों में लेटने के लिए तैयार रहती है। वह अपने पर प्रहार करने वाले हाथों को ही चूमती है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि स्त्री में स्वभावगत अभिमान कम रहता है। परित्यक्ता पत्नियों, प्रेम में लीन स्त्रियों और प्रेमियों से बिछुड़ी स्त्रियों को पत्रिकाओं द्वारा सीख दी जाती है। उन्हें रोटी के टुकड़ों के लिए पुरुप पर निर्भर रहना पड़ता है। पुरुप के सहारे बिना बेचारी स्त्री कर ही क्या सकती है? वह प्रत्येक अपमान सहने को बाध्य होती है। एक दास में मानवीय प्रतिष्ठा के भाव होते ही नहीं।

स्त्री की साधारणता, सांसारिकता और स्वार्थपरता का कारण उसके जीवन का चरम उद्देश्य रसोई बनाने और वस्त्र धोने को बना देना है। महानता की ओर बढ़ने का उसके पास

कोई साधन नहीं होता। एक दोहराव-भरा नीरस जीवन ही स्त्री की नियति बन जाता है। थोपी गई स्थितियों के बीच स्त्री किसी आविष्कार की बात सोच ही नहीं सकती। उसे तो बिना किसी मकसद के ही कार्य में रत दिखती रहना है। वह पुरुष पर ही निर्भर न रहकर वस्तुओं पर भी निर्भर रहती है। वह मितव्ययी और लोभी बन जाती है। पुरुष-जगत् में स्त्री की भूमिका साधनमात्र होने के कारण उसका जीवन पाती। गौण घरेलू कार्यों तक ही सीमित रह जाता है। व्यावहारिक जीवन की इस उपयोगितावादी स्थिति से वह पूर्णतया परिचित रहती है।

कोई भी प्राणो जीवन में अनावश्यक और गौण नहीं रह सकता। इसीलिए स्त्री अपनी तात्कालिक उपयोगिता में ही सारे विश्व की झलक देखती है। तब भला उससे साहस, उत्साह और सर्वोपरिता की आशा कैसे की जा सकती है? वर्तमान का अतिक्रमण करते हुए जब एक स्वतंत्र व्यक्ति उन्मुक्त भविष्य की ओर अग्रसर होता है, तभी उसमें ये विशेषताएं उत्पन्न हो सकती हैं। यह तमाशा माना जाएगा कि चहारदीवारी में कैद स्त्री के लिए कहा जाता है कि उसका क्षेत्र सीमित है। परकटी स्त्री से उड़ पाने की कैसी उम्मीद? यदि वाकई स्त्री के लिए भविष्य के द्वार खोल दिए जाएं तो वह कभी भी अपनी अंतर्वर्तिता में ही सीमित नहीं रहेगी।

स्त्री को प्रायः घमंडी, प्रतिक्रियात्मक और ईर्ष्यालु कहा जाता है। उस पर पारस्परिकता को महत्त्व न देने का आरोप लगाया जाता है। प्रश्न यह है कि एक परिवार तक ही सीमित रहने को विवश स्त्री संलग्नता का वास्तविक बोध कहां से हासिल कर पाएगी? ऐसी स्थिति में लोकमंगल की किसी चेष्टा की ओर वह नहीं बढ़ सकती। इसीलिए स्त्री अपनी यथास्थिति में डटी रहती है. क्योंकि वह इसमें ही एक विचित्र स्वतंत्रता का अनुभव करती है।

बंद खिड़कियों-दरवाजों के भीतर भी स्त्री स्वयं को कभी सुरक्षित नहीं समझती क्योंकि उसका यह घर पुरुष की अपरिचित दुनिया से घिरा है जिसमें प्रवेश करने का वह साहस नहीं जुटा स्त्री में दुनिया को अपनी पकड़ में हासिल कर लेने की क्षमता नहीं होती और न तो उसके पास पुष्ट तर्क होते हैं, न अपेक्षित ज्ञान। उसकी अवस्था तो एक बच्चे या आदिम मानव की तरह है जो रहस्यों से घिरा रहता है। इसीलिए घटनाक्रम की अवश्यम्भाविता समझती हुई वह सम्भव तथा असम्भव को पहचान नहीं सकती और हर कुछ पर विश्वास कर लेने को तैयार रहती है। वह अकारण चिंता करती है, निद्राहीन रातें बिताती है और विश्राम के क्षणों में भी यथार्थ के भयावह रूपों का अनुभव करती रहती है। स्वभावत: स्त्री निराशावादी हो जाती है। उसे ऐसा आभास होता है मानो भविष्य में किसी भी पल विद्रोह, दुर्भिक्ष और दारिद्रय, कुछ भी घट सकता है। अंधकार और असमंजस में भटकती हुई स्त्री किसी भी आकस्मिक स्थिति में कोई भी कार्य सुसम्पादित कर पाने में असमर्थ रहती है।

चलती हुई रेलगाड़ी पटरी से उतर सकती है। कोई भी सफल होती हुई परियोजना असफल हो सकती है। एक समृद्ध और चालू व्यापार अचानक दिवालिया हो सकता है। स्त्री को दृष्टि में सब कुछ का एक ही रूप अपनी असमर्थता का कंकाल दिखाई देता है।

स्त्री इसलिए सदा दुश्चिंतित रहती है कि उसे लगता है कि गोल घूमती हुई धरती लड़खड़ाकर गिर जाएगी। वह स्वयं से असंतुष्ट रहने के कारण सारी दुनिया से असंतुष्ट रहती है। वह समर्पण तो करती है पर अपनी इच्छा के विरुद्ध । इसीलिए वह दुखी भी रहती है। वह चूंकि स्त्री है इसलिए उससे किसी विषय में राय नहीं ली जाती, परिणामतः उसका रुख शिकायती बना रहता है। पुरोहित और समाज भी स्त्री के शिकायती स्वभाव से परिचित रहते हैं। वह अपनी सखियों के बीच भी अपने कष्टों के लिए कराहती हैं और वे सब एक स्वर से भाग्य को दोषी ठहराती हैं जबकि एक स्वतंत्र व्यक्ति अपनी असफलता के लिए स्वयं को जिम्मेदार समझता है। स्थिति में परिवर्तन के किसी सुझाव का स्त्री घोर विरोध करती है क्योंकि वह सोचती है कि उसके कष्ट बड़े गहरे हैं, उनको शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। अपनी पीड़ा के लिए वह सम्पूर्ण विश्व को उत्तरदायी समझती है क्योंकि इस जगत् का निर्माण करते समय उससे राय नहीं ली गई, उसे पृथक रखा गया। वह तो हमेशा ही अपनी स्थितियों का विरोध करती आई है। उसने तो विरोध बचपन में भी किया था और किशोरावस्था में भी। उसे क्षतिपूर्ति का आश्वासन जरूर मिला था कि यदि वह अपना सर्वस्व पुरुष को सौंप दे तो उसे सौ गुना वापस मिलेगा, पर वह ठगी गई। दुनिया ने उसे धोखा दिया। निर्माता का अंतर्निहित स्वर हमेशा नाराजगी का होता है। जिसने अपना सर्वस्व दिया, बदले में वह कुछ भी पाने पर संतुष्ट नहीं हो सकता।

नैतिक समस्याओं के बारे में स्त्री की सोच प्रायः निरपेक्ष होती है। भला है तो भला है, बुरा है तो विल्कुल बुरा। सापेक्षिक रूप से इन मूल्यों के प्रति एक कर्मठ व्यक्ति की तरह वह कभी नहीं सोचती कि कार्य-प्रक्रिया के दौरान थोड़े भले से अधिक भले की ओर जाया जा सकता है। स्त्री तो जीवन में गेहूं के दाने चुनती है जो कूड़े से नितांत भिन्न होते हैं। उसके अनुसार स्वच्छता में धूल बिल्कुल नहीं होनी चाहिए। घर की सफाई में लगी किसी भी स्त्री के लिए धूल और गंदगी जय- पराजय की कहानी बन जाती है। स्त्रियां सरकार से भी आशा करती हैं कि वह उन्हीं की तरह तमाम कूड़े को उठाकर फेंक दे। चूंकि स्त्री अपना कोई वश दुनिया के मामलों पर नहीं दिखा सकती इसलिए वह अपना आक्रोश और घृणा व्यक्त करने के लिए किसी-न-किसी की तलाश में रहती है। उसके इस आक्रोश का सहज शिकार बेचारा पति बन जाता है। यह पति ही तो है जो पुरुष-जगत् का मूर्त रूप है और जिसके माध्यम से पुरुष-समाज ने स्त्री पर अपनी सत्ता जमाई है तथा उसे छला है। पुरुष के ऊपर चूंकि संसार का भार है अत: किसी भी अव्यवस्था के लिए स्त्री की निगाह में वही उत्तरदायी होता है। रात को थके-मांदे रूप में घर लौटने पर उसे स्त्री द्वारा बच्चों की शिकायत,

दुकानदारों और महंगाई की बातें सुननी पड़ती हैं। पत्नी पुरुष के सम्मुख मौसम और अपने गठिया के दर्द की भी शिकायत करती है। वह चाहती है कि पुरुष इन बातों पर पूरा ध्यान दे। पति पर तो वह विशेष 'रूप से इसलिए नाराज रहती है कि उसने पुरुष होने का अपराध किया है। पुरुष की अपनी चिंताएं और बीमारियां हो सकती हैं, पर वह तो सुविधा प्राप्त वर्ग का है, अतः अपनी कमजोर स्थिति के प्रति स्त्री अधिक सहानुभूति की आशा करती है। इन मामलों में पुरुष से प्राप्त उपेक्षा उसे बेहद पीड़ित करती है। विशेष बात तो यह है कि इन शिकायतों के बावजूद पति और प्रेमी के प्रति विद्रोह स्त्री को उनसे दूर नहीं करता, बल्कि उनके और नजदीक लाता है। पत्नी से घृणा होने पर पति उससे दूर रहना चाहता है, पत्नी घृणा करती हुई भी पति के समीप ही रहना चाहती है। परेशानियों से मुक्त होने के बदले वह शहीद हो जाने में ज्यादा विश्वास करती है।

औरत इसलिए अर्थहीन आंसू बहाती है कि उसका निर्माण एक अर्थहीन विद्रोह के आधार पर हुआ है। शारीरिक बनावट में भी उसमें पुरुष की अपेक्षा कम स्नायविक नियंत्रण की शक्ति है और उसकी शिक्षा भी उसे तुरंत पिघल जाने को प्रेरित करती है । इस रोने-धोने पर शिक्षा-दीक्षा तथा रीति- रिवाज का प्रभाव तो विल्कुल स्पष्ट है। एक समय पुरुष भी आंसू बहाते थे। बेंजामिन कांस्टेंट और दिदेरो ने तो आंसुओं की बाढ़ ही वहा दी। जब पुरुषों के लिए रोना अशोभनीय माना जाने लगा तब उन्होंने रोना बंद कर दिया। पुरुप अपने दुर्भाग्य का बदला संसार से ले लेता है, जबकि स्त्री अपनी ओर मुड़ जाती है। लाल सृजी हुई आंखें यह कहना चाहती हैं कि स्थिति असह्य है। थरथराते होंठों पर सारी शिकायतें केंद्रीभूत हो जाती हैं, किंतु स्थितियां नहीं बदलतीं। वास्तव में यह प्रतिक्रियात्मक और नकारात्मक शक्तियों का तूफान है। आंसू जब स्त्री के विद्रोह को व्यक्त करने में असफल होते हैं तब वह असंगत हिंसा और उन्माद का सहारा लेती है। यह सच है कि पुरुष बहुधा प्रेयसी को मार बैठता है किंतु वह अपनी इस ताकत का प्रयोग एक प्रभावी अस्त्र के रूप में करता है जबकि स्त्री का विस्फोट एक शिशु की भांति प्रतीकात्मक होता है। वह पुरुष को नोच-खसोट सकती है, थप्पड़ मार सकती है किंतु यह सब कुछ एक सांसारिक कृत्यमात्र होता है । स्त्री को यह संक्रांति मात्र एक मूक अभिनय बनकर रह जाती है। स्थिति में इससे कोई बदलाव नहीं आता । स्त्री की जिस शक्ति को सृजनात्मक कार्यों में लगना चाहिए था, उसके दमित होने के कारण ही यह नकारात्मक स्थिति आती है। टालस्टाय की पत्नी की उन्मादग्रस्तता उनके ऊपरी चरित्र से स्पष्ट होती है। पता चलता है, वे अनुदार, असहिष्णु और क्रूर थीं। चाहे वे सही हों या गलत, किंतु उनकी स्थिति दयनीय थी। जीवन-भर वे कष्ट सहती रहीं और उन्होंने सारी यातनाएं प्रणय और मातृत्व के दायित्व निभाते हुए अकेले सहीं। टालस्टाय से उन्हें कोई सहयोग नहीं मिला। टाल्स्टाय के नए आदर्शों के आग्रहों से बड़े तनावों की स्थिति में वे पति की अटल इच्छा का अपनी शक्ति-हीन इच्छा द्वारा विरोध करती थीं। वे नाटकीय ढंग से अपनी अस्वीकृति व्यक्त करती थीं। वे

आत्महत्या की धमकी देती थीं। वे भाग जाने का ढोंग रचती थीं और झूठी बीमारियां भी बतलाती थीं। उनके ऐसे क्रिया-कलाप आसपास के लोगों को अप्रिय लगते थे। वे स्वयं थककर शिथिल पड़ जाती थीं। वस्तुत: उनके पास इनके अलावा दूसरा कोई साधन भी नहीं था। वे किसी भी रूप में अपने विद्रोह की भावनाओं को छिपा नहीं सकती थीं। उनके पास व्यक्त करने का कोई प्रभावपूर्ण साधन भी नहीं था।

विरोध करते-करते थक चुकी स्त्री के पास आत्महत्या ही एकमात्र साधन बचता है। सच्चाई यह है कि पुरुष स्त्रियों से अधिक संख्या में आत्महत्या करते हैं। स्त्रियां आत्महत्या का प्रयत्न-भर करती हैं, लेकिन पुरुष वास्तव में आत्महत्या कर लेता है। इसका कारण है कि स्त्री नाटक अधिक करती है । वह वास्तव में आत्महत्या चाहती नहीं। उसके गालों पर बहते आंसू उसकी शोक-संतप्त आत्मा के प्रतीक होते हैं। आंसू मानो उसके शरीर को शीतल लगते हैं। जीभ को वे नमकीन लगते ही नहीं, वे तो मानो चुम्बक होते हैं। आंसुओं की धारा से उसका मुख लाल हो उठता है। आंसू मानो उसे सांत्वना देते और विनम्र बनाते हैं। वे तृप्त भी करते हैं, शीतलता भी प्रदान करते हैं। आंसू मानो उसका सबसे उत्तम वहाना होते हैं, आंधी और बरसात की तरह वे अचानक ढलने लगते हैं। वे बड़े अनियमित रहते हैं। अप्रैल महीने की बरसात और तूफान की तरह बहते आंसू मानो स्त्री को विषाद का एक झरना और एक तूफानी आकाश बना देते हैं। आंसुओं के भर जाने से उसकी दृष्टि धूमिल पड़ जाती है। मानो वह दृष्टिहीन होकर प्राकृतिक वस्तुओं की निष्क्रियता और शांति की ओर बढ़ती है। कोई उसे विजयी देखना चाहता है, पर वह अपनी पराजय में ही लीन रहती है। वह पत्थर की तरह गिरकर डूबने लगती है। अपने बारे में चिंतित पुरुष से वह भागती है। पुरुष को उसका यह आचरण अनुचित लगता है, किंतु उसे तो शुरू से ही संघर्ष अनुचित लगता है क्योंकि स्त्री के हाथों में कोई भी प्रभावपूर्ण शस्त्र नहीं रहता। वह फिर निवेदन का सहारा लेती है। उसकी सिसकियों से पुरुष को क्रोध आता है, इसलिए वह और सुबकती है। यहां स्त्री-स्वभाव की द्व्यर्थकता दिखाई पड़ती है। स्त्री जिस वस्तु से घृणा करती है, वास्तव में उसे छोड़ना नहीं चाहती। जो पुरुष उसके दु:ख का कारण होता है उससे सम्बंध-विच्छेद का वह अभिनय करती है, पर अंत में उसी के साथ रहती है। वह अपने जीवन को विषाद का कारण समझती है, उसे नष्ट करना चाहती ही नहीं। वह जीवन, पुरुष और अपनी स्थिति का विरोध करती है, पर वह उनसे वास्तव में पृथक भी नहीं होती, भागती भी नहीं।

में प्रतीक्षा एक अर्थ में स्त्री का सम्पूर्ण जीवन प्रतीक्षा का है। वह तात्कालिक अंतर्वर्ती स्थिति में बंधी रहती है। उसका अस्तित्व हमेशा दूसरे के हाथों में रहता है। वह हमेशा पुरुष को स्वीकृति और श्रद्धा की प्रतीक्षा करती है। वह प्रेम की प्रतीक्षा करती है। वह अपने प्रेमी और पति द्वारा प्रशंसा और कृतज्ञता की प्रतीक्षा करती है। उसे अपने सहारे के लिए किसी

की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। यह सहारा उसे पुरुष प्रदान करता है। आर्थिक रूप से चूंकि स्त्री पुरुष पर आश्रित रहती है इसलिए पुरुष ही उसका सम्पूर्ण अस्तित्व बन जाता है। वह केवल प्रतीक्षा करती है जबकि पुरुष को दुनिया के दूसरे तमाम कार्य भी संभालने होते हैं। अत्यधिक प्रेम करने वाले प्रेमी को भी अपने दायित्वों की व्यस्तताओं के कारण प्रेमिका से मिलने और बिछुड़ने का समय निश्चित करना ही पड़ता है, जबकि स्त्री को यह अच्छा नहीं लगता। प्रेमी अभिसार-स्थल तय कर लेता है। स्त्री शायद ही कभी समय पर वहां पहुंचती है। वह पति द्वारा नियत समय पर तैयार नहीं होती। इस प्रकार वह अपना महत्त्व जताना चाहती है और अपनी स्वतंत्रता पर जोर देती है। ये सारे कार्य प्रतिरोध के कायरतापूर्ण साधन हैं क्योंकि अंत पुरुष को नहीं, स्त्री को ही करनी पड़ती है।

तमाम विरोधाभासपूर्ण संघर्षों के बावजूद पुरुष के शासन को मानने और उसकी महानता को स्वीकार करने के लिए स्त्री बाध्य है। अपनी स्वतंत्र मान्यताओं और विकल्पों के अभाव के कारण स्त्री पुरुष के सम्मुख समर्पण के लिए बाध्य है। वह पुरुष द्वारा स्थापित सत्यों और मान्यताओं को अस्वीकार कर सकती है, पर अपनी मान्यताओं और सत्यों के सहारे वह पुरुष की मान्यताओं का विरोध नहीं कर सकती। स्त्री पुरुष के नियमों के दोषों को अच्छी तरह जानती है और उनका भंडाफोड़ करने में उसे कोई संकोच भी नहीं होता।

पुरुष-जगत् में स्त्री प्रवेश नहीं कर सकती क्योंकि उसके अनुभव उसे ऐसे तर्क और ज्ञान नहीं सिखाते जिनके सहारे वह अग्रसर हो। साथ ही स्त्री-क्षेत्र की सीमा पर पुरुष के शस्त्र भी शक्तिहीन हो जाते हैं। मानव-अनुभव का एक ऐसा भी क्षेत्र है, जिसकी पुरुष अवहेलना करता है। इसके बारे में वह सोचता भी नहीं, पर स्त्री को इस अनुभव को प्राप्त करना ही पड़ता है। एक इंजीनियर' अपने नक्शे बनाते समय बहुत सतर्क रहता है पर घर में उसकी स्थिति एक छोटे देवता जैसी रहती है। उसके मुख से निकलते ही उसे भोजन दिया जाता है, उसकी कमीज पर 'आयरन' किया जाता है, उसकी संतान को चुप रखा जाता है। प्रजनन-क्रिया बड़ी आश्चर्यजनक है, पर पुरुष को इस 'चमत्कार' से आश्चर्य नहीं होता; नवजात शिशु पिता के लिए एक 'चमत्कार' है, पर मां के लिए जादू। उसने अपने गर्भाशय में उस शिशु के विकास का अनुभव किया है। पुरुष के अनुभव को समझा जा सकता है, पर बीच-बीच में इसमें रिक्तता आ जाती है, किंतु स्त्री के अनुभव सीमाबद्ध होते हुए भी रहस्यमय पर पूर्ण होते हैं। यह रहस्यमयता पुरुष की अपेक्षा स्त्री के पलड़े को भारी बना देती है। तमाम संहिताओं और सिद्धांतों के नियामक पुरुष अंततः अनुभव के इन क्षेत्रों में स्त्री के सामने हीन सिद्ध होते हैं। इसलिए पत्नी हल्के से सिर झटककर कह देती है, "पुरुष जिंदगी के बारे में क्या जानेंगे?"

उपरोक्त परिप्रेक्ष्य से स्पष्ट है कि स्त्री पुरुष के तर्कों को नहीं समझ सकती । तर्क उसके अनुभव के अनुकूल नहीं होते, बल्कि वह सोचती है कि पुरुषों के तर्क एक प्रकार से उस पर बल-प्रयोग के साधन हैं। वे उसको असमंजस में डालने वाले सिद्धांत हैं। या तो तुम इन पर स्वीकृति दो या एतराज करो। स्वीकृत नियमों की व्यवस्था के अनुकूल उसे अपनी स्वीकृति देनी पड़ती है। उन्हें अस्वीकार करना मानो पूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध जाना है। वह इतना आगे बढ़ने का साहस नहीं करती क्योंकि उसके पास ऐसे साधन नहीं होते जिनके द्वारा वह एक वैकल्पिक समाज का निर्माण कर सके। फिर भी वह कभी-कभी उन्हें स्वीकार नहीं करती। वह दासता और विद्रोह की परस्पर-विरोधी भावनाओं के बीच पिसती रहती है। अंत में अनिच्छा से ही वह पुरुष की सत्ता मान लेती है। हर वार पुरुष उसे अच्छी तरह समझा देता है कि अनिच्छा से समर्पण और स्वीकृति देने के क्या परिणाम होते हैं। पुरुष को कल्पना के अनुसार स्त्री अंशतः स्वतंत्र है और अंशतः गुलाम । पुरुष अपने तर्कों को स्वीकार करने के लिए स्त्री को बाध्य करता है। पुरुष स्वयं आधार-भित्ति का निर्माण भी करता है और स्वयं ही निष्कर्ष भी निकलता है। स्त्री जब तक पुरुष से प्रश्न नहीं करती तब तक उसे चुप रखने की चेष्टा होती है। पुरुष उसे विश्वास दिलाने का प्रयत्न नहीं करता क्योंकि स्त्री उसकी स्वेच्छाचारिता को समझ जाती है। पुरुष खीझकर उस पर जिद्दी और अविवेकी होने का अभियोग लगाता है। वह इस खेल में बढ़ना नहीं चाहती।

पुरुष के बनाए सत्यों पर स्त्री विश्वास नहीं करती। वह तो विश्वास करती है कि कोई निश्चित सत्य नहीं होता। जीवन के परिवर्तित रूप को देखकर ही वह 'एकात्मकता' पर संदेह नहीं करती और न उसके संदेह का कारण वे जादूमयी घटनाएं हैं जिनसे वह घिरी रहती है। पुरुष-जगत् का अवलोकन कर और यह समझते हुए कि वह उसी जगत् में निहित है-वह हर सिद्धांत, हर मान्यता और हर अस्तित्व को द्वयर्थक समझती है। वह जानती है कि पुरुष की नैतिकता एक पाखंड है। पुरुष चिल्ला-चिल्लाकर सम्मान और सद्गुणों की व्याख्या करता है, पर गुप्त रूप से वह स्त्री को उन मान्यताओं की अवज्ञा करने की प्रेरणा देता है। वह इस अवज्ञा को महत्त्व भी देता है। यदि वह ऐसा न करे तो उसका मुखौटा खिसक जाएगा।

पुरुष सहर्ष हिंगेल के उस सिद्धांत को स्वीकार कर लेता है, जिसके अनुसार नागरिक को नैतिक प्रतिष्ठा विश्व में सर्वोपरि उठने की चेष्टा करने पर ही मिलती है, पर एक साधारण व्यक्ति के रूप में हर व्यक्ति को 'इच्छा और आनंद' का अधिकार तो है ही। स्त्री के साथ पुरुष के सम्बंध मानो प्रासंगिक ही होते हैं। उस खास क्षेत्र में आचरण का विशेष महत्त्व नहीं होता। जब पुरुषों के सम्पर्क में आने पर पुरुष हर मान्यता को स्वीकार कर लेता है लेकिन स्त्री के सम्पर्क में मानो वह अपने उत्तरदायित्व भूल जाता है। वह निम्नस्तरीय आचरण पर उतर जाता है। वह क्रूर, परपीड़क, हिंसक, अल्हड़ और संशयी बन जाता है।

वह अपनी धुन और इच्छाओं को पूरा करना चाहता है। वह विश्राम की अवस्था में रहता है और शिथिल हो जाता है।

पुरुष के आदर्शों और व्यवहार का फर्क उसकी पत्नी को आश्चर्य में डाल देता है। वह जनसंख्या घटाने का उपदेश देता है, पर स्वयं उतनी संतानें उत्पन्न करना चाहता है जितनी उसकी सुविधा के अनुकूल हों। वह पवित्र व वफादार पत्नियों की प्रशंसा करता है, पर स्वयं पड़ोसी की पत्नी से व्यभिचार करता है। वह गर्भपात को अपराध समझता है, पर फ्रांस में ही प्रति वर्ष लाखों स्त्रियों को पुरुषों के कारण गर्भपात कराना पड़ता है। कभी-कभी तो प्रेमी और पति भी गर्भपात कराने की राय देते हैं। पुरुष ही समाज की नैतिकता बनाए रखने के लिए स्त्री को अनैतिक बनाता है। इस संदर्भ में पुरुष के आचरण और आदर्श की कृत्रिमता स्पष्ट हो जाती है।

वेश्याओं के प्रति पुरुष के रुख में उसका दोहरा आचरण अभिव्यक्त होता है। पुरुष की जरूरतों की तुष्टि के लिए ही वेश्यावृत्ति पनपती है। वेश्याएं भी जनता के सम्मुख पाप की निंदा करने वाले लेकिन अपने व्यक्तिगत जीवन में उनका उपयोग करने वाले पुरुषों को घृणा की दृष्टि से देखती हैं। पुरुष अपने शरीर का सौदा करने वाली स्त्री को अपराधी सिद्ध करता है, स्वयं को नहीं । एक उदाहरण से इस मानसिक स्थिति को व्यक्त किया जा सकता है। इसी शताब्दी में पुलिस ने दो लड़कियों को वेश्यालय में देखा। एक को उम्र बारह वर्ष और दूसरी की तेरह वर्ष थी। उनसे पूछताछ की गई। लड़कियों के बयान से ज्ञात हुआ कि वे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के चंगुल में फंसी थीं। जव उनमें एक अपने ग्राहक का नाम बताने लगी तो उसे रोक दिया गया। जज ने कहा कि किसी सम्माननीय व्यक्ति को कलंकित करना उचित नहीं। किसी बालिका का कौमार्य भंग करके भी एक व्यक्ति सम्माननीय रह सकता है। ऐसा पुरुष तो साधारण मानवीय कमजोरियों का शिकार माना जाता है। ऐसी कमजोरी तो प्राय: सभी व्यक्तियों में होती है पर एक बालिका, जो मजिस्ट्रेट, जनरल या प्रतिष्ठावान पुरुष नहीं है, को नैतिकता को कभी भी नष्ट किया जा सकता है। उसे विकृत व्यभिचारिणी और घृणित विशेषणों से पुकारा जाता है। उसे मानसिक इलाज की आवश्यकता बताई जाती है।

अनेक घटनाओं में देखा गया है कि पुरुष अपने आदर्श रूप को ज्यों का त्यों बनाए रखता है, पर स्त्री से कुछ ऐसे कार्य करा लेता है जो उसके लिए अनुचित होते हैं। वह पुरुष को धूर्तता सही ढंग से नहीं समझ सकती। वह केवल इतना ही समझती है कि वह पुरुष अपने सिद्धांतों के विरुद्ध आचरण कर रहा है और अपने सिद्धांतों की स्त्री द्वारा अवज्ञा करा रहा है। वह वैसी इच्छा नहीं रखता जिसका वह प्रचार करता है। इसलिए वह पुरुष के साथ हार्दिकतापूर्ण व्यवहार नहीं करती, दिखावा- भर करती है। उसे एक पवित्र और वफादार पत्नी के रूप में रहना पड़ता है। वह चुपचाप पुरुष की इच्छाओं के सम्मुख

समर्पण कर देती है। वह एक प्रशंसनीय माता का रूप बन जाती है, किंतु वही स्त्री बड़ी सावधानी से गर्भनिरोध के साधनों का प्रयोग करती है। आवश्यक होने पर वह गर्भपात भी करा लेती है। यद्यपि पुरुष इस कार्य का मुक्त समर्थन नहीं करता, पर वह उसकी गर्भधारण न करने के निर्णय की मानो सराहना करता है।

स्त्री की स्थिति पराजित होने पर गोली के घाट उतार दिए जाने और विजयी होने पर पुरस्कारों से अलंकृत किए जाने वाले गुप्त एजेंटों की होती है। पुरुष को अनैतिकता भी स्त्री को ही संभालनी पड़ती है। यह स्थिति केवल वेश्याओं को ही नहीं, बल्कि पुरुष के चंगुल में पड़ने वाली तमाम स्त्रियों की होती है। ऐसी स्त्रियां मर्यादा, प्रतिष्ठा, वफादारी और उच्च नैतिक गुणों के बारे में बकने वालों की बातें सुनना पसंद नहीं करती। नैतिकता के दावेदार पुरुष के अन्यमनस्क रहने, मिथ्या भाषण करने अथवा काम-सम्बंध को खिलवाड़ का रूप देने के लिए कहे जाने पर स्त्रियां घृणा से हंस पड़ती हैं। वे अच्छी तरह जानती हैं कि पुरुष के पास केवल यही एक रास्ता है। धन और सफलता-सम्बंधी मामलों में पुरुष कभी भी अन्यमनस्क नहीं रहता, लेकिन स्त्री की भूमिका तो पराश्रयी प्राणी को होतो है। हर पराश्रित प्राणी शोषण करता है। मर्यादा-प्राप्ति, जीवन-धारण, सुख-प्राप्ति और जीव को जन्म देने के लिए स्त्री को पुरुष की आवश्यकता पड़ती है। पुरुष को कामुकता को तृप्त करके वह ये सुविधाएं प्राप्त करती है। उसका कार्य इसी क्षेत्र तक सीमित है। वह शोषण का एक यंत्र बन जातो है।

स्त्री को झूठ बोलना पड़ता है क्योंकि वेश्याओं के अतिरिक्त अन्य सभी स्त्रियां एक ही स्थिति में रहती हैं। उनके और उनके रक्षक के बीच मुक्त और स्वतंत्र आचरण का कोई स्थान नहीं होता। पुरुष चाहता है कि स्त्री खिलवाड़ करे और 'अपर' बनी रहे, पर हर अस्तित्व 'नकारा' नहीं जा सकता । पुरुष चाहता है कि वह अपर' बनी रहे, अत: वह 'अपर' बन जाती है। जिस क्षण वह ऐसा करती है, उसी समय से मानो वह मुक्त रूप से भी कार्य करने लगती है। यहीं पर उसके छलपूर्ण व्यवहार का प्रारम्भ होता है। अत्यंत विनम्र और अत्यंत शांत स्त्री भी एक चेतनाशील प्राणी होती है। कभी-कभी पुरुष के प्रति समर्पण करते समय वह पुरुप की ओर देखती हैं। उसके विषय में निर्णय करती है। उसकी इस क्रिया से ही पुरुष को ऐसा लगता है कि उसे मूर्ख बना दिया गया है। स्त्री की स्थिति किसी दे दी गई वस्तु और 'शिकार' की हो जाती है। पुरुष अनुभव करता है कि स्त्री ने उसे स्वेच्छया समर्पण किया है। शय्या पर पुरुष उससे आनंद अनुभव करने का अनुरोध करता है। घर में वह अपने गुणों और श्रेष्ठता को स्वीकार कराना चाहता है। स्त्री आज्ञा-पालन के समय सिर्फ स्वतंत्र रहने का दिखावा करती है। अन्य अवसरों पर वह शांत रहने का तमाशा दिखाती है। जीविका प्रदान करने वाले पुरुष को वश में रखने के लिए वह झूठ की शरण लेती है। जीवन में उसे अनेक अवसरों पर आंसू टपकाने पड़ते हैं। उसे तरह-तरह के दृश्य

उपस्थित करने पड़ते हैं। उसे प्रेम का प्रदर्शन, मानसिक तनाव और शिथिलता प्रदर्शित करनी पड़ती है, किंतु ये सभी आडम्बरमात्र होते हैं। जिस निरंकुशता के अत्याचार को वह स्वार्थ के वशीभूत होकर स्वीकार करती है, उससे छुटकारा पाने के लिए भी वह झूठ बोलती है। अपनी प्रभुता एवं दम्भ के भावों की सृष्टि के लिए पुरुष उसे छलपूर्ण व्यवहार के लिए प्रोत्साहित करता है। स्त्री भी उसके साथ अपनी छलपूर्ण शक्ति का प्रयोग करती है। इस प्रकार वह प्रतिशोध लेती है। पुरुष को छलकर वह अपनी इच्छाओं को तुष्ट करती है। पुरुष के साथ अपने घृणात्मक व्यवहार का अनुभव करके वह आनंदित हो उठती है। पत्नी और वेश्या, दोनों ही झूठ बोलती हैं जबकि वे ऊपरी रूप से प्रेम-प्रदर्शन करती हैं। वास्तव में उन्हें वह अनुभूति नहीं होती जिसका वे प्रदर्शन करती हैं। बाद में वे अपने प्रेमी और अन्य सम्बंधियों के सम्मुख पुरुष के मिथ्या दम्भ का उपहास करती हैं। वे विषादपूर्ण शब्दों में कहती हैं, "पुरुष केवल धपलेबाजी ही नहीं करते, बल्कि यह भी चाहते हैं कि हम लोग भी उनकी तरह आनंद का प्रदर्शन करें।"

इस प्रकार की बातचीत नौकर-चाकरों के बीच होती है। स्त्री भी इस प्रकार के दोष से नहीं होती, क्योंकि वह पति के शासन में भी उत्पीड़न का अनुभव करती रही है। उसके व्यवहार में भी वही कपट रहता है क्योंकि उसने पुरुष का अनुचर के स्वामी की तरह नख-शिख देखा है। यह स्पष्ट है कि स्त्री के चरित्र की कोई भी विशेषता ऐसी नहीं है जो उसके मौलिक विकृत रूप और इच्छा की सूचक हो। वे तो एक परिस्थिति को व्यक्त करती हैं। टूरियर के कथनानुसार, "एक हिंसात्मक राज्य में रहने के कारण ही स्त्री को हर समय कपटपूर्ण व्यवहार करना पड़ता है।" जिस प्रकार व्यापार में निषेध और वर्जना अभिन्न होते हैं, उसी प्रकार प्रेम में भी वे अभिन्न होते हैं। । पुरुष अच्छी तरह जानता है कि स्त्री जिन दोपों की शिकार है, वे परिस्थितिजन्य हैं। यौन-सम्बंधी मामलों में पुरुष स्त्री की उन्हीं विशेषताओं को प्रोत्साहित करता है जिनके कारण वह घृणित हो जाती है। निस्संदेह पति और प्रेमी जिस स्त्री के सम्पर्क में आते हैं, उसके अवगुणों से खीझ उठते हैं। स्त्रीत्व के आकर्षण की प्रशंसा करते समय भी वे इस सत्य को भली-भांति समझ जाते हैं कि उसके दोषों को उसके आकर्षण से पृथक नहीं किया जा सकता। यदि स्त्री मिथ्यावादिनी, कायर और आलसो न हो, तो वह कभी भी पुरुष को मोहित नहीं कर सकेगी।

इव्सन के नाटक 'गुड़ियाघर' (A Doll's House) में हेल्मर (Helmer) ने कहा, किसी अबला स्त्री के लड़कपन के दोषों को क्षमा करते समय पुरुष अपने को बड़ा शक्तिवान, न्यायी और समझदार अनुभव करता है। इसी प्रकार बर्नस्टीन (Burnstin) के नाटकों में भी दिखाया गया है कि पति किस

मुक्त प्रकार अपनी दुराचारिणी, चोरी करने वाली और बुरी पत्नी को क्षमा कर देता है। पत्नी की क्षमायाचना' से पुरुष स्वयं द्रवित हो जाता है और उसके नेत्र सजल हो जाते हैं।

इस प्रकार पुरुष अपनी शक्ति और अच्छाई का भी परिचय देते हैं। अमेरिकन नस्लवादी और फ्रांसीसी उपनिवेशवादी भी यही चाहते थे कि उनके काले गुलाम चोर, आलसी और मिथ्यावादी हों। शासितों को इस स्थिति से अत्याचारी शासकों को विशेष सुविधा होती है। स्त्री के दोषों को और बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया जाता है, जिससे कि वह पुरुषों से संघर्ष न करे, बल्कि अपने दुर्गुणों को ही अपना आभूषण माने ।

स्त्री विवेकशील सिद्धांतों को नहीं मानती और न नैतिक आदेशों को स्वीकार करती है। वह प्राकृतिक नियमों के बारे में द्विधाग्रस्त रहती है। दरअसल वह सर्वोपरिता का महत्त्व समझ नहीं पाती। उसे जगत् विशेष स्थितियों का एक अव्यवस्थित समूह लगता है। इसीलिए स्त्री वैज्ञानिक विवेचना की अपेक्षा आसपास के लोगों की बातों पर विशेष ध्यान देती है। वह पुस्तकों को सम्मान अवश्य देती है पर शब्दों का अर्थ समझे बिना पृष्ठ पलटती रहती है। इसलिए अनायास की किसी अजनबी की बातों को सुनकर वह उसे विशेष महत्त्व देने लगती है। उसके क्षेत्र के भीतर सभी कुछ जादुई होता है और इससे परे सब कुछ रहस्यमय । सत्य की वस्तुगत स्थिति से स्त्री अपरिचित रहती है। वह अपने और दूसरों के अनुभवों को उचित रूप से व्यक्त किए जाने पर ही स्वीकार करती है। अपने बारे में वह सोचती है कि उसकी एक विशेष स्थिति है क्योंकि अपने घर में वह पृथक रूप में रहती है। वह अन्य स्त्रियों में नहीं आती। उसे हमेशा ही यह आशा रहती है कि पुरुष और भाग्य अवश्य ही उसके पक्ष में कुछ विशेष सुविधा देंगे। मान्यता प्राप्त तर्कों की अपेक्षा स्त्री अपने ही अंतर्ज्ञान को महत्त्व देती है। वह अपने हृदय में उठी भावनाओं को दैवी-प्रेरणा या आत्मा के लोक का संकेत मानती है। किसी दुर्घटना और दुर्भाग्य को देखकर वह सोचती है कि उसके साथ ऐसा नहीं होगा। किसी लाभ और सुयोग को देखकर वह सोचती है कि उसे भी ऐसा सुयोग अवश्य मिलेगा। वह हमेशा विशेष सुविधाओं की आशा करती है। दुकानदार उसे विशेष छूट देगा, बिना 'पास' के पुलिसमैन उसे निकल जाने देगा क्योंकि उसे ऐसा ही सिखाया गया है कि उसकी मुस्कान की बहुत कीमत है। उससे यह नहीं कहा गया है कि सभी स्त्रियां मुस्कुराती हैं। वह अन्य स्त्रियों से कभी भी अपनी तुलना नहीं करती। उसका अनुभव उसे यह नहीं बतलाता कि वह कितनी गलत है। एक के बाद दूसरों असफलता मिलने पर भी वह किसी सही निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री क्यों विश्व के प्रतिरूप का सृजन नहीं कर पाती और पुरुष-वर्ग को क्यों चुनौती नहीं दे पाती । वस्तुतः पुरुष के प्रति यदा-कदा आक्रोश प्रकट करने के बावजूद उसका रुख द्व्यर्थक और विरोधाभासी बना रहता है। वह पुरुष को एक बच्चे की तरह मासूम भी मानती है, शोषक और अत्याचारी भी, अहंवादी भी और मुक्तिवादी भी। पुरुष की काम- इच्छा एक भूख है, किंतु यही एक उत्तेजनापूर्ण दैवी-शक्ति भी है। स्त्री पुरुष की प्रशंसा करती हुई जब कहती है कि वह एक मर्द है, तव उसका

अभिप्राय पुरुष की काम-शक्ति और सामाजिक श्रेष्ठता की सराहना होता है। पुरुष चाहे एक महान् कलाकार हो या सफल व्यापारी, एक नेता हो या जनरल, पर स्त्री हमेशा उसके व्यक्तित्व में प्रेम करने की क्षमता ही देखती है। अतः पुरुष की सामाजिक सफलताओं में भी स्त्री को एक मौन आकर्षण दिखाई देता है।

यहां हमें फिर पुरुष-सम्बंधी दंत-कथाएं दिखाई देती हैं। डी. एच. लॉरेंस ने ही नहीं, बल्कि अन्य व्यक्तियों ने भी पुरुष-लिंग में मानव-श्रेष्ठता एवं जीवनी-शक्ति देखी है। रहस्यात्मक रूप में पुरुष की पूजा करती हुई स्त्री खुद को खो बैठती है। वह इसी पूजा में अपने को पाती भी है। यह विरोधाभास बहुत सहजता से विभिन्न रूपों में पुरुषों की काम-शक्ति में व्यक्त होता है। एक स्त्री की आंखों में एक ही पुरुष कंजूस, ओछा और दम्भी होते हुए भी देवत्व प्राप्त कर सकता है क्योंकि देवताओं की भी अपनी कमजोरियां होती हैं। स्त्री पुरुष के व्यक्तित्व की व्यावहारिक वास्तविकताओं और भिन्नताओं को नहीं समझती। स्त्री के समर्पण में जुड़े हुए हाथ किसी एक पुरुष को नहीं, बल्कि सारतः सम्पूर्ण पौरुष के प्रति जुड़े होते हैं। स्त्री की नजरों में पुरुषत्व एक पवित्र आभा है, एक उच्च मूल्य जिसका एक पुरुष अपने तमाम ओछेपन के वावजूद प्रतिनिधित्व कर सकता है। स्त्री पुरुष की विशिष्ट स्थिति के प्रति ईर्ष्यालु होने के बावजूद उसमें एक द्वेषपूर्ण श्रेष्ठता आरोपित करने में अजीब आनंद पाती है।

स्वयं और जगत् के प्रति द्वयर्थक दृष्टिकोण रखने के कारण स्त्री पुरुष के प्रति भी ऐसा ही रुख अपनाती है। वह जानती है कि यह दुनिया पुरुषों की है किंतु कुछ रहस्यमय शक्तियों से समझौता कर लेने के बाद स्त्री पुरुषों पर भी विजय पा सकती है। इसीलिए वह पार्थिव जीवन को शाश्वत आत्मा की अपेक्षा अधिक महत्त्व देती है। वह क्रांति की अपेक्षा बच्चे के जन्म को बड़ा सत्य मानती है। वह बार-बार पृथ्वी पर मातृत्व की पुनर्स्थापना का प्रयास करती है। चूंकि वह स्वयं एक अस्तित्व है और अपने में सर्वोपरिता की ओर अतिक्रमण की सम्भावना रखती है इसलिए वह उन मूल्यों को शाश्वतता प्रदान करना चाहती है जिनकी वैचारिक अवधारणा पुरुषों के पास नहीं होती। स्त्री उस जादुई शक्ति की उपासक होती है जो विचार और चिंतन की अवहेलना करते हैं। अपने अस्तित्व की सम्भावनाओं को समझने की अपेक्षा स्त्री कल्पना-लोक में विचरण करती है तथा तर्क की अपेक्षा सपने देखना अधिक पसंद करती है। अत: अपनी अस्तित्वगत मांसलता के बावजूद वह कृत्रिमता का एक आवरण ओढ़ लेती है। इस तरह स्त्री अपनी सारी सांसारिकता के बावजूद वायवीय हो जाती है। उसकी जिंदगी बीत जाती है बर्तन धोते-धोते । वह यह जानती है कि पुरुष के सपनों की देवी होने के बावजूद वह अपनी दयनीयता और निरीहता-भरी जिंदगी के लिए अभिशप्त है।

शरीर के सम्बंध में भी स्त्री के विचार ऐसे ही द्वयर्थक रहते हैं। शरीर को वह एक बोझ मानती है। मासिक-धर्म तथा प्रजनन-क्रिया को शांतिपूर्वक स्वीकार करते हुए भी उसकी दृष्टि में शरीर जगत् को अधीनस्थ करने का समर्थ साधन नहीं होता। अत: उसके लिए शरीर आनंद का स्रोत न रहकर एक असीम यंत्रणा का ऐसा माध्यम बन जाता है, जिससे नित्य नए संकट पैदा होते रहते हैं। स्त्री उन्मादित इसलिए होती है कि उसके शरीर के अंत:स्रावों का स्नायविक व्यवस्था से घनिष्ठ सम्बंध होता है। अभिव्यक्त होने वाली शारीरिक प्रतिक्रियाएं, जैसे सिसकने, शरीर कांपने और मितली आने के लिए स्त्री स्वयं को उत्तरदायी नहीं समझती। ये प्रतिक्रियाएं तो मानो उसके साथ विश्वासघात करती हैं। वह लज्जित होकर इन्हें छिपाना चाहती है, लेकिन अंततः उसका शरीर तो मानो उसका गौरवपूर्ण दोहरा रूप होता है। दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब से वह स्वयं विस्मित हो जाती है। शरीर ही मानो सुख की प्रतिज्ञा करता है। उसका शरीर एक ऐसी कलाकृति और सजीव प्रतिमा लगता है, जिसे वह संवारती रहती है। वह अपने शरीर का प्रदर्शन करती है। स्त्री अपने सौंदर्य को दर्पण में देखकर मुस्कुराती हुई अपने शारीरिक अस्तित्व को भूल-सी जाती है। उसका यह रूप प्रेमालिंगन और मातृत्व के द्वारा नष्ट हो जाता है। अपने बारे में सोचते समय वह यह सोचकर आश्चर्यचकित हो जाती है कि उसके दो रूप किंतने भिन्न हैं- एक नायिका का और दूसरा केवल मांसल यथार्थ।

प्रकृति ने भी स्त्री को दो मुखड़े दिए हैं। उसका रसोईघर के प्रति उत्तरदायित्व होता है, साथ ही होते हैं उसके रहस्यमय उद्गार। गृहिणी और माता की भूमिका में वह खेतों और जंगलों में स्वतंत्र रूप से विचरण का अपना स्वभाव त्याग देती है। वह शांतिपूर्वक अपनी रसोई के बगीचे में खेती करना चाहती है। वह फूलों को संवारकर गुलदस्ते में रखती है। वह चांदनी रात और सूर्य में जगत् का अलंकार देखती है। वह सृष्टि की महानता और रहस्यमयता पर मुग्ध होती है। वस्तुतः जीवन मात्र विश्वव्यापी नहीं होता। वह केवल पुनरावृत्ति भी नहीं होता। जीवन की जाज्वल्यमानता पुरुष से पूर्ण वाटिका के रूप के सौंदर्य से प्रकट होती है। चूंकि प्रकृति ने स्त्री को उर्वर गर्भाशय प्रदान किया है, अतः वह इसकी जीवनदायिनी आत्मारूपी वायु से प्रभावित होती है। जिस सीमा तक वह अतृप्त और एक बालिका की तरह असीमित तथा अपूर्ण रहती है, उसी सीमा तक उसकी आत्मा भी निरंतर प्रशस्त और असीम क्षितिज की ओर बढ़ती राहों में भटकती रहती है। गृहस्वामी और संतानों के मध्य जकड़ी रहने के बावजूद उसे एकाकी दिव्यानंद की भी अनुभूति होती है। लगता है, जैसे- पहाड़ी प्रदेश की वह एकछत्र शासिका होती है। इस स्थिति में वह माता, पत्नी, गृहिणी नहीं बल्कि एक देहधारी मानव होती है। शांत जगत् के बारे में चिंतन करते समय उसे स्मरण हो आता है कि वह भी एक चेतन प्राणी और एक स्वतंत्र व्यक्ति है। उसके लिए जल के रहस्यों और पर्वतों की ऊंचाई के बीच पुरुष की श्रेष्ठता नष्ट हो जाती है। तट पर चलती हुई, में हाथ भिगोती और डुबोती हुई वह अपने लिए जीती है, औरों के लिए

नहीं। वह हर प्रकार की दासता के बीच अपनी स्वतंत्रता से हार्दिक प्रेम करेगी। जो स्त्रियां इस तरह की न होंगी, वे उस पवित्र आनंद का साधनमात्र रह जाएंगी। उन्हें गोधूलि-बेला में भी ठंड लग जाने का भय होगा।

इस प्रकार यथार्थ जगत् और 'काव्य जगत्' के प्रति स्त्री की वफादारी तत्त्वमीमांसा-शास्त्र का विवरण देती है। इस बुद्धिवाद का स्त्री बहुत सीमा तक आदर करती है। वह जीवन और सर्वोपरि के बीच सामंजस्य स्थापित करना चाहती है। यूं कहा जा सकता है कि स्त्री कोरे तर्कशास्त्र और उससे सम्बंधित सिद्धांतों को मान्यता नहीं देती।

स्त्री एक जीवधारी होने के नाते अपने को समन्वयों के बीच पाती है। समन्वय के ये भाव एक जड़ीभूत पूर्णता के द्योतक होते हैं। पुरुष तूफान की तरह उठती स्वतंत्रता को प्राप्त कर आनंद का अनुभव करता है, जबकि स्त्री मुस्कुराते हुए बाहुल्य से ही परिचित रहती है। यह सहज ही बोधगम्य है कि स्त्री शांति-प्रिय वातावरण अधिक पसंद करती है क्योंकि उसे अधिकांश समय विषाद, अवहेलना और थकान में विताना पड़ता है। यदि वह ठंडी शाम और अच्छा तीसरा प्रहर व्यतीत करना चाहे तो उसे किसी प्रकार से दोषी नहीं समझना चाहिए, किंतु संसार की आत्मा की खोज इस प्रसंग में भ्रम होगी। जगत् में इतना अधिक समन्वय नहीं मिलता और न कोई व्यक्ति जगत् के अस्तित्व के लिए अपरिहार्य होता है।

चूंकि स्त्री स्वयं अपने अस्तित्व का औचित्य प्रमाणित कर पाने में असमर्थ है इसलिए समाज स्त्री को क्षतिपूर्ति के लिए धर्म का झुनझुना थमा देता है, सामान्य लोगों को जैसे करताल पकड़ा दी जाती है। लगातार अपनी अंतर्वर्तिता में ही रहने को विवश किए जाने वाले वर्ग की तरह स्त्री को भी सर्वोपरिता के भ्रम में बनाए रखने की जरूरत होती है। पुरुष को अपने देवता का आविष्कार करने की सुविधा प्राप्त है, जिसके नाम पर वह संहिताएं रचे और दूसरों के ऊपर, चाहे वह स्त्री हो या गुलाम या काली नस्ल-अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित कर सके, जिससे विद्रोह करने वाला हमेशा ईश्वर से डरता रहे । कम-से-कम धर्म के मामले में स्त्री ने पुरुष को कभी धोखा नहीं दिया। वह ईश्वर- निर्मित उस पुरुष-जगत् के प्रति अगाध विश्वास में जीती है और ईश्वर के पास वैसे ही अपना अधिकार मांगती है जैसे कोई अपना अधिकार एक कैबिनेट मिनिस्टर से मांगता है। अपनी आंतरिक रिक्तता की पूर्ति की आशा में स्त्री बांहें उठाकर धर्म की अवधारणा को अंगीकृत करती हैं।

स्त्री को स्वतंत्रता की ओर प्रेरित करती आधुनिक सभ्यता में धर्म वस्तुत: धोखे का एक साधन है। ईश्वर को धन्यवाद कि कम-से-कम स्त्री से अपनी हीनता स्वीकार करने के लिए खुलकर नहीं कहा जाता, वह भी महान् पुरुष के समान मानी जाती है। चूंकि आज अन्याय का रूप चालाकी से दबा दिया गया है और स्त्री की सर्वोपरिता की आकांक्षा को ईश्वर की ओर मोड़ दिया गया है तथा आत्माओं की महत्ता की माप केवल स्वर्ग में होती है, इसलिए पृथ्वी पर उनकी मांग अपेक्षित नहीं। स्त्री को यह विश्वास दिलाया जाता है कि वह स्वर्ग के

दूतों की बहन है और उसका उद्धार परमपिता अवश्य करेंगे। यह विश्वास सहज ही उसकी हीन भावनाओं का दमन कर देता है। वह न तो स्त्री रह जाती है, न पुरुष। वह रह जाती है ईश्वर से अपने परित्राण की आकांक्षा करती हुई मात्र एक आत्मा। इसीलिए साध्वियों में हम पुरुषों की तरह दृढ़ता पाते हैं, किंतु यहां भी चाहे वे जिस किसी ऊंचाई तक पहुंची हों, पुरुष के हाथों ही जोन ऑफ आर्क तक को राख बना दिया गया! इस तरह यहां भी ईश्वर का पुरुष होना ही अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है।

पुरुष के अनाचार से घबराई हुई स्त्री ईश्वर की ही शरण में जाती है। धर्म की नजर में पुरुप का दम्भ फिर भी पाप माना जाता है। ईश्वर की सृष्टि को पुनर्रचित करने की आवश्यकता ही क्या? इस तरह स्त्री की निष्क्रियता को दैवी समर्थन दे दिया जाता है। धूप जलाती और माला फेरती स्त्री अच्छी तरह समझती है कि सत्ता के राजनीतिज्ञ चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं। पति, पुरोहितों और पादरियों की अपेक्षा वह स्वयं को परमपिता के अधिक समीप महसूस करती है। अपने उद्धार के लिए उसे और कुछ करने की आवश्यकता नहीं। उसके लिए आज्ञा-पालन करते हुए जीवन बिता देना ही काफी है। इस तरह आत्मा और जीवन का सामंजस्य स्त्री के लिए स्थापित हो जाता है। मां केवल एक शरीर को ही जन्म नहीं देती, बल्कि वह ईश्वर के लिए एक आत्मा की भी सृष्टि करती है। उसका यह काम अणु के रहस्यों को जानने से अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। पुरुष की अवज्ञा करती हुई स्त्री स्त्रीत्व को गौरवान्वित मानती है क्योंकि स्वयं ईश्वर उसके दोपों को देखकर भी अनदेखा कर देता है।

स्पष्ट हुआ कि ईश्वर ही स्त्री को प्रतिष्ठा का स्थान देता है। प्रत्येक स्त्री को ईश्वर द्वारा विशेष संरक्षण प्राप्त होता है। एक प्राणी होने के नाते स्त्री का विशेष प्रभाव नहीं होता, किंतु जब वह ईश्वर से प्रेरित होकर कार्य करती है, तब उसकी इच्छाएं पवित्र हो जाती हैं।

स्त्री संतान का पोषण करती हुई या किसी कॉन्वेंट में शासन करती हुई या किसी दातव्य संस्था का गठन करती हुई किसी दैवी-शक्ति के हाथ में केवल एक यंत्रमात्र रहती है। ऐसी अवस्था में ईश्वर को नाखुश किए बिना उसकी अवज्ञा नहीं हो सकती। पुरुष ईश्वर के इस सहारे की अवहेलना नहीं करते, किंतु जब वे अन्य पुरुषों के सम्पर्क में रहते हैं, उस समय इस समर्थन को विशेष महत्त्व नहीं देते क्योंकि अन्य पुरुष भी ऐसे समर्थन का दावा कर सकते हैं। यह मतांतर इस रूप में निर्मित होता है कि स्वयं मनुष्य ही इसे दूर कर लेता है। स्त्री अपने अधीनस्थ व्यक्ति पर अपनी सत्ता सिद्ध करने के लिए दैवी-इच्छा का समर्थन चाहती है और अपनी दृष्टि में भी उसे न्याय-संगत मानती है। इस सहयोग को वह उचित और लाभकारी मानती है। इस तरह वह आत्मकेंद्रित रहती है। वह यह चिंता नहीं करती कि इन सम्बंधों का औरों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। आंतरिक तर्कों के मध्य उसकी चुप्पी में मानो कानूनी शक्ति निहित होती है।

अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए स्त्री मानो धर्म को एक बहाना बना लेती है। स्त्री चाहे निरुत्साही हो या कामुकता की शिकार, देह का बहिष्कार करना वह अपना पवित्र कर्त्तव्य मानती है। वह स्वयं मानो शहीद होना चाहती है। इस उद्देश्य के लिए वह अपनी सभी इच्छाओं का दमन करती है। वह अपने को नष्ट करते ऊंचे उठना चाहती है।

स्त्री चाहे वैरागी हो या संसारी, चाहे अभिमानी हो या विनम्र, वह सोचती है कि उसे अपने मोक्ष के लिए अपने में ही लीन रहना चाहिए। जिस प्रकार गर्भवती स्त्री गर्भ में स्थित संतान का आभास पाती है, उसी प्रकार हर स्त्री अपने हृदय की धड़कनों को भी सुनती है। वह हृदय के उल्लास को समझती है और अपने हृदय में परमात्मा के निवास का अनुभव करती है। बड़ी सतर्कता से वह अपने कार्यों का निरीक्षण और विश्लेषण करती है। वह धर्मगुरु और पादरियों के सम्मुख अपने कार्यों का सच्चा ब्यौरा प्रस्तुत कर देती है। प्राचीन काल में तो वह आम जनता के सम्मुख अपने दोषों को स्वीकार करके सुख का अनुभव करती थी। ऐसा कहा जाता है कि कोर्टोना की मार्गरेट ने अभिमान किया था। अंततः अपने इस पाप की क्षमा-याचना के लिए वह वरामदे में खड़ी होकर इस प्रकार चीखने लगी मानो प्रसव-पीड़ा से पीड़ित हो। वह कहने लगी, "कोर्टोना के लोगो ! तुम लोग मोमबत्ती और लालटेन लेकर आ जाओ और पापिन के पाप की गाथा सुनो।" उसने अपने पाप-कार्यों का वर्णन किया और सितारों को अपने दुःख का साझी बनाया। इस प्रकार की विनम्रता द्वारा स्त्री अपनी प्रदर्शन की आवश्यकता पूरी करती है। ऐसे प्रदर्शन की रुचि आत्ममुग्धा स्त्री में पाई जाती है। स्त्री के आत्म- प्रेम को धर्म मान्यता प्रदान करता है। इसका प्रदर्शन पिता, प्रेमी और अलौकिक संरक्षक के सम्मुख होता है। वह अतीत को बड़े चाव से याद करती है। यह आत्म-प्रेम उसके दिवास्वप्नों को पालता है। यह उसके खालीपन को दूर करता है। यह सामाजिक व्यवस्था के भी अनुकूल होता है। यह स्त्री के आत्म-त्याग को भी न्याय-संगत सिद्ध करता है और यौन-इच्छाओं से मुक्त स्वर्ग में अच्छे भविष्य की आशा प्रदान करता है। इसीलिए आज भी चर्च की सत्ता में स्त्री सर्वोत्तम साधन मानी जाती है। इसीलिए जिन साधनों से स्त्री को मोक्ष प्राप्त हो सकता है, उन सबका चर्च विरोध करता है। स्त्री के लिए धर्म अवश्य होना चाहिए और धर्म को कायम रखने के लिए सच्ची स्त्री भी होनी चाहिए।

यह स्पष्ट है कि स्त्री के स्वभाव, विश्वास, मान्यताएं, बुद्धि, नैतिकता, रुचि और व्यवहार का विवेचन उसकी स्थिति द्वारा होता है। चूंकि वह जानती है कि वह सर्वोपरि स्थान नहीं प्राप्त कर सकती, इसलिए वह वीरता, विद्रोह, सृजन और कल्पना के ऊंचे आदर्शों से अलग रहती है। पुरुषों में भी ये आदर्श साधारणत: नहीं पाए जाते । स्त्रियों की तरह कई पुरुष भी ऐसे होते हैं जो अनावश्यक साधनों में ही जुटे रहते हैं। उनकी स्थिति मध्यस्थ की-सी होती है। मजदूर वर्ग इनसे मुक्त होने के लिए विद्रोह की इच्छा करता है, पर मध्यमवर्ग इसी क्षेत्र में पड़ा रहना चाहता है। कुछ श्रेणियों के पुरुषों का भाग्य भी स्त्री के भाग्य की ही

तरह होता है। उन्हें रोज एक ही काम दोहराना पड़ता है। उन्हें जीवन में बहुत कम सुविधाएं प्राप्त होती हैं। इस श्रेणी में मजदूर, सौदागर और ऑफिस में खटने वाले आते हैं। अन्य पुरुषों के आदेशों के अनुसार काम करने वाले पुरुषों से वे स्त्रियां बेहतर हैं जो रसोई बनाती हैं, क्योंकि उनके कार्य में स्वतंत्रता प्राप्त करने की क्षमता है। सारा दिन पुरुष को अपने लिबास में रहना पड़ता है। उसे अपने से उच्च अधिकारियों की आज्ञा माननी पड़ती है और अपनी सामाजिक स्थिति बनाए रखनी पड़ती है, किंतु स्त्री घर में किसी भी पोशाक में घूम सकती है। अपने पड़ोसियों के साथ वह हंस-गा सकती है। वह अपनी इच्छा के कार्य करती है। उसके इन कार्यों में संकट को सम्भावना नहीं रहती। वह अपने कामों द्वारा निश्चित परिणाम प्राप्त करने की चेष्टा करती है। वह ऐसे वातावरण में रहती है, जहां उसे पुरुप की तरह दिखावा नहीं करना पड़ता।

ऑफिस का जगत्, जिसे काफ्का ने औपचारिकता का विश्व कहा है, जहां बेढब इंगितों पर कार्य होता है, जहां व्यवहार में उद्देश्यहीनता रहती है, वह पुरुष-जगत् है, किंतु स्त्री यथार्थ के अधिक निकट रहती है। उत्पादित वस्तुओं को क्रय के जरिए बदलकर आंकड़ों में बंद कर देने के बाद ऑफिस के कर्मचारी के पास मूर्त रूप में कुछ नहीं बचता। बालक को दूध पिलाना, उसके कपड़ों को संभालना और रसोई बनाना बड़े ही सार्थक कार्य हैं। इस कार्यों को सम्पादित करने के लिए स्त्री इनके अस्तित्व को समझती है और साथ ही अपने अस्तित्व को भी। स्त्री अपने कार्यों में वुल नहीं जाती। उसका कुछ उसके पास बचा रह जाता है। पुरुष अपनी योजना में ही नष्ट हो जाता है। छोटी- सी योजना के प्रति अति गम्भीर होकर वह स्वयं को अत्यंत महत्त्वपूर्ण समझने लगता है। पुरुष के तर्कों और नैतिकताओं से मुक्त रहने के कारण स्त्री उन जालों में नहीं फंसती। अपनी स्थिति की अस्पष्टता से बचने के लिए वह अभिमान का आश्रय नहीं लेती। वह प्रतिष्ठा के झूठे मुखौटे के पीछे अपनी असलियत छिपाना नहीं चाहती। वह अपने अनुशासनहीन विचार, भावनाएं और स्वाभाविक प्रतिक्रियाएं बड़ी स्पष्टता से व्यक्त कर देती है। इसीलिए उसकी अपनी बातें उसके पति की बातों से अधिक रोचक होती हैं। वह पति की रोचक अर्धांगिनी होती है। जहां पुरुषों के शब्द और फार्मूले किताबी होते हैं, वहीं स्त्री के शब्द उसके सीमित अनुभवों की अभिव्यक्ति होते हैं।

स्त्री संवेदनशील होती है। वह पुरुष की अपेक्षा अपने और विश्व के प्रति अधिक सहज रहती है। स्त्री को पुरुष की कठोर वासना तृप्त करनी पड़ती है। सुंदर वस्तुओं के प्रति स्त्री की रुचि स्वाभविक रहती है। उसमें कृत्रिम सुकुमारता आ जाती है, पर कभी-कभी यह नजाकत वास्तविक भी होती है। स्त्री का क्षेत्र सीमित है, अत: वह जिन उद्देश्यों की प्राप्ति चाहती है, वे वास्तव में मूल्यवान होते हैं। वह अपने उद्देश्यों को अन्य योजनाओं के साथ बद्ध नहीं करती। वह उनकी शालीनता का प्रदर्शन करती हैं। स्त्री उत्सवों आदि में अपनी

रुचि के प्रदर्शन के द्वारा यह दिखाती है कि वह किस प्रकार कठोरता से दूर रहना चाहती है। छोटी-छोटी बातें और वस्तुएं स्त्री को मुग्ध कर लेती हैं। फूलों के गुच्छों की गंध उसे मोहित करती है। सजा हुआ टेबुल और बना हुआ 'केक' उसे प्रसन्न करता हैं। अपने अवकाश के समय को वह बाहुल्य प्रदान करने में लगाती हैं। वह हंसी-मजाक, अलंकार, संगीत और नुमाइशी चीजों से स्नेह रखती है। वह आसपास की सभी वस्तुओं को ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत रहती है। सड़क के दृश्य, आकाश को छवि, निमंत्रण-पत्र और एक सुनहली शाम उसके सम्मुख सौंदर्य के नए क्षितिज खोलते हैं। पुरुष इन आनंदों में भाग नहीं लेता। इसीलिए घर में उसके प्रवेश के साथ किलकिलाते शब्द शांत पड़ जाते हैं। स्त्री मनहूसियत ओढ़ लेती है, क्योंकि पुरुष ऐसा ही चाहता है।

अपने एकाकीपन के माध्यम से ही स्त्री अपने जीवन को अच्छी तरह समझ लेती है। अतीत, समय और मृत्यु का स्त्री को पुरुष की अपेक्षा अधिक अनुभव होता है। वह अपने हृदय की उमंगों और तन तथा मन की चाहों को जानती है। वह जानती है. कि इस पृथ्वी पर स्थित सब कुछ उसका अपना है। किसी कार्य और महत्त्वाकांक्षा में रत जीवन के यथार्थ को पुरुष उतना नहीं समझता, जितना एक शांत स्त्री। उसके पास अवकाश के क्षण होते हैं। वह अपनी भावनाओं के वश में होती है। वह अपने अनुभवों का अध्ययन करती और उनका अर्थ व्यक्त करती है। जब उसकी कल्पना स्वप्न-लोक में विचरण नहीं करती तब वह जगत् के प्रति सहानुभूतिपूर्ण बन जाती है। वह दूसरों को भी समझने की चेष्टा करती है और उनमें तथा अपने बीच एकीकरण स्थापित करती है। इसी प्रकार का एकीकरण वह अपने पति एवं प्रेमी के साथ भी करती है। वह पुरुष की भी योजनाओं को बनाती है। वह अपनी योजनाओं को इस रूप में रखती है कि पुरुष उनका अनुकरण नहीं कर सकता। वह समस्त विश्व की ओर ध्यान देती है। उसके लिए विश्व एक पहेली है। प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक व्यक्ति उसका सहयोगी हो सकता है। अतः वह सभी से प्रश्न करती है। वृद्धा हो जाने पर उसकी निराशा व्यंग्य एवं कटुता का रूप ग्रहण कर लेती है। अब वह पुरुष की रहस्यात्मक बातों में नहीं आती क्योंकि उसने देख लिया है कि पुरुष द्वारा निर्मित ढांचा कितना अर्थहीन है। पुरुष पर आश्रित होने के कारण वह उससे पृथक नहीं होती, किंतु अक्सर 'थोपा' गया आत्म-बलिदान उसे उदार बना देता है। वह पति, संतान और प्रेमी के सम्मुख स्वयं को भूल जाती है। अब वह अपने बारे में नहीं सोचती। वह एक पवित्र वरदान और एक पवित्र उपहार होती है। चूंकि पुरुष के समाज के अनुकूल वह अपने को ठीक से नहीं ढाल सकती, इसलिए उसे मौके के अनुकूल व्यवहार करना पड़ता है। वह बने- बनाए आकार नहीं स्वीकार करती। उनके बारे में उसको भ्रम रहता है। वह पति की तरह आश्वस्त नहीं रहती।

पुरुष के बहकावे में न आने पर ही स्त्री को कुछ सुविधाएं प्राप्त हो सकती हैं। उच्च वर्गों की स्त्रियां अपने स्वामियों की सहायक होती हैं क्योंकि प्राप्त सुविधाओं का वे पूरा लाभ उठाती हैं। ऐसा देखा गया है कि उच्च मध्यमवर्ग और उच्चवर्ग की महिलाओं ने अपने वर्ग के स्वार्थों की रक्षा पतियों से अधिक की है और इसके लिए कभी-कभी उन्होंने अपनी स्वतंत्रता की भी बलि कर दी है। वे अपने सभी भावों, विचारों और तर्कों को त्याग देती हैं। वे अन्यों के विचारों को ग्रहण कर लेती हैं । पुरुष के थोपे गए विचारों को वे आदर्श मान बैठती हैं । उनके हृदय और मुखमंडल की सारी सच्चाई नष्टप्राय हो जाती है। कार्य में रत गृहिणी अपने कामों के जरिए कुछ स्वतंत्रता हासिल कर लेती है। उसे कुछ लाभकारी अनुभव भी प्राप्त होते हैं, किंतु जिस स्त्री के काम नौकरों द्वारा होते हैं, वह यथार्थ से दूर रहती है। वह स्वप्न और शून्यता में रमती रहती है। वह जिन विचारों को मानती है, उनका अर्थ स्वयं नहीं जानती। उसके शब्द अर्थहीन बन जाते हैं। पूंजी लगाने वाला उद्योगपति और कभी-कभी सैनिक नेता भी कार्य की कठिनाई जानते हुए भी खतरा मोल लेकर अनुचित ढंग से सुविधाएं प्राप्त करते हैं, किंतु इनकी उन्हें व्यवितगत कीमत भी चुकानी पड़ती है। उनकी पत्नियों को देना नहीं पड़ता। वे जो कुछ भी प्राप्त करती हैं, उसके बदले कुछ देती नहीं, इसलिए अंधविश्वासों के साथ वे अपने अनुचित अधिकारों पर भी विश्वास करती हैं। अज्ञानता, क्षमताहीनता और मिथ्याभिमान उन्हें एक निरर्थक अस्तित्व बना डालते हैं।

साधारणतः प्रत्येक स्त्री के लिए एक ही सिद्धांत उसी तरह लागू नहीं होता, जिस तरह 'चिर'- मानव की चर्चा करना असंगत है। स्त्री भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में रहती है। यह कहना कि स्त्री पुरुष से उत्तम, हीन या बराबर है, ठीक नहीं। यदि हम व्यक्तियों की नहीं बल्कि स्थितियों की तुलना करें तो देखेंगे कि पुरुष की स्थिति स्त्री की स्थिति से कहीं अधिक अच्छी है। उसे अनेक अवसर प्राप्त हैं। वह अपनी स्वतंत्रता का स्त्री से अधिक प्रयोग कर सकता । इसीलिए पुरुष के कार्य स्त्री के कार्यों से श्रेष्ठ होते हैं। स्त्री के लिए तो अनेक निषेध भी होते हैं। स्त्री और पुरुष अपनी सीमाओं के भीतर अपनी स्वतंत्रता का जिस प्रकार प्रयोग करते हैं, उसकी तुलना व्यर्थ है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि दोनों ही अपनी स्वतंत्रता का स्वतंत्र रूप से प्रयोग करते हैं। स्त्री और पुरुष आंतरिक स्वतंत्रता के बावजूद दोनों में ही गलत विश्वासों की भावनाएं मिलती हैं। स्त्री केवल विद्रोह करके अपनी स्वतंत्रता प्रदर्शित कर सकती है। किसी प्रकार का सृजनात्मक कार्य नहीं कर सकने वालों के लिए यही एक खुला मार्ग होता है। उन्हें अपनी स्थिति की सीमाओं को तोड़कर भविष्य का मार्ग खोलना चाहिए।

मुक्ति की चेष्टा सामूहिक होनी चाहिए। इसके लिए सबसे पहले स्त्री की आर्थिक स्थिति का विकास आवश्यक है। अनेक ऐसी स्त्रियां हुई हैं और अब भी हैं, अपना उद्धार अपने ही

प्रयत्नों से करती हैं। वे इस विश्व में अपना अस्तित्व सिद्ध करने की चेष्टा करती हैं या यह कहा जाए कि वे विश्वव्यापी स्थिति में सर्वोपरि उठना चाहती हैं। स्त्री की अंतिम चेष्टा बंदीगृह को स्वर्ग की गरिमा में बदलने की है। अब वह अपनी दासता को उच्च स्वतंत्रता में परिणत करना चाहती है। यह स्थिति कभी हास्यास्पद बन जाती है, कभी विषादपूर्ण। आत्ममुग्धा स्त्री हो या प्रेम में रत स्त्री या रहस्यवादी स्त्री-सबकी स्थिति एक-सी है।

तीन : औचित्य

1.आत्ममुग्धा
2. प्रेमिका
3. रहस्यमयी स्त्री

आत्ममुग्धा

आत्मरति स्त्री की एक मौलिक मनोवृत्ति मानी जाती रही है। वस्तुतः आत्मरति स्वयं से तादात्म्य की एक ऐसी सुपरिभाषित प्रक्रिया है जिसमें अहं को एक निरपेक्ष उद्देश्य के रूप में प्रस्तुत करके व्यक्ति स्वयं से पलायन करता है। यह निर्विवाद सत्य है कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक आत्ममुग्ध रहती है।

प्रत्येक प्रेम में दो की अवस्थिति अनिवार्य है। एक वह जो प्रेम करे और दूसरा वह जिससे प्रेम किया जाए । स्त्री में आत्ममोह दो प्रमुख कारणों से होता है। व्यक्ति-रूप में वह अपने को निराश पाती है। बचपन में उसका वैसा कोई अंतरंग मित्र नहीं होता जैसा कि लड़कों के लिए उनका लिंग होता है। स्त्री की आक्रामक कामुकता भी अतृप्त रहती है। इससे अधिक महत्त्व की बात तो यह है कि स्त्री किसी सार्थक कार्य में व्यस्त नहीं रहती। वह बहुत-कुछ करती हुई भी कुछ नहीं करती। विभिन्न भूमिकाओं के बावजूद उसे व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठा नहीं मिलती। स्त्री किसी योजना और उद्देश्य द्वारा अपनी वास्तविकता का ज्ञापन नहीं कर पाती। वह तो अपनी अंतापिता में ही रहने को विवश होती है । एक फ्रेंच राजनेता की नकल करते हुए मैरी बाशकित्र्सेव लिखती हैं, 'मैं क्या हूं? कुछ नहीं। मैं क्या होऊंगी? सब कुछ।" कुछ नहीं हो पाने के कारण स्त्रियां झुंझलाहट में अपनी रुचियों को अपने अहं तक ही सीमित रखने लगती हैं। इस तरह वे अपने अहं का आरोपण जीवन के हर क्षेत्र में करती हैं। मैरी बाशकित्र्सेव फिर कहती हैं, "अपनी नायिका मैं स्वयं हूं।"

स्त्री की अपनी ही इच्छाओं को अतिरिक्त महत्त्व देने का कारण बचपन से ही उसका अपने को वस्तु रूप में देखना है। उसकी शिक्षा उसे प्रेरित करती है कि वह अपने शरीर के साथ तादात्म्य स्थापित करे। उसे यौवन के आरम्भ से ही अपने शरीर की निष्क्रियता का अनुभव होता है। वह महसूस करती है कि वह दूसरों की चाह की वस्तु है। वह एक ऐसी

चीज है जिसका वह उसी प्रकार स्पर्श कर सकती है जिस प्रकार साटन और मखमल का। वह अपने बारे में प्रेमी की दृष्टि से विचार कर सकती है। एकाकी आनंद की अवस्था में स्त्री अपने को पुरुष-व्यक्ति और स्त्री-वस्तु के रूपों में बांट सकती है। डालबेज की रोगिणी इरेनी अपने से कहती थी, "मैं स्वयं के साथ प्यार करने जा रही हूं।" अधिक भावावेश में आकर वह कहती थी कि मैं आत्म-सम्भोग करने जा रही हूं और मैं स्वयं गर्भाधान करूंगी। मैरी बाशकित्रसेव भी अपने को व्यक्ति व वस्तु, दोनों रूपों में एक साथ देखती हैं जब वे लिखती हैं, "यह कैसा दुःख का विषय है कि कोई अन्य मेरे शरीर और बांहों को नहीं देख सकता? यह यौवन? यह ताजगी? इनका कोई भोक्ता नहीं है।" असम्भव है कि कोई भी अपने आपको 'अपर' या अन्य के रूप में देखे, जान-बूझकर अपने को वस्तु माने। इस दोहरी अवस्था का केवल स्वप्न देखा जा सकता है। बालिका अपने स्वप्न का साकार रूप अपनी गुड़िया में देखती है। वह अपना मूर्त रूप जितना अपनी गुड़िया में देखती है, उतना अपने शरीर में नहीं देख सकती क्योंकि वह और गुड़िया वास्तव में एक-दूसरे से पृथक हैं।

किशोरावस्था में बालिकाएं गुड़ियों से खेलना बंद कर देती हैं, किंतु सम्पूर्ण जीवन स्त्री को शीशे का जादू ऐसी सहायता प्रदान करता है जिसके द्वारा वह अपने को अलग रखकर अपने बाहय रूप से एकात्म हो जाती है। स्त्री अपने प्रतिबिम्ब में अहं के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती है। पुरुष की दृष्टि में उसका सौंदर्य उत्कृष्टता का सूचक है, किंतु वही सौंदर्य स्त्री की अंतर्व्यापी निष्क्रियता सूचक है। स्त्री अपने रूप के उस दृश्य को स्थिर कर देना चाहती है। इस प्रकार वह गतिहीन होकर एक रुपहले जाल में बंदी हो जाती है। पुरुप अपने को व्यक्ति के रूप में नहीं देखता। पुरुष के लिए अपने शरीर का आकर्षण बहुत कम होता है। उसको अपना शरीर कामना की वस्तु नहीं लगता, किंतु स्त्री अपने को वस्तु के रूप में देखती है और बनाना भी चाहती है। इसलिए उसे ऐसा अनुभव होता है कि वह वास्तव में अपने को शीशे में देखती है। उसकी ही तरह प्रतिबिम्ब भी तो निष्क्रिय रहता है। चूंकि स्त्री, स्त्री-देह की कामना करती है, इसलिए वह प्रतिबिम्ब को अपनी प्रशंसा द्वारा जीवन प्रदान करती है। मादाम अन्ना कहती हैं, "मुझे अपनी असीम बौद्धिकता के बावजूद दर्पण में प्रतिबिम्बित अपने रूप पर बेहद गर्व था। शारीरिक सुख ही आत्मा को शांति देता है।" 'शारीरिक आनंद' शब्द का प्रयोग अस्पष्ट व गलत है। आत्मा को इस बात से ही संतोष मिल जाता है कि जिस मुखमंडल के बारे में चिंतन व विचार किया जाना है, वह दर्पण में उपस्थित है। उसकी वास्तविकता के बारे में शक नहीं होता। जबकि मस्तिष्क के अस्तित्व के बारे में प्रमाण की आवश्यकता पड़ती है। पूरा शरीर कांच के टुकड़े पर संकुचित करके रख दिया गया है जहां स्त्री का प्रतिरूप देदीप्यमान होता है और अद्वितीय लगता है। हर स्त्री अपने प्रतिबिम्ब में खोई हुई समय और स्थान पर शासन करती है। वह सर्वश्रेष्ठ है। उसे मनुष्य के भाग्य, आनंद और यश पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है। मैरी वाशकिर्सेव अपने सौंदर्य पर इतनी अधिक मोहित थीं कि वह चाहती थीं कि उसका सौंदर्य अनश्वर संगमरमर के

ऊपर उभार दिया जाए। निम्नलिखित शब्दों को लिखते समय वह मानो अपने को अमरत्व प्रदान कर रही थीं, "अपने वस्त्र उतारे तो मैं अपने नग्न सौंदर्य को देखकर स्तम्भित का भी हो गई। मैंने सौंदर्य को पहले नहीं देखा था। मुझे अपनी प्रतिमा 'बनवा लेनी' थी। पर कैसे? जब तक मैं शादी नहीं करती, तब तक यह असम्भव है। यह होना ही चाहिए और उस समय से पहले, जब मैं कुरूप हो जाऊं तथा मेरा सौंदर्य नष्ट हो जाए। केवल अपनी एक संगमरमरी प्रतिमा बनवाने के लिए ही मुझे पति की आवश्यकता है।" मुझे एक नवयुवती की स्मृति है जिसे मैंने एक सुबह 'कॉफी हाउस' में देखा। उसके हाथ में गुलाब का एक फूल था। लगा जैसे वह मदहोशी में हो। वह अपने होंठों को दर्पण से लगाए हुए थी मानो अपने प्रतिबिम्ब का पान कर रही हो। वह एक मुस्कुराहट के साथ गुनगुना उठी, "प्यार के योग्य। मैं प्यार के योग्य ।" वह एक मूर्ति और पुजारिन, दोनों एक साथ लगती थी। आत्ममुग्धा अपनी महिमा के प्रभामंडल सहित मानो शाश्वत प्रदेश की ऊंचाई पर उड़ने लगती है और बादलों के नीचे प्राणी श्रद्धा व प्रेम के वशीभूत होकर उसके सम्मुख घुटने टेक देते हैं। वह मानो आत्मरति में लीन अपने महिमा-मंडित रूप में अपने से प्यार करती है। "मैं अपने से प्यार करती हूं, मैं अपना खुदा हूं।" मादाम मेजेरस्की ने कहा, "ईश्वर होने की यह असम्भव उपलब्धि तो जड़ और चेतन के पूर्ण संश्लेषण से, जो कि सार्च के अनुसार एक विरोधाभास है, एक असम्भव कल्पना है।" यह एक अपरिवर्तनीय सत्य व तत्त्व को मानो परिवर्तनशील व खोज करने वाली चेतना से मिलाना है। सफलता की कल्पना के क्षण मनुष्य के लिए विशेष आनंद के क्षण होते हैं। वे शांति और उत्कर्षण के क्षण होते हैं। वह नवजवान लड़की, जिसने दर्पण में सौंदर्य, इच्छा, प्रेम और सुख को अपनी ही आकृति में देखा और जो विश्वास करती है कि यह सौंदर्य उसकी ही चेतना से अनुप्राणित है, जीवन-भर इस चकाचौंध कर देने वाले रहस्योद्घाटन को ग्रहण करने की चेष्टा में व्यस्त रहती है। यदि स्त्री में पूर्ण सौंदर्य न भी हो तो भी वह अपनी आत्मा की उस शालीनता की विशिष्टता अपने मुखमंडल पर दिखाना चाहती है। यह शालीनता उसे अपना ही दीवाना बना देती है। उसके सौंदर्य के लिए उसकी प्रशंसा न होने पर भी यह मानना पड़ेगा कि उसमें एक अद्भुत मोहिनी शक्ति है।

कोई आश्चर्य नहीं कि एक कुरूप स्त्री भी दर्पण द्वारा परमानंद का अनुभव कर लेती है। यह विचारमात्र कि वह देह-रूप है, उसमें भावनाएं जाग्रत कर देता है। पवित्र नारी-देह का विचार ही उसे आश्चर्यचकित कर देता है। चूंकि वह अपने को व्यक्ति-रूप में देखती है, जरा-सा अपने को धोखा देकर अपने विशेष गुणों को व्यक्तिगत सौंदर्य में समाविष्ट कर लेती है। वह अपने मुखमंडल और शरीर में कुछ अजीब लावण्य और दिलचस्प विशेषता देखने लगती है। वह अपने को इसलिए सुंदर समझती है कि वह यह तो अनुभव करती ही है कि वह स्त्री है।

दर्पण केवल प्रतिरूप देखने का साधन नहीं है, यद्यपि यह सबसे अनुकूल प्रतिरूप की सृष्टि कर सकता है। सारे दिन प्रायः अकेले रहते हुए घर के नीरस कार्यों में लीन स्त्री अवकाश के समय अपनी वांछित प्रतिमूर्ति कल्पना के माध्यम से बना लेती है। एक नवयुवती होने के कारण वह भविष्य का स्वप्न देखती है। अशेष वर्तमान से घिरी वह अपने इतिहास पर दृष्टिपात करती है। वह उसे इस प्रकार दोहराती है कि उसमें सौंदर्य का पुट आ जाए। वह अपने प्रासंगिक जीवन को मृत्यु के पूर्व ही एक भाग्य में बदल लेती है।

पुरुषों से अधिक स्त्रियां बचपन की यादों को संजोए रखती हैं। बचपन में मैं माता-पिता के संरक्षण में स्वतंत्र थी, यह उन्हें याद रहता है। भविष्य उनके सम्मुख होता है। वे अपने को अधिक सुरक्षित नहीं समझती। वे अनुचर व वस्तु-रूप में वर्तमान में बंदी होती हैं। एक समय वे विश्व को विजित करना चाहती थीं, पर अब वे आम वस्तु के रूप में बदल गई हैं। अरबों पत्नियों और घर संभालने वाली गृहिणियों में से वे भी अब एक होती हैं। नारीत्व को प्राप्त करने के बाद स्त्री को अपना नारीत्व विषादपूर्ण लगने लगता है। वह सोचती है कि उसकी रुचियों, विचारों और भावनाओं में विशेष ताजगी है। उसके विचारों में संसार की कुछ विचित्रता व अवज्ञा भी अब सम्मिलित रहती है। कभी वह अपनी सहेली से कहती है : " "तुम मुझे जानती हो । मुझमें कुछ हास्यास्पद गुण हैं। मेरे चारों ओर फूल होने चाहिए।" स्त्री की एक विशेष रुचि होती है, उसका एक प्रिय संगीतकार होता है। दूसरों से भिन्न उसके कुछ खास विश्वास और अंधविश्वास होते हैं । उसका विशेष व्यक्तित्व उसके कपड़ों द्वारा व्यक्त होता है। अपने आंतरिक रूप में कभी-कभी वह एक ऐसे प्रतिरूप की सृष्टि करती है जो बड़ा अपूर्ण-सा रहता है, किंतु कभी-कभी वह एक निश्चित व्यक्ति की भूमिका भी अपनाती है और जीवन में उसका निर्वाह करती है। कुछ स्त्रियां अपने को साहित्यिक नायिकाओं के रूप में देखती हैं जिनकी सृष्टि पहले ही हो चुकी है। वे सोचती हैं कि वे बिल्कुल मेरी तरह थीं। ऐसा एकीकरण या तो वे शृंगारिक चरित्रों के साथ करती हैं या फिर शहीद वीरांगनाओं के साथ। एक स्त्री स्वेच्छा से या तो एक दुःखमय भूमिका अपना लेती है या वह अवांछित और बोझिल पत्नीत्व निभाती रहती है। वह अपने को संसार की सबसे दुःखी स्त्री अनुभव करने लगती है।

ऐसी स्त्रियां अनुभव करती हैं कि उन्हें गलत समझा जा रहा है और लोग उनके विशेष गुणों को नहीं पहचानते। दूसरों की उदासीनता और अज्ञानता से वे यह निष्कर्ष निकालती हैं कि उनके हृदय में कुछ रहस्यमय है। ऐसी स्त्रियां स्वयं अपने बचपन और यौवन की कई कहानियों और घटनाओं को अपने हृदय में छिपाए रखती हैं। वे जानती हैं कि उनकी औपचारिक रूप से लिखी हुई जीवन- कथा उनके वास्तविक जीवन के वृत्तांत के साथ नहीं जोड़ी जा सकती। आत्ममुग्धा स्त्री की नायिका बहुधा काल्पनिक होती है क्योंकि ऐसी काल्पनिक नायिका यथार्थ जीवन में आत्म-ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकती। यह मूर्त जगत् उसे

उसका व्यक्तित्व नहीं प्रदान करता । यह एक रहस्यमय मान्यता है। यह एक प्रकार की शक्ति और विशेषता है जो एक प्रवाहक वस्तु की तरह अस्पष्ट रहती है। वह स्त्री अपनी नायिका की प्रामाणिकता में विश्वास करती है, लेकिन यदि वह उसे अन्य व्यक्तियों को दिखलाना चाहती है तो वह स्वयं एक मानसिक विकार से पीड़ित व्यक्ति की तरह परेशान हो जाती है। वह व्यर्थ ही विश्वास करने लगती है कि उसमें भीतरी गहराई है और उसके पास वह कुंजी है, जिससे वह भावनाओं और कार्यों को ठीक-ठीक समझ सकती है तथा उनके औचित्य पर भी विचार कर सकती है। अपनी आत्मकथा में महान् नर्तकी इसाडोरा डंकन लिखती हैं, "नृत्य के बाद, अपनी भव्य पोशाक में, गुलाब के फूलों से सजी हुई मेरी केशराशि। मैं कितनी मोहक लग रही थी! इस मोहकता को क्यों नहीं कोई पुरुष मांगे? एक पुरुप, जो सारे दिन अपनी दिमागी उलझनों से खटता रहता, क्यों नहीं आखिर इन खूबसूरत बांहों आराम खोजे? वह इन सुंदर घड़ियों में कुछ समय के लिए ही सही; पर अपना दु:ख-दर्द भूल जाए।"

आत्ममुग्धा स्त्री के लिए उदारता लाभप्रद होती है। यह लाभ दर्पण से प्राप्त लाभ से भी अधिक होता है। वह अनुभव करती है कि दूसरों की दृष्टि में भी उसका प्रतिरूप प्रभा-मंडित दिखता है। प्रशंसकों के अभाव में वह अपना हृदय एक चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक, विश्लेषक और पापमोचक गुरु के सम्मुख खोलती है । वह किसी सूक्ष्मदर्शी व हस्तरेखा-विशेषज्ञ से परामर्श लेती है। इस संदर्भ में एक अभिनेत्री का कथन है, "मैं उनमें विश्वास करती हूं, ऐसी बात नहीं, बल्कि मैं यह पसंद करती हूं कि मेरे निकट भी कोई ऐसा व्यक्ति हो जो मुझसे मेरे बारे में बातें करे।" वह अपनी सखियों से अपने बारे में सब कुछ कह देती है। वह किसी अन्य की अपेक्षा प्रेमी से अपनी बातें कहना अधिक पसंद करती है। वास्तविक प्रेम में फंसी स्त्री अपना अहं सहज ही भूल जाती है, किंतु सच्चा प्यार कर सकने वाली स्त्रियां अपने अहं को नहीं भूल सकतीं । वे एक रंगमंच को एक लता-कुंज से श्रेष्ठ समझती हैं। वे अधिकाधिक लोगों की दृष्टि में पड़ना चाहती हैं। वे अधिकाधिक श्रोता पसंद करती हैं। अपने कक्ष का वर्णन करते हुए मैरी बाशकित्सेव कहती हैं, "जब मैं अपने कक्ष में लिखती रहती हूं और लोग मुझे देखते हैं तो ऐसा लगता है मानो मैं रंगमंच पर स्थित हूं। जिस प्रकार रंगमंच पर वस्तुएं सलीके से सजाकर रखकर बैठा जाता है, मैं उसी प्रकार बैलूंगी। मैं भव्य शिल्पालयों का भी निर्माण करूंगी।"

ऐसी स्त्रियों में प्रदर्शन की वृत्ति होती है। उन्हें अच्छी पोशाकें और वार्तालाप विशेष प्रिय होते हैं। एक महत्त्वाकांक्षी आत्ममुग्धा स्त्री अपना प्रदर्शन सहज रूप में नहीं, बल्कि अनेक कृत्रिम रूपों में करती है। वह अपने जीवन को एक ऐसा दर्शनीय दृश्य बनाना चाहती है जिसे देखकर लोग लगातार तालियां बजाएं। वह बड़ी गम्भीरता और हार्दिकता के साथ रंगमंच पर प्रकट होना चाहती है। मादाम स्टेकल ने अपनी रचना में बताया है कि वे किसी

प्रकार इटालियन श्रोताओं को अपनी उन कविताओं के द्वारा मुग्ध कर देती थीं जिन्हें बीन की धुन पर सुनाती थीं। वे अपने महल में प्रायः मनोरंजन के लिए अपनी दुःखपूर्ण भूमिकाओं के बारे में बताया करती थीं। वे अपने सच्चे युवा प्रेमियों के सम्मुख अपने मार्मिक वक्तव्य प्रस्तुत करते समय हिपोलाइट की तरह पोशाक पहनती थीं।

अवकाश के समय स्त्री कोई आविष्कार करना चाहती है। नाट्यशाला कुछ लोगों को अपने अवकाश के सार्थक उपयोग के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थान लगती है। अभिनेत्रियों के लक्ष्य भिन्न होते हैं। कुछ लोगों के लिए नाटक करना जीविका-निर्वाह का साधन होता है और कुछ लोगों के लिए ख्याति का । कुछ के लिए नाट्यशाला उनकी आत्ममुग्धता की विजय का स्थान होती है। महान अभिनेत्रियां अपनी भूमिका निभाते समय अपने से ऊपर उठ जाती हैं, किंतु निम्न कोटि की अभिनेत्री अपनी भूमिका में पूरी तरह नहीं जम पाती । उसका ध्यान तो अभिनय से उसे प्राप्त हो सकने वाली ख्याति पर लगा रहता है। एक हठी आत्ममुग्धा स्त्री जिस प्रकार अपने प्रेम में एक सीमा के भीतर रहती है, उसी प्रकार कला में भी वह सीमा पार नहीं कर पाती। उसमें आत्म-समर्पण के द्वारा अपने को लीन कर देने की क्षमता नहीं रहती। इस कमी का प्रभाव उसके कार्य-कलापों पर पड़ता है। साधनों को अपनाने के लिए प्रस्तुत हो जाने के बावजूद सच्ची लगन के साथ वह अपनी भूमिका का निर्वाह नहीं करती। चित्रकारी, शिल्पकला और साहित्य में अच्छी शिक्षा के साथ ही कठोर साधना भी आवश्यक होती है। अनेक स्त्रियां इस दिशा में कोशिश करती हैं, लेकिन बहुत जल्द विरत हो जाती हैं। कई स्त्रियां प्रयत्न और परिश्रम के बावजूद सफल नहीं हो पातीं। वे घंटों अपना समय चित्रफलक के साथ बैठी बिता देती हैं, क्योंकि अतिरिक्त आत्ममुग्धता के कारण चित्रकारी के प्रति उनमें सच्चा प्रेम पैदा ही नहीं होता। अनेक महान् लेखिकाओं का सबसे बड़ा दोष उनका आत्म-सम्मोहन होता है। ऐसा आचरण उनकी साधना को नष्ट और सीमित कर देता है। वे स्तर च्युत हो जाती अपनी उत्कृष्टता पर विश्वास करने वाली कई स्त्रियां संसार के सम्मुख उसे प्रदर्शित कर पाने में असमर्थ होती हैं। आगे चलकर वे उन पुरुषों को मध्यस्थ बना लेती हैं जिन्हें वे अपने गुणों से प्रभावित कर पाती हैं। ऐसी स्त्री अपनी मान्यताओं को ही प्रस्तुत करना अपना लक्ष्य नहीं बनाती, वह अपने अहं में ही अपनी श्रेष्ठता केंद्रित कर देती है, इसलिए वह ऐसे पुरुषों की ओर बढ़ती है जिनके पास प्रभाव व ख्याति, दोनों होते हैं।

हम लोगों का सम्बंध उन महत्त्वाकांक्षी स्त्रियों से नहीं है जो अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए तीव्र इच्छा के वशीभूत होकर अपना महत्त्व पुरुषों को साधन बनाती हैं, बल्कि उन स्त्रियों से है स्थापित करना चाहती हैं। उनका लक्ष्य किसी का साधन बनना नहीं होता, बल्कि वे तो स्वयं अन्य ही उत्कृष्टता को प्राप्त करना चाहती हैं। उन्हें हमेशा सफलता नहीं मिलती पर वे इतनी कुशल होती हैं कि अपनी असफलता को अपने से भी छिपाकर रखती हैं और निरंतर

दूसरों को प्रभावित व आकर्षित करने की चेष्टा करती रहती हैं। चूंकि वे जानती हैं कि वे प्रेम के योग्य हैं, प्रशंसा और आकर्षण के योग्य हैं, अत: उन्हें पूरा भरोसा रहता है कि उन्हें प्यार किया जा रहा है और उनकी प्रशंसा हो रही है। इस तरह के भ्रम वास्तव में पागलपन के कारण बन सकते हैं, इसीलिए क्लेराम्बो ने कामोन्माद को एक प्रकार की बीमारी माना है। अपने को स्त्री मानना स्वयं को एक वांछित वस्तु और प्यार का उपकरण मानना है। प्राय: दस में से नौ रोगी इस भ्रम में रहती हैं कि उन्हें प्यार किया जाता है। दरअसल वे अपने काल्पनिक प्रेमी में अपनी आत्ममुग्धता का देव-रूप देखती हैं । वे चिकित्सकों, पुरोहितों, वकीलों और श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा उसे अधिक प्रतिष्ठा दिलाना चाहती हैं। उनके व्यवहार से इस सत्य का उद्घाटन होता है कि उनकी कल्पना में बसा व्यक्ति दूसरे तमाम व्यक्तियों से अधिक आकर्षक और श्रेष्ठ गुणों से पूर्ण है।

अनेक मानसिक विकारों के कारण कामोन्माद प्रकट हो सकता है, पर हर स्थिति में उसका रूप एक ही रहता है। रोगी को किसी ऐसे विख्यात पुरुष द्वारा प्यार किए जाने पर, जो कि अचानक उसके सौंदर्य पर मुग्ध हो गया हो, अत्यधिक आनंद का अनुभव होता है। वह व्यक्ति अपना उत्कृष्ट प्यार बड़ी तीव्रता से व्यक्त करता है, जबकि वह स्त्री इस तरह के प्यार को पाने की आशा कभी नहीं करती थी। ऐसा सम्बंध कभी-कभी आदर्श रूप में ही रहता है, लेकिन कभी-कभी इसमें काम- वासना भी आ जाती है । इस स्थिति में विशेषता यह है कि प्रसिद्ध पौरुषशाली देवतुल्य व्यक्ति का प्रेम स्त्री की अपेक्षा अधिक गहरा होता है। वह अपने प्रेम को विचित्र और अस्पष्ट रूपों में व्यक्त करता है। मनोवैज्ञानिक चिकित्सकों द्वारा वर्णित कई घटनाओं में से एक का उल्लेख यहां किया जा रहा है। यह एक अड़तालीस वर्षीया स्त्री की आत्म-स्वीकृति है :

"उस घटना का सम्बंध सम्माननीय एम. एचिले से था जो कि न्यायालय के एक सदस्य थे। मैं उन्हें 1920 से जानती हूं। यह जानने के पहले कि वे कौन हैं, मैंने उनके प्रभावशाली और शक्तिशाली रूप को दूर से देखा था। उनको देखकर मेरा पूरा शरीर कांप उठता था। यह वास्तव में भावनाओं का मामला था। हम दोनों ने इसका अनुभव किया। हमारी आंखें भी मिली। शुरू से ही मेरे हृदय में उनके प्रति प्रेम की भावनाएं थीं। इस बात को उन्होंने ही स्पष्ट महसूस किया। यह करीब 1922 की बात है। वे मुझसे हमेशा अकेले में मिला करते थे। एक बार बात करते-करतं वे उठ खड़े हुए और मेरी बगल में आ गए। मैं समझ गई कि यह भावनाओं का ज्वार है। उन्होंने मुझे सच्चाई से अवगत करा दिया। उन्होंने अति विनम्रता से मुझे समझा दिया कि भावनाएं दोनों ओर पल रही हैं। एक बार उनके साथ जो व्यक्ति था, उससे पीछा छुड़ाकर वे मेरे साथ अकेले रहे । ऐसा उन्होंने जान-बूझकर किया। वे हमेशा मेरे हाथों को कसकर दबाते थे। उन्होंने मुझसे कहा कि वे अकेले थे। वे मेरी

खिड़कियों की ओर देखा करते थे। वे मेरे घर के पास से ही प्रायः गुजरते थे। मैं मूर्ख थी। मुझे उनके इस प्रोत्साहन का उत्तर देना चाहिए था। उन्हें ऐसा विश्वास हो गया कि मैं उनसे घृणा करती हूं इसलिए उन्होंने प्रतिशोध लिया। उनका विश्वास था कि मैं किसी अन्य से प्यार करती हूं। उनके हृदय में ईर्ष्या भड़क उठी। मुझे मर्माहत करने के लिए पता नहीं, उन्होंने मेरी तस्वीर पर क्या जादू कर दिया। यहीं से मेरी परेशानियां शुरू होती हैं।"

इस प्रकार के पागलपन में रोगी प्रायः उत्पीड़ित किए जाने के भ्रम में रहता है। साधारण अवस्थाओं में भी ऐसा ही आभास होता है। आत्म-सम्मोहित स्त्री यह मानने के लिए प्रस्तुत नहीं होती कि औरों की रुचि उसमें नहीं है। प्यार नहीं किए जाने के स्पष्ट प्रमाण मिलने पर वह कल्पना कर लेती है कि उससे घृणा की जा रही है। वह सब कुछ को ईर्ष्या या घृणा समझकर आलोचना करती है। हताशा की स्थिति में अपने विरुद्ध षड्यंत्रों का अनुमान उसके मन में उसके महत्त्व को और अच्छी तरह जमा देता है। उसे पागलपन के दौरे आने लगते हैं। या तो वह अपने को बहुत महत्त्वपूर्ण व्यक्ति समझने लगती है या ठीक इसके विपरीत भावनाओं का शिकार होती है। अपने विश्व की केंद्र वह स्वयं बन जाती है। अपनी दुनिया से भिन्न किसी दुनिया को न जानने के कारण वह संसार की दृष्टि का केंद्र बन जाती है।

आत्ममुग्धता का यह खेल यथार्थ की कीमत पर खेला जाता है। एक काल्पनिक चरित्र एक काल्पनिक जनता से प्रशंसा की आकांक्षा करता है। अपने अहं पर आसक्त स्त्री का वास्तविक जगत् से कोई सरोकार नहीं रहता। वह औरों के साथ सम्बंध स्थापित करना भी नहीं चाहती। आत्ममुग्धा स्त्री यह मानना नहीं चाहती कि लोग उसे उस रूप में नहीं देखते जिस रूप में वह विश्व के सम्मुख रहती हैं। हमेशा आत्म-केंद्रित रहने के कारण वह लोगों की दृष्टि में हास्यास्पद हो जाती है। वह केवल अपनी ही भूमिका के बारे में बोलती रहती है। इस संदर्भ में मैरी बाशकि_व लिखती हैं, "इससे मुझे खुशी होती है। मैं उसके साथ बातचीत नहीं करती। मैं अभिनय करती हूं और यह सोचते कि मैं एक प्रशंसक और श्रोता के सम्मुख हूं, बच्चों की तरह बेतुके ढंग से काव्यात्मक पाठ और दिखावा करती हूं।"

आत्ममुग्धा स्त्री इतना अधिक अपने को देखती है कि वह दूसरों का कुछ भी देख नहीं सकती। वह दूसरों में केवल उतना ही देखती हैं जितना कि वह उनमें अपने जैसा पाती है। जो कुछ उसके लिए उपयुक्त नहीं होता, जो कुछ उसके जीवन-इतिहास से तालमेल नहीं रखता, वह सब उसकी समझ के बाहर रहता है। वह अपने अनुभव बढ़ाना चाहती है। वह प्यार का नशा और उसकी पीड़ा जानना चाहती है। वह मातृत्व का आनंद, मित्रता का सुख, एकाकीपन, हास्य और रुदन का अनुभव तथा आनंद पाना चाहती है, किंतु वह अपने को कभी किसी को समर्पित नहीं कर सकती। वस्तुत: उसके भाव कृत्रिम होते हैं । इसाडोरा

डंकन वास्तव में अपनी संतान की मृत्यु पर सच्चे आंसू टपकाने के बावजूद उसकी राख समुद्र में नाटकीय ढंग से फेंकना चाहती थी। इस स्थिति में वह केवल एक अभिनेत्री ही जंचती। उसकी वे पंक्तियां, जो उसने अपनी जीवनी में लिखी हैं, पढ़ते समय प्रत्येक पाठक के हृदय में परेशानी और शंका पैदा होती है :

"मुझे अपने शरीर की उष्यता का अनुभव होता है। मैं अपने नंगे पैरों की ओर देखती हूं। उन्हें फैलाती हूं। मेरे स्तन कोमलता के साथ हिलते रहते थे, उन सबको क्या हो गया? में अनुभव करती हूं कि मैं बारह वर्षों से थकी व परेशान हूं। मेरे हृदय में अंतहीन शोक है। मेरे हाथ शोकचिह्नित हो गए हैं। जब भी मैं अकेली रहती हूं, मेरी आंखें सूखी नहीं रहतीं।"

एक किशोरी अपने 'अहं' की आराधना से वह साहस प्राप्त करती है जो उसे अशांत भविष्य का सामना करने में समर्थ कर सकता है, लेकिन तत्काल यह अवस्था समाप्त हो जाती है। यदि ऐसा न हो तो भविष्य ही न आएगा। स्त्री अपने प्रेमी को विश्वव्यापी जोड़े के रूप में बंदी बना लेती है; वह अपनी और अपने प्रेम, दोनों की मौत का आह्वान करती है। अपने काल्पनिक रूप के साथ एकात्मता स्थापित कर लेने वाली स्त्री वास्तव में अपना नाश कर लेती है। उसकी स्मृति मानो स्थित हो जाती है। उसका व्यवहार अपरिवर्तित हो जाता है । वह शब्दों को दोहराती रहती है। वह उस भविष्य, को दोहराती रहती है जिसका महत्त्व नष्ट हो चुका है। इसीलिए स्त्रियों द्वारा लिखे गए संस्मरण और आत्म-कथाएं बड़ी दरिद्र होती हैं। उनमें विविधता और सम्पन्ता का अभाव होता है। ऐसी स्त्री तो हर सम, अपने लिए अगरबत्ती जला रही होती है। जो स्त्री कुछ नहीं करती, वह अपने को कुछ नहीं बना सकती। वह तो किसी अस्तित्वहीन के सामने मानो 'अगरबत्ती' जलाकर सुगंध बिखेरना चाहती है।

आत्ममुग्धा स्त्री का दुर्भाग्य है कि वह अपने वास्तविक अभाव को जानते हुए भी अपने खालीपन के प्रति जागरूक रहती है। उसके लिए किसी भी व्यक्ति और उसके प्रतिरूप का अस्तित्व ही नहीं रहत्ता । आत्ममुग्धा स्त्री को हमेशा निराशा ही मिलती है। वह अपने को पूर्ण रूप में कभी नहीं देख सकती। उसका अकेलापन मानो आकस्मिक होता है। इसीलिए जब तक उसमें परिवर्तन न आए, तब तक वह अशांत होकर लोगों की ओर भागती रहेगी। यह सोचना गलत होगा कि वह अन्यों पर आश्रित रहना नहीं चाहती, क्योंकि वह अपने को ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मानती है। ठीक इसके विपरीत, वह तो अपने को पूर्ण दासता में जकड़ लेती है। वह अपनी स्वतंत्रता पर नहीं टिक सकती। वह तो स्वयं अपने को ऐसी 'वस्तु' बना लेती है जो विश्व और विश्व के अन्य चेतन अस्तित्व द्वारा संकट में डाल दी जाती है।

परेशानी केवल यही नहीं है कि आत्ममुग्धा स्त्री की आकृति मांस से निर्मित है और शीघ्र ही विकृत हो जाएगी। व्यावहारिक रूप में भी किसी मूर्ति का श्रृंगार करना बड़ा महंगा पड़ता है, फिर उसे ऊंचे मंच पर स्थापित करना, उसके लिए देवालय बनाना तो और महंगा पड़ेगा। हमें ज्ञात है कि अपने को संगमरमर में बसा अमरत्व प्रदान करने के लिए मैरी बाशकित्सेव को मानो 'पैसों' से शादी करनी पड़ी। लोगों ने सोना, धूप और इत्र खरीदने के लिए रुपए खर्च किए। ये वस्तुएं इसाडोरा डंकन और सिसिल सोरेल के सिंहासनों के चारों ओर भी एकत्रित की गईं। चूंकि स्त्री का भाग्य पुरुष के हाथों में है, इसलिए वह अपनी सफलता अपने सम्पर्क में आने वाले पुरुषों और उनकी योग्यता से मापती है। यहां फिर पारस्परिकता आ जाती है। स्त्री पुरुष को अपना साधन बनाना चाहती है, पर वह स्वयं उससे मुक्त होना नहीं चाहती क्योंकि उसे बंदी बनाए रखने के लिए वह उसे हमेशा प्रसन्न रखना चाहती है। अमरीकन स्त्रियां, जो पुरुषों के लिए देवी-तुल्य हैं, अपने को अपने प्रशंसकों की दासी बना लेती हैं। उनका जीवन और सारा साज-शृंगार पुरुष के लिए ही होता है। आत्ममुग्धा स्त्री भी पुरुष पर उतनी ही निर्भर होती है जितनी अपनी। व्यक्ति-विशेष के अत्याचार से स्वयं बचने के लिए वह आम जनता के अत्याचार को स्वीकार करती है। जिस बंधन' से वह दूसरों के साथ बंधती है, उसमें पारस्परिकता नहीं होती। यदि वह दूसरे के द्वारा अपना स्वतंत्र मूल्यांकन चाहेगी और इस प्रकार अपने अस्तित्व को ज्ञात करेगी तो वह आत्ममुग्धा नहीं रह पाएगी क्योंकि यह मूल्यांकन कार्यों द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। उसके आचरण का सबसे बड़ा विरोधाभास यह है कि वह उस विश्व द्वारा महत्त्व प्राप्त करना चाहती है जिसे उसे मूल्यहीन समझना चाहिए, क्योंकि अपने विचारानुसार तो वह केवल अपने को ही महत्त्व देती है। दूसरों द्वारा प्राप्त मान्यता मानो एक अमानवीय शक्ति है, रहस्य और सनक है। इसको प्राप्त करने की कोई चेष्टा केवल जादू द्वारा ही की जा सकती है। यदि हम आत्ममुग्धा स्त्री के कृत्रिम गर्व पर गौर करें तो पता चलेगा कि वह अपनी विचित्र स्थिति स्वयं जानती हैं। इसलिए वह हमेशा अशांत, अतिसंवेदनशील, चिड़चिड़ी और अधिक सतर्क बनी रहती है। उसका दम्भ कभी तृप्ति नहीं जानता। आयु की वृद्धि के साथ-साथ सफलता और प्रशंसा के लिए उसकी इच्छा बढ़ती जाती है। उसे जितना शक होता है कि उसके चारों ओर षड्यंत्र है, उतना ही वह विकृत मनोवृत्ति वाली होती जाती है। वह अपनी स्थिति कृत्रिमता के अंधकार में छिपाना चाहती है, किंतु अंत में वह अपने चारों ओर भ्रांति की सृष्टि कर लेती है। यह कहावत उसके बारे में अक्षरशः सत्य है, "जिसे जीवन मिला है, वह उसे खोएगा ही।"

प्रेमिका

प्रेम शब्द का अर्थ स्त्री और पुरुष, दोनों के लिए ही होता है। इस शब्द का प्रयोग समझ-बूझकर न करने पर ऐसी गम्भीर गलतफहमियां पैदा हो जाती हैं जो प्रेमियों में विलगाव तक पैदा कर देती हैं। बायरन ने कहा है, "पुरुष का प्रेम पुरुष के जीवन का एक हिस्सा-भर होता है। लेकिन स्त्री का तो यह सम्पूर्ण अस्तित्व ही है।"

स्त्री और पुरुष के लिए 'प्रेम' शब्द का अर्थ अलग-अलग होता है। प्रेम से स्त्री क्या समझती है? स्पष्ट ही यह केवल अनुराग न होकर शरीर और आत्मा का ऐसा वरदान है. जो न तो बंधन मानता है, न किसी की परवाह करता है। चूंकि स्त्री का प्यार शर्तहीन होता है, इसलिए उसके लिए यह एक विश्वास है। स्त्री केवल एक को ही अपनाती है। पुरुष यदि किसी स्त्री से प्यार करता है तो प्रतिदान में वह उससे भी प्रेम पाना चाहता है। स्त्री की ही तरह आत्म-समर्पण करने वाले पुरुष मेरी दृष्टि में सच्चे पुरुष नहीं होते।

कभी-कभी पुरुष भी बड़ी भावुकता के साथ आवेगपूर्ण प्रेम करते हैं पर ऐसे पुरुष 'महान् प्रेमी' नहीं कहला सकते। बहुत आवेग में आकर प्रेम-लोक में खो जाने वाले पुरुष दरअसल सच्चा समर्पण नहीं करते। उनका 'अहं' भाव बना रहता है। प्रेमिका के सम्मुख घुटने टेकने वाले पुरुष भी वस्तुत: स्त्री पर आधिपत्य ही जमाना चाहते हैं। उनके लिए अन्य मूल्यवान वस्तुओं की ही श्रेणी में प्रेमिका भी होती है। वे उसे अपने अस्तित्व में विलीन कर लेना चाहते हैं। वे उस पर स्वयं को लुटा देना. नहीं चाहते, किंतु स्त्री अपने प्रेम के लिए सर्वस्व त्याग देती है। सिसिल सौवार्ज कहती हैं, "स्त्री प्रेम में अपना व्यक्तित्व भी भूल जाती है। यह प्राकृतिक नियम है। पुरुष के बिना स्त्री का अस्तित्व नहीं होता। बिना किसी अधिपति या स्वामी के मानो वह गुच्छे से बिखरा हुआ फूल होती है।" इस प्रसंग में हमें प्राकृतिक नियम से कुछ लेना-देना नहीं है। प्रेम के सम्बंध में स्त्री और पुरुष के विचारों की भिन्नता का कारण परिस्थितियों की भिन्नता है । सर्वोपरि उठने का महत्त्वाकांक्षी पुरुष विश्व पर आधिपत्य जमाने की चेष्टा करता है। पुरुष स्वभावतः महत्त्वाकांक्षी और कार्यरत होता है। बचपन से ही पुरुष का भाग्य उसके हाथ में रहता है। स्त्री पुरुष को अपने से उच्च जीव के रूप में देखने की अभ्यस्त है। वह उसकी समानता में कभी नहीं आ सकती। मनुष्यता के प्रति अपना दावा न त्यागने वाली स्त्री भी उच्च अस्तित्व के साथ मिल जाना चाहती है। उसके पास अपनी आत्मा और देह पुरुष को सौंप देने के अलावा और कोई विकल्प नहीं रहता। पुरुष मुख्य होता है। वह सर्वोत्तम का प्रतिनिधित्व करता है। चूंकि स्त्री के भाग्य में आश्रित होकर रहना लिखा है इसलिए वह किसी अत्याचारी, माता-पिता और संरक्षक की आज्ञा शिरोधार्य करने की अपेक्षा एक देव की सेवा करना अधिक पसंद करती है। वह दासत्व स्वीकार करने के लिए इस प्रकार बेचैन हो जाती मानो वह उसकी स्वतंत्रता को व्यक्त करता है। वह अपनी गौण अवस्था को स्वीकार करने के बावजूद उससे ऊपर उठने की चेष्टा करती है। अपने शरीर, भावनाओं और व्यवहार द्वारा वह अपने प्रेमी को महान्

हस्ती के रूप में सिंहासनासीन करती हैं। उसके सम्मुख वह अपना अस्तित्व मिटा देती है। प्रेम उसके लिए धर्म का रूप ले लेता है।

एक किशोरी बालिका पुरुष के साथ एकाकार होने का विचार त्याग देने के बाद पुरुषत्व की भूमिका ग्रहण करना चाहती है। दरअसल वह किसी एक के व्यक्तित्व से आकर्षित नहीं होती, बल्कि वह तो साधारणतः सम्पूर्ण पुरुष जाति से प्यार करती है। इरेन रिवेलीओटी लिखती हैं, "ओ पुरुष! मैं तुमसे प्यार करूंगी। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती हूं? मुझे यह सोचकर ही आनंद की अनुभूति हो रही है कि मैं शीघ्र ही तुमसे परिचित हो जाऊंगी। खासकर तुमसे, जो प्रथम हो।" वास्तव में पुरुष उसके लिए एक वर्ग होता है। काम-सुविधा उसी के सीमित आकार के द्वारा तो सम्भव है ? किसी देवतुल्य पुरुष को भी पहले मनुष्य तो होना ही पड़ेगा। एक औपनिवेशिक अधिकारी की पुत्री के लिए वहां का मूल निवासी मनुष्य नहीं होता। यदि कोई युवती अपने से निम्न स्तर के व्यक्ति के सम्मुख समर्पण करती है तो मानो वह स्वयं अपने को नीचा गिराती है। साधारणतः वह किसी पुरुष की ही तलाश करती है।

स्त्री के साथ अत्यधिक घनिष्ठता से पुरुष की प्रतिष्ठा भंग हो जाती है। वह प्रथम चुम्बन में भी नष्ट हो सकती है, और सुहागरात में भी। शारीरिक रूप में प्राप्त किए जाने पर ही प्रेम अपनी तीव्रता प्राप्त करता है। ऐसा कहा जाता है कि सम्भोग के बाद ही प्रेम का अंकुर फूटता है। इसी अवस्था में कामुक स्वभाव वाली स्त्री के हृदय में उस पुरुष के प्रति ऊंची भावनाएं पैदा हो जाती हैं जिसे पहले वह नगण्य समझती थी।

प्रायः देखा जाता है कि स्त्री किसी भी पूर्व-परिचित पुरुष को गौरवान्वित नहीं करती। स्त्री के जीवन में प्रेम का स्थान सीमित होता है। पति, संतान, घर, आमोद-प्रमोद, सामाजिक कर्तव्य, दम्भ, काम-वासना और जीवन-वृत्तियों का महत्त्व बढ़ जाता है। अनेक स्त्रियां महान् प्रेम का स्वप्न देखती हैं। उनका मनचाहा प्रेम प्रायः नहीं मिलता, बल्कि उसके बदले की वस्तु प्राप्त होती है। प्रेमं उन्हें प्रायः अधूरा मिलता है-खरोंच खाया हुआ, उपहासात्मक और मिथ्या । बहुत कम स्त्रियां इस प्रेम को अपना जीवन समर्पित करती हैं। आदर्श प्रेमिकाओं के उदाहरण किशोरावस्था के ही युवकों और युवतियों में मिलते हैं। अधिकांश स्त्रियां परम्परागत स्त्री का भाग्य स्वीकार कर लेती हैं। वे पति, घर और संतान में लीन हो जाती हैं। कुछ स्त्रियां कोई ऐसा साहसिक कार्य भी करती हैं जिसमें उन्हें प्रायः असफलता मिलती है। किसी उपयुक्त अवसर के दिखाई देने पर वे अपना निराश जीवन मोक्ष की आशा में अपने से किसी श्रेष्ठ पुरुष को सौंप देती हैं।

बिल्कुल स्वतंत्र रहना बहुत कम स्त्रियां पसंद करती हैं। अधिकांश स्त्रियों को किसी पुरुष के प्रति समर्पित हो जाना अधिक आकर्षक लगता है। अपने जीवन का भार स्वयं उठाना स्त्री को स्वभावतः कष्टकर लगता है। किशोर अवस्था का पुरुष अपने से अधिक

आयु वाली स्त्री की ओर सहर्ष झुकता है। वह चाहता है कि वह उसको रास्ता दिखाए, शिक्षा और मातृत्व का स्नेह दे। लड़कों की शिक्षा और उनके परम्परागत संस्कार इस प्रकार दूसरों पर निर्भर होकर सहज में अपनी समस्या का समाधान पाने की अनुमति नहीं देते। अपने से अधिक आयु वाली स्त्रियों के साथ थोड़ा-सा सम्बंध रखना मानो लड़कों के जीवन का एक नाटकीय अंश होता है जो उन्हें निभाना पड़ता है। यह पुरुष का सौभाग्य है कि बचपन और वयस्क दोनों अवस्थाओं में उसे कठिन मार्ग अपनाना पड़ता है, किंतु स्त्री का यह दुर्भाग्य है कि वह चारों ओर से ऐसे प्रलोभनों से घिरी रहती है जिनका संवरण नहीं कर पाती। हर वस्तु उसे उस चढ़ाई की ओर ले जाती है जो सहज चढ़ी जा सके। उससे तो यह कहा जाता है कि वह अपने को सिर्फ सरकाती रहे । उसे तो मोहिनी शक्ति का स्वर्ग प्राप्त हो जाएगा। जब तक उसे ज्ञात होता है कि उसे मृगतृष्णा ने छला है, तब तक समय बीत गया रहता है। वह अपनी शक्ति एक पराजित होने वाले उद्यम में खो बैठती है।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषकों के कथनानुसार स्त्री अपने प्रेमी में पिता की प्रतिमूर्ति चाहती है । सत्य तो यह है कि वह पिता में पिता को नहीं, बल्कि प्रेमी पुरुष को देखती है। वह उसे चकाचौंध में डाल देता है। हर पुरुष में यह जादुई शक्ति होती है। स्त्री एक व्यक्ति को दूसरे में मूर्त नहीं चाहती, बल्कि वह उस परिस्थिति का पुनः निर्माण करना चाहती है जिसका अनुभव उसने एक छोटी बालिका के रूप में वयस्कों के संरक्षण में किया था। वह परिवार और घर में बिल्कुल विलीन हो जाती है। अपनी सक्रियता के बावजूद वह निष्क्रियता की शांति से परिचित हो जाती है। प्रेम उसे उसका बचपन भी वापस कर देता है। वह अपने सिर पर किसी की छत्र-छाया चाहती है। वह ऐसी सत्ता चाहती है जो उसकी स्वतंत्रता पर अंकुश लगा सके। इस बाल-सुलभ नाटकीय आचरण की याद तब आती है जब किसी स्त्री को 'छोटी बालिका' कहकर सम्बोधित किए जाने पर प्रसन्न होते देखा जाता है। पुरुष अच्छी तरह जानते हैं कि "तुम बिल्कुल छोटी बच्ची-सी हो'- वाक्य का उच्चारण स्त्री के हृदय को मार्मिक ढंग से छूता है। अनेक स्त्रियां पूरी उम्र बालिका बनी रहना चाहती हैं। पुरुष की बांहों में फिर बालिका बन जाना तो मानो उनकी खुशी को छलका देता है। "मैं तुम्हारी बांहों में अपने को बच्ची की तरह महसूस करती हूं"- यह वाक्य अनेक प्रेमालापों और प्रेम-पत्रों में मिलता है। प्रेमी गुनगुना कर कहता है, "मेरी बच्ची!" और स्त्री स्वयं कहती है, "तुम्हारी गुड़िया!" एक युवती भी लिखती है, "मुझ पर शासन करने वाला प्रिय अब आएगा?" और जब वह आता है तो उसके पौरुष की श्रेष्ठता को जानने के लिए वह उससे प्रेम करती है।

अनेक उदाहरणों से यह प्रकट होता है कि प्रेमी में अपने को विलीन कर देने के स्वप्न के पीछे जीने की लालसा छिपी रहती है। सभी धर्मों में ईश्वर के प्रति श्रद्धा और प्रेम की भावना के साथ मोक्ष की इच्छा जुड़ी रहती है। स्त्री अपने आराध्य के सम्मुख अपने को

समर्पित करते समय आशा करती है कि वह उसे अपने पर आधिपत्य स्थापित करने देगा। वह अपने प्रेमी से प्रायः न्याय की मांग करती है। वह चाहती है कि उसके अहं को उत्कृष्ट बनाया जाए। अनेक स्त्रियां पूरा प्यार न पाने पर अपने को प्रेमी पर न्यौछावर नहीं करतीं। कभी-कभी तो उनका प्रेम एक दिखावा-भर होता है। नवयौवना यही स्वप्न देखती है कि पुरुष उसे किस रूप में देखेगा? पुरुष की दृष्टि में महत्त्व प्राप्त करना ही स्त्री अपने जीवन की सार्थकता समझती है।

प्रेम में लीन स्त्री अपने को महान् आदर्शों से सम्पन्न मानती है । अपने द्वारा जगाए गए प्रेम के ही माध्यम से वह देव-तुल्य हो जाती है। हर्षोल्लास में डूबी हुई स्त्री कहती है, "मैं स्वीकार करती हूं, मैंने समर्पण किया। मैंने इस व्यक्ति को दूसरे दिन आने की अनुमति दी। मेरी यह इच्छा थी कि वह अपने में केवल एक प्रेमी और मित्र को न देखे, बल्कि एक ऐसे उत्सुक दर्शक को भी देखे जो मुझे और मेरे जीवन को देखता है।" कैथराइन मैंसफील्ड ने एक पत्र में लिखा था, "मैंने एक सुंदर बैंगनी कमरपट्टी खरीदी है। कैसी दुःख की बात है कि उसे देखने वाला कोई भी है ? इससे कटु और कोई भी अनुभव नहीं होता कि कोई व्यक्ति जो फूल और रत्न के समान हो, उसका चाहने वाला कोई न हो? यह कैसी सम्पत्ति है जो मुझे सम्पन्न नहीं करती और न जिसके वरदान की कोई कामना करता है?"

प्रेम की परिवर्तनकारी शक्ति इस तथ्य को अच्छी तरह व्यक्त करती है कि प्रतिष्ठित पुरुष शारीरिक आकर्षण के अभाव में भी स्त्री को मुग्ध करके गहरे प्रेम-पाश में आबद्ध कर पाने में समर्थ होते हैं। अपनी महान् व उच्च स्थिति से वे कानून और सत्य को मूर्तता प्रदान करते हैं। उनकी सूक्ष्मदर्शिता उनके सम्मुख यथार्थ का उद्घाटन करती है। ऐसे पुरुषों का अनुग्रह पाने वाली स्त्री स्वयं को अमूल्य निधि में परिणत हो गई समझती है। 'माई लाइफ' नामक पुस्तक की प्रस्तावना में इसाडोरा डंकन ने डी. अनंजीओ की सफलता का यही कारण बताया है, "डी. अनंजीओ किसी स्त्री से प्रेम के समय उसकी आत्मा को पृथ्वी से उठाकर उस दिव्यलोक में ले जाता था जहां एक अप्सरा विचरण करती है और आलोक फैलाती है। वह प्रत्येक स्त्री में एक अलौकिक तत्त्व भर देता था। वह स्त्री को इतनी उच्चता प्रदान कर देता था कि वह अपने को वास्तव में वेनिस के समान महसूस करने लगती थी। वह प्रेमिका को एक चमकीला आवरण प्रदान करता था। वह साधारण व्यक्तियों से ऊंचे स्तर पर उठकर एक विचित्र आलोक में लुप्त हो जाता था और स्त्री फिर साधारण प्राणी में परिवर्तित हो जाती थी।" डी. अनंजीओ किसी भी स्त्री को प्रशंसा के माध्यम से यह अनुभव करा सकता था कि एकमात्र वही सच्चे आकर्षण का केंद्र बन सकती है।

प्रेम के वश में होने पर ही स्त्री अपनी कामुकता और आत्ममुग्धता में सामंजस्य स्थापित कर सकती है। इन दोनों भावनाओं में स्वाभाविक विरोध के कारण स्त्री अपने रति-भाग्य के अनुकूल अपने को नहीं ढाल सकती। उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो आलिंगन उसके शरीर

को नष्ट और कलंकित करते और आत्मा को तुच्छ बना देते हैं। इसलिए कुछ स्त्रियां निरुत्साहित हो जाती हैं। वे सोचती हैं कि इस प्रकार वे 'अहं' की अखंडता बनाए रख सकती हैं। निरुत्साह को वे पाशविक आनंद से अलग हो जाने का आधार मानती हैं। स्टेकल ने एक घटना का वर्णन करते हुए लिखा है कि रोगी अपने सम्माननीय और प्रसिद्ध पति के साथ बड़ी ठंडी और निरुत्साहित रहती थी। पति की मृत्यु के बाद उच्चकोटि के एक संगीतज्ञ से उसे प्रेम हो गया, पर वह उसकी काम-इच्छा के प्रति ठंडी ही बनी रही। संयोगवश उसकी मुलाकात पाशविक प्रकृति वाले एक वनरक्षक से हो गई। उस व्यक्ति के साथ काम-क्रीड़ा में उसे अत्यधिक आनंद प्राप्त हुआ। मदहोशी की अवस्था समाप्त होने पर उसे पुरुष के अपने प्रेमी के बारे में सोचने से घृणा महसूस होने लगी। स्टेकल के कथनानुसार कई स्त्रियों को पाशविकता द्वारा ही कामोत्तेजक आनंद प्राप्त होता है। ऐसी स्त्रियों का प्रेम केवल शारीरिक होता है। यह एक ऐसी पतित स्थिति है जिसका स्नेह और सम्मान के साथ कोई सामंजस्य नहीं हो सकता। प्रेम की अवस्था में स्त्री को सम्पूर्ण रूप से समर्पित होना पड़ता है। वह एक शांत उल्लास को लहर में बहती हुई आंखें मूंद लेती है। ऐसे क्षणों में वह 'गर्भ', 'देह', 'कब्र' के घोर अंधेरे से घिर जाती है। अपने को मिटाकर वह सम्पूर्ण में विलीन हो जाती है। उसका अहं नष्ट हो जाता है। अलग होते ही उसे लगता है कि वह फिर पृथ्वी पर आ पहुंची है।

सम्भोग के बाद तो प्रेम उसी प्रकार और अधिक आवश्यक हो जाता है, जिस प्रकार बालक माता का स्तनपान छूट जाने पर माता-पिता की ओर से आश्वासन की दृष्टि चाहता है। स्त्री पुरुष के प्रेमपूर्ण व्यवहार से यह महसूस करती है कि शारीरिक सम्पर्क के बाद भी वह सम्पूर्ण के ही साथ है। सम्भोग में स्त्री शायद ही कभी पूर्ण तृप्ति का अनुभव करती है। कामोन्माद की स्थिति पर पहुंचकर भी वह शारीरिक आनंद के जादू से पूर्ण स्वतंत्र नहीं हो पाती। उसकी इच्छा बनी रहती है। उसे आनंद प्रदान करने के लिए पुरुष उसके साथ लगाव बढ़ा लेता है। वह उससे स्वतंत्र नहीं रहती, बल्कि एक संयोजित निधि बन जाती है। घटता हुआ आनंद आशा और विश्वास बन जाता है। स्त्री अपनी काम- वासना को गौरव के साथ स्वीकार कर लेती है क्योंकि उन क्षणों में वह सर्वोपरि उठ जाती है। उत्तेजना, आनंद और कामना अब एक स्थितिमात्र नहीं रहते। स्त्री का शरीर अब एक वस्तुमात्र न रहकर एक देव-गीत और अलौकिक लय बन जाता है।

कभी-कभी कहा जाता है कि अपने को मिटा देने की इच्छा आत्म-पीड़क कामुकता की ओर ले जाती है, परंतु आत्म-पीड़क कामुकता तो वहीं दिखाई देती है जहां स्वयं अपनी मूर्ति को अन्य वस्तु मानकर स्त्री दूसरों के माध्यम से आकर्षित हो जाती है। प्रेम में रत स्त्री तो उस आत्ममुग्धा की तरह नहीं होती जो अपने 'अहं' से एकाकार हो जाती है। उसमें तो आत्म-सीमाओं को लांघकर 'असीमित' बन जाने की तीव्र इच्छा होती है। अपने उद्धार व

रक्षा की आशा से वह आराध्य के प्रति अपने को समर्पित कर देती है। उसकी भावना रहस्यात्मक रूप धारण कर लेती है। वह यह नहीं चाहती कि उसका देव उसकी प्रशंसा करे, उसे पसंद करे, बल्कि वह तो उसमें विलीन हो जाना चाहती है। वह उसकी बांहों में अपने को भूल जाना चाहती है।

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री प्रेम में अपना अस्तित्व मिटा देना चाहती है। वह उन सीमाओं को नष्ट कर देना चाहती है जो उसे उसके प्रियतम से अलग रखती हैं। यहां आत्म-पीड़क कामुकता का प्रश्न नहीं रहता, बल्कि आत्म-विभोर होकर प्रिय से मिलने के स्वप्न को साकार करने के लिए स्त्री सर्वप्रथम प्रिय की सेवा करना चाहती है। वह अपने प्रेमी की इच्छाओं को पूरा करने में अपनी अनिवार्यता महसूस करती है। सेवा के माध्यम से वह प्रिय के अस्तित्व का हिस्सा बन जाना चाहती है। वह उसकी क्षमताओं में भाग लेकर दोषमुक्त हो जाना चाहती है। प्रेमिका अपनी चेष्टाओं से एक ऐसे नीड़ की रचना करती है जिसमें प्रिय को विश्राम का अनुभव हो, वह उसके कपड़ों की देखभाल करती है, वह उसके कागजों को पढ़ती है, लेखों को छांटकर निकाल लेती है, पत्रों और टिप्पणियों को अलग करती है, हस्तलिपि की प्रतिलिपि बनाती है।

प्रेम में रत प्रत्येक स्त्री में ये विशेषताएं पाई जाती हैं। यदि आवश्यकता पड़ती है तो प्रेमिका अपने प्रेमी के लिए स्वयं अपने ऊपर अत्याचार करती है। प्रेमिका अपना सर्वस्व प्रिय को देना चाहती है जिससे वह स्वयं सार्थक हो सके। वह प्रिय से अलग अपने लिए कुछ भी नहीं रखना चाहती। जब प्रिय उससे कोई मांग नहीं करता तब वह दुःखी हो जाती है, इसीलिए भावुक प्रेमी अपनी प्रिया से नई-नई मांगें करते रहते हैं।

उदार भावनाओं का आत्म-पीड़कता के उन्माद में बदल जाना सहज है। प्रेम में लीन स्त्री प्रेमी के सम्मुख बालिका के समान हो जाती है। प्रेमी के द्वारा अपेक्षित प्रेम न मिलने पर स्त्री का आत्म- मोह आत्म-विरक्ति में बदल जाता है। वह अपमान का अनुभव करती हुई स्वयं से घृणा करने लगती है। और फलस्वरूप आत्म-प्रताड़ना करने लगती है। कभी-कभी तो स्त्री जीवन-भर आत्म-प्रताड़ना का शिकार बनी रहती है। वह प्रेमी को पूर्णरूपेण संतुष्ट न कर पाने के कारण भी अपने पर क्रुद्ध होकर आत्म-प्रताड़ित होती रहती है। यह स्थिति उसे आत्म-पीड़क कामुकता की ओर भी ढकेल सकती है।

हमें दो घटनाओं को आपस में नहीं मिलाना चाहिए। एक स्थिति में तो प्रेम में रत स्त्री अपने से ही प्रतिशोध लेने के लिए स्वयं को प्रताड़ित करती है, लेकिन दूसरी स्थिति में वह अपने प्रेमी की शक्ति और स्वतंत्रता को पुष्ट करना चाहती है। इसलिए वह उसके द्वारा प्रताड़ित होना स्वीकार करती है। यह एक साधारण सच्चाई है कि वेश्या अपने रसिकों द्वारा प्रताड़ित होने पर अभिमान महसूस करती । वह यह भी चाहती है कि उसका रसिक दूसरे

पुरुषों के साथ भी दुर्व्यवहार करे। कभी-कभी तो वह उसे मल्ल-युद्ध के लिए भी उकसाती है क्योंकि वह चाहती है कि उसके स्वामी की शक्ति और प्रतिष्ठा का प्रदर्शन हो।

पुरुष की शक्ति के अनुसार चलने में आनंद का अनुभव करने वाली स्त्री निरंकुश पुरुष के अत्याचारों की भी प्रशंसा करती है। प्रेमी प्रेमिकाओं को तभी तक महत्त्वपूर्ण लगते हैं जब तक वे प्रेम की अलौकिकता को व्यक्त करें। यदि वे ऐसा करते हैं तो स्त्री उन्मत्त हो जाती है। उसे यह सोचकर आनंद की अनुभूति होती है कि वह किसी अन्य के स्वच्छंद आचरण का शिकार है। किसी अन्य की बदलती हुई और निरंकुश इच्छा के माध्यम से यदि स्त्री न्यायसंगत या दोषमुक्त मानी जाती है तो उसे यह बड़ा ही आश्चर्यजनक लगता है। क्योंकि हमेशा एक-सा जीवन जीते-जीते वह थक जाती है। उसके लिए चुपचाप आज्ञा-पालन करना ही मानो कुछ हठात परिवर्तन-सा लगता है। प्रेमी के निरंकुश आदेश और बदलते हुए स्वप्नों के अनुसार स्त्री गुलाम, रानी, पुष्प, हिरणो, धब्बा-लगे कांच की खिड़की, चंचल सेविका, वेश्या, काव्य, साथी, माता, भगिनी और बालिका बन जाती है। वह इन सारी सम्भावनाओं के लिए पहले से ही तैयार रहती है। प्रेम और कामुकता के अतृप्त रहने पर ही स्त्री आत्म-पीड़न का मार्ग अपनाती है। आत्म-समर्पण का यह स्वाभाविक रूप नहीं होता । आत्मपीड़न में अहं भी होता है और अपमानित भी। प्रेम में 'मुख्य' का अनुग्रह आत्म-विस्मृत कर देता है। प्रेमी के साथ विलीन होना ही मानव-प्रेम और रहस्यवादी प्रेम का चरम लक्ष्य है। प्रेमी को सेवा ही काफी नहीं है क्योंकि मान्यताओं का माप और विश्व का सत्य तो उसकी चेतना में है। प्रेम में रत स्त्री प्रेमी की दृष्टि से देखना चाहती है। वह वही पुस्तकें पढ़ती है जो वह पढ़ता है। वही चित्र और संगीत वह पसंद करती है जो उसका प्रेमी पसंद करता है। उसे उसी दृश्य में रुचि होती है जो वह प्रेमी के साथ देखती है। वह उसी के विचारों में रुचि लेती है। जिससे वह मित्रता करता है उसी से वह मित्रता करती है और उसके शत्रुओं से ही शत्रुता । प्रेमी के विचार ही स्त्री के विचार होते हैं। वह अपने प्रश्नों के उत्तर प्रेमी के मुख से ही सुनना चाहती है। वह अपने फेफड़ों में वही हवा चाहती है जिसमें उसका प्रेमी सांस लेता है। जो फल प्रेमी के हाथ से नहीं आते उनमें स्त्री को स्वाद नहीं आता। उसे तो सौरभ भी प्रेमी के दिए फूलों में ही महसूस होता है। वदरिंग हाइट्स' की नायिका कैथोरिन कहती है, "मैं हीथ क्लीथ हूं।" प्रेम में लीन स्त्री की यही पुकार होती है। वह अपने प्रेमी का दूसरा अवतार होती है। वह अपनी दुनिया को उसकी दुनिया के लिए भटक जाने देती है। प्रेम में रत स्त्री को सबसे अधिक सुख का अनुभव तब होता है जब वह यह अनुभव करती है कि प्रेमी उसे अपना एक अंश मानता है। जब वह 'हम' शब्द का प्रयोग करता है तब वह उसके साथ एकात्म हो जाती है। वह उसकी प्रतिष्ठा में भाग लेती है और उसके साथ ही विश्व पर शासन करती है। हम' जैसे आनंदप्रद शब्द को दोहराते हुए वह थकती नहीं। वह प्रेमी के अस्तित्व में एक निरपेक्ष आवश्यकता बनकर विलीन हो जाना चाहती है। वस्तुतः अपने आत्म-समर्पण द्वारा प्रेमिका प्रेमी की अमूल्य निधि बन जाना

चाहती है। यह विश्वास उसे महान् आनंद प्रदान करता है। उसे लगता है कि वह ईश्वर की दाईं ओर स्थान पा चुकी है। जब तक वह अपने प्रेमी से प्रेम करती है और प्रेमी उससे प्रेम करता है तथा उसे आवश्यक समझता है तभी तक वह अपने अस्तित्व का औचित्य महसूस करती है।

यह गौरवशाली सौभाग्य विरला ही स्थायी होता है। वास्तव में कोई भी मनुष्य ईश्वर नहीं होता। मनुष्यमात्र के लिए प्रेम के साथ पीड़ा का लगाव होता है, किंतु या तो उसकी तड़प अल्पकालीन होती है या अत्यधिक त्रासद। बेंजामिन कांस्टेंट अपनी प्रेमिका के लिए मर जाना चाहते थे, लेकिन वे बारह महीनों में ही स्वस्थ हो गए। स्टेंडल मेटिल्डा के लिए बरसों तड़पते रहे पर यह तड़प उनकी जिंदगी को नष्ट करने के बदले उनके जीवन को सुरक्षित कर खुशबू से भर गई। स्त्री प्रेम की इस नगण्य भूमिका में पुरुष पर निर्भरता के कारण अपने लिए एक नर्क ही खड़ा कर लेती है। प्रेम में रत हर स्त्री अपने को 'हैंस एंडरसन' की उस जलपरी के रूप में देखती है जिसने अपनी मछली की पूंछ प्रेम के वशीभूत होकर स्त्री के छोटे पैरों से बदल ली और तब उसने यह सत्य देखा कि वह चुभती हुई सूइयों और जलते अंगारों पर चल रही है। यह सत्य नहीं कि परिस्थिति और संयोग से परे भी प्रेमी स्त्री के लिए परम अनिवार्यता बना रहे और स्त्री उसके लिए उतनी आवश्यक न हो। कोई भी मनुष्य अपने पुजारी को उसके अस्तित्व का औचित्य नहीं प्रदान कर सकता। पुरुष तो इस प्रकार अधिकृत हो जाना कभी नहीं चाहता।

सच्चे प्रेम को 'अन्य' की सापेक्षता और उसको स्वभावगत विशेषता सीमाओं तथा निर्मूलता सहित स्वीकार करनी चाहिए। यह मोक्ष का एक तरीका नहीं, बल्कि एक मानवीय सम्बंध है। प्रेम में रत स्त्री से कोई मानो फुसफुसाकर कहता है, "वह इस प्रेम के योग्य नहीं है" और आगे आने वाली पीढ़ी ऐसे विवर्ण नायकों के लिए मलिन मुस्कान देती है। स्त्री को अपने आराध्य के दोषों का उद्घाटन देखने से निराशा होती हैं। 'कॉलेट' ने अपनी नायिकाओं में इस परिणाम का मार्मिक चित्रण किया है। भ्रम का ढहना तो और क्रूर सिद्ध होता है क्योंकि इस मूर्ति के लिए स्त्री ने अपनी पूर्णाहुति दी थी।

यदि स्त्री द्वारा चुना गया व्यक्ति असीम प्रेम के योग्य है, तब भी यह मानना पड़ेगा कि वह इसी संसार का है और सांसारिक है, किंतु स्त्री जिसके सामने घुटने टेककर बैठती है, जिसे महान् एवं उच्च समझती है, वह भी एक साधारण व्यक्ति ही होता है। स्त्री वास्तव में अपनी आत्मा द्वारा ही छली जाती है । वह देखने की इच्छुक नहीं होती कि उस व्यक्ति की मान्यताएं सांसारिक हैं। उसका विश्वास एवं उसका समर्पण उसके और उस व्यक्ति के बीच, जिसे वह श्रद्धा अर्पण करती है, एक बाधा के रूप में होता है। वह उसे धूप चढ़ाती है, उसके सम्मुख नत-मस्तक होती है लेकिन वह उसकी मित्र नहीं होती क्योंकि वह यह अनुभव नहीं करती कि अंततः वह भी नश्वर ही है। उसकी योजनाएं और उद्देश्य वैसे ही

नाजुक और शिथिल हैं जैसी कि वह स्वयं । स्त्री उसे सत्य और विश्वास मानकर उसकी स्वतंत्रता और शक्ति को गलत समझती है। उसके संकोच और आत्मा के दु:ख को वह नहीं समझ पाती। स्त्री अपने प्रेमी से अनुग्रह चाहती है। क्या वह मिलता है? वह उदार हैं, वैभवशाली है, शानदार है, शाही और अलौकिक है। क्या यह अस्वीकार किया जाता है ? नहीं, तो वह लालची, नीच, क्रूर, शैतान-रूप और पाशविक जीव है-ऐसा कहने में आपत्ति हो सकती है। यदि 'हां' कहना बड़ा ही आश्चर्यजनक और अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत हो तो क्या 'ना' कहने से अचम्भा नहीं होगा? यदि 'ना' उसकी नीचता और स्वार्थपरता को प्रदर्शित करता है तब 'हां' कहने पर इतना आश्चर्य क्यों? अलौकिक मानव और अमानुषिक मानव के बीच मानव का कोई स्थान नहीं। पदच्युत देवता मानव नहीं होता। वह एक झूठ होता है। प्रेमी के सम्मुख सिर्फ दो ही विकल्प होते हैं। या तो वह यह प्रमाणित करे कि वह शाही है और चाटुकारिता को स्वीकार करे, या फिर अपने को अपहरणकर्ता माने। यदि उसे श्रद्धा और प्रेम न दिया जाए तो उसे कुचला जाएगा। प्रेम में रत स्त्री अपने प्रेमी में कोई भी कमजोरी नहीं देखना चाहती। उसने उसे प्रभामंडल से मंडित किया है। स्त्री को बड़ी निराशा और परेशानी होती है यदि उसका प्रेमी उसकी अपेक्षाओं के अनुरूप अपनी मर्यादा की रक्षा न कर सके। यदि वह लापरवाह हो जाता है या थक जाता है, यदि उसे भूख और प्यास अनुचित समय पर लगती है, यदि वह कोई गलती करता है या फिर अपनी ही बात काटता है तो स्त्री दु:खी होकर कहती है कि वह 'वह' न रहा। प्रेमी के द्वारा अपनी पसंद का कार्य न हो पाने पर वह अपनी निराशा से दंड देती है। इस प्रकार वह अपने ही निर्णायक का न्याय करती है और उसे उसकी स्वतंत्रता से वंचित कर देती है, जिसके आधार पर वह उसका स्वामी बना था। अपने प्रेमी की आराधना उसकी अनुपस्थिति में करके स्त्री को जितना संतोष मिलता है, उतना उसकी उपस्थिति में नहीं। ऐसी स्थिति में वह उसके सपनों का राजकुमार न रहकर एक दरिद्र और क्षुद्र प्राणी रह जाता है। दरअसल यदि स्त्री प्रेमी पर आशातीत महानता न आरोपित करती तो कदाचित् वह इतना बौना नहीं सिद्ध होता। भावुक और प्रेम करने वाली स्त्री के जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप उसकी उदारता का शीघ्र ही अनुदारता में परिणत हो जाना होता है। वह अपने को अन्य के साथ एकात्म कर देती है और फिर अपने व्यक्तित्व की क्षतिपूर्ति प्रेमी को बंदी बनाकर करना चाहती है। चूंकि उसने प्रेमी को अपना सर्वस्व दे दिया है इसलिए बदले में वह प्रेमी को एक कीमती उपहार की तरह अपने लिए सुलभ बना लेना चाहती है।

स्त्री अपने को गुलाम बनाकर पुरुष को अपने बंधन में बांध लेने का पक्का उपाय कर लेती है। अनेक पुरुषों ने अपने जीवन में प्रेम की इस व्यर्थता को समझा । डी. एच. लारेंस और मौंथरलैंट जैसे लेखकों ने प्रेम के संदर्भ में कहा है कि यह मिलता तो उपहार की तरह है, किंतु वास्तव में होता बड़ा जालिम है। बेंजामिन कांस्टेंट ने डाल्फे नामक पुस्तक में बड़े

कड़वे शब्दों में इस बंधन की चर्चा की है जो स्त्री के उन्मत्त आवेगों के कारण पुरुष को जकड़ लेता है।

प्रेम को स्वीकार करने और प्रेमिका के प्रति कृतज्ञता-बोध के बावजूद प्रेम के बोझ के नीचे पुरुष कुचलकर रह जाता है। स्त्री की निरंकुश एषणाएं तब भी तृप्त नहीं होती। प्रेमी पुरुष भी अत्याचारी होता है, परंतु जब उसे अपनी वांछित वस्तु प्राप्त हो जाती है तब वह संतुष्ट हो जाता है; किंतु स्त्री की कठोरता-मिश्रित श्रद्धा में निहित भोगों की कोई सीमा नहीं होती। अपनी प्रेमिका में विश्वास रखने वाला प्रेमी उसकी व्यस्तताजन्य दूरी को सहज भाव से स्वीकार करता है। इसके विपरीत प्रेमी की अनुपस्थिति स्त्री के लिए त्रासद हो जाती है। वह उसकी आंख भी होता है, और निर्णायक भी। जैसे ही प्रेमिका के अलावा वह किसी और की ओर देखता है, प्रेमिका वैसे ही हताश हो जाती है। दूसरी ओर देखते ही वह उसका सब कुछ छीन लेता है। वह दूर है तो मानो उसने स्त्री को त्याग दिया है। स्त्री को लगता है मानो उसने अपने को और अपनी दुनिया को खो दिया है। उसके पास बैठा हुआ भी यदि वह लिखता और पढ़ता है तो मानो उसने उसको छोड़ दिया है, उसे धोखा दिया है। उसके सोने से स्त्री को ईर्ष्या होती है। जबकि बादलेयर को सोती हुई स्त्री के प्रति अधिक ममता उमड़ती थी। पुरुष हमेशा प्रेमिका पर एकाधिकार चाहता है। यदि वह उसकी है तो सोती हुई भी उसके लिए सुंदर और वांछनीय हैं। वह किसी और की नहीं है, पुरुष के लिए यही विश्वास काफी होता है। देवता और अधिपति अंतर्व्यापिता में सुखी नहीं होते। सोते हुए पुरुषों को स्त्री घृणा की दृष्टि से देखती है। शरीर की इस निष्क्रियता से उसे वितृष्णा होती है। यह शरीर उसके लिए न जगकर अपने लिए सो रहा है ? बायलेट लेडवे इसे मार्मिक ढंग से व्यक्त करती है :

"मुझे सोए हुए पुरुषों से घृणा है। मैं उनके ऊपर बुरे इरादों से झुकती हूं। उनकी विनम्रता से मुझे झुंझलाहट होती है। मुझे अचेतन शांति से घृणा है। अध्ययनशील मुखमंडल! मेरे सोए प्रेमी का जगाना कठिन है। वह तमाम लगावों को झाड़-पोंछ चुका है। चेतना को सुलाकर उसकी शांति पाने की शक्ति से मैं घृणा करती हूं, क्योंकि उसकी इस शांति के सुख में मैं भागीदार नहीं हूं। हम दुनिया से ऊपर उड़ रहे थे। हम रुक गए। हम अपने निर्दिष्ट पर पहुंचे। हम साथ कराहे और साथ ही हारे और जीते। हम लोगों ने मजे के साथ अपने कर्तव्यों को त्यागा। हम लोगों को एक नया खालीपन मिला। तुम सो रहे हो, मुझे तुमसे घृणा होती है।"

स्त्री पुरुष को केवल बंदी के रूप में रखना चाहती है। यह स्थिति प्रेम के संदर्भ में त्रासदी लाती है। स्त्री अपनी सर्वोपरिता पुरुष को सौंप कर स्वयं निष्क्रिय हो जाती है। प्रेमिका

अपनी अंतापिता में निष्क्रिय होकर न्यूनीकृत हो जाती है। मृत्यु तब एकमात्र समाधान रह जाता है।

स्त्री इस संकट को जानती है। केवल ईर्ष्यापूर्ण उन्मत्त अवस्था के अतिरिक्त वह हमेशा चाहती है कि पुरुष अपने को प्रदर्शित करे और सक्रिय रहे। जब एक वीर किसी नए साहसिक कार्य के लिए प्रस्थान करता है तो एक बार उसकी प्रेमिका नाखुश हो जाती है, लेकिन वह उसके सिरहाने बैठा रहे और न जाए तो वह उससे घृणा करने लगती है। असम्भव प्रेम की यही त्रासदी है। स्त्री पुरुष पर पूर्ण रूप से आधिपत्य जमाना चाहती है, पर साथ ही यह भी चाहती है कि वह हर सीमा का अतिक्रमण करता हुआ सर्वोपरिता की ओर अग्रसर हो । जैसा कि हेडेगर ने कहा, "वह एक सक्रिय जीव के अस्तित्व को कैद में रखना चाहती है, यह अच्छी तरह जानती हुई कि ऐसा प्रयास असफल ही होगा।" स्त्री का यह भक्ति-भावजनित प्रेम नैराश्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं देता। नीत्शे का कथन है : "प्रेम में लीन स्त्री अपने सारे अधिकारों को त्यागकर पुरुष से भी त्याग की ही इच्छा रखती है और भगवान न करे, यदि दोनों ने ही इतना बड़ा त्याग किया तो मैं नहीं जानता कि प्यार कहां रहेगा? रह जाएगी शायद खालीपन की एक त्रासद विभीषिका!"

आत्म-समर्पण के द्वारा अपने प्रेमी के अहं को संतुष्ट करके स्त्री आनंद का अनुभव करती है। यह अवश्य है कि स्त्री अपनी अनिवार्यता पूरी तरह समझती है। अपने को पुरुष के मूल्यवान अस्तित्व की आधारशिला समझती है। इस तरह स्त्री को आत्म-प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। प्रेमी की सेवा में उसे आनंद आता है, किंतु वह अपनी सेवा के प्रतिदान में पुरुष की ओर से कृतज्ञता पाना चाहती है। एक- दूसरे के प्रति आकर्षण की स्थिति में ऐसी कृतज्ञता प्रेम के लिए वरदान सिद्ध होती है। एक विवेकशील स्त्री स्वयं से ही पूछती है, "उसे मेरी आवश्यकता क्यों है?" पुरुष अपनी हार्दिक आकांक्षा से प्रेरित होकर प्रेमिका की मांग करता है। क्या उसके स्थान पर किसी दूसरी स्त्री के लिए उसके मन में भावनाएं नहीं होती? प्रेम में रत अनेक स्त्रियां इस प्रसंग में धोखा खा जाती हैं। वे इस सत्य की उपेक्षा करती हैं कि किसी विशिष्ट प्राणी के भीतर सामान्यता भी निहित हो सकती है। पुरुष इस भ्रम को और बढ़ा देता है, क्योंकि प्रारम्भ में उसका भी यही मत रहता है। प्रेमिका के प्रति अपने हृदय में उमड़ते आवेगों की प्रचंडता के कारण वह वस्तुत: यथार्थ की उपेक्षा करता है। भावावेश की चरम स्थिति में पहुंचकर स्त्री के प्रति पुरुष के हृदय की चाह का क्षण उसे पूर्णता से भरा लगता है, लेकिन ऐसी पूर्णता क्षणिक होती है। स्त्री इसका अनुभव नहीं कर पाती और वह उस क्षण की चिरता की ओर बढ़ती है। प्रेमी के आलिंगन में मानो देवत्व प्राप्त करती हुई वह सोचती है कि उसका प्रेमी हमेशा अलौकिक रहेगा और उसकी सृष्टि केवल उसके लिए ही है। वस्तुतः पुरुष की इच्छा क्षणभंगुर होती है। पुरुष की निरंकुशता के कारण एक बार शांत होने पर वह इच्छा शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, लेकिन स्त्री बहुत लम्बी

अवधि तक प्रेम की बंदी बनी रहती है। साहित्य और संगीत में ऐसे अनेक उदाहरण हैं। "एक नवयुवक उसके सामने से गुजरा और लड़की गाती रही। एक नवयुवक ने गाया और नवयुवती आंसुओं में फूट पड़ी।"

यदि पुरुष स्त्री के साथ चिरकालं तक संलग्न रहे तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि स्त्री पुरुष के लिए अनिवार्य है। दरअसल स्त्री प्रेमी के प्रति अपने आत्म के विसर्जन में प्रतिदानस्वरूप सारी दुनिया पा जाने की आशा करती है। दरअसल पुरुष की दृष्टि में स्त्री के हमेशा अन्या होने के कारण 'दोनों में वास्तविक पारस्परिकता कभी नहीं हो पाती। इस स्थिति में स्त्री के सम्मुख सिर्फ दो विकल्प रहते हैं-या तो वह स्वयं से झूठ बोलती रहे या सदा प्रताड़ित होती रहे। प्रायः वह झूठ का ही सहारा लेती है। वह कल्पना करती है कि दोनों का प्रेम आंतरिक पारस्परिकता से भरा हुआ है, किंतु यहां वह एक भ्रम का शिकार होती है। वह अपने प्रति पुरुष की कामनात्मक चाह को ही प्रेम समझ लेती है और इसी प्रेम को अपने जीवन का धर्म बना लेती है। वह प्रेम के सम्बंध में पुरुष को झूठ बोलने के लिए बाध्य करती है। प्रेम के चरम क्षणों में वह उससे पूछती है, "क्या तुम मुझसे आज भी कल की तरह ही प्रेम करते हो? क्या तुम हमेशा इसी तरह मुझे चाहते रहोगे?" वह यह प्रश्न ऐसे वक्त पर पूछती है जब कामना के चरम क्षणों में पुरुष हां अलावा कोई दूसरा उत्तर दे ही नहीं सकता। मुझे एक मित्र का स्मरण आ रहा है जिसने अपने दूर-स्थित प्रेमी की लम्बी चुप्पी के बारे में कहा था, "यदि वह सचमुच मुझसे सम्बंध तोड़ना चाहता था तो कम-से-कम पत्र तो लिखता?" और जब उसे एक बेरुखी भरा पत्र मिलता है तब वह कहती है, "जब कोई सच में सम्बंध तोड़ना चाहता है तब पत्र थोड़े ही लिखता है।" ऐसे उदाहरणों से यह समझना बड़ा कठिन हो जाता है कि वाकई यह उन्माद कब और कैसे शुरू होता है। प्रेम में रत स्त्री पुरुष के आचरण को हमेशा अस्वाभाविक, परपीड़क शैतानी से भरा, चिरअतृप्त और कायरतापूर्ण मानती है। दरअसल वह अपने लिए पुरुष रह लेती है प्रिय के प्रति सदा शंकालु बनी रहती है।

पारस्परिक प्रेम की स्थिति में भी प्रेमियों की भावनाओं में एक ऐसा मौलिक अंतर रहता है जिसे स्त्री छिपाना चाहती है। स्त्री के बिना भी पुरुष में अपने अस्तित्व को न्यायसंगत सिद्ध करने की क्षमता होनी चाहिए, क्योंकि स्त्री पुरुष के माध्यम से ही अपने अस्तित्व को सिद्ध करती है। स्त्री के । के आवश्यक होने का अर्थ स्त्री का अपनी स्वतंत्रता से कतराना है। यदि पुरुष अपनी स्वतंत्रता को स्वीकार करता है, जिसके बिना वह न तो नायक हो सकता है और न मनुष्य ही, तो उसे किसी भी अन्य व्यक्ति या वस्तु की आवश्यकता नहीं होगी। पराश्रित होने की भावना स्त्री में कमजोरी के कारण आती है, इसलिए जिस पुरुष को वह उसकी शक्ति के कारण प्यार करती है, उसके साथ पारस्परिक निर्भरता की भावना कैसे आ सकती है?

स्त्री की आत्मा पुरुष से बड़ी आकुलता के साथ अपने प्रेम का प्रतिरूप चाहती है। ऐसी आत्मा को प्रेम में विश्राम नहीं मिल सकता, क्योंकि उसका उद्देश्य ही इसके विपरीत होता है । स्त्री अपने को प्रेमी के लिए अनिवार्य न पाकर दुराग्रही बन जाती है। खंडित आकांक्षाओं और विभाजित व्यक्तित्व वाली स्त्री प्रेमी के लिए एक बोझ हो जाती है। पुरुष के लिए अनिवार्य न रह जाने पर स्त्री दुराग्रही और कर्कशा हो जाती है। स्त्री के अस्तित्व की यह एक सामान्य त्रासदी है। बुद्धिमती और दुराग्रहहीन स्त्री प्रेम में समझौता कर लेती है। वस्तुतः वह अपने को भाग्य पर छोड़ देती है। उसके लिए यही काफी होता है कि पुरुष उसके प्रति कृतज्ञ रहे। वह यह जानती है कि प्रेमी उसके समीप है। वह उसकी दासता स्वीकार कर लेती हैं पर स्वयं उससे ऐसी मांग नहीं करती। वह यथास्थिति में ही संतुष्ट । प्रेम में रत स्त्री पत्नी की अपेक्षा व्यग्रता से प्रेमी की प्रतीक्षा करती है। यदि पत्नी में प्रेमिका का भाव अधिक है तब वह मातृत्व और गार्हस्थ्य की अन्य जिम्मेदारियों की उपेक्षा करती है। पति की उपस्थिति ही उसे तमाम उकताहटों से छुटकारा दे देती है। ऐसिल सावेज ने शादी होने के बाद अपनी डायरी में लिखा था, "तुम्हारे घर से जाने के बाद खिड़की से बाहर देखना व्यर्थ लगता है। जो कुछ भी होता है, वह जड़-सा प्रतीत होता है। मैं खूटी पर टंगी एक वस्तुमात्र रह जाती हूं।" वासनामय प्रेम की उत्पत्ति और विकास प्रायः वैवाहिक सम्बंधों से अलग ही सम्भव होता है। जूलियट का जीवन ऐसा ही था। "मैं जीवन-भर प्रेम और प्रतीक्षा करती हूं", उसने विक्टर ह्यूगो को लिखा, "गिलहरी की तरह मैं यह विश्वास करने के लिए प्रस्तुत नहीं हूं कि तुम नहीं आओगे।" यह सच है कि उसके रक्षक प्रिंस डेमिंडर से उसे जुदा कराकर, विक्टर ह्यूगो ने उसे एक छोटे से कमरे में बंद रखा और बारह वर्षों तक उसे अकेले बाहर नहीं जाने दिया ताकि वह अपने पुराने मित्रों में पुनः न उलझ जाए। पर जब उसका भाग्य कुछ सुधर भी गया तब भी वह सिर्फ अपने प्रेमी के लिए ही जीती थी, यद्यपि उससे बहुत कम मिलती थी। विक्टर ह्यूगो के व्यवहार ने उसके प्रेम में परिवर्तन नहीं किया, पर उसका हृदय कटुता से भर गया, जैसा कि उसके पत्रों से प्रदर्शित होता है। वह प्रेम और स्वतंत्रता में सामंजस्य बैठाना चाहती थी। "मैं एक साथ ही स्वतंत्र और गुलाम, दोनों रूपों में रहूंगी।" अभिनेत्री के रूप में असफल होने के कारण उसे अपने को प्रेम के सहारे ही छोड़ना पड़ा। उसने अपने प्रेमी के लिए सत्रह हजार पत्र लिखे। हरम में रहने वाली स्त्री को सबसे बड़ा कष्ट यह मिलता है कि उसके दिन 'ऊव' की मरुभूमि हो जाते हैं। यह वह समय होता है जब पुरुष उसका कोई उपयोग नहीं करता। वह बाहर रहता है। इस समय प्रेमिका की स्थिति मानो नगण्य रहती है। वह प्रेमिका के अलावा और कुछ नहीं होना चाहती। उसे कुछ भी अपनाने योग्य नहीं लगता। जीने के लिए उसका प्रेमी उसके पास होना चाहिए। उसे उसमें ही मशगूल रहना चाहिए। वह उसके आने की प्रतीक्षा करती है। वह नींद से उसकी आंखें खुलने की प्रतीक्षा करती है।

प्रतीक्षा के क्षण उस स्त्री के लिए आनंद के क्षण होते हैं जो यह जानती है कि उसका प्रेमी जल्दी ही वापस आ रहा है और वह उसे प्यार करता है। ऐसी अवस्था में इंतजार बहुत सुखद हो जाता है। यदि यह विश्वासपूर्ण उल्लास घटने लगता है तो अनुपस्थिति उपस्थिति में बदल जाती है। इस अनुपस्थिति में एक त्रासद अशांति की सृष्टि होती है। ऐसा लगता है कि वह अब कभी नहीं आएगा। मैं एक ऐसी स्त्री को जानती हूं जो हर बार अपने प्रेमी का स्वागत आश्चर्य से करती थी। वह कहती थी, "मैंने सोचा था कि तुम नहीं आओगे।" कारण पूछने पर वह कहती है, “तुम शायद अब नहीं लौटोगे। जब मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती हूं, तब मुझे ऐसा लगता है कि मैं अब तुम्हें कभी भी नहीं देखूंगी।"

सबसे बदतर स्थिति भी आ सकती है। प्रेमी प्रेम करना बंद कर सकता है, वह अन्य स्त्री से प्रेम कर सकता है। प्रेमिका ईर्ष्या की जलन से बच नहीं सकती। वह यह भी सोच सकती है, "वह मुझसे बेहद प्यार करता है। वह केवल मुझसे ही प्यार करता रहेगा।" प्रगाढ़ प्रेम की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्रेमोन्माद और निरुत्साह, दोनों भावनाओं का मिश्रण रहता है। अपने को 'नेपोलियन' कहने वाला पागल व्यक्ति अपने को नापित भी कह सकता है। स्त्री मुश्किल से ही अपने आपसे पूछती है, "क्या वह मुझसे प्यार करता है?" पर वह सैकड़ों बार यह प्रश्न पूछती है, "क्या वह किसी दूसरी स्त्री से प्रेम करता है?" वह यह मानने के लिए सहज प्रस्तुत नहीं होती कि उसके प्रेमी का उन्माद धीरे-धीरे नष्ट हो सकता है। दरअसल वह प्रेम को उतना महत्त्व नहीं देती जितना प्रेमी देता है, इसीलिए वह शीघ्र ही प्रतिद्वंद्वियों का आविष्कार करने लगती है।

स्त्री प्रेम को स्वतंत्र भाव समझती है और साथ ही एक मोहक वस्तु भी। वह कल्पना करती है कि उसका प्रेमी उससे एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में प्यार करता है, जबकि एक चालाक स्त्री ने मुग्ध । करके उसे अपने जाल में फंसा लिया है। पुरुष सोचता है कि स्त्री अपनी विश्वव्यापी स्थिति में उसके साथ एकाकार है। वह यह कल्पना भी नहीं करता कि वह अन्य व्यक्ति है और वह उससे दूर भी हो सकती है। ईर्ष्या उसके लिए एक गुजरता हुआ संगीत है। प्रेम की तरह यह संगीत भी बड़ा भयंकर और हत्यारा सिद्ध हो सकता है, पर चिरकाल बेचैन रहना उसका स्वभाव नहीं होता। उसकी ईर्ष्या प्रायः कृत्रिम होती है। व्यापार ठीक नहीं चलने पर उसे लगता है कि जीवन उसे आघात पहुंचा रहा है। ऐसे समय वह सोचता है मानो स्त्री उसकी अवज्ञा कर रही है।

स्त्री पुरुष को अन्य और सर्वोपरि, दोनों रूपों में प्यार करती हुई सोचती है कि उसका प्रेम हर समय संकट में है। उसके लिए प्रिय के वियोग और विश्वासघात में विशेष अंतर नहीं होता। जिस क्षण से वह अनुभव करती है कि उसे पूरा प्यार नहीं किया जा रहा, उसी क्षण से उसकी ईर्ष्या बेचैनी के रूप में प्रकट होने लगती है। इस प्रकार वह अपने अधैर्य और प्रतीक्षा की अभिव्यक्ति करती है। उसे निर्भरता की स्थिति बड़ी कड़वी लगती है। उसे अपने

पंगु अस्तित्व पर दुःख होता है। मानो उसकी सम्पूर्ण नियति प्रेमी की एक नजर पर निर्भर है। वह अपने प्रिय की आंखों को किसी दूसरी स्त्री पर ठहरती देखकर चिढ़ती है क्योंकि उसने अपना पूरा अस्तित्व ही उसे सौंप दिया है। यदि पुरुष को कोई स्त्री देख रही हो तो उसे कोई उपहार तब तक नहीं मिलता जब तक स्त्री का शरीर उसका शिकार न बन जाए। जिस स्त्री की चाह की जाती है, वह वांछित वस्तु बन जाती है। इस प्रकार प्रेम में रत स्त्री अवहेलना द्वारा मिट्टी की प्रतिमा में परिणत हो जाती है, इसीलिए स्त्री हमेशा सतर्क रहती है। वह क्या कर रहा है? वह अमरत्व के गुलाबी प्रकाश से दिन-प्रतिदिन की धुंधली रोशनी में लाकर क्षण-भर में पटक दी जाती है। कारण स्पष्ट हो या अस्पष्ट; ईर्ष्या स्त्री को बेहद पीड़ित करती है क्योंकि ईर्ष्या और प्रेम में नितांत भिन्नता होती है। यदि छल प्रश्नात्मक नहीं है तो उसे प्रेम को धर्म रूप मानना छोड़ देना चाहिए या फिर प्रेम करना ही त्याग देना चाहिए। यह बड़ी आपदजनक स्थिति है, किंतु प्रेम में रत स्त्री को यदि शक हो जाता है तो वह कड़वे सत्य का पता लगाना चाहती है और पता लगा ही लेती है।

स्त्री में अभिमान और उत्सुकता, दोनों ही रहते हैं। वह हमेशा ईर्ष्या की अग्नि में जलती है, पर वह हमेशा गलत रहती है। जूलियट को केवल लेनोम बेयर्ड, जो आठ वर्ष से विक्टर ह्यूगो की स्वामिनी थी, को छोड़कर हर स्त्री से, जो ह्यूगो के समीप आती थी, ईर्ष्या होती थी। इस अविश्वास और अनिश्चित अवस्था में स्त्री दूसरी स्त्री को अपना प्रतिद्वंद्वी और खतरा समझती है। प्रेम अन्य स्त्रियों के साथ मित्रता की सम्भावना नष्ट कर देता है क्योंकि प्रेम में रत स्त्री अपने प्रेमी के ही विश्व में रहती है। ईर्ष्यावश वह और एकाकी हो जाती है और उसकी निर्भरता संकीर्ण । पति को रखना एक काम है, इससे उसकी उदासी व खिन्नता दूर होती है; पर प्रेमी को रखना एक पवित्र धार्मिक कार्य है। प्रेम में रत स्त्री अपने व्यक्तित्व की भी अवहेलना करती है, उसे शीघ्र ही संकट का पूर्वाभास होने लगता है। वेशभूषा, घर की देखभाल और सामाजिक रूप-सभी स्त्री के लिए एक संग्राम के अंश बन जाते हैं। संघर्ष उसे कार्य की प्रेरणा देता है और जब तक उसे विजय की पूर्ण आशा रहती है, उसे संघर्ष में आनंद मिलता है।

पराजय का भय एक स्वतंत्र और उदार वरदान को लज्जाजनक सेवा में परिणत कर देता है। पुरुष आत्म-रक्षा के लिए आक्रमण करता है। एक अभिमानी स्त्री भी अपने को विनम्र और शांत बनाने के लिए बाध्य हो जाती है। उसके इस समय श्रेष्ठ अस्त्र होते हैं- चेष्टा, विवेक, चालबाजी, मुस्कान, आकर्षण और विनम्रता । मुझे आज भी उस युवती की स्मृति है, जिसके घर मैं एक शाम हठात पहुंच गई थी। दो घंटे पहले मैंने देखा था कि वह अस्तव्यस्त कपड़े पहने थी। बनाव-शृंगार भी भद्दा हो था और आंखों में उदासी थी। वह प्रेमी की प्रतीक्षा कर रही थी। मुझे देखते ही वह साधारण व्यवहार करने लगी। मैंने उसे मिलने की बेला के लिए प्रस्तुत भी देखा। उसने भय और बनावट को छिपाना चाहा और

होंठों पर मुस्कान थिरकाने लगी, चाहे उसके पीछे कितनी ही वेदना क्यों न निहित हो। उसने अपने केशों को अच्छी तरह संवारा, होंठों और गालों पर लाली लगाई और लेस लगी हुई बिल्कुल सफेद रंग की ब्लाउज पहनी। पार्टी के परिधान, मानो वे युद्ध के अस्त्र हों। स्त्रियों का बनाव-शृंगार करने वाले लोग बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि स्त्रियां कितना कष्ट सहन करती हैं और कितना महत्त्व देती हैं इस ऊपरी सजावट को। वे पुरुष को आकर्षित करने के नए तरीकों का आविष्कार करती हैं। वे वैसी स्त्री बनना चाहती हैं, जिससे पुरुष मिलना और अपनाना चाहे। प्रेम के प्रसंग में किसी भी स्त्री की अतिरिक्त चेष्टाएं व्यर्थ होती हैं। सब कुछ निरर्थक सिद्ध होता है। अन्या की खोई हुई तस्वीर फिर नहीं बनती। पति हो या प्रेमी, पुरुष स्त्री से हमेशा एक असम्भव मांग करता है। वह चाहता है कि प्रेमिका नितांत उसी की बनी रहे किंतु साथ ही वह उसमें एक आकर्षक और ताजगी-भरा अजनबीपन भी देखना चाहता है। पुरुष स्वभावतः नित्य नए स्वाद चाहता है। उसकी यह असम्भव और वायवीय मांग स्त्री को लगातार कुंठित करती रहती है। किसी भी प्रेम-सम्बंध की शुरुआत में आत्ममुग्धा स्त्री के लावण्य में जो निखार आता है, वही बाद में एक भयावह दासत्व-जनित कुरूपता में परिणत हो जाता है। उसके व्यक्तित्व में निहित जिस स्वतंत्रता से पुरुष मोहित हुआ था और जिसमें उसने अपना ही चेहरा देखा था, अब कुछ भी नया नहीं लगता। अत्यधिक निकटता और अस्तित्व के रेशे-रेशे के खुलने से पुरुष में उकताहट आ जाती है। यह स्त्री का दुर्भाग्य है कि जिस प्रेम की प्रतीक्षा वह आजीवन करती रही और जिसके मिलने से उसका व्यक्तित्व फूल की ताजगी से भर उठा था, वहीं प्रेम अब उसके विनाश का कारण बन कर उसके व्यक्तित्व को कुंठित करता है। अब वह कुछ नहीं रह जाती, केवल एक गुलाम, एक स्वामिभक्त नौकरानी के सिवा। साफ शब्दों में वह पुरुष के स्वर की एक मजबूर प्रतिध्वनिमात्र हो जाती है। स्त्री को ज्यों-ज्यों अपनी इस स्थिति का बोध होता है, त्यों-त्यों वह आंसुओं में, नई-नई मांगों और कलहों में अपना आकर्षण खोती जाती है। अस्तित्व की प्रामाणिकता अभिव्यक्त होती है व्यक्ति के कार्यों से। प्रेम में रत स्त्री अब तक अपनी चेतना को भूलकर प्रेमी के निर्देश पर चलती रही है। वह कहती है, "मैं कुछ नहीं जानती । बस केवल तुमसे प्रेम करती हूं। मैं साक्षात् प्रेम हूं।" प्रेम करने वाली हर स्त्री की यह घोषणा उसको उसकी मंजिल से बहुत दूर ले जाती है।

प्रेमिका अपनी गलती बहुधा समझती है और अपनी स्वाधीनता को पुनः स्थापित करने के लिए प्रायः किसी अन्य के प्रेम में उलझ जाती है। किसी अन्य पुरुष की चाह उसे फिर अपने में एक नई रुचि प्रदान करती है। एक की बांहों से दूसरे की बांहों में जाने का क्रम'चालू उपन्यासों का घिसा- पिटा मुहावरा होता है। उसके इस छिछोरेपन से ईर्ष्यालु होकर पुरुष कई बार उससे भागने भी लगता है। सच्ची प्रेमिका ऐसा खतरनाक खेल खेलने में प्राय: असमर्थ होती है। पुरुष की पैनी आंखें उसकी परनिर्भरता की जरूरत को भांप लेती हैं। इस खेल में यदि वह प्रेमी के पास वापस लौटती है.तो भी एक भग्न तस्वीर लिए,

और यदि नहीं लौटती तब भी अपने प्रेम को खोती है। प्रेमिका को प्रेम की दासता से मुक्ति नहीं मिलती। एक समझदार प्रेमिका अपने प्रेमी के आवेगों को दोस्ती, स्नेह और आदत में बदल देना चाहती है या फिर वह उसको विवाह तथा परिवार के बंधनों में बांध लेना चाहती है। ये सारी स्थितियां आपस में टकराती हैं। विवाह की इच्छा अनेक प्रेम-सम्बंधों में अंतर्निहित रहती है। एक समझदार प्रेमिका शुरू के दिनों में ही प्रेमी के उमड़ते आवेगों का लाभ उठाकर उसे विवाह के बंधन में बांध लेती है, किंतु तव वह प्रेमिका नहीं रह जाती। पुरुष अपनी प्रेमिका की स्वाधीनता को नियंत्रित करना चाहता है, नष्ट नहीं; इसीलिए प्रेम पर आधारित अनेक विवाहों की परिणति दुखद होती है। ऐसे विरले सम्बंध ही अंत तक प्रेममय बने रह पाते हैं।

प्रेम का टूटना जहां पुरुप को आहत करता है, वहीं स्त्री को भी 'कुछ नहीं' परिणत कर देता है। उसे यह भी याद नहीं रहता कि शादी से पहले वह अकेले कैसे रहती थी। वह तो अपना अतीत राख कर चुकी होती है। उसके पुराने सारे मूल्य ध्वस्त हो चुके होते हैं। वह पाती है अपने को एक रेगिस्तान में, सिर पर आकाश की छत और तय करने को मीलों लम्बा रास्ता । वह कैसे एक नई जिंदगी शुरू करे? प्रेम करने के अलावा उसने अब तक और कुछ तो सीखा नहीं। वह बार- बार अपने से पूछती है, "अब मैं क्या करूं?" वह नहीं जानती कि समर्पण ही उसे खा गया। चालीस की आयु के बाद भी जीने के लिए एक लम्बा वक्त बचा रहता है। मुझे अब भी उस परित्यक्ता स्त्री की स्मृति है जो खूबसूरत होती हुई भी विरह में कातर अपने दुख के अलावा दुनिया की हर बात से बेखवर हो चुकी थी। खोया हुआ सिंहासन फिर नहीं मिलता। पर क्या सच में उसने कोई वास्तविक साम्राज्य पाया भी था? यदि स्त्री युवा है तो शायद कोई नया प्रेम उसे स्वस्थ भी कर दे। कुछ उदाहरणों में प्रेमिका स्वयं को कुछ महत्त्वपूर्ण समझकर बचाए रखती है कि यह जो अद्वितीय और अनुपम प्रेम है, वही जीवन का परम सत्य नहीं। किंतु ऐसा कम होता है। प्रायः प्रेमिका पिछली हार की क्षतिपूर्ति ज्यादा आक्रामक रूप से अपने को नष्ट करके ही करती है। विरली स्त्रियां ही प्रेम के टूटने पर खत्म न होकर अपना एक नया और स्वतंत्र अस्तित्व प्रस्थापित करती हैं। उनमें आत्माभिमान होता है और टूटे जहाज को किनारे पर लगाने का हौसला भी।

सच्चे प्रेम की आधारशिला होती हैं दो स्वतंत्र सत्ताएं, जिनमें प्रेमी स्वयं को आत्म और अन्य के रूप में एक ही साथ पाते हैं। दोनों का सम्बंध पारस्परिक होता है। कोई किसी को अधीन करना नहीं चाहता, बल्कि दोनों एक साथ अपनी-अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करके सर्वोपरिता की ओर उन्मुख होते हैं। प्रेम का यही वैभवशाली रूप व्यक्ति को समृद्ध करता है। प्रेम पुरुष को चाहे समृद्ध करे, चाहे बदले, अंततोगत्वा वह उसके व्यक्तित्व को संवर्धित ही करता है। स्त्री के जीवन में भी ऐसा घट सकता था, यदि वह पुरुष के समाज में

अन्या की स्थिति में नहीं होती। उसके अपने उद्देश्य होते, अपनी परियोजनाएं होतीं, जिनमें वह लग जाती, पुरुष को बिना उपकरण बनाए।

स्त्री अपने भाग्य को जानती है। उसकी मुक्ति निर्भर करती है उस तानाशाह पुरुष पर, जिसने उसको बनाया और जो जब चाहे, उसे मिटा सकता है। अपनी नियति को उसके हाथों में सौंपकर स्त्री भय से कांपती रहती है। वह एक त्रासद और शक्तिहीन दृष्टा होती है अपने भाग्य की; अत: प्रेमी से एकाकार होने के बदले वह जानती है कि प्रेम ने उसे कितना अकेला कर दिया। साझीदारी के बदले वह जानती है, अपना संघर्ष और आत्म-पीड़न।

पुरुष ने प्रेम को ही हमेशा स्त्री की सर्वोच्च उपलब्धि माना। नीत्शे कहते हैं, "औरत जब प्यार करती है, तभी औरत होती है" और बाल्जाक कहते हैं, "पुरुष के जीवन में पहली बात है प्रतिष्ठा और औरत के जीवन में प्रेम। औरत पुरुष के बराबर तभी हो सकती है जब वह निरंतर अपने जीवन की सतत आहुति में लगी रहे तथा पुरुष निरंतर कर्मरत रहे।" यहां फिर हम एक क्रूर छलना देखते हैं। स्त्री पुरुष को जो कुछ अर्पित करती है, उसकी जरूरत पुरुष को नहीं होती। इस शर्तहीन भक्ति और पूजाभाव से पुरुष के अहं की तुष्टि तो होती है, किंतु प्रतिदान में वह स्त्री को कुछ देना नहीं चाहता। वह स्त्री को समर्पण का उपदेश देता है, किंतु उपहारों के उसके ढेर से वह उकता भी जाता है । बेचारी असमंजस में खड़ी स्त्री अपने सारे अर्पण को लिए अपना खाली जीवन-भर देखती है। जिस दिन औरत के लिए सम्भव होगा कि वह पुरुष से किसी मजबूरी या क्षतिपूर्ति के लिए प्यार न करे, अपने से पलायन न करे, बल्कि आत्म-बोध प्राप्त करे, अपने को नीचे न गिराकर अपना आत्म प्रस्थापित करे, वही दिन उसके लिए प्रेम का दिन होगा। अब तक तो औरत की दुनिया में प्रेम केवल अभिशाप की तरह मंडराता रहा है, उसको पंगु बनाता रहा है। अगणित शहीदों को प्रेम और कुछ नहीं, बल्कि जलता हुआ नरक अंतिम मुक्ति के रूप में देता है। ।

रहस्यमयी स्त्री

परिस्थितियों के कारण प्रेमी से प्रतिदान में प्रेम के स्थान पर निराशा मिलने पर उसका प्रेम ईश्वर के देवत्व' की ओर उन्मुख हो जाता है। बहुत कम पुरुषों के हृदय में प्रेम की ज्वाला जलती रहती है और जो ऐसे होते हैं उनका भी प्रेम परम पवित्र और बौद्धिक होता है। अधिकतर . स्त्रियां विवाह का आनंद उठाना चाहती हैं। ऐसी स्त्रियों के अनुभव भावात्मक अधिक होते हैं। परम्परा से स्त्री ने घुटने टेककर जीना सीखा है। साधारणत: वह स्वर्ग में ही मुक्ति पाने की आशा करती हैं, जबकि पुरुष इसी लोक में सिंहासनारूढ़ होता है। पुरुष तो मानो बादलों से घिरे रहते हैं। उनकी महिमा का रहस्योद्घाटन उनकी दैहिक उपस्थिति से परे होता है। पुरुष का प्रेम-पात्र प्रायः अनुपस्थित रहता है। पुरुष अपने

उपासक से कुछ अस्पष्ट संकेतों द्वारा भाव-विनिमय करता है । स्त्री प्रेमी के हृदय को केवल विश्वास के माध्यम से जानती है। उसे वह जितना महान् देखती है, उतना ही उसका व्यवहार उसे अगम्य प्रतीत होता है। हम लोगों ने देखा है कि कामोन्माद की स्थिति में स्त्री का विश्वास हर विरोध का प्रतिरोध करता है। अपने पास अपने प्रिय की उपस्थिति का अनुभव करने के लिए स्त्री को स्पर्श और दृष्टि की आवश्यकता नहीं होती। चाहे वह डॉक्टर हो, चाहे पुरोहित, चाहे देवता, स्त्री को अपने प्रेम के प्रति दृढ़ विश्वास रहता है। उच्च स्रोत से आने वाले प्रेम को वह सेविका की तरह अपने हृदय में धारण करती है। उसके लिए मानव-प्रेम और देव-प्रेम, दोनों आपस में मिल जाते हैं। इसलिए नहीं कि देव-प्रेम मानव-प्रेम का उत्कृष्ट रूप है, बल्कि इसलिए कि मानव-प्रेम ही उत्कृष्ट प्रेम की ओर अग्रसर होकर सर्वोपरिता की ओर बढ़ता है। दोनों ही स्थितियों में प्रेम करने वाली स्त्री को उस महान् व्यक्ति में मूर्त सम्पूर्ण के साथ मिलन होने पर मोक्ष-प्राप्ति का अनुभव होता है। अनेक घटनाओं में, चाहे वे साधारण हों या फिर रुग्णावस्था में, यह द्वयर्थकता और अस्पष्टता स्पष्ट रहती है। प्रेमी को देव-तुल्य माना जाता है। ईश्वर को मानव-चरित्र प्रदान किया जाता है और उस पर मानवीय विशेषताएं आरोपित की जाती हैं। यहां पर फर्डियेर की रचना से एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा

"मैंने 1923 में एक अखबार के लेखक को पत्र भेजा। मैं उसकी रचना की प्रत्येक पंक्ति का अर्थ समझना चाहती थी। मुझे लगा कि मुझे परामर्श देते हुए वह मेरे पत्रों का उत्तर देता है। "मैंने उसे अनेक प्रेम-पत्र लिखे। 1924 में मुझे हठात लगा कि उसके रूप में मानो ईश्वर ही स्त्री की तलाश करता हुआ मुझसे मिलने आ रहा है। मुझे लगा कि उसने मुझे कोई कार्य सौंपा है। उसने मुझे एक मंदिर बनवाने के लिए चुना है। वहां ऐसे नौजवान चिकित्सक थे जो संसार को फिर से बनाना चाहते थे। अपनी अंधेरी कोठरी में मैंने अनुभव किया मानो वे मेरी उंगलियों को चूम रहे हैं। मैंने यह भी अनुभव किया कि उनके 'काम' अंग मेरे हाथों में हैं। एक बार उन लोगों ने मुझसे कहा-तुम भावुक नहीं हो, बल्कि कामुक हो, चलो उलट जाओ। मैं उलट गई। मेरे लिए प्रमुख चिकित्सक डॉक्टर 'डी. ' ईश्वर के समान थे। मुझे लगा कि वे किसी कारण चिंतित हैं। वे मेरी शय्या के समीप आते थे। मेरी ओर देखते थे और मानो रोकर कहते थे- मैं तुम्हारा हूं। वे वास्तव में मुझसे प्यार करते थे। एक दिन मानौ उसकी सब्ज आंखें आकाश की तरह नीली हो गई और विस्मय से फट गईं। दूसरे रोगियों से बातें करते समय उन्होंने उनका प्रभाव मेरे ऊपर देखा । वे मुस्कुराए। मैं उनके जाल में फंस गई, यद्यपि मेरे करीब पंद्रह या सोलह प्रेमी थे, पर मैं उन्हें नहीं छोड़ सकती थी, इसलिए उन्हें ही दोष दिया जाए... । वर्षों मैं उनके साथ मानसिक वार्तालाप करती रही। भूलने की लाख चेष्टाओं के 'बावजूद वे मेरे मस्तिष्क में आ जाते थे। मानो वे उपहार करते हुए कहते हों-डरो मत! तुम दूसरों से प्यार कर सकती हो, पर तुम हमेशा मेरे पास वापस आओगी। मैं

उन्हें अक्सर पत्र लिखकर मिलने का समय निश्चित करती थी। वे मिलते थे, पर हमेशा शांत व अन्यमनस्क। मुझे लगता था कि मैं कैसी मूर्ख हूं और वापस चली आती थी। मैंने सुना कि उन्होंने विवाह कर लिया- पर वे मुझे हमेशा प्यार करेंगे। वे मेरे पति हैं, पर ऐसा निश्चय कभी भी न हुआ। वे कहा करते थे- सब बातें मुझ पर छोड़ दो। तुम हमेशा ऊपर चढ़ती रहोगी। तुम अब इस पृथ्वी की साधारण प्राणी नहीं हो। यह कैसी विडम्बना है? जब मैं ईश्वर को खोजती हूं तब मेरा साक्षात्कार मनुष्य से होता है। अब मैं मानव की तलाश में हूं। मैं नहीं जानती कि कौन- सा धर्म ग्रहण करूं।"

यहां हमारा सम्बंध रोगियों से है। अनेक भक्तों और ईश्वर के बीच हमें ऐसी उलझन-भरी परिस्थिति देखने को मिलती है। आत्म-स्वीकृति करने वाला व्यक्ति पृथ्वी और स्वर्ग के बीच एक अस्पष्ट स्थान ग्रहण करता है। पश्चात्ताप करने वाली स्त्री अपनी आत्मा खोलकर दिखलाती है। वह अपने पापों को स्वीकार करती है। उसे लगता है; जैसे-ईश्वर मनुष्य के माध्यम से सुनता है। उसकी दृष्टिं स्त्री को अलौकिक प्रकाश से समेट लेती है। वह ईश्वर का प्रतिनिधि है। वह मानव-रूप में देव है। मदाम गुयों फादर लाक के साथ अपनी मुलाकात का वर्णन करती है, "आत्मा के मार्ग से अलौकिक शक्ति ने मानो उससे निकलकर मुझमें प्रवेश किया। फिर वह शक्ति मुझसे निकलकर उसमें वापस चली गई। उसे भी मेरे जैसा ही अनुभव हुआ। एक भिक्षुक साधु ने उसकी आत्मा की स्थायी बंजरता और सूनेपन को दूर करके उत्साह की नई ज्योति जला दी।" पूरे समय तक वह रहस्यमयता के प्रभाव में उनके साथ बनी रही। वह घोषित करती है, "यह सिर्फ पूर्ण एकीकरण न था। मैं उसमें और ईश्वर में अंतर न समझ सकी।" यह तथ्य का सरलीकरण करना होगा कि वास्तव में वह मनुष्य से प्रेम करती थी और ईश्वर से प्रेम करने का ढोंग रचती थी। वह उस व्यक्ति से भी प्रेम करती थी, क्योंकि उसकी दृष्टि में वह उससे भिन्न और भी कुछ था। फर्डियर की रोगी की तरह वह भी मान्यताओं व मूल्यों के सर्वोच्च स्रोत को प्राप्त करना चाहती थी। किसी भी रहस्यवादी स्त्री का यही लक्ष्य होता है। कभी- कभी जब वह शून्य आकाश की ओर उड़ान शुरू करती है, तब पुरुष उसकी सहायता करता है, पर उसका होना अनिवार्य नहीं होता। स्त्री स्पष्ट रूप से न तो यथार्थ को छल से अलग पहचान पाती है, न वास्तविकता को जादू से, न ठोस वस्तु को कल्पना से; इसलिए जो अनुपस्थित है, उसे वह अपनी देह में साकार करती है। रहस्यवादिता और कामोन्माद का एकीकरण कभी-कभी ही होता है।

कामोन्मादी स्त्री यह अनुभव करती है कि किसी उच्च व्यक्ति के प्रेम ने उसे समर्थ बना दिया है। प्रेम- सम्बंध में पुरुष पहले आगे बढ़ता है। जितना उसे प्रेम किया जाता है, वह उससे कहीं अधिक प्रेम करता है। वह अपनी भावनाओं' को गुप्त, पर दृश्य-संकेतों द्वारा व्यक्त करता है। उसे ईर्ष्या होती है, परेशानी होती है, यदि अपने प्रेम-पात्र से उसे प्रेम का

प्रतिदान नहीं मिलता। ऐसी अवस्था में वह दंड देने में भी संकोच नहीं करता। वह कभी भी अपने को व देह-रूप में प्रदर्शित नहीं करता। खासकर सभी रहस्यवादियों की यह विशेषता होती है। जिस आत्मा को ईश्वर अपने प्रेम से आलोकित . करता है, उसे वह चिरकाल तक संजोए रखता है। उसके लिए उसने अपना रक्त बहाया है। उसके लिए उसने आलीशान भवन तैयार कर रखे हैं। उसका परिवर्तन गौरवशाली देव-रूप में हो जाता है। उसके लिए यही आवश्यक है कि प्रेमिका बिना किसी प्रतिरोध के उसकी ज्योति के ऊपर अपने को समर्पित कर दे।

इस बात को स्वीकार लिया गया है कि कामोन्माद पवित्र व कामुक, दोनों रूपों में प्रकट हो सकता है। इसलिए ईश्वर के प्रति रहस्यवादी की भावनाओं में शरीर का महत्त्व कम भी हो सकता है और अधिक भी। उसके उद्गार सांसारिक प्रेमियों के उद्गारों के ही समान होते हैं । जब कि फैलिग्नो की एंजेला जीसस क्राइस्ट की उस प्रतिज्ञा के बारे में सोच रही थी जिसमें कि वे संत फ्रांसिस को अपनी बांहों में लिए हुए हैं। तब उसे लगा मानो वे उससे कंह रहे हैं, "मैं तुम्हें अपने बाहुपाश में रखूगा। यही नहीं, इससे भी अधिक, जो कि मानव की दृष्टि से परे होगा। यदि तुम मुझे प्यार करोगी तो मैं तुम्हें कभी नहीं त्यागूंगा।" मदाम गुयों लिखती हैं, "प्रेम ने मुझे कभी विश्राम का क्षण नहीं दिया।' मैंने उनसे कहा, 'ओ मेरे प्रेमी! बहुत हुआ, मुझे जाने दो। मैं उस प्रेम की चाह करती हूं जो आत्मा में अकथनीय कम्पन उत्पन्न कर दे। वह प्रेम, जो मुझे बेहोश कर दे। हे ईश्वर! यदि तुम अधिक कामुक स्त्रियों को यह अनुभव करा दो जो कि मैं करती हूं तो शायद वे तुरंत ही झूठे आनंद को त्याग कर सच्चे आनंद की अनुभूति प्राप्त करेंगी'।" यहां संत थेरेसा के प्रसिद्ध स्वप्न का वर्णन दिया जा रहा :

"स्वर्गदूत अपने हाथों में एक सोने का बरछा लिए हुए था। कई बार उसने उस बरछे को मेरे कलेजे में चुभोया और उसे मेरी अंतड़ियों तक गहरा ले गया। जब उसने बरछे को बाहर निकाला तो मुझे लगा कि वह मानो मेरी अंतड़ियों को चीरकर बाहर निकाल रहा है। पर मेरा रोम-रोम दिव्य और अलौकिक प्रेम से आलोकित हो उठा। मैं विश्वस्त हूं कि मेरी अंतड़ियों में पीड़ा हुई थी और जब मेरे अलौकिक व आध्यात्मिक पति ने तीर को बाहर निकाला तो मुझे लगा कि वे अंतड़ियां चीरी जा चुकी हैं।"

कभी-कभी यह बड़ी निराशा के साथ कहा जाता है कि भाषा के दारिद्रय के कारण रहस्यवादी को अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए शब्द-कोष से शब्द उधार लेने पड़ते हैं। दरअसल रहस्यवादी के पास तो सिर्फ पार्थिव देह होती है इसलिए उसे सांसारिक प्रेम से केवल शब्द ही नहीं, बल्कि शारीरिक दृष्टिकोण भी उधार लेना पड़ता है। ईश्वर के

सम्मुख वह ठीक उसी रूप में व्यवहार करता है जैसा कि प्रेमिका किसी पुरुष के सम्मुख करती हैं, किंतु इससे उसकी भावनाओं की कीमत कम नहीं हो जाती। फैलिग्नो की एंजेला बिल्कुल पीली और कमजोर पड़ जाती है। फिर वह स्वस्थ व विकसित हो जाती है। उसकी शारीरिक अवस्था हृदय की अवस्था के अनुसार बदलती रहती है। कभी वह गर्म आंसुओं की ऐसी अविरल धारा बहाती है कि उसे शीतल जल प्रयोग करना पड़ता है। ऐसा उसके एक जीवन चरित में लिखा है। कभी वह जमीन पर दंडवत लेट जाती है। इन घटनाओं को आध्यात्मिक नहीं कहा जा सकता, किंतु यदि उन्हें केवल उसकी भावनात्मकता के आधार पर स्पष्ट करने की चेष्टा की जाए तो पोस्तों के निद्राजनक गुणों को जाग्रत करना होगा। शरीर कभी व्यक्तिगत अनुभवों का कारण नहीं हो सकता क्योंकि वह स्वयं व्यक्ति-रूप होता है। इस तटस्थ स्थिति में व्यक्ति अपने अस्तित्व के साथ एकाकार होकर अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त करता है। रहस्यवादियों के प्रशंसक और प्रतिद्वंद्वी, दोनों ही इस बात से सहमत हैं कि संत थेरेसा के परमानंद की अनुभूति को यदि काम- वासना का रूप दिया जाए तो वे एक साधारण उन्मादी की कोटि में आ जाएंगी। उन्मादी की स्थिति लज्जाजनक केवल इसलिए नहीं होती कि वह अपने विकारों को पूर्ण रूप से व्यक्त कर देती है, बल्कि इसलिए भी कि वह मानसिक विकार की शिकार रहती है और उसकी स्वतंत्रता किसी जादू से नष्ट हो गई रहती है। शारीरिक रूप में किसी की नकल करने में किसी विवेकशील व्यक्ति के लिए उत्साह का तत्त्व प्रमुख होता है। यहां एक स्वतंत्र चेतना दिखाई पड़ती है। दरअसल वे वर्जिन की उस प्रतिमा की सार्थकता प्रकट करती हैं जिसमें कि एक संत कामोन्माद की चरम अवस्था में चेतनाशून्य हो जाता है। उसकी भावनाओं को काम-भावना का उत्कृष्ट रूप मानना भ्रामक होगा। ऐसी स्थिति में किसी ऐसी अस्वीकृत इच्छा का हाथ नहीं होता, जो आगे चलकर अलौकिक प्रेम का रूप ग्रहण कर ले। केवल कामना की पूर्ति के लिए वास्तविक प्रेम-पात्र के अभाव में कोई भी कामुक स्त्री इच्छा की शिकार नहीं बन सकती। यह इच्छा आगे चलकर किसी खास व्यक्ति के प्रति हो जाती है। प्रेमी की उपस्थिति ही स्त्री में इच्छा उत्पन्न करती है। संत थेरेसा इसी प्रकार ईश्वर के साथ एकाकार हो जाना चाहती हैं। वह अपनी देह में इस मिलन का अनुभव करती हैं। वह संवेगों और हारमोन की दासी नहीं बनतीं। वस्तुतः उनके निःश्वास की तीव्रता की प्रशंसा करनी चाहिए जो शरीर के आंतरिक अंगों को भी भेद देती है। वस्तुतः किसी भी रहस्यवादी अनुभव का महत्त्व व्यक्ति के निजी विवेक के अनुसार नहीं जांचा जाता, बल्कि उस प्रभाव के आधार पर जांचा जाता है, जिससे अनुभूति का जन्म होता है। संत थेरेसा और मैरी एलाकोक के परमानंद की अनुभूति प्रायः एक-सी है, पर उनके संवाद भिन्न रुचियों के हैं। संत थेरेसा बड़े ही बौद्धिक ढंग से व्यक्ति और सर्वोच्च प्राणी के बीच की नाटकीय समस्याओं का वर्णन करती हैं। स्त्री होकर भी उन्होंने उच्च कोटि का अनुभव प्राप्त किया। स्त्री होने से उनकी साधना थोड़ी भी बाधित नहीं हुई। उन्हें तो सूसो और क्रास के संत जॉन की श्रेणी में रखा जाना चाहिए।

दरअसल संत थेरेसा एक विशेष अपवाद हैं। उनकी छोटी बहनों ने विश्व और मोक्ष का रूप नितांत स्त्री के दृष्टिकोण से दिखाया। उन्होंने सर्वोपरिता तक पहुंचने की चेष्टा नहीं की। स्त्री अलौकिक प्रेम में वह पाना चाहती है जो कामुक स्त्री पुरुष के प्रेम में पाना चाहती है। स्त्री चाहती है कि एक ऐसे उच्चता-प्राप्त व्यक्ति की दृष्टि उस पर जमी रहे जिसमें काम की भावना भी हो और चमत्कारपूर्ण देवत्व भी। वह छोटी बालिका और युवती के रूप में बराबर दोहरी इच्छा से पीड़ित होती रहती है कि कोई उसकी प्रशंसा भी करे और प्यार भी। एकं प्रोटेस्टेंट रहस्यवादी मदाम भी लिखती "मुझे सबसे अधिक दु:ख यह है कि कोई भी मुझमें विशेष रुचि नहीं लेता और न मेरी तकलीफों के प्रति सहानुभूति रखता है।" संत व्यूमे मदाम क्रुदनर के बारे में लिखती हैं कि वे सोचती थीं कि ईश्वर सदा उनकी चिंता करता था। अपने प्रति ईश्वर की चिंता का अनुभव तीव्रता से करने के कारण अपने प्रेमियों के साथ अति गम्भीर क्षणों में कराह उठती थीं, "हे भगवान ! मैं खुश हूं। इस अति आनंद की अनुभूति के लिए मैं आपसे क्षमा चाहती हूं।" हम सहजता से यह समझ सकते हैं कि आत्ममुग्धा स्त्री के लिए यह कितनी उन्मत्त होने वाली बात है कि पूरा स्वर्ग उसके लिए शीशे में सिमट आता है। उसकी देव- तुल्य परछाईं ईश्वर की तरह असीमित और अनश्वर लगती है। ऐस क्षणों में वह अपनी जलती, धड़कती और प्रेम में डूवी छाती में अपनी आत्मा का सृजन होते देखती है। वह महसूस करती है कि परम पिता उसका उद्धार करता है और उसे संजोकर रखता है। यह स्त्री का दोहरा रूप होता है। वह स्वयं अपना आलिंगन करती है और ईश्वर का ध्यान करके अत्यंत गरिमामयी हो जाती हैं। इस संदर्भ में फैलिग्नो की एंजेला के कुछ कथन महत्त्वपूर्ण हैं। जीसस उससे कहते हैं :

"मेरी प्यारी लड़की ! मेरी बेटी ! मेरी प्रेमिका ! मेरी मंदिर! मेरी पुत्री ! मेरी प्रिय! मुझसे तुम इसलिए प्यार करती हो कि मैं तुमसे प्यार करता हूं। उससे कहीं अधिक, जितना तुम मुझसे करती हो। तुम्हारा सम्पूर्ण जीवन, खाना-पीना और सोना, सब मुझसे अनुग्रह प्राप्त करते हैं। लोगों की दृष्टि में मैं तुम्हारे द्वारा बहुत बड़ा कार्य करूंगा। तुम्हारे द्वारा ही लोग मुझे जानेंगे और तुम्हारे द्वारा ही मैं तुमसे अत्यधिक प्यार करता हूं।
'मेरी पुत्री! जितना मैं तुम्हें प्रिय नहीं हूं, उससे कहीं अधिक तुम मुझे प्रिय हो। सर्वशक्तिमान ईश्वर का हृदय अब तुम्हारे हृदय में है। सर्वशक्तिमान ईश्वर इस शहर की हर स्त्री से कहीं अधिक प्यार तुम पर उंडेलता है। उसने तो तुम्हें अपनी खुशी बना लिया है।
"मैं तुमसे इतना अधिक प्यार करता हूं कि तुम्हारी कमजोरियों पर मेरी नजर पड़ती ही नहीं। मैंने तुम्हें एक महान् सम्पत्ति प्रदान की है।"

इतने महान् स्रोत से आए भावावेशपूर्ण वचनों को सुनकर अनुग्रह-प्राप्त व्यक्ति भावपूर्ण उत्तर दिए बिना नहीं रह सकता। स्त्री अपने प्रेमी से मिलने के लिए वही तरीका अपनाती है जो एक रहस्यवादी भक्त अपनाता है। वह तरीका है- अपने अस्तित्व का सम्पूर्ण विलय। "मेरा केवल एक उद्देश्य है। वह है-तुमसे प्यार करना, अपने को विस्मृत कर देना, अपने को मिटा देना।"- यह मैरी एलाकोक लिखती हैं। परमानंद के इन क्षणों में भी प्रेम की तन्मयता के आनंद के क्षणों की तरह अहं का लोप हो जाता है। व्यक्ति को न कुछ दिखाई पड़ता है और न कुछ अनुभव होता है। शरीर को अस्वीकार कर दिया जाता है, उसे भुला दिया जाता है। ईश्वर के रूप की चकाचौंध करने वाली भव्य उपस्थिति अपनी उत्कृष्ट आकृति में प्रकट होती है। व्यक्ति विह्वल होकर शांत हो जाता है। मदाम गुयों में यह शांत निष्क्रियता एक ऐसे उच्च स्तर पर पहुंच गई थी कि उन्होंने अपने जीवन का एक बड़ा अंश आत्मविभोर अवस्था में गुजार दिया।

अनेक रहस्यवादी स्त्रियां शांत भाव से ईश्वर के सम्मुख समर्पण नहीं कर देतीं। वे सक्रिय होकर अपने अहं को मिटा देना चाहती हैं, देह का नाश कर देना चाहती हैं। निस्संदेह तपस्या तो पुरोहितों और साधुओं द्वारा ही की जाती है, किंतु जिस आवेग और जोश में आकर स्त्री अपने शरीर का निरादर करती है, वह एक विशेष रूप धारण कर लेता है। स्त्री का अपने शरीर के प्रति कैसा अस्पष्ट और. द्वयर्थक रुख है, उसे हमने देखा। अपमान और पीड़ा द्वारा वह इस शरीर को गौरवान्वित कर लेती है। अपने प्रेमी को अपना शरीर आनंद के उपकरण के रूप में प्रदान करके वह स्वयं मंदिर और देवमूर्ति बन जाती है। प्रसव की पीड़ा को सहन करके वह वीरों को जन्म देती है। रहस्यवादी स्त्री अपने शरीर को यातना देती है जिससे वह ईश्वर को प्राप्त करने का दावा कर सके। अपने शरीर को वह वस्तु के रूप में ढालकर इतना उत्कृष्ट बना देती है कि वह मोक्ष का माध्यम बन सके। इस तरह संतों की कठोर साधना को व्यक्त किया जा सकता है। फैलिग्नो की एंजेला कहती है : "मैं उस जल को बड़ी प्रसन्नता से पी लेती हूं, जिसमें कोढ़ से पीड़ित रोगियों के हाथ और पांव धोए जाते हैं।

"इस पेय में मुझे अत्यंत मिठास लगी। मैं आनंदपूर्वक घर आई। मैंने इतने आनंद के साथ कभी भी कुछ नहीं पिया था। कोढ़ी के घाव का पपड़ीदार हिस्सा मेरे गले में रह गया। उसको बाहर निकाल देने के बजाय मैंने निगल लेने की चेष्टा की और मुझे सफलता मिली। मुझे ऐसा लगा मानो मैंने परमप्रसाद ग्रहण किया हो। मैं कभी भी उस खुशी को व्यक्त नहीं कर सकूँगी।"

हम जानते हैं कि मैरी एलाकोक ने एक रोगी की उल्टी को अपनी जीभ से चाटकर साफ किया। एक व्यक्ति को दस्त हो रहे थे, उन्होंने उसे अपने मुंह में ले लिया। ऐसा करने में उन्हें जिस आनंद का अनुभव हुआ, उसका वर्णन उन्होंने अपनी जीवन-कथा में किया है। वे तीन

घंटों तक अपने होंठों को जीसस के हृदय से लगाए रहीं और इसलिए जीसस ने उन्हें पुरस्कार दिया। स्पेन और इटली जैसे देश, जहां लोग अति कामुक होते हैं, वहां श्रद्धा में भी शारीरिक रूप आ जाता है। एबरूजों में एक ग्राम है, जहां आज भी स्त्रियां जीभ निकालकर उन पत्थरों को चाटती चलती हैं जो 'क्रास' तक पहुंचने के रास्ते में आते हैं। इन सभी अभ्यासों द्वारा स्त्रियां अपने उस उद्धारक की नकल करती हैं जिसने अपने शरीर को अपमानित कराकर अन्य शरीरों की रक्षा की। पुरुषों से अधिक स्त्रियां इस रहस्य को समझती हैं।

प्रायः ईश्वर स्त्रियों के सम्मुख प्रेमी के रूप में प्रकट होते हैं। कभी-कभी वे अपने पूर्ण गौरव के साथ प्रकट होते हैं। उनका धवल, उज्ज्वल वस्त्र और सौंदर्य चकाचौंध कर देता है। वे सबके स्वामी हैं। वे स्त्री को वधू के वस्त्र पहनाते हैं और उसके मस्तक पर मुकुट रखते हैं। प्रायः वे शरीर- रूप में होते हैं। जीसस ने कैथेरिन को विवाह की अंगूठी दी थी। उसने उसे छिपाकर अपनी उंगली में पहना। यह तो दैहिक अंगूठी थी जो कि उनके 'लिंग' से मांस उतारते समय काटी गई थी। उनके शरीर के साथ दुर्व्यवहार किया गया था। उससे रक्त बहाया गया। वह तो सच्चे दिल से उसके ध्यान में, जिसे 'क्रास' पर रख निर्मम ढंग से मारा गया था, खो जाती है। वह अपना एकीकरण पवित्र माता के साथ करती है जो कि अपनी बांहों में, अपने पुत्र के 'फूल' लिए खड़ी है या मैग्डालेन के साथ वह एकाकार हो जाना चाहती है जो 'कास' के नीचे खड़ी है और जिस पर उसके अतिप्रिय का रक्त फैला पड़ा है। इस प्रकार वह अपनी परपीड़न की काल्पनिक इच्छा को तृप्त करती है। ईश्वर के अपमान में वह आश्चर्य से मानव का पतन देखती है। शांत निष्क्रिय घावों से भरा हुआ क्राइस्ट, जिसकी निर्मम ढंग से हत्या की गई है, उससे नितांत भिन्न है जिसकी मूर्ति श्वेत है, जिस पर खून के धब्बे पड़े हैं, जो शहीद के रूप में जंगली जानवरों, तलवारों और अन्य पुरुषों के सम्मुख डाल दिया गया है। छोटी बालिका अक्सर इस मूर्ति के साथ अपना एकीकरण करती है। इस मनुष्य-देव को देखकर वह भावावेश में आ जाती है। उसे पुनर्जन्म का गौरव दिया जाएगा। यह वह है, यह वह प्रमाणित करती है। उसके सिर पर कांटों का ताज है और उसके मस्तक से रक्त टपक रहा है। उसके हाथों, पैरों और कांखों को लोहे से बांध दिया गया है। तीन सौ इक्कीस व्यक्तियों में से, जिन्हें कैथोलिक चर्च ने मान्यता दी है और जिनके शरीर पर घावों के चिह्न हैं, बयालीस पुरुष हैं और शेष स्त्रियां। प्राय: सभी स्त्रियां मासिक-धर्म बंद होने वाली उम्र की हैं। इनके मध्य प्रसिद्ध संत ज्याने दिलाको की गणना होती है। प्रसिद्ध व विख्यात संत कैथेरिन एमरिक को ये घाव अपरिपक्व अवस्था में मिले। चौबीस वर्ष की आयु में ही उनकी इच्छा 'कांटों का ताज' पहनने की हुई। उन्होंने देखा कि एक दैदीप्यमान नवयुवक उनकी ओर आ रहा है और उसने उनके मस्तक पर ताज रख दिया है। दूसरे दिन उनकी कनपटी और मस्तक में सूजन आ गई और रक्त बहने लगा। चार वर्ष बाद, एक अलौकिक आनंद की अवस्था में उन्होंने जीसस क्राइस्ट को देखा जिनका शरीर घावों

से भरा हुआ था। इन घावों से चाकू के आकार में किरणें फूटने लगीं। इन किरण-रूपी चाकुओं ने संत के हाथों, पैरों और कांखों को घायल कर रक्ताक्त कर दिया। उनके शरीर से खून का पसीना निकलने लगा। जब वे थूकंती थीं; तब से खून टपकता था। आज भी गुड फ्राइडे के दिन थेरेस न्युमान, जिनका मुख-मंडल क्राइस्ट के रक्त से अनुरंजित है, लोगों के सम्मुख प्रकट होती हैं।

घाव के इन चिह्नों द्वारा ही वह रहस्यमय परिवर्तन प्राप्त होता है जो मानव-देह को गौरवान्वित कर देता है। ये चिह्न अलौकिक प्रेम के प्रतीक होते हैं। यह रक्त-प्रवाह विषाद के रूप में प्रकट होता है। अब सहज ही समझा जा सकता है कि स्त्रियां रक्त-प्रवाह के सुनहली लपटों में बदल जाने में क्यों रुचि लेती हैं। उनके मस्तिष्क में यह बात घर कर गई है कि वे ईश्वर की अनुचर हैं और उनकी कांखों से रक्त बह रहा है। साइना की संत कैथेरिन ने इसका वर्णन अपने अनेक पत्रों में किया है। फैलिग्नो की एंजेला जीसस के हृदय और उनकी बगल में हुए घाव का चिंतन करती हुई नतमस्तक हो जाती हैं। एमेरिक की कैथेरिन ने तो एक लाल साया धारण किया जिससे वह जीसस के उस रूप की तरह लगें जो उनके रक्त से भीगा कपड़ा पहना हुआ लगता है। उन्होंने प्रत्येक वस्तु को जीसस के रक्त के माध्यम से देखा। मैरी एलाकोक ने तीन घंटों तक अपने होंठों को जीसस के पवित्र हृदय से लगाकर तृप्ति प्राप्त की। उन्होंने लाल रक्त के टुकड़े के प्रति, जिसके चारों ओर मानो प्रेम की लपक भालों की तरह निकल रही थी, महान् श्रद्धा दिखाई। यह वह चिह्न है जो स्त्रियों के महान् स्वप्न का सूचक है। यह प्रेम द्वारा रक्त के माध्यम से गौरव प्राप्त करना है।

परमानंद, स्वप्न और ईश्वर के साथ संलाप के आंतरिक अनुभव कुछ स्त्रियों के लिए विशेष महत्त्व रखते हैं। कुछ स्त्रियां अपने कार्यों द्वारा विश्व में उनका प्रदर्शन करना चाहती हैं। कार्य और ध्यान का सम्बंध दो भिन्न रूपों में प्रकट होता है। संत कैथेरिन, संत थेरेसा और जोन ऑफ आर्क जैसी कर्मठ स्त्रियां अपने लक्ष्य से भली-भांति परिचित रहती हैं। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के उपाय वे आसानी से सोच निकालती हैं। ऐसी स्त्रियों को उनका बाह्य रूप उनके आदर्शों तक पहुंचने के माध्यम के रूप में ही ईश्वर देता है। इस प्रकार की आत्मिक अनुभूतियां ऐसी स्त्रियों को उनके मार्ग पर दृढ़ता से चलने की प्रेरणा देती हैं। मदाम गुयों और मदाम द क्रुदनेर जैसी आत्ममुग्धा स्त्रियां कुछ समय तक शांत प्रेम की स्थिति में रहने के बाद हठात् अनुभव करती हैं कि उन्हें सर्वोच्च धर्माधिकार प्राप्त हो गया है। वे अपने कार्य के बारे में स्वयं ठीक से निश्चय नहीं कर पातीं, अगर वे कुछ करती हैं तो यह सोच नहीं पातीं कि क्या कर रही हैं। उनकी स्थिति समाज-सेवी संस्थाओं में काम करने वाली उन स्त्रियों की-सी होती है जो जीवन में केवल उत्तेजना चाहती हैं। ऐसी ही थीं क्रुदनेर जिन्होंने अपने को राजदूत और उपन्यासकार के रूपों में प्रदर्शित करके अपने गुणों को अपनी ही परिभाषा दी। कुछ निश्चित विचारों की विजय का आश्वासन देने के लिए नहीं, यह

सिद्ध करने के लिए कि उन्होंने उस भूमिका को अच्छी तरह निबाहा जिसके लिए ईश्वर ने उन्हें प्रेरणा दी। एलेक्जेंडर प्रथम ने भाग्य का भार उठाया। सुंदरता और बुद्धि स्त्री को यह सोचने के लिए विवश कर देते हैं कि वह श्रद्धा के योग्य हैं। ऐसी स्त्री यह सोच कर कि उसे ईश्वर ने चुना है, अधिक विवेकशील हो जाती है। वह सोचती है कि उसे किसी विशेष कार्य की सिद्धि करनी है। वह अस्पष्ट सिद्धांतों की शिक्षा देने लगती है और एक पथ स्थापित करती है जो अन्य लोगों को प्रेरणा दे। वह अपने व्यक्तित्व के अनेक उत्तेजक रूप प्रस्तुत करती है।

रहस्यवादी भावुकता भी प्रेम और आत्ममुग्धता की तरह क्रियाशील और स्वतंत्र जीवन में सम्मिलित की जा सकती है। व्यक्तिगत मोक्ष प्राप्त करने के प्रयत्न हमेशा असफल सिद्ध होते हैं । या तो स्त्री किसी अवास्तविक के साथ अपना सम्बंध स्थापित कर लेती है, अपना द्वयरूप, ईश्वर का साथ या फिर वास्तविक व्यक्ति के साथ अवास्तविक सम्बंध। दोनों ही रूपों में वह विश्व पर अपना प्रभाव नहीं जमा सकती। वह अपने व्यक्तित्व से छुटकारा नहीं पा सकती। उसकी स्वतंत्रता हताश हो जाती है। वह अपनी स्वतंत्रता का वास्तविक प्रयोग सिर्फ मानव-समाज में कार्यरत होकर ही कर सकती है।

चार : स्वाधीनता संग्राम

स्वाधीन नारी

मतदान और अन्य तमाम नागरिक अधिकारों के बावजूद आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में स्त्री की स्वतंत्रता सिर्फ अमूर्त और सैद्धांतिक रह जाती है। पुरुष पर अपनी आर्थिक निर्भरता की स्थिति में स्त्री अपनी किसी भी भूमिका- पत्नी, प्रेमिका या रखैल-में स्वावलम्बी नहीं हो पाती। आत्मरति या प्रेम और धर्म अथवा मातृत्व के द्वारा स्त्री की प्रामाणिक जीवन प्राप्त कर पाने की चेष्टाएं व्यर्थ हो जाती हैं। अर्थ ही व्यक्ति को वह अधिकार देता है जिसके द्वारा वह अपनी परियोजनाएं पूरी कर सके । अनेक स्त्रियां, चाहे वे बहुत साधारण अवस्था में ही क्यों न हों, आर्थिक अधिकारों से मिलने वाली सुविधाओं का महत्त्व जानती हैं। मैंने एक बार किसी होटल की लॉबी में फर्श पोंछती हुई नौकरानी को यह कहते सुना, "मैंने कभी किसी से कुछ नहीं मांगा। मैंने अपनी सफलता खुद अर्जित की है।" उस नौकरानी के स्वर में आत्म-निर्भरता का उतना ही गर्व था जितना राकफेलर जैसे करोड़पति को अपनी सफलता पर हो सकता है।

मैं यह नहीं कहना चाहती कि केवल एक नौकरी या वोट देने के अधिकारमात्र से ही स्त्री स्वतंत्र हो जाती है। आज की दुनिया में नौकरी भी एक प्रकार की गुलामी है। स्त्री की दशा में इन पारिस्थितिक परिवर्तनों से सामाजिक संरचना बहुत अधिक नहीं बदली है। दुनिया अब भी पुरुषों की है और जैसा वे चाहते हैं, वैसा ही आकार ग्रहण करती है।

हम इस तथ्य को न भूलें कि स्त्री-श्रम अपने आपमें एक बड़ी ही जटिल समस्या है। हाल ही में एक महत्त्वपूर्ण तथा विदुषी महिला ने रैनो की फैक्टरियों में काम करती हुई महिलाओं पर अध्ययन किया था। उनका कहना है :

"इनमें से अधिकांश महिलाएं अब भी फैक्टरियों में काम करने की अपेक्षा घर पर रहना ज्यादा पसंद करती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि ये महिलाएं उस वर्ग की सदस्याएं हैं जो अपने आपमें आर्थिक दमन का शिकार है। अतः फैक्टरी में काम करने के कारण जो आर्थिक स्वतंत्रता उन्हें मिलती है, उससे इनकी घरेलू जिंदगी का बोझ कम नहीं हो जाता। उन्हें न समाज और न अपने पति से वह सहारा मिल पाता है जिससे वे यथार्थ जीवन में

पुरुष के बराबर हो सकें। केवल वही श्रमजीवी स्त्रियां अपने रोजमर्रा के उबाऊ कामकाज को नैतिक अर्थवत्ता प्रदान कर सकती हैं, जिनके पास राजनीतिक आस्था है, जिन्हें अपने भविष्य में विश्वास है, तथा जो श्रमिक संगठनों से जुड़ी हैं। किंतु, फुर्सत की कमी और विरासत में मिली हुई पारम्परिक समर्पण की भावना के कारण स्त्रियां कुछ हद तक ही अपनी राजनीतिक और सामाजिक चेतना विकसित कर पाई हैं। अभी भी अपने श्रम के विनिमय में सामाजिक और राजनीतिक अधिकार न मिल पाने के कारण वे मजबूर होकर पुरुष की अधीनता स्वीकार करती हैं।"

एक प्रशिक्षणार्थी, दुकान में काम करने वाली स्त्री या सेक्रेटरी पुरुष-प्रदत्त सुविधाओं को छोड़ नहीं पाती । जैसा कि मैंने पहले ही कहा है कि केवल शारीरिक समर्पण द्वारा ही विशिष्ट वर्ग से जुड़ना किसी भी युवा स्त्री के लिए एक बेहद लुभावनी चाह है। अपनी इस सतही औरताना जिंदगी को वह इसलिए भी स्वीकारती है कि एक ओर जहां उसे मिलने वाली पगार कम है, वहीं दूसरी ओर समाज उससे ऊंचे जीवन-स्तर की आशा रखता है। यदि वह केवल अपनी मेहनत पर जीना चाहे और संतुष्ट रहे तो वह एक आवारा और फूहड़ जीवन ही जी पाएगी। उसकी न कोई अच्छी वेशभूषा होगी, न उसके पास आमोद-प्रमोद के साधन होंगे और न ही उसे पुरुष का प्यार नसीब होगा। साधु पुरुष उसे संयमित साध्वी के जीवन का उपदेश देंगे, और वास्तव में अर्थाभाव के कारण उसका जीवन भिक्षुओं जैसा ही होगा। दुर्भाग्यवश प्रत्येक औरत ईश्वर को तो अपना प्रेमी नहीं समझ सकती। यदि वह जीवन में सफलता और उन्नति चाहती है तो उसे पुरुष को जरूर खुश रखना होगा। कम-से-कम आवश्यक सुविधाओं के लिए स्त्री पुरुष का ही सहारा स्वीकार करती है। स्त्री श्रमिक की इसी विवशता का लाभ उठाकर मालिक उसे कम पगार देता है। हालांकि अपनी मेहनत की कमाई के साथ-साथ पुरुष से समय-समय पर दूसरे कारणों से मिलने वाले आर्थिक उपहारों के कारण वह अपनी स्थिति कुछ सुधार सकती है, लेकिन यदि वह अपनी आय के दोनों जरियों को बनाए रखती है तो यह एक प्रकार की दोहरी गुलामी होती है। विवाहित स्त्री के लिए तो उसकी कमाई जेब खर्च के नाम पर मिलने वाली रकम-भर होती है। अत: हम देखते हैं कि किसी भी अवस्था में अपनी कोशिशों से स्त्री पूर्ण स्वाधीनता नहीं पाती; यद्यपि एक बड़ी संख्या में कुछ विशेषाधिकार प्राप्त स्त्रियां भी मिलती हैं, जिन्होंने अपने पेशे से अधिक सामाजिक स्वायत्तता हासिल की है।

व्यावसायिक महिलाओं की स्थिति पर यहां पृथक विचार की आवश्यकता है। स्त्रियों के अधिकारों की मांग करने वालों और विरोध करने वालों के बीच यह एक विचारणीय विषय बन गया है। स्त्री-अधिकारों के विरोधी प्राय: यह दलील देते हैं कि आज की स्वाधीन स्त्रियों ने अब तक जगत् में ऐसा कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया है, तथा उन्हें अब भी आंतरिक

संतुलन प्राप्त करने में कठिनाई होती है। दूसरी ओर, नारी अधिकारवादी व्यावसायिक महिलाओं की उपलब्धि को बढ़ा-चढ़ाकर रखते हैं, किंतु, वे इन महिलाओं की आंतरिक त्रासदी जानते हैं। हम यह भी नहीं कह सकते कि मुक्ति- पथ पर चलने वाली स्त्रियां गलत हैं और न ही यह कि अपने इस नए क्षेत्र में वे संतुष्ट हैं। मैं तो यह कहूंगी कि आज की स्त्री बीच की स्थिति में है । पुरुष से आर्थिक रूप से आजाद ये स्त्रियां अब भी मानसिक, सामाजिक या नैतिक स्थितियों में पुरुष के बराबर नहीं हैं। जिस प्रकार वे अपने व्यवहार में नियोजित तथा प्रतिबद्ध होती हैं, उसका संदर्भ उनके जीवनगत दृष्टिकोण से तय होता है।

पुरुष अपने अस्तित्व की सीमाओं के अतिक्रमण की क्षमता से सर्वोपरिता की ओर अग्रसर होने के कारण जिस पूर्णता का बोध हासिल करता है, वह स्त्री के लिए सम्भव नहीं, क्योंकि स्त्री को स्वयं को कामना की वस्तु बनाए रखना पड़ता है, अत: उसी चेतना में घटित द्वंद्व हमारी बहस का केंद्रीय विषय है। आज की स्त्री पारम्परिक नारी की भूमिका में स्वयं को पंगु नहीं बना देना चाहती, किंतु इससे बाहर जाते ही उसे अपने नारीत्व का उल्लंघन करना पड़ता है। पुरुष यदि अपनी सेक्सुअलिटी के कारण सम्पूर्ण व्यक्ति बने, तब स्त्री भी उसके बराबर अपनी पहचान नारीत्व को बनाए रखकर ही हासिल कर सकती है।

व्यस्त जिंदगी शुरू करने वाली स्त्री को पुरुष की भांति सफलता की कोई परम्परा नहीं मिलती। समाज उसे नए अध्यवसायी पुरुषों के बराबर महत्त्व नहीं देता। उसके साथ यह दुनिया एक नए परिप्रेक्ष्य में पेश आती है। एक स्वतंत्र मानव-व्यक्ति की हैसियत से स्त्री होना आज भी विलक्षण समस्याओं से भरा हुआ है।

बौद्धिक स्त्रियों से भी समाज बड़ी विरोधाभासपूर्ण अपेक्षाएं रखता है। यदि वे अपने परिधान पर पूरा ध्यान नहीं देती तो लोग उन्हें मर्दाना स्वभाव को कहते हैं और यदि वे फैशन और मेकअप करती हैं तो लोग कहते हैं कि औरत औरत ही रहती है।

मुझे इस तरह की सारी बातें बकवास लगती हैं क्योंकि नारीत्व की अवधारणा आदिकाल से चली आ रही स्थायी अवधारणा नहीं मानी जा सकती। यह अवधारणा आचार, व्यवहार और फैशन के परिवर्तनों के साथ बदलती रहती है। कालक्रम में अच्छे और बुरे का विधान भी बदलता रहा है। अब पैंट पहनना स्त्रियोचित है। खैर, इन बातों से कोई मौलिक परिवर्तन नहीं होता। यथास्थिति का समर्थन न करने वाली स्त्री समाज की नजरों में अपनी सेक्सुअलिटी का अवमूल्यन करती है। समाज सेक्सुअलिटी को स्त्री को अनिवार्य विशेषता मानता है। मैं स्त्रियोचित गुणों की जरूरत को नकारना नहीं चाहती। ऐसा करने से स्त्री की ही स्थिति उपहासास्पद होगी। सबके बीच में अपना अनोखापन जाहिर करना एक हीन-भाव का ही परिचायक है। विधेयकहीन चुनौती का रवैया स्त्री के समय और शक्ति का अनावश्यक अपव्यय ही होता है। इस तरह के रवैये से कोई वांछित प्रभाव भी नहीं पड़ता। जहां समरूपता और सादृश्यता पुरुष के लिए स्वाभाविक मानी

जाती है और समाज के रीति-रिवाज भी उसकी जरूरतों के अनुकूल ही बनाए जाते हैं, वहां स्त्री के लिए भी यह जरूरी हो जाता है कि वह एक स्वतंत्र व्यक्ति की हैसियत से अपने को निष्क्रिय बनाने वाले जगत् की सीमाओं से मुक्त करे। बनाव-शृंगार और घर-गृहस्थी, दोनों ही कठिन कलाएं हैं। पुरुष को अपने कपड़ों के बारे में शायद ही सोचना पड़ता है, क्योंकि वे उसके व्यक्तित्व का हिस्सा न होकर जरूरत भी होते हैं, जबकि औरत घंटों आलमारी में कपड़ों को उलटने-पलटने के बावजूद सही चुनाव नहीं कर पाती। इस मामले में वह बेहद आत्म-सतर्क होती है। वह जानती है कि उसके बनाव-श्रृंगार के द्वारा हो उसे सम्मान और स्वीकृति मिलने वाली है। स्त्री के कपड़े शुरू से ही उसे अकर्मण्य बनाते हैं। वे निष्प्रयोजन हो जाते हैं। जूतों और कपड़ों के रंग या तो फीके पड़ जाते हैं, या उनकी सिलाई उधड़ जाती है। इन सबकी मरम्मत भी तो उसी को करनी पड़ती है। दूसरी कोई और स्त्री उसका यह काम नहीं करेगी। इन कामों में खर्च के भय से स्त्री पेशेवर लोगों की सहायता लेने से भी कतरा जाएगी। वैसे ही बाल संवारने, मेकअप और नए कपड़ों में उसका काफी समय और पैसा खर्च हो जाता है। दिन-भर की थकी कामकाजी महिलाओं को घर लौटकर अपने कपड़े धोने पड़ते हैं, उन पर इस्तरी करनी पड़ती है। कमाने वाली स्त्री शायद पैसों के सहारे इन झमेलों से भले ही कुछ बच जाए, किंतु तब भी उसे रुचि के निर्वाह के लिए फैशनेबल खरीदारी, कपड़ों की नाप देने तथा अन्य बातों में समय बर्बाद करना ही पड़ता है। परम्परा अकेली स्त्री से भी स्तरीय रहन-सहन की आशा करती है।

एक पुरुष अधिकारी जब शहर में नया आता है तो तुरंत होटल के कमरे में रहने लगता है, किंतु इसी स्थिति में एक स्त्री अधिकारी अपना घर बनाना चाहेगी। इसके साथ ही उसे अपने घर की व्यवस्था तथा सफाई का भी पूरा ख़याल रखना पड़ेगा। इसमें किसी प्रकार की कोताही स्त्री के लिए क्षम्य नहीं होती, चाहे पुरुष के लिए वह कितनी भी साधारण बात लगे।

स्त्री केवल दूसरों के खयाल से ही अपने बनाव-शृंगार या गृहस्थी में समय नहीं देती। अपने स्त्रीत्व को बनाए रखने में उसका स्वयं का भी आत्म-संतोष शामिल रहता है।

स्त्री स्वभावतः आत्ममुग्धा होती है। पुरुषों की दृष्टि में स्वीकृत होने के लिए वह सुंदर दिखना चाहती है। उसकी मां और बड़ी बहनों ने शुरू से ही उसके मन में एक सुंदर घोंसले की जरूरत पैदा कर दी है। किन्हीं दूसरे रास्तों से स्वतंत्रता मिल जाने पर भी वह अपनी इन इच्छाओं को छोड़ना नहीं चाहती। जिस हद तक वह पुरुष को दुनिया में असुरक्षित महसूस करती है, उसी हद तक वह इन जरूरतों को, जिनका प्रतीकात्मक अर्थ हुआ आंतरिक शरण, अपने आपमें बनाए रखती है। परम्परा के प्रति आज्ञाकारिणी स्त्री अब भी फर्श पर पालिश करने में समय खर्च करेगी और अकेले पुरुष की भांति होटल में न खाकर घर में ही

खाना पकाएगी। एक ही समय में स्त्री और पुरुष, दोनों की भूमिकाओं में जीने के कारण वह अपने काम को कई गुना बढ़ा लेती है। नतीजा होता है-थकान और ऊब।

परम्परागत नारीत्व में बनी रहना चाहने वाली स्त्री को पुरुष के सामने उसी रूप में उपस्थित होना होगा, जैसा कि वह चाहता है। उसे सबसे बड़ी समस्या का सामना करना पड़ता है यौन-जीवन में पुरुष के बराबर का पूर्ण व्यक्ति होने के लिए। स्त्री को पुरुषों के जगत् में वैसे प्रवेश करना पड़ता है जैसे पुरुष स्त्री के जगत् में रहता है। यानी स्त्री भी उस दूसरे को ग्रहण करे, जैसे कि दूसरा उसे करता है। स्पष्टत: यहां व्यवहार में पारस्परिकता का अभाव मिलता है। एक बार यश और धन प्राप्त करते ही जहां स्त्री का सेक्सुअल आकर्षण बढ़ जाता है, वहीं कर्मक्षेत्र में स्त्री की स्वतंत्र कार्यशीलता उसके इस आकर्षण को कम कर देती है।

स्वाधीन, बौद्धिक और आत्म-सजग स्त्रियों को औरत होने के हीनता-बोध की पीड़ा झेलनी पड़ती है। एक कामकाजी महिला सौंदर्य-प्रसाधनों के जुगाड़ और प्रयोग के लिए समय नहीं निकाल सकती। वह जानती है कि सौंदर्य-विशेषज्ञ की सलाह लेने के बावजूद बहुतेरी सामान्य स्त्रियों की बराबरी का फैशन और मेकअप वह नहीं कर सकती। इस क्षेत्र में उसको पिछड़ना ही है। स्त्रियोचित आकर्षण बनाए रखने के लिए स्त्री को केवल अपनी अंतर्वर्तिता में ही अवस्थित रहना पड़ेगा, उसे अपनी धड़कती मांसलतामात्र को सजा कर किसी का शिकार बनने को इच्छुक लगना पड़ेगा। किंतु एक बौद्धिक स्त्री अपने समर्पण की मजबूरी जानती है। एक चेतनाशील व्यक्ति होने के नाते वह यह भी जानती है कि झील का नीलापन देखते ही आंखों का रंग नहीं बदला जा सकता। जगत् में विनियोजित उसका शरीर अचानक जगत् से काट कर एक जीवित मूर्ति में बदला जा सकता है। एक बौद्धिक स्त्री यह सब कुछ भी पूरे आवेग और उत्साह के साथ करना चाहेगी क्योंकि वह असफलता से डरती है। अतः इस तरह की आवेग-जनित सचेत चेष्टाएं एक उद्देश्यहीन क्रिया बनकर रह जाती हैं। वह कमसिन दिखने के लिए तरह-तरह के सौंदर्य-प्रसाधनों का प्रयोग करती है। इस प्रकार एक बौद्धिक स्त्री भी अपनी बुद्धि के आग्रहों को नकारती है।

कभी लापरवाही और असावधानी, तो कभी उत्साह और प्रफुल्लता, कभी झूठी चंचलता और व्यर्थ की बकवास या फिर एक उदंड बालिका का-सा व्यवहार । किंतु इन सब व्यवहारों में स्त्री उस अभिनेत्री की तरह है, जो एक विशेष संवेग को महसूस करने के लिए अपनी मांसपेशियों को ढीला छोड़ने के बजाय उन्हें और कस लेती है। खुली आंखों के बदले पलकें झपक जाती हैं, या फिर होंठों में कसाव आ जाता है। नकल करने में बौद्धिक स्त्री व्यर्थ ही तनावग्रसित हो उठती है। वह इस बात को समझती भी है और इसके कारण झुंझलाती भी है। उसके मासूम चेहरे पर अचानक बुद्धि की तीखी चमक बिजली-सी कौंध जाती है, आमंत्रण में खुले होंठ अचानक कस उठते हैं। पुरुष को खुश करने में उसकी

असुविधा का कारण यही है कि अपनी अन्य गुलाम बहनों की तरह वह केवल पुरुष को बहलाने का उपकरणमात्र नहीं बन पाती। वह अपने अंतस्तल में केवल पुरुष को प्रसन्न करने की कामना नहीं पाल पाती।

तथ्य यह है कि पुरुष भी अब स्त्री की इस नई द्वयता प्राप्त करने की इच्छा स्वीकारने लगा है तथा स्त्री भी अब पुरुष के सम्मुख अपनी हीनग्रंथियों से मुक्त होकर ज्यादा खुल पाई है। यद्यपि उसकी आज की यह सफलता संतुलन की ओर अधिक है, किंतु अब भी स्त्री के लिए अपने मनचाहे तरीके से पुरुष के साथ सम्बंध स्थापित करना, पुरुष की अपेक्षा अधिक कठिन है। उसका मानस और भावनात्मक जीवन अनेक कठिनाइयों का सामना करता है। इस मामले में एक स्वतंत्र स्त्री को भी विशेष सुविधा नहीं मिल पाई है। अधिकतर पत्नियां या प्रेमिकाएं शरीर और मन के स्तर पर गहरी कुंठा की शिकार होती हैं। स्वतंत्र स्त्रियों के मामले में इन कठिनाइयों के अधिक व्यक्त होने का कारण यह है कि वस्तु-स्थिति को स्वीकारने के बदले उन्होंने युद्ध का निश्चय किया है।

एक स्त्री, जो जीना चाहती है और जिसने अपनी हर इच्छा तथा कामना को दफन नहीं कर दिया है, निष्क्रिय उदासीनता के बदले जोखिम लेना अधिक पसंद करेगी। उसे एक पुरुष की तुलना में अधिक प्रतिकूल और चुनौतीपूर्ण स्थितियों का सामना करना पड़ता है। समाज स्त्री की स्वतंत्रता की इच्छा को सहजता से स्वीकार नहीं करता। स्वतंत्रता का उपयोग करने वाली स्त्री ऐसे समाज में मान और कैरियर को खोने का जोखिम उठाती है। समाज उसे कम-से-कम एक झूठा मुखौटा लगाने को कहता है। यह ठीक है कि समाज में स्त्री जितना अपनी स्थिति को मजबूत करती है, उतना ही लोग उसकी इन कमियों पर आंखें बंद किए रहते हैं, लेकिन यह तो महानगरों की जिंदगी हुई। छोटे शहरों और गांवों में ऐसी स्त्री पर अब भी कड़ी निगरानी रखी जाती है। फिलहाल स्त्री की स्थिति पुरुष के बराबर नहीं हो पाती। पुरुष और स्त्री में इस अंतर का एक कारण तो पारम्परिक दृष्टिकोण और दूसरा कारण स्वयं स्त्री में पारम्परिक नारीत्व के प्रति गहरा लगाव है।

अपनी कामनाओं की पूर्ति स्त्री स्वाधीनतापूर्वक नहीं कर सकती। जो सम्बंध पाशविकता के. स्तर पर होते हैं उनमें शारीरिक ताकत का फर्क तो कायम ही रहता है। जितनी आसानी से एक पुरुष राह-चलती एक औरत को अपने घर ला सकता है, उतनी ही सरलता से एक औरत ऐसा नहीं कर सकती।

मैंने सुना था कि दो युवतियों ने पेरिस आने पर रात के वक्त टहलते हुए दो आकर्षक युवकों को खाने पर आमंत्रित किया। सुबह उन्होंने अपने आपको पिटा हुआ पाया। उनका सारा सामान लूट लिया गया और ब्लैकमेल की धमकियां भी मिलने लगीं।

एक और किस्सा सुनिए। मेरी एक चालीस वर्षीया तलाकशुदा परिचिता को दिन-भर अपने तीन बच्चों और बूढ़े माता-पिता के लालन-पालन के लिए कठिन मेहनत करनी

पड़ती थी। अब भी आकर्षक उस महिला के पास सामाजिक जीवन के लिए कोई समय नहीं था, और न ही वह चाहती थी कि किसी पारम्परिक तरीके का प्रेम-सम्बंध शुरू करे। वह इन सब झमेलों में पड़ना नहीं चाहती थी, किंतु उसके अहसास गहरे थे और वह अपनी भावनाओं को संतुष्ट करने में विश्वास भी रखती थी। अतः कभी-कभी वह रात में सड़कों पर किसी पुरुष के साथ के लिए चक्कर भी लगाया करती थी। एक रात पार्क में एक पुरुष के साथ उसने अपना कुछ समय बिताया। उस क्षणों के साथी ने उसका नाम और पता मांगा। वह उससे फिर मिलना चाहता था। उसके संग रहना चाहता था। जब उसने मना किया तब उसने उसकी कसकर पिटाई कर दी। वह उसे भयभीत अवस्था में घायल छोड़कर चला गया।

जहां तक हमेशा के लिए एक प्रेमी का सवाल हूं, पुरुष बहुधा एक ऐसी रखैल रख लेता है, जिसकी वह आर्थिक सहायता करता रहता है। इसी के समानांतर एक स्त्री भी पुरुष रखैल रख सकती है। नियमानुसार ऐसी स्त्रियों को उम्र में इतना परिपक्व होना होगा कि वे क्रूरतापूर्वक अपनी सेक्स- इच्छाओं और भावनाओं में अलगाव बनाए रख सकें। स्त्रियों में ये दोनों भावनाएं गहराई से निहित रहती हैं। कई पुरुष शरीर और मन का अलगाव स्वीकार नहीं कर सकते, किंतु महिलाएं तो प्रायः ऐसा सोचने से भी इंकार करेंगी।

अधिकतर स्त्रियों और पुरुषों के लिए केवल सम्भोग की इच्छा की संतुष्टि ही महत्त्वपूर्ण नहीं होती। वे इसमें परितुष्टि खोजते हुए भी अपनी मानवीय गरिमा बनाए रखना चाहते हैं।

इसके विपरीत जब एक स्त्री पुरुष को अपने जाल में उलझाती है तो वह यह कल्पना करती है कि वह अपना दान कर रही है। वह यह भी अहसास करना चाहती है कि वह यदि दाता है तो वह किसी के प्रतिदान की गृहीता भी। केवल वह भोगी नहीं जाती, वह भोगती भी है। वह कुछ देती है, तो बदले में उसी मात्रा में पाती भी है।

स्त्री जब खुले रूप से प्रस्ताव रखती है तो पुरुष खिसक जाता है, क्योंकि वह जीतने की हवस रखता है। स्त्री अपने आपको शिकार बनाकर ही कुछ पा सकती है। उसे निष्क्रिय वस्तु बनना पड़ता है। जैसे वह केवल एक समर्पित प्रत्याशा-भर हो। इसीलिए जब पुरुष उसकी पहल को ठुकराता है तो वह बड़ी अवमानित होती है। पुरुष जब हारता है तो वह यही समझता है कि अपनी एक कोशिश में वह नकामयाब हुआ।

सच तो यह है कि साधारण लोगों के अनुसार यह पुरुष ही है जो स्त्री को जीतता है, उसे पाता है। यह नहीं स्वीकारा जाता कि स्त्री भी पुरुष की तरह अपनी कोई इच्छा रखती है। वह तो बस किसी की कामना का शिकार-भर है। पुरुष ने जहां अपनी विशिष्ट ताकतों को अपने व्यक्तित्व का हिस्सा बना लिया है, वहां स्त्री इन इच्छाओं की गुलाम-भर है। कभी वह एक इस्तेमाल करने लायक बर्तन है, कभी पका हुआ फल है जिसे पुरुष जब भी चाहे तोड़ सकता है। किसी भी स्थिति में स्त्री को स्वतंत्र नहीं समझा जाता। कम-से-कम फ्रांस में तो

नहीं, जहां स्वतंत्र स्त्री तथा स्वच्छंद और हल्की स्त्री को समझने का दुराग्रह रहता है। हल्केपन का अर्थ हुआ किसी प्रकार के संयम या अवरोध का अभाव, एक प्रकार का खालीपन, जो वास्तव में स्वाधीनता का निषेधक है। स्त्रियों का साहित्य इस पूर्वग्रह पर युद्धरत दिखाई देता है। उदाहरणार्थ :

क्लारा मालरो अपनी पुस्तक 'ग्रिसालिदिस' में इस तथ्य पर जोर देती हैं कि उनकी नायिका किसी प्रलोभन में पड़कर नहीं, बल्कि स्वेच्छा से सम्भोग करती है। अमरीका में स्त्रियों के कार्य- व्यापारों में कुछ हद तक स्वाधीनता स्वीकृत भी हुई है, किंतु फ्रांस में पुरुष की हमविस्तर स्त्रियों के प्रति उन्हें भोगने वाले पुरुषों में एक प्रकार की उपेक्षा ही मिलती है। बहुत बड़ी संख्या में स्त्रियां इस बात को जानती भी हैं। वे जानती हैं कि इस बारे में कुछ कहना बड़ा विवादास्पद होगा।

यदि कोई स्त्री इन अफवाहों की ओर ध्यान न भी दे, तब भी अपने साथी से सम्बंध स्थापित करने में उसे वास्तविक कठिनाई का सामना करना पड़ेगा क्योंकि उस पुरुष में लोकमत अवस्थित रहेगा। पुरुष बहुधा बिस्तर को अपनी आक्रामक श्रेष्ठता को स्थापित करने का सही दायरा मानता है। वह कुछ प्राप्त करना नहीं चाहता, बल्कि लेना चाहता है। वह विनिमय करना नहीं, लूटना चाहता है। वह उस हद तक स्त्री अधिकृत करना चाहता है, जहां वह स्वयं को दे दे। वह यह मांग रखता है कि स्त्री की हार और उन्माद के चरम क्षणों में वह कुछ स्वीकार करे, उसमें मिलने वाले सुख की स्वीकृति हो, वह अपना समर्पण पहचाने । जब अपने तात्कालिक समर्पण से क्लादी अपने प्रेमी रेनार्द को चुनौती देती है तब उसके इस समर्पण के सामने वह झिझकता है। वह उससे कहता है कि उसकी प्रेमिका आंखों को खुली रखे और उसकी जीत को समझे। यदि स्त्री अपनी निष्क्रियता से उबरना चाहती है और उस धुंध को मिटा देना चाहती है जो उसके भावनात्मक जीवन में सुखदायक तो है किंतु विकास को कुंठित करती है, तब उसे एक विरोधाभास झेलना पड़ता है। अपनी गतिविधि और भाव-भंगिमा में पुरुष । की नकल करने पर स्त्री खुद ही सम्भोग के समय चरम सीमा पर नहीं पहुंच पाती। उसका पोषित अहंकार उसके सुख के आड़े आ जाता है। ऐसे पुरुष विरले ही होंगे जो अपनी प्रेमिका की परपीड़न की प्रवृत्ति को तुष्ट होने का मौका दें, और ऐसी स्त्रियां भी कम होती हैं जो अपनी इस ओढ़ी हुई परिस्थितिगत आज्ञापरायणता में पूर्ण विषय-तुष्टि पा सकें।

एक रास्ता और भी है, जो कम कांटों-भरा है और उसमें प्रायः स्त्रियों में आत्म-पीड़न की प्रवृत्ति प्रमुख हो जाती है। जब एक औरत सारे दिन मेहनत करती है, संघर्ष करती है, जोखिम उठाती है तथा प्रत्येक प्रकार की जिम्मेदारियां ओढ़ती है, तब उसके लिए रात में ऐसा मनचाहा भोग और शारीरिक तथा मानसिक तनाव को दूर कर सकने वाले आनंद को चाहना एक स्वाभाविक जरूरत है। पुरुष से प्रभावित और शासित होना औरत के लिए

जरूरी हो जाता है। किंतु एक औरत, जो अपनी रोजमर्रा की क्रियाशील जिंदगी में अपना समय पुरुषों के सम्पर्क में बिताती है, के लिए पुरुष की इस 'शर्तहीन प्रभुता' को स्वीकार कर पाना कठिन होता है।

पुरुष जब अपने प्रभुत्व का ढोंग करता है, तब औरत की नजर में उसकी कीमत घट जाती है। वह पुरुष की श्रेष्ठता पर संदेह करने लगती है । बिस्तर में, जहां पुरुष बर्बर रूप से भी अपने पुरुषत्व को स्थापित करना चाहता है, उसकी चेष्टा स्त्री को बचकानी लगती है। वह प्रायः उसकी ओर से अपनी आंखें बंद कर लेती है। ऐसा नहीं कि हमेशा अहंकारवश ही प्रेमिका अपने प्रेमी की सनक के सामने नहीं झुकना चाहती। एक औरत एक ऐसे वयस्क के साथ, जो अपनी जिंदगी के वास्तविक क्षणों को जीना चाहता है, बराबरी का सम्बंध स्थापित करने को उत्सुक रहती है, लेकिन उस बालक के साथ नहीं जो अपने पुरुषत्व की कहानियां सुनाकर उसे बहला रहा हो।

यहां पर आत्म-पीड़ित स्त्री खुद भी परेशान होगी क्योंकि वह जिस पुरुष की खोज कर रही है और जिसके लिए 'पूर्ण त्याग' की कल्पना कर रही होती है, वह 'यह पुरुष' नहीं। अतः उसे भी पुरुष के इस बेतुके खेल में, शासित और गुलाम होने का बहाना करना होता है। इस मालिक की खोज में वह पुरुष को श्रेष्ठता की जिस ऊंचाई पर आसीन करती है, उसमें उसे निराश होना पड़ता है। अंत में वह भी ठंडी हो जाती है।

यदि स्त्री और पुरुष एक-दूसरे को बराबर का साथी समझें, थोड़ा विनय और औदार्य रखें, और यदि वे अहंमन्यताजन्य हार-जीत की प्रवृत्ति का उन्मूलन कर सकें, तो परपीड़न या आत्म-पीड़न की प्रवृत्तियों से छुटकारा पा सकते हैं। ऐसी स्थिति में उनके जीवन में प्रेम एक स्वतंत्र और सुखद व्यापार होगा। यह कैसा विरोधाभास है कि औरत के लिए अपने आपको पुरुष की बराबरी में समझना अधिक कठिन हो जाता है और पुरुष के लिए अपने स्तर से नीची स्त्री से प्रेम करना कहीं अधिक आसान होता है।

पुरुष की नजर में यदि औरत के विचार झूठे हैं, यदि वह बुद्धिमान और साहसी नहीं है, तो इसमें उसकी कोई गलती नहीं। पुरुष उसको कम जिम्मेदार ठहराता है। वह बेचारी तो परिस्थितियों को मारी होती है। औरत के लिए पुरुष के साथ एक स्नेहिल मैत्री, जिसमें एक-दूसरे की कमजोरियों के लिए भी स्थान हो, स्थापित करना सम्भव नहीं, क्योंकि औरत की नजर में पुरुष अपने विचारों और व्यवहारों के लिए खुद जिम्मेदार होता है। वह जो भी है, स्वयं अपने कारण बना है और उसको माफी नहीं मिल सकती। न ही स्त्री पुरुष को भविष्य की अनिश्चित सम्भावनाओं के संदर्भ में स्वीकारती है। स्त्री की नजर में पुरुष निश्चयात्मक, स्व-प्रतिष्ठित और दृढ़ होना चाहिए, लिजलिजा और शेखचिल्ली नहीं। पुरुष के साथ दोस्ताना सम्बंध के लिए यह भी जरूरी हो जाता है कि उसके विचारों, मतों और उद्देश्यों से औरत सहमत हो। जिस पुरुष के विचारों से औरत घृणा करती है, उसे वह कभी

नहीं चाह सकती। यदि वह समझौता करने के लिए मजबूर भी हो, तब भी अनुग्रह का रवैया कतई नहीं रख पाएगी, क्योंकि पुरुष में वह अपने सपनों का संसार और बचपन का कल्पित स्वर्ग खोजती है।

ऐसी आशा की जा सकती है कि बिना किसी विशेष हंगामे के भी स्त्री एक सम्बंध को सहजता से स्वीकार सकती है और अपनी विषयासक्ति तथा अहं भी बनाए रख सकती है। यह भी सच है कि सम्बंध को स्वीकारते हुए भी वह अपने दिल के कोने में कई निराशाएं तथा शिकायतें दफन किए रहती है। पुरुष में यह बात कम देखने में आती है। पुरुष एक परिणय सम्बंध की हार को यह कहकर सहजता से स्वीकार कर लेता है कि यह उसकी एक मनचाही कोशिशमात्र थी। एक असफल या असंतुष्ट प्रेम-सम्बंध में पुरुष कम-से-कम शारीरिक संतुष्टि तो पा ही लेता है, औरत तो वह भी नहीं पाती। वह शायद ही कभी ईमानदारी से केवल क्षणों को भोग पाती है। औरत का सुख उसे उसके 'स्व' पुनः समाहित करने की अपेक्षा एक इतर पुरुष से अधिक बांधता है। एक दोस्ताना जुदाई भी उसे आहत करती है, जबकि पुरुष बिना किसी कशिश के अपनी पुरानी प्रेमिका के बारे में बातें कर लेता है, वहीं औरत, शायद ही अपने पुराने प्रेमी के बारे में मैत्री-भाव रख पाती है। कामना और विषयासक्ति की प्रवृत्तियों और उनसे पैदा कठिनाइयों के ही कारण औरत स्वतंत्र रहने की अपेक्षा एक विवाहित जीवन अधिक पसंद करती है। स्त्री के जीवन में विवाह, प्रेम-सम्बंध तथा कैरियर में समझौता पुरुषों की तरह सहज नहीं होता। बहुधा पति या प्रेमी औरत से उसके स्वतंत्र कैरियर का त्याग मांगते हैं हां, यह भी ठीक है कि ऐसा त्याग औरत नहीं भी चाह सकती है। कॉलेट की वैगेवांड की नायिका पुरुष की उपस्थिति और सम्पर्क की गहरी चाह तो रखती है, लेकिन विवाह-बंधन से भयभीत भी रहती है। औरत के सामने दो विकल्प होते हैं या तो वह विवाह करके दायित्व झेले या अकेलेपन की जिंदगी में घुटकर रह जाए।

यह ठीक है कि पुरुष आर्थिक रूप से स्वावलम्बी स्त्री को संगिनी बनाने के लिए अधिक इच्छुक रहता है। कॉलेट के उपन्यासों में हम पाते हैं कि विवाह के लिए अपने पेशे का त्याग करने वाली स्त्रियां दकियानूस हो जाती हैं। जहां दो व्यक्तियों का साथ एक-दूसरे को प्रोत्साहित करता है, वहां प्रत्येक व्यक्ति अपने साथी की स्वतंत्र जीविका से सुरक्षित महसूस करता है। यदि पुरुष में अपना मूल्य-बोध और अभिप्रेरणा है, तो ऐसे युगल प्रेमी एक-दूसरे के प्रति उदार होते हैं । यह भी हो सकता है कि स्त्री की जरूरत के सामने पुरुष स्वयं को पूर्णतया समर्पित कर दे। अब भी औरतों से ही गृहस्थी के अमन-चैन का मूल्य चुकाने की अपेक्षा की जाती है।

एक पुरुष के लिए औरत से घर का कामकाज संभालने और बच्चों की परवरिश करने की अपेक्षा स्वाभाविक होती है। स्वावलम्बी स्त्री खुद भी यही चेष्टा करती है कि वह विवाह

के कारण होने वाली अतिरिक्त जिम्मेदारियां अपने ऊपर ले ले। वह यह महसूस करना नहीं चाहती कि उसका पति सुविधाओं से वंचित हो। वह एक गृहस्थन, एकनिष्ठ मां और एक भोग्या पत्नी बनी रहना चाहती है। औरत पारम्परिक स्त्री बनी रहना चाहती है। नतीजा है, औरत की अपनी जिम्मेदारियों में वृद्धि और थकान। वह अपने साथी का मन रखने के लिए इन जिम्मेदारियों को ओढ़ लेती है।

उसकी सबसे बड़ी इच्छा अपनी स्त्री होने की नियति से गद्दारी नहीं करने की रहती है। जहां वह अपने भविष्य के लिए चिंतित रहती है, वहीं अपने साथी की जरूरतों और सफलताओं में भी पूरा सहयोग देना चाहती है। यह एक ऐसी दोहरी भूमिका है, जो उसे थकाती है। शुरू से पुरुष-प्रधान वातावरण में परवरिश होने के कारण वह अब भी यह महसूस करती है कि प्रत्येक बात में पुरुष को ही पहल करनी चाहिए। बहुधा वह यह भी सोचती है कि यदि वह पहल का दावा करे तो उसकी आंच उसके घर और उसके आपसी सम्बंधों पर आएगी। अपने अधिकारों का दावा, उन पर दृढ़ रहने की चाह और दूसरी ओर पुरुष के लिए अधिकारों का त्याग तथा विलयन की चाह के बीच बंटी हुई एक औरत निरंतर तनाव झेलती है और टुकड़ा-टुकड़ा जीती है।

कुछ सुविधाएं ऐसी भी हैं जो औरत को अपनी हीन अवस्था के ही कारण मिल जाती हैं। चूंकि शुरू से ही पुरुष की अपेक्षा उसकी स्थिति कमजोर है, इसलिए वह किसी भी घटना के लिए अपने आपको जिम्मेदार नहीं ठहराती। अपने कृत्यों के सामाजिक औचित्य का प्रतिपादन वह नहीं करती। एक सभ्य पुरुष स्त्री से कोमल और उचित व्यवहार करना अपना फर्ज समझता है और औरत की स्थितिग्रस्तता स्वीकार करता है। वह मूल्य-बोध, दायित्व और करुणा का बंधन अनिवार्यतः स्वीकार कर लेता है। अपनी इस स्वाभाविक कमजोरी के कारण प्रायः पुरुष उन औरतों का शिकार हो जाते हैं जो अपनी शोषक और पराजीवी प्रवृत्ति के कारण उनकी कमजोरियों का पूरा फायदा उठाती हैं। यदि एक स्त्री उर्वर स्वाधीनता पा लेती है तो पुरुष के लिए इस बात की सुविधा हो जाती है कि वह अपना सेक्स-जीवन एक बराबर के ऐसे स्वायत्त और प्रभावी व्यक्ति के साथ जिए, जो पराजीवी की भूमिका में उसका शोषण न करे। वास्तव में ऐसी स्त्रियां विरली ही होती हैं, जो पुरुष को बंधन में न बांधकर एक सृजनात्मक स्वतंत्र सम्बंध का निर्माण कर पाएं।

औरत पुरुष से प्रेम करती है, किंतु यह प्रेम बराबरी का न होकर पुरुष के प्रति एक मुक्तिदाता का ही दृष्टिकोण रखता है। बीस वर्षों तक जीवन में सपने देखते हुए, प्रतीक्षा करते हुए, एक युवा लड़की पुरुष के प्रति जिस उद्धारक के मिथक की कल्पना करती है, उससे अपने कार्य-जीवन की सारी उपलब्धियों के बावजूद उबर नहीं पाती। यदि औरत का अनुकूलन और उसकी परवरिश भी शुरू से पुरुष की तरह हो तो वह अपनी इस आत्मरति से छुटकारा पा सकती है। लेकिन, प्रायः यह होता है कि यौवन में देखे गए सपने, उसके

वयस्क जीवन में सहज अहं की उपासना बन जाते हैं। अपने कार्य-जगत् की सफलता से भी वह अपने अहं का ही संवर्द्धन करती है। औरत को हमेशा एक ऐसे गवाह और अभिकर्ता की जरूरत पड़ती है, जो उसके किए को प्रतिष्ठित कर सके, उसका अभिषेक कर सके। यहां तक कि अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में यदि वह पुरुषों की आलोचना करती है, उनके प्रति कठोर दृष्टिकोण रखती है, तब भी भीतर से वह पुरुष के प्रति श्रद्धा रखती है। पुरुष की हार्दिक कामना के होते वह उसके लिए बिछ जाने को तैयार रहती है। अपनी मेहनत से प्रस्थापित होने की अपेक्षा किसी तारणहार की सर्वोच्च सत्ता से उद्धारित होना कहीं अधिक आसान है । एक दी हुई मुक्ति को दान में पाने की चाह और ललक की दुनिया तो प्रोत्साहित करती ही है, किंतु औरत खुद भी अपनी इस सम्भावना के प्रति पूरी आस्था रखती है। बहुधा वह अपनी स्वाधीनता बिल्कुल किनारे रखकर मात्र एक भोग्या रह जाना पसंद करती है, किंतु भक्ति-भाव से भीगा हुआ प्रेम, जो प्रेमी के अस्तित्व का विलयन मांगता है और उसके प्रति विचारों और क्षणों पर हावी रहता है, स्त्री के लिए काफी त्रासद होता है। अपने कार्य-व्यवसाय में असफलता मिलाने पर स्त्री बड़े ही भाव-प्रवण रूप से पुरुष की बाहों में शरण खोजती । असफलता-जनित कुंठाएं अकारण कलह, विवाह और अवांछनीय मांगों में व्यक्त होती हैं। प्रेम से मिलने वाली निराशाओं और मानसिक कुंठाओं के कारण वह दुगुने प्रयास से अपने कार्य में नहीं लग जाती, बल्कि वह तो अपनी जिंदगी के तौर-तरीके ही भूलने लगती है। वह सोचती है कि इन्हीं कार्यगत व्यस्तताओं के कारण वह अपने महान् प्रेम के राजमार्ग पर नहीं चल सकी। एक औरत, जो दस साल पहले किसी राजनीतिक पत्रिका में, जिसका संचालन केवल महिलाएं ही करती थीं, काम करती थी। वह एक बार मुझसे कह रही थी कि ऑफिस में औरतें शायद ही कभी राजनीति पर बातें करती हों। उन सबकी बातों का केंद्रीय मुद्दा केवल पुरुष का प्रेम था। किसी का कहना था कि उसकी भावनाओं की कोई कद्र नहीं, उसे केवल शरीर के कारण प्रेम मिलता है, तो किसी का कहना था कि केवल उसकी बुद्धि की प्रशंसा है, उसके शारीरिक सौंदर्य की ओर कोई ध्यान नहीं देता। यहां हम देखते हैं कि स्त्री यदि पुरुष की भांति प्रेम करना चाहती हो तो उसके लिए जरूरी हो जाता है कि अपने कार्य-व्यवसाय में वह भी पुरुष की भांति निर्णायक बने।

हम देखते हैं कि केवल मातृत्व ही एक ऐसा नारी-सुलभ नैसर्गिक कारण है, जिसे पुरुष नहीं कर पाता और जिसमें स्त्री की अपनी स्वतंत्र इच्छा की जरूरत होती है। आज निरोध की तकनीक का प्रयोग सारी दुनिया की महिलाएं करती हैं। इस तरह वे अपनी इच्छा से मां बनने से इंकार तो कर सकती हैं।

बहुधा अनचाहे मातृत्व के कारण स्त्री का वैवाहिक जीवन भी नष्ट होता है। परम्परा औरत को अब भी अपनी इच्छा से प्रजनन की इजाजत नहीं देती। अविवाहित मां समाज

में एक कलंक है, और नाजायज बच्चा अपने आपमें एक दाग। बिना वैवाहिक बंधन के शायद ही कोई औरत मां बनना चाहे । यदि कृत्रिम गर्भाधान आज अधिकतर औरतों को रुचिकर लगता है तो इसका कारण यह नहीं कि शायद अब समाज में मातृत्व की स्वतंत्रता स्वीकृत होने लगेगी। नर्सरीज और किंडरगार्टन को सुविधाओं के बावजूद यहां यह कहना उचित होगा कि स्त्री को कर्मठता एवं सक्रियता को पूरी तरह पंगु करने के लिए एक ही बच्चा काफी है। स्त्री उद्देश्यपूर्ण काम में तभी नियोजित हो सकती है जब अपने बच्चे की परवरिश के लिए वह रिश्तेदारों से, दोस्तों से या नौकरों से सहायता ले। उसके सामने एक ही विकल्प है। या तो वह बांझपन की पीड़ा और कुंठाओं को झेले, या फिर अनचाहे मातृत्व के बोझ तले अपने कैरियर को बर्बाद करे। अत: स्वतंत्र स्त्री आज की अपनी वास्तविक जिंदगी की समस्याओं तथा कार्य-जगत् एवं पेशेगत रुचियों के बीच एक द्वंद्व झेलती है। उसके लिए इन विकल्पों का संतुलन करना कठिन होता है। किसी एक के चुनाव के कारण जो कीमत वह चुकाती है और जो तनाव वह झेलती है, उसके परिणामस्वरूपं दुर्बलता और कमजोरियों का शिकार उसे होना ही पड़ता है। शारीरिक स्वास्थ्य-सम्बंधी आंकड़ों को इकट्ठा करने का कोई विशेष अर्थ नहीं। यह तय करना बड़ा कठिन है कि स्त्री की शारीरिक संरचना उसको किस हद तक कमजोर करती है । बहुधा मासिक- स्राव के कारण पैदा होने वाली कठिनाइयों का जिक्र किया जाता है, लेकिन कार्य-क्षेत्र में सफल स्त्रियां इसे अधिक महत्त्व नहीं देंगी। महीने में एकाध दिन की थोड़ी-बहुत अस्वस्थता के कारण उनकी सफलता कम नहीं हो जाती। सक्रिय और महत्त्वाकांक्षी जिंदगी का चुनाव करने वाली स्त्रियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि इस स्वाभाविक अस्वस्थता पर अधिक ध्यान देने वाली औरतें व्यर्थ ही अधिक परेशानी महसूस करती हैं। मैं यहां यह नहीं नकारती कि मासिक कष्ट का कारण जैविक तत्त्व भी है।

मैंने एक उत्साही महिला को प्रत्येक महीने में चौबीस घंटे के लिए शारीरिक यातना से छटपटाते देखा है, लेकिन इसके कारण वह अपने कर्म-क्षेत्र में असफल नहीं रही। मैं मानती हूं कि इस तकलीफ का कारण मानसिक अधिक होता है, शारीरिक कम, जैसा कि एक स्त्री-विशेषज्ञ ने भी मुझसे कहा। औरत निरंतर अपनी शक्ति की सीमा से बाहर एक नैतिक तनाव झेलती रहती है। काम की जिम्मेदारियों और विरोधाभासपूर्ण स्थितियों में औरत अपनी सामर्थ्य से अधिक परिश्रम करती है। उत्पीड़क स्थितियों में घिरी रहकर वह एक नैतिक तनाव झेलती रहती है। इसका अर्थ यह नहीं कि उसकी मासिक- धर्म-जनित तकलीफ काल्पनिक होती है। यह उतनी ही वास्तविक और कष्टप्रद है जितनी कि उसकी परिस्थिति, किंतु परिस्थिति तो शरीर पर निर्भर नहीं करती। यह शरीर है जो स्थितियों का निर्माता है। मैं तो बस इतना ही कहूंगा कि 'स्त्री-श्रम' को यदि यथोचित महत्त्व मिले तो इससे स्त्री के स्वास्थ्य की भी उन्नति होगी क्योंकि काम के कारण वह हर समय आत्म-केंद्रित नहीं रह सकेगी।

उपर्युक्त तथ्यों में स्त्री की सामर्थ्य और सीमा को देखते हुए, हमें उसकी अपूर्व उपलब्धियों पर ध्यान देना होगा। हमें उसके भविष्य की भी सम्भावनाओं पर गौर करना होगा। वह जिन मानसिक त्रासदी और क्लेश की अवस्था में अपना कैरियर अपनाती और जिस पारम्परिक नारीत्व के बोझ के नीचे विछती है, उनमें कम-से-कम दूसरों से एक मानवीय समझ की आशा तो कर ही सकती है। यह ठीक है कि आधुनिक समाज में पहले की अपेक्षा स्त्री के लिए अधिक अनुकूल परिस्थितियां मिलती हैं, किंतु अब भी उसको अपना पहला कदम सामाजिक विद्वेप के बीच ही उठाना पड़ता है। स्त्री की यह स्थिति एक नीग्रो से बहुत मिलती है। रिचर्ड राइट ने अपने लेखन में दिखाया है कि एक नई शुरुआत में, जो एक गोरे अमरीकी को पहले से विरासत में मिली होती है, एक औरत को एक नीग्रो की ही तरह अपने आसपास के माहौल से जूझना पड़ता है।

व्यवसाय के प्रशिक्षण-काल में स्त्री स्वयं को एक हीन अवस्था में पाती है, जैसा कि हमने छोटी लड़कियों के संदर्भ में स्पष्ट किया है। स्कूली शिक्षा के दौरान, जो कि उसके कैरियर का बड़ा निर्णायक समय होता है, स्त्रियां शायद ही खुलकर प्राप्त सुविधाओं का भी उपयोग कर पाती हैं। उनकी यह कुंठित शुरुआत ही आगे चलकर उनके जीवन-विकास को अवरुद्ध करती है। स्त्री होने के द्वंद्व को बारह से तीस वर्ष की आयु के बीच स्त्री अधिक गहराई से झेलती है। यह वही समय होता है जब उसको अपने व्यावसायिक कैरियर पर पूरा ध्यान देना चाहिए। स्त्री चाहे विवाहिता हो या अपनी गृहस्थी और परिवार में रहती हो, एक पुरुष की तुलना में परिवार उसके कार्य-व्यवसाय को अपेक्षित महत्त्व नहीं देता। परिवार उस पर कार्यों का बोझ तो लादता ही जाता है, आचार-व्यवहार के नाम पर कदम-कदम पर उसके कार्यों में अनावश्यक हस्तक्षेप भी करता रहता है। स्त्री को अपने परिवेशगत संस्कारों से स्थितिग्रस्त रहना पड़ता है। किशोरावस्था के सपनों में जकड़ी हुई वह उन्हीं मूल्यों का सम्मान कर पाती है जिन्हें उसके पूर्वजों ने उस पर थोप दिया था। पारम्परिक अतीत और रुचियों के अनुकूल भविष्य के बीच समझौता करने में वह कठिनाई अनुभव करती है। कभी-कभी वह चिढ़कर जिद में अपने नारीत्व को ही नकारने पर तुल जाती है। कभी-कभी वह शुचिता या समलैंगिकता या आक्रामक कर्कशता का रवैया अपनाती है तो कभी फूहड़ ढंग से पुरुषों जैसे कपड़े पहनती है। इस प्रकार, अपना बहुत-सा समय वह व्यर्थ के क्रोध, आवेश, अति नाटकीयता और बेतुकी चुनौतियों में ही बर्बाद कर देती है। कभी-कभी अत्यधिक औरतपन के गुणों पर ज्यादा जोर देती है। वह आत्मपीड़न और आक्रामक मनोभाव के बीच भटकती हुई, कभी प्रेम करती है तो कभी महज इश्कबाजी का छिछोरापन दिखाती है। चुनौती देते हुए प्रश्नों और बात-बेबात के विवादों में वह हर प्रकार से अपने को बिखेरती है। अपनी इस मन:स्थिति के कारण औरत अपने कार्य को गम्भीरता से नहीं ले पाती। वह अपने कार्य में जितना ही कम मन लगाती है, उतनी ही असफल भी होती है। असफलता के कारण घबरा कर वह अपने कार्य को छोड़

देने तक पर उतारू हो जाती है। संघर्ष करती हुई स्त्री को जो बात सबसे अधिक निरुत्साहित करती है वह यह कि अपने स्वावलम्बन से वह जैसा जीवन-स्तर पाना चाहती है, ठीक वैसा ही जीवन-स्तर दूसरी स्त्रियां बिना काम किए पराजीविता के बल पर पा लेती हैं।

पुरुषों में एक-दूसरे की प्रगति से कुढ़ने के बावजूद सहभागिता और परस्पर निर्भरता तो बनी ही रहती है, जबकि स्त्रियां ऐसी किसी सहभागिता या पारस्परिकता से आपस में जुड़ी नहीं रहतीं।

एक स्वावलम्बी जीवन जीने की इच्छुक स्त्री के लिए एक सुख-सुविधापूर्ण निष्क्रिय जीवन जीती विवाहित स्त्री का जीवन हमेशा प्रलोभनदायक बना रहेगा।

वह यह समझेगी कि उसने इन कठिन रास्तों को व्यर्थ ही चुना। बाधाओं से घबरा कर वह वापस लौटने की सोचेगी। अपनी मंजिल की ओर वह एकाग्र भाव से नहीं बढ़ती जाती, बल्कि उसकी गति सहमी तथा अनिश्चित होती है। उसकी निगाहें हर दिशा में भटकती हैं। वह जितना अपनी बनाई हुई राह पर आगे बढ़ती है, उतना ही जिंदगी के दूसरे और दरवाजे उसके लिए बंद होने लगते हैं। एक कर्मठ बौद्धिक होकर वह पुरुषों की नजर में अनाकर्षक और अपनी अधिक सफलता के कारण पति या प्रेमी के हीनता-बोध का कारण बनती है। यही कारण है कि बहुधा एक बुद्धिमान औरत भी न केवल व्यर्थ के सतहीपन और लालित्य के दिखावे में वक्त बर्बाद करती है, बल्कि सफलता की अपनी लालसा को भी दमित और संकुचित करती है। उसकी एक ही आशा रहती है कि शायद कोई मसीहा उसको मुक्ति दे इन झंझटों से उबार ले। वह ऐसे किसी पुरुष को पाने की सम्भावना खोना नहीं चाहती। सदा शंकित बनी रहने के कारण वह पूरी लगन से अपना कैरियर नहीं संवार पाती। स्त्री यदि स्त्री ही रहना चाहे तो अपनी प्राप्त-स्वाधीनता के कारण वह बहुधा हीन-भाव की शिकार होती है; और यदि वह अपने औरतपन में ही रह जाए तो उसके कार्य-व्यवसाय का भविष्य संदिग्ध हो जाता है। एक चौदह साल की लड़की को मैंने यह कहते हुए सुना कि लड़के लड़कियों से ज्यादा अच्छे हैं, वे ज्यादा अच्छा काम करते हैं। एक छोटी लड़की शुरू से ही अपनी क्षमता को सीमित मानकर चलती है, चूंकि उसके अभिभावक और शिक्षक इस बात से सहमत रहते हैं कि लड़कियों का स्थान लड़कों से नीचा है, अत: इसी प्रकार मूल्यों का निरूपण करते हैं। लड़के-लड़कियों के पाठ्यक्रम की समानता के बावजूद लड़कियों की शैक्षणिक उपलब्धि फ्रेंच सैकंडरी स्कूलों में बहुत कम रहती है। अपवादों को छोड़कर ज्यादातर लड़कियों की शिक्षा का स्तर लड़कों से नीचा होता है। अधिकतर लड़कियां या तो अपनी पढ़ाई जारी रखना नहीं चाहतीं या फिर सतही तौर पर पढ़ाई करती हैं और उनमें अपेक्षित प्रतिस्पर्धा का अभाव रहता है। आसान परीक्षाओं में उनकी यह अक्षमता बहुत नहीं दिखाई देती, लेकिन गम्भीर प्रतियोगात्मक परीक्षाओं में शामिल होने

वाली छात्राएं अपनी इन कमजोरियों से वाकिफ रहती हैं। उस स्थिति का दोष वे अपने प्रशिक्षण की अगम्भीरता को नहीं देतीं, बल्कि वे उसके लिए अपने स्त्रीत्व-जनित अभिशाप को दोषी ठहराती हैं । वे अपने को बचाकर समय और शक्ति की मितव्ययिता में सफलता खोजती हैं।

इस प्रकार का उपयोगितावादी दृष्टिकोण उन सब अध्ययनों एवं पेशों में तो बिल्कुल ही अनर्थकारी साबित होता है जो मौलिकता और आविष्कार-भावना की जरूरत रखते हैं। यह ठीक है कि कुछ भाग्यवान स्त्रियां आविष्कार कर भी लेती हैं। आलोचनाएं, पाठ्यक्रम के बाहर भी पढ़ने की जरूरत और खुले दिमाग से बगीचे में घूमना अधिक लाभकारी हो सकते हैं। स्त्रियां पांडित्य के बोझ और अधिकाधिक सत्ता के प्रति सम्मान भाव से प्रायः आक्रांत रहती हैं। उनके विचार केवल किताबी होने के कारण संकुचित होते हैं, इसीलिए एक ईमानदार छात्रा की भी आलोचनात्मक क्षमता और बुद्धि का ह्रास होता है। अधिकारियों को प्रसन्न करने की अत्यधिक चाह उसके मनोभावों को तनावग्रस्त बनाए रखती है। उदाहरणार्थ, उन कक्षाओं में, जिनमें छात्र प्रशासनिक सेवा की प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहे होते हैं, एक बड़ा ही दमघोंटू और जीवनहीन वातावरण रहता है। ऐसा वातावरण किसी भी प्रकार की वैयक्तिकता को पनपने नहीं देता। प्रशिक्षणार्थी जल्दी-से-जल्दी इस तरह के वातावरण की कैद से छुटकारा चाहते हैं। छात्रा जैसे ही पाठ्यक्रम की पुस्तक बंद करती है, उसका दिमाग बिल्कुल ही भिन्न विषयों की ओर दौड़ने लगता है। वह उन उर्वर क्षणों से नितांत अपरिचित ही रह जाती है, जब खेल और पढ़ाई एक हो जाते हैं, जब दिमागी खोज एक जीवित धड़कन बन जाती है। अपने अधिकतर कार्यों से ऊबी हुई छात्रा अधिक-से-अधिक इन कार्यों के विनियोजन में अपने को अक्षम पाती है।

इस प्रकार की हार की प्रवृत्ति के अलावा औरतें प्रायः थोड़ी बहुत सफलता से ही समझौता कर लेती हैं। वे बहुत ऊंचा दिखने से डरती हैं। अपने व्यवसाय में सतही तैयारी के साथ प्रवेश करने के कारण बहुत जल्द ही वे अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की सीमा निर्धारित कर लेती हैं। जीविकोपार्जनमात्र उनके लिए एक बड़ी उपलब्धि हो जाता है। वे सोचती हैं कि अनेक दूसरी स्त्रियों की तरह वे भी तो यह काम पुरुषों को सौंप सकती थीं? स्वावलम्बी होने की इच्छा एक प्रयास मांगती है। वे काम करती हैं तो यही उनके लिए काफी बड़ा काम होता है। वे सोचती हैं कि एक औरत के लिए अपने आपमें यही काफी है। एक पुरुषोचित पेशे में लगी स्त्री ने मुझसे कहा, "यदि मैं पुरुष होती तो मैं सर्वोत्कृष्ट होती, किंतु इस स्थान को अधिकृत करने वाली मैं अकेली स्त्री फ्रांस में हूं, अतः मेरे लिए यही काफी है।" इस विनम्रता में एक प्रकार की सावधानी भी है। स्त्री सोचती है कि इससे अधिक ऊंचे जाने में कहीं वह अपनी कमर ही न तोड़ ले। स्वावलम्बी स्त्री का यह सोचना सही है कि ज्यादातर

लोग उसकी योग्यता में कम विश्वास करते हैं। यों भी ऊंची जाति के लोग निम्न जाति से आने वाले नवागंतुकों के प्रति विद्वेष ही रखते हैं। गोरी चमड़ी वाले रोगी एक नीग्रो डॉक्टर की सलाह नहीं लेंगे और न ही पुरुष स्त्री डॉक्टर के पास जाएंगे। सबसे मजे की बात तो यह है कि खुद वे स्त्रियां भी अपने हीनता-बोध के कारण और प्रायः अपने से आगे बढ़ी स्त्रियों की अपेक्षा ईर्ष्यावश वरिष्ठ पुरुषों से ही सलाह लेना पसंद करती हैं।

विडम्बना यह है कि पुरुषों के सामने क्षमता और योग्यता वाली कार्यशील स्त्रियां भी अपने लिए पुरुष डॉक्टर, वकील और मैनेजर ही स्वीकार कर पाती हैं। अत: स्त्रियों को अपने अधिकारी के रूप में न तो स्त्रियां ही स्वीकार करना चाहती हैं, न पुरुष ही। वरिष्ठजन स्त्री की योग्यता के प्रति आदर भाव रखते हुए भी इतना तो कहेंगे ही कि इस जगह पर स्त्री का होना कोई दोष और त्रुटि तो नहीं किंतु एक अजूबा जरूर है। औरत शुरू में ही नहीं स्वीकार ली जाती। उसे निरंतर विश्वास जीतना पड़ता है। उस पर संदेह किया जाता है। उसे अपने आपको प्रमाणित करना होता है। यदि उसकी योग्यता है तो यह परीक्षा पास करेगी, लोग ऐसा कहते हैं। लेकिन उसकी कीमत साररूप में शुरू में ही नहीं आंक ली जाती। वह तो एक सफल प्रगति के बाद ही सामने आती है। औरत इस प्रतिकूल पूर्वग्रह का बोझ महसूस करती है और इस प्रकार एक प्रारम्भिक हीन-भाव की शिकार बनी रहती है। इस स्थिति की प्रतिक्रिया में वह अपने व्यवसाय या दूसरे सक्रिय कार्य-क्षेत्र में अपनी यथास्थिति बनाए रखने के लिए अतिरिक्त रूप से चेष्टारत होती है। अधिकतर स्त्री-चिकित्सकों में या तो बहुत अधिक योग्यता और प्राधिकार-सम्पन्ता मिलती हैं या बिल्कुल ही नहीं। यदि वे स्वाभाविक काम कर रही हैं तो वे संचालन और नियंत्रण में असफल हो जाती हैं क्योंकि दूसरों पर हुक्म चलाने की प्रवृत्ति की अपेक्षा उनमें दूसरों को खुश करने की प्रवृत्ति अधिक रहती है। एक रोगी, जो नियंत्रित होना चाहता है, इस प्रकार के सीधे सुझावों से निराश होगा। इस बात को समझते हुए अनेक स्त्री- चिकित्सक प्रायः अपनी आवाज में गम्भीरता और जबर्दस्ती दबंगपन एवं असहिष्णुता का लोच ले आती हैं, किंतु तव उनमें उस पुरुष-चिकित्सक का स्वाभाविक सौंदर्य और नरमाई नहीं रह जाती, जो स्वभावतः सहिष्णु होता है। चूंकि पुरुष स्वाग्रही और निश्चयात्मक होता है, अत: उसके अनुयायियों. को उसकी क्षमता पर विश्वास रहता है। वह स्वाभाविक रूप से आधा कार्य कर सकता है और गलती न करने का भ्रम पैदा कर सकता है। स्त्री ऐसी सुरक्षा की भावना दूसरों में प्रोत्साहित नहीं कर पाती। या तो वह बहुत बड़बोलापन दिखाती हैं या फिर बिल्कुल ही बात को किनारे पटक देती है। वह थोड़े का बहुत बवाल मचा सकती है। व्यापार और प्रशासनिक कार्यों में वह सख्त और नियमनिष्ठ होती है। वह जल्द ही घबराने वाली और तुरंत ही अपनी आक्रामकता दिखाने वाली होती है। जहां तक अध्ययन का सवाल है, उसमें निर्भीक खुलापन और उत्साह एवं सहजता का अभाव रहता है। उपलब्धि की चेष्टा में वह प्रायः तनावग्रसित हो जाती है। उसकी प्रत्येक क्रिया उसकी चुनौतियों और आत्म-समर्थन का

सिलसिला होती है। सबसे बड़ी कमजोरी तो यह है कि स्त्री अपने आपको कभी भूल नहीं पाती, जबकि पुरुष दूसरे को आश्वस्त करता है, और अपनी मंजिल की ओर एक खोजी की तरह बढ़ता है। वह निराशाओं का खतरा मोल लेता है और इसीलिए कभी-कभी आशातीत रूप से सफल भी होता है। औरतों की सतर्कता की प्रवृत्ति ही उनकी सामान्यता की सूचक होती है। हम शायद ही किसी ऐसी स्वावलम्बी स्त्री के सम्पर्क में आते हैं, जो खतरा मोल लेना जानती हो और केवल अनुभव के लिए ही अनुभव प्राप्त करने की इच्छुक हो। स्त्री अपना कैरियर उसी प्रकार बनाना चाहती है जिस प्रकार एक सामान्य स्त्री अपनी गृहस्थी में सुख के घोंसले का निर्माण करती हैं। यही कारण है कि वह पुरुष की दुनिया से घिरी हुई उससे शासित ही रह जाती है। सीमाओं को तोड़ने की धृष्टता उसमें नहीं होती। अपनी परियोजनाओं में अपने 'स्व' को वह खो नहीं पाती। वह अब भी अपनी जिंदगी को एक अंतर्वर्ती अध्यवसाय ही मानती है। उसका उद्देश्य विषयाभिमुख नहीं होता, बल्कि वह वस्तुपरकता के माध्यम से ही अपनी वैयक्तिक सफलता प्राप्त करना चाहती है। अमरीकन औरतों में तो यह एक बड़ा ही विचित्र दृष्टिकोण हम पाते हैं कि वे नौकरी केवल यह दिखलाने के लिए करना चाहती हैं कि इस काम को करने की योग्यता उनमें है। दरअसल वे अपने काम से आंतरिक संलग्नता नहीं दिखा पातीं। स्त्रियां स्वभावत: थोड़ी सफलता या असफलता को बहुत अधिक महत्त्व देती हैं।

स्त्री हर समय पीछे मुड़कर देखती है कि उसने कितना रास्ता तय किया है। इसीलिए उसकी प्रगति में बाधा पहुंचती है। वह सम्माननीय कैरियर भले प्राप्त कर सकती है, लेकिन कोई महान् उपलब्धि प्राप्त नहीं कर पाती। यह कहा जा सकता है कि अधिकतर पुरुष भी तो केवल सामान्य कैरियर ही बना पाते हैं। सभी पुरुष तो महान् नहीं हो जाते और इन्हीं की तुलना में स्त्रियां भी पीछे की ओर रेंगती चली जाती हैं। मैंने यहां जो भी कारण दिया है, वह भविष्य को नहीं बांधता। आज यदि स्त्री कोई भी महान् कार्य नहीं कर पा रही है तो इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि वह अपने को नहीं भूल पाती। अपने को भूलने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वह इस तथ्य के प्रति शुरू से आश्वस्त हो कि उसने अपने को वर्तमान और भविष्य के संदर्भ में हमेशा के लिए पा लिया है। पुरुषों के जगत् में एक नवागत प्राणी की तरह अभी-अभी तो वह आई है। किसी प्रकार उसको प्रवेश की इजाजत मिली है। पुरुषों के इस जगत् में औरत अब भी अपने आपको खोजने में ही व्यस्त है।

एक खास श्रेणी की स्त्रियों के कैरियर की प्रगति में उनके स्त्रियोचित गुणों के कारण कोई अड़चन नहीं होती, बल्कि सहायता ही मिलती है। ये स्त्रियां अपनी कलात्मक अभिव्यक्तियों के कारण अपनी स्त्रियोचित सीमाओं का अतिक्रमण कर पाती हैं।

ऐसी स्त्रियां अभिनेत्री, नृत्यांगना तथा गायिका होती हैं। पिछली तीन सदियों से केवल ऐसी ही स्त्रियां समाज के बीच आज भी अपना एक विशिष्ट स्थान रखती हैं और ठोस रूप

से स्वावलम्बी हैं। अतीत में अभिनेत्रियां चर्च की नजर में अभिशप्त थीं। अत्यधिक सख्ती के विरुद्ध वे विद्रोह पर उतारू हो जाती थीं और मनचाहा व्यवहार भी कर पाती थीं। वेश्याओं की भांति वे भी अपना अधिकांश समय पुरुषों के सम्पर्क में बिताती थीं, किंतु चूंकि वे स्वयं जीविकोपार्जन कर सकती थीं, और अपने काम से अपने जीवन को अर्थवत्ता देती थीं, इस कारण पुरुषों के बंधन से दूर थीं। उनकी सबसे बड़ी सुविधा तो यह थी कि अपनी पेशेगत सफलता से पुरुषों की भांति वे भी आत्म-उपलब्धि, सेक्सुअल मूल्यांकन और अपने व्यक्ति होने की अभिपुष्टि कर पाती थीं। अन्य औरतों की तरह वे विरोधाभासी वासनाओं से टूटती नहीं थीं। वे आत्म-रति की चाह, कपड़ों, सौंदर्य प्रसाधनों और लालित्य को अपने व्यावसायिक कर्तव्य का एक हिस्सा मानती थीं। एक आत्ममुग्धा औरत को अपनी छवि सजाते रहना एक बड़ा सुख होता है। यह आत्म-प्रदर्शन गहरे अध्ययन और कलात्मकता की मांग करता है; जैसा कि जार्जेटी लैबलाक ने कहा था कि ये बातें सक्रियता की पूरक होती हैं। एक महान् अभिनेत्री अनुभवातीतता की ओर जाती है। अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम से वह दी हुई सीमाओं का अतिक्रमण करती है। वह एक कलाकार और सर्जक की भांति जगत् को अर्थ प्रदान करने के माध्यम से अपने जीवन को भी अर्थवत्ता प्रदान करती है, किंतु अंतत: ये सारी सुविधाएं भी एक प्रकार का जाल होती हैं। अपनी आत्म-रति को अपने कलात्मक और स्वच्छंद यौन-जीवन के साथ संगठित करने की जगह अभिनेत्रियां प्राय: आत्म-पूजा के गड्ढे में गिर जाती हैं।

अपने व्यक्तिगत जीवन में एक घटिया अभिनेत्री हमेशा ही अपनी आत्म-रति-जनित कमजोरियों को बढ़ा लेगी । वह अपने आपको एक धृष्ट और नाटकीय खोखलेपन में अभिव्यक्त करेगी। दुनिया उसके लिए एक नाटकीय मंच होगी।

आधुनिक स्त्री के लिए अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम केवल कला ही नहीं है। अब वह अन्य सृजनात्मक क्रियाशीलताओं में भी अभिनियोजित है, किंतु यह भी सच है कि आधुनिक स्त्री आज भी साहित्य और कला में ही मुक्ति खोजती है। एक साहित्यकार स्त्री पुरुष की दुनिया की परिसीमा पर अवस्थित जगत् को एक वैश्विक संदर्भ में नहीं देखती, बल्कि जगत् के प्रति अपना एक विशेष दृष्टिकोण रखती है। दुनिया उसके लिए अवधारणाओं और उपकरणों का एकीकरण नहीं, बल्कि संवेदना और संवेग का स्रोत है । वस्तुओं की गुणवत्ता में उसकी रुचि अहेतुक और रहस्याच्छादित रहती है। वह यथार्थ को आत्मसात नहीं करती, बल्कि अपने शब्दों से वास्तव का विरोध करती है। वह प्रकृति में अपने 'स्व' का प्रतिबिम्ब ढूंढ़ती है। वह अपने आपको कल्पना में अपसर्जित करती है। वह अपने अस्तित्व को पाने की इच्छा तो रखती है, किंतु उसे हताश होना पड़ता है क्योंकि वह केवल अलकारों के जगत् में उलझकर रह जाती है। यहां भी हम देखते हैं कि वह या तो बकवास करती है या लकीरें खींचती है। अपने आपको वह आपसी बातचीत, पत्रों या

अंतरंग डायरी में ही खोजती है। थोड़ी महत्त्वाकांक्षा के साथ वह अपनी स्मृतियां लिखती है, और अपनी आत्म-कथा को उपन्यास का रूप देती है। वह कविता में प्राय: अपने विगलित उच्छवास व्यक्त करती है। दरअसल अधिकांश साहित्यकार स्त्रियों के लिए रचना का कार्य समय के खालीपन को भरने या बहलाने का बहाना होता है।

जिन परिस्थितियों के कारण स्त्री सृजनात्मक कार्यों की ओर झुकती है, वही परिस्थितियां उसे बाधित भी करती हैं। जब वह चित्र बनाती है या अपने खाली समय को भरने के लिए लिखने का निर्णय लेती है, तब उसकी यह चित्रकारिता और लेखन महज शौकिया बनकर रह जाते हैं। उसमें समय और लगन का अभाव होने के कारण इन कार्यों का स्तर भी घटिया होता है। यदि कोई स्त्री जीवन के प्रारम्भिक काल में सृजन के इस क्षेत्र में प्रवेश करती है, तब भी शायद ही वह इसे जीवनपर्यंत अपेक्षित गम्भीरता से निभा पाती है। वह कभी ठोस प्रणाली का अन्वेषण नहीं कर पाती। कलात्मक काम, जिसे एक बार नहीं सौ बार किया जाना चाहिए, और उसके उन अंधेरे पक्षों को, जिन्होंने कभी दिन की रोशनी नहीं देखी, अकेले टटोलना एक धन्यवाद-रहित काम है, औरत स्वयं छोड़ देती है। बचपन से उसने और कुछ नहीं, केवल दूसरों को खुश करने का 'नुस्खा' ही सीखा है। वह अब भी सिर्फ कुछ चालें चलकर पार उतर जाना चाहती है। मैरी बाशकिर्त्सव यह स्वीकार करती हुई कहती हैं-"हां, मैंने कभी चित्रकारिता को गम्भीरता से नहीं किया। आज जब मैं अपना अवलोकन करती हूं तो पाती हूं कि मैंने प्रारम्भ ही छलावे से किया है।" स्त्री काम को गम्भीरता से नहीं लेती। वस्तुतः वह काम करती ही नहीं। वह तो काम में खेल खोजती है। वह अपनी निष्क्रियता के जादुई गुणों से प्रभावित, मंत्रोच्चार और वास्तविक कार्यशीलता, प्रभावी व्यवहार तथा प्रतीकात्मक हाव-भाव को आपस में उलझाकर रख देती है। वह ललित कला की छात्रा के रूप में एक स्वांग भरती हैं। रंगों और तूलिकाओं के औजारों से लैस जब वह अपने ईजल के सामने बैठती है, तब उसकी आंखें सफेद कैनवास की सतह पर फिसलती हुई अपने 'स्व' के आईने पर ठहर जाती हैं। लेकिन इससे फूलों का गुच्छा या लाल सेब खुद ही तो कैनवास पर नहीं उभर आएगा? मेज पर बैठकर अपने दिमाग में अस्पष्ट कहानियां सोच लेने-भर से ही वह लेखिका तो नहीं बन जाएगी? उसे तो सफेद कागज पर काली लकीरें खींचनी होंगी। प्रायः जब औरत कुछ सृजन करती है, तब उसका यह छलावा सामने आ जाता है। वह सोचती है कि दूसरों को खुश करने के लिए मरीचिकाओं का सृजन ही काफी है, किंतु कलात्मक कार्य एक मरीचिका नहीं अपितु वह ठोस वस्तु है जिसे संवारने के लिए कलाकार को अपने काम का हुनर आना चाहिए।

कॉलेट जैसी लेखिका भी केवल अपनी प्रतिभा और लेखन-प्रवृत्ति से ही महान् लेखिका नहीं बन गईं, उनकी कलम उनकी रोजी-रोटी थी । अपने इस उपकरण को वे उतनी ही समझ से प्रयुक्त करती थीं जितना कि एक कलाकार अपने औजारों को व्यवहत करता है।

वे क्लौदीना उपन्यास से नेस्सान्स डूजी पुस्तक तक की यात्रा के दौरान एक नौसिखिए से अभिज्ञ लेखिका बन गईं। उनका यह रूपांतरण उनके कठिन अभ्यास का ही प्रतिफल था। अनेक स्त्रियां मानवीय संवाद की चाह- जनित समस्याओं से बिल्कुल अनभिज्ञ रहती हैं और यही कारण है कि प्रायः वे आवश्यक मेहनत नहीं कर पातीं। अपनी स्थितिग्रस्तता में वे सोचती हैं कि उनमें अंतर्व्यापी गुण स्वयं ही प्रकट हो जाएंगे। वे यह कल्पना नहीं कर पातीं कि अभिमूल्यों को अर्जित भी किया जा सकता है। दुनिया को लुभाने की चेष्टा में वे केवल आत्म-प्रदर्शन करना ही जानती हैं। उनकी मोहकता और कमनीयता से या तो काम हो जाता है या नहीं होता। दरअसल इस क्षेत्र में सफलता या असफलता के लिए वे स्वयं कुछ नहीं करतीं। उनके लिए लेख लिखना और केवल मुस्कुरा-भर देना एक ही बात है। सफलता का मिलना-न मिलना उनके लिए भाग्य पर निर्भर है। लेखिका यदि अपने प्रति अत्यधिक आश्वस्त है, तो सोचती हैं कि लिखी हुई पुस्तक या बनाया हुआ चित्र खुद ही सफल हो जाएगा। उसे कोई भी प्रयास नहीं करना पड़ेगा। यदि वह स्वभाव से भीरू है, तब जरा-सी आलोचना से हताश हो जाएगी। वह इस बात से बिल्कुल अनभिज्ञ रहती है कि बड़ी गलतियां भी कभी-कभी महान् प्रगति का द्वार खोल देती हैं। स्त्री की नजर में की गई गलतियां एक प्रलयकारी अनर्थ हैं। इसीलिए बहुधा एक उदंड धृष्टता में अपनी की गई गलतियों से कुछ सीखने की अपेक्षा वह झुंझलाहट और हताशा के भाव से भर उठती है।

दुर्भाग्यवश कला और लेखन के क्षेत्र में सहजता को प्राप्त करना इतना आसान नहीं जितना कि स्त्री सोचती है, जैसा कि पोलॉ ने 'फ्ल्यूर धु ताबें' में व्यक्त किया है। साधारण खयाल से सहजता वैयक्तिक विचारों की साक्षात प्रस्तुति है। अतः एक सम्भावित लेखक यदि अपने सृजन के क्षणों में यह सोचता है कि वह अपनी प्रस्तुति में बिल्कुल मौलिक है तो यह भी हो सकता है कि उसकी अंकित तस्वीर या प्रेषित विचार केवल चालू मुहावरों का ही पुनः अन्वेषणमात्र हो । स्त्री से जब यह बात कही जाती है तो वह बहुत चौंकती है और कलम को हो किनारे रख देती है। वह यह नहीं समझना चाहती कि साधारण पाठक जब उसको पढ़ता है तब केवल उसमें रुचि नहीं रखता। एक बिल्कुल ताजा अभिव्यक्ति को पढ़कर वह अपनी ओर भी उन्मुख होता है और उसकी अपनी सहस्मृतियां जाग उठती हैं। अपने व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों को समझते हुए उनके जीवंत अनुभवों को भाषा में व्यक्त करना अपने आपमें एक बहुमूल्य अभिदान है। कोलेट के लेखन में हम जिस सहजता को पाते हैं, वह अन्य पुरुष लेखकों में दुर्लभ है। बात यह प्रशंसनीय है, किंतु कोलेट ने अपनी सहजता को साधा है, जबकि ये दोनों शब्द कहीं आपस में टकराते भी हैं। वह बड़ी चतुराई से अपने लेखन में सहजता को बनाए रखने के लिए कांट-छांट भी करती है। यहीं पर एक अनाड़ी महिला लेखिका अपने लेखन को अंतर्वैयक्तिक संवाद का माध्यम समझने के बदले, शब्दों को केवल अपनी भावनाओं का प्रकाशन- भर मान बैठती है। यदि उसको अपने लिखे हुए कुछ हिस्सों को मिटाना पड़े, छोड़ना पड़े या उनमें से चुनाव करना

पड़े तो ऐसे कार्य को वह अपना निषेध समझने लगती है। वह किसी भी शब्द को त्यागना नहीं चाहती। वह अपने से बेहद प्यार करती है और इसीलिए अपना विश्लेषण करने से डरती है। हम उसमें पाते हैं एक जिद्दी अहंकार, जिसका कोई प्रतिफल नहीं मिलता।

स्त्रियों की इस जमात में, जो कला और अक्षरों से खेलती है, बहुत कम ऐसी हैं जो टिकी रहने के लिए मेहनत करती हों और यदि इनमें से कुछ टिक भी जाएं तो वे भी निरंतर आत्म-रति, आत्मासक्ति और हीन-भाव के अंतर्द्वंद्व से ग्रसित रहती हैं। अपने आपको और अपने अहं को न भूल पाना स्त्री की एक ऐसी बड़ी कमजोरी है जो उसके कैरियर पर भारी बोझ बनकर पड़ी रहती है। यदि उनकी जरूरत केवल स्वयं को स्वीकृति-भर है, सफलता का एक संतोषमात्र है तो वे अपने आपको जगत् के अवलोकनार्थ कभी विलीन नहीं करेंगी, किंतु बिना जगत् में निमज्जित हुए वे जगत् का पुनःसृजन भी तो अपनी कला में नहीं कर पाएंगी?

मैरी बाशकित्सेव ने इसलिए तूलिका पकड़ी थी कि वे प्रसिद्धि चाहती थीं। उनका यह यश- लोभ उनके और जागतिक वास्तव के बीच आड़े आ जाता था। अपने खोखले सपनों को आकार देने के लिए और अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए कला उनके लिए साधनमात्र थी। कार्य-जगत् में पूरी तरह अपने आपको निमज्जित किए बिना, स्त्री यह सोचती रह जाती है कि मिली हुई उपलब्धि उसके जीवन का आभूपण है या पुस्तक और चित्र वे प्रासंगिक साधन हैं जिनके द्वारा वह स्वयं की आवश्यकता तथा अनिवार्यता जगत् में प्रस्थापित कर पाएगी। इसके अतिरिक्त उसको रुचि केवल अपने आत्म में रहती हैं जिसे वह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और कभी-कभी अनुपम भी मानती है।

मदा मोजल विगे लबू अपने कैनवासों पर अपनी ममतामयी मुस्कान चित्रित करने से कभी नहीं थकतीं। साधारण विषयों पर बात करते वक्त भी लेखिका अपने बारे में बात करने से नहीं चूकती। उसकी कोई भी नाटकीय आलोचना, बिना उसके लेखक के आकार-प्रकार, बालों का रंग या स्वभाव की विशेषता जाने पूरी नहीं होती।

यह स्वाभाविक है कि स्त्री इस जगत् से , जहां वह तिरस्कृत होती है और तुच्छ समझी जाती है, पलायन ही करना चाहेगी। बस शिकवा तो इतना-भर है कि वह गेरार्ड डे नरवल और एडगर ऐलने पो की साहसिक उड़ान का जोखिम नहीं ले पाती। उसकी भीरूता के अनेक कारण हैं। इसका पहला काम है- दूसरों को खुश करना और प्रायः वह यही सोच बैठती है कि एक स्त्री होकर यथार्थ के वर्णनमात्र से वह दूसरों को नाराज कर बैठेगी। वस्तुतः एक मौलिक लेखन हमेशा चौंकाने वाला होगा। जो कुछ भी नया होता है, वह विक्षुब्ध और परेशान तो करता ही है। स्त्रियों को कला तथा वैचारिक जगत् में, । अब भी पुरुषों का ही जगत् कहलाता है, हाल ही में प्रवेश मिला है। अपने इस प्रवेश से वे प्रसन्न भी हैं तथा चमत्कृत भी। यहां वे सबकी नजर में अपना सबसे परिष्कृत रूप ही रखना चाहती

हैं। वे धमाकों, उधेड़बुन और खोजबीन से कतराती हैं। अपनी विनम्रता और सुरुचि के द्वारा वे अपने साहित्यिक प्रक्षेपण के लिए क्षम्य होना चाहती है। वे स्वीकृत मूल्यों और सामान्यताओं पर निर्भर रहती हैं। समाज उनसे जैसी आशा करता है, वे वैसा ही व्यक्तिगत स्वर अपने लेखन को देती हैं, जो हमें इस बात की याद दिलाए रखता कि लेखिका एक विशिष्ट शालीनता और नाजुक मिजाज वाली महिला है। इन सब गुणों से उसका लेखकीय उत्पादन विकता जरूर है, किंतु लेखन में उससे नए रास्तों के अन्वेषण का दावा नहीं किया जा सकता।

हम यह भी नहीं कहते कि इन स्वावलम्बी स्त्रियों में, भावनाओं या व्यवहार की मौलिकता की कमी रहती है। इनमें से कुछ तो इतनी ज्यादा एकल और विशिष्ट होती हैं कि वे नुमाइश में रखी जा सकती हैं। और तो और, इनमें से बहुतेरी तो उन पुरुषों से ज्यादा सनकी और सिरफिरी होती हैं जिनके विधि-विधान को इन्होंने खारिज कर दिया था। वे अपने जीवन के तौर-तरीकों के वैचित्र्य में, अपनी बातचीत और अपने पत्र-व्यवहार की विशिष्टता में अपनी प्रतिभा प्रयुक्त करती हैं। यदि वे लिखना शुरू करें तो वे संस्कृति की दुनिया से अभिभूत हो जाती हैं, लेकिन संस्कृति की इस दुनिया को पुरुषों ने ही तो बनाया है ? अतः स्त्री इसके सामने केवल हकलाती-भर है। दूसरी ओर, यदि कोई स्त्री तर्क और विश्लेषण करना चाहे, तो वह पुरुषोचित तकनीक ही अपनाएगी, किंतु इससे उसकी मौलिकता में घुटन बढ़ेगी। वह ज्यादा पढ़ती है, पांडित्य ओढ़ती है, पुरुषों जैसी रहती और ताकत की नकल करती है। वह एक अच्छी सिद्धांतवादी बन सकती है, एक वास्तविक क्षमता हासिल भी कर सकती है, किंतु इस सबमें अपने भीतर जो कुछ भी पुरुषों से भिन्न है, उसको नकारने के लिए वह मजबूर हो जाएगी। ऐसी भी औरतें हैं जो बिल्कुल पागल और सनकी हैं, और ऐसी भी हैं जिनके पास युक्तियुक्त विवेकसम्पन्न दृष्टिकोण है, एक प्रणाली है। किंतु ऐसी एक भी नहीं जिसके पागलपन में वह युक्तिसंगत व्यवस्था दिखे जिसे हम 'जीनियस' कहते हैं।

आज अनेक स्त्रियां अपनी इस आत्म-रति और जादुई आशाओं के फंदों से स्वयं को बचा सकी हैं, किंतु आज भी कोई लेखिका अपनी विवेकसंगतता से, यथास्थिति को तिरस्कृत करके अपने अनुभव के पर नहीं जा पाई है। पहली बात तो यहां यह है कि स्त्री रचनाकार समाज की यथास्थिति को स्वीकार करके ही चलती हैं । प्रमुखतया ये ऐसी बुर्जुवा कवयित्रियां हैं, जो एक भयाक्रांत और सहमे हुए वर्ग के परिवर्तन-विरोधी तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती हैं। सुंदर विशेषणों से प्रयुक्त वे सभ्यता की जिन वारीकियों को सम्बोधित करती हैं, उनके काव्य में वे विशेष गुण की सृष्टि करती हैं। वे मध्यम वर्ग की उपयोगी और आधारभूत भूमिका के लिए जयघोष और प्रशंसा को अपने काव्यात्मक रंगों से भरकर अपना वर्ग-स्वार्थ छिपाती हैं। "स्त्री को, स्त्री की तरह ही रहना चाहिए।"वे इस

महान् सिद्धांत के गीत गाती हैं। पुराने मकान, चारागाह और घर का आंगन, बगीचा, ममतामय वृद्धजन, शैतान बच्चे, कपड़े धोना, अचार डालना, घरेलू पार्टियां, ड्राइंग रूम, सौंदर्य, वैवाहिक जीवन के छोटे-मोटे झगड़े और गहरे सुख, जवानी के सपने तथा प्रौढावस्था की थकान-ये ही विषय हैं जिनकी तलपट तक को इंग्लैंड, फ्रांस, अमरीका, कनाडा और स्कैंडिनेविया की महिला उपन्यासकारों ने चाट खाया है। इससे यश और पैसा तो मिला है, किंतु उन्होंने जगत् के बारे में औरत के नजरिए को समृद्ध नहीं किया।

इनसे तो वे विद्रोही स्त्रियां अच्छी हैं जिन्होंने सामाजिक अत्याचारों को चुनौती तो दी है। विद्रोह की उनकी आवाज कम-से-कम एक ईमानदार और सशक्त अभिव्यक्ति की द्योतक तो है। जॉर्ज इलियट ने अपने विद्रोह की गहराई में विटोरियन इंग्लैंड का जो चित्र खींचा है, वह जितना विशुद्ध है उतना ही नाटकीय भी। वर्जीनिया वुल्फ, जेन, आस्टिन और एमिली ब्रांटी आदि महान् लेखिकाओं को मुक्ति के लिए अपने बाहरी बंधनों को काटने की नकारात्मकता में इतनी ताकत खर्च करनी पड़ी कि वे उस मंच तक पहुंचने में ही हांफने लगीं, जो वास्तव में एक महान् पुरुष लेखक का प्रारम्भ बिंदु होता है। उनमें वह ताकत नहीं बची कि अपनी विजय का लाभ उठाएं और अपनी उन सांकलों को काट दें जो उन्हें पीछे की ओर धकेलती रहीं। उनके लेखन में न तो स्तांदाल ही सहजता और विद्रूप मिलते हैं और न उसकी शांत ईमानदारी, और न दॉस्तोएवस्की या टालस्टाय के अनुभवों की समृद्धि । यही कारण है कि 'स्पैलांडिड मिडल माच' कभी 'वार एंड पीस' के स्तर का नहीं हो सकता। 'वदरिंग हाइट' अपनी महानता के बावजूद 'द ब्रदर्स क्रमजोव' के सहज प्रवाह को नहीं पा सका।

आज स्त्रियों के लिए अपने को स्थापित करना बहुत कठिन नहीं, किंतु अब भी वे सेक्स की उन प्रचलित सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर सकी हैं जो उनके नारीत्व को अलगाव में ढकेले रखती हैं। अपनी बौद्धिक पारदर्शिता पर उन्हें नाज है। उनकी यह उपलब्धि है, किंतु आधुनिका को केवल इसी से संतुष्ट नहीं हो जाना है। बात यह है कि पारम्परिक स्त्रियां सचेत रूप से एक धोखाधड़ी का व्यक्तित्व होती हैं। उनको छलावे का अभ्यास होता है। वे अपने से स्वयं की 'परनिर्भरता' को छिपाए रखती हैं। इसका अर्थ यही हुआ कि वे परनिर्भरता' की समर्थक हैं। इस परनिर्भरता का भंडा-फोड़ करना ही अपने आपमें मुक्ति है। इसके प्रति एक 'सिनिक दृष्टिकोण' भी शर्म और ग्लानि से उबारता है। यह मान्यता विश्वास की पहली तस्वीर है। इस परिष्कृत समझ को पाने की इच्छा जो भी लेखिकाएं कर रही हैं, वे स्वयं में स्त्री-वर्ग की एक महान् सेवा कर रही हैं। किंतु अधिकतर लेखिकाएं अब भी जगत् के सुदूर भविष्य के प्रति उदासीन ही रहती हैं। अपने भ्रमों और छलावों का नकाब उलट देने में ही वे सोचती हैं कि एक बड़ा काम हासिल हुआ। लेकिन उनका यह नकारात्मक साहस और खुलापन हमें अब भी अपनी समस्या के सम्मुख ही रखता है

क्योंकि सच अपने आपमें अनेकार्थक है, गहन है और है रहस्यमय। एक बार कहनेमात्र से सच सच नहीं हो जाता। उस पर विचार करना पड़ता है, उसका पुन:सृजन करना आवश्यक हो जाता है। औरत मरीचिकाओं से ही पीछा छुड़ाने में अपने आपको थका लेती है, अपना साहस गंवा बैठती है; सहमी हुई, डरी हुई, वह वास्तव के कगार पर ही खड़ी रह जाती है।

किसी-न-किसी रूप में दुनिया का बोझ अपने कंधों पर उठाने वाले पुरुषों को ही महान् कहा जाता है। उन्होंने अच्छा किया या बुरा, किंतु स्थितियों का पुनःसृजन तो उन्होंने किया ही और इसके लिए चाहे जितना भी बोझ उठाना पड़े, संघर्ष करना पड़े, उन्होंने हार नहीं मानी। यही वह बात है जो स्त्री ने अभी तक नहीं की। दुनिया को अपना मानने, उसकी उन्नति या अवनति के लिए स्वयं को जिम्मेदार ठहराने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि व्यक्ति विशिष्ट सुविधा प्राप्त वर्ग का सदस्य हो क्योंकि ये ही वे लोग हैं जो दुनिया को बदलने का आदेश दे सकते हैं, इसके बारे में सोच सकते हैं और इसकी कमियों को दिखा सकते हैं। ये जब स्वयं को इस दुनिया में पहचानते हैं, तभी अपने कदमों की छाप छोड़ जाते हैं। इसलिए अब तक स्त्री ने नहीं, बल्कि पुरुष ने अवतार लिया है और मानवता को नियति अपने व्यक्तिगत अस्तित्व में पहचानी है।

वैनगाग कैसे एक स्त्री होकर जन्म लेता? यदि वह स्त्री होता तो वरिनेज की कोयला खदान में नहीं भेजा जाता और न ही खदान के मजदूरों के दर्द को अपनी निजी त्रासदी समझता। वह कभी खदान श्रमिकों की मुक्ति के बारे में नहीं सोचता और न ही सनफ्लावर जैसी महान् चित्रकृति जन्म लेती। उसका अकेलापन, आल्फ की पहाड़ियों में, कहवा-घर और वेश्याओं के यहां पड़े रहना, जीवन के सारे तथ्य और त्रासदियां, जो किसी भी स्त्री के लिए पूर्णतया वर्जित हैं, ने ही तो वैनगाग की कला को सम्पुष्ट और संवदेना को संवर्द्धित किया? औरत कभी काम की नहीं हो सकती। अपने संशय और चिंताओं में उसने स्वर्ग से प्रताड़ित मानव की त्रासदी को नहीं पहचाना । संत थेरेसा के अलावा शायद ही कोई स्त्री ऐसी हुई है जिसने मानवता की स्थिति बदलने के लिए अपना सम्पूर्ण उत्सर्ग कर दिया। यह स्वतंत्र अस्तित्व की दिशा में एक महिमा-मंडित प्रयास था। पता नहीं कब औरत अपना व्यक्तिगत इतिहास, अपनी समस्याएं, अपनी आशाएं और निराशाएं सम्पूर्ण मानवता के साथ एकात्म कर पाएंगी? जब तक वह ऐसा कर सकने में असमर्थ है, तब तक उसका अपना जीवन और कार्य सम्पूर्ण वास्तविकता को उद्घाटित करने के बंदले केवल व्यक्तिगत जिंदगी की अभिव्यक्तिमात्र रह जाएगा। जब तक उसको एक मानव-अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है, तब तक वह कभी स्वयं महान् सृजक नहीं हो सकती।

मैं एक बार फिर कहना चाहूंगी कि स्त्री की सीमा की अभिव्यक्ति के लिए हमें उसकी परिस्थिति का ही विवेचन करना चाहिए। किसी रहस्यमय सारतत्त्व की खोज सिर्फ स्त्री-व्यक्तित्व में करना हमारा अन्याय होगा। हमारा भविष्य इसी पर निर्भर है। मादाम मार्थे बोरे

ने यह दावा किया कि औरत में सृजनात्मक प्रतिभा का अभाव है। इस प्रकार के नारी-विरोधी लेखन का कुतर्क स्वयं में विरोधाभासी है। सबसे पहले तो हमें सर्जनात्मक नैसर्गिक वृत्ति की अवधारणा को उसी प्रकार खारिज करना होगा, जिस प्रकार शाश्वत नारीत्व की अवधारणा को। किसी नारी-विरोधी ने यह कहा कि न्यूरोटिक होने के कारण स्त्री किसी सार्थक वस्तु का सृजन कर ही नहीं सकती, किंतु ये ही वे लोग हैं जो किसी महान् प्रातिभ पुरुष का न्यूरोटिक होना सहजता से स्वीकार कर लेते हैं। मानसिक और शारीरिक असंतुलन न तो किसी सृजनात्मक क्षमता के अभाव का द्योतक है, न अनिवार्य प्रतिभाहीनता का। अतीत में झांककर कुछ उदाहरणों को खुरच-खुरचकर उठाने से किसी शाश्वत सत्य की स्थापना नहीं हो सकती। इससे केवल यह जाना जाएगा कि इतिहास अब बदल रहा है। स्त्री कैसे महान् प्रतिभा हो पाती, जबकि उसके लिए तमाम महान् कार्यों के दरवाजे परम्परा ने बंद कर रखे थे? अमरीका . ने यूरोप की तरह कभी अपने लेखकों और कलाकारों पर अभिमान नहीं किया। किंतु इतना तो जेफर्सन ने कहा था, "पहले हम अस्तित्व तो पाएं तब तो हमारे अस्तित्व के औचित्य का प्रश्न उठेगा?" एक काला आदमी नस्लवादी के इस आक्षेप का क्या जवाब देगा कि काली नस्ल ने आज तक किसी ह्विटमैन या मेलविले को जन्म नहीं दिया और न ही फ्रेंच सर्वहारा रेसिन या मलार्मे की 'तुलना में कोई नाम प्रस्तुत कर सकता है ।

स्वाधीन स्त्री तो अभी-अभी जन्मी है। जब उसकी स्थिति थोड़ी परिपक्व होगी तभी रिवाड की भविष्यवाणी सच होगी, "कब स्त्री की यह पारम्परिक दासता टूटेगी? और कब वह अपने लिए एक इंसान की जिंदगी जी सकेगी? वह कवयित्री होगी। वह अनजान ऊंचाइयों को छूएगी। क्या उसका वैचारिक जगत् हमसे भिन्न होगा? कब वह उन अथाह गहराइयों को छूएगी जिनको हम भी उसके साथ समझ सकेंगे?"

हमें यह नहीं मालूम कि तब स्त्री की वैचारिक दुनिया और उद्भावनाएं पुरुष से भिन्न होंगी या वे स्वयं पुरुष से भिन्न होंगी? इस प्रकार को दुस्साहसी भविष्यवाणी करना कठिन है। इतना तो सच है कि अब तक स्त्री की सम्भावनाओं का दमन किया जाता रहा। स्त्री को अब स्वयं उसके हित और मानवता के भी हित में स्वतंत्रता मिलनी ही चाहिए।

उपसंहार

"नहीं , औरत हमारी भ्राता नहीं। धृष्टता और कपट के सहारे हमने ही उसे अपने से दूर कर दिया है। आज उस मासूम के पास अपने सेक्स के अतिरिक्त दूसरा कोई हथियार नहीं है। परिणामस्वरूप आज वह हमसे निरंतर युद्धरत है। कभी प्रेम करती हुई, कभी घृणा करती हुई। वह और कुछ भी है, किंतु एक सच्ची दोस्त कभी नहीं।"

दंतकथाओं की बात छोड़ दें तो स्त्री-पुरुष के बीच शारीरिक भिन्नता के अतिरिक्त दूसरी कोई स्थायी भिन्नता सम्भव नहीं है। मानवता जीव-जंतुओं की कोटि से अलग एक ऐतिहासिक विकास है, अत: उसको हम प्राकृतिक विशेषताओं के प्रकाश में ही परिभाषित कर सकते हैं। तमाम दुराग्रहों के बावजूद शारीरिक भिन्नता के आधार पर स्त्री-पुरुष में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा एवं विद्वेष का कोई स्थायी क्षेत्र नहीं माना जा सकता। मनोविश्लेषण से अब तक मनोविज्ञान ने यह प्रमाणित करना चाहा है कि स्त्री वास्तव में पुरुष-लिंग के अभाव के कारण आत्महीनता महसूस करती है। इस हीनता की क्षतिपूर्ति के लिए वह पुरुष हो जाना चाहती हैं। फ्रायड ने इसे 'केस्ट्रेशन कम्लेक्स' कहा है। इस ग्रंथि का प्रतीकार्थ यह हुआ कि स्त्री पुरुष को उसकी अतिक्रमण की क्षमता से वंचित करना चाहती है। स्त्री की यह चाह काफी द्व्यर्थक है। वह विरोधाभासों के बीच सर्वोपरिता हासिल करना चाहती है। यानी वह सर्वोपरिता की ओर अग्रसर होती हुई भी जीवन में उसे ही नकारती भी है। वह अपने से परे स्वयं को फेंकती भी है और पुनः अपनी अंतर्वर्तिता में ही सीमित रह जाती है। यह नाटक केवल यौन-स्तर तक ही नहीं सीमित रहता। सेक्सुअलिटी ने कभी मनुष्य की नियति परिभाषित नहीं की और न मानव-व्यवहार की स्थिति की सम्पूर्णता को परिभाषित करने में इससे अधिक सहायता मिलती है। सेक्स-जनित संघर्ष केवल स्त्री-पुरुष की शारीरिक संरचना तक ही सीमित नहीं। सच्चाई तो यह है कि अनंतकाल से वैचारिक जगत् में शाश्वत नारीत्व तथा शाश्वत पुरुषत्व को अस्पष्ट अवधारणाओं में निरंतर होड़ चलती रही है। हम इस बात की अवहेलना करते हैं कि यह संघर्ष दुनिया में बिल्कुल दो भिन्न रूपों में ऐतिहासिक क्रम में जारी है।

अपनी अंतर्व्यापिता में कैद स्त्री पुरुष को भी उसी में बंद रखना चाहती है। स्त्री का सीमित दायरा दुनिया का एक कैदखाना बन जाता है। मां, पत्नी और प्रेमिका एक प्रकार से जेलर की भूमिका अदा करने लगती हैं। चूंकि सामाजिक संहिता का निर्माता पुरुष है, अतः

यह विज्ञप्ति कि स्त्री पुरुष से हीन है, अब तक संस्कारों से पुष्ट होती रही है। इससे छुटकारा पाने के लिए स्त्री पुरुष की श्रेष्ठता को ही चुनौती देती हैं। वह पुरुष का विरोध करने लगती है। उसके मूल्यों को नकार कर वह उसके ऊपर शासन करना चाहती है। एक प्रकार से वह पुरुष को कुचल कर रख देना चाहती है, किंतु ऐसा करते हुए वह स्वयं को ही सफाई देती है। वह यह नहीं समझती कि यह न तो कोई नारीत्व का ऐसा सारतत्त्व है जो उसमें यह हीन-भाव बनाए रखता है और न ही ऐसा कोई गलत चुनाव है, जिसके कारण वह अपनी अंतर्वर्तिता में कैद है। हीनता की ये सारी भावनाएं उस पर थोपी गई हैं। दमन चाहे किसी भी रूप में क्यों न हो, वह हमेशा एक युद्ध जारी रखता है। यहां भी इसका कोई अपवाद नहीं। स्त्री अपनी सत्ता पुनः स्थापित करने की चेष्टा तो करेगी ही।

आज स्त्री-स्वाधीनता के इस संघर्ष ने दूसरा रुख ले लिया है। आज पुरुष को बंदी बनाने के बदले औरत खुद इस जेल से छुटकारा चाहती है। वह स्वयं अंतर्व्यापी जगत् का अतिक्रमण करके सर्वोपरिता की ओर अग्रसर होना चाहती है। पुरुष का हमेशा स्वामी बने रहने का दृष्टिकोण एक नया संघर्ष पैदा करता है। पुरुष बड़ी अनिच्छा और अभद्र तरीके से स्त्री को मुक्ति देता है। सर्वोपरि के रूप में वह अब तक बड़ा मदांध था, वह निरपेक्ष रूप से श्रेष्ठ था, जगत् के लिए विल्कुल आवश्यक। उसने कभी नहीं चाहा कि उसकी संगिनी भी वास्तव में उसके बराबर हो। स्त्री के प्रति पुरुष का अविश्वास उसे आक्रामक बनाता है। अब यह संघर्ष दो व्यक्तियों का न रहकर दो जातियों का बन गया है जिसमें सुविधा प्राप्त सत्ता वर्ग (पुरुष) दलित वर्ग (स्त्री) का प्रतिरोध करता है। अतः दोनों की अतिक्रमण की क्षमता एक-दूसरे को चुनौती दे रही है, एक-दूसरे पर छा जाने की कोशिश कर रही है। जरूरत तो इस बात की है कि दोनों एक-दूसरे की महत्ता स्वीकार करें।

दृष्टिकोणों का यह पार्थक्य न केवल सेक्सुअल स्तर पर है, बल्कि आत्मिक स्तर पर भी है। अपने नारीत्व के माध्यम से स्त्री पुरुष को अपना शिकार बनाए बिना नहीं रहती। वह समर्पण की मुद्रा में पुरुष की चाह जगाती है और चाहती है कि वह जाल में फंसे। अपना यह औजार वह छोड़ती नहीं। दूसरी ओर स्वाधीन स्त्री सक्रिय भी होना चाहती है, कुछ हासिल भी करना चाहती है। वह पुरुष द्वारा आरोपित निष्क्रियता का विरोध कर्मठता से करती है। वह सोच सकती है, काम कर सकती है और बड़े-से-बड़े निर्णय ले सकती है। दरअसल स्त्री पुरुष को अपदस्थ करने की अपेक्षा स्वयं को उसकी समानता के स्तर पर स्थापित करना चाहती है।

जहां तक स्त्री स्वयं को किन्हीं सुनिश्चित परियोजनाओं में अभिव्यक्त करती है, वहां बराबरी का उसका दावा कतई गलत नहीं होता। पुरुष यदि उसके इस दावे को नहीं स्वीकार करता है तो यह उसकी धृष्टता है। पुरुषों के पक्ष में यह जरूर कहा जा सकता है कि बहुधा स्त्रियां सारे मुद्दों को अजीबोगरीब गुत्थियों में उलझा कर रख देती हैं। बहुत-सी

स्त्रियां सफलता के लिए पुरुष का सहारा अपने उन्हीं पारम्परिक हथियारों से यानी शारीरिक समर्पण से लेती हैं। वे दोनों प्रकार की सुविधाएं चाहती हैं। सेक्स एक हथियार है, पुराना जादुई तरीका जिससे पुरुष को मनचाहे रूप से नचाया जा सकता है, दूसरी ओर वह आधुनिक बराबरी का हक और सम्मान भी चाहती है। यह स्वाभाविक है कि पुरुष इस दोहरी चाल से चिढ़े और अपने हक का बचाव करे। पुरुष भी दोहरी चाल चले बिना नहीं मानता। वह औरत से यह अपेक्षा तो रखता है कि वह मुक्ति मान्य तरीकों से हासिल करे, लेकिन जीत की बाजी अपने हाथों से छोड़ता भी नहीं। वह औरत पर शक भी करता है, विद्वेष भी। अत: दोनों के बीच के संघर्ष की एक निश्चित रूपरेखा नहीं बनाई जा सकती। चूंकि औरत का अस्तित्व ठोस और वस्तुरूप है, अत: वह पुरुष के सामने आत्म और वस्तु, आवश्यक तथा गौण, दोनों रूपों में उपस्थित होती है जो कि स्वयं में एक बड़ा विरोधाभास है। स्त्री जब अपने हथियार को यानी शरीर को एक साथ अपनी कमजोरी और ताकत, दोनों बनाकर पेश करती है तब उसके पास कोई सचेत परियोजना नहीं होती। इसमें कोई शक नहीं कि ऐसा वह चाहे सोच कर करे या नासमझी में, पर उसका यह तरीका बिल्कुल गलत है। मगर गलती उसकी नहीं, गलती उस परिस्थिति की है, जो द्वयर्थक है तथा जिसमें वह फंसी हुई है। पुरुष इसलिए चिढ़ता है कि वह एक ओर जहां उसकी स्वतंत्र हैसियत को मान्यता देता है, वहीं यह भी समझता है कि औरत अब भी उसके लिए एक जाल ही है। यदि वह शिकार समझ कर औरत को अपनी ओर खींचता है, संतुष्ट करता है, तो स्त्री की स्वायत्तता का दाला उसको बड़ा कोंचने वाला लगता है। पुरुष सोचता है कि उसके साथ चाल चली गई और स्त्री सोचती है कि वह ठगी गई।

यह झगड़ा उस समय तक चलता रहेगा जब तक स्त्री और पुरुष, दोनों एक-दूसरे को बराबरी का हक न दे दें। प्रश्न उठता है कि यथास्थिति को बनाए रखना कौन ज्यादा चाहता है? औरत या पुरुष? मुक्त होती हुई भी स्त्री विरासत में मिली सुविधाओं को छोड़ना नहीं चाहती और जब वह सुविधा नहीं छोड़ पाती तो पुरुष का दावा यह होता है कि तुम पाई हुई सुविधाओं के दायरे में परिसीमित रहो। फिर इससे आगे बढ़ने की चाह क्यों? प्रशंसा या निंदा में कुछ नहीं रखा। सच्चाई तो यह कि इस दुष्चक्र को तोड़ना हममें से किसी के लिए आसन नहीं । स्त्री और पुरुष, दोनों ही इससे आक्रांत हैं। दो बरावर के व्यक्तियों में तो सामना हो सकता है तथा किसी समझौते पर आया जा सकता है, किंतु यहां उलझन तो इस बात की है कि दोनों ही एक-दूसरे से झगड़ा भी करते हैं और एक-दूसरे को आराम भी देते हैं। प्रामाणिकता का अभाव दोनों में है। दोनों एक-दूसरे को दोष देते हैं। स्त्री हो या पुरुष, जुगुप्सा इस बात की होती है कि दोनों के भ्रम एक-दूसरे के बारे में टूटने हैं तथा वे एक-दूसरे की नीयत से वाकिफ रहते हैं।

हमने इस बात को देखा कि क्यों पुरुष ने स्त्री को गुलाम बनाया। नारीत्व की अवमानना शायद मानव-विकास के एक खास चरण में जरूरी हो गई थी, किंतु दोनों के बीच एक साझे का भाव भी तो हो सकता था? व्यक्ति जब स्वयं से पलायन करके दूसरे में आत्मसात होना चाहता है तो उसका अंतिम परिणाम दमन होता है। बड़ी संख्या में मनुष्य इस प्रवृत्ति के शिकार होते हैं। पति अपनी पत्नी में स्वयं को खोजता है और प्रेमिका प्रेमी में अपनी ही तस्वीर खोजती है। पुरुष प्रस्तर-प्रतिमा में खोज रहा होता है अपने पुंसत्व का मिथक, अपनी सत्ता, अपना तात्कालिक सच; किंतु वह खुद दोहरेपन का गुलाम हो जाता है। वह अपनी ऐसी तस्वीर बनाता है जिसके खंडित होने का खतरा हर समय बना रहता है। उसके प्रतिबिम्ब को स्वीकारना या न स्वीकारना तो औरत की इच्छा-अनिच्छा पर निर्भर है। पुरुष की गुलाम होते हुई भी वह इस बात के लिए स्वतंत्र है कि प्रतिबिम्ब को स्वीकारे ही नहीं। पुरुष को औरत की नजर में हमेशा महत्त्वपूर्ण और सर्वोपरि बने रहने की चेष्टा करनी पड़ती है। वह छलावा करता है, पुरुषत्व का ढोंग करता है, बदले में उसको औरत से मिलता क्या है? वही छलावा, वही प्रदर्शन । वह भी आक्रामक है, असहज है। वह औरत के प्रति विद्वेष रखता है। वह उससे डरता भी है क्योंकि वह नहीं चाहता कि पुरुषत्व के जिस मुखौटे को उसने इतनी मेहनत से बनाया, वह चूर-चूर हो जाए। कितना समय उसने अपनी सर्वोपरि सत्ता को स्थापित करने और अपनी हीन- ग्रंथियों के उदात्तीकरण तथा स्त्री के सम्पर्क में लगाया? उसके बारे में बातें कीं, उसको ललचाया, फुसलाया? पता नहीं उसने यह क्यों नहीं सोचा कि औरत की मुक्ति में उसकी भी मुक्ति निहित है। शायद वह खुद मुक्त होने से डरता है और यही कारण है कि उसकी अंधी जिद ने औरत को सांकलों में जकड़ रखा है, सारी स्थिति को रहस्यमयता का आवरण ओढ़ा रखा है।

स्त्री ठगी गई, यह तो अनेक पुरुष मानते हैं। "क्या दुर्भाग्य है, औरत होकर जन्म लेना?" बहुत लम्बे समय तक इस दुर्भाग्य को छिपाया गया। उदाहरणार्थ अब पुरुष के अभिभावक बने रहने का यह एकाधिकार खत्म होता जा रहा है। अब स्त्री भी संरक्षिका हो सकती है। अब उसको घर में सीमित रखना और बाहर काम न करने देना, उसको उसकी मुक्ति से वंचित करना है। हमने यह भी देखा कि घर-गृहस्थी के उबाऊ कामों पर काव्यमयता का जाल बुना गया। स्वतंत्रता के बदले उसको शाश्वत नारीत्व का झूठा खजाना सौंपा गया। इस छलावे को बनाए रखने के लिए बाल्जाक बड़ा धूर्ततापूर्ण सुझाव पेश करते हैं- "उससे नौकरानी जैसा व्यवहार करो, पर उसको समझा कर रखो कि वह महारानी है।" बहुत से पुरुष तो वास्तव में ऐसा विश्वास करते हैं कि स्त्री को सुविधाएं ज्यादा मिली हुई हैं।

अनेक अमरीकन समाजशास्त्री इस बात को स्थापित करने में लगे हुए हैं कि स्त्रियों को काम की कैसी-कैसी पारिस्थितिक सुविधाएं मिलती हैं। फ्रांस में भी प्रायः लोग यह कहते हैं कि श्रमिक वर्ग को मध्यवर्गीय दिखावा बनाए नहीं रखना पड़ता। जैसे घेटों की गंदगी में

नीग्रो खिलखिलाकर हंस सकता है, जैसे कूड़े पर बैठी काली औरतें बालों से जूं निकालती रह सकती हैं, 'वैसी ही सुविधाएं स्त्रियों को गैर-जिम्मेदार बनी रहने के लिए मिली हैं। पुरुष को कितना बोझ उठाना पड़ता है? कितनी चिंता करनी पड़ती है? औरत को क्या? कुछ भी नहीं। उसको तो जिंदगी का बेहतरीन हिस्सा मिला हुआ है। दुनिया में हर कहीं, दमित को बेहतरीन जिंदगी देने का दावा करने वाले पूंजीपति कह रहे हैं, "तुम्हें सारी सुविधाएं मिली हैं। इनको बनाए रखो।"

हमें यह जरूर स्वीकार करना चाहिए कि पुरुष औरत में, अन्य किसी भी दमित व्यक्ति की तुलना में, अपने साथ ज्यादा सहापराधिता पाता है। औरत के इस सहयोग के कारण ही पुरुष ऐलान कर पाता है कि औरत ने स्वयं इस दी गई नियति को स्वीकार किया है। हमने यह भी देखा कि औरत का सारां प्रशिक्षण उसको विद्रोह और जोखिम से दूर रखता है। समाज और माता-पिता द्वारा भी स्त्री को शुरू से आत्म-दान की ही शिक्षा दी गई है। उससे यह सच्चाई छिपाई गई है कि उसके इस आत्म-दान का बोझ न उसका पति, न प्रेमी और न उसके बच्चे उठाना चाहेंगे। वह प्रसन्नता के साथ इस झूठ को स्वीकार करती है और इस भ्रम को पालती है क्योंकि यह ढलवां रास्ता आसान है। राह में हर दूसरा उसके खिलाफ साजिश रचता है। बचपन से लेकर जीवनपयंत पुरुष उसके इस समर्पण-भाव की प्रशंसा करते रहते हैं। स्वतंत्रता सबको डराती है, स्त्री भी इसका अपवाद नहीं। और यदि गुलामी की प्रशंसा हो तो कहना क्या? समर्पण के नाम पर मिलने वाली सुविधा का प्रलोभन किसी को भी हो जाएगा। यदि एक बच्चा सारे दिन मौज-मस्ती करता रहे और उसे पढ़ने के लिए न कहा जाए या इसकी उपयोगिता उसको न समझाई जाए तो वह क्यों पढ़ेगा? वह गंवार ही रहना क्यों नहीं पसंद करेगा? औरत को भी इस रूमानियत में बड़ा किया गया है । उसको कभी नहीं समझाया गया कि अपने अस्तित्व के प्रति वह स्वयं जिम्मेदार है। इसीलिए वह बड़ी सहजता से दूसरों के द्वारा दी गई सुरक्षा, प्रेम, सहायता एवं देख-रेख स्वीकार कर लेती है। वह आत्मानुभूति के मोह में पड़ जाती है बिना यह समझे कि मुक्ति के लिए स्वयं को जिम्मेवार होना पड़ता है। वह प्रलोभन में पड़कर गलती करती है, मगर पुरुष उसको कैसे दोष दे सकता है ? इस प्रलोभन को तो उसी ने स्त्री को सिखाया है। स्त्री-पुरुष में आपसी झगड़ा होने पर दोनों इस परिस्थिति के लिए दूसरे को जिम्मेदार ठहराते हैं। औरत कहती है कि किसी ने मुझे सिखाया नहीं कि अपनी रोटी कैसे कमाई जाती है ? पुरुष कहता "तुम मूर्ख हो । कुछ नहीं कर सकती।" दोनों सोचते हैं कि एक-दूसरे को दोष देकर छुटकारा पाया जा सकता है, लेकिन एक की गलती दूसरे को मासूम नहीं बनाती।

स्त्री और पुरुष के अगणित झगड़े केवल इस बात को प्रमाणित करते हैं कि हमने अपने-अपने हिस्से की दी हुई नियति को दोनों हाथों स्वीकारा । भेद में भी समानता और समानता में भी भेद की संशयात्मक अवधारणा का प्रयोग दोनों अपने-अपने स्वार्थ में करते हैं।

पहला दूसरे से अपनी तानाशाही छिपाता है तो दूसरा अपनी कायरता पहले से। औरत दावा करती है सैद्धांतिक समानता का और पुरुष सामने रखता है- एक अवास्तविक समानता । परिणाम है-एक अंतहीन बहस, जिसमें किसने क्या दिया, किसको क्या मिला जैसी अस्पष्ट अर्थों की उधेड़-बुन होती रहती है। औरत कहती है कि उसने अपना सर्वस्व दिया, पुरुष विरोध में कहता है कि औरत ने उसका सब कुछ छीन लिया। स्त्री ने विनिमय सीखा है। राजनैतिक अर्थव्यवस्था के एक मौलिक सिद्धांत के अनुकूल ही अपनी कीमत नगण्य पाने पर वह अपने को बुरी तरह ठगा हुआ पाती है। सच्चाई तो यह है कि पुरुष के लिए वह मन-बहलाव का साधन-भर होती है। एक सुखद सम्पर्क, एक गौण अनावश्यक वरदान। स्त्री के लिए पुरुष के जीवन का अर्थ है उसके अस्तित्व का औचित्य। इस संदर्भ में विनिमय मूल्य समान नहीं होता।

इस असमानता का नतीजा यह है कि स्त्री और पुरुष जो समय साथ बिताते हैं, वह भ्रांतिजनक रूप से एक साथ बिताया गया लग सकता है, किंतु दोनों साथियों के लिए साथ बिताए गए क्षणों का मूल्य एक-सा नहीं होता। प्रेमी जो शाम अपनी प्रेमिका के साथ बिताता है, उसको वह अपने कैरियर और दोस्तों के साथ व्यापारिक सम्बंधों को बढ़ाने में लगा सकता था। चूंकि पुरुष विधेयक रूप में समाज से जुड़ा है, इसलिए उसके लिए समय का मूल्य अधिक है। पुरुष को प्रेम के अलावा, पैसा, इज्जत और सुख सब चाहिए; लेकिन बेकार बैठी हुई, बोर होती हुई स्त्री के लिए समय एक बोझ होता है। उसे किसी-न-किसी प्रकार समय काटना है और जब वह येन-केन प्रकारेण समय गुजार पाती है तो अपने को लाभान्वित समझती है। पुरुष की सबसे अधिक रुचि सेक्स में रहती है। यदि उसका वश चले तो सम्भोग में लगने वाले समय के अलावा एक क्षण भी स्त्री के साथ न रहे जबकि औरत जितना भी बचा हुआ फालतू समय है, उसका पूरा फायदा इसी वक्त वसूलना चाहती है। उसकी हालत तो उस सब्जी वाली की तरह है जो आलू तभी बेचेगी, जव खरीदार साथ में शलजम भी खरीदे। वह शरीर समर्पित करती ही नहीं, जब तक प्रेमी उससे घंटों बातें नहीं कर ले या विहार पर न ले जाए। समझौता होता है। वह उस नदी की तरह होती है जो किनारे का बांध तोड़ कर बहने लगती है और तव पुरुष को लगता है कि ऐसे प्रेम से तो प्रेम का न होना ही अच्छा है। इस झगड़े में बहुधा स्त्री अपनी मांग कम भी कर लेती है, किंतु प्रायः दोहरे तनाव की कीमत पर संतुलन आता है। वह सोचती है कि सौदे में उसने अपना शरीर दिया और पुरुष सोचता है कि ऐसे शरीर की कीमत महंगी पड़ी। यद्यपि यह विश्लेषण कुछ ज्यादा हल्के तरीके से रखा जा रहा है, किंतु ईर्ष्या पर आधारित सम्बंधों के अलावा तथा उस आवेगमय सम्बंध के अलावा, जहां पुरुष स्त्री पर सम्पूर्ण अधिकार चाहता है, यह संघर्ष हमेशा प्रेम, चाहत या स्नेह-सम्बंधों में चलता ही रहता है। पुरुष को हमेशा कुछ-न-कुछ काम करना ही रहता है, जबकि औरत के सामने गुजारने की समस्या अधिक रहती है।

जो भी समय औरत पुरुष को देती है, उसको वह उपहार के रूप में न लेकर बोझ-स्वरूप ही ग्रहण करता है।

पुरुष प्रायः स्वेच्छा से यह बोझ ग्रहण भी करता है क्योंकि वह जानता है कि वह विशिष्ट और सुविधासम्पन्न है। उसकी चेतना में खरोंच है। और यदि वह भला व्यक्ति हुआ तो उदार होकर पत्नी या प्रेमिका की क्षतिपूर्ति विवेक के साथ करने की कोशिश भी करता है। अपनी उदारता पर उसे अभिमान रहता है, किंतु औरत द्वारा की गई शिकायतों के प्रति उसकी पहली प्रतिक्रिया स्त्री को कृतघ्न समझने के रूप में होती है। औरत सोचती है कि उसको भीख दी जा सकती है। पुरुष के प्रेम की यह सौगात उसको दैन्य का अनुभव कराती है।

यहीं पर हम स्त्री के व्यवहार में पाई गई क्रूरता के कारणों का विश्लेषण कर सकते हैं। स्त्री की चेतना स्वच्छ है क्योंकि वह पुरुष की तरह सुविधाग्रस्त नहीं है, न ही सत्ता से मदमस्त। वह अपने को केवल बचाना चाहती है। पुरुष से अपनी अपेक्षा के अनुकूल संतोष न पाने पर वह उससे अपना दिया हुआ सब कुछ छीन लेना चाहती है। वह समझ लेती है कि सुविधा प्राप्त इस विशिष्ट वर्ग से कोमलता से काम नहीं लिया जा सकता। स्त्री की पूरी चेष्टा अपने को बचाने की रहती है। इसी बिंदु पर पुरुष उस घायल प्रेमिका का, जिसने इस सम्बंध के लिए अपना सब कुछ दांव पर लगा दिया, महत्त्व समझता है। वह फिर सब कुछ देने का दावा करता है, यद्यपि वह भीतर ही भीतर कहीं उसकी स्थितिग्रस्तता का नाजायज फायदा भी उठा रहा होता है। दोनों एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हैं, दोनों गलत समझे जाते हैं, दोनों स्वयं को ठगा गया महसूस करते हैं।

मैं फिर एक बार यह स्पष्ट करना चाहूंगी कि ऐसी स्थिति में किसी एक को गलत या सही कहना बिल्कुल बेतुका होगा। अन्याय की दुनिया में न्यायसंगत बात कैसी? एक उपनिवेशवादी अफसर के पास ऐसी कोई सम्भावना नहीं कि वह स्थानीय लोगों के ऊपर जुल्म न करे, न ही सेनाधिकारी अपनी सेना को युद्ध की आहुति से बचा सकता है। उनके लिए यह तो सम्भव है कि वे अपना पद त्याग कर कोई दूसरा पेशा अपना लें, किंतु यदि वे सत्ताधारी हैं तो शोषण उनको करना ही पड़ेगा। पुरुष क्या करे? उसकी नियति में तो पुरुष होना ही लिखा है। अतः अनिच्छा से भी वह शोषक हो जाता है और स्त्री शोषित । स्त्री-अहेरी के जाल में फंसी हुई एक शिकार। कभी वह विद्रोह करती है, क्रूर हो जाती है, किंतु अन्याय एवं दमन की साझेदार तो है ही; अतः वास्तव में गलती पुरुषों की ही बनाई हुई व्यवस्था की है। स्त्री से तो यह समाज, यह धर्म, यह न्यायसंहिता बनाते वक्त किसी ने सलाह नहीं ली। बहुधा पुरुष भी अपनी बनाई इस व्यवस्था का निर्मम शिकार हो जाता है। शोषित स्त्री के अत्याचार से पीड़ित । प्रायः वह एक समझौते में ढल जाता है, समझौता, जो उसको अपनी ही जाती नजर में छोटा कर देता है। वह सहज हो ही नहीं पाता। एक

भला एवं शिक्षित व्यक्ति अपनी स्त्री की अपेक्षा ऐसी स्थिति में ज्यादा त्रासदी भोगेगा। एक प्रकार से पराजित स्थिति में रहने वाला फायदे में रहता है-यानी पराजीवी होने, फूहड़ और गंवार होने और बहुत दबा हुआ होने के कारण उसे सहानुभूति ज्यादा मिलती है। किंतु एक शिक्षित स्त्री अपनी न्यायोचित मांग के बोझ से पुरुष को कुचल कर नहीं रख देना चाहती, वह एक निराशापूर्ण अंतहीन सिलसिले में उलझ कर रह जाती है।

रोजमर्रा की जिंदगी में हम हजारों ऐसी घटनाएं देखते हैं जिनका कोई भी संतोषजनक निदान नहीं खोजा जा सकता, क्योंकि ये परिस्थितियां ऐसी ही हैं जो व्यक्ति की त्रासदी का नियमन करती हैं। एक पुरुष यदि आर्थिक एवं सामाजिक रूप से ऐसी स्त्री को सहारा देते रहने के लिए बाध्य है, जिसको वह प्यार नहीं करता, तो सच में वह स्वयं को बेहद दंडित महसूस करता है । किंतु एक आश्रित एवं असहाय स्त्री के, जिसने अपना सारा जीवन उसको सौंप दिया, उत्पीड़न का वर्णन कैसे किया जाए? इस बुराई की जड़ में कोई व्यक्ति नहीं होता। एक-दूसरे को दोषी ठहराते समय वे भ्रम के शिकार होते हैं, लेकिन यह तो पारम्परिक स्थितियां हैं जिनके सामने व्यक्ति बिल्कुल निहत्था है। औरत लता है, बोझ है । इस त्रासदी को वह भी भोगती है। मुद्दा तो यह है कि स्त्रियों की स्थिति ही ऐसे पराजीवी की बन जाती है जो दूसरे की ताकत को अपने जीवन के लिए सोख लेता है। उन्हें यदि उनको स्वयं की जीवनी-शक्ति प्रदान की जाए और इस शक्ति के लिए पुरुष यदि उनकी स्थिति मजबूत करे ताकि वे खुद दुनिया का सामना कर सकें, अपने बाहुबल से अपनी हस्ती बना सकें, तभी उनकी यह पराश्रितता समाप्त होगी तथा पुरुष की चेतना भी उन्मुक्त और सहज होगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि स्त्री एवं पुरुष, दोनों को इस नई परिस्थिति का लाभ मिलेगा।

एक ऐसी दुनिया, जिसमें स्त्री-पुरुष के अधिकार समान हों, अब हमारे सोच और चिंतन का मुख्य विषय है। सोवियत रूस इसका प्रमाण है, जहां स्त्री और पुरुष को एक ही तरह का काम करना पड़ता है। यदि स्त्रियां अधिक शक्ति की मांग करने वाले कार्य नहीं कर सकतीं तो ऐसी स्थिति कई पुरुषों की भी होती है। पुरुषों में भी अलग-अलग मानसिक तथा शारीरिक क्षमताएं होती हैं जिनके कारण खुली सम्भावनाओं का चुनाव उनके भी जीवन में सीमित हो जाता है। मैं यहां केवल यह कहना चाहती हूं कि केवल इस जैविक भिन्नता के आधार पर स्त्री और पुरुष का दो वर्गों में विभाजन तर्कसंगत नहीं लगता।

जहां तक कामनात्मक जीवन और यौन-स्वच्छंदता की बात है, ये बातें समाज में परम्परा एवं रूढ़ियों से निर्धारित होती हैं, किंतु सम्भोग की क्रिया स्त्री के लिए एक कर्त्तव्य बन जाए, एक ऐसी सेवा, जिसके बदले में उसे कुछ सुविधाएं मिलें, यह बात ही घृणित है। अब आवश्यक है कि स्त्री को बाध्य किया जाए कि वह पराजीवी न होकर अपने पैरों पर खड़ी हो, विवाह दो व्यक्तियों के बीच एक स्वतंत्र अनुबंध हो, जिसको स्वेच्छा से तोड़ा जा सके,

समाज स्त्री को ऐच्छिक मातृत्व का हक दे ताकि गर्भ-निरोध एवं गर्भपात को वैध बनाया जा सके तथा विवाहेतर संतान नाजायज न कहलाए, उनका समानाधिकार हो ताकि बच्चों का भार राज्य संभाले, बिना उन बच्चों को मां की कोख से छीने।

किंतु क्या कानून, संस्थाएं. रीति-रिवाज और जनमत के बदलने से स्त्री और पुरुष वास्तव में समान स्तर पर आ जाएंगे? उनकी परिस्थिति एक-सी रहेगी? जो संशय की मनोवृत्ति वाले हैं, वे कहेंगे कि औरत औरत ही रहेगी। कुछ कहेंगे, परिवर्तित स्थिति में स्त्री अपनी कोमलता खोकर विकृत हो जाएगी। यह तो मैं भी स्वीकार करती हूं कि आज की स्त्री प्रकृति का सृजन है, वैसे ही जैसे पुरुष भी प्राकृतिक सृजन है, किंतु मैं फिर दोहराना चाहूंगी कि मानव-समाज में कुछ भी प्राकृतिक नहीं, स्वाभाविक नहीं। हम सब सभ्यता के महान् विकास के परिणाम हैं। उन स्थितियों के उत्पाद हैं जो ऐतिहासिक विकास के दौरान आकार ग्रहण करती चली गईं। स्त्री की नियति पुरुषों ने तय की। यह बात भी मौलिक है। यदि स्त्री-नियति के साथ पुरुष का यह हस्तक्षेप न होता तो परिणाम शायद बिल्कुल दूसरा होता। स्त्री न अपने हारमोन से नियंत्रित है, न उसमें कोई रहस्यमय अंत:वृत्ति है, बल्कि यह तो उसका शरीर है जो जगत् से सम्बंधित दूसरों के माध्यम से यानी पुरुष के माध्यम से प्रवर्तित हुआ। वह खाई; जो किशोरवय लड़के-लड़की को एक-दूसरे से दूर-दूर रखती है, समाज एवं परम्परा द्वारा बहुत पहले बचपन में ही खींच दी जाती है। अतः औरत वही है जैसी वह बनाई गई। अतीत की छाया वर्तमान को धुंधला किए बिना नहीं रह सकती। यदि हम इस प्रभाव को सही रूप से बिना किसी पूर्वग्रह के समझ सकें तो हम स्पष्ट रूप से देख पाएंगे कि औरत की नियति अनंत काल से पूर्व-निर्धारित नहीं।

हमें यह भी नहीं समझ लेना चाहिए कि केवल आर्थिक स्थिति बदलते ही स्त्री में पूर्ण परिवर्तन हो जाएगा। यद्यपि मानव-विकास-क्रम में आर्थिक अवस्था एक आधारभूत तत्त्व है, जो व्यक्ति का नियंता है, किंतु इसके बावजूद नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि व्यवस्थाओं में भी परिवर्तन की पूरी जरूरत है जिनके बदले बिना नई स्त्री का आविर्भाव सम्भव नहीं होगा। आज तो यह समझ में आता है कि आधुनिक स्त्री अतीत और भविष्य के बीच टुकड़ों में बंटी हुई है। प्रायः यही स्त्री पुरुष के मुखौटे में हमारे सामने आ खड़ी होती है और अपनी इस पुरुषोचित भूमिका में वह बेहद असहज भी महसूस करती है। उसे अपनी पुरानी केंचुल को त्याग कर नया रूप अपनाना होगा। हम यह नहीं चाहते कि वह बिल्कुल पुरुष जैसी हो जाए। यदि हम उसे एक लड़के की तरह बड़ा करते हैं तो स्वयं उसके मन में कुंठा आ जाती है। किसी मात्रा तक उसके सेक्स का वर्गीकरण जरूरी है। स्टेंढाल ने शायद यह बात समझी थी इसलिए उन्होंने कहा था, "सारे जंगल को फिर एक साथ रोपना होगा। यह नहीं कि एक पेड़ पहले उगे, एक बाद में।" किंतु यदि हम एक ऐसे समाज की कल्पना

कर सकें जहां स्त्री और पुरुष में वास्तविक समानता हो तो मेरी समझ में यह समानता प्रत्येक मानव-व्यक्ति में एक नई अभिव्यक्ति पाएगी।

लड़की को यदि बिल्कुल बचपन से लड़के के बराबर अधिकार मिलें और समान रूप से बड़ा किया जाए तथा एक समान भविष्य की आशा दी जाए, तब हम पाएंगे कि बहुत-सी मानसिक ग्रंथियों, जैसे कैस्ट्रेशन कॉम्प्लेक्स तथा ओडिपास काम्प्लेक्स के अर्थ बदल जाएंगे। बच्चा अपने चारों ओर केवल पुरुषों की दुनिया नहीं पाएगा। यदि बच्ची का आकर्षण पिता के लिए भावनात्मक रूप से अधिक है तो इसके मूल में प्रतियोगिता की भावना अधिक होगी, असहायता-बोध कम। बच्ची का झुकाव निष्क्रियता की ओर कम होगा। वह अपनी ताकत सक्रिय जीवन और खेल-कूद में आजमा सकेगी। उसमें हीन-भावना नहीं पनपेगी। अधिकतर मनोविश्लेषकों ने इस हीन-भावना का कारण लड़की में पुरुष के यौन अंग का अभाव माना है जो मेरी समझ में एक अवैज्ञानिक धारणामात्र है। इसी प्रकार लड़के में अनावश्यक श्रेष्ठता ग्रंथि से अहंकार नहीं पनपेगा, यदि बचपन से उसे स्त्री के प्रति सम्मान सिखाया जाए। अपनी हीन-भावना से पलायन करके न तो छोटी लड़की आत्म-रति में क्षतिपूर्ति खोजेगी, न अपनी नियति को निष्क्रियता से स्वीकारेगी। वह अपने कार्य-जगत् में रुचि लेगी और निस्संकोच अपने को अपनी परियोजनाओं में नियोजित करेगी।

मैंने पहले भी कहा है कि किशोरवय से युवावस्था में परिवर्तन काफी सहज हो जाएगा, यदि लड़की ऐसी सर्वोपरिता की ओर अग्रसर हो सके, जिसमें भविष्य एक स्वतंत्र वयस्कता लिए हुए हो। मासिक-धर्म से लड़की इसलिए आतंकित होती है कि वह अचानक नारीत्व का प्रतीक बनकर जीवन में घटित होता है। वह अपनी कामनाओं को ज्यादा स्वस्थ दृष्टिकोण से देख सकेगी। यौन-भावनाएं उसकी पूरी नियति का नियमन नहीं कर सकेंगी। एक सुलझी हुई मानसिकता उसे इस संक्रांति से उबार सकेगी। सहशिक्षा के कारण कम-से-कम यह बात तो सामने आई है कि पुरुष कोई रहस्यमय आकर्षक देवता नहीं। रोज की दोस्ती और खुली प्रतियोगिता ने इस मिथक का तो पर्दाफाश कर दिया है।

सेक्स की भावना का छोटे लड़के-लड़कियों में इसलिए दमन किया जाता है कि हमारा समाज अब भी सेक्स को 'टेबू' मानता है जिसके स्वाभाविक परिणाम के रूप में दमन, स्नायुरोग, अत्यधिक भावुकता, समलिंगी उत्ताप और किशोरी की वायवीय चाहें जन्म लेती हैं। ये सारी सतही परिस्थितियां स्त्री के मानसिक जीवन के लिए ज्यादा घातक होती हैं । सेक्स के मासूम खिलवाड़ों और थोड़े-बहुत अनुभवों की अपेक्षा जब युवा लड़की स्वयं अपने भविष्य के लिए जिम्मेदार होगी तब पुरुष में वह नर- देवता देखने के बजाय उसे एक कामरेड, एक दोस्त और एक पार्टनर मानेगी। कामनात्मक जीवन और प्रेम को एक स्वतंत्र सर्वोपरिता का रूप मिलेगा, न कि एक सब्र रखने वाला भाव । तब सेक्स को दो स्वतंत्र

व्यक्तियों के बीच का सम्बंध माना जाएगा। मेरा अभिप्राय यह कहने का बिल्कुल नहीं कि सारा परिवर्तन पलक झपकते ही हो जाएगा। कोई उदारतम शिक्षा-नीति भी बच्चे के निजी अनुभवों को बराबरी नहीं कर सकती। हम तो बस इतना-भर चाहते हैं कि बच्चों के विकास-पथ में रोड़े न अटकाए जाएं। मनोवैज्ञानिकों ने अभिभावकों को बच्ची के बारे में कुछ हद तक उदार जरूर बनाया है, फिर भी वर्तमान अवस्था में जिस स्थिति में युवा लड़की को सेक्स का अनुभव होता है, वह इतनी फूहड़ है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। हम यह नहीं कहते कि औरत जीवन के दुःख-दैन्य और क्षणभंगुरता से मुक्त हो जाएगी, किंतु कम-से-कम उसको हम वे उपकरण तो दें जिनसे वह आत्म- केंद्रित अनुभवों की सीमाओं को तोड़कर सर्वोपरिता की ओर अग्रसर हो सके।

औरत किसी रहस्यमय भवितव्यता का शिकार नहीं। उसका वह निरालापन, जो उसके औरतपन के चौखटों में फिट करता है, वास्तव में इसलिए है कि औरतपन की इन विलक्षणताओं को समाज महत्त्व देता है, परम्पराओं एवं रूढ़ियों से ये आरोपित हैं। इन पर विजय पाई जा सकती है, यदि इनके प्रति हमारा दृष्टिकोण बदले। औरत महसूस करती है और प्रायः उसके मन में पुरुष की तानाशाही के खिलाफ जुगुप्सा जागती है। इसका कारण उसके गर्भाशय में नहीं जो हमेशा उसे घुटनों के बल चलने को मजबूर करे । पौरुपीय आक्रामकता उस व्यवस्था में बड़ी लुभावनी लगती है जिसमें पूरी चेष्टा पुरुष की श्रेष्ठता को बनाए रखने की है। यौन-जीवन में स्त्री अपने को बिल्कुल निष्क्रिय इसलिए मानती है कि परम्परा ने उसे यही सिखाया है। कामनात्मक जीवन की ये सारी भाव-भंगिमाएं एक नया अर्थ ग्रहण कर लें यदि स्त्री में हीन-भाव न हो, पुरुष के समक्ष वह निष्क्रिय न हो और यौन-जीवन में स्त्री-पुरुष हार-जीत न सोचकर एक बराबर की साझेदारी रखें।

वास्तव में औरत की तरह पुरुष भी मांस-पिंड ही होता है। उसकी भी अपनी ग्रंथियां हैं, जिनके स्राव पर उसका कोई नियंत्रण नहीं रहता, वह भी अपनी कामना की खुराक बनता है। अतः दोनों को शरीर की द्वयर्थकता झेलनी पड़ती है। जहां दोनों एक-दूसरे को चुनौती देते हैं और सामना करते हैं, वहां वास्तव में एक के आत्म का संघर्प दूसरे के आत्म के साथ होता है। एक की वैयक्तिकता दूसरे को वस्तु बना कर भोगने और अधीनस्थ कर लेने की होती है। पुरुष अपने को विजयी बनाना चाहता है। यदि परिस्थिति का अवलोकन किए बिना अपनी-अपनी प्रामाणिकता का अभिमान तो दोनों रखें, मगर अपने को हीन या श्रेष्ठ न समझें तो स्थिति बदले। किसी दी हुई विशिष्टता से कोई श्रेष्ठ नहीं हो जाता। क्या काफी नहीं कि हम सब एक साधारण इंसान हैं और अपने-अपने कामों के लिए जिम्मेदार हैं ? स्त्री और पुरुष, दोनों ने यह नाटक काफी लम्बे अरसे तक खेल लिया है। हम सभी स्थितिग्रस्त हैं, अपनी सीमावद्धता में कैद। प्रामाणिक जीवन इस कैद से छुटकारा चाहता है । काल स्त्री

और पुरुष, दोनों का क्षय करता है। मृत्यु दोनों की होती है। दोनों को एक-दूसरे की आवश्यकता है और अपनी-अपनी स्वतंत्रता से दोनों मानवीय गरिमा हासिल कर सकते हैं।

लोग हमें स्वप्न-दृष्टा कह सकते हैं क्योंकि औरत में कोई परिवर्तन नहीं आ सकता जब तक कि समाज उसको पुरुष के बराबर अधिकार एवं समानता नहीं देता। यदि किसी जाति को लगातार हीन-अवस्था में रखा जाए तो सही बात है कि वह हीन ही रहेगी। किंतु मानवीय स्वतंत्रता इस सीमा को तोड़ सकती है। आप अधिकार तो दीजिए, उपयोग करना स्त्री स्वयं सीख जाएगी। सच्चाई तो यह है कि दमनकर्ता कभी भी आगे बढ़कर अकारण उदारता नहीं दिखाएगा किंतु कभी तो दमित के विद्रोह और कभी स्वयं सुविधाप्राप्त वर्ग के अपने विकास से नई स्थितियां जन्म लेती हैं। इन नई परिस्थितियों की अपनी मांगें होती हैं जिनको पूरा करने के लिए पुरुष स्वयं स्त्री को आंशिक मुक्ति देने के लिए बाध्य होता है। यह तो औरत का कर्तव्य है कि वह विकास की दिशा में आगे बढ़ती रहे और मिलने वाली सफलताओं से उत्साहित होती रहे। इसमें कोई संदेह नहीं कि एक-न-एक दिन वह पुरुष के बराबर सामाजिक और आर्थिक समानता पाएगी जिसके कारण उसकी आंतरिकता में एक नया रूपांतरण घटित होगा।

किसी खेमे में यह बात भी उठ सकती है कि क्या ऐसी दुनिया रहने लायक होगी? क्या इसका स्वाद बड़ा फीका न होगा? यह तर्क नया नहीं। यथास्थिति के समर्थक हमेशा एक सुखद अतीत को याद करके आंखें भर लेते हैं। नए भविष्य के लिए उनके होंठों पर मुस्कान तक नहीं आती। यह ठीक है कि जब नीग्रो की गुलामी खत्म हुई तो पुराने दिनों की कुछ सुविधाएं भी खत्म हुईं। अमरीका की पूरी दक्षिणी सभ्यता की बारीकी मिट गई। इसी तरह स्त्री के जीवन के बदलाव का अर्थ होगा कुछ अन्य बातों का बदलाव। पुरानी खूबसूरती, फल और झालर, खनखनाती हुई महीन स्त्रियोचित बातें खत्म हो जाएंगी।

यह ठीक है कि जब कोई मोहिनी मूरत अपने सारे श्रृंगार के साथ खड़ी होती है, तब वह किसी तस्वीर में भरे रंगों से अधिक जीवंत लगती है। वह अपने में अतीत को पुनः जीवित करती है। वर्तमान के सबसे आश्चर्यजनक खूबसूरत प्राणी को पाने के लिए पुरुष लालायित हो उठता है, किंतु एक बार जब पा लेता है तो बस बात खत्म। फिर वह पत्नी है, प्रेमिका है, अन्य सब प्राणियों में से एक । वह मोहक जादू खत्म। अब उसके शब्द उतना ही अर्थ रखते हैं जितना वह बोलना चाहती है? क्या यह अस्थायी जादू काफी है यथास्थिति को बनाए रखने के लिए? हम प्रशंसा तो कर सकते हैं फूलों की खूबसूरती की, स्त्री की मोहकता की; उनका सही मूल्यांकन भी कर सकते हैं, किंतु यदि इस खजाने की कीमत खून और त्रासदी हो तो अच्छा है कि इनका त्याग कर दिया जाए।

आश्चर्य तो यह है कि पुरुष इस यथास्थिति को नहीं बदलना चाहता। बहुत कम पुरुष स्वतंत्रता की इस परियोजना में स्त्री की सफलता चाहेंगे । स्त्री के प्रति दया-भाव रखने वाले

पुरुष यह सोचेंगे कि इस परिवर्तन से औरत को खोना अधिक पड़ेगा। यह सच है कि आज जो विकास हो रहा है, उसमें न केवल स्त्री को अपनी मोहकता बल्कि और भी बहुत-सी चीजों को खोने का भय है।

प्रथम तो स्त्री जब अपने लिए जिएगी तब वह जीवन के इन दोहरे मापदंडों और अपनी दोहरी भूमिकाओं से मुक्त हो सकेगी। पुरुष की दुनिया से प्राप्त सुविधाएं उसको छोड़नी पड़ेंगी। पुरुष उसे एक ओर तो स्वतंत्र प्राणी के रूप में चाहता है और दूसरी ओर अपनी कामना की निष्क्रिय वस्तु बनाकर रख देना चाहता है। यह एक ऐसा चौखटा है जिसमें फिट होती हुई संगिनी के प्रति पुरुष की एक मिथकीय अवधारणा भले ही हो, किंतु इससे मिलने वाले अनुभव का लोभ वह कैसे छोड़े? इससे अधिक कीमती, इससे अधिक आंतरिक, इससे अधिक प्रबल तो और कुछ नहीं? इसमें कोई शक नहीं कि स्त्री की पुरुष पर निर्भरता, उसकी हीनता और उसकी व्यथा उसके अस्तित्व को एक विशिष्टता प्रदान करती है। अतः स्त्री की स्वायत्तता यदि पुरुष को कुछ जिम्मेदारियों से मुक्त करेगी तो स्त्री को मिलने वाली बहुत-सी सुविधाएं भी कम होंगी। कल की दुनिया में बहुतेरे अपूर्व सेक्सुअल अनुभव हो जाएंगे, किंतु इसका यह अर्थ कतई नहीं कि प्रेम, सुख, कविता और आदमी के सपनों का भी अंत हो जाएगा।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हममें कल्पना का जो दारिद्रय है, वह वास्तव में भविष्य को भी मारता है। कल की मानवता सजीव रूप से स्वतंत्रता में उभरेगी। यह किसी अमूर्त मानवता का विचार नहीं। उसमें सम्बंधों के नए आयाम उभरेंगे। स्त्री और पुरुष के बीच वे भावनाएं जागेंगी जिनकी आज हमारे पास कोई अवधारणा तक नहीं। यों भी अब हम स्त्री-पुरुष के बीच वह दोस्ती, प्रतियोगिता, सम्बंधों में जटिलता और कामरेडशिप देखते हैं, जिसकी कल्पना अतीत में की ही नहीं जा सकती थी। एक बात और । समानता का अर्थ एकरसता और एकाकार होना नहीं और निस्संदेह ऐसी दुनिया बड़ी नीरस होगी, किंतु मैं यह नहीं सोच पाती कि आज की आधुनिक दुनिया में बोरियत कम है या फिर स्वाधीनता हमेशा एकरसता देती है।

स्त्री और पुरुष के बीच कुछ मौलिक आधारभूत भेद तो रहेंगे ही। उसका कामनात्मक जीवन, उसकी संवेदनशीलता और उसकी सेक्सुअल दुनिया के स्वाद अलग हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि औरत का अपने शरीर और पुरुषों तथा बच्चों से सम्बंध पुरुषोचित नहीं हो जाएगा, वह फिर भी स्त्रियोचित रहेगा; किंतु उसकी सम्भावनाएं सीमित नहीं, बल्कि अपरिमित होंगी। जो अनेकता में एकता का दावा करते हैं, वे कम-से-कम इस बात को भी स्वीकार करेंगे कि एकता में अनेकता भी निहित होती है और फिर एकरूपता का कारण संस्थापन भी होता है। खूबसूरत और जवान, चाहे जिसका भी शरीर हो, किंतु हरम में शेख की बांहों में एक-सा होता है। ईसाइयत ने सेक्स को पाप का जामा पहनाया, किंतु यदि

समाज स्त्री को सत्ता और स्वायत्तता देता है तो एक प्रेमपूर्ण स्पर्श भी दिलों को पिघला सकता है ।

यह बेकार की बात है कि स्त्री और पुरष के समान होने पर रंगरेलियां, आवेग और उच्छवास बिल्कुल असम्भव हो जाएंगे, किंतु वे जो आत्मा के विपरीत शरीर का इस्तेमाल करते हैं. काल के अनंत प्रवाह में क्षणों को पकड़े रखना चाहते हैं, सर्वोपरिता के बदले आत्म-मूर्छा चाहते हैं, उनकी विरोधाभासपूर्ण समस्याओं का निराकरण हम नहीं कर सकते । सेक्सुअलिटी में तनाव, बेचैनी, खुशी और अवसाद बने रहेंगे। ये मानव-अस्तित्व की अनिवार्य विशिष्टताएं हैं।

स्त्री-स्वाधीनता का अर्थ हुआ कि स्त्री पुरुष से जिस पारम्परिक सम्बंध को निभा रही है, उससे मुक्त हो। हम स्त्री-पुरुष के बीच घटने वाले सम्बंध को नहीं नकार रहे। उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व होगा और वह पुरुष की होकर भी जीएगी। दोनों अपनी-अपनी स्वायत्तता में दूसरे का अनन्य रूप भी देखेंगे। सम्बंधों की पारस्परिकता और अन्योन्याश्रितता से, चाह, अधिकार, प्रेम और आमोद-प्रमोद के अर्थ समाप्त नहीं हो जाएंगे और नहीं समाप्त होंगे दो संवर्गों के बीच के शब्द देना, प्राप्त करना, मिलन होना; बल्कि दासत्व जब समाप्त होगा और वह भी आधी मानवता का, तब व्यवस्था का यह सारा ढोंग समाप्त हो जाएगा। स्त्री-पुरुष के बीच का विभेद वास्तव में एक महत्त्वपूर्ण नई सार्थकता को अभिव्यक्त करेगा। मार्क्स कहते हैं:

"स्त्री और पुरुष का आपसी सम्बंध सबसे अधिक प्राकृतिक है। विकास के दौरान हमें यह देखना है कि किस हद तक मानव सही मामले में मानव बना, यानी प्राकृतिक अवस्था से बढ़ते हुए मानवीय स्वभाव को उसने पाया?"

यह तो पुरुष को स्थापित करना है कि दी हुई दुनिया में स्वाधीनता का आधिपत्य रहे । सर्वोच्च विजय के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि स्त्री और पुरुष अपने प्राकृतिक विभाजन को बनाए रखते हुए भी आपसी सौहार्द स्थापित कर सकें।

शुद्ध फ्रेंच उच्चारण

फ्रेंच	**देवनागरी**
Mme d' Agoult	मदाम दागूल
Mme Aisse	मदाम ऐस
Marie Alacoque	मारी आलाकोक
Simone de Beauvoir	सीमोन द बोउवार
Ame de l'adolescente	आम द लादोलसोंत
Ame enfantine et la psychanalyse,	आम् ओंफांतीन ए ला सिकानालीज़
Amoureuse	आमूरज
Porto Riche	पोर्तो रीश
Anouilh	आनुइच
Annonce faite a Marie	आनोंस फेत आ मारी
Aragon	आरागों
Eugene Asse	युजेन आस
Aux fontaines du desir	ओ फोंतेंन यु देज़ीर
Aux yeux du souvenir	ओज्य यू सवनीर
Les adventures de Sophie	ले जावोंत्यू द सोफी
Bachelard	बाशलार
Bachofen	बाशोफें
Poulain de la Barre	पूलैं द ला बार
Marie Bashkirtsev	मारी बाशिर्कतसोफ
G. Battaile	जे बाताइय
Leonie Biard	लेओनी बिआर
Blanche de Castile	ब्लांश द कास्तीय
Ble en herbe	ब्ले ऑर्नेब
Leon Blum	ले ओं ब्लुम

Andre Breton	आंद्रे ब्रेतों
Mme Brunschwig	मदाम हुन्शविग
Cabinet Saryrique	काबिने सातीरिक
Cantata a trois voix	कान्ताता आ त्रुआ वुआ
Les Causes du suicide	ले कोज़ द्य स्विसीद
Les celebataires	ले सेलेबातैर
Chansons de geste	शांसों द जेस्त
Mme de Charriere	मदाम द शारिएर
Mme de Chevreuse	मदाम द शेव्रज़
Chroniques italiennes	क्रोनीक़ इतालिएं
Chroniques maritales	क्रोनीक़ मारीताल
Circe	सीर्क
Claudel	क्लोदेल
Claudine a l'ecole	क्लोदीन् आ लेकोल
Les complexes familiaux	ले कॉम्प्लेक्स फामीलिय
Les conflits de l'ame enfantine	ले कोंपली द लाम ऑफांतीन्
Conversations dans le Loir-et-Cher	कोवेरसास्यों दां लुइर-ए-शैर
D'Annunzio	दान्नुनजिओ
Chevalier D'Aydie	शवालिए दाइदी
Decouverte de soi	दे कुवेत द सोई
L' Echange	लेशांज़
Ecrits intimes	एक्री एंतीम
en-soi	ओं स्वा
Epithalame	एपितालाम
Epitre au Dieu d'Amour	एपीत्र ओ दिअ दामूर
L'Erotomanie	ले रोतोमानी
L'Etoile Vesper	ले त्वाल वेस्पे
L'Etre et le neant	लेत्र ए ल ने
Femmes savantes	फाम सावांत
Feuilles de saints	फइय् द से
Les Fiancailles	ले फियांकाइय्
Fleurs de Tarbes	फ्लर द तार्ब
Alain Fournier	एलें फूरनिए

garcon manque	गारसों मांक
Yassu Gauclere	इयासू गोक्लेर
A. Gide	ए ज़ीद
Olympe de Gouges	ओलिम्प द गूज़
Remy de Gourmont	रेमी द गुरमों
Gribiche	ग्रीबीश
Mme Guyon	मदाम गियों
Jules Guyot	ज्यूल गियो
Heloise	एल्वाज़
Histoire des populations francaises	इस्त्वार दे पोपूलास्यों फ्रांसेज़
Ingenue libertine	एंजेन्यू लिबेरतीन
In Vino Veritas	इन वीनो बेरितास
Le jeune homme et la mort	ल ज़अन ओम ए ला मोध्
Les Jeunes Filles	ले ज़अन फीय
La Jeune Fille Violaine	ला ज़अन फीय विओलेन
Les Jeunes Prostitutees	ले ज़अन प्रोस्तित्युए
Jeunesse et sexualite	ज़अनेस ए सेक्स्युआलिते
Mme Krudener	मदाम क्रुदने
Lafourgue	ला फूर्ग
Violette Leduc	विओलेत लद्यु
Mme Lefevbre	मदाम लफेवन
Ninon de Leclos	निनों द लक्लो
Marie Leneru	मारी लनेर्यु
Leroy Beaulieu	लरूआ बोलिय
Julie de Lespinasse	ज्यूली द ले पिनास
Liaisons dangereuses	लिएज़ो दांजर्ज
Livre de ma vie	लिव्र द मा वी
Lys dans la vallee	ली दां ला वाले
Les mains sales	ले मैं साल
Maison de Claudine	मेज़ों द क्लोदीन
Le maitre de Santiago	ल मैत्र द सान्तिआगो
Manichacism	मानीकाइज़्म
Le Mariage	ल मारिआ ज़

La Rochefoucauld	ल रोशफुको
Cecile Sorel	सेसील सोरेल
Memoires of Georgette Le Blanc	मेमुआर ऑफ जोर्जेत ल ब्लों
Mme de Noailles	मदाम द नोआइय्
Merleau-Ponty	मेरलो-पोंती
Mes apprentissages	मे आप्रोतिसाज़
Moi qui ne suis quamour	मुआ की न स्वी कामूर
Montherlant	मोंतेरला
Montesquieu	मोंतेस्किय
Montaigne	मोंतेन्य
P. Morand	पी मोरां
Musset	म्युसे
Gerard de Nerval	जेरार द नेरवाल
Therese Neumann	तेरेस न्यूमान
Nuits de noces	नई द नोस
On jous perdant	ओं जू पेरदां
L' Otage	लोताज़
L. Ouvrierre	लूवरिएर
Le Pain dur	ल पें युर
Parent-Duchatelet	पारों द्युशातले
Partage de Midi	पारताज़ द मिदी
Le pere humilie	ल पैर इ यमिलिए
La petite infante de Castille	ल पतित् एफांत द कास्तीय
Phedre	फेद्र
Physiologie du mariage	फिज़िओलोज़ी यु मारिआज़
Piaget	पिआज़े
Pitie pour le s femmes	पितिए पूर ले फाम्
Mme de Pompadour	मदाम द पोम्पादू
Prevert	प्रेवेर
Les pouvoirs de la femmes	ले पुवारे द ला फाम्
Precieuse ridicules	प्रेसियज़ रिदिक्यूल
Abbe de Pure	आबे द प्यूर
Le Rapport d'Uriel	ल रापोर ट्युरिएल

La Reine morte	ला रेन मोर्त
Les reveries morbides	ले रेवरी मोरबीद
Rimbaud	रैंबो
Roman de la Rose	रोमां द ला रॉज
Rougw et le noir	रूज़ ए ल नुआर
Le Sabbat	ल साबा
Marquis de Sade	मार्की द साद
Sainte Beuve	सेंत बअव
Mme de Sevignes	मदाम द सेविन्य
Sevres	सेव
La sesualite	ला सेक्सुआलिते
Le solstice de juin	ल सोलतीस द जुएं
Le songe	ल सौज
Cecile Sorel	सेसील सोरेल
Le soulier de satin	ल सूलिए द सातें
Souvenirs degotisme	सूवनीर देगोतीज़्म
Mme de Stael	मदाम दस्ताएल
Stendhal	स्तांदाल
Sur les femmes	स्यूर ले फाम
Tableau de Paris	ताब्लों द पॉरी
Temps et l'Autre	तां ए लोत्र
S. de Tervagnes	सें द तेरवान्य
Therese Desqueyroux	तेरेस देस्कीरू
Mme Sophie Tolstoy	मदाम सोफीथ् तोल्सतोय
Norbert Truquin	नोबेर त्र्युकें
La vagabonde	ला वागाबों
Mme de Villeparisis	मदाम द वीलपारी
La vie intime de lenfant	ला वी एंतीम द लांफां
Venus des cavernes	वेन्यूस दे कावेर्न
Veriti sur les evenements de Lyon	वेरीती स्यूर लेज़ेवेनमां द लिओं
Valle Inclan	वाल् एंक्लां
Rence Vivian	रने विविएं
Collete Yver	कौलेत इवे